स्व. पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीया श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

ग्रन्थमाला सम्पादक
सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री
डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय : बी/४५-४७, कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली–११०००१
मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–२२१००१

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९; वीर नि० २४७०, विक्रम सं० २०००, १८ फरवरी १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ : संस्थापना 1944



मूल प्रेरणा
दिवगता श्रीमती मूर्तिदेवी जी
मातुश्री श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

अधिष्ठात्री
दिवगता श्रीमती रमा जैन
धर्मपत्नी श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ GRANTHAMĀLĀ : Sanskrit Grantha No. 26

PADMAPURĀṆA

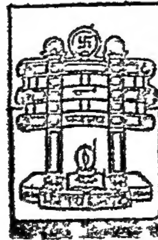
of

RAVISEṆĀCĀRYA

With
Hindi Translation, Introduction and Alphabetical Index of the verses

VOL. III

Editor and Translator
Pt. PANNALAL JAIN Sahityacharya, PH D



BHARATIYA JNANPITH PUBLICATION

VĪRA NIRVĀṆA SAṀVAT 2504 : V. SAṀVAT 2035 : A. D. 1978
Second Edition : Price Rs. 24/–

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

LATE SAHU SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE MOTHER SHRIMATI MURTIDEVI

AND

PROMOTED BY HIS BENEVOLENT WIFE

LATE SHRIMATI RAMA JAIN

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAINA ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRAKRITS, SANSKRIT, APABHRṀŚA, HINDI, KANNAḌA, TAMIL, ETC, ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES.

ALSO

BEING PUBLISHED ARE

CATALOGUES OF JAINA-BHANDĀRAS, INSCRIPTIONS, ART AND ARCHITECTURE, STUDIES BY COMPETENT SCHOLARS, AND POPULAR JAINA LITERATURE

General Editors

Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri

Dr. Jyoti Prasad Jain

Published by

Bharatiya Jnanpith

Head Office . B/45-47, Connaught Place, New Delhi-110001

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam 2470, Vikrama Sam. 2000, 18th Feb., 1944

विषयानुक्रमणिका

विषय | पृष्ठ

स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि जो नियम लेकर जिनमन्दिरमें बैठा है उसपर यह कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है ? 'राम तो महापुरुष हैं वे अधर्ममें प्रवृत्ति नहीं करेंगे' ऐसा निश्चय कर विद्याधर राजा स्वयं तो नहीं गये परन्तु उन्होंने अपने कुमारोंको उपद्रव हेतु लंकाकी ओर रवाना कर दिया। कुमारोंने लंकामें घोर उपद्रव किया जिससे लोग भयभीत हो जिनालयमें आसीन रावणकी शरणमें गये परन्तु रावण ध्याननिमग्न था। लोग भयभीत थे इसलिए जिनालयके शासनदेवोंने विक्रिया द्वारा कुमारोंको रोका। उधर रामचन्द्रजीके शिविरमें जो जिनालय थे उनके शासनदेवोंने रावणके शान्ति जिनालयसम्बन्धी शासन देवोंके साथ युद्ध कर उन्हें रोकनेका प्रयत्न किया। तदनन्तर पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक यक्षेन्द्र रावणके ऊपर आगत उपद्रवका निवारण कर कुमारोंको खदेड़ देते हैं और रामचन्द्रजीको उनके कुकृत्यका उलाहना देते हैं। सुग्रीव यथार्थ बात कहता है। और अर्घावतरण कर उन्हें शान्त करता है। तदनन्तर लक्ष्मणके कहनेसे दोनों यक्ष यह स्वीकृत कर लेते हैं कि आप नगरवासियोंको अणुमात्र भी कष्ट न देकर रावणको ध्यानसे विचलित करनेका प्रयत्न कर सकते हो। १६–२३

इकहत्तरवाँ पर्व

यक्षेन्द्रको शान्त देख अंगद लंका देखनेके लिए उद्यत हुआ। स्कन्द तथा नील आदि कुमार भी उसके साथ लग गये। इन समस्त कुमारोंका लंकामें प्रवेश होता है। अंगदकी सुन्दरता देख लंकाकी स्त्रियोंमें हलचल मच जाती है। रावणके भवनमें कुमारोंका प्रवेश होता है। रावणके भवनका अद्भुत वैभव उन्हें आश्चर्यचकित कर देता है। वे सब शान्ति-जिनालयमें जिनेन्द्र-वन्दना करते हैं। शान्तिनाथ भगवान्‌के सम्मुख अर्धपर्यंकासनसे बैठकर रावण विद्या सिद्ध कर रहा है। अंगदके द्वारा नाना प्रकारके उपद्रव किये जानेपर भी रावण अपने ध्यानसे विचलित नहीं होता है और उसी समय उसे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो जाती है। रावणको विद्या सिद्ध देख अंगद आदि आकाशमार्गसे उड़कर रामचन्द्रजीकी सेनामें जा मिलते हैं। २४–३०

बहत्तरवाँ पर्व

रावणकी अठारह हजार स्त्रियाँ अंगदके द्वारा पीडित होनेपर रावणकी शरणमें जा अपना दुःख प्रकट करती हैं। रावण उन्हें सान्त्वना देता है। दूसरे दिन रावण बड़े उल्लासके साथ प्रमदवनमें प्रवेश करता है। सीताके पास बैठी विद्याधरियाँ उसे रावणकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न करती हैं। सीता रावणकी बलवत्ता देख अपने दौर्भाग्यकी निन्दा करती है। रावण सीताको भय और स्नेहके साथ अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है पर सीता रावणसे यह कहकर कि हे 'दशानन ! युद्धमें बाण चलानेके पूर्व रामसे मेरा यह सन्देश कह देना कि आपके बिना भामण्डलकी बहन घुट-घुटकर मर गयी है....मूर्च्छित हो जाती है। रावण सीता और रामके निकाचित स्नेह बन्धनको देख अपने कुकृत्यपर पश्चात्ताप करता है परन्तु युद्धकी उत्तेजनाके कारण उसका वह पश्चात्ताप विलीन हो जाता है और वह युद्धका दृढ निश्चय कर लेता है। ३१–३८

तेहत्तरवाँ पर्व

सूर्योदय हुआ। रावणका मन्त्रिमण्डल उसकी हठपर किंकर्तव्यविमूढ है। पट्टरानी मन्दोदरी भी पतिके इस दुराग्रहसे दुःखी है। रावण अपनी शस्त्रशालामें जाता है वहाँ नाना प्रकारके अपशकुन होते हैं। मन्दोदरी मन्त्रियोंको प्रेरणा देती है कि आप लोग रावणको समझाते

चौहत्तरवाँ पर्व

पचहत्तरवाँ पर्व

छिहत्तरवाँ पर्व

सतहत्तरवाँ पर्व

अठहत्तरवाँ पर्व

राम कहते हैं कि 'विद्वानोंका वैर तो मरण पर्यन्त ही रहता है अत. अब रावणके साथ वैर किस बातका। चलो उसका दाह-संस्कार करें।' रामकी बातका सब समर्थन करते हैं और रावणके संस्कारके लिए सब उसके पास पहुँचते हैं। मन्दोदरी आदि रानियाँ करुण विलाप करती हैं। सब उन्हें सान्त्वना देकर रावणका गोशीर्ष आदि चन्दनोंसे दाह-संस्कार कर पद्म सरोवर जाते हैं। वहाँ भामण्डल आदिके संरक्षणमें भानुकर्ण, इन्द्रजित् तथा मेघवाहन लाये जाते हैं। ये सभी अन्तरगसे मुनि बन जाते हैं। राम और लक्ष्मणकी ये प्रशंसा करते हैं। राम-लक्ष्मण भी इन्हें पहलेके ही समान भोग भोगनेकी प्रेरणा करते हैं पर ये भोगाकांक्षासे उदासीन हो जाते हैं। लंकामें सर्वत्र शोक और निर्वेद छा जाता है। जहाँ देखो वहाँ अश्रु-धारा ही प्रवाहित दिखती है। दिनके अन्तिम प्रहरमें अनन्तवीर्य नामक मुनिराज लंकामें आते हैं। वे कुसुमोद्यान नामक उद्यानमें ठहर जाते हैं। छप्पन हजार आकाशगामी उत्तम मुनिराज उनके साथ रहते हैं। रात्रिके पिछले पहरमें अनन्तवीर्य मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। देवोंके द्वारा उनका केवलज्ञान महोत्सव किया गया। भगवान् मुनिसुव्रत जिनेन्द्रका गद्यकाव्य द्वारा पंचकल्याणक वर्णनरूप संस्तवन होता है। केवलीकी दिव्य-ध्वनि खिरती है। इन्द्रजित्, मेघवाहन, कुम्भकर्ण और मन्दोदरीने उनसे अपने भवान्तर पूछे। अन्तमें इन्द्रजित्, मेघवाहन, भानुकर्ण तथा मय आदिने निर्ग्रन्थदीक्षा धारण की। मन्दोदरी तथा चन्द्रनखा आदिने भी आर्यिकाके व्रत ग्रहण किये। ७७–८७

उन्यासीवाँ पर्व

राम और लक्ष्मण महावैभवके साथ लंकामें प्रवेश करते हैं। रामके मनोमुग्धकारी रूपको देखकर स्त्रियाँ परस्पर उनकी प्रशंसा करती हैं। सीताके सौभाग्यको सराहती हैं। राजमार्गसे चलकर राम उस वाटिकामें पहुँचते हैं जहाँ विरहव्याधिपीडिता दुर्बलशरीरा सीता स्थित थी। सीता रामके स्वागतके लिए खडी हो जाती है। राम बाहुपाशसे सीताका आलिंगन करते हैं। लक्ष्मण विनीतभावसे सीताके चरणयुगलका स्पर्श कर सामने खडे हो जाते हैं। सीताके नेत्रोंसे वात्सल्यके अश्रु निकल आते हैं। आकाशमें खडे देव विद्याधर, राम और सीताके समागमपर हर्ष प्रकट करते हुए पुष्पाञ्जलि तथा गन्धोदककी वर्षा करते हैं। 'जय सीते! और जय राम' की ध्वनिसे आकाश गूँज उठता है। ८८–९२

अस्सीवाँ पर्व

सीताको साथ ले श्री राम हाथीपर सवार हो रावणके महलमें गये। वहाँ श्री शान्तिनाथ जिनालयमें उन्होंने शान्तिनाथ भगवान्‌की भक्तिभावसे स्तुति की। विभीषण तथा रावण परिवारको सान्त्वना दी। विभीषण अपने घर गया और उसने अपनी विदग्धा रानीको भेजकर श्रीरामको निमन्त्रित किया। श्रीराम सपरिवार उसके घर गये। विभीषणने अर्घावतारण कर उनका स्वागत किया तथा समस्त विद्याधरों और सेनाके साथ उन्हें भोजन कराया। विभीषणने राम और लक्ष्मणका अभिषेक करना चाहा, तब उन्होंने कहा—पिताके द्वारा जिसे राज्य प्राप्त हुआ था ऐसा भरत अभी अयोध्यामें विद्यमान है उसीका राज्याभिषेक होना चाहिए। राम-लक्ष्मणने वनवासके समय विवाहित स्त्रियोंको बुला लिया और आनन्दसे लंकामें निवास करने लगे। लंकामें रहते हुए उन्हें छह वर्ष बीत गये। मुनिराज इन्द्रजित् और मेघवाहन मोक्ष पधारे। मय मुनिराजके माहात्म्यका वर्णन। ९३–१०८

इक्यासीवाँ पर्व

बयासीवाँ पर्व

तेरासीवाँ पर्व

चौरासीवाँ पर्व

बानवेवाँ पर्व

तेरानवेवाँ पर्व

चौरानवेवाँ पर्व

पंचानवेवाँ पर्व

छियानवेवाँ पर्व

सन्तानवेवाँ पर्व

सीताको जिनमन्दिरोंके दर्शन करानेके बहाने अटवीमें भेज देते हैं। अटवीमें जाकर कृतान्तवक्त्र अपनी पराधीन वृत्तिपर बहुत पश्चात्ताप करता है। गगानदीके उस पार जाकर कृतान्तवक्त्र सेनापति सीताको रामका आदेश सुनाता है। सीता वज्रसे ताड़ित हुईके समान मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़ती है। सचेत होनेपर आत्मनिरीक्षण करती हुई रामको सन्देश देती है कि जिस तरह लोकापवादके भयसे आपने मुझे छोड़ा इस तरह जैन धर्मको नही छोड़ देना। सेनापति वापस आ जाता है। सीता विलाप करती है उसी समय पुण्डरीकपुरका राजा वज्रजंघ सेना सहित वहाँसे निकलता है और सीताका विलाप सुन उसकी सेना वही रुक जाती है। २०२–२१६

अंठानवेवाँ पर्व

सेनाको रुकी देख वज्रजंघ उसका कारण पूछता है। जबतक कुछ सैनिक सीताके पास जाते हैं तबतक वज्रजघ स्वयं पहुँच जाता है। सैनिकोको देख सीता भयसे काँपने लगती है। उन्हे चोर समझ आभूपण देने लगती है पर वे सान्त्वना देकर राजा वज्रजघका परिचय देते हैं। सीता उन्हें अपना सब वृत्तान्त सुनाती है और वज्रजघ उसे धर्मवहन स्वीकृत कर सान्त्वना देता है। २१७–२२४

निन्यानवेवाँ पर्व

सुसज्जित पालकीमें बैठकर सीता पुण्डरीकपुर पहुँची। भयकर अटवीको पार करनेमें उसे तीन दिन लग गये। वज्रजघने बडी विनय और श्रद्धाके साथ सीताको अपने यहाँ रखा। ... कृतान्तवक्त्र सेनापति सीताको वनमें छोड़ जब अयोध्यामें पहुँचा तो रामने उससे सीताका सन्देश पूछा। सेनापतिने सीताका सन्देश सुनाया कि—जिस तरह आपने लोकापवादके भयसे मुझे छोडा है उस तरह जिनेन्द्रदेवकी भक्ति नही छोड देना' "। वनकी भीपणता और सीताकी गर्भदशाका विचार कर राम बहुत दु खी हुए। लक्ष्मणने आकर उन्हें समझाया। २२५–२३३

सौवाँ पर्व

वज्रजंघके राजमहलमें सीताकी गर्भावस्थाका वर्णन। नौ माह पूर्ण होनेके बाद सीताके गर्भसे अनगलवण और लवणाकुशकी उत्पत्ति होती है। इन पुण्यशाली पुत्रोकी पुण्य महिमासे राजा वज्रजघका वैभव निरन्तर वृद्धिगत होने लगता है। सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक दोनों पुत्रोंको विद्याएँ ग्रहण कराता है। २३४–२४०

एक सौ एकवाँ पर्व

विवाहके योग्य अवस्था होनेपर राजा वज्रजघने अपनी लक्ष्मी रानीसे उत्पन्न शशिचूला आदि बत्तीस पुत्रियाँ लवणको देनेका निश्चय किया और अकुशके लिए योग्य पुत्रीकी तलाशमे लग गया। उसने बहुत कुछ विचार करनेके बाद पृथिवीपुरके राजाकी अमृतवती रानीके गर्भसे उत्पन्न कनकमाला नामकी पुत्री प्राप्त करनेके लिए अपना दूत भेजा। परन्तु राजा पृथुने प्रस्तावको अस्वीकृत कर इनको अपमानित किया। इस घटनासे वज्रजंघने रुष्ट होकर उसका देश उजाड़ना शुरु किया। जबतक वह अपनी सहायताके लिए पोदन देशके राजाको बुलाता है तबतक वज्रजघने अपने पुत्रोंको बुला लिया। दोनो ओरसे घनघोर युद्ध हुआ। वज्रजंघ विजयी हुए और राजा पृथुने अपनी कनकमाला पुत्री अंकुशके लिए दे दी। विवाहके बाद दोनो वीर कुमारोंने दिग्विजय कर अनेक राजाओको अधीन किया। २४१–२४८

एक सौ दोवाँ पर्व

एक सौ तीनवाँ पर्व

एक सौ चारवाँ पर्व

एक सौ पाँचवाँ पर्व

एक सौ बाईसवाँ पर्व

राम तपश्चर्यामें लीन हैं। सीताका जीव अच्युत स्वर्गका प्रतीन्द्र जब अवधिज्ञानसे यह जानता है कि ये इसी भवसे मोक्ष जानेवाले हैं तब रामसे प्रेरित हो उन्हें विचलित करनेका प्रयत्न करता है। परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। महामुनि राम क्षपक श्रेणी प्राप्त कर केवली हो जाते हैं। ४०४–४०९

एक सौ तेईसवाँ पर्व

सीताका जीव नरकमें जाकर लक्ष्मणके जीवको सम्बोधता है। धर्मोपदेश देता है, उसके दुःखसे दुःखी होता है तथा उसे नरकसे निकालनेका प्रयत्न करता है परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ जाता है।. .नरकसे निकलकर सीतेन्द्र राम केवलीकी शरणमें जाता है और उनसे 'दशरथका जीव कहाँ उत्पन्न हुआ है? भामण्डलका क्या हाल है? लक्ष्मण तथा रावण आदिका आगे क्या हाल होगा?' यह सब पूछता है। राम केवली अपनी दिव्य ध्वनिके द्वारा उसका समाधान करते हैं। राम केवली निर्वाण प्राप्त करते हैं।...अन्तमें ग्रन्थकर्ता रविषेणाचार्य अपनी प्रशस्ति लिखते हैं। ४१०–४२५



श्रीमद्रविषेणाचार्यप्रणीतं

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षट्षष्टितमं पर्व

अथ [1]लक्ष्मीधरं स्वन्तं विशल्याचरितोचितम् । चारेभ्यो रावणः श्रुत्वा जज्ञे विस्मयमत्सरी ॥१॥
जगाद च स्मितं कृत्वा को दोष इति मन्दगी. । ततोऽगादि मृगाङ्काद्यैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रकोविदैः ॥२॥
यथार्थं भाष्यसे देव ! सुपथ्यं कुप्य तुष्य वा । परमार्थो हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभिः ॥३॥
सैंहगारुडविद्ये तु रामलक्ष्मणयोस्त्वया । दृष्टे यत्नाद्विना लब्धे पुण्यकर्मानुभावतः ॥४॥
बन्धनं कुम्भकर्णस्य दृष्टमात्मजयोस्तथा । शक्तेरनर्थकत्वं दिव्यायाः परमौजसः ॥५॥
संभाव्य संभव शत्रुस्त्वया जीयेत यद्यपि । तथापि भ्रातृपुत्राणां विनाशस्तव निश्चितः ॥६॥
इति ज्ञात्वा प्रसादं नः कुरु नाथाभियाचितः । अस्मदीयं हितं वाक्यं भग्नं पूर्वं न जातुचित् ॥७॥
त्यज सीतां भजात्मीयां धर्मबुद्धिं पुरातनीम् । कुशली जायतां लोकः सकलः पालितस्त्वया ॥८॥
राघवेण समं सन्धिं कुरु सुन्दरभाषितम् । एवं कृते न दोषोऽस्ति दृश्यते तु महागुणः ॥९॥
भवता परिपाल्यन्ते मर्यादा. सर्वविष्टपे । धर्माणां प्रभवस्त्वं हि रत्नानामिव सागर. ॥१०॥

अथानन्तर रावण, गुप्तचरोंके द्वारा विशल्याके चरितके अनुरूप लक्ष्मणका स्वस्थ होना आदि समाचार सुन आश्चर्य और ईर्ष्या दोनोसे सहित हुआ तथा मन्द हास्य कर धीमी आवाज-से बोला कि क्या हानि है ? तदनन्तर मन्त्र करनेमे निपुण मृगांक आदि मन्त्रियोने उससे कहा ॥१-२॥ कि हे देव ! यथार्थ एवं हितकारी बात आपसे कहता हूँ आप कुपित हो चाहे सन्तुष्ट। यथार्थमे सेवकोको निर्भीक होकर हितकारी उपदेश देना चाहिए ॥३॥ हे देव ! आप देख चुके हैं कि राम-लक्ष्मणको पुण्य कर्मके प्रभावसे यत्नके विना ही सिहवाहिनी और गरुड़वाहिनी विद्याएँ प्राप्त हो चुकी है ॥४॥ आपने यह भी देखा है कि उनके यहाँ भाई कुम्भकर्ण तथा दो पुत्र वन्धनमे पड़े हैं तथा परम तेजकी धारक दिव्य शक्ति व्यर्थ हो गयी है ॥५॥ सम्भव है कि यद्यपि आप शत्रुको जीत लें तथापि यह निश्चित समझिए कि आपके भाई तथा पुत्रोका विनाश अवश्य हो जायेगा ॥६॥ हे नाथ, हम सब याचना करते हैं कि आप यह जानकर हमपर प्रसाद करो—हम सबपर प्रसन्न होइए। आपने हमारे हितकारी वचनको पहले कभी भग्न नही किया ॥७॥ सीताको छोडो और अपनी पहले जैसी धर्मवुद्धिको धारण करो। तुम्हारे द्वारा पालित समस्त लोग कुशल-मंगलसे युक्त हो ॥८॥ रामके साथ सन्धि तथा मधुर वार्तालाप करो क्योंकि ऐसा करनेमे कोई हानि नही दिखाई देती अपितु बहुत लाभ ही दिखाई देता है ॥९॥ समस्त संसारकी मर्यादाएँ आपके ही द्वारा सुरक्षित है—आप ही सब मर्यादाओका पालन

---

१. लक्ष्मीवरस्वन्तं म. ।

इत्युक्त्वा प्रणता वृद्धाः शिरःस्थकरकुड्मलाः । उत्थाप्य संभ्रमाच्चैतांस्तथेत्यूचे दशाननः ॥११॥
मन्त्रविद्भिस्ततस्तुष्टैः संदिष्टोऽत्यन्तशोभनः । द्रुतं गमीकृतो दूतः सामन्तो नयकोविदः ॥१२॥
तं निमेषेङ्गिताकूतपरिबोधविचक्षणम् । रावणः संज्ञया स्वस्मै रुचितं द्रागजिग्रहत् ॥१३॥
दूतस्य मन्त्रिसंदिष्टं नितान्तमपि सुन्दरम् । महौषधं विषेणेव रावणार्थेन दूषितम् ॥१४॥
अथ शुक्रसमो बुद्ध्या महौजस्कः प्रतापवान् । कृतवाक्यो नृपैर्भूयः श्रुतिपेशलभाषणः ॥१५॥
प्रणम्य स्वामिनं तुष्टः सामन्तो गन्तुमुद्यतः । बुद्ध्यवष्टम्भतः पश्यन् लोकं गोष्पदसंमितम् ॥१६॥
गच्छतोऽस्य बलं भीमं नानाशस्त्रसमुज्ज्वलम् । बुद्ध्येव निर्मितं तस्य बभूव भयवर्जितम् ॥१७॥
तस्य तूर्यरवं श्रुत्वा क्षुब्धा वानरसैनिकाः । समीक्षांचक्रिरे भीता रावणागमशङ्किनः ॥१८॥
तस्मिन्नासन्नतां प्राप्ते पुरुषान्तरवेदिते । विश्रब्धतां पुनर्भेजे बलं प्लवगलक्षणम् ॥१९॥
दूतः प्राप्तो विदेहाज[1]प्रतीहारनिवेदितः । आप्तैः कतिपयैः साकं बाह्यावासितसैनिकः ॥२०॥
दृष्ट्वा पद्मं प्रणम्यासौ कृतदूतोचितक्रियः । जगौ क्षणमिव स्थित्वा वचनं क्रमसंगतम् ॥२१॥
पद्म ! मद्वचनैः स्वामी भवन्तमिति भाषते । श्रोत्रावधानदानेन प्रयत्नः क्रियतां क्षणम् ॥२२॥
यथा किल न युद्धेन किंचिदत्र प्रयोजनम् । बहवो हि क्षयं प्राप्ता नरा युद्धाभिमानिनः ॥२३॥

करते हैं। यथार्थमे जिस प्रकार समुद्र रत्नोकी उत्पत्तिका कारण है उसी प्रकार आप धर्मोकी उत्पत्तिके कारण हैं ॥१०॥ इतना कह वृद्ध मन्त्रीजनोने सिरपर अंजलि बाँध कर रावणको नमस्कार किया और रावणने शीघ्रतासे उन्हे उठाकर कहा कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही करूँगा ॥११॥

तदनन्तर मन्त्रके जाननेवाले मन्त्रियोने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त शोभायमान एवं नीतिनिपुण सामन्तको सन्देश देकर शीघ्र ही दूतके रूपमे भेजनेका निश्चय किया ॥१२॥ वह दूत दृष्टिके संकेतसे अभिप्रायके समझनेमें निपुण था इसलिए रावणने उसे संकेत द्वारा अपना रुचिकर सन्देश शीघ्र ही ग्रहण करा दिया—अपना सब भाव समझा दिया ॥१३॥ मन्त्रियोने दूतके लिए जो सन्देश दिया था वह यद्यपि बहुत सुन्दर था तथापि रावणके अभिप्रायने उसे इस प्रकार दूषित कर दिया जिस प्रकार कि विष किसी महौषधिको दूषित कर देता है ॥१४॥ तदनन्तर जो बुद्धिके द्वारा शुक्राचार्यके समान था, महा ओजस्वी था, प्रतापी था, राजा लोग जिसकी बात मानते थे और जो कर्णप्रिय भाषण करनेमे निपुण था, ऐसा सामन्त सन्तुष्ट हो स्वामीको प्रणाम कर जानेके लिए उद्यत हुआ। वह सामन्त अपनी बुद्धिके बलसे समस्त लोकको गोष्पदके समान तुच्छ देखता था ॥१५-१६॥ जब वह जाने लगा तब नाना शस्त्रोंसे देदीप्यमान एक भयंकर सेना जो उसकी बुद्धिसे ही मानो निर्मित थी, निर्भय हो उसके साथ हो गयी ॥१७॥

तदनन्तर दूतकी तुरहीका शब्द सुनकर वानर पक्षके सैनिक क्षुभित हो गये और रावणके आनेकी शंका करते हुए भयभीत हो आकाशकी ओर देखने लगे ॥१८॥ तदनन्तर वह दूत जब निकट आ गया और यह रावण नही किन्तु दूसरा पुरुष है, इस प्रकार समझमे आ गया तब वानरोंकी सेना पुनः निश्चिन्तताको प्राप्त हुई ॥१९॥ तदनन्तर भामण्डलरूपी द्वारपालने जिसकी खबर दी थी तथा डेरेके बाहर जिसने अपने सैनिक ठहरा दिये थे, ऐसा वह दूत कुछ आप्तजनोके साथ भीतर पहुँचा ॥२०॥ वहाँ उसने रामके दर्शन कर उन्हे प्रणाम किया। दूतके योग्य सब कार्य किये। तदनन्तर क्षण-भर ठहरकर क्रमपूर्ण निम्नांकित वचन कहे ॥२१॥ उसने कहा कि हे पद्म! मेरे वचनों द्वारा स्वामी रावण, आपसे इस प्रकार कहते हैं सो आप कर्णोको एकाग्र कर क्षण-भर श्रवण करनेका प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ वे कहते हैं कि मुझे इस विषयमे युद्धसे कुछ भी प्रयोजन

[1] विदेहाज. म., ज ।

प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षयः । असिद्धिश्च महान् दोषः सापवादाश्च सिद्धयः ॥२४॥
दुर्वृत्तो नरकः शङ्खो धवलाङ्गोऽसुरस्तथा । निधनं[1] शम्बराद्याश्च संग्रामश्रद्धया गताः ॥२५॥
प्रीतिरेव मया सार्द्धं भवते नितरां हिता । ननु सिंहो गुहां प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी ॥२६॥
महेन्द्रदमनो येन समरेऽमरभीषण । सुन्दरीजनसामान्य वन्दीगृहमुपाहृतः ॥२७॥
पाताले भूतले व्योम्नि गतिर्यस्येच्छया कृता । सुरासुरैरपि क्रुद्धैः प्रतिहन्तुं न शक्यते ॥२८॥
नानानेकमहायुद्धवीरलक्ष्मीस्वयग्रही । सोऽहं दशाननो जातु भवता किं तु न श्रुतः ॥२९॥
सागरान्तां महीमेतां विद्याधरसमन्विताम् । लङ्कां भागद्वयोपेतां राजन्नेष ददामि ते ॥३०॥
अद्य मे सोदरं प्रेष्य[2] तनयौ च सुमानसः । अनुमन्यस्व[3] सीतां च ततः क्षेमं भविष्यति ॥३१॥
न चेदेवं[4] करोषि त्वं ततस्ते कुशलं कुतः । एतौ३च समरे बद्धानानेष्यामि बलादहम् ॥३२॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचद्य मे राज्येन कारणम् । न चान्यप्रमदाजेन भोगेन महतापि हि ॥३३॥
एष प्रेष्यामि ते पुत्रौ भ्रातरं च दशानन । संप्राप्य परमां पूजां सीता प्रेष्यसि मे यदि ॥३४॥
एतया सहितोऽरण्ये मृगसामान्यगोचरे । यथासुखं भ्रमिष्यामि महीं त्वं भुङ्क्ष्व पुष्कलाम् ॥३५॥
गत्वैवं ब्रूहि दूत त्वं तं लङ्कापरमेश्वरम् । एतदेव हि पथ्यं ते कर्तव्यं नान्यथाविधम् ॥३६॥
सर्वैः प्रपूजितं श्रुत्वा पद्मनाभस्य तद्वचः । सौष्ठवेन समायुक्तं सामन्तो वचनं जगौ ॥३७॥
न वेत्सि नृपते[5] कार्यं बहुकल्याणकारणम् । यदुल्लङ्घ्य याम्बुधिं भीममागतोऽसि भयोज्झितः ॥३८॥

नहीं है क्योकि युद्धका अभिमान करनेवाले बहुतसे मनुष्य क्षयको प्राप्त हो चुके हैं ॥२३॥ कार्यकी उत्तम सिद्धि प्रीतिसे ही होती है, युद्धसे तो केवल नरसंहार ही होता है, युद्धमे यदि सफलता नही मिली तो यह सबसे बड़ा दोष है और यदि सफलता मिलती भी है तो अनेक अपवादोसे सहित मिलती है ॥२४॥ पहले युद्धकी श्रद्धासे दुर्वृत्त, नरक, शंख, धवलांग तथा शम्बर आदि राजा विनाशको प्राप्त हो चुके हैं ॥२५॥ हमारे साथ प्रीति करना ही आपके लिए अत्यन्त हितकारी है, यथार्थमे सिंह महापर्वतकी गुफा पाकर ही सुखी होता है ॥२६॥ युद्धमे देवोको भय उत्पन्न करनेवाले राजा इन्द्रको जिसने सामान्य स्त्रियोके योग्य वन्दीगृहमे भेजा था ॥२७॥ पाताल, पृथिवीतल तथा आकाशमे स्वेच्छासे की हुई जिसकी गतिको, कुपित हुए सुर और असुर भी खण्डित करनेके लिए समर्थ नही है ॥२८॥ नाना प्रकारके अनेक महायुद्धोमे वीर लक्ष्मीको स्वयं ग्रहण करनेवाला मैं रावण क्या कभी आपके सुननेमे नही आया ॥२९॥ हे राजन्! मैं विद्याधरोसे सहित यह समुद्र पर्यन्तकी समस्त पृथिवी और लंकाके दो भाग कर एक भाग तुम्हारे लिए देता हूँ ॥३०॥ तुम आज अच्छे हृदयसे मेरे भाई तथा पुत्रोंको भेजकर सीता देना स्वीकृत करो, उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥३१॥ यदि तुम ऐसा नही करते हो तो तुम्हारी कुशलता कैसे हो सकती है? क्योकि सीता तो हमारे पास है ही और युद्धमे बांधे हुए भाई तथा पुत्रोको हम बलपूर्वक छीन लावेंगे ॥३२॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि मुझे राज्यसे प्रयोजन नही है और न अन्य स्त्रियो तथा बड़े-बड़े भोगोसे मतलब है ॥३३॥ यदि तुम परम सत्कारके साथ सीताको भेजते हो तो हे दशानन! मै तुम्हारे भाई और दोनो पुत्रोको अभी भेज देता हूँ ॥३४॥ मै इस सीताके साथ मृगादि जन्तुओके स्थानभूत वनमे सुखपूर्वक भ्रमण करूँगा और तुम समग्र पृथिवीका उपभोग करो ॥३५॥ हे दूत! तू जाकर लकाके धनीसे इस प्रकार कह दे कि यही कार्य तेरे लिए हितकारी है, अन्य कार्य नही ॥३६॥ सबके द्वारा पूजित तथा सुन्दरतासे युक्त रामके वे वचन सुन सामन्त दूत इस प्रकार बोला कि ॥३७॥ हे राजन्! यतश्च तुम भयंकर समुद्रको लाँघकर निर्भय हो यहाँ आये हो इससे

---

1. निधान म । 2. प्रेष्य म, । 3. अनुमन्यस्य म. । 4. न चेद म. । 5. नृपते म ।

न शोभना नितान्तं ते प्रत्याशा जानकीं प्रति । [1]लङ्केन्द्रे संगते कोपं त्यजाशामपि जीविते ॥३९॥
नरेण सर्वथा स्वस्य कर्तव्यं बुद्धिशालिना । रक्षणं सततं यत्नाद्दारैरपि धनैरपि ॥४०॥
प्रेषितं तार्क्ष्यनाथेन यदि वाहनयुग्मकम् । यदि वा छिद्रतो बद्धा मम पुत्रसहोदराः ॥४१॥
तथापि नाम कोऽस्मिन् गर्वस्तव समुद्यतः । नैतावता कृतित्वं ते मयि जीवति जायते ॥४२॥
विग्रहे कुर्वतो यत्नं न ते सीता न जीवितम् । मा भूरुभयतो भ्रष्टस्त्यज सीतानुबन्धिताम् ॥४३॥
[2]लब्धवर्णाः समस्तेषु शास्त्रेषु परमेश्वराः । सुरेन्द्रप्रतिमा नीताः खेचरा निधनं मया ॥४४॥
पश्याष्टापदकूटाभानिमान् कैकससंचयान् । उपेयुषां क्षयं राज्ञां मदीयभुजवीर्यतः ॥४५॥
इति प्रभाषिते दूते क्रोधतो जनकात्मजः । जगाद विस्फुरद्वक्त्र[3]ज्योतिर्ज्वलितपुष्करः ॥४६॥
आः पाप दूत गोमायो ! वाक्यसंस्कारकूटक । दुर्बुद्धे भाषसे व्यर्थं किमित्येवमशङ्कितः ॥४७॥
सीतां प्रति कथा केयं पद्माविक्षेपमेव वा । को नाम रावणो रक्षः पशुः कुत्सितचेष्टितः ॥४८॥
इत्युक्त्वा सायकं यावज्जग्राह जनकात्मजः । कैकयीसूनुना तावद्रुद्धो नयचक्षुषा ॥४९॥
रक्तोत्पलदलच्छाये नेत्रे जनकजन्मनः । कोपेन दूषिते जाते संध्याकारानुहारिणी ॥५०॥
स्वैरं स मन्त्रिभिर्नीतः [4]शमं साधूपदेशतः । मन्त्रेणेव महासर्पः स्फुरद्विषकणद्युतिः ॥५१॥
नरेन्द्र ! त्यज संरम्भं समुद्भूतमगोचरे । अनेन [5]मारितेनापि कोऽर्थः प्रेषणकारिणा ॥५२॥

जान पड़ता है कि तुम बहुकल्याणकारी कार्यको नहीं जानते हो ॥३८॥ सीताके प्रति तुम्हारी आशा बिलकुल ही अच्छी नहीं है। अथवा सीताकी बात दूर रही, रावणके कुपित होनेपर अपने जीवनकी भी आशा छोड़ो ॥३९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको अपने आपकी रक्षा सदा स्त्रियों और धनके द्वारा भी सब प्रकारसे करना चाहिए ॥४०॥ यदि गरुडेन्द्रने तुम्हें दो वाहन भेज दिये हैं अथवा छलपूर्वक तुमने मेरे पुत्रों और भाईको बाँध लिया है तो इतनेसे तुम्हारा यह कौन-सा बड़ा-चढ़ा अहंकार है ? क्योंकि मेरे जीवित रहते हुए इतने मात्रसे तुम्हारी कृतकृत्यता नहीं हो जाती ॥४१–४२॥ युद्ध में यत्न करनेपर न सीता तुम्हारे हाथ लगेगी और न तुम्हारा जीवन ही शेष रह जायेगा। इसलिए दोनों ओरसे भ्रष्ट न होओ, सीता सम्बन्धी हठ छोड़ो ॥४३॥ समस्त शास्त्रोंमें निपुण इन्द्र-जैसे बड़े-बड़े विद्याधर राजाओंको मैंने मृत्यु प्राप्त करा दी है ॥४४॥ मेरी भुजाओंके बलसे क्षयको प्राप्त हुए राजाओंके जो ये कैलासके शिखरके समान हड्डियोंके ढेर लगे हुए हैं, इन्हें देखो ॥४५॥

इस प्रकार दूतके कहनेपर, मुखकी देदीप्यमान ज्योतिसे आकाशको प्रज्वलित करता हुआ भामण्डल क्रोधसे बोला कि अरे पापी ! दूत ! शृगाल ! बातें बनानेमें निपुण ! दुर्बुद्धे ! इस तरह व्यर्थ ही निःशंक हो क्यों बके जा रहा है ॥४६-४७॥ सीताकी तो चर्चा ही क्या है ? रामकी निन्दा करनेके विषयमें नीच चेष्टाका धारी पशुके समान नीच राक्षस रावण है ही कौन ? ॥४८॥ इतना कहकर ज्योंही भामण्डलने तलवार उठायी त्योंही नीतिरूपी नेत्रके धारक लक्ष्मणने उसे रोक लिया ॥४९॥ भामण्डलके जो नेत्र लाल कमलदलके समान थे वे क्रोधसे दूषित हो सन्ध्याका आकार धारण करते हुए दूषित हो गये—सन्ध्याके समान लाल-लाल दिखने लगे ॥५०॥ तदनन्तर जिस प्रकार विषकणोंकी कान्तिको प्रकट करनेवाला महासर्प मन्त्रके द्वारा शान्त किया जाता है उसी प्रकार वह भामण्डल मन्त्रियोंके द्वारा उत्तम उपदेशसे धीरे-धीरे शान्तिको प्राप्त कराया गया ॥५१॥ मन्त्रियोंने कहा कि हे राजन् ! अयोग्य विषयमें प्रकट हुए क्रोधको छोड़ो। इस दूतको यदि मार भी डाला तो इससे कौन-सा प्रयोजन

---

१. लङ्केन्द्रसंगते म. । २. लब्धवर्णः म. । ३. वक्त्र म. । ४. सम म. । ५. महितेनापि म. ।

प्रावृषेण्यघनाकारगजमर्दनपण्डितः । [1]नाखौ संक्षोभमायाति सिंहः प्रचलकेसरः ॥५३॥
प्रतिशब्देषु कः कोपः छायापुरुषकेऽपि वा । तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रबिम्बेषु वा सताम् ॥५४॥
लक्ष्मणेनैवमुक्तोऽसौ शान्तोऽभूज्जनकात्मजः । अभ्यधाच्च पुनर्दूतः पद्मं साध्वसवर्जितः ॥५५॥
सचिवापसदैर्भूयः संप्रमूढैस्त्वमीदृशैः । संयोज्यसे दुरुद्योगै. संशये दुर्विदग्धकैः ॥५६॥
[2]प्रतार्यमाणमात्मानं प्रबुद्धयस्व त्वमेतकैः । निरूपय हितं स्वस्य स्वयं बुद्धया प्रवीणया ॥५७॥
त्यज सीतासमासंगं भवेन्द्रः सर्वविष्टपे । भ्रम पुष्पकमारूढो यथेष्टं विभवान्वित. ॥५८॥
मिथ्याग्रहं विमुञ्चस्व मा श्रौषीः क्षुद्रभाषितम् । करणीये मनो दत्स्व भृशमेधि महासुखम् ॥५९॥
क्षुद्रस्योत्तरमेतस्य को ददातीति जानके[3] । तूष्णीं स्थितेऽथ दूतोऽसावन्यैर्निर्भर्त्सित परम् ॥६०॥
स विद्धो वाक्शरैस्तीक्ष्णैरसत्कारमलं श्रितः । जगाम स्वामिनः पार्श्वं मनस्यत्यन्तपीडितः ॥६१॥
स उवाच तवादेशान्नाथ रामो मयोदित. । क्रमेण नयविन्यासकारिणा त्वत्प्रभावतः ॥६२॥
नानाजनपदाकीर्णामाकूपारनिवारिताम् । बहुरत्नाकरां क्षोणीं[4] विद्याभृत्यसमन्विताम्[5] ॥६३॥
ददामि ते महानागांस्तुरगांश्च रथांस्तथा । कामगं पुष्पकं यानमप्रधृष्यं सुरैरपि ॥६४॥

सिद्ध होनेवाला है ? ॥५२॥ वर्षाऋतुके मेघके समान विशाल हाथियोके नष्ट करनेमे निपुण चंचल केसरोवाला सिंह चूहेपर क्षोभको प्राप्त नही होता ॥५३॥ प्रतिध्वनियोपर, लकड़ी आदिके बने पुरुषाकार पुतलोपर, सुआ आदि तिर्यंचोपर और यन्त्रसे चलनेवाली मनुष्याकार पुतलियो-पर सत्पुरुषोका क्या क्रोध करना है ? अर्थात् इस दूतके शब्द निजके शब्द नही हैं ये तो रावणके शब्दोकी मानो प्रतिध्वनि ही है। यह दीन पुरुष नही है, पुरुष तो रावण हैं और यह उसका आकार मात्र पुतला है, जिस प्रकार सुआ आदि पक्षियोको जैसा पढ़ा दो वैसा पढ़ने लगता है इसी प्रकार इस दूतको रावणने जैसा पढ़ा दिया वैसा पढ रहा है और कठपुतली जिस प्रकार स्वयं चेष्टा नही करती उसी प्रकार यह भी स्वयं चेष्टा नही करता—मालिककी इच्छानुसार चेष्टा कर रहा है अत. इसके ऊपर क्या क्रोध करना है ? ॥५४॥ इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर भामण्डल शान्त हो गया। तदनन्तर निर्भय हो उस दूतने रामसे पुनः कहा कि ॥५५॥ तुम इस प्रकार मूर्ख नीच मन्त्रियोके द्वारा अविवेकपूर्ण दुष्प्रवृत्तियोसे सशयमे डाले जा रहे हो अर्थात् खेद है कि तुम इन मन्त्रियोकी प्रेरणासे व्यर्थ ही अविचारितरम्य प्रवृत्ति कर अपने आपको सशय-मे डाल रहे हो ॥५६॥ तुम इनके द्वारा छले जानेवाले अपने आपको समझो और स्वयं अपनी निपुण बुद्धिसे अपने हितका विचार करो ॥५७॥ सीताका समागम छोड़ो, समस्त लोकके स्वामी होओ, और वैभवके साथ पुष्पक विमानमे आरूढ़ हो इच्छानुसार भ्रमण करो ॥५८॥ मिथ्या हठको छोड़ो, क्षुद्र मनुष्योका कथन मत सुनो, करने योग्य कार्यमे मन लगाओ और इस तरह महासुखी होओ ॥५९॥ तदनन्तर इस क्षुद्रका उत्तर कौन देता है ? यह सोचकर भामण्डल तो चुप बैठा रहा परन्तु अन्य लोगोने उस दूतका अत्यधिक तिरस्कार किया—उसे खूब धौंस दिखायी ॥६०॥

अथानन्तर वचनरूपी तीक्ष्ण बाणोसे बिंधा और परम असत्कारको प्राप्त हुआ वह दूत मनमे अत्यन्त पीड़ित होता हुआ स्वामीके समीप गया ॥६१॥ वहाँ जाकर उसने कहा कि हे नाथ ! आपका आदेश पा आपके प्रभावसे नय-विन्याससे युक्त पद्धतिसे मैंने रामसे कहा कि मै नाना देशोसे युक्त, अनेक रत्नोकी खानोसे सहित तथा विद्याधरोसे समन्वित समुद्रान्त पृथिवी, बड़े-बड़े हाथी, घोड़े, रथ, देव भी जिसका तिरस्कार नही कर सकते ऐसा पुष्पक विमान, अपने-

---

१ नासौ म , नखौ ज । २ प्रतीर्यमाण-म । ३ जनकस्यापत्य पुमान् जानक तस्मिन् भामण्डले इत्यर्थ । ४ क्षीणां म । ५. विद्याभृत्पृतनान्विताम् म ।

सुग्रीव ! पद्मगर्वेण नूनं त्वं मर्तुमिच्छसि । अधिक्षिपसि यत् क्रुद्धं[1] विद्याधरमहेश्वरम् ॥८०॥
ऊचे विराधितश्च त्वां यथा ते शक्तिरस्ति चेत् । आगच्छतु ममैकस्य युद्धं यच्छ किमास्यते ॥८१॥
उक्तो दाशरथिर्भूयो मया राम ! रणाजिरे । रावणस्य न किं दृष्टस्त्वया परमविक्रमः ॥८२॥
यतः क्षमान्वितं वीरं राजखद्योतभास्करम् । सामप्रयोगमिच्छन्तं भवत्पुण्यानुभावतः ॥८३॥
वदान्यं त्रिजगत्ख्यातप्रतापं प्रणतप्रियम् । नेतुमिच्छसि संक्षोभं कैलासक्षोभकारिणम् ॥८४॥
चण्डसैन्योर्मिमालाढ्यं शस्त्रयादोगणाकुलम् । तर्तुमिच्छसि किं दोर्भ्यां दशग्रीवमहार्णवम् ॥८५॥
ययुद्विपमहाव्यालां पदातिद्रुमसंकटाम् । विवक्षसि कथं दुर्गां दशग्रीवमहाटवीम् ॥८६॥

वंशस्थवृत्तम्

न पद्म वातेन सुमेरुरुह्यते न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः ।
गवेन्द्रशृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते त्वत्सदृशैर्दशाननः ॥८७॥

उपजातिः

इति प्रचण्डं मयि भाषमाणे भामण्डलः क्रोधकषायनेत्रः ।
यावत् समाकर्षदसिं प्रदीप्तं तावत् सुमित्रातनयेन रुद्धः ॥८८॥
प्रसीद वैदेह ! विमुञ्च कोपं न जम्बुके कोपमुपैति सिंहः ।
गजेन्द्रकुम्भस्थलदारणेन क्रीडां स मुक्तानिकरैः[2] करोति ॥८९॥
नरेश्वरा ऊर्जितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजं प्रहरन्ति जातु ।
न ब्राह्मणं न श्रमणं न शून्यं स्त्रियं न बालं न पशुं न दूतम् ॥९०॥

था, ऐसे मैंने उस सुग्रीवको इस प्रकार धौंसा जिस प्रकार कि श्वान हाथीको धौंसता है ॥७९॥ मैंने कहा कि अरे सुग्रीव ! जान पड़ता है कि तू रामके गर्वसे मरना चाहता है, जो कुपित हुए विद्याधरोंके अधिपतिकी निन्दा कर रहा है ॥८०॥ हे नाथ ! विराधितने भी आपसे कहा है कि यदि तेरी शक्ति है तो आ, मुझ एकके लिए ही युद्ध प्रदान कर। बैठा क्यों है ? ॥८१॥ मैंने रामसे पुनः कहा कि हे राम ! क्या तुमने रणांगणमें रावणका परम पराक्रम नहीं देखा है ? ॥८२॥ जिससे कि तुम उसे क्षोभको प्राप्त कराना चाहते हो। जो राजारूपी जुगनुओंको दबानेके लिए सूर्यके समान है, वीर है और तीनों जगत्में जिसका प्रताप प्रख्यात है, ऐसा रावण, इस समय आपके पुण्य प्रभावसे क्षमायुक्त है। साम—शान्तिका प्रयोग करनेका इच्छुक है, उदार-त्यागी है, एवं नम्र मनुष्योंसे प्रेम करनेवाला है ॥८३–८४॥ जो बलवान् सेनारूपी तरंगोंकी मालासे युक्त है तथा शस्त्ररूपी जल-जन्तुओंके समूहसे सहित है ऐसे रावणरूपी समुद्रको तुम क्या दो भुजाओंसे तैरना चाहते हो ? ॥८५॥ घोड़े और हाथी ही जिसमें हिंसक जानवर हैं तथा जो पैदल सैनिक-रूपी वृक्षोंसे संकीर्ण हैं ऐसी दुर्गम रावणरूपी अटवीमें तुम क्यों घुसना चाहते हो ? ॥८६॥ मैंने कहा कि हे पद्म ! वायुके द्वारा सुमेरु नहीं उठाया जाता, सूर्यकी किरणोंसे समुद्र नहीं सूखता, बैलकी सींगोंसे पृथिवी नहीं काँपती और तुम्हारे जैसे लोगोंसे दशानन नहीं जीता जाता ॥८७॥ इस प्रकार क्रोधपूर्वक मेरे कहनेपर क्रोधसे लाल-लाल नेत्र दिखाता हुआ भामण्डल जबतक चमकती तलवार खींचता है तबतक लक्ष्मणने उसे मना कर दिया ॥८८॥ लक्ष्मणने भामण्डलसे कहा कि हे विदेहासुत ! क्रोध छोड़ो, सिंह सियारपर क्रोध नहीं करता, वह तो हाथीका गण्डस्थल चीरकर मोतियोंके समूहसे क्रीड़ा करता है ॥८९॥ जो राजा अतिशय बलिष्ठ शूरवीरोंकी चेष्टाको धारण करनेवाले हैं वे कभी न भयभीतपर, न ब्राह्मणपर, न मुनिपर, न निहत्थेपर,

१. क्षुद्र म । २. मुक्त्वा निकरै म ।

इत्यादिभिर्वादनिवहैः सुयुक्तैर्यदा स लक्ष्मीधरपण्डितेन ।
नीतः प्रबोधं शनकैरमुञ्चत् क्रोधं तथा दुःसहदीप्तिचक्रः ॥९१॥
निर्भत्सितः क्रूरकुमारचक्रैः वाक्यैरलं वज्रनिपाततुल्यैः ।
अपूर्वहेतुप्रलघूकृतात्मा [1]स्वं मन्यमानः [2]तृणतोऽप्यसारम् ॥९२॥
नभः समुत्पत्य भयार्दितोऽहं त्वत्पादमूलं पुनरागतोऽयम् ।
लक्ष्मीधरोऽसौ यदि नाभविष्यद्वैदेहतो देव ! ततोऽमरिष्यम् ॥९३॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

इति गदितमिदं यथानुभूतं रिपुचरितं तव देव ! निर्विशङ्कम् ।
कुरु यदुचितमत्र सांप्रतं ते वचनकरा हि भवन्ति मद्विधास्तु ॥९४॥
बहु विदितमलं सुशास्त्रजालं नयविषयेषु सुमन्त्रिणोऽभियुक्ताः ।
अखिलमिदमुपैति मोहभावं पुरुषरवौ घनमोहमेघरुद्धे ॥९५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणदूतागमागमाभिधानं नाम षट्षष्टितम पर्व ॥६६॥



न स्त्रीपर, न बालकपर, न पशुपर और न दूतपर प्रहार करते हैं ॥९०॥ इस प्रकार युक्तियुक्त वचनोंसे जब लक्ष्मणरूपी पण्डितने उसे समझाया तब कहीं दुःसह दीप्तिचक्रको धारण करनेवाले भामण्डलने धीरे-धीरे क्रोध छोड़ा ॥९१॥ तदनन्तर दुष्टता-भरे अन्य कुमारोंने वज्रप्रहारके समान क्रूर वचनोंसे जिसका अत्यधिक तिरस्कार किया तथा अपूर्व कारणोंसे जिसकी आत्मा अत्यन्त लघु हो रही थी, ऐसा मैं अपने आपको तृणसे अधिक निःसार मानता हुआ भयसे दुःखी हो आकाशमें उड़कर आपके पादमूलमें पुनः आया हूँ। हे देव ! यदि लक्ष्मण नहीं होता तो मैं आज अवश्य ही भामण्डलसे मारा जाता ॥९२-९३॥ हे देव ! इस प्रकार मैंने शत्रुके चरित्रका जैसा कुछ अनुभव किया है वह निःशंक होकर आपसे निवेदन किया है। अब इस विषयमें जो कुछ उचित हो सो करो क्योंकि हमारे जैसे पुरुष तो केवल आज्ञा पालन करनेवाले होते हैं ॥९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्हें अनेक शास्त्रोंके समूह अच्छी तरह विदित हैं, जो नीतिके विषयमें सदा उद्यत रहते हैं तथा जिनके समीप अच्छे-अच्छे मन्त्री विद्यमान रहते हैं ऐसे मनुष्य भी पुरुषरूपी सूर्यके मोहरूपी सघन मेघसे आच्छादित हो जानेपर मोहभावको प्राप्त हो जाते हैं ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके दूतका रामके पास जाने और वहाँसे आनेका वर्णन करनेवाला छियासठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६६॥



---

१. स्वमन्यमानः म. । २. भृगुतो-म. ।

सप्तषष्टितमं पर्व

स्वदूतवचनं श्रुत्वा राक्षसानामधीश्वरः । क्षणं संमन्त्रणं कृत्वा मन्त्रज्ञैः सह मन्त्रिभिः ॥१॥
कृत्वा पाणितले गण्डं कुण्डलालोकभासुरम् । अधोमुखः स्थित. किंचिदिति चिन्तामुपागतः ॥२॥
नागेन्द्रवृन्दसंघट्टे[1] युद्धे शत्रुं जयामि चेत् । तथा सति कुमाराणां प्रमादः परिदृश्यते ॥३॥
सुप्ते शत्रुबले दत्त्वा समास्कन्दमवेदितः । आनयामि कुमारान् किं किं करोमि कथ शिवम् ॥४॥
इति चिन्तयतस्तस्य मगधेश्वर शेमुषी । इयं समुद्गता जातो यया सुखितमानस. ॥५॥
साधयामि महाविद्यां बहुरूपामिति श्रुताम् । प्रतिव्यूहितुमुद्युक्तैरशक्यां त्रिदशैरपि ॥६॥
इति ध्यात्वा समाहूय किङ्करानशिषद् द्रुतम् । कुरुध्वं शान्तिगेहस्य शोभां सत्तोरणादिभिः ॥७॥
पूजां च सर्वचैत्येषु सर्वसंस्कारयोगिषु । सर्वश्चायं भरो न्यस्तो मन्दोदर्यां[2] सुचेतसि ॥८॥
विंशस्य देवदेवस्य वन्दितस्य सुरासुरैः । मुनिसुव्रतनाथस्य तस्मिन् काले महोदये ॥९॥
सर्वत्र भरतक्षेत्रे सुविस्तीर्णे महायते । अर्हच्चैत्यैरियं पुण्यैर्वसुधासीदलङ्कृता ॥१०॥
राष्ट्राधिपतिभिर्भूपैः श्रेष्ठिभिर्ग्रामभोगिभिः । उत्थापितास्तदा जैनाः प्रासादाः पृथुतेजसः ॥११॥
अधिष्ठिता भृशं भक्तियुक्तैः शासनदैवतैः । सद्धर्मपक्षसंरक्षाप्रवणैः शुभकारिभिः ॥१२॥
सदा जनपदैः स्फीतै. कृताभिषवपूजनाः । रेजुः स्वर्गविमानाभा भव्यलोकनिषेविताः ॥१३॥
पर्वते पर्वते चारौ ग्रामे ग्रामे वने वने । पत्तने पत्तने राजन् हर्म्ये हर्म्ये पुरे पुरे ॥१४॥

अथानन्तर राक्षसोका अधीश्वर रावण अपने दूतके वचन सुनकर क्षणभर मन्त्रके जानकार मन्त्रियोके साथ मन्त्रणा करता रहा। तदनन्तर कुण्डलोके आलोकसे देदीप्यमान गण्डस्थलको हथेलीपर रख अधोमुख बैठ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि ॥१-२॥ यदि हस्तिसमूहके संघट्टसे युक्त युद्धमे शत्रुओको जीतता हूँ तो ऐसा करनेसे कुमारोंकी हानि दिखाई देती है ॥३॥ इसलिए जब शत्रुसमूह सो जावे तब अज्ञात रूपसे धावा देकर कुमारोको वापस ले आऊँ? अथवा क्या करूँ? क्या करनेसे कल्याण होगा? ॥४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर! इस प्रकार विचार करते हुए उसे यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि उसका हृदय प्रसन्न हो गया ॥५॥ उसने विचार किया कि मै बहुरूपिणी नामसे प्रसिद्ध वह विद्या सिद्ध करता हूँ कि जिसमे सदा तत्पर रहनेवाले देव भी विघ्न उत्पन्न नही कर सकते ॥६॥ ऐसा विचार कर उसने शीघ्र ही किंकरोको बुला आदेश दिया कि शान्तिजिनालयकी उत्तम तोरण आदिसे सजावट करो ॥७॥ तथा सब प्रकारके उपकरणोसे युक्त सर्वमन्दिरोमे जिनभगवान्की पूजा करो। किंकरोको ऐसा आदेश दे उसने पूजाकी व्यवस्थाका सब भार उत्तम चित्तकी धारक मन्दोदरीके ऊपर रखा ॥८॥ गौतम स्वामी कहते है कि वह सुर और असुरो द्वारा वन्दित बीसवे मुनिसुव्रत भगवान्का महाभ्युदयकारी समय था। उस समय लम्बे-चौड़े समस्त भरत क्षेत्रमे यह पृथ्वी अर्हन्तभगवान्की पवित्र प्रतिमाओसे अलंकृत थी ॥९-१०॥ देशके अधिपति राजाओ तथा गाँवोका उपभोग करनेवाले सेठोके द्वारा जगह-जगह देदीप्यमान जिन-मन्दिर खडे किये गये थे ॥११॥ वे मन्दिर, समीचीन धर्मके पक्षकी रक्षा करनेमे निपुण, कल्याणकारी, भक्तियुक्त शासनदेवोसे अधिष्ठित थे ॥१२॥ देशवासी लोग सदा वैभवके साथ जिनमे अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्य जीव सदा जिनकी आराधना करते थे, ऐसे वे जिनालय स्वर्गके विमानोके समान सुशोभित होते थे ॥१३॥ हे राजन्!

---

१ वृद्ध म । २ स्वचेतसि म. ।

सङ्गमे सङ्गमे रम्ये चत्वरे चत्वरे पृथौ । बभूवुश्चैत्यसंघाता महाशोभासमन्विताः ॥१५॥
शरच्चन्द्रसितच्छायाः संगीतध्वनिहारिणः । नानातूर्यस्वनोद्भूतक्षुब्धसिन्धुसमस्वनाः ॥१६॥
त्रिसंध्यं वन्दनोद्युक्तैः साधुसंघैः समाकुलाः[1] । गम्भीरा विविधाचार्याश्चित्रपुष्पोपशोभिताः ॥१७॥
विभूत्या परया युक्ता नानावर्णमणित्विषः । सुविस्तीर्णाः समुत्तुङ्गा महाध्वजविराजिताः ॥१८॥
जिनेन्द्रप्रतिमास्तेषु हेमरूप्यादिमूर्तयः । पञ्चवर्णा भृशं रेजुः परिवारसमन्विताः ॥१९॥
पुरे च खेचराणां च स्थाने स्थानेऽतिचारुभिः । जिनप्रासादसत्कूटैर्विजयार्द्धगिरिर्वरः ॥२०॥
नानारत्नमयैः कान्तैरुद्यानादिविभूषितैः । व्याप्तं जगदिदं रेजे जिनेन्द्रभवनैः शुभैः ॥२१॥
महेन्द्रनगराकारा लङ्काप्येवं मनोहरा । अन्तर्बहिश्च जैनेन्द्रैर्भवनैः पापहारिभिः ॥२२॥
यथाष्टादशसंख्यानां सहस्राणां सुयोषिताम् । पद्मिनीनां सहस्रांशुः स चिक्रीड दशाननः ॥२३॥
प्रावृण्मेघदलच्छायो नागनासामहाभुजः । पूर्णेन्दुवदनः कान्तो बन्धूकच्छदनाधरः ॥२४॥
विशालनयनो नारीमनःकर्षणविभ्रमः । लक्ष्मीधरसमाकारो दिव्यरूपसमन्वितः ॥२५॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

तस्मिन्नाश्रितसर्वलोकनयने प्रासादमालावृते
नानारत्नमये दशाननगृहे चैत्यालयोद्भासिते ।
हेमस्तम्भसहस्रशोभि विपुलं मध्ये स्थितं भासुरं
तुङ्गं शान्तिगृहं स यत्र भगवान् शान्तिर्जिनः स्थापितः ॥२६॥

उस समय पर्वत-पर्वतपर, अतिशय सुन्दर गाँव-गाँवमे, वन-वनमे, पत्तन-पत्तनमे, महल-महलमे, नगर-नगरमे, संगम-संगममे, तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे-चौराहेपर महाशोभासे युक्त जिनमन्दिर बने हुए थे ॥१४–१५॥ वे मन्दिर शरदृतुके चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त थे, संगीतकी ध्वनिसे मनोहर थे, तथा नाना वादित्रोके शब्दसे उनमे क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान शब्द हो रहे थे ॥१६॥ वे मन्दिर तीनो सन्ध्याओंमे वन्दनाके लिए उद्यत साधुओंके समूहसे व्याप्त रहते थे, गम्भीर थे, नाना आचार्योंसे सहित थे और विविध प्रकारके पुष्पोके उपहारसे सुशोभित थे ॥१७॥ परम विभूतिसे युक्त थे, नाना रंगके मणियोकी कान्तिसे जगमगा रहे थे, अत्यन्त विस्तृत थे, ऊँचे थे और बड़ी-बड़ी ध्वजाओसे सहित थे ॥१८॥ उन मन्दिरोंमे सुवर्ण, चाँदी आदिकी बनी छत्रत्रय चमरादि परिवारसे सहित पाँच वर्णकी जिन-प्रतिमाएँ अत्यन्त सुशोभित थी ॥१९॥ विद्याधरोके नगरमें स्थान-स्थानपर बने हुए अत्यन्त सुन्दर जिनमन्दिरोके शिखरोसे विजयार्ध पर्वत उत्कृष्ट हो रहा था ॥२०॥ इस प्रकार यह समस्त ससार बाग-बगीचोंसे सुशोभित, नानारत्नमयी, शुभ और सुन्दर जिनमन्दिरोसे व्याप्त हुआ अत्यधिक सुशोभित था ॥२१॥ इन्द्रके नगरके समान वह लंका भी भीतर और बाहर बने हुए पापापहारी जिनमन्दिरोसे अत्यन्त मनोहर थी ॥२२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि वर्षाऋतुके मेघसमूहके समान जिसकी कान्ति थी, हाथीकी सूँड़के समान जिसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ थी, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, दुपहरियाके फूलके समान जिसके लाल-लाल ओठ थे, जो स्वयं सुन्दर था, जिसके बड़े-बड़े नेत्र थे, जिसकी चेष्टाएँ स्त्रियोके मनको आकृष्ट करनेवाली थी, लक्ष्मीधर लक्ष्मणके समान जिसका आकार था और जो दिव्यरूपसे सहित था, ऐसा दशानन, कमलिनियोके साथ सूर्यके समान अपनी अठारह हजार स्त्रियोके साथ क्रीड़ा करता था ॥२३–२५॥ जिसपर सब लोगोके नेत्र लग रहे थे, जो अन्य महलोकी पंक्तिसे घिरा था, नानारत्नोसे निर्मित था और चैत्यालयोसे सुशोभित था, ऐसे

१ ममाकुलः म. ।

वन्द्यानां त्रिदशेन्द्रमौलिशिखरप्रत्युप्तरत्नस्फुरत्-
स्फीतांशुप्रकरावप्रसारिचरणप्रोत्सर्पिनख्यत्विषाम्[1] ।
ज्ञात्वा सर्वमशाश्वतं परिदृढामाधाय धर्मे मतिं
धन्याः सद्युति कारयन्ति परमं लोके जिनानां गृहम् ॥२७॥

उपजातिवृत्तम्

वित्तस्य जातस्य फलं विशालं वदन्ति सुज्ञाः सुकृतोपलम्भम् ।
धर्मश्च जैनः परमोऽखिलेऽस्मिञ्जगत्यभीष्टस्य रविप्रकाशे ॥२८॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शान्तिगृहकीर्तनं नाम सप्तषष्टितमं पर्व ॥६७॥



दशाननके घरमे सुवर्णमयी हजारो खम्भोसे सुशोभित, विस्तृत, मध्यमे स्थित, देदीप्यमान और अतिशय ऊँचा वह शान्तिजिनालय था कि जिसमे शान्तिजिनेन्द्र विराजमान थे ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते है कि उत्तम भाग्यशाली मनुष्य, धर्ममे दृढ़ वुद्धि लगाकर तथा संसारके सब पदार्थो-को अस्थिर जानकर जगत्मे उन जिनेन्द्र भगवान्के कान्तिसम्पन्न, उत्तम मन्दिर बनवाते हैं जो सबके द्वारा वन्दनीय है तथा इन्द्रके मुकुटोके शिखरमे लगे रत्नोकी देदीप्यमान किरणोके समूहसे जिनके चरणनखोकी कान्ति अत्यधिक वृद्धिगत होती रहती है ॥२७॥ वुद्धिमान् मनुष्य कहते है कि प्राप्त हुए विशाल धनका फल पुण्यकी प्राप्ति करना है और इस समस्त संसारमे एक जैनधर्म ही उत्कृष्ट पदार्थ है, यही इष्ट पदार्थको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाला है ॥२८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शान्ति जिनालयका वर्णन करनेवाला सड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६७॥



१. नक्षत्विषाम् म ।

अष्टषष्टितमं पर्व

अथ फाल्गुनिके मासे गृहीत्वा धवलाष्टमीम् । पौर्णमासीं तिथिं यावल्लग्नो नान्दीश्वरो महः ॥१॥
नान्दीश्वरमहे तस्मिन् प्राप्ते परमसंमदः[1] । बलद्वयेऽपि लोकोऽभून्नियमग्रहणोद्यतः ॥२॥
एवं च मानसे चक्रुः सर्वे सैनिकपुङ्गवाः । सुपुण्यानि दिनान्यष्टावेतानि भुवनत्रये ॥३॥
नैतेषु विग्रहं कुर्मो न चान्यदपि हिंसनम् । यजामहे यथाशक्ति स्वश्रेयसि परायणाः ॥४॥
भवन्ति दिवसेष्वेषु भोगादिपरिवर्जिताः । सुरा अपि जिनेन्द्राणां सेन्द्राः पूजनतत्पराः ॥५॥
क्षीरोदवारिसंपूर्णैः कुम्भैरम्भोजशोभिभिः । [2]शातकुम्भैरलं भक्ताः स्नपयन्ति जिनान् सुराः ॥६॥
अन्यैरपि जिनेन्द्राणां प्रतिमाः प्रतिमोज्झिताः । भावितैरभिषेक्तव्याः पलाशादिपुटैरपि ॥७॥
गत्वा नन्दीश्वरं भक्त्या पूजयन्ति जिनेश्वरान् । देवेश्वरा न ते पूज्याः क्षुद्रकैः किमिह स्थितैः ॥८॥
अर्चयन्ति सुराः पद्मै रत्नजाम्बूनदात्मकैः । जिनास्ते भुवि निर्वित्तैः पूज्याश्चित्तदलैरपि ॥९॥
इति ध्यानमुपायाता लङ्काद्वीपे मनोरमे । जनाश्चैत्यानि सोत्साहाः पताकाद्यैरभूषयद् ॥१०॥
सभाः प्रपाश्च मञ्चाश्च पट्टशाला मनोहराः । नाट्यशाला विशालाश्च वाप्यश्च रचिताः शुभाः ॥११॥
सरांसि पद्मरम्याणि भान्ति सोपानकैर्वरैः । [3]तटोद्भासितवस्त्रादिचैत्यकूटानि भूरिशः ॥१२॥
कनकादिरजश्चित्रमण्डलादिविराजितैः । रेजुश्चैत्यानि सद्द्वारैर्वस्त्ररम्भादिभूषितैः ॥१३॥
घृतक्षीरादिभिः पूर्णाः कलशाः कमलाननाः । मुक्तादामादिसत्कण्ठा रत्नरश्मिविराजिताः ॥१४॥

अथानन्तर फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीसे लेकर पौर्णमासी पर्यन्त नान्दीश्वर अष्टाह्निक महोत्सव आया ॥१॥ उस नान्दीश्वर महोत्सवके आनेपर दोनो पक्षकी सेनाओंके लोग परम हर्षसे युक्त होते हुए नियम ग्रहण करनेमे तत्पर हुए ॥२॥ सब सैनिक मनमे ऐसा विचार करने लगे कि ये आठ दिन तीनो लोकोमे अत्यन्त पवित्र है ॥३॥ इन दिनोमे हम न युद्ध करेगे और न कोई दूसरी प्रकारकी हिंसा करेंगे, किन्तु आत्मकल्याणमे तत्पर रहते हुए यथाशक्ति भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा करेंगे ॥४॥ इन दिनोमें देव भी भोगादिसे रहित हो जाते हैं तथा इन्द्रोके साथ जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेमे तत्पर रहते है ॥५॥ भक्तदेव, क्षीर समुद्रके जलसे भरे तथा कमलोसे सुशोभित स्वर्णमयी कलशोसे श्रीजिनेन्द्रका अभिषेक करते है ॥६॥ अन्य लोगोंको भी चाहिए कि वे भक्तिभावसे युक्त हो कलश न हो तो पत्तो आदिके बने दोनोसे भी जिनेन्द्रदेवकी अनुपम प्रतिमाओका अभिषेक करें ॥७॥ इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप जाकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते है, तो क्या यहाँ रहनेवाले क्षुद्र मनुष्योके द्वारा जिनेन्द्र पूजनीय नही हैं ? ॥८॥ देव रत्न तथा स्वर्णमय कमलोसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते है तो पृथ्वीपर स्थित निर्धन मनुष्योको अन्य कुछ न हो तो मनरूपी कलिका द्वारा भी उनकी पूजा करनी चाहिए ॥९॥ इस प्रकार ध्यानको प्राप्त हुए मनुष्योने बड़े उत्साहके साथ मनोहर लंका द्वीपमे जो मन्दिर थे उन्हे पताका आदिसे अलंकृत किया ॥१०॥ एकसे एक बढ़कर सभाएँ, प्याऊ, मंच, पट्टशालाएँ, मनोहर नाट्यशालाएँ तथा बड़ी-बड़ी वापिकाएँ बनायी गयी ॥११॥ जो उत्तमोत्तम सीढ़ियोसे सहित थे तथा जिनके तटोपर वस्त्रादिसे निर्मित जिनमन्दिर शोभा पा रहे थे, ऐसे कमलोसे मनोहर अनेक सरोवर सुशोभित हो रहे थे ॥१२॥ जिनालय, स्वर्णादिकी परागसे निर्मित नाना प्रकारके मण्डलादिसे अलंकृत एव वस्त्र तथा कदली आदिसे सुशोभित उत्तम द्वारोसे शोभा पा रहे थे ॥१३॥ जो घी,

---

१. संपद म । २. सौवर्णैः । ३. तटैर्भासित म ।

जिनबिम्बाभिषेकार्थमाहृता भक्तिभासुराः । दृश्यन्ते भोगिगेहेषु शतशोऽथ सहस्रशः ॥१५॥
नन्दनप्रभवैः फुल्लैः कर्णिकारातिमुक्तकैः । कदम्बैः सहकारैश्च चम्पकैः पारिजातकैः ॥१६॥
मन्दारैः सौरभाबद्धमधुव्रतकदम्बकैः । स्रजो विरचिता रेजुश्चैत्येषु[1] परमोज्ज्वला ॥१७॥
[2]जातरूपमयैः पद्मैः रजतादिमयैस्तथा । मणिरत्नशरीरैश्च पूजा विरचिता परा ॥१८॥
पटुभिः पटहैस्तूर्यैर्मृदङ्गैः काहलादिभिः । शङ्खैश्चाशु महानादश्चैत्येषु[3] समजायत ॥१९॥
प्रशान्तवैरसम्बद्धैर्महानन्दमभागतैः । जिनानां महिमा चक्रे लङ्कापुरनिवासिभिः ॥२०॥
ते विभूतिं परां चक्रुर्विद्येशा भक्तितत्पराः । नन्दीश्वरे यथा देवा जिनबिम्बार्चनोद्यतः ॥२१॥

आर्यागीतिच्छन्दः

अयमपि राक्षसवृषभः पृथुप्रतापः सुशान्तिगृहमभिगम्य ।
पूजां करोति भक्त्या बलिरिव पूर्वं मनोहरां शुचिभूत्वा ॥२२॥
समुचितविभवयुतानां जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
पूजयतां पुरुषाणां कः शक्तः पुण्यसंचयान् प्रचोदयितुम् ॥२३॥
भुक्त्वा देवविभूतिं लब्ध्वा चक्राङ्कभोगसंयोगम् ।
रवितोऽपि तपस्तीव्रं कृत्वा जैनं व्रजन्ति मुक्तिं परमाम् ॥२४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे फाल्गुनाष्टाह्निकामहिमविधानं नामाष्टषष्टितम पर्व ॥६८॥



दूध आदिसे भरे हुए थे, जिनके मुखपर कमल ढके हुए थे, जिनके कण्ठमें मोतियोंकी मालाएँ लटक रही थी, जो रत्नोकी किरणोसे सुशोभित थे, जो नाना प्रकारके वेलबूटोसे देदीप्यमान थे तथा जो जिन-प्रतिमाओके अभिषेकके लिए इकट्ठे किये गये थे ऐसे सैकड़ो-हजारो कलश गृहस्थोके घरोमे दिखाई देते थे ॥१४–१५॥ मन्दिरोमे सुगन्धिके कारण जिनपर भ्रमरोके समूह मँड़रा रहे थे, ऐसे नन्दन-वनमे उत्पन्न हुए कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजातक, तथा मन्दार आदिके फूलोसे निर्मित अत्यन्त उज्ज्वल मालाएँ सुशोभित हो रही थी ॥१६–१७॥ स्वर्ण, चाँदी तथा मणिरत्न आदिसे निर्मित कमलोके द्वारा श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा की गयी थी ॥१८॥ उत्तमोत्तम नगाड़े, तुरही, मृदंग, शंख तथा काहल आदि वादित्रोसे मन्दिरोमे शीघ्र ही विशाल शब्द होने लगा ॥१९॥ जिनका पारस्परिक वैरभाव शान्त हो गया था और जो महान् आनन्दसे मिल रहे थे, ऐसे लंकानिवासियोने जिनेन्द्र देवकी परम महिमा प्रकट की ॥२०॥ जिस प्रकार नन्दीश्वर द्वीपमे जिन-बिम्बकी अर्चा करनेमे उद्यत देव बड़ी विभूति प्रकट करते हैं उसी प्रकार भक्तिमे तत्पर विद्याधर राजाओंने बड़ी विभूति प्रकट की थी ॥२१॥ विशाल प्रतापके धारक रावणने भी श्री शान्तिजिनालयमे जाकर पवित्र हो पहले जिस प्रकार बलिराजाने की थी, उस प्रकार भक्तिसे श्री जिनेन्द्रदेवकी मनोहर अर्चा की ॥२२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो योग्य वैभवसे युक्त हैं तथा उत्तम भक्तिके भारको धारण करनेवाले हैं ऐसे श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेवाले पुरुषोके पुण्य-समूहका निरूपण करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ ऐसे जीव देवोकी सम्पदाका उपभोग कर तथा चक्रवर्तीके भोगोका सुयोग पाकर और अन्तमे सूर्यसे भी अधिक जिनेन्द्रप्रणीत तपश्चरण कर श्रेष्ठ मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें फाल्गुन मासकी अष्टाह्निकाओंकी महिमाका निरूपण करनेवाला अड़सठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६८॥

---

१ चैत्यादि म. । २. स्वर्णमयैः । ३ महानादैः-म ।

एकोनसप्ततितमं पर्व

अथ शान्तिजिनेन्द्रस्य भवनं शान्तिकारणम् । कैलासकूटसंकाशं शरदभ्रचयोपमम् ॥१॥
स्वयंप्रभासुरं दिव्यं प्रासादालीसमावृतम् । जम्बूद्वीपस्य मध्यस्थं महामेरुमिवोत्थितम् ॥२॥
विद्यासाधनसंयुक्तमानसः स्थिरनिश्चयः । प्रविश्य रावणः पूजामकरोत् परमाद्भुताम् ॥३॥
अभिषेकैः सवादित्रैर्माल्यैरतिमनोहरैः । धूपैर्बल्युपहारैश्च सद्वर्णैरनुलेपनैः ॥४॥
चक्रे शान्तिजिनेन्द्रस्य शान्तचेता दशाननः । पूजां परमया द्युत्या शुनाशीर इवोद्यतः ॥५॥
चूडामणिहर्म्यद्बद्धकेशमौलिर्महाद्युतिः । शुक्लांशुकधरः पीनकेयूरार्चितसद्भुजः ॥६॥
कृताञ्जलिपुटः क्षोणीं पीडयन् जानुसंगमात् । प्रणामं शान्तिनाथस्य चकार त्रिविधेन सः ॥७॥
शान्तेरभिमुखः स्थित्वा निर्मले धरणीतले । पर्यङ्कार्धनियुक्ताङ्गः पुष्परागिणि कुट्टिमे ॥८॥
बिभ्रत्स्फटिकनिर्माणामक्षमालां करोदरे । बलाकापङ्क्तिसंयुक्तनीलाम्भोदचयोपमः ॥९॥
एकाग्रध्यानसंपन्नो नासाग्रस्थितलोचनः । विद्यायाः साधनं धीरः प्रारेभे राक्षसाधिपः ॥१०॥
दत्ताज्ञा पूर्वमेवाथ नाथेन प्रियवर्त्तिनी । अमात्यं यमदण्डाख्यमादिदेश मयात्मजा ॥११॥
दाप्यतां घोषणा स्थाने यथा लोकः समन्ततः । नियमेषु नियुक्तात्मा जायतां सुदयापरः ॥१२॥
जिनचन्द्राः प्रपूज्यन्तां शेषव्यापारवर्जितैः । दीयतां धनमर्थिभ्यो यथेष्टं हृतमत्सरैः ॥१३॥
यावत्समाप्यते योगो नायं भुवनभोगिनः । तावत् श्रद्धापरो भूत्वा जनस्तिष्ठतु संयमी ॥१४॥

अथानन्तर जो शान्तिका कारण था, कैलासके शिखरके समान जान पड़ता था, शरद्-ऋतुके मेघमण्डलकी उपमा धारण करता था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य अर्थात् मनोहर था, महलोंकी पंक्तिसे घिरा था और जम्बूद्वीपके मध्यमे स्थित महामेरुके समान खड़ा था—ऐसा श्रीशान्तिजिनेन्द्रके मन्दिरमे, विद्या साधनकी इच्छासे युक्त रावणने दृढ निश्चयके साथ प्रवेश कर श्रीजिनेन्द्रदेवकी परम अद्भुत पूजा की ॥१–३॥ जो उत्कृष्ट कान्तिसे खड़े हुए इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसे शान्तचित्त दशाननने वादित्र सहित अभिषेकों, अत्यन्त मनोहर मालाओ, धूपों, नैवेद्यके उपहारो और उत्तमवर्णके विलेपनोसे श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्रकी पूजा की ॥४–५॥ जिसके बँधे हुए केश चूडामणिसे सुशोभित थे तथा उनपर मुकुट लगा हुआ था, जो महाकान्तिमान् था, शुक्ल वस्त्रको धारण कर रहा था, जिसकी मोटी-मोटी उत्तम भुजाएँ बाजूबन्दोसे अलंकृत थी, जो हाथ जोड़े हुए था, और घुटनोके समागमसे जो पृथ्वीको पीड़ा पहुँचा रहा था ऐसे दशाननने मन, वचन, कायसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्को प्रणाम किया ॥६–७॥

तदनन्तर जो निर्मल पृथ्वीतलमे पुष्परागमणिसे निर्मित फर्शपर श्रीशान्तिनाथ भगवान्के सामने बैठा था, जो हाथोके मध्यमे स्फटिकमणिसे निर्मित अक्षमालाको धारण कर रहा था, और इसीलिए बलाकाओकी पंक्तिसे युक्त नीलमेघोके समूहके समान जान पड़ता था, जो एकाग्र ध्यानसे युक्त था, जिसने अपने नेत्र नासाके अग्रभागपर लगा रखे थे, तथा जो अत्यन्त धीर था ऐसे रावणने विद्याको सिद्ध करना प्रारम्भ किया ॥८–१०॥ अथानन्तर जिसे स्वामीने पहले ही आज्ञा दे रखी थी ऐसी प्रियकारिणी मन्दोदरीने यमदण्ड नामक मन्त्रीको आदेश दिया कि जगह जगह ऐसी घोषणा दिलायी जावे कि जिससे लोग सब ओर नियम—आखड़ियोमे तत्पर और उत्तम दयासे युक्त होवें ॥११–१२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर जिनचन्द्रकी पूजा की जावे और मत्सरभावको दूर कर याचकोंके लिए इच्छानुसार धन दिया जावे ॥१३॥ जबतक जगत्के

---

१. हंसद्बंध-म ।

निकारो यद्युदारोऽपि कुतश्चिन्नीचतो भवेत् । निश्चितं सोऽपि सोढव्यो महावलयुतैरपि ॥१५॥
क्रोधाद्विकुरुते किंचिद्दिवसेष्वेषु यो जनः । पितापि किं पुनः शेषः स मे वध्यो भविष्यति ॥१६॥
युक्तो [1]बोधिसमाधिभ्यां संसारं सोऽन्तवर्जितम् । प्रतिपद्येत यो न स्यात् समादिष्टस्य कारकः ॥१७॥

वंशस्थवृत्तम्

ततो यथाऽऽज्ञापयसीति संभ्रमी मुदा तदाज्ञां शिरसा प्रतीक्ष्य सः ।
चकार सर्वं गदितं जनैश्च तत् तथा कृतं संशयसङ्गवर्जितैः ॥१८॥

उपजातिवृत्तम्

जिनेन्द्रपूजाकरणप्रसक्ता प्रजा बभूवापरकार्यमुक्ता ।
रविप्रमाणां परमालयानामन्तर्गता निर्मलतुङ्गभावा ॥१९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते लोकनियमकरणाभिधानं नामैकोनसप्ततितम पर्व ॥६९॥



स्वामी—दशाननका वह योग समाप्त नही होता है तवतक सब लोग श्रद्धामे तत्पर एवं संयमी होकर रहे ॥१४॥ यदि किसी नीच मनुष्यकी ओरसे अत्यधिक तिरस्कार भी होवे तो महावलवान् पुरुषोंको उसे निश्चित रूपसे सह लेना चाहिए ॥१५॥ इन दिनोमे जो भी पुरुष क्रोधसे विकार दिखावेगा वह पिता भी हो, फिर शेषकी तो बात ही क्या है ? मेरा वध्य होगा ॥१६॥ जो मनुष्य इस आदेशका पालन नही करेगा वह वोधि और समाधिसे युक्त होनेपर भी अनन्त संसारको ही प्राप्त होगा—उससे छूटकर मुक्ति प्राप्त नही कर सकेगा ॥१७॥

तदनन्तर 'जैसी आपकी आज्ञा हो' इस प्रकार शीघ्रतासे कहकर तथा हर्षपूर्वक मन्दोदरीकी आज्ञा शिरोधार्यकर यमदण्ड मन्त्रीने घोषणा करायी और सब लोगोने संशयसे रहित हो घोषणाके अनुसार ही सब कार्य किये ॥१८॥ गौतम स्वामी कहते है कि सूर्यके समान कान्तिवाले उत्तमोत्तम महलोके भीतर विद्यमान तथा निर्मल और उन्नत भावोको धारण करनेवाली लंकाकी समस्त प्रजा, अन्य सब कार्य छोड़ जिनेन्द्र देवकी पूजा करनेमे ही लीन हो गयी ॥१९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लोगोंके नियम करनेका वर्णन करनेवाला उनहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६९॥



1. रोविसमाविभ्याम् म ।

सप्ततितमं पर्व

स वृत्तान्तश्चरास्येभ्यस्तत्र परबले[1] श्रुतः । ऊचुश्च खेचराधीशा जयप्राप्तिपरायणाः ॥१॥
किल शान्तिजिनेन्द्रस्य प्रविश्य[2] शरणं सुधीः । विद्यां साधयितुं लग्नः स लङ्कापरमेश्वरः ॥२॥
चतुर्विंशतिभिः सिद्धिं वासरैः प्रतिपद्यते । बहुरूपेति सा विद्या सुराणामपि भञ्जनी ॥३॥
यावद्भगवती तस्य सा सिद्धिं न प्रपद्यते । तावत् कोपयत क्षिप्रं तं गत्वा नियमस्थितम् ॥४॥
तस्यां सिद्धिमुपेतायां देवेन्द्रैरपि न शक्यते । स साधयितुं कैव क्षुद्रेष्वस्मासु संकथा ॥५॥
ततो विभीषणेनोक्तं कर्त्तव्यं चेदिदं ध्रुवम् । द्रुतं प्रारभ्यतां कस्माद्भवद्भिरवलम्ब्यते ॥६॥
सम्प्रधार्य समस्तैस्तैः पद्मनामाय वेदितम् । गदितं च यथा लङ्काप्रस्तावे गृह्यतामिति ॥७॥
बाध्यतां रावणः कृत्यं क्रियतां च यथेप्सितम् । इत्युक्तः स जगौ धीरो महापुरुषचेष्टितः ॥८॥
भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्तं विहिंसनम् । किं पुनर्नियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ॥९॥
नैषा कुलसमुत्थानां क्षत्रियाणां प्रशस्यते । प्रवृत्तिर्गर्वतुङ्गानां खिन्नानां शस्त्रकर्मणि ॥१०॥
महानुभावधीर्देवो विधर्मे न प्रवर्त्तते । इति प्रधार्य ते चक्रुः कुमारान् गामिनो रहः ॥११॥
श्वो [3]गन्तास्म इति प्राप्ता अपि बुद्धिं नभश्चराः । अष्टमात्रदिनं कालं संप्रधारणया स्थिताः ॥१२॥
पूर्णमास्यां ततः पूर्णशशाङ्कसदृशाननाः । पद्मायतेक्षणा नानालक्षणध्वजशोभिनः ॥१३॥

अथानन्तर 'रावण बहुरूपिणी विद्या साध रहा है।' यह समाचार गुप्तचरोंके मुखसे रामकी सेनामे सुनाई पड़ा सो विजय प्राप्त करनेमे तत्पर विद्याधर राजा कहने लगे कि ऐसा सुननेमे आया है कि लंकाका स्वामी रावण श्री शान्ति-जिनेन्द्रके मन्दिरमे प्रवेश कर विद्या सिद्ध करनेमे लगा हुआ है ॥१–२॥ वह बहुरूपिणी विद्या चौवीस दिनमे सिद्धिको प्राप्त होती है तथा देवोंका भी मद भंजन करनेवाली है ॥३॥ इसलिए वह भगवती विद्या जव तक उसे सिद्ध नही होती है तब तक शीघ्र ही जाकर नियममे वैठे रावणको क्रोध उत्पन्न करो ॥४॥ वहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो जानेपर वह इन्द्रोके द्वारा भी नही जीता जा सकेगा फिर हमारे जैसे क्षुद्र पुरुषोकी तो कथा ही क्या है ? ॥५॥ तव विभीषणने कहा कि यदि निश्चित ही यह कार्यं करना है तो शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाये। आप लोग विलम्व किसलिए कर रहे हैं ॥६॥ तदनन्तर इस प्रकार सलाह कर सव विद्याधरोने श्रीरामसे कहा कि 'इस अवसरपर लंका ग्रहण की जाय' ॥७॥ रावणको मारा जाय और इच्छानुसार कार्य किया जाय। इस प्रकार कहे जानेपर महापुरुषोंकी चेष्टासे युक्त धीर वीर रामने कहा कि जो मनुष्य अत्यन्त भयभीत हैं उन आदिके ऊपर भी जव हिंसापूर्ण कार्य करना योग्य नही है तव जो नियम लेकर जिन-मन्दिरमे वैठा है उसपर यह कुकृत्य करना कैसे योग्य हो सकता है ? ॥८–९॥ जो उच्चकुलमे उत्पन्न हैं, अहंकारसे उन्नत हैं तथा शस्त्र चलानेके कार्यमे जिन्होने श्रम किया है ऐसे क्षत्रियोंकी यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय नही है ॥१०॥

तदनन्तर 'हमारे स्वामी राम महापुरुष हैं, ये अधर्ममे प्रवृत्ति नही करेंगे' ऐसा निश्चय कर उन्होने एकान्तमे अपने-अपने कुमार लंकाकी ओर रवाना किये ॥११॥ 'तत्पश्चात् कल चलेंगे' इस प्रकार निश्चय कर लेनेपर भी विद्याधर आठ दिन तक सलाह ही करते रहे ॥१२॥ अथानन्तर पूर्णिमाका दिन आया तव पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखके धारक, कमलके समान दीर्घ नेत्रोंसे

---

१ सद्वृत्तान्तश्चरा-ज । २. गृहम् । ३. गता. स्म म ।

सिंहव्याघ्रवराहेभशरभादियुतान् रथान्। विमानानि तथारूढा गृहीतपरमायुधाः ॥१४॥
कुमाराः प्रस्थिता लङ्कां शङ्कामुत्सृज्य सादराः। रावणक्षोभणाकूता भवनामरभासुराः ॥१५॥
मकरध्वजसाटोपचन्द्राभरतिवर्द्धनाः। वातायनो गुरुभरः सूर्यज्योतिर्महारथः[1] ॥१६॥
प्रीतिंकरो दृढरथः समुन्नतबलस्तथा। नन्दनः सर्वदो दुष्टः सिंह[2] सर्वप्रियो नलः ॥१७॥
नीलः सागरनिस्वानः ससुतः पूर्णचन्द्रमाः। स्कन्दश्चन्द्रमरीचिश्च जाम्बवः संकटस्तथा ॥१८॥
समाधिबहुलः सिंहकटिरिन्द्राशनिर्बलः। तुरङ्गशतमेतेषां प्रत्येकं योजितं रथे ॥१९॥
शेषाः सिंहवराहेभव्याघ्रयानैर्मनोजवैः। पदातिपटलान्तस्थाः प्रस्थिताः परमौजसः ॥२०॥
नानाचिह्नातपत्रास्ते नानातोरणलाञ्छनाः। चित्राभिर्वैजयन्तीभिर्लक्षिता गगनाङ्गणे ॥२१॥
सैन्यार्णवसमुद्भूतमहागम्भीरनिःस्वनाः। आस्तृणाना दिशो मानमुद्वहन्तः समुन्नताः ॥२२॥
प्राप्ता लङ्कापुरीबाह्योद्देशमेवमचिन्तयन्। आश्चर्यं किमिदं लङ्का निश्चिन्तेयमवस्थिता ॥२३॥
स्वस्थो जनपदोऽमुष्यां सुचेताः परिलक्ष्यते। अवृत्तपूर्वसंग्रामा इव चास्यां भटाः स्थिताः ॥२४॥
अहो लङ्केश्वरस्येदं धैर्यमत्यन्तमुन्नतम्। गम्भीरत्वं तथा सत्त्वं श्रीप्रतापसमुन्नतम् ॥२५॥
बन्दिग्रहणमानीतः कुम्भकर्णो महाबलः। इन्द्रजिन्मेघनादश्च दुर्धरैरपि दुर्धराः ॥२६॥
अक्षाद्या बहवः शूराः नीता निधनमाहवे। न तथापि विभोः शङ्का काचिदस्योपजायते ॥२७॥
इति संचिन्त्य कृत्वा च समालापं परस्परम्। विस्मयं परमं प्राप्ताः कुमाराः शङ्किता इव ॥२८॥

युक्त एवं नाना लक्षणोंसे सुशोभित विद्याधर कुमार सिंह, व्याघ्र, वाराह, हाथी और शरभ आदिसे युक्त रथों तथा विमानोंपर आरूढ़ हो निःशंक होते हुए आदरके साथ लंकाकी ओर चले। उस समय उत्तमोत्तम शस्त्रोंको धारण करनेवाले तथा रावणको कुपित करनेकी भावनासे युक्त वे वानर कुमार भवनवासी देवोंके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥१३–१५॥ उन कुमारोंमें-से कुछके नाम इस प्रकार हैं—मकरध्वज, साटोप, चन्द्राभ, वातायन, गुरुभर, सूर्यज्योति, महारथ, प्रीतिंकर, दृढरथ, समुन्नतबल, नन्दन, सर्वद, दुष्ट, सिंह, सर्वप्रिय, नल, नील, समुद्रघोष, पुत्र सहित पूर्णचन्द्र, स्कन्द, चन्द्ररश्मि, जाम्बव, संकट, समाधिबहुल, सिंहजघन, इन्द्रवज्र और बल। इनमें-से प्रत्येकके रथमें सौ-सौ घोड़े जुते हुए थे ॥१६–१९॥ पदातियोंके मध्यमें स्थित, परम तेजस्वी शेषकुमार मनके समान वेगशाली सिंह, वराह, हाथी और व्याघ्ररूपी वाहनोंके द्वारा लंकाकी ओर चले ॥२०॥ जिनके ऊपर नाना चिह्नोंको धारण करनेवाले छत्र फिर रहे थे, जो नाना तोरणोंसे चिह्नित थे, आकाशांगणमें जो रंग-विरंगी ध्वजाओंसे सहित थे, जिनकी सेना-रूपी सागरसे अत्यन्त गम्भीर शब्द उठ रहा था, जो मानको धारण कर रहे थे, तथा अतिशय उन्नत थे ऐसे वे सब कुमार दिशाओंको आच्छादित करते हुए लंकापुरीके बाह्य मैदानमें पहुँचकर इस प्रकार विचार करने लगे कि यह क्या आश्चर्य है ? जो यह लंका निश्चिन्त स्थित है ॥२१–२३॥ इस लंकाके निवासी स्वस्थ तथा शान्तचित्त दिखाई पड़ते हैं और यहांके योद्धा भी ऐसे स्थित हैं मानो इनके यहाँ पहले युद्ध हुआ ही नहीं हो ॥२४॥ अहो लंकापतिका यह विशाल धैर्य, यह उन्नत गाम्भीर्य, और यह लक्ष्मी तथा प्रतापसे उन्नत सत्त्व-बल धन्य है ॥२५॥ यद्यपि महाबलवान् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् तथा मेघनाद बन्दीगृहमें पड़े हुए हैं, तथा प्रचण्ड बलशाली भी जिन्हें पकड़ नहीं सकते थे ऐसे अक्ष आदि अनेक शूरवीर युद्धमें मारे गये हैं तथापि इस धनीको कोई शंका उत्पन्न नहीं हो रही है ॥२६–२७॥ इस प्रकार विचारकर तथा परस्पर वार्तालाप कर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए कुमार कुछ शंकित-से हो गये ॥२८॥

---

१ द्योतिमहारथ. ज.। सूर्यो ज्योतिर्महारथ. म। २. सिंह. कटि म.।

अथ वैभीषणिर्वाक्यं ख्यातो नाम्ना सुभूषणः । जगाद धैर्यसंपन्नं निर्भ्रान्तं मारुतायनम् ॥२९॥
मयासंगं समुत्सृज्य क्षिप्रं लङ्कां प्रविश्य ताम् । लोलयामि इमान् सर्वान् परित्यज्य कुलाङ्गनाः ॥३०॥
वचनं तस्य संपूज्य ते विद्याधरदारकाः । महाशौर्यसमुन्नद्धा दुर्दान्ताः कलहप्रियाः ॥३१॥
आशीविषसमाश्चण्डा उद्धताश्चपलाचला[1] । भोगदुर्ललिता नानासंग्रामोद्भूतकीर्त्तयः ॥३२॥
ग्रसमाना इवाशेषां नगरीं तां समास्तृणन् । महासैन्यसमायुक्ताः शस्त्ररश्मिविराजिताः ॥३३॥
सिंहेभादिरवोन्मिश्रभेरीदुन्दुभिनिस्वनम् । श्रुत्वातिभीषणं लङ्का परमं कम्पमागता ॥३४॥
सहसा चकितत्रस्ता विलोलनयना. स्त्रियः । स्वनद्गलदलंकाराः प्रियाणामङ्कमाश्रिताः ॥३५॥
विद्याभृन्मिथुनान्युच्चैर्विह्वलानि नभोऽङ्गणे । बभ्रमुश्चक्रवद्भ्रान्त्या चलद्वासांसि सस्वनम् ॥३६॥
भवने राक्षसेन्द्रस्य महारत्नांशुभासुरे । स्वनन्मङ्गलगम्भीरवीरतूर्यमृदङ्गके ॥३७॥
अव्युच्छिन्नसुसंगीतनृत्यनिष्णातयोषिति । जिनपूजासमुद्युक्तकन्याजनसमाकुले ॥३८॥
विलासैः परमस्त्रीणामप्युन्मादितमन्मथे । क्रूरतूर्यस्वनं श्रुत्वा क्षुब्धेऽन्तःपुरसागरे ॥३९॥
उद्ययौ निःस्वनो रम्यो भूषणस्वनसंगतः । समन्तादाकुलो मन्द्रो वल्लकीनामिवायतः ॥४०॥
विह्वलाचिन्तयत् काचित् कष्टं किमिदमागतम् । मर्तव्यमद्य किं क्रूरे कृते कर्मणि शत्रुभिः ॥४१॥
अन्या दध्यौ भवेत्पापैः[2] किं नु बन्दिग्रहो मम । किंवा विवसनीभूता क्षिप्ये लवणसागरे ॥४२॥
एवमाकुलतां प्राप्ते समस्ते नगरीजने । विह्वलेषु प्रवृत्तेषु निःस्वनेषु समन्ततः ॥४३॥

तदनन्तर सुभूषण नामसे प्रसिद्ध विभीषणके पुत्रने, धैर्यशाली, भ्रान्तिरहित वातायनसे इस प्रकार कहा कि ॥२९॥ भय छोड़ शीघ्र ही लंकामे प्रवेश कर कुलांगनाओको छोड़ इस समस्त लोगोंको अभी हिलाता हूँ ॥३०॥ उसके वचन सुन विद्याधरोंके कुमार समस्त नगरीको ग्रसते हुएके समान सर्वत्र छा गये। वे कुमार महाशूर धीरतासे अत्यन्त उद्दण्ड थे, कठिनतासे वशमे करने योग्य थे, कलह-प्रिय थे, आशीविष–सर्पके समान थे, अत्यन्त क्रोधी थे, गर्वीले थे, बिजलीके समान चंचल थे, भोगोसे लालित हुए थे, अनेक संग्रामोमे कीर्तिको उपार्जित करनेवाले थे, बहुत भारी सेनासे युक्त थे तथा शस्त्रोको किरणोसे सुशोभित थे ॥३१–३३॥ सिंह तथा हाथी आदिके शब्दोसे मिश्रित भेरी एवं दुन्दुभि आदिके अत्यन्त भयंकर शब्दको सुन लंका परम कम्पनको प्राप्त हुई—सारी लंका कांप उठी ॥३४॥ जो आश्चर्यचकित हो भयभीत हो गयी थी, जिनके नेत्र अत्यन्त चंचल थे और जिनके आभूषण गिर-गिरकर शब्द कर रहे थे ऐसी स्त्रियाँ सहसा पतियोकी गोदमें जा छिपी ॥३५॥ जो अत्यन्त विह्वल थे तथा जिनके वस्त्र वायुसे इधर-उधर उड़ रहे थे ऐसे विद्याधरोके युगल आकाशमे बहुत ऊँचाईपर शब्द करते हुए चक्राकार भ्रमण करने लगे ॥३६॥ रावणका जो भवन महारत्नोकी किरणोसे देदीप्यमान था, जिसमे मंगलमय तुरही तथा मृदंगोका गम्भीर शब्द हो रहा था, जिसमे रहनेवाली स्त्रियाँ अविरल उत्तम संगीत तथा नृत्यमे निपुण थी, जो जिनपूजामे तत्पर कन्याजनोसे व्याप्त थी और जिसमे उत्तम स्त्रियोके विलासोसे भी काम उन्मादको प्राप्त नही हो रहा था ऐसे रावणके भवनमे जो अन्त.पुररूपी सागर विद्यमान था वह तुरहीके कठोर शब्दको सुन क्षोभको प्राप्त हो गया ॥३७–३९॥ सब ओरसे आकुलतासे भरा भूषणोंके शब्दसे मिश्रित ऐसा मनोहर एवं गम्भीर शब्द उठा जो मानो वीणाका ही विशाल शब्द था ॥४०॥ कोई स्त्री विह्वल होती हुई विचार करने लगी कि हाय-हाय यह क्या कष्ट आ पड़ा। शत्रुओंके द्वारा किये हुए इस क्रूरतापूर्ण कार्यमे क्या आज मरना पड़ेगा ? ॥४१॥ कोई स्त्री सोचने लगी कि न जाने मुझे पापी लोग बन्दीगृहमे डालते हैं या वस्त्ररहित कर लवणसमुद्रमे फेंकते हैं ॥४२॥ इस प्रकार जब नगरीके समस्त लोग आकुलताको

---

१ चपलाश्चला म । २ पापः म., ज ।

क्रुद्धो मयमहादैत्यः पिनद्धकवचो द्रुतम् । संनद्धैः सचिवैः सार्द्धं समुन्नतपराक्रमः ॥४४॥
युद्धार्थमुद्यतो दीप्तः प्राप लङ्केशमन्दिरम् । श्रीमान् हरिणकेशीव सुनाशीरनिकेतनम् ॥४५॥
ऊचे मन्दोदरी तं च कृत्वा निर्भर्त्सनं परम् । कर्त्तव्यं तात नैतत्ते दोषार्णवनिमज्जनम् ॥४६॥
समयो घोष्यमाणोऽसौ जैनः किं न त्वया श्रुतः । प्रसादं कुरु वाञ्छा चेदस्ति स्वश्रेयसं प्रति ॥४७॥
दुहितुः स्वहितं वाक्यं श्रुत्वा दैत्यपतिर्मयः । प्रशान्तः संजहारास्त्रं रश्मिचक्रं यथा रविः ॥४८॥
दुर्भेदकवचच्छन्नो मणिकुण्डलमण्डितः । हारराजितवक्षस्को विवेश स्वं जिनालयम् ॥४९॥
उद्वेलसागराकाराः कुमारास्तावदागताः । प्राकारं वेगवातेन कुर्वन्तः शिखरोज्झितम् ॥५०॥
भग्नवज्रकपाटं च कृत्वा गोपुरमायतम्[1] । प्रविष्टा नगरीं धीरा महोपद्रवलालसाः ॥५१॥
इमे प्राप्ता द्रुतं नश्य[2] क्व यामि प्रविशालयम् । हा मातः किमिदं प्राप्तं तात तात निरीक्ष्यताम् ॥५२॥
त्रायस्व भद्र हा भ्रातः किं किं ही ही कथं कथम् । आर्यपुत्र निवर्त्तस्व तिष्ठ हा हा महद्भयम् ॥५३॥
एवं प्रवृत्तनिस्वानैराकुलैर्नगरीजनैः । सत्रस्तैर्दशवक्त्रस्य भवनं[3] पर्यपूर्यत ॥५४॥
काचिद्विगलितां काञ्चीमाक्रम्यात्यन्तमाकुला । स्वेनैव चरणेनान्ते जानुखण्डं गता भुवि ॥५५॥
हस्तालम्बितविस्रस्तवसना[4] द्युतिविह्वला । गृहीतपृथुका तन्वी चकम्पे गन्तुमुद्यता ॥५६॥
संभ्रमत्रुटितस्थूलमुक्तानिकरवर्षिणी । मेघरेखेव काचित्तु प्रस्थिता वेगधारिणी ॥५७॥

प्राप्त थे तथा सब ओरसे घबड़ाहटके शब्द सुनाई पड़ रहे थे तब क्रोधसे भरा एवं उन्नत पराक्रमका धारी, मन्दोदरीका पिता मयनामक महादैत्य कवच पहनकर, कवच धारण करनेवाले मन्त्रियोके साथ युद्धके लिए उद्यत हो देदीप्यमान हुआ रावणके भवनमे उस प्रकार पहुँचा जिस प्रकार कि श्रीसम्पन्न हरिणकेशो इन्द्रके भवन आता है ॥४३–४५॥ तब मन्दोदरीने पिताको बड़ी डाँट दिखाकर कहा कि हे तात ! इस तरह आपको दोषरूपी सागरमे निमज्जन नही करना चाहिए ॥४६॥ जिसकी घोषणा की गयी थी ऐसा जैनाचार क्या तुमने सुना नही था। इसलिए यदि अपनी भलाई चाहते हो तो प्रसाद करो–शान्त होओ ॥४७॥ पुत्रीके स्वहितकारी वचन सुनकर दैत्यपति मयने शान्त हो अपना शस्त्र उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि सूर्य अपनी किरणोके समूहको संकोच लेता है ॥४८॥ तदनन्तर जो दुर्भेद्य कवचसे आच्छादित था, मणिमय कुण्डलोसे अलंकृत था और जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था ऐसे मयने अपने जिनालयमे प्रवेश किया ॥४९॥

इतनेमे ही उद्वेलसागरके समान आकारको धारण करनेवाले कुमार, वेग सम्बन्धी वायुसे प्राकारको शिखररहित करते हुए आ पहुँचे ॥५०॥ महान् उपद्रव करनेमे जिनकी लालसा थी ऐसे वे धीरवीर कुमार, लम्बे-चौड़े गोपुरके वज्रमय किवाड़ तोड़कर नगरीके भीतर घुस गये ॥५१॥ उनके पहुँचते ही नगरीमे इस प्रकार हल्ला मच गया कि 'ये आ गये', 'जल्दी भागो' 'कहाँ जाऊँ ?' 'घरमे घुस जाओ' 'हाय मातः यह क्या आ पड़ा है ?' 'हे तात ! तात ! देखो तो सही' 'अरे भले आदमी बचाओ' हे भाई ! 'क्या क्या' 'ही ही' क्यो क्यो' हे आर्य पुत्र ! लौटा, ठहरो, हाय-हाय बड़ा भय है' इस प्रकार भयसे व्याकुल हो चिल्लाते हुए नगरवासियोसे रावणका भवन भर गया ॥५२–५४॥ कोई एक स्त्री इतनी अधिक घबड़ा गयी थी कि वह अपनी गिरी हुई मेखलाको अपने ही पैरसे लाँघती हुई आगे बढ गयी और अन्तमे पृथ्वीपर ऐसी गिरी कि उसके घुटने टूट गये ॥५५॥ खिसकते हुए वस्त्रको जिसने हाथसे पकड रखा था, जो अत्यन्त घबड़ायी हुई थी, जिसने बच्चेको उठा रखा था और जो कही जानेके लिए तैयार थी ऐसी कोई दुबली-पतली स्त्री भयसे काँप रही थी ॥५६॥ हड़बड़ाहटके कारण हारके टूट जानेसे जो मोतियो-

---

१. मायनम् म । २ नश्यत् म । ३. परिपूर्यताम् म. । ४ वित्रस्त म ।

संत्रस्तहरिणीनेत्रा स्रस्तकेशकलापिका । वक्षः प्राप्य प्रियस्यान्या बभूवोत्कम्पितोज्झिता ॥५८॥
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा लोकं भयपरायणम् । शासनान्तर्गता देवाः शान्तिप्रासादसंश्रिताः ॥५९॥
स्वपक्षपालनोद्युक्ताः करुणासक्तमानसाः । प्रातिहार्यं द्रुतं कर्तुं प्रवृत्ता भावतत्परा[1] ॥६०॥
उत्पत्य भैरवाकारा शान्तिचैत्यालयाद्दमी । गृहीतविविधाकल्पा दंष्ट्रालीभंन्टाननाः ॥६१॥
मध्याह्नार्कदुरीक्षाक्षाः क्षुब्धाः क्रोधोद्गमद्विषाः । दष्टाधरा महाकाया नानावर्णमहारवाः ॥६२॥
देहदर्शनमात्रेण विकारैर्विषमैर्युताः । वानराङ्कबलं भग्नं निन्युरत्यन्तविह्वलम् ॥६३॥
क्षणं सिंहाः क्षणं वह्निः क्षणं मेघाः क्षणं द्विपाः । क्षणं सर्पाः क्षणं वायुस्ते भवन्ति क्षणं नगाः ॥६४॥
अभिभूतानिमान् ज्ञात्वा देवैः शान्तिगृहाश्रयैः । जिनालयकृतावासास्तेषामपि हिते रताः ॥६५॥
देवाः समागता योद्धुं विकृताकारवर्त्तिनः । निजस्थानेषु तेषां हि ते वसन्त्यनुपालकाः ॥६६॥
प्रवृत्ते तुमुले क्रूरे गीर्वाणानां परस्परम् । आसीद्भावस्वभावेऽपि संदेहो विकृतिं प्रति ॥६७॥
सीदतः स्वान् सुरान् दृष्ट्वा बलिनश्च परामरान् । कपिकेतूंश्च संदृष्टान्पुनर्लङ्कामुखं स्थितान् ॥६८॥
महान्तं क्रोधमापन्नः प्रभावपरमः सुधीः । यक्षेशः पूर्णभद्राख्यो मणिभद्रमिदं जगौ ॥६९॥
एतान्पश्य कृपामुक्तान् शाखाकेसरिकेतनान् । जानन्तोऽपि समस्तानि शास्त्राणि विकृतिं गताः ॥७०॥
स्थित्याचारविनिर्मुक्तान् त्यक्ताहारं दशाननम् । योगसंयोजितात्मानं देहेऽपि रहितस्पृहम् ॥७१॥

के समूहकी वर्षा कर रही थी ऐसी कोई एक स्त्री मेघकी रेखाके समान बड़े वेगसे कहीं भागी जा रही थी ॥५७॥ भयभीत हरिणीके समान जिसके नेत्र थे, तथा जिसके बालोंका समूह बिखर गया था ऐसी कोई एक स्त्री पतिके वक्ष:स्थलसे जब लिपट गयी तभी उसकी कँपकँपी छूटी ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमें लोगोंको भयभीत देख शान्ति जिनालयके आश्रयमें रहनेवाले शासनदेव, अपने पक्षकी रक्षा करनेमें उद्यत तथा दयालुचित्त हो भावपूर्ण मनसे शीघ्र ही द्वार-पालपना करनेके लिए प्रवृत्त हुए अर्थात् उन्होंने किसीको अन्दर नहीं आने दिया ॥५९॥ जिनके आकार अत्यन्त भयंकर थे, जिन्होंने नाना प्रकारके वेष धारण कर रखे थे, जिनके मुख दाँढ़ोंकी पंक्तिसे व्याप्त थे, जिनके नेत्र मध्याह्नके सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य थे, जो क्षुभित थे, क्रोधसे विष उगल रहे थे, ओठ चाप रहे थे, डील-डौलके बड़े थे, नाना वर्णके महाशब्द कर रहे थे—और जो शरीरके देखने मात्रसे विषम विकारोंसे युक्त थे ऐसे वे शासनदेव शान्ति जिनालयसे निकल-कर वानरोंकी सेनापर ऐसे झपटे कि उसे अत्यन्त विह्वल कर क्षण-भरमें खदेड़ दिया ॥६०–६३॥ वे शासनदेव क्षण-भरमें सिंह, क्षण-भरमें अग्नि, क्षण-भरमें मेघ, क्षण-भरमें हाथी, क्षण-भरमें सर्प, क्षण-भरमें वायु और क्षण-भरमें पर्वत बन जाते थे ॥६४॥ शान्ति जिनालयके आश्रयमें रहनेवाले देवोंके द्वारा इन वानरकुमारोंको पराभूत देख; वानरोंके हितमें तत्पर रहनेवाले जो देव, शिविर-के जिनालयोंमें रहते थे वे भी विक्रियासे आकार बदलकर युद्ध करनेके लिए आ पहुँचे सो ठीक ही है क्योंकि जो अपने स्थानोंमें निवास करते हैं देव लोग उनके रक्षक होते हैं ॥६५–६६॥ तदनन्तर देवोंका परस्पर भयंकर युद्ध प्रवृत्त होनेपर उनकी विकृति देख परमार्थ स्वभावमें भी सन्देह होने लगा था ॥६७॥

अथानन्तर अपने देवोंको पराजित होते, दूसरे देवोंको बलवान् होते और अहंकारी वानरोंको लंकाके सम्मुख प्रस्थान करते देख महाक्रोधको प्राप्त हुआ परमप्रभावी बुद्धिमान् पूर्णभद्र नामका यक्षेन्द्र मणिभद्र नामक यक्षसे इस प्रकार बोला ॥६८–६९॥ कि इन दयाहीन वानरोंको तो देखो जो सब शास्त्रोंको जानते हुए भी विकारको प्राप्त हुए हैं ॥७०॥ ये लोकमर्यादा

---

१. भाव स्वभावेऽपि म., ज., ख. ।

प्रशान्तहृदयं हन्तुमुद्यतान्पापचेष्टितान् । रन्ध्रप्रहारिणः क्षुद्रान् त्यक्तवीरविचेष्टितान् ॥७२॥
मणिभद्रस्ततोऽवोचत्पूर्णभद्रसमोऽपरः । सम्यक्त्वभावितं वीरं जिनेन्द्रचरणाश्रितम् ॥७३॥
चारुलक्षणसंपूर्णं शान्तात्मानं महाद्युतिम् । रावणं न सुरेन्द्रोऽपि नेतु शक्तः पराभवम् ॥७४॥
ततस्तथास्त्विति प्रोक्ते पूर्णभद्रेण तेजसा । गुह्यकाधिपयुग्मं तज्जातं विघ्नस्य नाशकम् ॥७५॥
यक्षेश्वरौ परिक्रुद्धौ दृष्ट्वा योद्धुं समुद्यतौ । लज्जान्विताश्च भीताश्च गताः स्वं स्वं परामराः ॥७६॥
यक्षेश्वरौ महावायुप्रेरितोपलवर्षिणौ । युगान्तमेघसंकाशौ जातौ घोरोरुगर्जितौ ॥७७॥
तयोर्जङ्घासमीरेण सा नभश्चरवाहिनी । प्रेरितोदारवेगेन शुष्कपर्णचयोपमा ॥७८॥
तेषां पलायमानानां भूत्वानुपदिकाविमौ । उपालम्भकृताकूतावेकस्थौ पद्ममागतौ ॥७९॥
अभिनन्द्य च तं सम्यक् पूर्णभद्रः सुधीर्जगौ । राज्ञो दशरथस्य त्वं श्रीमतस्तस्य नन्दनः ॥८०॥
अश्लाघ्येषु निवृत्तात्मा श्लाघ्यकृत्येषु चोद्यतः । तीर्णः शास्त्रसमुद्रस्य पारं शुद्धगुणोन्नतः ॥८१॥
ईदृशस्य सतो भद्र किमेतत्सदृशं विभोः । तव सेनाश्रितैः पौरजनो ध्वंसमुपाहृतः ॥८२॥
यो यस्य हरते द्रव्यं प्रयत्नेन समार्जितम् । स तस्य हरते प्राणान् बाह्यमेतद्धि जीवितम् ॥८३॥
अनर्घवज्रवैडूर्यविद्रुमादिभिराचिता । लङ्कापुरी परिध्वस्ता त्वदीयैराकुलाङ्गना ॥८४॥
प्रौढेन्दीवरसंकाशस्ततो गरुडकेतनः । जगाद तेजसा युक्तं वचनं विधिकोविदः ॥८५॥
एतस्य रघुचन्द्रस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । महागुणधरी पत्नी शीलालंकारधारिणी ॥८६॥

और आचारसे रहित हैं। देखो, रावण तो आहार छोड़ ध्यानमे आत्माको लगा शरीरमे भी निस्पृह हो रहा है तथा अत्यन्त शान्तचित्त है फिर भी ये उसे मारनेके लिए उद्यत है, पापपूर्ण चेष्टायुक्त हैं, छिद्र देख प्रहार करनेवाले हैं, क्षुद्र है और वीरोकी चेष्टासे रहित है ॥७१-७२॥ तदनन्तर जो दूसरे पूर्णभद्रके समान था ऐसा मणिभद्र बोला कि जो सम्यक्त्वकी भावनासे सहित है, वीर है, जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोका सेवक है, उत्तम लक्षणोसे पूर्ण है, शान्त चित्त है और महादीप्तिका धारक है ऐसे रावणको पराभव प्राप्त करानेके लिए इन्द्र भी समर्थ नही है फिर इनकी तो बात ही क्या है? ॥७३-७४॥ तदनन्तर तेजस्वी पूर्णभद्रके 'तथास्तु' इस प्रकार कहनेपर दोनों यक्षेन्द्र विघ्नका नाश करनेवाले हुए ॥७५॥ तत्पश्चात् क्रोधसे भरे दोनो यक्षेन्द्रोको युद्धके लिए उद्यत देख दूसरे देव लज्जासे युक्त तथा भयभीत होते हुए अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥७६॥ दोनों यक्षेन्द्र तीव्र आँधीसे प्रेरित पाषाणोकी वर्षा करने लगे तथा अत्यन्त भयंकर विशाल गर्जना करते हुए प्रलय कालके मेघके समान हो गये ॥७७॥ उन यक्षेन्द्रोकी अत्यन्त वेगशाली जंघाओकी वायुसे प्रेरित हुई विद्याधरोकी सेना सूखे पत्तोके ढेरके समान हो गयी अर्थात् भयसे इधर-उधर भागने लगी ॥७८॥ उन भागते हुए वानरोंका पीछा करते हुए दोनो यक्षेन्द्र उलाहना देनेके अभिप्रायसे भी रामके पास आये ॥७९॥ उनमे-से बुद्धिमान् पूर्णभद्र रामकी अच्छी तरह प्रशंसा कर बोला कि तुम श्रीमान् राजा दशरथके पुत्र हो ॥८०॥ अप्रशस्त कार्योंसे तुम सदा दूर रहते और शुभ कार्योंमे सदा उद्यत रहते हो। शास्त्रोरूपी समुद्रके पारको प्राप्त हो तथा शुद्ध गुणोसे उन्नत हो ॥८१॥ हे भद्र! इस तरह सामर्थ्यवान् होनेपर भी क्या यह कार्य उचित है कि आपकी सेनाके लोगोने नगरवासी जनोको नष्ट-भ्रष्ट किया है ॥८२॥ जो जिसके प्रयत्नपूर्वक कमाये हुए धनका हरण करता है वह उसके प्राणोको हरता है क्योकि धन बाह्य प्राण कहा गया है ॥८३॥ आपके लोगोने अमूल्य हीरा, वैडूर्य, मणि तथा मूँगा आदिसे व्याप्त लंकापुरीको विध्वस्त कर दिया है तथा उसकी स्त्रियोको व्याकुल किया है ॥८४॥

तदनन्तर सब प्रकारकी विधियोके जाननेमे निपुण, प्रौढ़ नीलकमलके समान कान्तिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने ओजपूर्ण वचन कहे ॥८५॥ उन्होने कहा कि जिस दुष्ट राक्षसने इन

दुरात्मना छलं प्राप्य हृता सा येन रक्षसा । अनुकम्पा त्वया तस्य रावणस्य कथं कृता ॥८७॥
किं तेऽपकृतमस्माभिः किं वा तेन प्रियं कृतम् । कथ्यतां गुह्यकाधीश किंचिदप्यणुमात्रकम् ॥८८॥
कुटिलां भ्रकुटीं कृत्वा भीमां सन्ध्यारुणेऽलिके[1] । क्रुद्धोऽसि येन यक्षेन्द्र विना कार्यं समागतः ॥८९॥
अर्घं काञ्चनपात्रेण तस्य दत्त्वातिसाध्वसः । कपिध्वजाधिपोऽवोचत् कोपं यक्षेन्द्र ! मुच्यताम् ॥९०॥
पश्य त्वं समभावेन मद्बलस्य निजां स्थितिम् । लङ्काबलार्णवस्यापि साक्षादीतिमवीयुषः ॥९१॥
तथाप्येव प्रयत्नोऽस्य वर्तते रक्षसां विभोः । केनायं पूर्वकं साध्यः किं पुनर्बहुरूपया ॥९२॥
सक्रुद्धस्य मृधे तस्य स्खलन्त्यभिमुखा नृपाः । जैनोक्तिलब्धवर्णस्य प्रवादे वादिनो यथा ॥९३॥
तस्मात्क्षमार्पितात्मानं क्षोभयिष्यामि रावणम् । यत्साधयति नो विद्यां यथा सिद्धिं कुदर्शनः ॥९४॥
तत्तुल्यविभवा भूत्वा येन नाथेन रक्षसाम् । समं युद्धं करिष्यामो विषमं जायतेऽन्यथा ॥९५॥
पूर्णभद्रस्ततोऽवोचदस्त्वेवं किं[2] तु पीडनम् । कृत्यं नाण्वपि[3] लङ्कायां साधो जीर्णतृणेष्वपि ॥९६॥
क्षेमेण रावणाङ्गस्य वेदनाद्यविधानतः । क्षोभं कुरुत मन्ये तु दुःखं क्षुभ्यति रावणः ॥९७॥
[4]एवमुक्त्वा प्रसन्नाक्षौ तौ भव्यजनवत्सलौ । भक्तौ श्रमणसङ्घस्य वैयावृत्त्यसमुद्यतौ ॥९८॥
शशाङ्कवदनौ राजन् यक्षाणां परमेश्वरौ । अभिनन्दितपद्माद्यावन्तर्द्धिं सानुगौ गतौ ॥९९॥

रामचन्द्रकी प्राणोसे भी अधिक, महागुणोकी धारक एवं शीलव्रतरूपी अलंकारको धारण करनेवाली प्रियाको छलसे हरा है उस रावणके ऊपर तुम दया क्यों कर रहे हो ? ॥८६–८७॥ हम लोगोने तुम्हारा क्या अपकार लिया है और उसने क्या उपकार किया है सो हे यक्षराज ! कुछ थोड़ा भी तो कहो ॥८८॥ जिससे सन्ध्याके समान लाल-लाल ललाटपर कुटिल तथा भयकर भृकुटि कर कुपित हुए हो तथा विना कार्य ही यहाँ पधारे हो ॥८९॥ तदनन्तर अत्यन्त भयभीत सुग्रीवने सुवर्णमय पात्रसे उसे अर्घ देकर कहा कि हे यक्षराज ! क्रोध छोड़िए ॥९०॥ आप समभावसे हमारी सेना तथा साक्षात् ईतिपनाको प्राप्त हुए लकाके सैन्य सागरकी भी स्थिति देखिए। देखिए दोनोमे क्या अन्तर है ॥९१॥

इतना सब होनेपर राक्षसोके अधिपति रावणका यह प्रयत्न जारी है। यह रावण पहले भी किसके द्वारा साध्य था ? और फिर बहुरूपिणी विद्याके सिद्ध होनेपर तो कहना ही क्या है ? ॥९२॥ जिस प्रकार जिनागमके निपुण विद्वान्के सामने प्रवादी लोग लड़खड़ा जाते हैं उसी प्रकार युद्धमे कुपित हुए रावणके सामने अन्य राजा लड़खड़ा जाते हैं ॥९३॥ इसलिए इस समय मैं क्षमाभावसे बैठे हुए रावणको क्षोभयुक्त करूँगा क्योकि जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य सिद्धिको प्राप्त नही होता उसी प्रकार क्षोभयुक्त साधारण पुरुष भी विद्याको सिद्ध नही कर पाता ॥९४॥ रावणको क्षोभित करनेका हमारा उद्देश्य यह है कि हम तुल्य विभवके धारक हो उसके साथ युद्ध करेगे अन्यथा हमारा और उसका युद्ध विषम युद्ध होगा ॥९५॥

तदनन्तर पूर्णभद्रने कहा कि ऐसा हो सकता है किन्तु हे सत्पुरुष ! लंकामे जीर्णतृणको भी अणुमात्र भी पीड़ा नही करना चाहिए ॥९६॥ वेदना आदिक न पहुँचाकर रावणके शरीरकी कुशलता रखते हुए उसे क्षोभ उत्पन्न करो। परन्तु मै समझता हूँ कि रावण बड़ी कठिनाईसे क्षोभको प्राप्त होगा ॥९७॥

इस प्रकार कहकर जिनके नेत्र प्रसन्न थे, जो भव्यजनोपर स्नेह करनेवाले थे, भक्त थे, मुनिसंघकी वैयावृत्य करनेमे सदा तत्पर रहते थे, और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखके धारक थे ऐसे यक्षोके दोनो अधिपति रामकी प्रशंसा करते हुए सेवकोके साथ अन्तर्हित

---

१. अलिके = भाले । २. किं नु म । ३ नाद्यापि म. । ४. एवमुक्तौ म. ।

आर्याच्छन्दः

संप्राप्योपालम्भं लक्ष्मणवचनात् सुलज्जितौ तौ हि ।
संजातौ समचित्तौ निर्व्यापारौ स्थितौ येन ॥१००॥
तावद्भवति जनानामधिका प्रीतिः समाश्रयासन्ना ।
यावन्निर्दोषत्वं रविमिच्छति कः सहोत्पातम् ॥१०१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सम्यग्दृष्टिदेवप्रातिहार्यकीर्तनं नाम सप्ततितमं पर्व ॥७०॥



हो गये ॥९८-९९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, जो यक्षेन्द्र उलाहना देने आये थे वे लक्ष्मणके कहनेसे अत्यन्त लज्जित होते हुए समचित्त होकर चुपचाप बैठ रहे ॥१००॥ जबतक निर्दोषता है तभी तक निकटवर्ती पुरुषोमे अधिक प्रीति रहती है सो ठीक ही है क्योकि उत्पात सहित सूर्यकी कौन इच्छा करता है ? अर्थात् कोई नही। भावार्थ—जिस प्रकार लोग उत्पात रहित सूर्यको चाहते है उसी प्रकार दोष रहित निकटवर्ती मनुष्यको चाहते है ॥१०१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सम्यग्दृष्टि देवोंके प्रातिहार्यपनेका वर्णन करनेवाला सत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७०॥



एकसप्ततितमं पर्व

शान्तं यक्षाधिपं ज्ञात्वा सुताराम्नजसुन्दरः । दशाननपुरीं द्रष्टुमुद्यतः परमोर्जितः ॥१॥
उदाराम्बुदवृन्दाभं [1]मुक्तामाल्यविभूषितम् । धवलैश्चामरैर्दीप्तं महाघण्टानिनादितम् ॥२॥
किष्किन्धकाण्डनामानमारूढो वरवारणम् । रराज मेघपृष्ठस्थ[2]पौर्णमासीनिशाकृद्वत् ॥३॥
तथा स्कन्देन्द्रनीलाद्या महर्द्धिपरिराजिताः । तुरङ्गादिसमारूढाः कुमारा गन्तुमुद्यताः ॥४॥
पदातयो महासंख्याश्चन्दनार्चितविग्रहाः । ताम्बूलरागिणो नानामुण्डमालामनोहराः ॥५॥
कटकोद्भासिवाह्वन्ताः स्कन्धन्यस्तासिखेटकाः । चलावतंसकाश्चित्रपरमांशुकधारिणः ॥६॥
हेमसूत्रपरिक्षिप्तमौलयश्चारुविभ्रमाः । अग्रतः प्रसृता गर्वकृतालापाः सुतेजसः ॥७॥
वेणुवीणामृदङ्गादिवादित्रसदृशं वरम् । पुरो जनः प्रवीणोऽस्य चक्रे शृङ्गारनर्तनम् ॥८॥
[3]मन्द्रैस्तूर्यस्वनश्चित्रो मनोहरणपण्डितः । शङ्खनिःस्वनसंयुक्तः [4]काहलावत् समुद्ययौ ॥९॥
विविशुश्च कुमारेशाः सविलासविभूषणाः । लङ्कां देवपुरीतुल्यामसुरा इव चञ्चलाः ॥१०॥
महिम्ना पुरुणा [5]युक्तदशास्यनगरीं ततः । प्रविष्टमङ्गदं वीक्ष्य जगावित्यङ्गनाजनः ॥११॥
यस्यैषा ललिता कर्णे विमला दन्तनिर्मिता । विराजते महाकान्तिकोमला [6]तैलपत्रिका ॥१२॥
ग्रहाणामिव सर्वेषां समवायो महाप्रभः । द्वितीये[7]श्रवणे चायं चपलो मणिकुण्डलः ॥१३॥

अथानन्तर यक्षराजको शान्त सुन अतिशय बलवान् अंगद, लंका देखनेके लिए उद्यत हुआ। महामेघ मण्डलके समान जिसकी आभा थी, जो मोतियोंकी मालाओंसे अलंकृत था, सफेद चामरोंसे देदीप्यमान था और महाघण्टाके शब्दसे शब्दायमान था, ऐसे किष्किन्धकाण्ड नामक हाथीपर सवार हुआ अंगद मेघपृष्ठपर स्थित पौर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥१–३॥ इसके सिवाय जो बड़ी सम्पदासे सुशोभित थे ऐसे स्कन्द तथा नील आदि कुमार भी घोड़े आदिपर आरूढ़ हो जानेके लिए उद्यत हुए ॥४॥ जिनके शरीर चन्दनसे अर्चित थे, जिनके ओठ ताम्बूलके रंगसे लाल थे, जो नाना प्रकारके मस्तकोंके समूहसे मनोहर थे, जिनकी भुजाओंके अन्तप्रदेश अर्थात् मणिबन्ध कटकोंसे देदीप्यमान थे, जिन्होंने अपने कन्धोंपर तलवारें रख छोड़ी थीं, जिनके कर्णाभरण चंचल थे, जो चित्र-विचित्र उत्तम वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके मुकुट सुवर्ण-सूत्रोंसे वेष्टित थे, जो सुन्दर चेष्टाओंके धारक थे, जो दर्पपूर्ण वार्तालाप करते जाते थे, तथा जो उत्तम तेजके धारक थे ऐसे पदाति उन कुमारोंके आगे-आगे जा रहे थे ॥५–७॥ चतुर मनुष्य इनके आगे बाँसुरी, वीणा, मृदंग आदि बाजोंके अनुरूप शृंगारपूर्ण उत्तम नृत्य करते जाते थे ॥८॥ जो मनके हरण करनेमें निपुण था तथा शंखके शब्दोंसे संयुक्त था, ऐसा तुरहियोंका नाना प्रकारका गम्भीर शब्द काहला—रणतूर्यके शब्दके समान जोर-शोरसे उठ रहा था ॥९॥ तदनन्तर विलास और विभूषणोंसे युक्त उन चपल कुमारोंने स्वर्ग सदृश लंकामें असुर-कुमारोंके समान प्रवेश किया ॥१०॥ तत्पश्चात् महामहिमासे युक्त अंगदको लंका नगरीमें प्रविष्ट देख वहाँकी स्त्रियाँ परस्पर इस प्रकार कहने लगीं ॥११॥ हे सखि ! देख, जिसके एक कानमें दन्त निर्मित महाकान्तिसे कोमल निर्मल तालपत्रिका सुशोभित हो रही है और दूसरे कानमें समस्त ग्रहोंके समूहके समान महाप्रभासे युक्त यह चंचल मणिमय कुण्डल शोभा पा रहा है तथा जो

---

१ मुक्तामाल ख । २ पृष्ठस्थः पौर्णमासी-म., ज. । ३. मन्दस्तूर्य-म । ४ काहलादि ब । ५. युक्ता म. ।
६ तले पत्रिका म । ७. द्वितीयः श्रवणे म. ।

अपूर्वकौमुदीसर्गप्रवीण. सोऽयमुद्गत. । अङ्गदेन्दुर्दशास्यस्य नगर्यां पश्य निर्भयः ॥१४॥
किमनेनेदमारब्धं कथमेतद्भविष्यति । क्रीडेयं [1]ललितामुष्य [2]निरघा किंनु सेत्स्यति ॥१५॥
रावणालयबाह्यक्ष्मामणिकुट्टिमसंगता. । ग्राहवत्सरसोऽमिज्ञाखासमीयुः पदातयः ॥१६॥
रूपनिश्चलतां दृष्ट्वा निर्ज्ञातमणिकुट्टिमाः । पुनः प्रसरणं चक्रुर्मंदाः विस्मयपूरिताः ॥१७॥
पर्वतेन्द्रगुहाकारे महारत्नविनिर्मिते । गम्भीरे भवनद्वारे मणितोरणभासुरे ॥१८॥
अञ्जनाद्रिप्रतीकाशानिन्द्रनीलमयान् गजान् । स्निग्धगण्डस्थलान् स्थूलदन्तानत्यन्तभासुरान् ॥१९॥
सिंहबालाश्च तन्मूर्द्धन्यस्ताङ्घ्रीनूर्ध्ववालधीन् । दंष्ट्राकरालवदनान् भीषणाक्षान् सुकेसरान् ॥२०॥
दृष्ट्वा पादचरास्त्रस्ता सत्यव्यालाभिशङ्किताः । पलायितुं समारब्धाः प्राप्ता विह्वलतां पराम् ॥२१॥
ततोऽङ्गदकुमारेण तदभिज्ञेन कृच्छ्रतः । प्रबोधिता [3]प्रतीपं ते पदानि निदधुश्चिरात् ॥२२॥
प्रविष्टाश्च चलन्नेत्रा भटा. शङ्कासमन्विताः । रावणस्य गृहं सैंहं पदं मृगगणा इव ॥२३॥
द्वाराण्युल्लङ्घ्य भूरीणि परतो गन्तुमक्षमा. । गहने गृहविन्यासे जात्यन्धा इव बभ्रमुः ॥२४॥
इन्द्रनीलात्मिका[4] भित्तीः पश्यन्तो द्वारमोहिनः । आकाशाशङ्कयोपेतुं[5] स्फटिकच्छन्नसद्मसु ॥२५॥
शिलाताडितमूर्धानः पतिता रमसात्पुनः । परमाकुलतां प्राप्ता वेदनाकूणितेक्षणाः ॥२६॥
कथंचिज्जातसंचाराः कक्षान्तरमुपाश्रिताः । व्रजन्तो रभसा रुक्ता नभःस्फटिकभित्तिषु ॥२७॥
क्षुण्णाङ्घ्रिजानवस्तीव्रललाटस्फोटदु.खिताः । निववर्तिषवोऽप्येते न ययुर्निर्गमं पुनः ॥२८॥

अपूर्व चाँदनीकी सृष्टि करनेमे निपुण है ऐसा यह अंगदरूपी चन्द्रमा रावणकी नगरीमे निर्भय हो उदित हुआ है ॥१२–१४॥ देख, इसने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है ? यह कैसे होगा ? क्या इसकी यह सुन्दर क्रीड़ा निर्दोष सिद्ध होगी ? ॥१५॥

तदनन्तर जब अंगदके पदाति रावणके भवनकी मणिमय बाह्यभूमिमे पहुँचे तो उसे मगर-मच्छसे युक्त सरोवर समझकर भयको प्राप्त हुए ॥१६॥ पश्चात् उस भूमिके रूपकी निश्चलता देख जब उन्हे निश्चय हो गया कि यह तो मणिमय फर्श है तब कही वे आश्चर्यसे चकित होते हुए आगे बढे ॥१७॥ सुमेरुकी गुहाके आकार, बडे-बडे रत्नोसे निर्मित तथा मणिमय तोरणोसे देदीप्यमान जब भवनके विशाल द्वारपर पहुँचे तो वहाँ, जो अंजनगिरिके समान थे, जिनके गण्डस्थल अत्यन्त चिकने थे, जिनके बड़े-बडे दाँत थे, तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थे ऐसे इन्द्र-नीलमणि निर्मित हाथियोको और उनके मस्तकपर जिन्होने पैर जमा रखे थे, जिनकी पूँछ ऊपरको उठी हुई थी, जिनके मुख दाँढोंसे अत्यन्त भयंकर थे, जिनके नेत्रोसे भय टपक रहा था तथा जिनकी मनोहर जटाएँ थी ऐसे सिंहके बच्चोको देख सचमुचके हाथी तथा सिंह समझ पैदल सैनिक भयभीत हो गये और परम विह्वलताको प्राप्त होते हुए भागने लगे ॥१८–२१॥ तदनन्तर उनके यथार्थ रूपके जाननेवाले अंगदने जब उन्हे समझाया तब कही बड़ी कठिनाईसे बहुत देर बाद उन्होने उलटे पैर रखे अर्थात् वापस लौटे ॥२२॥ जिनके नेत्र चंचल हो रहे थे ऐसे योद्धाओने रावणके भवनमे डरते-डरते इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार कि मृगोके झुण्ड सिंहके स्थानमे प्रवेश करते है ॥२३॥ बहुत-से द्वारोंको उल्लंघकर जब वे आगे जानेके लिए असमर्थ हो गये तब सघन भवनोकी रचनामे जन्मान्धके समान इधर-उधर भटकने लगे ॥२४॥ वे इन्द्र-नीलमणि निर्मित दीवालोको देखकर उन्हे द्वार समझने लगते थे और स्फटिक मणियोसे खचित भवनोको आकाश समझ उनके पास जाते थे जिसके फलस्वरूप दोनो ही स्थानोमे शिलाओसे मस्तक टकरा जानेके कारण वे वेगसे गिर जाते थे, अत्यधिक आकुलताको प्राप्त होते थे और वेदनाके कारण उनके नेत्र बन्द हो जाते थे ॥२५–२६॥ किसी तरह उठकर आगे बढते थे तो दूसरी कक्षमे पहुँचकर फिर आकाशस्फटिककी दीवालोमे वेगसे टकरा जाते थे ॥२७॥ जिनके

१. ललिता म । २. निरर्था म । ३. प्रतीयन्ते म । ४ नीलालिका म. । ५. शङ्कया पेतु म ।

इन्द्रनीलमयीं भूमिं स्मृत्वा कांचित्समानया । बुद्ध्या प्रतारिता मन्त्नाः पेतुर्भूतलवेश्मसु ॥२९॥
तत उद्गतभूच्छेदशङ्कया शरणान्तरे । भूमिष्वैन्द्रनीलीषु ज्ञात्वा ज्ञात्वा पदं ददुः ॥३०॥
नारीं स्फटिकसोपानानामग्रगमनोद्यताम् । व्योम्नीति विविदुः पादन्यासात्तु पुनरन्यथा ॥३१॥
तां पिपृच्छिषवो यान्तः शङ्किताः पुनरन्तरा । भित्तिष्वापतितास्तस्थुः स्फाटिकीषु सुविह्वलाः ॥३२॥
पश्यन्ति शिखरं शान्तिभवनस्य समुन्नतम् । गन्तुं पुनर्न ते शक्ता भित्तिभिः स्फटिकात्मभिः ॥३३॥
विलासिनि वदाध्वानमिति कश्चित्त्वरान्वितः । करे स्तम्भसमासक्तामगृह्णाच्छालभञ्जिकाम् ॥३४॥
दृष्ट्वं कश्चित्प्रतीहारं हेमवेत्रलताकरम् । जगाद शान्तिगेहस्य पन्थानं देशयाशिति ॥३५॥
कथं न किंचिदुत्सिक्तो ब्रवीत्येष विस्रंभम. । इति घ्नन् पाणिना वेगादापाङ्गुलिचूर्णनम् ॥३६॥
कृत्रिमोऽयमिति[1] ज्ञात्वा हस्तस्पर्शनपूर्वकम् । किंचित् कक्षान्तरं जग्मुर्द्वारं विज्ञाय कृच्छ्रतः ॥३७॥
द्वारमेतन्न कुड्यं तु महानीलमयं भवेत् । इति ते संशयं प्राप्ताः करं पूर्वं समारयन् ॥३८॥
स्वयमप्यागतं मार्गं पुनर्निर्गन्तुमक्षमाः । शान्त्यालयगतां बुद्धिं कुटिलभ्रान्तयो दधुः ॥३९॥
ततः कंचिन्नरं दृष्ट्वा वाचा विज्ञाय सत्यकम् । कश्चिज्जग्राह केशेषु जगाद च सुनिष्ठुरम् ॥४०॥
गच्छ गच्छाग्रतो मार्गं शान्तिहर्म्यस्य दर्शय । इति तस्मिन् पुरो याति ते बभूवुर्निराकुलाः ॥४१॥

पैर और घुटने टूट रहे थे तथा जो ललाटकी तीव्र चोटसे तिलमिला रहे थे. ऐसे वे पदाति यद्यपि लौटना चाहते थे पर उन्हे निकलनेका मार्ग ही नही मिलता था ॥२८॥ जिस किसी तरह इन्द्रनील-मणिमय भूमिका स्मरण कर वे लौटे तो उसीके समान दूसरी भूमि देख उससे छकाये गये और पृथिवीके नीचे जो घर बने हुए थे उनमें जा गिरे ॥२९॥ तदनन्तर कहीं पृथिवी तो नही फट पड़ी है, इस शंकासे दूसरे घरमे गये और वहां इन्द्रनीलमणिमय जो भूमियां थी उनमें जान-जानकर धीरे-धीरे डग देने लगे ॥३०॥ कोई एक स्त्री स्फटिककी सीढ़ियोंसे ऊपर जानेके लिए उद्यत थी उसे देखकर पहले तो उन्होने समझा कि यह स्त्री अधर आकाशमे स्थित है परन्तु बादमे पैरोंके रखने-उठानेकी क्रियासे निश्चय कर सके कि यह नीचे ही है ॥३१॥ उस स्त्रीसे पूछनेकी इच्छासे भीतरकी दीवालोंमें टकराकर रह गये तथा विह्वल होने लगे ॥३२॥ वे शान्ति-जिनालयके ऊँचे शिखर देख तो रहे थे परन्तु स्फटिककी दीवालोंके कारण वहाँ तक जानेमें समर्थ नही थे ॥३३॥ हे विलासिनि ! मुझे मार्ग बताओ इस प्रकार पूछनेके लिए शीघ्रतासे भरे किसी सुभटने खम्भेमे लगी हुई पुतलीका हाथ पकड लिया ॥३४॥ आगे चलकर हाथमे स्वर्णमयी वेत्रलताको धारण करनेवाला एक कृत्रिम द्वारपाल दिखा उससे किसी सुभटने पूछा कि शीघ्र ही शान्ति-जिनालयका मार्ग कहो ॥३५॥ परन्तु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? जब कुछ उत्तर नही मिला तो अरे यह अहंकारी तो कुछ कहता ही नही है यह कहकर किसी सुभटने उसे वेगसे एक थप्पड़ मार दी पर इससे उसीकी अंगुलियाँ चूर-चूर हो गयी ॥३६॥ तदनन्तर हाथ स्पर्श कर उन्होने जाना कि यह सचमुचका द्वारपाल नही किन्तु कृत्रिम द्वारपाल है—पत्थर-का पुतला है। इसके पश्चात् बड़ी कठिनाईसे द्वार मालूम कर वे दूसरी कक्षमे गये ॥३७॥ 'ऐसा तो नही है कि कही यह द्वार न हो किन्तु महानील मणियोसे निर्मित दीवाल हो' इस प्रकारके संशयको प्राप्त हो उन्होने पहले हाथ पसार कर देख लिया ॥३८॥ उन सबकी भ्रान्ति इतनी कुटिल हो गयी कि वे स्वयं जिस मार्गसे आये थे उसी मार्गमे निकलनेमें असमर्थ हो गये अतः निरुपाय हो उन्होने शान्ति-जिनालयमे पहुँचनेका ही विचार स्थिर किया ॥३९॥ तदनन्तर किसी मनुष्यको देख और उसकी बोलीसे उसे सचमुच मनुष्य जान किसी सुभटने उसके केश पकड़कर कठोर शब्दोमें कहा कि चल आगे चल, शान्ति-जिनालयका मार्ग दिखा। इस प्रकार कहनेपर जब वह आगे चलने लगा तब कही वे निराकुल हुए ॥४०-४१॥

---

१. क्षत्रियोऽय-म (?)।

प्राप्ताश्च शान्तिनाथस्य भवनं मदमुद्वहत् । कुसुमाञ्जलिभिः साकं विमुञ्चन्तो जयस्वनम् ॥४२॥
घनानि स्फटिकस्तम्भै रम्यदेशेषु केषुचित् । पुराणि ददृशुर्व्योम्नि स्थितानीव सुविस्मयाः ॥४३॥
इदं चित्रमिदं चित्रमिदमन्यन्महाद्भुतम् । इति ते दर्शयांचक्रुः सद्मवस्तु परस्परम् ॥४४॥
पूर्वमेव परित्यक्तवाहनोऽङ्गदसुन्दरः । श्लाघिताद्भुतजैनेन्द्रवास्तुयातपरिच्छद ॥४५॥
ललाटोपरिविन्यस्तकराजीवकुड्मलः । कृतप्रदक्षिणः स्तोत्रमुखरं मुखमुद्वहन् ॥४६॥
अन्तरङ्गैर्वृतो बाह्यकक्षस्थापितसैन्यकः । विलासिनीमनःक्षोभदक्षो विकसितेक्षणः ॥४७॥
[1]सुप्तचित्रार्पितं पश्यन् चरितं जैनपुङ्गवम् । भावेन च नमस्कुर्वन्नाद्यमण्डपभित्तिषु ॥४८॥
धीरो भगवतः शान्तेर्विवेश परमालयम् । वन्दनां च विधानेन चकार पुरुसंमद ॥४९॥
सत्रेन्द्रनीलसंघानमयूखनिकरप्रभम् । संमुखं शान्तिनाथस्य स्वर्भानुमिव भास्वतः ॥५०॥
अपश्यच्च दशास्यं स सामिपर्यङ्कसंस्थितम् । ध्यायन् विद्यां समाधानां प्रव्रज्यां भरतो यथा ॥५१॥
जगाद चाधुना वार्ता का ते रावण कथ्यताम् । तत्ते करोमि यत् कर्तुं क्रुद्धोऽपि न यमः क्षमः ॥५२॥
कोऽयं प्रवर्तितो दम्भो जिनेन्द्राणां पुरस्त्वया । धिक् त्वां दुरितकर्माणं वृथा प्रारब्धसत्क्रियम् ॥५३॥
एवमुक्त्वोत्तरीयान्तदलेन तमताडयत् । कृत्वा कहकहाशब्दं विभ्रमी गर्वनिर्भरम् ॥५४॥
अग्रतोऽवस्थितान्यस्य पुष्पाण्यादाय तीव्रगीः । अताडयदधो वक्त्रे निभृतं प्रमदाजनम् ॥५५॥

तदनन्तर कुसुमांजलियोके साथ-साथ जय-जय ध्वनिको छोडते हुए वे सब हर्ष उत्पन्न करनेवाले भी शान्ति-जिनालयमे पहुँचे ॥४२॥ वहाँ उन्होने कितने ही सुन्दर प्रदेशोमे स्फटिक मणिके खम्भो द्वारा धारण किये हुए नगर आश्चर्यचकित हो इस प्रकार देखे मानो आकाशमे ही स्थित हों ॥४३॥ यह आश्चर्य देखो, यह आश्चर्य देखो और यह सबसे बड़ा आश्चर्य देखो इस प्रकार वे सब परस्पर एक दूसरेको जिनालयकी उत्तम वस्तुएँ दिखला रहे थे ॥४४॥ अथानन्तर जिसने वाहनका पहलेसे ही त्याग कर दिया था, जो मन्दिर के आश्चर्यकारी उपकरणोंकी प्रशंसा कर रहा था, जिसने हस्तरूपी कमलकी बोडियाँ ललाटपर धारण कर रखी थी, जिसने प्रदक्षिणाएँ दी थी, जो स्तोत्र पाठसे मुखर मुखको धारण कर रहा था, जिसने समस्त सैनिकोको बाह्य कक्षमे ही खड़ा कर दिया था, जो प्रमुख-प्रमुख निकटके लोगोसे घिरा था, जो विलासिनी जनोका मन चंचल करनेमे समर्थ था; जिसके नेत्र-कमल खिल रहे थे, जो आद्य मण्डपकी दीवालोपर मूक चित्रो द्वारा प्रस्तुत जिनेन्द्र भगवान्‌के चरितको देखता हुआ उन्हे भाव नमस्कार कर रहा था, अत्यन्त धीर था और विशाल आनन्दसे युक्त था, ऐसे अंगदकुमारने शान्तिनाथ भगवान्‌के उत्तम जिनालयमे प्रवेश किया तथा विधिपूर्वक वन्दना की ॥४५-४९॥ तदनन्तर वहाँ उसने श्री शान्तिनाथ भगवान्‌के सम्मुख अर्धपर्यंकासन बैठे हुए रावणको देखा। वह रावण, इन्द्रनील मणियोके किरण-समूहके समान कान्तिवाला था और भगवान्‌के सामने ऐसा बैठा था मानो सूर्यके सामने राहु ही बैठा हो। वह एकाग्र चित्त हो विद्याका उस प्रकार ध्यान कर रहा था जिस प्रकार कि भरत दीक्षा लेनेका विचार करता रहता था ॥५०-५१॥

उसने रावणसे कहा कि रे रावण! इस समय तेरा क्या हाल है? सो कह। अब मै तेरी वह दशा करता हूँ जिसे क्रुद्ध हुआ यम भी करनेके लिए समर्थ नही है ॥५२॥ तूने जिनेन्द्र-देवके सामने यह क्या कपट फैला रखा है? तुझ पापीको धिक्कार है। तूने व्यर्थ ही सत्क्रियाका प्रारम्भ किया है ॥५३॥ ऐसा कहकर उसने उसीके उत्तरीय वस्त्रके एक खण्डसे उसे पीटना शुरू किया तथा मुँह बनाकर गर्वके साथ कहकहा शब्द किया अर्थात् जोरका अट्टहास किया ॥५४॥ वह रावणके सामने रखे हुए पुष्पोको उठा कठोर शब्द करता हुआ नीचे स्थित स्त्री जनोके मुख-

---

१. स्वप्न म ।

आकृष्य दारपाणिभ्यां निष्ठुरं कुञ्चितेक्षणः । तापनीयानि पद्मानि चकार जिनपूजनम् ॥५६॥
पुनरागम्य दुःखाभिर्वाग्भिः संचोदयन्मुहुः । अक्षमालां करादस्य गृहीत्वा चपलोऽच्छिनत् ॥५७॥
विकीर्णां तां पुरस्तस्य पुनरादाय सर्वतः । शनैरघटयद् भूयः करे चास्य समार्पयत् ॥५८॥
करे चाकृष्य चिच्छेद पुनश्चाघटयच्चलः । चकार गलके भूयो निदधे मस्तके पुनः ॥५९॥
ततोऽन्तःपुरराजीवखण्डमध्यमुपागतः । चक्रे ग्रीष्माभितप्तस्य क्रीडां वन्यस्य दन्तिनः ॥६०॥
प्रभ्रष्टदुष्टदुर्दान्ते[1]स्तूरीपृष्ठकचञ्चलः । प्रवृत्तः शङ्कया मुक्तः सोऽन्तःपुरविलोलने ॥६१॥
कृतग्रन्थिकमाधाय कण्ठे कस्याश्चिदंशुकम् । गुर्वारोपयति द्रव्यं किंचित्स्मितपरायणः ॥६२॥
उत्तरीयेण कण्ठेऽन्यां संयम्यालम्बयत्पुरः । स्तम्भेऽमुञ्चत्पुनः शीघ्रं कृतदुःखविचेष्टिताम् ॥६३॥
दीनारैः पञ्चभिः कांचित् काञ्चीगुणसमन्विताम् । हस्ते निजमनुष्यस्य [2]व्यक्रीणात्क्रीडनोद्यतः ॥६४॥
नूपुरौ कर्णयोश्चक्रे केशपाशे च मेखलाम् । कस्याश्चिन्मूर्ध्नि रत्नं च चकार चरणस्थितम् ॥६५॥
अन्योन्यं मूर्धजैरन्या बबन्ध कृतवेपनाः[3] । चकार मस्तकेऽन्यस्याश्छेकं कूजन्मयूरकम् ॥६६॥
एवं महावृषेणेव गोकुलं परमाकुलम् । कृतमन्तःपुरं तेन संनिधौ रक्षसां विभोः ॥६७॥
अभाणीद्रावणं क्रुद्धस्त्वया[4] रे राक्षसाधम । मायया सत्त्वहीनेन राजपुत्री तदा हृता ॥६८॥
अधुना पश्यतस्तेऽहं सर्वमेव प्रियाजनम् । हरामि यदि शक्तोऽपि प्रतीकारं ततः कुरु ॥६९॥

पर कठोर प्रहार करने लगा ॥५५॥ उसने नेत्रोको कुछ संकुचित कर दुष्टतापूर्वक स्त्रीके दोनों हाथोसे स्वर्णमय कमल छीन लिये तथा उनसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५६॥ फिर आकर दु:खदायी वचनोंसे उसे वार-वार खिझाकर उस चपल अंगदने रावणके हाथसे अक्षमाला लेकर तोड़ डाली ॥५७॥ जिससे वह माला उसके सामने विखर गयी। थोड़ी देर वाद सब जगहसे विखरी हुई उसी मालाको उठा धीरे-धीरे पिरोया और फिर उसके हाथमे दे दी ॥५८॥ तदनन्तर उस चपल अंगदने रावणका हाथ खीच वह माला पुनः तोड़ डाली और फिर पिरोकर उसके गलेमे डाली। फिर निकालकर मस्तक पर रखी ॥५९॥ तत्पश्चात् वह अन्तःपुररूपी कमल-वनके वीचमे जाकर गरमीके कारण सन्तप्त जंगली हाथीकी क्रीड़ा करने लगा अर्थात् जिस प्रकार गरमीसे सन्तप्त हाथी कमल वनमे जाकर उपद्रव करता है उसी प्रकार अंगद भी अन्तःपुरमें जाकर उपद्रव करने लगा ॥६०॥ वन्धनसे टूटे दुष्ट दुर्दान्त घोड़ेके समान चंचल अंगद निःशंक हो अन्तःपुरके विलोडन करनेमे प्रवृत्त हुआ ॥६१॥ उसने किसी स्त्रीका वस्त्र छीन उसकी रस्सी वना उसीके कण्ठमे वाँधी और उसपर वहुत वजनदार पदार्थ रखवाये। यह सव करता हुआ वह कुछ-कुछ हँसता जाता था ॥६२॥ किसी स्त्रीके कण्ठमे उत्तरीय वस्त्र वांधकर उसे खम्भेसे लटका दिया फिर जव वह दु:खसे छटपटाने लगी तव उसे शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६३॥ क्रीड़ा करनेमे उद्यत अंगदने मेखला सूत्रसे सहित किसी स्त्रीको अपने ही आदमीके हाथमे पाँच दीनारसे वेच दिया ॥६४॥ उसने किसी स्त्रीके नूपुर कानोमे, और मेखला केशपाशमें पहना दी तथा मस्तकका मणि चरणोमे वांध दिया ॥६५॥ उसने भयसे कांपती हुई कितनी ही अन्य स्त्रियोको परस्पर एक दूसरेके शिरके वालोसे वांध दिया तथा किसी अन्य स्त्रीके मस्तकपर शव्द करता हुआ चतुर मयूर वैठा दिया ॥६६॥ इस प्रकार जिस तरह कोई सांड़ गायोके समूहको अत्यन्त व्याकुल कर देता है उसी तरह उसने रावणके समीप ही उसके अन्तःपुरको अत्यन्त व्याकुल कर दिया था ॥६७॥ उसने क्रुद्ध होकर रावणसे कहा कि अरे नीच राक्षस! तूने उस समय पराक्रमसे रहित होनेके कारण मायासे राजपुत्रीका अपहरण किया था परन्तु इस समय मै तेरे देखते-देखते तेरी सव स्त्रियोका अपहरण करता हूँ। यदि तेरी शक्ति हो तो प्रतीकार

१. दुर्दान्त. म.। २. विक्रीणात् म, ज । ३ कृतवेपना म.। ४. क्रुद्धिसत्वया म.।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य पुरोऽस्य मृगराजवत् । महिषीं सर्वतोऽभीष्टां प्राप्तप्रवणवेपथुम् ॥७०॥
विलोलनयनां वेण्यां गृहीत्वात्यन्तकातराम् । आचकर्ष यथा राजलक्ष्मीं भरतपार्थिव. ॥७१॥
जगौ च शूर सेयं ते दयिता जीवितादपि । मन्दोदरी महादेवी ह्रियते गुणमेदिनी ॥७२॥
इयं विद्याधरेन्द्रस्य सभामण्डपवर्तिन । चामरग्राहिणी चार्वी सुग्रीवस्य भविष्यति ॥७३॥
ततोऽसौ कम्पविस्रंसिस्तनकुम्भतटांशुकम् । समाहितं मुहुस्तन्वी कुर्वती चलपाणिना ॥७४॥
बाध्यमानाधरा नेत्रवारिणानन्तरं स्रुता । चलद्भूषणनिःस्वानमुखरीकृतविग्रहा ॥७५॥
सजन्ती पादयोर्भूय. प्रविशन्ती भुजान्तरम् । दैन्यं परममापन्ना भर्त्तारमिदमभ्यधात् ॥७६॥
त्रायस्व नाथ किंत्वेतामवस्थां मे न पश्यसि । किमन्य एव जातोऽसि नासि स स्याद्दशानन ॥७७॥
अहो ते वीतरागत्वं निर्ग्रन्थानां समाश्रितम् । ईदृशे संगते दुःखे किमनेन भविष्यति ॥७८॥
धिगस्तु तव वीर्येण किमपि ध्यानमीयुषः । यदस्य पापचेष्टस्य छिनत्सि न शिरोऽसिना ॥७९॥
चन्द्रादित्यसमानेभ्यः पुरुषेभ्यः पराभवम् । नासि मोढाधुना कस्मात्सहसे क्षुद्रतोऽमुतः ॥८०॥
लङ्केश्वरस्तु संगाढध्यानमग्नमानस. । न किंचिदश्रृणोन्नापि पश्यतिस्म सुनिश्चयः ॥८१॥
अर्द्धपर्यङ्कसंविष्टो दूरस्थापितमत्सर । मन्दरोरुगुहायातरत्नकूटमहाद्युतिः ॥८२॥
सर्वेन्द्रियक्रियामुक्तो विद्याराधनतत्पर. । निष्कम्पविग्रहो धीरः स ह्यासीत्पुस्तकायवत् ॥८३॥
विद्यां विचिन्तयन्नेष मैथिलीमिव राघवः । जगाम मन्दरस्याद्रे. स्थिरत्वेन समानताम् ॥८४॥

कर ॥६८-६९॥ इस प्रकार कह वह सिंहके समान रावणके सामने उछला और जो उसे सबसे अधिक प्रिय थी, जो भयसे काँप रही थी, जिसके नेत्र अत्यन्त चंचल थे और जो अत्यन्त कातर थी ऐसी पट्टरानी मन्दोदरीकी चोटी पकड़कर उस तरह खीच लाया जिस तरह कि राजा भरत राजलक्ष्मीको खीच लाये थे ॥७०-७१॥ तदनन्तर उसने रावणसे कहा कि हे शूर ! जो तुझे प्राणोसे अधिक प्यारी है तथा जो गुणोकी भूमि है, ऐसी यह वही मन्दोदरी महारानी हरी जा रही है ॥७२॥ यह सभामण्डपमे वर्तमान विद्याधरोके राजा सुग्रीवकी उत्तम चमर ढोलनेवाली होगी ॥७३॥ तदनन्तर जो कँपकँपीके कारण खिसकते हुए स्तनतटके वस्त्रको अपने चंचल हाथसे वार-वार ठीक कर रही थी, निरन्तर झरते हुए अश्रुजलसे जिसका अधरोष्ठ बाधित हो रहा था और हिलते हुए आभूषणोके शब्दसे जिसका समस्त शरीर शब्दायमान हो रहा था ऐसी कृशागी मन्दोदरी परमदीनताको प्राप्त हो कभी भर्तारके चरणोमे पड़ती और कभी भुजाओके मध्य प्रवेश करती हुई भर्तारसे इस प्रकार बोली कि ॥७४-७६॥ हे नाथ ! मेरी रक्षा करो, क्या मेरी इस दशाको नही देख रहे हो ? क्या तुम और ही हो गये हो ? क्या अव तुम वह दशानन नही रहे ? ॥७७॥ अहो ! तुमने तो निर्ग्रन्थ मुनियो जैसी वीतरागता धारण कर ली पर इस प्रकारके दुःख उपस्थित होनेपर इस वीतरागतासे क्या होगा ? ॥७८॥ कुछ भी ध्यान करनेवाले तुम्हारे इस पराक्रमको धिक्कार हो जो खड्गसे इस पापीका शिर नही काटते हो ॥७९॥ जिसे तुमने पहले कभी चन्द्र और सूर्यके समान तेजस्वी मनुष्योसे प्राप्त होनेवाला पराभव नही सहा सो इस समय इस क्षुद्रसे क्यो सह रहे हो ? ॥८०॥ यह सब हो रहा था परन्तु रावण निश्चयके साथ प्रगाढ़ ध्यानमे अपना चित्त लगाये हुआ था वह मानो कुछ सुन ही नही रहा था । वह अर्धपर्यंकासनसे बैठा था, मत्सरभावको उसने दूर कर दिया था, मन्दरगिरिकी विशाल गुफाओ सेप्राप्त हुई रत्नराशिके समान उसकी महाकान्ति थी, वह समस्त इन्द्रियोकी क्रियासे रहित था, विद्याकी आराधनामें तत्पर था, निष्कम्प शरीरका धारक था, अत्यन्त धीर था और ऐसा जान पड़ता था मानो मिट्टीका पुतला ही हो ॥८१-८३॥ जिस प्रकार राम सीताका ध्यान करते थे उसी प्रकार

१. विलोभ-म. ।

ततोऽथ गदतः स्पष्टं द्योतयन्ती दिशो दश । जयेति जनितालापा तस्य विद्या पुरः स्थिता ॥८५॥
जगौ च देव सिद्धाहं तवाज्ञाकरणोद्यता । नियोगो दीयतां नाथ साध्यः सकलविष्टपे ॥८६॥
एकं चक्रधरं मुक्त्वा प्रतिकूलमवस्थितम् । वशीकरोमि ते लोकं भवदिच्छानुवर्तिनी ॥८७॥
करे च चक्ररत्नं च तवैवोत्तम वर्तते । पद्मलक्ष्मीधराद्यैर्मे ग्रहणं किमिवापरैः ॥८८॥
मद्विधानां निसर्गोऽयं यन्न चक्रिणि शक्नुम । किंचित्पराभवं कर्तुमन्यत्र तु किमुच्यते ॥८९॥
ब्रूह्यद्य सर्वदैत्यानां करोमि किमु मारणम् । भवत्यप्रियचित्तानां किं वा स्वर्गौकसामपि ॥९०॥
क्षुद्रविद्यात्तगर्वेषु नभस्वत्पथगामिषु । आदरो नैव मे कश्चिद्वराकेषु तृणेष्विव ॥९१॥

उपजातिवृत्तम्

प्रणम्य[1] विद्या समुपासितोऽसौ समाप्तयोगः परमद्युतिस्थः ।
दशाननो यावदुदारचेष्टः प्रदक्षिणं शान्तिगृहं करोति ॥९२॥
तावत्परित्यज्य मनोभिरामां मन्दोदरीं खेदपरीतदेहाम् ।
उत्पत्य खं पद्मसमागमेन गतोऽङ्गदोऽसौ रविवत्सुतेजा ॥९३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने बहुरूपविद्यासन्निधानाभिधान
नामैकसप्ततितमं पर्व ॥७१॥



वह विद्याका ध्यान कर रहा था । इस तरह वह अपनी स्थिरतासे मन्दरगिरिकी समानताको प्राप्त हो रहा था ॥८४॥

अथानन्तर जिस समय मन्दोदरी रावणसे उस प्रकार कह रही थी उसी समय दशो दिशाओंको प्रकाशित करती एवं जय-जय शब्दका उच्चारण करती बहुरूपिणी विद्या उसके सामने खड़ी हो गयी ॥८५॥ उसने कहा भी कि हे देव ! मैं सिद्ध हो गयी हूँ, आपकी आज्ञा पालन करनेमें उद्यत हूँ, हे नाथ ! आज्ञा दी जाये, समस्त संसारमें मुझे सब साध्य है ॥८६॥ प्रतिकूल खड़े हुए एक चक्रधरको छोड़ मैं आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करती हुई समस्त लोकको आपके अधीन कर सकती हूँ ॥८७॥ हे उत्तम पुरुष ! चक्ररत्न तो तुम्हारे ही हाथमें है । राम-लक्ष्मण आदि अन्य पुरुष मेरा क्या ग्रहण करेंगे अर्थात् उनमें मेरे ग्रहण करनेकी शक्ति ही क्या है ? ॥८८॥ हमारी जैसी विद्याओंका यही स्वभाव है कि हम चक्रवर्तीका कुछ भी पराभव करनेके लिए समर्थ नहीं हैं और इसके अतिरिक्त दूसरेका तो कहना ही क्या है ? ॥८९॥ कहो आज, आपसे अप्रसन्न रहनेवाले समस्त दैत्योंका संहार करूँ या समस्त देवोंका ? ॥९०॥ क्षुद्र विद्याओंसे गर्वीले, तृणके समान तुच्छ दयनीय विद्याधरोंमें मेरा कुछ भी आदर नहीं है अर्थात् उन्हें कुछ भी नहीं समझती हूँ ॥९१॥ इस तरह प्रणाम कर विद्या जिसकी उपासना कर रही थी, जिसका ध्यान पूर्ण हो चुका था, जो परमदीप्तिके मध्य स्थित था तथा जो उदार चेष्टाका धारक था ऐसा दशानन जबतक शान्ति-जिनालयकी प्रदक्षिणा करता है तबतक सूर्यके समान तेजस्वी अंगद, खेदखिन्न शरीरकी धारक सुन्दरी मन्दोदरीको छोड़ आकाशमें उड़कर रामसे जा मिला ॥९२-९३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण नामक पद्मायनमें रावणके बहुरूपिणी विद्याकी सिद्धिका वर्णन करनेवाला इकहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७१॥



---

१. विद्यासमुपस्थितासौ म. ।

द्वासप्ततितमं पर्व

ततः स्त्रीणां सहस्राणि समस्तान्यस्य पादयोः । रुदन्त्यः प्रणिपत्योचुः युगपच्चारुनिःस्वनम् ॥१॥
सर्वविद्याधराधीशे वर्तमाने त्वयि प्रभो । बालकेनाङ्गदेनैत्य वयमद्य खलीकृताः ॥२॥
त्वयि ध्यानमुपासीने परमे तेजसास्पदे । विद्याधरकखद्योतो विकारं सोऽपि संश्रितः ॥३॥
पश्यैतकामवस्थां नो विहितां हतचेतसा । सौग्रीविणा विशङ्केम शिशुना भवतः पुरः ॥४॥
श्रुत्वा तद्वचनं तासां समाश्वासनतत्परः । त्रिकूटाधिपतिः क्रुद्धो जगाद विमलेक्षणः ॥५॥
मृत्युपाशेन बद्धोऽसौ ध्रुवं [1]यदिति चेष्टते । देव्यो विमुच्यतां दुःखं [2]भवत प्रकृतिस्थिताः ॥६॥
कान्ताः ! कर्त्तास्मि सुग्रीवं निर्ग्रीवं श्वो रणाजिरे । तमोमण्डलकं तं च प्रभामण्डलनामकम् ॥७॥
तयोस्तु कीदृशः कोपो भूमिगोचरकीटयोः । दुष्टविद्याधरान् सर्वान् निहन्तास्मि न संशयः ॥८॥
भ्रूक्षेपमात्रकस्यापि दयिता मम शत्रवः । गम्याः किमु महारूपविद्यया स्युस्तथा न ते ॥९॥
एवं ताः सान्त्वयित्वासौ बुद्ध्या निहतशात्रवः । तस्थौ [3]देहस्थितौ राजा निष्क्रम्य जिनसद्मनः ॥१०॥
नानावाद्यै[4]कृतानन्दश्चित्रनाट्यसमायुतः । जज्ञे स्नानविधिस्तस्य पुष्पायुधसमाकृतेः ॥११॥
राजतैः कलशैः कैश्चित् संपूर्णशशिसन्निभैः । श्यामा[5]भिः स्ना[6]प्यते कान्तिज्योत्स्नासप्लावितात्मभिः ॥१२॥

अथानन्तर रावणकी अठारह हजार स्त्रियाँ एक साथ रुदन करती उसके चरणोमे पड़कर निम्न प्रकार मधुर शब्द कहने लगी ॥१॥ उन्होने कहा हे नाथ ! समस्त विद्याधरोके अधिपति आपके विद्यमान रहते हुए भी बालक अंगदने आकर आज हम सबको अपमानित किया है ॥२॥ तेजके उत्तम स्थानस्वरूप आपके ध्यानारूढ रहनेपर वह नीच विद्याधररूपी जुगनू विकारभावको प्राप्त हुआ ॥३॥ आपके सामने सुग्रीवके दुष्ट बालकने निःशंक हो हम लोगोंकी जो दशा की है उसे आप देखो ॥४॥ उन स्त्रियोके वचन सुनकर जो उन्हे सान्त्वना देनेमे तत्पर था तथा जिसकी दृष्टि निर्मल थी ऐसा रावण कुपित होता हुआ बोला कि हे देवियो ! दुःख छोड़ो और प्रकृतिस्थ होओ—शान्ति धारण करो। वह जो ऐसी चेष्टा करता है सो निश्चित जानो कि वह मृत्युके पाशमे बद्ध हो चुका है ॥५–६॥ हे वल्लभाओ ! मै कल ही रणांगणमे सुग्रीवको निर्ग्रीव—ग्रीवारहित और प्रभामण्डलको तमोमण्डलरूप कर दूँगा ॥७॥ कीटके समान तुच्छ उन भूमिगोचरियो राम-लक्ष्मणके ऊपर क्या क्रोध करना है ? किन्तु उनके पक्षपर एकत्रित हुए जो समस्त विद्याधर है उन्हे अवश्य मारूँगा ॥८॥ हे प्रिय स्त्रियो ! शत्रु तो मेरी भौंहके इशारे मात्रसे साध्य है फिर अब तो बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई है अतः उससे वशीभूत क्यो न होगे ? ॥९॥ इस प्रकार उन स्त्रियोंको सान्त्वना देकर रावणने मनमे सोचा कि अब तो मैंने शत्रुओको मार लिया। तदनन्तर जिनमन्दिरसे निकलकर वह स्नान आदि शरीर सम्बन्धी कार्य करनेमे लीन हुआ ॥१०॥

अथानन्तर जिसमे नाना प्रकारके वादित्रोसे आनन्द मनाया जा रहा था तथा जो नाना प्रकारके अद्‌भुत नृत्योसे सहित था ऐसा, कामदेवके समान सुन्दर रावणका स्नान-समारोह सम्पन्न हुआ ॥११॥ जो कान्तिरूपी चाँदनीमे निमग्न होनेके कारण श्यामा अर्थात् रात्रिके समान जान पड़ती थी ऐसी कितनी ही श्यामा अर्थात् नवयौवनवती स्त्रियोने पूर्णचन्द्रके समान चाँदीके

---

१ यदि विचेष्टते । २ भवत्य म । ३ देह स्थितो म । ४ वाद्य म. । ५. 'क्षणदा रजनी भक्तं दोषा श्यामा क्षपा कर.' इति धनजय. । ६ स्नाप्यते म , ज ।

पद्मकान्तिभिरन्याभिः संध्याभिरिव सादरम् । बालभास्वरसंकाशैः कलशैर्हाटकात्मभिः ॥१३॥
गारुत्मतमणिनिर्माणैः कुम्भैरन्याभिरुत्तमैः । स्त्रीभिः साक्षादिव श्रीभिः पद्मपत्रपुटैरिव ॥१४॥
कैश्चिद्बालातपच्छायैः कदलीगर्भपाण्डुभिः । अन्यैर्गन्धसमाकृष्टमधुव्रतकदम्बकैः ॥१५॥
उद्वर्त्तनैः सुलीलाभिः स्त्रीभिरुद्वर्त्तितोऽमजत् । स्नानं नानामणिस्फीतप्रभाभाजि वरासने ॥१६॥
सुस्नातोऽलंकृतः कान्तः प्रयतो भावपूरितः । पुनः शान्तिजिनेन्द्रस्य विवेश भवनं नृपः ॥१७॥
कृत्वा तत्र परां पूजामर्हतां स्तुतितत्परः । चिरं [1]त्रिभिः प्रणामं च भेजे भोजनमण्डपम् ॥१८॥
चतुर्विधोत्तमाहारविधिं निर्माय पार्थिवः । विद्यापरीक्षणं कर्तुमार क्रीडनभूमिकाम् ॥१९॥
अनेकरूपनिर्माणं जनितं तेन विद्यया । विविधं चाद्भुतं कर्म विद्याधरजनातिगम् ॥२०॥
तत् कराहतभूकम्पसमाघूर्णितविग्रहम् । जातं परबलं भीतं जगौ निधनशङ्कितम् ॥२१॥
ततस्तं सचिवाः प्रोचुः कृतविद्यापरीक्षणम् । अधुना नाथ मुक्त्वा त्वां नास्ति राघवसूदनः ॥२२॥
भवतो नापरः कश्चित् पद्मस्य क्रोधसङ्गिनः । [2]इष्वासस्य पुरः स्थातुं समर्थः समराजिरे ॥२३॥
विद्ययाथ महर्द्धिस्थो विकृत्य परमं बलम् । संप्रति प्रमदोद्यानं प्रतस्थे प्रतिचक्रभृत् ॥२४॥
सचिवैरावृतो वीरैः सुरैराखण्डलो यथा । अप्रवृष्यः समागच्छन् स रेजे भास्करोपमः ॥२५॥

कलशोंसे उसे स्नान कराया ॥१२॥ कमलके समान कान्तिवाली होनेसे जो प्रातः सन्ध्याके समान जान पड़ती थीं ऐसी कितनी स्त्रियोंने बालसूर्यके समान देदीप्यमान स्वर्णमय कलशोंसे आदरपूर्वक उसे नहलाया था ॥१३॥ कुछ अन्य स्त्रियोंने नीलमणिसे निर्मित उत्तम कलशोंसे उसे स्नान कराया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कमलके पत्रपुटोंसे लक्ष्मी नामक देवियोंने ही स्नान कराया हो ॥१४॥ कितनी ही स्त्रियोंने प्रातःकालीन घामके समान लालवर्णके कलशोंसे, कितनी ही स्त्रियों-ने कदलीवृक्षके भीतरी भागके समान सफेद रंगके कलशोंसे तथा कितनी ही स्त्रियोंने सुगन्धिके द्वारा भ्रमरसमूहको आकर्षित करनेवाले अन्य कलशोंसे उसे नहलाया था ॥१५॥ स्नानके पूर्व उत्तम लीलावती स्त्रियोंने उसे नाना प्रकारके सुगन्धित उबटनोंसे उबटन लगाया था और उसके बाद उसने नाना प्रकारके मणियोंकी फैलती हुई कान्तिसे युक्त उत्तम आसनपर बैठकर स्नान किया था ॥१६॥ स्नान करनेके बाद उसने अलंकार धारण किये और तदनन्तर उत्तम भावोंसे युक्त हो श्रीशान्ति-जिनालयमें प्रवेश किया ॥१७॥ वहाँ उसने स्तुतिमें तत्पर रहकर चिरकाल तक अर्हन्त भगवान्‌की उत्तम पूजा की, मन, वचन, कायसे प्रणाम किया और उसके बाद भोजन गृहमें प्रवेश किया ॥१८॥ वहाँ चार प्रकारका उत्तम आहार कर वह विद्याकी परीक्षा करनेके लिए क्रीड़ाभूमिमें गया ॥१९॥ वहाँ उसने विद्याके प्रभावसे अनेक रूप बनाये तथा नानाप्रकारके ऐसे आश्चर्यजनक कार्य किये जो अन्य विद्याधरोंको दुर्लभ थे ॥२०॥ उसने पृथ्वीपर इतने जोरसे हाथ पटका कि पृथ्वी काँप उठी और उसपर स्थित शत्रुओंके शरीर घूमने लगे तथा शत्रुसेना भयभीत हो मरणकी शंकासे चिल्लाने लगी ॥२१॥ तदनन्तर विद्याकी परीक्षा कर चुकनेवाले रावणसे मन्त्रियोंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपको छोड़ और कोई दूसरा रामको मारने-वाला नहीं है ॥२२॥ रणांगणमें कुपित हो बाण छोड़नेवाले रामके सामने खड़ा होनेके लिए आपके सिवाय और कोई दूसरा समर्थ नहीं है ॥२३॥

अथानन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंसे सम्पन्न रावण, विद्याके प्रभावसे एक बड़ी सेना बना, चक्ररत्नको धारण करता हुआ उस प्रमद नामक उद्यानकी ओर चला जहाँ सीताका निवास था ॥२४॥ उस समय वीर-वीर मन्त्रियोंसे घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो देवोंसे घिरा हुआ इन्द्र ही हो। अथवा जो बिना किसी रोक-टोकके चला आ रहा था ऐसा रावण सूर्यके

१ त्रिभिः म.। त्रिभिः मनोवाक्कायैरित्यर्थः। २ बाणान् मोचयितुः।

तमालोक्य समायान्तं विद्याधर्यो यमापिरे । पश्य पश्य शुभे सीते रावणस्य महाद्युतिम् ॥२६॥
पुष्पकाग्रादयं श्रीमान् अवतीर्य महाबलः । नानाधातुविचित्राङ्गान् महीभृद्गह्वरादिव ॥२७॥
गजेन्द्र इव सक्षीवः सूर्यांशुपरितापितः । स्मरानलपरीताङ्गः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥२८॥
पुष्पशोभापरिच्छन्नसुपगीतं षडङ्घ्रिभिः । विशति प्रमदोद्यानं दृष्टिरत्र निधीयताम् ॥२९॥
त्रिकूटाधिपतावस्मिन् रूपं निरुपमं श्रिते । सफला जायतां ते दृक् रूपं चास्येदमुत्तमम् ॥३०॥
ततो विमलया दृष्ट्या तया बाह्यान्तरात्मनः । चापान्धकारितं वीक्ष्य बलमेवमचिन्त्यत ॥३१॥
अदृष्टपारमुद्वृत्तं बलमीदृक् महाप्रमम् । रामो लक्ष्मीधरो वापि दुःखं जयति संयुगे ॥३२॥
अधन्या किं नु पद्माभं किं वा लक्ष्मणसुन्दरम् । हतं श्रोष्यामि संग्रामे किं वा पापा सहोदरम् ॥३३॥
एवं चिन्तामुपायातां परमाकुलितात्मिकाम् । कम्पमानां परित्रस्तां सीतामागत्य रावणः ॥३४॥
जगाद देवि ! पापेन त्वं मया छद्मना हृता । क्षात्रगोत्रप्रसूतानां किमिदं सांप्रतं सताम् ॥३५॥
अवश्यम्भाविनो नूनं कर्मणो गतिरीदृशी । स्नेहस्य परमस्येयं मोहस्य बलिनोऽथ वा ॥३६॥
साधूनां सन्निधौ पूर्वं व्रतं भगवतो मया । वन्द्यस्यानन्तवीर्यस्य पादमूले समार्जितम् ॥३७॥
या वृणोति न मां नारी रमयामि न तामहम् । यद्युर्वशी स्वयं रम्भा यदि वान्या मनोरमा ॥३८॥
इति पालयता सत्यं प्रसादापेक्षिणा मया । प्रसभं[1] रमिता नासि जगदुत्तमसुन्दरि ॥३९॥
अधुनालम्बने छिन्ने मद्भुजप्रेरितैः शरैः । वैदेहि ! पुष्पकारूढा विहर स्वेच्छया जगत् ॥४०॥

समान सुशोभित हो रहा था ॥२५॥ उसे आता देख विद्याधरियोने कहा कि हे शुभे! सीते! देख, रावणकी महाकान्ति देख ॥२६॥ जो नाना धातुओसे चित्र-विचित्र हो रहा है ऐसे पुष्पक विमानसे उतरकर यह श्रीमान् महाबलवान् ऐसा चला आ रहा है मानो पर्वतकी गुफासे निकलकर सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त हुआ उन्मत्त गजराज ही आ रहा हो। इसका समस्त शरीर कामग्निसे व्याप्त है तथा यह पूर्णचन्द्रके समान मुखको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ यह फूलोंकी शोभासे व्याप्त भ्रमरोके संगीतसे मुखरित प्रमद उद्यानमे प्रवेश कर रहा है। जरा इसपर दृष्टि तो डालो ॥२९॥ अनुपम रूपको धारण करनेवाले इस रावणको देखकर तेरी दृष्टि सफल हो जावेगी और इसका यह उत्तम रूप भी सफल हो जायेगा ॥३०॥ तदनन्तर सीताने निर्मल दृष्टिसे बाहर और भीतर धनुपके द्वारा अन्धकार उत्पन्न करनेवाले रावणका बल देख इस प्रकार विचार किया कि इसके इस प्रचण्ड बलका पार नही है। राम और लक्ष्मण भी इसे युद्धमे बड़ी कठिनाईसे जीत सकेंगे ॥३१-३२॥ मैं बड़ी अभागिनी हूँ, बड़ी पापिनी हूँ जो युद्धमे राम-लक्ष्मण अथवा भाई भामण्डलके मरनेका समाचार सुनूँगी ॥३३॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त होनेसे जिसकी आत्मा अत्यन्त विह्वल हो रही थी, तथा जो भयसे कांप रही थी ऐसी सीताके पास आकर रावण बोला कि हे देवि ! मुझ पापीने तुम्हे छलसे हरा था सो क्षत्रियकुलमे उत्पन्न हुए सत्पुरुषोके लिए क्या यह उचित है ? ॥३४-३५॥ जान पड़ता है कि किसी अवश्य भावी कर्मकी यह दशा है अथवा परम स्नेह और सातिशय बलवान् मोहका यह परिणाम है ॥३६॥ मैंने पहले अनेक मुनियोके सन्निधानमे वन्दनीय श्रीभगवान् अनन्तवीर्य केवलीके पादमूलमे यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे नही वरेगी मैं उसके साथ रमण नही करूँगा भले ही वह उर्वशी, रम्भा अथवा और कोई मनोहारिणी स्त्री हो ॥३७-३८॥ हे जगत्की सर्वोत्तम सुन्दरि ! इस सत्यव्रतका पालन करता हुआ मै तुम्हारे प्रसादकी प्रतीक्षा करता रहा हूँ और बलपूर्वक मैंने तुम्हारा रमण नही किया है ॥३९॥ हे वैदेहि ! अब मेरी भुजाओंसे प्रेरित बाणोसे तुम्हारा आलम्बन जो राम था सो छिन्न होनेवाला है इसलिए पुष्पक विमानमे आरूढ़ हो अपनी इच्छानुसार जगत्मे विहार करो ॥४०॥

---

१. बलात् ।

शिखराण्यगराजस्य चैत्यकूटानि सागरम् । महानदीश्च पश्यन्ती जनयात्मसुखासिकाम् ॥४१॥
कृत्वा करपुटं सीता ततः करुणमभ्यधात् । बाष्पसंभारसंरुद्धकण्ठा कृच्छ्रेण सादरम् ॥४२॥
दशानन ! यदि प्रीतिर्विद्यते तव मां प्रति । प्रसादो वा ततः कर्तुं ममेदं वाक्यमर्हसि ॥४३॥
क्रुद्धेनापि त्वया संख्ये प्राप्तोऽभिमुखतामसौ । अनिवेदितसंदेशो न हन्तव्यः प्रियो मम ॥४४॥
पद्म भामण्डलस्वस्रा तव संदिष्टमीदृशम् । यथा श्रुत्वान्यथा त्वाहं विधियोगेन संयुगे ॥४५॥
महता शोकभारेण समाक्रान्ता सती प्रभो । वात्याहतप्रदीपस्य शिखेव क्षणमात्रतः ॥४६॥
राजर्षेस्तनया शोच्या जनकस्य महात्मनः । प्राणानेषा न मुञ्चामि त्वत्समागमनोत्सुका ॥४७॥
इत्युक्त्वा मूर्च्छिता भूमौ पपात मुकुलेक्षणा । हेमकल्पलता यद्वद्भग्ना मत्तेन दन्तिना ॥४८॥
तदवस्थामिमां दृष्ट्वा रावणो मृदुमानसः । बभूव परमं दुःखी चिन्तां चैतामुपागतः ॥४९॥
अहो [2]निकाचितस्नेहः कर्मबन्धोदयादयम्[3] । अवसानविनिर्मुक्तः कोऽपि संसारगह्वरे ॥५०॥
धिक् धिक् किमिदमश्लाघ्यं कृतं सुविकृतं मया । यदन्योन्यरतं भीरुमिथुनं संवियोजितम् ॥५१॥
पापातुरो विना कार्यं पृथग्जनसमो महत् । अयशोमलमाप्तोऽस्मि सद्भिरत्यन्तनिन्दितम् ॥५२॥
शुद्धाम्भोजसमं गोत्रं विपुलं मलिनीकृतम् । दुरात्मना मया कष्टं कथमेतदनुष्ठितम् ॥५३॥
धिङ्नारीं पुरुषेन्द्राणां सहसा मारणरसिकाम् । किंपाकफलदेशीयां क्लेशोत्पत्तिवसुंधराम् ॥५४॥
भोगिमूर्द्धमणिच्छायासदृशी मोहकारिणी । सामान्येनाङ्गना तावत् परस्त्री तु विशेषतः ॥५५॥

सुमेरुके शिखर, अकृत्रिम चैत्यालय, समुद्र और महानदियोंको देखती हुई अपने आपको सुखी करो ॥४१॥

तदनन्तर अश्रुओके भारसे जिसका कण्ठ रुँध गया था ऐसी सीता बड़े कष्टसे आदरपूर्वक हाथ जोड करुण स्वरमे रावणसे बोली ॥४२॥ कि हे दशानन ! यदि मेरे प्रति तुम्हारी प्रीति है अथवा मुझपर तुम्हारी प्रसन्नता है तो मेरा यह वचन पूर्ण करनेके योग्य हो ॥४३॥ युद्धमे राम तुम्हारे सामने आवें तो कुपित होनेपर भी तुम मेरा सन्देश कहे विना उन्हे नही मारना ॥४४॥ उनसे कहना कि हे राम ! भामण्डलकी बहनने तुम्हारे लिए ऐसा सन्देश दिया है कि कर्मयोगसे तुम्हारे विषयकी युद्धमे अन्यथा बात सुन महात्मा राजर्षि जनककी पुत्री सीता, अत्यधिक शोकके भारसे आक्रान्त होती हुई आँधीसे ताड़ित दीपककी शिखाके समान क्षणभरमे शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है । हे प्रभो ! मैंने जो अभी तक प्राण नही छोड़े है सो आपके समागमकी उत्कण्ठासे ही नही छोड़े हैं ॥४५–४७॥ इतना कह वह मूर्च्छित हो नेत्र बन्द करती हुई उस तरह पृथिवीपर गिर पड़ी जिस तरह कि मदोन्मत्त हाथीके द्वारा खण्डित सुवर्णमयी कल्पलता गिर पड़ती है ॥४८॥

तदनन्तर सीताकी वैसी दशा देख कोमल चित्तका धारी रावण परम दुखी हुआ तथा इस प्रकार विचार करने लगा कि अहो ! कर्मबन्धके कारण इनका यह स्नेह निकाचित स्नेह है—कभी छूटनेवाला नही है । जान पड़ता है कि इसका संसाररूपी गर्तमे रहते कभी अवसान नहीं होगा ॥४९–५०॥ मुझे बार-बार धिक्कार है मैने यह क्या निन्दनीय कार्य किया जो परस्पर प्रेमसे युक्त इस मिथुनका विछोह कराया ॥५१॥ मै अत्यन्त पापी हूँ विना प्रयोजन ही मैने साधारण मनुष्यके समान सत् पुरुषोसे अत्यन्त निन्दनीय अपयशरूपी मल प्राप्त किया है ॥५२॥ मुझ दुष्टने कमलके समान शुद्ध विशाल कुलको मलिन किया है । हाय-हाय, मैने यह अकार्य कैसे किया ? ॥५३॥ जो बड़े-बड़े पुरुषोंको सहसा मार डालती है, जो किम्पाक फलके समान है तथा दु.खोंकी उत्पत्तिकी भूमि है ऐसी स्त्रीको धिक्कार है ॥५४॥ सामान्य रूपसे स्त्री मात्र, नाग-

---

१ सीतया । २ निकाञ्चितस्नेहः म । ३ -दहम् म. ।

नदीव कुटिला भीमा धर्मार्थपरिनाशिनी । वर्जनीया सतां यत्नात्सर्वाशुभमहाखनिः ॥५६॥
अमृतेनेव या दृष्टा मामसिञ्चन्मनोहरा । अमरीभ्योऽपि दयिता सर्वाभ्यः पूर्वमुत्तमा ॥५७॥
अद्यैव सा परासक्तहृदया जनकात्मजा । विषकुम्भीसमात्यन्तं संजातोद्वेजिनी मम ॥५८॥
अनिच्छन्त्यपि मे पूर्वमशून्यं याऽकरोन्मन. । सैवेयमधुना जीर्णतृणानादरमागता ॥५९॥
अधुनान्याहितस्वान्ता यद्यपीच्छेदियं तु माम् । तथापि कानया प्रीतिः सद्भावपरिमुक्तया ॥६०॥
आसीद्यदानुकूलो मे विद्वान् भ्राता विभीषण. । उपदेष्टा तदा नैवं शमं दुष्ट मनो गतम् ॥६१॥
प्रमादाद्विकृतिं प्राप्तं मनः समुपदेशतः । प्रायः पुण्यवतां पुंसां वशीभावेऽवतिष्ठते ॥६२॥
श्वः संग्रामकृतौ सार्द्धं सचिवैर्मन्त्रणं कृतम् । अधुना कीदृशी मैत्री वीरलोकविगर्हिता ॥६३॥
योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । अहो संकटमापन्नः प्राकृतोऽहमिदं महत् ॥६४॥
यद्यर्पयामि पद्माय जानकीं कृपयाधुना । लोको दुर्ग्रहचित्तोऽयं ततो मां वेत्त्यशक्तकम् ॥६५॥
यत् किंचित्करणोन्मुक्तः सुखं जीवति निर्घृणः । जीवत्यस्मद्विधो दु.खं करुणामृदुमानस ॥६६॥
हरिताक्ष्यसमुद्यद्धौ तौ कृत्वाजौ निरस्त्रकौ । जीवग्राहं गृहीतौ च पद्मलक्षणसंज्ञकौ ॥६७॥
पश्चाद्विभवसंयुक्तो पद्मनामाय मैथिलीम् । अर्पयामि न मे पापं तथा सत्युपजायते ॥६८॥
महाँल्लोकापवादश्च भयान्यायसमुद्भव. । न जायते करोम्येवं ततो निश्चिन्तमानसः ॥६९॥

राजके फणपर स्थित मणिकी कान्तिके समान मोह उत्पन्न करनेवाली है और परस्त्री विशेष रूपसे मोह उत्पन्न करनेवाली है ॥५५॥ यह नदीके समान कुटिल है, भयकर है, धर्म अर्थको नष्ट करनेवाली है, और समस्त अशुभोकी खानि है। यह सत्पुरुषोके द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़नेके योग्य है ॥५६॥ जो सीता पहले इतनी मनोहर थी कि दिखनेपर मानो अमृतसे ही मुझे सीचती थी और समस्त देवियोंसे भी अधिक प्रिय जान पड़ती थी आज वही परासक्त हृदया होनेसे विष-भृत कलशीके समान मुझे अत्यन्त उद्वेग उत्पन्न कर रही है ॥५७–५८॥ नही चाहनेपर भी जो पहले मेरे मनको अशून्य करती थी अर्थात् जो मुझे नही चाहती थी फिर भी मै मनमे निरन्तर जिसका ध्यान किया करता था वही आज जीर्ण तृणके समान अनादरको प्राप्त हुई है ॥५९॥ अन्य पुरुषमें जिसका चित्त लग रहा है ऐसी यह सीता यदि मुझे चाहती भी है तो सद्भावसे रहित इससे मुझे क्या प्रीति हो सकती है ? ॥६०॥ जिस समय मेरा विद्वान् भाई विभीषण, मेरे अनुकूल था तथा उसने हितका उपदेश दिया था उस समय यह दुष्ट मन इस प्रकार शान्तिको प्राप्त नही हुआ ॥६१॥ अपितु उसके उपदेशसे प्रमादके वशीभूत हो उलटा विकार भावको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योकि प्राय.कर पुण्यात्मा पुरुषोका ही मन वशमे रहता है ॥६२॥ यह विचार करनेके अनन्तर रावणने पुनः विचार किया कि कल संग्राम करनेके विषयमे मन्त्रियोके साथ मन्त्रणा की थी फिर इस समय वीर लोगोके द्वारा निन्दित मित्रताकी चर्चा कैसी ? ॥६३॥ युद्ध करना और करुणा प्रकट करना ये दो काम विरुद्ध हैं। अहो ! मै एक साधारण पुरुषकी तरह इस महान् संकटको प्राप्त हुआ हूँ ॥६४॥ यदि मै इस समय दयावश रामके लिए सीताको सौंपता हूँ तो लोग मुझे असमर्थ समझेगे क्योकि सबके चित्तको समझना कठिन है ॥६५॥ जो चाहे सो करनेमे स्वतन्त्र है ऐसा निर्दय मनुष्य सुखसे जीवन बिताता और जिसका मन दयासे कोमल है ऐसा मेरे समान पुरुष दुःखसे जीवन काटता है ॥६६॥ यदि मै सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओसे युक्त राम-लक्ष्मणको युद्धमे निरस्त्र कर जीवित पकड़ लूँ और पश्चात् वैभवके साथ रामके लिए सीता-को वापस सौंपूँ तो ऐसा करनेसे मुझे सन्ताप नही होगा ॥६७–६८॥ साथ ही भय और अन्यायसे उत्पन्न हुआ बहुत भारी लोकापवाद भी नही होगा अत. मैं निश्चिन्त चित्त होकर ऐसा ही करता

---

१. दर्पं नीच मन शम नैव गतम् । २. स्वसंग्रामवृत्ती म । ३ निश्चितमानस म ।

मनसा संप्रधार्यैवं महाविभवसंगतः । ययावन्तःपुराम्भोजखण्डं रावणवारणः ॥७०॥
ततः परिभवं स्मृत्वा महान्तं शत्रुसंभवम् । क्रोधारुणेक्षणो भीमः संवृत्तोऽन्तकसंनिभः ॥७१॥
बभाण दशवक्त्रस्तद्वचनं स्फुरिताधरः । स्त्रीणां मध्ये ज्वरो येन समुद्भूतः सुदुःसहः ॥७२॥
गृहीत्वा समरे पापं तं दुर्ग्रीवं सहाङ्गदम् । भागद्वयं करोम्येष खड्गेन द्युतिहासिना ॥७३॥
तमोमण्डलकं तं च गृहीत्वा दृढसंयतम् । लोहमुद्गरनिर्घातैस्त्याजयिष्यामि जीवितम् ॥७४॥
करालतीक्ष्णधारेण क्रकचेन मरुत्सुतम् । यन्त्रितं काष्ठयुग्मेन पाटयिष्यामि दुर्णयम् ॥७५॥
मुक्त्वा राघवमुद्वृत्तानखिलानाहवे परान् । अस्त्रौघैश्चूर्णयिष्यामि दुराचारान् हतात्मनः ॥७६॥
इति निश्चयमापन्ने वर्तमाने दशानने । वाचो नैमित्तवक्त्रेषु चरन्ति मगधेश्वर ॥७७॥
उत्पाता शतशो भीमाः संप्रत्येते समुद्गताः । आयुधप्रतिमो रूक्षः परिवेषः खरत्विषः ॥७८॥
समस्तां रजनीं चन्द्रो नष्टः क्वापि भयादिव । निपेतुर्घोरनिर्घाता भूकम्पः सुमहानभूत् ॥७९॥
वेपमाना दिशि प्राच्यामुल्का[1] शोणितसंनिभा । पपात विरसं रेटुरुत्तरेण तथा शिवाः ॥८०॥
ह्रेषन्ते कम्पितग्रीवास्तुरङ्गाः प्रखरस्वनाः । हस्तिनो रूक्षनिःस्वाना घ्नन्ति हस्तेन मेदिनीम् ॥८१॥
दैवतप्रतिमा जाता लोचनोदकदुर्दिना । निपतन्ति महावृक्षा[2] विना दृष्टेन हेतुना ॥८२॥
आदित्याभिमुखीभूताः काकाः खरतरस्वना[3] । संघातवर्जिनो जाताः स्रस्तपक्षा महाकुला ॥८३॥
सरांसि सहसा शोषं प्राप्तानि विपुलान्यपि । निपेतुर्गिरिशृङ्गाणि नभो वर्षति शोणितम् ॥८४॥

हूँ ॥६९॥ मनसे इस प्रकार निश्चय कर महावैभवसे युक्त रावणरूपी हाथी अन्तःपुररूपी कमलवनमे चला गया ॥७०॥

तदनन्तर शत्रुकी ओरसे उत्पन्न महान् परिभवका स्मरण कर रावणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और वह स्वयं यमराजके समान भयंकर हो गया ॥७१॥ जिसका ओठ कांप रहा था ऐसा रावण वह वचन बोला कि जिससे स्त्रियोके बीचमे अत्यन्त दुःसह ज्वर उत्पन्न हो आया ॥७२॥ उसने कहा कि मै युद्धमे अंगद सहित उस पापी दुर्ग्रीवको पकड़कर किरणोंसे हँसनेवाली तलवारसे उसके दो टुकड़े अभी हाल करता हूँ ॥७३॥ उस भामण्डलको पकड़कर तथा अच्छी तरह बाँधकर लोहके मुद्गरोंकी मारसे उसके प्राण छुड़ाऊँगा ॥७४॥ और अन्यायी हनूमान्‌को दो लकड़ियोके सिकंजेमे कसकर अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली करोंतसे चीरूँगा ॥७५॥ एक रामको छोड़कर मर्यादा-उल्लंघन करनेवाले जितने अन्य दुराचारी दुष्ट शत्रु हैं उन सवको युद्धमे शस्त्र-समूहसे चूर-चूर कर डालूँगा ॥७६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर! जब रावण उक्त प्रकारका निश्चय कर रहा था तब निमित्तज्ञानियोके मुखोमे निम्न प्रकारके वचन विचरण कर रहे थे अर्थात् वे परस्पर इस प्रकारकी चर्चा कर रहे थे कि ॥७७॥ देखो, ये सैकड़ो प्रकारके उत्पात हो रहे हैं। सूर्यके चारो ओर शस्त्रके समान अत्यन्त रूक्ष परिवेष—परिमण्डल रहता है ॥७८॥ पूरी-की पूरी रात्रि-भर चन्द्रमा भयसे ही मानो कही छिपा रहता है, भयंकर वज्रपात होते हैं, अत्यधिक भूकम्प होता है ॥७९॥ पूर्व दिशामे काँपती हुई रुधिरके समान लाल उल्का गिरी थी और उत्तर दिशामे शृगाल नीरस शब्द कर रहे थे ॥८०॥ घोड़े ग्रीवाको कँपाते तथा प्रखर शब्द करते हुए हँसते हैं और हाथी कठोर शब्द करते हुए सूँड़से पृथिवीको ताड़ित करते हैं अर्थात् पृथिवीपर सूँड़ पटकते हैं ॥८१॥ देवताओकी प्रतिमाएँ अश्रुजलकी वर्षाके लिए दुर्दिन स्वरूप बन गयी हैं। बड़े-बड़े वृक्ष विना किसी दृष्ट कारणके गिर रहे हैं ॥८२॥ सूर्यके सम्मुख हुए कौए अत्यन्त तीक्ष्ण शब्द कर रहे हैं, अपने झुण्डोको छोड़ अलग-अलग जाकर बैठे हैं, उनके पंख ढीले पड़ गये हैं तथा वे अत्यन्त व्याकुल दिखाई देते हैं ॥८३॥ बड़ेसे बडे तालाब भी अचानक सूख गये हैं। पहाड़ोकी चोटियाँ

---

१. युक्ता म । २. ग्रहावृक्षा म. । ३. करकरस्वना. ज. ।

स्वल्पैरेव दिनैः प्रायः प्रभोराचक्षते मृतिम् । विकाराः खलु भावानां जायन्ते नान्यथेदृशाः[1] ॥८५॥
क्षीणेष्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् । जनता कर्मतन्त्रेयं गुणभूतं हि पौरुषम् ॥८६॥
लभ्यते खलु लब्धव्यं नातः शक्यं पलायितुम् । न काचिच्छूरता दैवे प्राणिनां स्वकृताशिनाम् ॥८७॥
सर्वेषु नयशास्त्रेषु कुशलो लोकतन्त्रवित् । जैनव्याकरणाभिज्ञो महागुणविभूषितः ॥८८॥
एवंविधो भवन् सोऽयं दशवक्त्रः स्वकर्मभिः । वाहितः प्रस्थितः कष्टमुन्मार्गेण विमूढधीः ॥८९॥
मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । न चिन्तयत्ययं पश्य तदप्यत्यन्तगर्वितः ॥९०॥
नक्षत्रबलनिर्मुक्तो ग्रहैः सुकुटिलैः स्थितैः । पीड्यमानो रणक्षोणीमाकाङ्क्षत्येष दुर्मनाः ॥९१॥
प्रतापभङ्गभीतोऽयं वीरैकरसभावितः । कृतवेदोऽपि शास्त्रेषु युक्तायुक्तं न वीक्षते ॥९२॥
अतः परं महाराज[2] दशग्रीवस्य मानिनः । मनसि स्थितमर्थं ते वदामि शृणु तत्त्वतः ॥९३॥
जित्वा सर्वजनं सर्वान् मुक्त्वा पुत्रसहोदरान् । प्रविशामि पुनर्लङ्कामिदं पश्चात्करोमि च ॥९४॥
उद्वासयामि सर्वस्मिन्नेतस्मिन्वसुधातले । क्षुद्रान् भूगोचरान् श्लाघ्यान् स्थापयामि नभश्चरान् ॥९५॥

उपजातिवृत्तम्

येनात्र वंशे सुरवर्त्मगानां त्रिलोकनाथाभिनुता जिनेन्द्राः ।
चक्रायुधा रामजनार्दनाश्च जन्म ग्रहीष्यन्ति तथास्मदाद्याः ॥९६॥

नीचे गिरती हैं, आकाश रुधिरकी वर्षा करता है ॥८४॥ प्रायः ये सब उत्पात थोड़े ही दिनोमे स्वामीके मरणकी सूचना दे रहे हैं क्योंकि पदार्थोंमे इस प्रकारके अन्यथा विकार होते नहीं हैं ॥८५॥

अपने पुण्यके क्षीण हो जानेपर इन्द्र भी तो च्युत हो जाता है। यथार्थमे जन-समूह कर्मोंके अधीन है और पुरुषार्थ गुणीभूत है—अप्रधान है ॥८६॥ जो वस्तु प्राप्त होनेवाली है वह प्राप्त होती ही है उससे दूर नही भागा जा सकता। दैवके रहते प्राणियोकी कोई शूरवीरता नही चलती उन्हे अपने कियेका फल भोगना ही पड़ता है ॥८७॥ देखो, जो समस्त नीतिशास्त्रमे कुशल है, लोकतन्त्रको जाननेवाला है, जैन व्याख्यानका जानकार है और महागुणोसे विभूषित है ऐसा रावण इस प्रकार होता हुआ भी स्वकृत कर्मोंके द्वारा कैसा चक्रमे डाला गया कि हाय, बेचारा विमूढ बुद्धि हो उन्मार्गमे चला गया ॥८८-८९॥ संसारमे मरणसे बढ़कर कोई दुःख नही है पर देखो, अत्यन्त गर्वसे भरा रावण उस मरणकी भी चिन्ता नही कर रहा है ॥९०॥ यह यद्यपि नक्षत्र बलसे रहित है तथा कुटिल पापग्रहोसे पीडित है तथापि मूर्ख हुआ रणभूमिमे जाना चाहता है ॥९१॥

यह प्रतापके भगसे भयभीत है, एक वीर रसकी ही भावनासे युक्त है तथा शास्त्रोका अभ्यास यद्यपि इसने किया है तथापि युक्त-अयुक्तको नही देखता है ॥९२॥ अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते है कि हे महाराज ! अब मैं मानी रावणके मनमे जो बात थी उसे कहता हूँ तू यथार्थमे सुन ॥९३॥ रावणके मनमे था कि सब लोगोको जीतकर तथा पुत्र और भाईको छुड़ाकर मैं पुन लंकामे प्रवेश करूँ ? और यह सब पीछे करता रहूँ ॥९४॥ इस पृथिवी-तलमे जितने क्षुद्र भूमिगोचरी हैं मै उन सबको यहाँसे हटाऊँगा और प्रशंसनीय जो विद्याधर हैं, उन्हे ही यहाँ बसाऊँगा ॥९५॥ जिससे कि तीनो लोकोके नाथके द्वारा स्तुत तीर्थंकर जिनेन्द्र, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण तथा हमारे जैसे पुरुष इसी वंशमें जन्म ग्रहण करेंगे ॥९६॥

---

१. नान्यथेदृशः म । २. महाराजन् ! म, ज ।

निकाचितं कर्म नरेण येन यत्तस्य भुङ्क्ते सफलं नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ॥९७॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे युद्धनिश्चयकीर्तनाभिधानं नाम द्वासप्ततितमं पर्व ॥७२॥



जिस मनुष्यने निकाचित कर्म बाँधा है वह उसका फल नियमसे भोगता है। अन्यथा शास्त्ररूपी सूर्यके देदीप्यमान रहते हुए किस मनुष्यरूपी उलूकके अन्धकार रह सकता है ॥९७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके युद्ध सम्बन्धी निश्चयका कथन करनेवाला बहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७२॥



त्रिसप्ततितमं पर्व

ततो दशाननोऽन्यत्र दिने परमभासुरः । आस्थानमण्डपे तस्थावुदिते दिवसाधिपे ॥१॥
कुबेरवरुणेशानयमसोमसमैर्नृपैः । रराज सेवितस्तत्र त्रिदशानामिवाधिपः ॥२॥
[1]वृतः कुलोद्गतैर्वीरैः स्थितः केसरिविष्टरे । स बभार परां कान्तिं निशाकर इव ग्रहैः ॥३॥
अत्यन्तसुरभिर्दिव्यवस्त्रस्रगनुलेपनः । [2]हाराविहारिवक्षस्कः सुभगः सौम्यदर्शनः ॥४॥
सदोऽवलोकमानोऽगादिति चिन्तां महामनाः । मेघवाहनवीरोऽत्र स्वप्रदेशे न दृश्यते ॥५॥
महेन्द्रविभ्रमो नेतः शक्रजिन्नयनप्रियः । इतो भानुप्रभो भानुकर्णोऽसौ न निरीक्ष्यते ॥६॥
नेदं सदःसरः शोभां धारयत्यधुना पराम् । निर्महापुरुषाम्भोजं शेषपुंस्कुमुदाञ्चितम् ॥७॥
उत्फुल्लपुण्डरीकाक्षः स मनोज्ञोऽपि तादृशः । चिन्तादुःखविकारेण कृतो दुःसहदर्शनः ॥८॥
कुटिलभ्रुकुटीबन्धघनध्वान्तालिकाङ्गणम् । सरोषाशीविषच्छायं कृतान्तमिव भीषणम् ॥९॥
[3]गाढदष्टाधरं स्वांशुचक्रमग्नं समीक्ष्य तम् । सचिवेशा भृशं भीताः किंकर्तव्यत्वगह्वराः ॥१०॥
ममायं कुपितोऽमुष्य तस्येत्याकुलमानसाः । स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे धरणीगतमस्तकाः ॥११॥
मयोग्रशुकलोकाक्षसारणाद्याः सलज्जिताः । परस्परं विविक्षन्त क्षितिं च विनताननाः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन दिनकरका उदय होनेपर परम देदीप्यमान रावण सभामण्डपमें विराजमान हुआ ॥१॥ कुवेर, वरुण, ईशान, यम और सोमके समान अनेक राजा उसकी सेवा कर रहे थे जिससे वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्र ही हो ॥२॥ कुलमे उत्पन्न हुए वीर मनुष्योसे घिरा तथा सिंहासनपर विराजमान रावण ग्रहोसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान परम कान्तिको धारण कर रहा था ॥३॥ वह अत्यन्त सुगन्धिसे युक्त था, उसके वस्त्र, मालाएँ तथा अनुलेपन सभी दिव्य थे, हारसे उसका वक्षःस्थल अत्यन्त सुशोभित हो रहा था, वह सुन्दर था और सौम्य दृष्टिसे युक्त था ॥४॥ वह उदारचेता सभाकी ओर देखता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि यहाँ वीर मेघवाहन अपने स्थानपर नही दिख रहा है ॥५॥ इधर महेन्द्रके समान शोभाको धारण करनेवाला नयनाभिरामी इन्द्रजित् नही है और उधर सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) भी नही दिख रहा है ॥६॥ यद्यपि यह सभारूपी सरोवर शेष पुरुषरूपी कुमुदोसे सुशोभित है तथापि उक्त महापुरुषरूपी कमलोसे रहित होनेके कारण इस समय उत्कृष्ट शोभाको प्राप्त नही हो रहा है ॥७॥ यद्यपि उस रावणके नेत्र कमलके समान फूल रहे थे और वह स्वय अनुपम मनोहर था तथापि चिन्ताजन्य दुःखके विकारसे उसकी ओर देखना कठिन जान पड़ता था ॥८॥

तदनन्तर टेढी भौंहोके बन्धनसे जिसके ललाटरूपी आँगन मे सघन अन्धकार फैल रहा था, जो कुपित नागके समान कान्तिको धारण करनेवाला था, जो यमराजके समान भयंकर था, जो बड़े जोरसे अपना ओठ डँस रहा था, जो अपनी किरणोके समूहमे निमग्न था ऐसे उस रावणको देख बड़े-बड़े मन्त्री अत्यन्त भयभीत हो 'क्या करना चाहिए' इस विचारमे गम्भीर थे ॥९–१०॥ 'यह मुझपर कुपित है या उसपर' इस प्रकार जिनके मन व्याकुल हो रहे थे तथा जो हाथ जोड़े हुए पृथिवीकी ओर देखते बैठे थे ॥११॥ ऐसे मय, उग्र, शुक, लोकाक्ष और सारण

---

१ तृतीयचतुर्थयो श्लोकयो ज पुस्तके क्रमभेदो वर्तते । २ मुक्तास्रग्मनोहरोरस्क । ३ गाढदृष्टाधर म ।

प्रचलत्कुण्डला राजन् ते भटाः पार्श्ववर्तिनः । मुहुर्देव प्रसीदेति त्वरावन्तो समापिरे ॥१३॥
कैलासकूटकल्पासु रत्नभासुरभित्तिषु । स्थिताः प्रासादमालासु त्रस्तास्तं ददृशुः स्त्रियः ॥१४॥
मणिजालगवाक्षान्तन्यस्तसंभ्रान्तलोचना । मन्दोदरी ददर्शैनं समालोडितमानसा ॥१५॥
लोहिताक्षः प्रतापाढ्यः समुत्थाय दशाननः । अमोघरत्नशस्त्राढ्यमायुधालयमुज्ज्वलम् ॥१६॥
वज्रालयमिवेशानः सुराणां गन्तुमुद्यतः । विशतश्च समेतस्य दुर्निमित्तानि जज्ञिरे ॥१७॥
पृष्ठतः क्षुतमग्रे च छिन्नो मार्गो महाहिना । हा ही धिक् त्वां क्व यामीति वचांसि तमिवावदन् ॥१८॥
वातूलप्रेरितं छत्रं भग्नं वैडूर्यदण्डकम् । निपपातोत्तरीयं च बलिभुग्दक्षिणोऽरटत् ॥१९॥
अन्येऽपि शकुनाः क्रूरास्तं युद्धाय न्यवर्त्तयन् । वचसा कर्मणा ते हि न कायेनानुमोदकाः ॥२०॥
नानाशकुनविज्ञानप्रवीणधिषणा ततः । दृष्ट्वा पापान्महोत्पातानत्यन्ताकुलमानसाः ॥२१॥
मन्दोदरी समाहूय शुकादीन् सारमन्त्रिणः । जगाद नोच्यते कस्माद्भवद्भिः स्वहितं नृपः ॥२२॥
किमेतच्चेष्टते ऽद्यापि विज्ञातस्वपरक्रियैः । अशक्ताः कुम्भकर्णाद्या क्रियद्बन्धनमागताः ॥२३॥
लोकपालौजसो वीराः कृतानेकमहाद्भुताः । शत्रुरोधमिमे प्राप्ताः किं नु कुर्वन्ति वः शमम् ॥२४॥

आदि मन्त्री परस्पर एक दूसरेसे लज्जित होते हुए नीचेको मुख कर बैठे थे तथा ऐसे जान पड़ते थे मानो पृथिवीमे ही प्रवेश करना चाहते हो ॥१२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनके कुण्डल हिल रहे थे ऐसे वे समीपवर्ती सुभट 'हे देव ! प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ' इस तरह शीघ्रता-से वार-वार कह रहे थे ॥१३॥ कैलासके शिखरके समान ऊँचे तथा रत्नोंसे देदीप्यमान दीवालोसे युक्त महलोमे रहनेवाली स्त्रियाँ भयभीत हो उसे देख रही थी ॥१४॥ मणिमय झरोखोंके अन्तमे जिसने अपने घवड़ाये हुए नेत्र लगा रखे थे, तथा जिसका मन अत्यन्त विह्वल था ऐसी मन्दोदरी-ने भी उसे देखा ॥१५॥

अथानन्तर लाल-लाल नेत्रोंको धारण करनेवाला प्रतापी रावण उठकर अमोघ शस्त्ररूपी रत्नोंसे युक्त उज्ज्वल शस्त्रागारमे जानेके लिए उस प्रकार उद्यत हुआ जिस प्रकार कि वज्रालयमे जानेके लिए इन्द्र उद्यत होता है। जब वह शस्त्रागारमे प्रवेश करने लगा तब निम्नांकित अप-शकुन हुए ॥१६–१७॥ पीछेकी ओर छींक हुई*, आगे महानागने मार्ग काट दिया, ऐसा लगने लगा जैसे लोग उससे यह शब्द कह रहे हो कि हा, ही, तुझे धिक्कार है कहाँ जा रहा है ॥१८॥ नील मणिमय दण्डसे युक्त उसका छत्र वायुसे प्रेरित हो टूट गया, उसका उत्तरीय वस्त्र नीचे गिर गया और दाहिनी ओर कौआ कांव-कांव करने लगा ॥१९॥ इनके सिवाय और भी क्रूर अप-शकुनोने उसे युद्धके लिए मना किया। यथार्थमे वे सब अपशकुन उसे युद्धके लिए न वचनसे अनु-मति देते थे न क्रियासे और न कायसे ही ॥२०॥ तदनन्तर नाना शकुनोके ज्ञानमें जिनकी बुद्धि निपुण थी ऐसे लोग उन पापपूर्ण महाउत्पातोको देख अत्यन्त व्यग्रचित्त हो गये ॥२१॥

तदनन्तर मन्दोदरीने शुक आदि श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाकर कहा कि आप लोग राजासे हितकारी वात क्यो नहीं कहते हैं ॥२२॥ निज और परकी क्रियाओको जाननेवाले होकर भी आप अभी तक यह क्या चेष्टा कर रहे हैं? कुम्भकर्णादिक अशक्त हो कितने दिनसे बन्धनमे पड़े हैं? ॥२३॥ लोकपालोंके समान जिनका तेज है तथा जिन्होने अनेक आश्चर्यके काम किये हैं ऐसे ये वीर, शत्रुके यहाँ बन्धनको प्राप्त होकर क्या आप लोगोको शक्ति उत्पन्न कर रहे हैं? ॥२४॥

---

१ त्रस्तास्तं म । २ समेतस्य म । ३. धिङ्मा म. । ४. चेष्टते म, ज ।

* शकुन शास्त्रमें छींकका फल इस प्रकार बताया है कि पूर्व दिशामें हो तो मृत्यु, अग्निकोणमें हो तो शोक, दक्षिणमें हानि, नैऋत्यमें शुभ, पश्चिममें मिष्ट आहार, वायुकोणमें सम्पदा, उत्तरमें कलह, ईशानमें धनागम, आकाशमें सर्वसंहार और पातालमें सर्वसम्पदाकी प्राप्ति हो। रावणको मृत्युकी छींक हुई।

प्रणिपत्य ततो देवीमित्याहुर्मुख्यमन्त्रिणः । कृतान्तशासनो मानी स्वप्रधानो दशाननः ॥२५॥
वचनं कुरुते यस्य नरस्य परम हितम् । न स स्वामिनि ! लोकेऽस्मिन् समस्तेऽप्युपलभ्यते ॥२६॥
या काचिद्भविता बुद्धिर्नृणां कर्मानुवर्त्तिनाम् । अशक्या सान्यथाकर्तुं सेन्द्रैः सुरगणैरपि ॥२७॥
अर्थसाराणि शास्त्राणि नयमौशनस्यं परम् । जानन्नपि त्रिकूटेन्द्रः पश्य मोहेन बाध्यते ॥२८॥
उक्तः स बहुशोऽस्माभिः प्रकारेण न केन सः । तथापि तस्य नो चित्तमभिप्रेतान्निवर्त्तते ॥२९॥
महापूरकृतोत्पीड पयोवाहसमागमे । दुष्करो हि नदो धर्तुं जीवो वा कर्मचोदितः ॥३०॥
ईशे तथापि को दोषः स्वयं वक्तुं त्वमर्हसि । कदाचित्ते मतिं कुर्यादुपेक्षणमसांप्रतम् ॥३१॥
इत्युदाहृतमाधाय निश्चिन्तस्वान्तधारिणी । परिवेपवती लक्ष्मीरिव सम्भ्रमवर्त्तिनी ॥३२॥
स्वच्छायतविचित्रेण पयःसादृश्यधारिणा । अंशुकेनावृता देवी गन्तुं रावणमुद्यता ॥३३॥
मन्मथस्यान्तिकं गन्तुं तां प्रवृत्तां रतिं यथा । परिवर्गः समालोक्य तत्परत्वमुपागत. ॥३४॥
छत्रचामरधारीभिरङ्गनाभिः समन्ततः । आपूर्यत शचीवेन्द्रं व्रजन्ती प्रवरानना ॥३५॥
श्वसन्ती प्रस्खलन्ती च किंचिच्छिथिलमेखला । प्रियकार्यरता नित्यमनुरागमहानदी ॥३६॥
आयान्तीं तेन सा दृष्टा लीलावर्त्तेन चक्षुषा । स्पृशता कवचं मुख्यं शस्त्रजातं च सादरम् ॥३७॥
उक्ता मनोहरे हंसवधूललितगामिनि । रभसेन किमायान्त्यास्तव देवि प्रयोजनम् ॥३८॥

तदनन्तर मुख्य मन्त्रियोने प्रणाम कर मन्दोदरीसे इस प्रकार कहा कि हे देवि ! दशाननका शासन यमराजके शासनके समान है, वे अत्यन्त मानी और अपने आपको ही प्रधान माननेवाले है ॥२५॥ जिस मनुष्यके परम हितकारी वचनको वे स्वीकृत कर सके हे स्वामिनि ! समस्त लोकमे ऐसा मनुष्य नही दिखाई देता ॥२६॥

कर्मानुकूल प्रवृत्ति करनेवाले मनुष्योकी जो बुद्धि होनेवाली है उसे इन्द्र तथा देवोके समूह भी अन्यथा नही कर सकते ॥ २७ ॥ देखो, रावण समस्त अर्थशास्त्र और सम्पूर्ण नीतिशास्त्रको जानते हैं तो भी मोहके द्वारा पीड़ित हो रहे है ॥२८॥ हम लोगोने उन्हे अनेको वार किस प्रकार नही समझाया है ? अर्थात् ऐसा प्रकार शेप नही रहा जिससे हमने उन्हे न समझाया हो फिर भी उनका चित्त इष्ट वस्तु—सीतासे पीछे नही हट रहा है ॥२९॥ वर्षा ऋतुके समय जिसमे जलका महाप्रवाह उल्लंघ कर बह रहा है ऐसे महानदको अथवा कर्मसे प्रेरित मनुष्यको रोक रखना कठिन है ॥३०॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि हम लोग कहकर हार चुके है तथापि आप स्वयं कहिए इसमे क्या दोष है ? सम्भव है कि कदाचित् आपका कहना उन्हे सुबुद्धि उत्पन्न कर सके । उपेक्षा करना अनुचित है ॥३१॥ इस प्रकार मन्त्रियोका कहा श्रवण कर जिसने रावणके पास जानेका निश्चित विचार किया था, जो भयसे कांप रही थी तथा घवड़ायी हुई लक्ष्मीके समान जान पडती थी, जो स्वच्छ, लम्वे, विचित्र जलकी सदृशताको धारण करनेवाले वस्त्रसे आवृत थी ऐसी मन्दोदरी रावणके पास जानेके लिए उद्यत हुई ॥३२–३३॥ कामदेवके समीप जानेके लिए उद्यत रतिके समान, रावणके समीप जाती हुई मन्दोदरीको देख परिवारके समस्त लोगोका ध्यान उसीकी ओर जा लगा ॥३४॥ छत्र तथा चमरोको धारण करनेवाली स्त्रियाँ जिसे सब ओरसे घेरे हुई थी ऐसी सुमुखी मन्दोदरी ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके पास जाती हुई शची ही हो—इन्द्राणी ही हो ॥३५॥ जो लम्वी साँस भर रही थी, जो चलती-चलती वीचमे स्खलित हो जाती थी, जिसकी करधनी कुछ-कुछ ढीली हो रही थी, जो निरन्तर पतिका कार्य करनेमे तत्पर थी और जो अनुरागकी मानो महानदी ही थी ऐसी आती हुई मन्दोदरीको रावणने लीलापूर्ण चक्षुसे देखा । उस समय रावण अपने कवच तथा मुख्य-मुख्य शस्त्रोके समूहका आदर-पूर्वक स्पर्श कर रहा था ॥३६–३७॥ रावणने कहा कि हे मनोहरे ! हे हंसीके समान सुन्दर चालसे

ह्रियते हृदयं कस्माद्दशवक्त्रस्य भामिनि । संनिधानमिव स्वप्ने प्रस्तावपरिवर्जितम् ॥३९॥
ततो निर्मलसंपूर्णशशाङ्कप्रतिमानना । संफुल्लाम्भोजनयना निसर्गोत्तमविभ्रमा ॥४०॥
मनोहरकटाक्षेषु विसर्जनविचक्षणा । मदनावासभूताङ्गा मधुरस्खलितस्वना ॥४१॥
दन्ताधरविचित्रोरुच्छायापिञ्जरविग्रहा । स्तनहेममहाकुम्भभारसंनमितोदरी ॥४२॥
स्खलद्वलित्रयात्यन्तसुकुमारातिसुन्दरी । जगाद प्रणता नाथप्रसादस्यातिभूमिका ॥४३॥
प्रयच्छ देव मे भर्तृभिक्षामेहि प्रसन्नताम् । प्रेम्णा परेण धर्मेण कारुण्येन च सगतः ॥४४॥
वियोगनिम्नगादुःखजले संकल्पवीचिके । महाराज निमज्जन्तीं मकामुत्तम धारय ॥४५॥
कुलपद्मवन गच्छत्प्रलयं विपुल परम् । [1]मोपेक्षिष्ठा महाबुद्धे बान्धवव्योमभास्करः ॥४६॥
किंचिदाकर्णय स्वामिन् वच. परुषमप्यद' । क्षन्तुमर्हसि मे यस्माद्दत्तमेव त्वया पदम् ॥४७॥
अविरुद्धं स्वभावस्थं परिणामसुखावहम् । वचोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृदामौषधं यथा ॥४८॥
किमर्थं संशयतुलामारूढोऽस्यतुलामिमाम् । संतापयसि कस्मात्त्वमस्मांश्च निरवग्रहः ॥४९॥
अद्यापि किमतीत ते सैव भूमिः पुरातनी । उन्मार्गप्रस्थितं चित्तं केवलं देव वारय ॥५०॥
मनोरथः प्रवृत्तोऽयं नितान्तं तव संकटे । इन्द्रियाश्वान्नियच्छाशु विवेकदृढरश्मिभृत् ॥५१॥

चलनेवाली प्रिये ! हे देवि ! बड़े वेगसे तुम्हारे यहाँ आनेका प्रयोजन क्या है ? ॥३८॥ हे भामिनि ! स्वप्नमे अकस्मात् प्राप्त हुए सन्निधानके समान तुम्हारा आगमन रावणके हृदयको क्यो हर रहा है ? ॥३९॥

तदनन्तर जिसका मुख निर्मल पूर्णचन्द्रकी तुलनाको प्राप्त था, जिसके नेत्र खिले हुए कमलके समान थे, जो स्वभावसे ही उत्तम हाव-भावको धारण करनेवाली थी, जो मनोहर कटाक्षोके छोड़नेमे चतुर थी, जिसका शरीर मानो कामदेवके रहनेका स्थान था, जिसके मधुर शब्द बीच-बीचमे स्खलित हो रहे थे, जिसका शरीर दाँत तथा ओठोंकी रंग-बिरंगी विशाल कान्तिसे पिंजरवर्ण हो रहा था, जिसका उदर स्तनरूपी स्वर्णमय महाकलशोंसे झुक रहा था, जिसकी त्रिवलिरूपी रेखाएँ स्खलित हो रही थी, जो अत्यन्त सुकुमार थी, अत्यधिक सुन्दरी थी, और जो पतिके प्रसादकी उत्तम भूमि थी ऐसी मन्दोदरी प्रणाम कर बोली कि ॥४०–४३॥ हे देव ! आप परमप्रेम और दया-धर्मसे सहित हो अतः मेरे लिए पतिकी भीख देओ प्रसन्नताको प्राप्त होओ ॥४४॥

हे महाराज ! हे उत्तम संकल्परूपी तरंगोसे युक्त ! वियोगरूपी नदीके दुःखरूपी जलमे डूबती हुई मुझको आलम्बन देकर रोको—मेरी रक्षा करो ॥४५॥ हे महाबुद्धिमन् ! तुम अपने परिजनरूपी आकाशमे सूर्यके समान हो इसलिए प्रलयको प्राप्त होते हुए इस विशाल कुलरूपी कमलवनकी अत्यन्त उपेक्षा न करो ॥४६॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मेरे वचन कठोर है तथापि कुछ श्रवण कीजिए । यतश्च यह पद मुझे आपने ही दिया है अतः आप मेरा अपराध क्षमा करनेके योग्य है ॥४७॥ मित्रोंके जो वचन विरोध रहित हैं, स्वभावमे स्थित हैं और फलकालमे सुख देनेवाले है वे अप्रिय होनेपर भी ओषधिके समान ग्रहण करनेके योग्य है ॥४८॥ आप इस उपमा रहित संशयकी तुलापर किस लिए आरूढ़ हो रहे है ? और किस लिए किसी रुकावटके बिना ही अपने आपको तथा हम लोगोंको सन्ताप पहुँचा रहे हो ॥४९॥ आज भी आपका क्या चला गया ? वही आपकी पुरातनी अर्थात् पहलेकी भूमि है केवल हे देव ! उन्मार्गमे गये हुए चित्तको रोक लीजिए ॥५०॥ आपका यह मनोरथ अत्यन्त सकटमे प्रवृत्त हुआ है इसलिए इन इन्द्रियरूपी घोड़ोको शीघ्र ही रोक लीजिए । आप तो विवेकरूपी मजबूत लगामको धारण

---

१. मा पेक्षिष्ठा म. ।

उद्धैर्यत्व गभीरत्वं परिज्ञातं च तत्कृते । गतं येन कुमार्गेण नाथ केनापि नीयसे ॥५२॥
दृष्ट्वा शरभवच्छायामात्मीयां कूपवारिणि । किं प्रवृत्तोऽसि परमामापदायासदायिनि ॥५३॥
अयशः शालमुत्तुङ्गं भित्वा क्लेशकरं परम् । कदलीस्तम्भनिःसारं फलं किमभिवाञ्छसि ॥५४॥
श्लाघ्यं जलधिगम्भीरं कुलं भूयो विभूषय । शिरोऽर्त्तिं कुलजातानां मुञ्च भूगोचरस्त्रियम् ॥५५॥
विरोधः क्रियते स्वामिन् वीरैः स्वाप्तिप्रयोजनः । मृत्युं च मानसे कृत्वा परेषामात्मनोऽपि वा ॥५६॥
पराजित्यापि संघातं नाथ संबन्धिनां तव । कोऽर्थः संपद्यते तस्मात्त्यज सीतामयं ग्रहम् ॥५७॥
अन्यदास्तां व्रतं तावत्परस्त्रीमुक्तिमात्रतः । पुमान् जन्मद्वये शंसां सुशीलः प्रतिपद्यते ॥५८॥
कज्जलोपमकारीषु परनारीषु लोलुपः । मेरुगौरवयुक्तोऽपि तृणलाघवमेति ना ॥५९॥
देवैरनुगृहीतोऽपि चक्रवर्त्तिसुतोऽपि[1] वा । परस्त्रीसङ्गपङ्केन दिग्धोऽकीर्त्तिं व्रजेत्पराम् ॥६०॥
योऽन्यप्रमदया साकं कुरुते मूढको रतिम् । आशीविषभुजङ्ग्यासौ रमते पापमानसः ॥६१॥
निर्मलं कुलमत्यन्तं मायशोमलिनं कुरु । आत्मानं च करोषि त्वं तस्माद्वर्जय दुर्मतिम् ॥६२॥
ध्वंवान्तरावलेच्छातः[2] प्राप्ताः नाशं महाबलाः । सुमुखाशनिघोषाद्यास्ते च किं न गताः श्रुतिम् ॥६३॥
सितचन्दनदिग्धाङ्गो नवजीमूतसंनिभः । मन्दोदरीमथावोचद्रावणः कमलेक्षणः ॥६४॥

करनेवाले हैं ॥५१॥ आपकी उत्कृष्ट धीरता, गम्भीरता और विचारकता उस सीताके लिए जिस कुमार्गसे गयी है हे नाथ! जान पड़ता है कि आप भी किसीके द्वारा उसी कुमार्गसे ले जाये जा रहे हैं ॥५२॥ जिस प्रकार अष्टापद कुएँके जलमे अपनी परछाइं देख दुःखको प्राप्त हुआ उसी प्रकार अत्यन्त दुःख देनेवाली आपत्तियोमे तुम किस लिए प्रवृत्त हो रहे हो ॥५३॥ अत्यधिक क्लेश उत्पन्न करनेवाले अपयशरूपी ऊँचे वृक्षको भेदन कर सुखसे रहिए। आप केलेके स्तम्भके समान किस नि.सार फलकी इच्छा रखते है ॥५४॥ हे समुद्रके समान गम्भीर! अपने प्रशस्त कुलको फिरसे अलंकृत कीजिए और कुलीन मनुष्योके शिर दर्दके समान भूमिगोचरीकी स्त्री—सीताको शीघ्र ही छोड़िए ॥५५॥ हे स्वामिन्! वीर सामन्त जो एक दूसरेका विरोध करते है सो धनकी प्राप्तिके प्रयोजनसे करते हैं अथवा मनमे ऐसा विचार कर करते हैं कि या तो परको मारूँ या मैं स्वयं मरूँ। सो यहाँ धनकी प्राप्ति तो आपके विरोधका प्रयोजन हो नही सकती क्योकि आपको धनकी क्या कमी है? और दूसरा प्रयोजन अपना पराया मरना है सो किसलिए मरना? परायी स्त्रीके लिए मरना यह तो हास्यकर बात है ॥५६॥ अथवा माना कि शत्रुओके समूहको पराजित करना विरोधका प्रयोजन है सो शत्रुसमूहको पराजित करनेपर आपका कौन-सा प्रयोजन सम्पन्न होता है? अतः हे स्वामिन्! सीतारूपी हठ छोड़िए ॥५७॥ और दूसरा व्रत रहने दीजिए। एक परस्त्रीत्याग व्रतके द्वारा ही उत्तम शीलको धारण करनेवाला पुरुष दोनो जन्मोमे प्रशंसाको प्राप्त होता है ॥५८॥ कज्जलकी उपमा धारण करनेवाली परस्त्रियोका लोभी मनुष्य मेरुके समान गौरवसे युक्त होनेपर भी तृणके समान तुच्छताको प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ देव जिसपर अनुग्रह करते है अथवा जो चक्रवर्तीका पुत्र है वह भी परस्त्रीकी आसक्तिरूपी कर्दमसे लिप्त होता हुआ परम अकीर्तिको प्राप्त होता है, जो मूर्ख परस्त्रीके साथ प्रेम करता है मानो वह पापी आशीविष नामक सर्पिणीके साथ रमण करता है ॥६०-६१॥ अत्यन्त निर्मल कुलको अपकीर्तिसे मलिन मत कीजिए। अथवा आप स्वयं अपने आपको मलिन कर रहे हैं सो इस दुर्बुद्धिको छोड़िए ॥६२॥ सुमुख तथा वज्रघोष आदि महाबलवान् पुरुष परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे नाशको प्राप्त हो चुके सो क्या वे आपके सुननेमे नही आये? ॥६३॥ अथानन्तर जिसका समस्त शरीर सफ़ेद चन्दनसे लिप्त

१ चक्रवर्तिसमोऽपि वा क। २ अन्यो ध्वो ध्वान्तर. परपुरुषस्तस्यावला तस्या इच्छा तस्या. परपुरुषवनिताया इच्छामात्रत इति भावः।

अयि कान्ते किमर्थं त्वमेवं कातरतां गता । भीरु[1]स्त्रीस्वभावासि नाम हीदं सार्थकम्[2] ॥६५॥
सूर्यकीर्तिरहं नासौ न चाप्यशनिघोषकः । न चेतरो नरः कश्चित्किमर्थमिति भाषसे ॥६६॥
मृत्युदावानलः सोऽहं शत्रुपादपसंहतेः । समर्पयामि नो सीतां मा भैषीर्मन्दमानसे ॥६७॥
अनया कथया किं ते रक्षायां त्वं नियोजिता । शक्नोषि[3] रक्षितुं नाथ[4] मह्यमर्पय तां द्रुतम् ॥६८॥
ऊचे मन्दोदरी सार्द्धं तया रतिसुखं भवान् । वाञ्छत्यर्पय मे तामित्येवं च वदतेऽत्रपः ॥६९॥
[5]इत्युक्त्वेर्ष्याभवं क्रोधं वहती विपुलेक्षणा । कर्णोत्पलेन सौभाग्यमतिरेनमताडयत् ॥७०॥
पुनरीर्ष्यां नियम्यान्तर्जगाद वद सुन्दर । किं माहात्म्यं त्वया तस्या दृष्टं तां यदभीच्छसि[6] ॥७१॥
न सा गुणवती ज्ञाता ललामा न च रूपतः । कलासु च न निष्णाता न च चित्तानुवर्त्तिनी ॥७२॥
ईदृश्यापि तया सार्कं कान्त का ते रतौ मतिः । आत्मनो लाघवं शुद्धं भवत्त्वं नानुबुध्यसे ॥७३॥
न कश्चित्स्वयमात्मानं शंसन्नाप्नोति गौरवम् । गुणा हि गुणतां यान्ति गुण्यमानाः पराननैः ॥७४॥
तदहं नो वदाम्येवं किं नु वेत्सि त्वमेव हि । वराक्या सीतया किं वा न श्रीरपि समेति मे ॥७५॥
विजहीहि विभोऽत्यन्तं सीतामभीप्सितात्मकम् । मानुपङ्गानले तीव्रे प्रापो[7] निःपरिहारके ॥७६॥
मदवज्ञाकरो वाञ्छन् भूमिगोचरिणीमिमाम् । शिशुर्वैडूर्यमुत्सृज्य काचमिच्छसि मन्दकः ॥७७॥

था तथा जो स्वयं नूतन मेघके समान श्यामल वर्ण था ऐसा कमल-लोचन रावण मन्दोदरीसे बोला कि ॥६४॥ हे प्रिये ! तू क्यों इस तरह अत्यन्त कातरताको प्राप्त हो रही है ? भीरु अर्थात् स्त्री होनेके कारण ही तू भीरु अर्थात् कातर भावको धारण कर रही है। अहो ! स्त्रीका भीरु यह नाम सार्थक ही है ॥६५॥ मैं न अर्ककीर्ति हूँ, न वज्रघोष हूँ और न कोई दूसरा ही मनुष्य हूँ फिर इस तरह क्यों कह रही है ? ॥६६॥

मैं शत्रुरूप वृक्षोंके समूहको भस्म करनेवाला वह मृत्युरूपी दावानल हूँ इसलिए सीताको वापस नही लौटाऊँगा। हे मन्दमते ! भय मत कर ॥६७॥ अथवा इस चर्चासे तुम्हे क्या प्रयोजन है ? तू तो सीताकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त की गयी है सो यदि रक्षा करनेमे समर्थ नही है तो मुझे शीघ्र ही वापस सौंप दे ॥६८॥ यह सुन मन्दोदरीने कहा कि आप उसके साथ रति-सुख चाहते हैं इसीलिए निर्लज्ज हो इस प्रकार कह रहे हैं कि उसे मुझे सौंप दो ॥६९॥ इतना कह ईर्ष्या सम्बन्धी क्रोधको धारण करनेवाली उस दीर्घलोचना मन्दोदरीने सौभाग्यकी इच्छासे कर्णोत्पलके द्वारा रावणको ताड़ा ॥७०॥ पुनः मन ही मन ईर्ष्याको रोककर उसने कहा कि हे सुन्दर ! बताओ तो सही कि तुमने उसका क्या माहात्म्य देखा है ? जिससे उसे इस तरह चाहते हो ॥७१॥ न तो वह गुणवती जान पडी है, न रूपमें सुन्दर है, न कलाओमे निपुण है और न आपके मनके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाली है ॥७२॥ फिर भी ऐसी सीताके साथ रमण करनेकी हे वल्लभ ! तुम्हारी कौन बुद्धि है। मेरी दृष्टिमे तो केवल अपनी लघुता ही प्रकट हो रही है जिसे आप समझ नही रहे हैं ॥७३॥ कोई भी पुरुष स्वयं अपने आपकी प्रशंसा करता हुआ गौरवको प्राप्त नही होता यथार्थमें जो गुण दूसरोके मुखोंसे प्रशंसित होते है वे ही गुणपनेको प्राप्त होते हैं ॥७४॥ इसीलिए मै ऐसा कुछ नही कहती हूँ किन्तु आप स्वयं जानते हैं कि बेचारी सीताकी तो बात ही क्या, लक्ष्मी भी मेरे समान नही है ॥७५॥ इसलिए हे विभो ! सीताके साथ समागमकी जो अत्यधिक लालसा है उसे छोड़िए, जिसका परिहार नही ऐसी अपवादरूपी तीव्र अग्निमे मत पड़िए ॥ ७६ ॥ आप मेरा अनादर कर इस भूमिगोचरीको चाह रहे हैं सो ऐसा

---

१. 'भामिनी भीरुरङ्गना' इति धनंजय । २. महार्थकम् म । ३ शक्तोऽपि म । ४. न + अथ इति पदच्छेदः । ५ इत्युक्ते–म । ६ यदिच्छसि म । ७. 'प्रतो' इति स्यात्, प्रोपसर्गपूर्वकपत्लृ धातोर्लुङ्मध्यमैक-वचने रूपम् । मायोगे अडागमनिषेधः ।

न दिव्यं रूपमेतस्या जायते मनसि स्थितम् । इमां ग्रामेयकाकारां नाथ कामयसे कथम् ॥७८॥
यथासमीहिताकल्पकल्पनातिविचक्षणा । भवामि कीदृशी ब्रूहि जाये त्वच्चित्तहारिणी ॥७९॥
पद्मालयारतिः सद्य. श्रीर्भवामि किमीश्वर । शक्रलोचनविश्रान्तभूमि. किं वा शची प्रभो ॥८०॥
मकरध्वजचित्तस्य बन्धनी रतिरेव वा । साक्षाद्भवामि किं देव भवदिच्छानुवर्त्तिनी ॥८१॥
ततः किंचिदधोवक्त्रो रावणोऽर्द्धाक्षवीक्षणः । सव्रीड. स्वैरमूचेऽहं परस्त्रीहस्त्वयोदितः ॥८२॥
किं मयोपचितं पश्य परमाकीर्त्तिगामिना । आत्मा लघूकृतो मूढ. परस्त्रीसक्तचेतसा ॥८३॥
विषयामिषसक्तात्मन् पापभाजनचञ्चल[1] । धिगस्तु हृदयत्वं ते हृदयक्षुद्रचेष्टिता ॥८४॥
विलक्ष इव चोत्सर्पिमुखेन्दुस्मितचन्द्रिकः । बुद्धाक्षिकुमुद· कान्तामेवमूचे दशाननः ॥८५॥
देवि वैक्रियरूपेण विनैव प्रकृतिस्थिता । अत्यन्तदयिता त्वं मे किमन्यस्त्रीभिरुत्तमे ॥८६॥
लब्धप्रसादया देव्या ततो मुदितचित्तया । भाषितं देव किं भानोर्दीपोद्योताय युज्यते ॥८७॥
दशानन सुहृन्मध्ये यन्मयोक्तमिदं हितम् । अन्यानपि बुधान् पृच्छ वेद्मि नेत्यबला सती ॥८८॥
जानन्नपि नयं सर्वं प्रमादं दैवयोगत· । जन्तुना हितकामेन बोधनीयो न किं प्रभुः ॥८९॥
आसीद्विष्णुरसौ साधुर्विक्रियाविस्मृतात्मक. । सिद्धान्तगीतिकाभिः किं न प्रबोधमुपाहृत. ॥९०॥

जान पड़ता है मानो कोई मूर्ख बालक वैडूर्यमणिको छोडकर काँचकी इच्छा करता है ॥७७॥ इससे आपका मनचाहा दिव्यरूप भी नही हो सकता अर्थात् यह विक्रियासे आपकी इच्छानुसार रूप नही परिवर्तित कर सकती फिर हे नाथ ! आप इस ग्रामीण स्त्रीको क्यो चाहते हैं ? ॥७८॥ मैं आपकी इच्छानुसार रूपको धरनेमे अतिशय निपुण हूँ सो मुझे आज्ञा दीजिए कि मै कैसी हो जाऊँ। हे स्वामिन् ! क्या शीघ्र ही तुम्हारे चित्तको हरण करनेवाली एवं कमलरूपी घरमें प्रीति धारण करनेवाली लक्ष्मी बन जाऊँ ? अथवा हे प्रभो ! इन्द्रके नेत्रोंकी विश्रामभूमिस्वरूप इन्द्राणी हो जाऊँ ? ॥७९–८०॥ अथवा कामदेवके चित्तको रोकनेवाली साक्षात् रति ही बन जाऊँ ? अथवा हे देव ! आपकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाली क्या हो जाऊँ ? ॥८१॥

तदनन्तर जिसका मुख नीचे की ओर था, जिसके नेत्र आधे खुले थे तथा जो लज्जासे सहित था ऐसा रावण धीरे-धीरे बोला कि हे प्रिये ! तुमने मुझे परस्त्रीसेवी कहा सो ठीक है ॥८२॥ देखो मैंने यह क्या किया ? परस्त्रीमे चित्तके आसक्त होनेसे परम अकीर्तिको प्राप्त होते हुए मैंने इस मूर्ख आत्माको अत्यन्त लघु कर दिया है ॥८२–८३॥ जो विषयरूपी मांसमे आसक्त है, पापका भाजन है तथा चचल है ऐसे इस हृदयको धिक्कार है। रे हृदय ! तेरी यह अत्यन्त नीच चेष्टा है ॥८४॥ इतना कह जिसके मुखचन्द्रकी मुसकानरूपी चाँदनी ऊपरकी ओर फैल रही थी, जिसके नेत्ररूपी कुमुद विकसित हो रहे थे ऐसे दशाननने मन्दोदरीसे पुन. इस प्रकार कहा कि ॥८५॥ हे देवि ! विक्रिया निर्मित रूपके बिना स्वभावमे स्थित रहनेपर भी तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। हे उत्तमे ! मुझे अन्य स्त्रियोसे क्या प्रयोजन है ? ॥८६॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रसन्नता प्राप्त होनेसे जिसका चित्त खिल उठा था ऐसी मन्दोदरीने पुन. कहा कि हे देव ! सूर्यके लिए दीपकका प्रकाश दिखाना क्या उचित है ? अर्थात् आपसे मेरा कुछ निवेदन करना उसी तरह व्यर्थ है जिस तरह कि सूर्यको दीपक दिखाना ॥८७॥ हे दशानन ! मैने मित्रोके बीच जो यह हितकारी बात कही है सो उसे अन्य विद्वानोसे भी पूछ लीजिए। मै अबला होनेसे कुछ समझती नही हूँ ॥८८॥ अथवा समस्त शास्त्रोंको जाननेवाला भी प्रभु यदि कदाचित् दैवयोगसे प्रमाद करता है तो क्या हितकी इच्छा रखनेवाले प्राणीको उसे समझाना न चाहिए ? ॥८९॥ जैसे कि विष्णुकुमार मुनि विक्रिया द्वारा आत्माको भूल गये थे सो क्या उन्हे सिद्धान्तके उपदेश द्वारा

1. चञ्चला म.।

अयं पुमानियं स्त्रीति विकल्पोऽयममेधसाम् । सर्वतो वचनं साधु समीहन्ते सुमेधसः ॥९१॥
स्वल्पोऽपि यदि कश्चित्ते प्रसादो मयि विद्यते । ततो वदामि ते मुञ्च परस्त्रीरतमार्गगम् ॥९२॥
गृहीत्वा जानकीं कृत्वा त्वामेव च समाश्रयम् । प्रत्यापयामि सत्त्वाहं रामं भवदनुज्ञया ॥९३॥
उपगृह्य सुतौ तेऽहं शत्रुजिन्मेघवाहनौ । भ्रातरं चोपनेष्यामि किं भूरिजनहिंसया ॥९४॥
एवमुक्तो भृशं क्रुद्धो रक्षसामधिपोऽवदत् । गच्छ गच्छ द्रुतं यत्र न पश्यामि मुखं तव ॥९५॥
अहो त्वं पण्डितंमन्या यद्विहायोन्नतिं निजाम् । परपक्षप्रशंसायां प्रवृत्ता दीनचेष्टिता ॥९६॥
त्वं वीरजननी भूत्वा ममाग्रमहिषी सती । या वक्षि क्लीवमेवं तत्कातरास्ति न ते परा ॥९७॥
एवमुक्ता जगौ देवी शृणु यद्गदितं बुधैः । हलिनां चक्रिणां जन्म तथा च प्रतिचक्रिणाम् ॥९८॥
[1]विजयोऽथ त्रिपृष्ठश्च द्विपृष्ठोऽचल एव च । स्वयंभूरिति च ख्यातस्तथा च पुरुषोत्तमः ॥९९॥
नरसिंहप्रतीतिश्च पुण्डरीकश्च विश्रुतः । दत्तश्चेति जगद्वीरा हरयोऽस्मिन् युगे स्मृताः ॥१००॥
समये तु महावीर्यौ पद्मनारायणौ स्मृतौ । यौ तौ ध्रुवमिमौ जातौ दशानन ममागतौ ॥१०१॥
प्रत्यनीका ययुग्रीवतारकाद्या यथा गताः । नाशमेभ्यस्तथा नूनं त्वमस्माद्गन्तुमिच्छसि ॥१०२॥

प्रबोधको प्राप्त नही कराया गया था ॥९०॥ 'यह पुरुष है और यह स्त्री है' इस प्रकारका विकल्प निर्बुद्धि पुरुषोको ही होता है यथार्थमे जो बुद्धिमान् हैं वे स्त्री-पुरुष सभीसे हितकारी वचनोकी अपेक्षा रखते है ॥९१॥ हे नाथ ! यदि आपकी मेरे ऊपर कुछ थोड़ी भी प्रसन्नता है तो मै कहती हूँ कि परस्त्रीसे रतिकी याचना छोडो अथवा परस्त्रीमे रत पुरुषका मार्ग तजो ॥९२॥ यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जानकीको ले जाकर रामको आपकी शरणमे ले आती हूँ तथा तुम्हारे इन्द्रजित् और मेघवाहन नामक दोनो पुत्रो तथा भाई कुम्भकर्णको वापस लिये आती हूँ । अधिक जनोकी हिंसासे क्या प्रयोजन है ? ॥९३–९४॥

मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर रावण अत्यधिक कुपित होता हुआ बोला कि जा-जा जल्दी जा, वहाँ जा जहाँ कि मै तेरा मुख नही देखूँ ॥९५॥ अहो ! तू अपने आपको बड़ी पण्डिता मानती है जो अपनी उन्नतिको छोड़ दीन चेष्टा की धारक हो शत्रु पक्षकी प्रशंसा करनेमे तत्पर हुई है ॥९६॥ तू वीरकी माता और मेरी पट्टरानी होकर भी जो इस प्रकार दीन वचन कह रही है तो जान पड़ता है कि तुमसे बढ़कर कोई दूसरी कायर स्त्री नही है ॥९७॥ इस प्रकार रावणके कहनेपर मन्दोदरीने कहा कि हे नाथ ! विद्वानोने बलभद्रो, नारायणों तथा प्रतिनारायणोका जन्म जिस प्रकार कहा है उसे सुनिये ॥९८॥ हे देव ! इस युगमे अबतक *विजय तथा अचल आदि सात बलभद्र और त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, नृसिंह, पुण्डरीक और दत्त ये सात नारायण हो चुके है । ये सभी जगत्मे अत्यन्त धीरवीर तथा प्रसिद्ध हुए हैं । इस समय पद्म और लक्ष्मण नामक बलभद्र तथा नारायण होगे । सो हे दशानन, जान पड़ता है कि ये दोनो ही यहाँ आ पहुँचे हैं । जिस प्रकार अश्वग्रीव और तारक आदि प्रतिनारायण इनसे नाशको प्राप्त हुए

---

१ विनयोऽथ म ।

* नौ बलभद्र—१ विजय २ अचल ३भद्र ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ आनन्द ७ नन्दन नन्द ८ पद्म—राम और ९ बलराम ।

नौ नारायण—१ त्रिपृष्ठ २ द्विपृष्ठ ३ स्वयम्भू ४ पुरुषोत्तम ५ नृसिंह ६ पुण्डरीक ७ दत्त ८ लक्ष्मण और ९ कृष्ण ।

नौ प्रतिनाराण—१ अश्वग्रीव २ तारक ३ मेरक ४ द्विगम्भु ५ मधु ६ बलि ७ प्रह्लाद ८ रावण और ९ जरासन्ध ।

तावताशङ्क्यते नाथ वक्तुं तत्त्वं हिते रतम्। यावत्प्रज्ञापनीयस्य निश्चयान्तो न दृश्यते ॥१०३॥
तत्कार्यं बुद्धियुक्तेन परत्रेह च यत्सुखम्। न तु[1] दुःखाङ्कुरोत्पत्तिकारणं कुत्सनास्पदम् ॥१०४॥
विषयैः सुचिरं भुक्तैर्य. पुमॉस्तृप्तिमागतः। त्रैलोक्येऽपि वदैकं तं पापमोहित रावण ॥१०५॥
भुक्त्वापि सकलं भोगं मुनित्वं चेन्न सेवसे। गृहिधर्मरतो भूत्वा कुरु दुःखविनाशनम् ॥१०६॥
अणुव्रतासिदीप्ताङ्गो नियमच्छत्रशोभितः। सम्यग्दर्शनसन्नाह· शीलकेतनलक्षित. ॥१०७॥
भावनाचन्दनार्द्राङ्गः सुज्ञबोधशरासनः। वशेन्द्रियबलोपेतः शुभध्यानप्रतापवान् ॥१०८॥
मर्यादाङ्कुशसंयुक्तो निश्चयानेकपस्थितः। जिनभक्तिमहाशक्तिर्जय दुर्गतिवाहिनीम् ॥१०९॥
इयं हि कुटिला पापा[2] महावेगा सुदुःसहा। बुधेन जीयते जित्वा तामेतां सुखितो भव ॥११०॥
हिमवन्मन्दराद्येषु पर्वतेषु जिनालयान्। पूजयन् वशया सार्द्धं जम्बूद्वीपं मया चर ॥१११॥
अष्टादशसहस्रस्त्रीपाणिपल्लवलालित। क्रीड मन्दरकुञ्जेषु मन्दाकिन्यास्तटेषु च ॥११२॥
ईप्सितेषु प्रदेशेषु रमणीयेषु सुन्दर। विद्याधरयुगं स्वेच्छं करोति विहृतिं सुखम् ॥११३॥
लब्धवर्ण न युद्धेन किंचिदस्ति प्रयोजनम्। प्रसीद कुरु मे वाक्यं सर्वथैव सुखावहम् ॥११४॥
क्ष्वेडवद्दुर्जन निन्द्यं परमानर्थकारणम्। जनवादमिमं मुञ्च किं मज्जस्ययशोऽम्बुधौ ॥११५॥
इति प्रसादयन्ती सा बद्धपाण्यब्जकुड्मला। पपात पादयोस्तस्य वाञ्छन्ती परमं हितम् ॥११६॥

हैं उसी प्रकार जान पड़ता है कि तुम भी इनसे नाशको प्राप्त होना चाहते हो ॥९९-१०२॥ हे नाथ! हित करनेमे तत्पर तत्त्वका निरूपण करनेके लिए तबतक आशका की जाती है जबतक कि निरूपणादि तत्त्वका पूर्ण निश्चय नही दिखाई पड़ता है ॥१०३॥ बुद्धिमान् मनुष्यको वह कार्य करना चाहिए जो इस लोक तथा परलोकमे सुखका देनेवाला हो। दु.खरूपी अंकुरकी उत्पत्तिका कारण तथा निन्दाका स्थान न हो ॥१०४॥ चिरकाल तक भोगे हुए भोगोसे जो तृप्तिको प्राप्त हुआ हो ऐसा तीन लोकमे भी यदि कोई एक पुरुष हो तो हे पापसे मोहित रावण! उसका नाम कहो ॥१०५॥ यदि समस्त भोगोको भोगनेके बाद भी तुम मुनि पदको धारण नही कर सकते हो तो कमसे कम गृहस्थ धर्ममे तत्पर होकर भी दुःखका नाश करो ॥१०६॥ हे नाथ! अणुव्रतरूप तलवारसे जिसका शरीर देदीप्यमान है, जो नियमरूपी छत्रसे सुशोभित है, जिसने सम्यग्दर्शनरूपी कवच धारण किया है, जो शीलव्रतरूपी पताकासे युक्त है, जिसका शरीर भावनारूपी चन्दनसे आर्द्र है। सम्यग्ज्ञान ही जिसका धनुप है, जो जितेन्द्रियतारूपी बलसे सहित है, शुभध्यानरूपी प्रतापसे युक्त है, मर्यादारूपी अकुशसे सहित है, जो निश्चयरूपी हाथीपर सवार है, और जिनेन्द्र भक्ति ही जिसकी महाशक्ति है ऐसे होकर तुम दुर्गतिरूपी सेनाको जीतो। यथार्थमे यह दुर्गतिरूपी सेना अत्यन्त कुटिल, पापरूपिणी, और अत्यन्त दुःसह है सो इसे जीतकर तुम सुखी होओ ॥१०७-११०॥ हिमवत् तथा मेरु आदि पर्वतोपर जो अकृत्रिम जिनालय हैं उनकी मेरे साथ पूजा करते हुए जम्बूद्वीपमे विचरण करो ॥१११॥ अठारह हजार स्त्रियोके हस्तरूपी पल्लवोसे लालित होते हुए तुम मन्दरगिरिके निकुंजो और गंगा नदीके तटोमे क्रीडा करो ॥११२॥ हे सुन्दर! विद्याधर दम्पति अपने अभिलषित मनोहर स्थानोमे इच्छानुसार सुखपूर्वक विहार करते है ॥११३॥ हे विद्वान्! अथवा हे यशस्विन्! युद्धसे कुछ प्रयोजन नही है। प्रसन्न होओ और सब प्रकारसे सुख उत्पन्न करनेवाले मेरे वचन अगीकृत करो ॥११४॥ विपके समान दुष्ट, निन्दनीय, तथा परम अनर्थका कारण जो यह लोकापवाद है सो इसे छोडो। व्यर्थ ही अपयशरूप सागरमे क्यो डूबते हो? ॥११५॥ इस प्रकार प्रसन्न करती तथा उसका परम हित चाहती हुई मन्दोदरी हस्तकमल जोड़कर रावणके चरणोमे गिर पड़ी ॥११६॥

१ नतु म। २ पाप म।

विहसन्नथ तामूचे भीतां भयविवर्जितः। उत्थाप्य भीतिमेवं किं गता त्वं कारणं विना ॥११७॥
मत्तोऽस्ति नाधिकः कश्चिद्वरारोहे नरोत्तमः। अलीका भीरुता केयं स्त्रैणादालम्ब्यते त्वया ॥११८॥
गदितं यत्त्वयान्यस्य पक्षस्योद्भवसूचनम्। नारायण इति स्पष्टं तत्र देवि निरूप्यते ॥११९॥
नामनारायणा सन्ति बलदेवाश्च भूरिश.। नामोपलब्धिमात्रेण कार्यसिद्धिः किमिष्यते ॥१२०॥
तिर्यक् कश्चिन्मनुष्यो वा कृतसिद्धाभिधानकः। वाङ्मात्रत. स किं सैद्धं सुखमाप्नोति कातरे ॥१२१॥
रथनूपुरधामेशो यथेन्द्रोऽनिन्द्रतां मया। नीतस्तथेममीक्षस्व त्वमनारायणं कृतम् ॥१२२॥
इत्यूर्जितमुदाहृत्य प्रतिशत्रुः प्रतापवान्। स्वप्रभापटलच्छन्नशरीरः परमेश्वरः ॥१२३॥
क्रीडागृहमुपाविक्षन्मन्दोदर्या समन्वितः। श्रियेव सहितः शक्रो यथा कालाश्रितक्रियः ॥१२४॥
सायाह्नसमये तावत्संध्यानिर्गतमण्डलः। सवितांशुहरत्यंशून्कषायानिव संयतः ॥१२५॥
संध्याबलिविदष्टौष्ठपुरस्सरम्मलोहित.। निर्भर्त्सयन्निव दिनं गतः क्वापि दिवाकरः ॥१२६॥
बद्धपद्माञ्जलिपुटा नलिन्योऽस्तं गतं रविम्। विरुतैश्चक्रवाकानां दीनमाकारयन्निव ॥१२७॥
अनुमार्गेण च प्राप्ता ग्रहनक्षत्रवाहिनी। विक्षेपेणेव सरितुं मृगाङ्केन विसर्जिता ॥१२८॥
प्रदोषे तत्र संवृत्ते दीपिकारत्नदीपिते[1]। प्रभाभिर्नगरी लङ्का रेजे मेरोः शिखा यथा ॥१२९॥

अथानन्तर निर्भय रावणने हँसते हुए उस भयभीत मन्दोदरीको उठाकर कहा कि तू इस तरह कारणके विना ही भयको क्यो प्राप्त हो रही है ? ॥११७॥ हे सुन्दरि ! मुझसे बढ़कर कोई दूसरा उत्तम मनुष्य नही है। तू स्त्रीपनाके कारण इस किस मिथ्या भीरुताका आलम्बन ले रही है ? अर्थात् स्त्री होनेके कारण व्यर्थ ही क्यो भयभीत हो रही है ? ॥११८॥ 'वे नारायण हैं' इस प्रकार दूसरे पक्षके अभ्युदयको सूचित करनेवाली जो बात तूने कही है सो हे देवि ! तुझे स्पष्ट बात बताऊँ कि नारायण और बलदेव इस नामको धारण करनेवाले पुरुष बहुत-से हैं क्या नामकी उपलब्धि मात्रसे कार्यकी सिद्धि हो जाती है ॥११९-१२०॥ हे भीरु ! यदि किसी तिर्यंच या मनुष्यका सिद्ध नाम रख लिया जाये तो क्या नाममात्रसे वह सिद्ध सम्बन्धी सुखको प्राप्त हो सकता है ? ॥१२१॥ जिस प्रकार रथनूपुर नगरके अधिपति इन्द्रको मैने अनिन्द्रपना प्राप्त करा दिया था उसी प्रकार तुम देखना कि मैने इस नारायणको अनारायण बना दिया है ॥१२२॥ इस प्रकार अपनी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था तथा जिसकी क्रियाएँ यमराजके आश्रित थी ऐसा प्रतापी परमेश्वर रावण, अपनी सबलताका निरूपण कर मन्दोदरीके साथ क्रीड़ा गृहमे उस तरह प्रविष्ट हुआ जिस तरह कि लक्ष्मीके साथ इन्द्र प्रवेश करता है ॥१२३-१२४॥

अथानन्तर सायंकालका समय आया तो सन्ध्याके कारण जिसका मण्डल अस्तोन्मुख हो गया था ऐसे सूर्यने किरणोको उस तरह संकोच लिया जिस तरह कि मुनि अपनी कषायोको संकोच लेता है ॥१२५॥ सूर्य लाल-लाल होकर अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो सन्ध्यारूप ओष्ठ जिसमे डसा जा रहा था ऐसे बहुत भारी क्रोधसे लाल-लाल हो दिनको डाँट दिखाता हुआ कही चला गया था ॥१२६॥ कमलिनियोंके कमल बन्द हो गये थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो कमलरूपी अंजलिको बाँधनेवाली कमलिनियाँ चक्रवाक पक्षियोके शब्दके द्वारा अस्त हुए सूर्यको दीनतापूर्वक बुला ही रही थी ॥१२७॥ सूर्यके अस्त होते ही उस मार्गसे ग्रह और नक्षत्रोकी सेना आ पहुँची सो ऐसी जान पड़ती थी मानो चन्द्रमाने उसे स्वच्छन्दता-पूर्वक घूमनेके लिए छोड़ ही दिया था—उसे आज्ञा ही दे रक्खी थी ॥१२८॥ तदनन्तर दीपिका-रूपी रत्नोसे प्रकाशित प्रदोष कालके प्रकट होनेपर प्रभासे जगमगाती हुई लका मेरुकी शिखाके

---

१ दीपिता म ।

प्रियं प्रणयिनी काचिदालिङ्ग्योचे सवेपथु । अप्येकां शर्वरीमेतां मानयामि त्वया सह ॥१३०॥
उद्गसद्यूथिकामोदमधुमत्ता विघूर्णिता । पर्यस्ता काचिदीशाङ्के पुष्पवृष्टिः सुकोमला ॥१३१॥
अब्जतुल्यक्रमा काचित् पीवरोरुपयोधरा । वपुष्मती वपुष्मन्तं दयिता दयितं ययौ ॥१३२॥
जग्राह भूषणं काचित्स्वभावेनैव सुन्दरी । कुर्वन्ती हेमरत्नानां चारुभावा कृतार्थताम् ॥१३३॥
सुविद्यावरयुग्मानि प्रचिक्रीडुर्यथेप्सितम् । भवने भवने भान्ति[1] सद्मं भोगभूमिषु ॥१३४॥
गीतानङ्गद्ध्वालापैर्वीणावंशादिनिःस्वनैः[2] । जल्पतीव तदा लङ्का मुदिता क्षणदागमे ॥१३५॥
ताम्बूलगन्धमाल्याद्यैरुपभोगैः सुरोपमैः । पिबन्तो मदिरामन्ये रमन्ते दयितान्विताः ॥१३६॥
काचित्स्ववदनं दृष्ट्वा चषकप्रतिबिम्बितम् । ईर्ष्ययेन्दीवरेणेशं प्राप्ता मदमताडयत् ॥१३७॥
मदिरायां परिन्यस्तं नारीभिर्मुखसौरभम् । लोचनेषु निजो रागस्तासां मदिरया कृतः ॥१३८॥
तदेव वस्तु संसर्गाद्धत्ते परमचारुताम् । तथाहि दयितापीतशेषं[3] स्वाद्वभवन्मधु ॥१३९॥
मदिरापतितां काञ्चिदात्मीयां लोचनद्युतिम् । गृह्णन्तीन्दीवरप्रीत्या कान्तेन हसिता चिरम् ॥१४०॥
अप्रौढापि सती काचिच्छनकैः पायिता सुराम् । जगाम प्रौढतां बाला मन्मथोचितवस्तुनि ॥१४१॥
लज्जामखीमपाकृत्य तासामत्यन्तमीप्सितम् । कृतं कादम्बरीसख्या प्रियेषु क्रीडितं परम् ॥१४२॥
घूर्णमानेक्षणं भूयः[4] कलस्खलितजल्पितम् । चेष्टितं विकटं स्त्रीणां पुंसां जातं मनोहरम् ॥१४३॥

समान सुशोभित हो उठी ॥१२९॥ उस समय कोई स्त्री पतिका आलिंगन कर काँपती हुई बोली कि तुम्हारे साथ यह एक रात तो आनन्दसे बिता लूँ कल जो होगा सो होगा ॥१३०॥ जिसकी चोटीमे गुँथी हुई जुहीकी मालासे सुगन्धि निकल रही थी तथा जो मधुके नशामे मत्त हो झूम रही थी ऐसी कोई एक स्त्री पतिकी गोदमे उस तरह लोट गयी मानो अत्यन्त कोमल पुष्प वृष्टि ही बिखेर दी गयी हो ॥१३१॥ जिसके चरण कमलके समान थे तथा जिसकी जाँघे और स्तन अत्यन्त स्थूल थे ऐसी सुन्दर शरीरकी धारक कोई स्त्री सुन्दर शरीरके धारक वल्लभके पास गयी ॥१३२॥ जो स्वभावसे ही सुन्दरी थी तथा सुन्दर हाव-भावको धारण करनेवाली थी ऐसी किसी स्त्रीने सुवर्ण और रत्नोको कृत-कृत्य करनेके लिए ही मानो आभूषण धारण किये थे ॥१३३॥ विद्याधर और विद्याधरियोके युगल इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहे थे और वे घर-घरमे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो भोगभूमियोमे ही हों ॥१३४॥ संगीतके कामोत्तेजक आलापो और वीणा-बाँसुरी आदिके शब्दोंसे उस समय लंका ऐसी जान पड़ती थी मानो रात्रिका आगमन होनेपर हर्षित हो वार्तालाप ही कर रही हो ॥१३५॥ कितने ही अन्य लोग ताम्बूल, गन्धमाला आदि देवोपम उपभोगोसे मदिरा पीते हुए अपनी वल्लभाओके साथ क्रीड़ा करते थे ॥१३६॥ नशामे निमग्न हुई कोई एक स्त्री मदिराके प्यालेमे प्रतिबिम्बित अपना ही मुख देख ईर्ष्यावश नील-कमलसे पतिको पीट रही थी ॥१३७॥ स्त्रियोने मदिरामे अपने मुखकी सुगन्धि छोड़ी थी और मदिराने उसके बदले स्त्रियोके नेत्रोमे अपनी लालिमा छोड़ रखी थी ॥१३८॥ वही वस्तु इष्टजनोके संसर्गसे परम सुन्दरताको धारण करने लगती है इसीलिए स्त्रीके पीनेसे शेष रहा मधु स्वादिष्ट हो गया था ॥१३९॥ कोई एक स्त्री मदिरामे पड़ी हुई अपने नेत्रोकी कान्तिको नीलकमल समझ ग्रहण कर रही थी सो पतिने उसकी चिरकाल तकहँसी की ॥१४०॥ कोई एक स्त्री यद्यपि प्रौढ नही थी तथापि धीरे-धीरे उसे इतनी अधिक मदिरा पिला दी गयी कि वह कामके योग्य कार्यमे प्रौढताको प्राप्त हो गयी अर्थात् प्रौढ़ा स्त्रीके समान कामभोगके योग्य हो गयी ॥१४१॥ उस मदिरारूपी सखीने लज्जारूपी सखीको दूर कर उन स्त्रियोकी पतियोके विषयमे ऐसी क्रीड़ा करायी जो उन्हे अत्यन्त इष्ट थी अर्थात् स्त्रियाँ मदिराके कारण लज्जा छोड़ पतियोके साथ इच्छानुकूल क्रीड़ा करने लगी ॥१४२॥ जिसमे नेत्र घूम रहे थे तथा बार-बार मधुर अधकटे शब्दोका उच्चारण हो रहा

१ भाति ज. । २ इवालापै- म । ३ पीतं शेष म । ४. कलै स्खलित म ।

दम्पती मधु वाञ्छन्तौ पीतशेषं परस्परम् । चक्रतुः प्रसृतोल्लापौ चषकस्य गतागतम् ॥१४४॥
[1]चषके विगतप्रीतिः कान्तामालिङ्गय सुन्दरः । गण्डूषमदिरां कश्चित्पपौ मुकुलितेक्षणः ॥१४५॥
आसीद्विद्रुमकल्पानां किंचित्स्फुरणसेविनाम् । मधुक्षालितरागाणामधराणां परा द्युतिः ॥१४६॥
[2]दन्ताधरेक्षणच्छायासंसर्गिचषके मधु । शुक्लारुणासिताम्भोजयुक्तं[3] सर इवाभवत् ॥१४७॥
गोपनीयानदर्शयंन्त[4] प्रदेशान् सुरया स्त्रियः । वाक्यान्यभाषणीयान्यभाषन्त च गतत्रपाः ॥१४८॥
चन्द्रोदयेन मधुना यौवनेन च भूमिकाम् । आरूढो मदनस्तेषां तासां चात्यन्तमुन्नताम् ॥१४९॥
कृतक्षतं ससीत्कारं गृहीतौष्ठं[5] समाकुलम् । सुरतं भावियुद्धस्य मङ्गलग्रहणायितम् ॥१५०॥
एषोऽपि रक्षसामिन्द्रश्चारुचेष्टितसंगतः । समसानयदुद्भवश्रीरन्तःपुरमशेषतः ॥१५१॥
मुहुर्मुहुः समालिङ्ग्य स्नेहान्मन्दोदरी विभो । अपश्यद्वदनं तृप्तिमगच्छन्ती सुलोचना ॥१५२॥
इतः समरसंवृत्तात्परिप्राप्तजयस्य ते । आगतस्य सदा कान्त करिष्याम्यवगूहनम् ॥१५३॥
मोक्ष्यामि क्षणमप्येक न त्वां भूयो मनोहर । लतेव बाहुबलिनं सर्वाङ्गकृतसंगति ॥१५४॥
वदन्त्यामेवमेतस्यां प्रेमकातरचेतसि । रुत [6]ताम्रशिखश्चक्रे समाप्ति च निशा गता ॥१५५॥
नक्षत्रदीधितिभ्रंशे प्राप्ते संध्यारुणागमे । गीतध्वनिरभूद्रम्यो भवने भवनेऽर्हताम् ॥१५६॥

ऐसी स्त्रियो और पुरुषोके मनको हरण करनेवाली विकट चेष्टा होने लगी ॥१४३॥ पीते-पीते जो मदिरा शेष वच रही थी उसे भी दम्पती पी लेना चाहते थे इसलिए 'तुम पियो तुम पियो' इस प्रकार जोरसे शब्द करते हुए प्यालेको एक दूसरेकी ओर वढ़ा रहे थे ॥१४४॥ किसी सुन्दर पुरुषकी प्रीति प्यालेमे समाप्त हो गयी थी इसलिए वह वल्लभाका आलिंगन कर नेत्र वन्द करता हुआ उसके मुखके भीतर स्थित कुरलेकी मदिराका पान कर रहा था ॥१४५॥ जो मूँगाके समान थे, जो कुछ-कुछ फडक रहे थे तथा मदिराके द्वारा जिनकी कृत्रिम लाली धुल गयी थी ऐसे अधरोष्ठोकी अत्यधिक शोभा वढ़ रही थी ॥१४६॥ दाँत, ओष्ठ और नेत्रोकी कान्तिसे युक्त प्यालेमे जो मधु रखा था वह सफेद, लाल और नील कमलोसे युक्त सरोवरके समान जान पड़ता था ॥१४७॥ उस समय मदिराके कारण जिनकी लज्जा दूर हो गयी थी ऐसी स्त्रियाँ अपने गुप्त प्रदेशोको दिखा रही थी तथा जिनका उच्चारण नही करना चाहिए ऐसे शब्दोका उच्चारण कर रही थी ॥१४८॥ चन्द्रोदय, मदिरा और यौवनके कारण उस समय उन स्त्री-पुरुषो का काम अत्यन्त उन्नत अवस्थाको प्राप्त हो चुका था ॥१४९॥ जिसमे नखक्षत किये गये थे, जो सीत्कारसे सहित था, जिसमे ओष्ठ डँसा गया था तथा जो आकुलतासे युक्त था ऐसा स्त्री-पुरुषोका सम्भोग आगे होनेवाले युद्धका मानो मगलाचार ही था ॥१५०॥ इधर सुन्दर चेष्टासे युक्त रावणने भी समस्त अन्त पुरको एक साथ उत्तम शोभा प्राप्त करायी अर्थात् अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियोको प्रसन्न किया ॥१५१॥ उत्तम नेत्रोसे युक्त मन्दोदरी वार-वार आलिगन कर वड़े स्नेहसे पतिका मुख देखती थी तो भी तृप्त नही होती थी ॥१५२॥ वह कह रही थी कि हे कान्त ! जव तुम विजयी हो यहाँ लौटकर आओगे तव मै सदा तुम्हारा आलिंगन करूँगी ॥१५३॥ हे मनोहर ! मै तुम्हे एक क्षणके लिए भी न छोडूँगी और जिस प्रकार लताएँ वाहुवली स्वामीके समस्त शरीरसे समा गयी थी उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे समस्त शरीरमे समा जाऊँगी ॥१५४॥ इधर प्रेमसे कातर चित्तको धारण करनेवाली मन्दोदरी इस प्रकार कह रही थी उधर मुर्गा वोलने लगा और रात्रि समाप्त हो गयी ॥१५५॥

अथानन्तर नक्षत्रोकी कान्तिको नष्ट करनेवाली सन्ध्याकी लाली आकाशमें आ पहुँची

१ चषकेऽपि गत- म । २ दन्ताधरक्षणच्छाया- म । ३. शुक्लारुणासित म । ४ नदर्शन्त म । ५ गृहीत्वौष्ठ म । ६. कुक्कुट. ।

कालाग्निमण्डलाकारो रश्मिभिश्छादयन् दिशः । जगामोदयसंबन्धं भास्करो लोकलोचनः ॥१५७॥
प्रभातसमये देव्यो व्यग्रा. कृच्छ्रेण सान्त्विता. । दयितेन मनस्यूहुः किं किमित्यतिदुःसहम् ॥१५८॥
गम्भीरास्ताडिता भेर्य. शङ्खशब्दपुरःसरा. । रावणस्याज्ञया युद्धसंज्ञादानविचक्षणाः ॥१५९॥
परस्परमहंकारं वहन्तः परमोद्धता । प्रहृष्टा निर्ययुर्योधा ययुद्विपरथस्थिताः ॥१६०॥
असिचापगदाकुन्तभासुराटोपमस्कटा. । प्रचलच्चामरच्छत्रछायामण्डलशोभिनः ॥१६१॥
आशुकारसमुद्युक्ताः सुराकाराः प्रतापिनः । विद्याधराधिपा योद्धुं निर्ययुः प्रवरर्द्धयः ॥१६२॥
तत्र पङ्कजनेत्राणां कारुण्यं पुरयोषिताम् । निरीक्ष्य दुर्जनस्यापि चित्तमासीत्सुदुःखितम् ॥१६३॥
निर्गतो दयितां कश्चिदनुव्रज्यापरायणाम् । अयि मुग्धे निवर्त्तस्व व्रजामि [1]सत्ये सत्यवाक् ॥१६४॥
उष्णीषं भो गृहाणेति व्याजादभिमुखं प्रियम् । चक्रे काचिन्मृगीनेत्रा वक्त्रदर्शनलालसा ॥१६५॥
दृष्टिगोचरतोऽतीते प्रिये काचिद्वराङ्गना । पतन्ती सह वाष्पेण सखीभिर्मूर्च्छिता वृता ॥१६६॥
निवृत्य काचिदाश्रित्य शयनीयस्य पट्टिकाम् । तस्थौ मौनमुपादाय [2]पुस्तोपमशरीरिका ॥१६७॥
सम्यग्दर्शनसंपन्नः शूरः कश्चिदणुव्रती । पृष्ठतो वीक्ष्यते पत्न्या पुरस्त्रिदशकन्यया ॥१६८॥
पूर्वं [3]पूर्णेन्दुवत्सौम्या बभूवुस्तुमुलागमे । शूराः कवचितोरस्काः कृतान्ताकारभासुराः ॥१६९॥
चतुरङ्गेन सैन्येन चापच्छत्रादिसंकुल । संप्राप्तस्तत्र मारीचो नैगमे क्षीवतेजसा ॥१७०॥
असौ विमलचन्द्रश्च धनुष्मान् विमलाम्बुद. । सुनन्दानन्दनन्दाद्याः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१७१॥

और अरहन्त भगवान्के मन्दिर-मन्दिरमे सगीतका मधुर शब्द होने लगा ॥१५६॥ प्रलयकालीन अग्निसमूहके समान जिसका आकार था ऐसा लोकलोचन सूर्य, किरणोंसे दिशाओको आच्छादित करता हुआ उदयाचलके साथ सम्बन्धको प्राप्त हुआ ॥१५७॥ प्रात:कालके समय पति जिन्हे बड़ी कठिनाईसे सान्त्वना दे रहा था ऐसी स्त्रियाँ व्यग्र होती हुई मनमे न जाने क्या-क्या दु.सह विचार धारण कर रही थी ॥१५८॥ तदनन्तर रावणकी आज्ञासे युद्धका संकेत देनेमे निपुण शंख फूँके गये और गम्भीर भेरियाँ बजायी गयी ॥१५९॥ जो परस्पर अहंकार धारण कर रहे थे तथा अत्यन्त उद्धत थे ऐसे योद्धा घोडे, हाथी और रथोपर सवार हो हर्षित होते हुए बाहर निकले ॥१६०॥ जो खड्ग, धनुष, गदा, भाले आदि चमकते हुए शस्त्रसमूहको धारण कर रहे थे, जो हिलते हुए चमर और छत्रोंकी छायासे सुशोभित थे, जो शीघ्रता करनेमे तत्पर थे, देवोंके समान थे और अतिशय प्रतापी थे ऐसे विद्याधर राजा बड़े ठाट-बाटसे युद्ध करनेके लिए निकले ॥१६१–१६२॥ उस समय निरन्तर रुदन करनेसे जिनके नेत्र कमलके समान लाल हो गये थे ऐसी नगरकी स्त्रियोकी दीनदशा देख दुष्ट पुरुषका भी चित्त अत्यन्त दु:खी हो उठता था ॥१६३॥ कोई एक योद्धा पीछे-पीछे आनेवाली स्त्रीसे यह कहकर कि 'अरी पगली ! लौट जा मै सचमुच ही युद्धमे जा रहा हूँ' बाहर निकल आया ॥१६४॥ किसी मृगनयनी स्त्रीको पतिका मुख देखनेकी लालसा थी इसलिए उसने इस बहाने कि अरे शिरका टोप तो लेते जाओ, पतिको अपने सम्मुख किया था ॥१६५॥ जब पति दृष्टिके ओझल हो गया तब अश्रुओके साथ-साथ कोई स्त्री मूर्च्छित हो नीचे गिर पड़ी और सखियोने उसे घेर लिया ॥१६६॥ कोई एक स्त्री वापस लौट, शय्याकी पाटी पकड़, मौन लेकर मिट्टीकी पुतलीकी तरह चुपचाप बैठ गयी ॥१६७॥ कोई एक शूरवीर सम्यग्दृष्टि तथा अणुव्रतोंका धारक था इसलिए उसे पीछेसे तो उसकी पत्नी देख रही थी और आगेसे देवकन्या देख रही थी ॥१६८॥ जो योद्धा पहले पूर्ण चन्द्रके समान सौम्य थे वे ही युद्ध उपस्थित होनेपर कवच धारण कर यमराजके समान दमकने लगे ॥१६९॥ जो धनुष तथा छत्र आदिसे सहित था ऐसा मारीच चतुरंगिणी सेना ले बड़े तेजके साथ नगरके बाहर आया ॥१७०॥ धनुषको धारण

१. सुखमित्यवाक् म. । २. प्रस्तोपम म । ३. कर्णेन्दु म ।

विद्याविनिर्मितैर्दिव्यै रथैर्हुतवहप्रभैः । रेजुरग्निकुमाराभा भासयन्तो दिशो दश ॥१७२॥
केचिद्दीप्तास्त्रसंपूर्णैर्हिमवत्संनिभैरिभैः । ककुभश्छादयन्ति स्म सविद्युद्भिरिवाम्बुदैः ॥१७३॥
केचिद्वरतुरङ्गौघैर्दर्पनार्घायुधसंकटाः । सहसा ज्योतिषां चक्रं चूर्णयन्तीव वेगिनः ॥१७४॥
बृहद्विविधवादित्रैर्हयानां हेषितैस्तथा । गजानां गर्जितारावैः पदात्याह्वानैरपि ॥१७५॥
योधानां सिंहनादैश्च जयशब्दैश्च वन्दिनाम् । गीतैः कुशीलवानां च समुत्साहनकोविदैः ॥१७६॥
इत्यन्यैश्च महानादैरेकीभूतैः समन्ततः । विननर्देव गगनं युगान्तजलदाकुलम् ॥१७७॥

रुचिरावृत्तम्

जनेशिनोऽश्वरथपदातिसंकुलाः परस्परातिशयविभूतिभासुराः ।
बृहद्भुजाः क्वचिनतुङ्गवक्षसस्तडित्प्रभाः प्रववृतिरे जयैषिणः ॥१७८॥
पदातयोऽपि हि करवालचञ्चलाः पुरो ययुः प्रभुपरितोषणैषिणः ।
समैश्च तैर्विविधसमूहिभिः कृतं निरर्गलं गगनतलं दिशस्तथा ॥१७९॥
इति स्थिते विगतभवाभिसंचिते शुभाशुभे त्रिभुवनभाजि कर्मणि ।
जनः करोत्यतिबहुधानुचेष्टितं न तं क्षमो रविरपि कर्तुमन्यथा ॥१८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे उद्योगाभिधानं नाम त्रिसप्ततितमं पर्व ॥७३॥



करनेवाले विमलचन्द्र, विमलमेघ, सुनन्द, आनन्द तथा नन्दको आदि लेकर सैकड़ों-हजारों योद्धा युद्धस्थलमे आये सो वे विद्या निर्मित, अग्निके समान देदीप्यमान रथोसे दशो दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो अग्निकुमार देव ही हो ॥१७१-१७२॥ कितने ही सुभट देदीप्यमान शस्त्रोसे युक्त तथा हिमालयके समान भारी-भारी हाथियोसे दिशाओंको इस प्रकार आच्छादित कर रहे थे मानो बिजली सहित मेघोसे ही आच्छादित कर रहे हो ॥१७३॥ पाँचो प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त कितने ही वेगशाली सुभट उत्तम घोड़ोके समूहसे ऐसे जान पड़ते थे मानो नक्षत्र मण्डलको सहसा चूर-चूर ही कर रहे हों ॥१७४॥ नाना प्रकारके बड़े-बड़े वादित्रों, घोड़ोकी हिनहिनाहट, हाथियोकी गर्जना, पैदल सैनिकोके बुलानेके शब्द, योद्धाओंका सिंहनाद, चारणोंकी जयजय ध्वनि, नटोंके गीत तथा उत्साह बढ़ानेमें निपुण अन्य प्रकारके महाशब्द सब ओरसे मिलकर एक हो रहे थे इसलिए उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश प्रलयकालीन मेघोसे व्याप्त हो दु.खसे चिल्ला ही रहा हो ॥१७५-१७७॥ उस समय जो घोड़े रथ तथा पैदल सैनिकोसे युक्त थे, जो परस्पर—एक दूसरेसे बढ़ी-चढ़ी विभूतिसे देदीप्यमान थे, जिनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थी तथा जिन्होने अपने उन्नत वक्षःस्थलोपर कवच धारण कर रखे थे ऐसे विजयके अभिलाषी अनेक राजा बिजलीके समान जान पड़ते थे ॥१७८॥ जिनके हाथोमे तलवारें लपलपा रही थी तथा जो स्वामीके सन्तोषकी इच्छा कर रहे थे ऐसे पैदल सैनिक भी उन राजाओंके आगे-आगे जा रहे थे, विविध झुण्डोको धारण करनेवाले उन सब सैनिकोसे आकाश तथा दिशाएँ ठसाठस भर गयी थी ॥१७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकार पिछले पूर्वभवोमे संचित त्रिभुवन सम्बन्धी, शुभ-अशुभ कर्मके विद्यमान रहते हुए यह प्राणी यद्यपि नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता है तथापि सूर्य भी उसे अन्यथा करनेमे समर्थ नही है ॥ १८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे युद्धके उद्योगका वर्णन करनेवाला तेहत्तरवॉ पर्व समाप्त हुआ ॥७३॥

---

१ युत म. ।

चतुःसप्ततितमं पर्व

विधिक्रमेण पूर्वेण सादरो मुदमुद्वहन्। आपृच्छत त्रिकूटेशो दयितामित्यपि प्रियाम् ॥१॥
[1]को जानाति प्रिये भूयो दर्शनं चारुदर्शने। महाप्रतिभये युद्धे किं भवेन्न भवेदिति ॥२॥
ऊचुस्तं दयिता नाथ नन्द नन्द रिपूञ्जय। द्रक्ष्याम सर्वथा भूयः संख्यैतस्त्वां समागतम् ॥३॥
इत्युक्तो दयितानेत्रसहस्रैरभिवीक्षितः। निर्जगाम बहिर्नाथो रक्षसां विकटप्रभः[3] ॥४॥
अपश्यच्च शरद्भानुभास्वरं बहुरूपया। विद्यया कृतनिर्माणमैन्द्रं नाम महारथम् ॥५॥
युक्तं दन्तिसहस्रेण प्रावृषेण्यघनत्विषा। प्रभापरिकरं मेरुं जिगीषन्तमिव स्थितम् ॥६॥
मत्तास्ते करिणो गण्डप्रगलद्दाननिर्झराः। सितपीतचतुर्दंष्ट्राः शङ्खचामरशोभिनः ॥७॥
मुक्तादामसमाकीर्णा महाघण्टानिनादिताः। ऐरावतसमा नानाधातुरागविभूषिताः ॥८॥
दुर्दान्ता विनयाधानभूमयो घन[4]गर्जिनाः। विरेजुः कालमेघौघसंनिभाश्चारुविभ्रमाः ॥९॥
मनोहरामकेयूरविदष्टभुजमस्तकः। तमसौ रथमारूढः शुनासीरसमद्युतिः ॥१०॥
विशालनयनस्तत्र स्थितो निरुपमाकृतिः। ओजसा सकलं लोकमग्रसिष्टेव[5] रावणः ॥११॥
सहस्रैर्दशभिः स्वस्य सदृशैः खेचराधिपैः। वियद्वल्लभनाथाद्यैः स्वहितैः कृतमण्डलः ॥१२॥
महाबलैः [6]सुरच्छायैरभिप्रायानुवेदिभिः। क्रुद्धः सुग्रीववैदेहौ प्रत्यभीयाय रावणः ॥१३॥

अथानन्तर पूर्वकृत पुण्योदयसे हर्षको धारण करता हुआ रावण आदरके साथ अपनी प्रिय स्त्री मन्दोदरीसे इस प्रकार पूछता है कि हे प्रिये! चारुदर्शने! महाभयकारी युद्ध होना है अतः कौन जाने फिर तुम्हारा दर्शन हो या न हो ॥१-२॥ यह सुन सब स्त्रियोंने कहा कि हे नाथ! सदा वृद्धिको प्राप्त होओ, शत्रुओंको जीतो। तुम्हें हम सब शीघ्र ही युद्धसे लौटा हुआ देखेंगी ॥३॥ ऐसा कहकर जिसे हजारों स्त्रियाँ अपने नेत्रोंसे देख रही थीं तथा जिसकी प्रभा अत्यन्त विशाल थी ऐसा राक्षसोंका राजा रावण नगरके बाहर निकला ॥४॥ बाहर निकलते ही उसने बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित तथा शरद् ऋतुके सूर्यके समान देदीप्यमान ऐन्द्र नामका महारथ देखा ॥५॥ वह महारथ वर्षाकालीन मेघोंके समान कान्तिवाले एक हजार हाथियोंसे जुता था, कान्तिके मण्डलसे सहित था, ऐसा जान पड़ता था मानो मेरु पर्वतको ही जीतना चाहता हो ॥६॥ उसमें जुते हुए हाथी मदोन्मत्त थे, इनके गण्डस्थलोंसे झरने झर रहे थे, उनके सफेद-पीले रंगके चार-चार खड़े दाँत थे, वे शंखों तथा चमरोंसे सुशोभित थे, मोतियोंकी मालाओंसे युक्त थे, उनके गलेमें बँधे बड़े-बड़े घण्टा शब्द कर रहे थे, वे ऐरावत हाथीके समान थे, नाना धातुओंके रंगसे सुशोभित थे, उनका जीतना अशक्य था, वे विनयकी भूमि थे, मेघोंके समान गर्जनासे युक्त थे, कृष्ण मेघोंके समूहके समान थे तथा सुन्दर विभ्रमको धारण करते हुए शोभायमान थे ॥७-९॥ जिसकी भुजाके अग्रभागपर मनोहर बाजूबन्द बँधा हुआ था तथा जिसकी कान्ति इन्द्रके समान थी, ऐसा रावण उस विद्या निर्मित रथपर आरूढ हुआ ॥१०॥ विशाल नयन तथा अनुपम आकृतिको धारण करनेवाला रावण उस रथपर आरूढ हुआ अपने तेजसे मानो समस्त लोकको ग्रस ही रहा था ॥११॥ जो अपने समान थे, अपना हित करनेवाले थे, महाबलवान् थे, देवोंके समान कान्तिसे युक्त थे और अभिप्रायको जाननेवाले थे ऐसे गगनवल्लभनगरके स्वामीको आदि लेकर दश हजार विद्याधर राजाओंसे घिरा रावण सुग्रीव और भामण्डलको देख कुपित होता

१ का जानाति म। २. युद्धत। ३ विकटप्रभुः म.। ४ घनवर्जिता. म। ५. -मग्रसद्वेव म., ज। ६. सुदच्छायै -(?) म.।

दृष्ट्वा दक्षिणतोऽत्यन्तभीमनिःस्वानकारिणः । भल्लूका गगने गृध्रा भ्रमन्ति छन्नभास्कराः ॥१४॥
जानन्तोऽपि निमित्तानि कथयन्ति महाक्षयम् । शौर्यमानोत्कटाः क्रुद्धा ययुरेव महानराः ॥१५॥
पद्माभोऽपि स्वसैन्यस्थ पर्यपृच्छत् सविस्मयः । भो भो मध्येयमेतस्या नगर्यास्तेजसा ज्वलन् ॥१६॥
जाम्बूनदमयैः कूटैः सुविशालैरलंकृतः । सतडिन्मेघसंघातच्छायः किंनामको गिरिः ॥१७॥
पृच्छतेऽस्मै सुपेणाद्या संमोहं समुपागताः । न शेकुः सहसा वक्तुमपृच्छच्च स तान्मुहुः ॥१८॥
ब्रूत किंनामधेयोऽयं गिरिरत्र निरीक्ष्यते । अगदञ्जाम्बवाद्यास्तमथो वेपथुमन्थरा ॥१९॥
दृश्यते [1]पद्मनाभायं रथोऽयं बहुरूपया । विद्यया कल्पितोऽस्माकं [2]मृत्युसज्वरकोविदः ॥२०॥
किष्किन्धराजपुत्रेण योऽसौ गत्वाभिरोषितः । रावणोऽवस्थितः सोऽत्र महामायामयोदयः ॥२१॥
श्रुत्वा तद्वचनं तेषां लक्ष्मणः सारथिं जगौ । रथं समानय क्षिप्रमित्युक्तः स तथाकरोत् ॥२२॥
ततः क्षुब्धार्णवस्वाना भीमा भेर्यः समाहताः । शङ्खकोटिस्वनोन्मिश्राः शेषवादित्रसंगताः ॥२३॥
श्रुत्वा तं निनदं हृष्टा भटा विकटचेष्टिताः । सन्नद्धा बद्धतूणीरा लक्ष्मणस्यान्तिके स्थिताः ॥२४॥
मा भैषीर्दयिते तिष्ठ निवर्तस्व शुचं त्यज । अहं लङ्केश्वरं जित्वा प्रत्येष्यत्र तवान्तिकम् ॥२५॥
इति गर्वोत्कटा वीरा समाश्वास्य वराङ्गनाः । अन्तःपुरात् सुसन्नद्धा विनिर्जग्मुर्यथायथम् ॥२६॥
परस्परप्रतिस्पर्द्धावेगचोदितवाहनाः । रथादिभिर्ययुर्योधाः शस्त्रावेक्षणचञ्चलाः ॥२७॥
रथं महेभसंयुक्तं गम्भीरोदारनिस्वनम् । भूतस्वनः समारूढो विरेजे खेचराधिपः ॥२८॥

हुआ उनके सम्मुख गया। रावणकी दक्षिण दिशामें भालू अत्यन्त भयंकर शब्द कर रहे थे और आकाशमें सूर्यको आच्छादित करते हुए गीध मँडरा रहे थे ॥१२–१४॥ शूरवीरताके अहंकारसे भरे महासुभट यद्यपि यह जानते थे कि ये अपशकुन मरणको सूचित कर रहे हैं तथापि वे कुपित हो आगे बढ़े जाते थे ॥१५॥

अपनी सेनाके मध्यमें स्थित रामने भी आश्चर्यचकित हो सैनिकोंसे पूछा कि हे भद्रपुरुषो! इस नगरीके बीचमें तेजसे देदीप्यमान, सुवर्णमयी बड़े-बड़े शिखरोंसे अलंकृत, तथा बिजलीसे सहित मेघसमूहके समान कान्तिको धारण करनेवाला यह कौन-सा पर्वत है?॥१६–१७॥ सुषेण आदि विद्याधर स्वयं भ्रान्तिमें पड़ गये इसलिए वे पूछनेवाले रामके लिए सहसा उत्तर देनेके लिए समर्थ नहीं हो सके। फिर भी राम उनसे बार-बार पूछे जा रहे थे कि कहो यह यहाँ कौन-सा पर्वत दिखाई दे रहा है? तदनन्तर भयसे काँपते हुए जाम्बव आदिने धीमे स्वरमें कहा कि हे राम! यह बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित वह रथ है जो हम लोगोंको कालज्वर उत्पन्न करनेमें निपुण है ॥१८–२०॥ सुग्रीवके पुत्र अंगदने जाकर जिसे कुपित किया था ऐसा वह महामायामय अभ्युदयको धारण करनेवाला रावण इसपर सवार है ॥२१॥ जाम्बव आदिके उक्त वचन सुन लक्ष्मणने सारथिसे कहा कि शीघ्र ही रथ लाओ। सुनते ही सारथिने आज्ञा पालन किया अर्थात् रथ लाकर उपस्थित कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिनके शब्द क्षुभित समुद्रके शब्दके समान थे, जिनके शब्दोंके साथ करोड़ों शंखोंके शब्द मिल रहे थे ऐसी भयंकर भेरियाँ बजायी गयीं ॥२३॥ उस शब्दको सुनकर विकट चेष्टाओंके धारक योद्धा, कवच पहन तथा तरकस बाँध लक्ष्मणके पास आ खड़े हुए ॥२४॥ 'हे प्रिये! डर मत, यहीं ठहर, लौट जा, शोक तज, मैं लंकेश्वरको जीतकर आज ही तेरे समीप वापस आ जाऊँगा' इस प्रकार गर्वीले वीर, अपनी उत्तम स्त्रियोंको सान्त्वना दे कवच आदिसे तैयार हो यथायोग्य रीतिसे बाहर निकले ॥२५–२६॥ जो परस्परकी प्रतिस्पर्धावश वेगसे अपने वाहनोंको प्रेरित कर रहे थे, तथा जो शस्त्रोंकी ओर देख-देखकर चंचल हो रहे थे ऐसे योधा रथ आदि वाहनोंपर आरूढ हो चले ॥२७॥ महागजसे

---

१ पद्मनागोऽत्र म. । २. मृत्युः स ज्वरकोविदः म. ।

तेनैव विधिनान्येऽपि विद्याधरजनाधिपाः । सहर्षाः प्रस्थिता योद्धुं क्रुद्धा लङ्केश्वरं प्रति ॥२९॥
त प्रति प्रसृता वीराः क्षुब्धाम्भोधिसमाकृतिम् । संघट्टं परमं प्रापुर्गङ्गातुङ्गोर्मिसंनिभाः ॥३०॥
ततः [1]सितयशोव्याप्तभुवनौ परमाकृती । स्ववासतो विनिष्क्रान्तौ युद्धार्थौ रामलक्ष्मणौ ॥३१॥
रथे सिंहयुते चारौ संबद्धकवचो बली । नवोदित इवादित्यः पद्मनाभो व्यराजत ॥३२॥
गारुडं रथमारूढो वैनतेयमहाध्वजः । समुन्नताम्बुदच्छायश्छायाश्यामलिताम्बरः ॥३३॥
मुकुटी कुण्डली धन्वी कवची सायकी कृणी । [2]संध्यासक्ताञ्जनागाभः सुमित्राजो व्यराजत ॥३४॥
महाविद्याधराश्चान्ये सालंकारपुरःसराः । योद्धुं श्रेणिक निर्याता नानायानविमानगाः ॥३५॥
गमने शकुनास्तेषां कृतकोमलनिस्वनाः । आनन्दयन् यथापूर्वमिष्टदेशनिवेदिनः ॥३६॥
तेषामभिमुखः क्रुद्धो महाबलसमन्वितः । प्रययौ रावणो वेगी महादावसमाकृतिः ॥३७॥
गन्धर्वाप्सरसस्तेषां बलद्वितयवर्तिनाम् । नभःस्थिता नृवीराणां पुष्पाणि मुमुचुर्मुहुः ॥३८॥
पादातैः परितो गुप्ता निपुणाधोरणेरिताः । अञ्जनाद्रिसमाकाराः प्रसस्रुर्मत्तदन्तिनः ॥३९॥
दिवाकररथाकारा रथाः प्रचलवाजिनः । युक्ताः सारथिभिः सान्द्रनादाः परमरंहसः ॥४०॥
ववल्गुः परमं हृष्टाः समुल्लासितहेतयः । पदातयो रणक्षोण्यां सगर्वा बद्धमण्डलाः ॥४१॥

जुते तथा गम्भीर और उदार शब्द करनेवाले रथपर सवार हुआ विद्याधरोका राजा भूतस्वन अलग ही सुशोभित हो रहा था ॥२८॥ इसी विधिसे दूसरे विद्याधर राजाओने भी हर्षके साथ क्रुद्ध हो युद्ध करनेके लिए लकेश्वरके प्रति प्रस्थान किया ॥२९॥ क्षुभित समुद्रके समान आकृति को धारण करनेवाले रावणके प्रति बड़े वेगसे दौड़ते हुए योद्धा, गंगानदीकी बड़ी ऊँची तरगोकी भाँति अत्यधिक धक्काधूमीको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥

तदनन्तर जिन्होने धवल यशसे संसारको व्याप्त कर रखा था तथा जो उत्तम आकृतिको धारण करनेवाले थे ऐसे राम-लक्ष्मण युद्धके लिए अपने निवास स्थानसे बाहर निकले ॥३१॥ जो गरुड़के रथपर आरूढ थे, जिनकी ध्वजामे गरुड़का चिह्न था, जिनके शरीरकी कान्ति उन्नत मेघके समान थी, जिन्होने अपनी कान्तिसे आकाशको श्याम कर दिया था, जो मुकुट, कुण्डल, धनुष, कवच, बाण और तरकससे युक्त थे, तथा जो सन्ध्याकी लालीसे युक्त अंजनगिरिके समान आभाके धारक थे ऐसे लक्ष्मण अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥३२–३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कान्तिरूपी अलंकारोसे सुशोभित तथा नाना प्रकारके यान और विमानोसे गमन करनेवाले अनेक बड़े-बड़े विद्याधर भी युद्ध करनेके लिए निकले ॥३५॥ जब राम-लक्ष्मणका गमन हुआ तब पहलेकी भाँति इष्ट स्थानोपर बैठकर कोमल शब्द करनेवाले पक्षियोने उन्हे आनन्दयुक्त किया ॥३६॥ अथानन्तर क्रोधसे युक्त, महाबलसे सहित, वेगवान् एवं महादावानलके समान प्रचण्ड आकृतिको धारण करनेवाला रावण उनके सामने चला ॥३७॥ आकाशमे स्थित गन्धर्वो और अप्सराओने दोनो सेनाओमे रहनेवाले सुभटोके ऊपर बार-बार फूलोकी वर्षा की ॥३८॥ पैदल सैनिकोके समूह जिनकी चारो ओरसे रक्षा कर रहे थे, चतुर महावत जिन्हे चला रहे थे तथा जो अंजनगिरिके समान विशाल आकारसे युक्त थे ऐसे मदोन्मत्त हाथी मद झरा रहे थे ॥३९॥ सूर्यके रथके समान जिनके आकार थे, जिनमे चंचल घोड़े जुते हुए थे, जो सारथियोसे सहित थे, जिनसे विशाल, शब्द निकल रहा था तथा जो तीव्र वेगसे सहित थे ऐसे रथ आगे बढ़े जा रहे थे ॥४०॥ जो अत्यधिक हर्षसे युक्त थे, जिनके शस्त्र चमक रहे थे, तथा जिन्होने अपने झुण्डके झुण्ड बना रखे थे ऐसे गर्वीले पैदल सैनिक रणभूमिमे उछलते जा रहे थे ॥४१॥ जो घोड़ोकी पीठपर सवार थे, हाथोमे तलवार, बरछी तथा भाले लिये हुए थे और कवचसे जिनके

---

१. शीत–म । २. सध्यासक्ता जनागाभमुमित्राजो म. ।

मयूरीपृष्ठमारूढा खड्गयष्टिप्रासपाणयः । खेटकाच्छादितोरस्काः संख्यक्ष्मां विविशुर्भटाः ॥४२॥
आस्तृणन्त्यभिधावन्ति स्पर्द्धन्ते निर्जयन्ति च । जीयन्ते घ्नन्ति हन्यन्ते कुर्वन्ति भटगर्जितम् ॥४३॥
तुरगाः क्वचिदुद्दीप्ता भ्रमन्त्याकुलमूर्तयः । कचमुष्टिगदायुद्धं प्रवृत्तं गहनं क्वचित् ॥४४॥
केचित्खड्गक्षतोरस्काः केचिद्विशिखताडिताः । केचित्कुन्ताहताः शत्रुं ताडयन्ति पुनस्तथा ॥४५॥
सततं ललितैः केचिदभीष्टार्थानुसेवनैः । इन्द्रियैः परिमुच्यन्ते कुमित्रैरिव भूमिगाः ॥४६॥
गलदन्त्रचयाः केचिदनावृत्योग्रवेदनाम् । पतन्ति शत्रुणा सार्धं दन्तनिष्पीडिताधराः ॥४७॥
प्रासादशिखरे देवकुमारप्रतिमौजसः । प्रचिक्रीडुर्महाभोगा ये कान्तानुलालिताः ॥४८॥
ते चक्रकनकच्छिन्नाः संग्रामक्षितिशायिनः । भक्ष्यन्ते विकृताकारा गृध्रगोमायुपङ्क्तिभिः ॥४९॥
नखक्षतकृताकूता कामिनीव शिवा भटम् । वहन्ती सङ्गमप्रीतिं प्रसुप्तमुपसर्पति ॥५०॥
स्फुरणेन पुनर्ज्ञात्वा जीवतीति ससंभ्रमा । निवर्तते यथा भीता डाकिनी मन्त्रवादिनः ॥५१॥
शूरं विज्ञाय जीवन्तं विस्यन्दी विहगी शनैः । दुष्टनारीव साशङ्का चलनेत्रावसर्पती ॥५२॥
शुभाशुभा च जन्तूनां प्रकृतिस्तत्र लक्ष्यते । प्रत्यक्षादविशिष्टैव भङ्गेन विजयेन च ॥५३॥
केचित् सुकृतसामर्थ्याद्विजयन्ते बहून्यपि । कृतपापाः प्रपद्यन्ते बहवोऽपि पराजयम् ॥५४॥
मिश्रितं मत्सरेणापि तयोर्यैरर्जितं पुरा । ते जयन्ति विजीयन्ते तत्र प्रत्यसमागते ॥५५॥

वक्षःस्थल आच्छादित थे ऐसे योद्धाओंने रणभूमिमें प्रवेश किया ॥४२॥ वे योद्धा परस्पर एक दूसरेको आच्छादित कर लेते थे, एक दूसरेके सामने दौड़ते थे, एक दूसरेसे स्पर्धा करते थे, एक दूसरेको जीतते थे, उनसे जीते जाते थे, उन्हें मारते थे, उनसे मारे जाते थे और वीरगर्जना करते थे ॥४३॥ कहीं व्यग्रमुद्राके धारक तेजस्वी घोड़े घूम रहे थे तो कहीं केश, मुट्ठी और गदाका भयंकर युद्ध हो रहा था ॥४४॥ कितने ही वीरोंके वक्षःस्थलमें तलवारसे घाव हो गये थे, कोई बाणोंसे घायल हो गये थे और कोई भालोंकी चोट खाये हुए थे तथा बदला चुकानेके लिए वे वीर भी शत्रुओंको उसी प्रकार ताड़ित कर रहे थे ॥४५॥ अभीष्ट पदार्थोंके सेवनसे जिन्हें निरन्तर लालित किया था ऐसी इन्द्रियाँ कितने ही सुभटोंको इस प्रकार छोड़ रही थीं, जिस प्रकार कि खोटे मित्र काम निकलनेपर छोड़ देते हैं ॥४६॥ जिनकी आँतोंका समूह बाहर निकल आया था ऐसे कितने ही सुभट अपनी बहुत भारी वेदनाको प्रकट नहीं कर रहे थे किन्तु उसे छिपाकर दाँतोंसे ओठ काटते हुए शत्रुपर प्रहार करते थे और उसीके साथ नीचे गिरते थे ॥४७॥ देवकुमारोंके समान तेजस्वी, महाभोगोंके भोगनेवाले और स्त्रियोंके शरीरसे लड़ाये हुए जो सुभट पहले महलोंके शिखरोंपर क्रीड़ा करते थे वे ही उस समय चक्र तथा कनक आदि शस्त्रोंसे खण्डित हो रणभूमिमें सो रहे थे, उनके शरीर विकृत हो गये थे तथा गीध और सियारोंके समूह उन्हें खा रहे थे ॥४८–४९॥ जिस प्रकार समागमकी इच्छा रखनेवाली स्त्री, नखक्षत देनेके अभिप्रायसे सोते हुए पतिके पास पहुँचती है उसी प्रकार नाखूनोंसे लोचका अभिप्राय रखनेवाली शृगाली रणभूमिमें पड़े हुए किसी सुभटके पास पहुँच रही थी ॥५०॥ पास पहुँचनेपर उसके हलन-चलनको देख जब शृगालीको यह जान पड़ा कि यह तो जीवित है तब वह हड़बड़ाती हुई डरकर इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि मन्त्रवादीके पाससे डाकिनी भागती है ॥५१॥ कोई एक पक्षिणी किसी शूरवीरको जीवित जानकर भयभीत हो धीरे-धीरे इस प्रकार भागी जिस प्रकार कि कोई व्यभिचारिणी पतिको जीवित जान शंकासे युक्त हो नेत्र चलाती हुई भाग जाती है ॥५२॥ युद्धभूमिमें किसीकी विजय होती थी और किसीकी हार। इससे जीवोंके शुभ-अशुभ कर्मोंका उदय वहाँ समान रूपसे प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा था ॥ ५३ ॥ कितने ही सुभट पुण्य कर्मके सामर्थ्यसे अनेक शत्रुओंपर विजय प्राप्त करते थे और पूर्वभवमें पाप करनेवाले बहुत-से योद्धा पराजयको प्राप्त हो रहे थे ॥५४॥ जिन्होंने पूर्वपर्यायमें मत्सर भावसे पुण्य और

धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् । धर्मः संजायते पक्षः धर्मः पश्यति सर्वतः ॥५६॥
रथैरश्वयुतैर्दिव्यैरिभैर्भूधरसंनिभैः । अश्वैः पवनरंहोभिर्भृत्यैरसुरभासुरैः ॥५७॥
न शक्यो रक्षितुं [1]पूर्वसुकृतेनोज्झितो नरः । एको विजयते शत्रुं पुण्येन परिपालितः ॥५८॥
एवं संयति संवृत्ते प्रवीरभटसंकटे । योधा व्यवहिता योधैरवकाशं न लेभिरे ॥५९॥
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च भटैरायुधभासुरैः । उत्पातघनसंछन्नमिव जातं नमस्तलम् ॥६०॥
मारीचचन्द्रनिकरवज्राक्षशुकसारणैः । अन्यैश्च राक्षसाधीशैर्दलमुत्सारितं द्विषाम् ॥६१॥
श्रीशैलेन्दुमरीचिभ्यां नीलेन कुमुदेन च । तथा भूतस्वनाद्यैश्च विध्वस्तं रक्षसां बलम् ॥६२॥
कुन्दः कुम्भो निकुम्भश्च विक्रमः क्रमणस्तथा । श्रीजम्बुमालिवीरश्च सूर्यारो मकरध्वजः ॥६३॥
तथाशनिरथाद्याश्च राक्षसीया महानृपाः । उत्थिता वेगिनो योधास्तेषां साधारणोद्यताः ॥६४॥
भूधराचलसम्मेदविकालकुटिलाङ्गदाः । सुषेणकालचक्रोर्मितरङ्गाद्याः कपिध्वजाः ॥६५॥
तेषामभिमुखीभूता निजसाधारणोद्यताः । नालक्ष्यत भटः कश्चित्तदा प्रतिभटोज्झितः ॥६६॥
अञ्जनायाः सुतस्तस्मिन्नारुह्य द्विपयोजितम् । रथं क्रीडति पद्माढ्ये सरसीव महागजः ॥६७॥
तेन श्रेणिक शूरेण रक्षसां सुमहद्बलम् । कृतमुन्मत्तकीभूतं यथारुचितकारिणा ॥६८॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रोधभंगदूषितलोचनः । प्राप्तो मयमहादैत्यः प्रजहार मरुत्सुतम् ॥६९॥
उद्वृत्य विशिखं सोऽपि पुण्डरीकनिभेक्षणः । शरवृष्टिभिरुग्राभिरकरोद्विरथं मयम् ॥७०॥

पाप दोनोंका मिश्रित रूपसे संचय किया था वे युद्धभूमिमे दूसरोको जीतते थे और मृत्यु निकट आनेपर दूसरोके द्वारा जीते भी जाते थे ॥५५॥ इससे जान पड़ता है कि धर्म ही मर्मस्थानोंकी रक्षा करता है, धर्म ही दुर्जेय शत्रुको जीतता है, धर्म ही सहायक होता है और धर्म ही सब ओरसे देख-रेख रखता है ॥५६॥ जो मनुष्य पूर्वभवके पुण्यसे रहित है उसकी घोड़ोंसे जुते हुए दिव्य रथ, पर्वतके समान हाथी, पवनके समान वेगशाली घोड़े और असुरोके समान देदीप्यमान पैदल सैनिक भी रक्षा नही कर सकते और जो पूर्वपुण्यसे रक्षित है वह अकेला ही शत्रुको जीत लेता है ॥५७–५८॥ इस प्रकार प्रचण्ड बलशाली योद्धाओसे परिपूर्ण युद्धके होनेपर योद्धा, दूसरे योद्धाओसे इतने पिछल जाते थे कि उन्हें अवकाश ही नही मिलता था ॥५९॥ शस्त्रोंसे चमकते हुए कितने ही योद्धा ऊपरको उछल रहे थे और कितने ही मर-मरकर नीचे गिर रहे थे उनसे आकाश ऐसा हो गया था मानो उत्पातके मेघोसे ही घिर गया हो ॥६०॥

अथानन्तर मारीच, चन्द्रनिकर, वज्राक्ष, शुक, सारण तथा अन्य राक्षस राजाओने शत्रुओं-की सेनाको पीछे हटा दिया ॥६१॥ तब हनूमान्, चन्द्ररश्मि, नील, कुमुद तथा भूतस्वन आदि वानरवंशीय राजाओने राक्षसोकी सेनाको नष्ट कर दिया ॥६२॥ तत्पश्चात् कुन्द, कुम्भ, निकुम्भ, विक्रम, श्रीजम्बूमाली, सूर्यार, मकरध्वज तथा वज्ररथ आदि राक्षस पक्षके बड़े-बड़े राजा तथा वेगशाली योद्धा उन्हे सहायता देनेके लिए खड़े हुए ॥६३–६४॥ तदनन्तर भूधर, अचल, सम्मेद, विकाल, कुटिल, अंगद, सुषेण, कालचक्र और ऊर्मितरंग आदि वानरपक्षीय योद्धा अपने पक्षके लोगोको आलम्बन देनेके लिए उद्यत हो उनके सामने आये। उस समय ऐसा कोई योद्धा नही दिखाई देता था जो किसी प्रतिद्वन्दीसे रहित हो ॥६५–६६॥ जिस प्रकार कमलोसे सहित सरोवरमे महागज क्रीड़ा करता है उसी प्रकार अंजनाका पुत्र हनूमान् हाथियोसे जुते रथपर सवार हो उस युद्धभूमिमे क्रीड़ा कर रहा था ॥६७॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक! इच्छा-नुसार काम करनेवाले उस एक शूरवीरने राक्षसोकी बड़ी भारी सेनाको उन्मत्त जैसा कर दिया—उसका होश गायब कर दिया ॥६८॥ इसी बीचमें क्रोधके कारण जिसके नेत्र दूषित हो रहे थे ऐसे महादैत्य मयने आकर हनूमान्पर प्रहार किया ॥६९॥ सो पुण्डरीकके समान नेत्रोको धारण

१. पूर्वं सुकृतेनो म.।

स रथान्तरमारुह्य पुनर्योद्‌धुं समुद्यतः । श्रीशैलेन पुनस्तस्य सायकैर्दलितो रथः ॥७१॥
मयं विह्वलमालोक्य विद्यया बहुरूपया । रथं दशमुखः सृष्टं प्रहिणोतिस्म सत्वरम् ॥७२॥
स तं रथं समारुह्य नाम्ना प्रज्वलितोत्तमम् । संबाध्य विरथं चक्रे हनूमन्तं[1] महाद्युतिः ॥७३॥
धावमानां समालोक्य वानरध्वजिनीं भटाः । जगुः प्राप्तमिदं नाम कृतात्यन्तविपर्ययम् ॥७४॥
वातिं व्यस्त्रकृतं दृष्ट्वा वैदेहः समधावत । कृतो विस्यन्दनः सोऽपि मयेन शरवर्षिणा ॥७५॥
ततः किष्किन्धराजोऽस्य कुपितोऽवस्थितः पुरः । निरस्त्रोऽसावपि क्षोणीं तेन दैत्येन लम्भितः ॥७६॥
ततो मयं पुरश्चक्रे सुसंरब्धो विभीषणः । तयोरभूद् युद्धमन्योन्यशरताडितम् ॥७७॥
विभिन्नकवचं दृष्ट्वा कैकसीनन्दनं ततः । रक्ताशोकद्रुमच्छायं प्रसक्तरुधिरस्रुतिम् ॥७८॥
निरीक्ष्योन्मत्तभूतं च परित्रस्तं पराङ्मुखम् । कपिध्वजबलं शीर्णं रामो योद्‌धुं समुद्यतः ॥७९॥
विद्याकेसरियुक्तं च रथमारुह्य सत्वरम् । मा भैषीरिति सस्वानो दधाव विहितस्मितः ॥८०॥
सतडित्प्रावृडम्भोदघनसंघट्टसंनिभम् । विवेश परसैन्यं स बालार्कप्रतिमद्युतिः ॥८१॥
तस्मिन् परबलध्वंसं नरेन्द्रे कर्तुमुद्यते । वातिवैदेहसुग्रीवकैकसेया धृतिं ययुः ॥८२॥
शाखामृगबलं भूयः कर्तुं युद्धं समुद्यतम् । रामतो बलमासाद्य त्यक्तनिःशेषसाध्वसम् ॥८३॥
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते सुराणां रोमहर्षणे । लोकोऽन्य इव संजातस्तदालोकविवर्जितः ॥८४॥
ततः पद्मो मयं बाणैर्लग्नश्छादयितुं भृशम् । स्वल्पेनैव प्रयासेन वज्रीव चमरासुरम् ॥८५॥
मयं विह्वलितं दृष्ट्वा नितान्तं रामसायकैः । दधाव रावणः क्रुद्धः कृतान्त इव तेजसा ॥८६॥

करनेवाले हनूमान्‌ने भी बाण निकालकर तीक्ष्ण बाणवर्षासे मयको रथरहित कर दिया ॥७०॥ मयको विह्वल देख रावणने शीघ्र ही बहुरूपिणी विद्याके द्वारा निर्मित रथ उसके पास भेजा ॥७१॥ महाकान्तिके धारक मयने प्रज्वलितोत्तम नामक उस रथपर आरूढ हो हनूमान्‌के साथ युद्ध कर उसे रथरहित कर दिया ॥७२-७३॥ तब वानरोंकी सेना भाग खड़ी हुई। उसे भागती देख राक्षस पक्षके सुभट कहने लगे कि इसने जैसा किया ठीक उसके विपरीत फल प्राप्त कर लिया अर्थात् करनीका फल इसे प्राप्त हो गया ॥७४॥ तदनन्तर हनूमान्‌को शस्त्ररहित देख भामण्डल दौड़ा सो बाणवर्षा करनेवाले मयने उसे भी रथरहित कर दिया ॥७५॥ तदनन्तर किष्किन्धनगरका राजा सुग्रीव कुपित हो मयके सामने खड़ा हुआ सो मयने उसे भी शस्त्ररहित कर पृथिवीपर पहुँचा दिया ॥७६॥ तत्पश्चात् क्रोधसे भरे विभीषणने मयको आगे किया सो दोनोंमे परस्पर एक दूसरेके बाणोंको काटनेवाला महायुद्ध हुआ ॥७७॥ युद्ध करते-करते विभीषणका कवच टूट गया जिससे रुधिरकी धारा बहने लगी और वह फूले हुए अशोक वृक्षके समान लाल दिखने लगा ॥७८॥ विभीषणको ऐसा देख तथा वानरोंकी सेनाको विह्वल, भयभीत पराङ्मुख और बिखरी हुई देखकर राम युद्धके लिए उद्यत हुए ॥७९॥ वे विद्यामयी सिंहोसे युक्त रथपर सवार हो 'डरो मत' यह शब्द करते तथा मुसकराते हुए शीघ्र ही दौड़े ॥८०॥ रावणकी सेना बिजली सहित वर्षा-कालीन मेघोंकी सघन घटाके समान थी और राम प्रातःकालके सूर्यके समान कान्तिके धारक थे। इन्होंने रावणकी सेनामे प्रवेश किया ॥८१॥ जब राम शत्रु सेनाका संहार करनेके लिए उद्यत हुए तब हनूमान्, भामण्डल, सुग्रीव और विभीषण भी धैर्यको प्राप्त हुए ॥८२॥ रामसे बल पाकर जिसका समस्त भय छूट गया था ऐसी वानरोंकी सेना पुनः युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुई ॥८३॥ उस समय देवोंके रोमाच उत्पन्न करनेवाले शस्त्रोंकी वर्षा होनेपर लोकमे अन्धकार छा गया और वह ऐसा लगने लगा मानो दूसरा ही लोक हो ॥८४॥ तदनन्तर राम थोड़े ही प्रयाससे मयको बाणोंसे आच्छादित करनेके लिए उस तरह अत्यधिक तल्लीन हो गये जिस तरह कि चमरेन्द्रको बाणाच्छादित करनेके लिए इन्द्र तल्लीन हुआ था ॥८५॥ तदनन्तर रामके बाणोंसे

१ हनुमन्तम् ।

अथ लक्ष्मणवीरेण भाषितः परमौजसा । प्रस्थितः क्व मया दृष्टो भवानद्यापि भो खग ॥८७॥
तिष्ठ तिष्ठ रणं यच्छ क्षुद्र तस्कर पापक । परस्त्रीदीपशलभ पुरुषाधम दुष्क्रिय ॥८८॥
अद्य प्रकरणं तत्ते करोमि कृतसाहसम् । कुर्यान्न वापि यत्क्रुद्धः कृतान्तोऽपि कुमानसः ॥८९॥
अयं राघवदेवोऽद्य समस्तवसुधापतिः । चौरस्य ते वधं कर्तुं समादिशति धर्मधीः ॥९०॥
अवोचल्लक्ष्मणं कोपी विंशत्यर्धाननस्ततः । मूढ ते किं न विज्ञातं लोके प्रख्यातमीदृशम् ॥९१॥
यच्चारु भूतले सारं किंचिद्द्रव्यं सुखावहम् । अर्हामि तदहं राजा तच्चापि मयि शोभते ॥९२॥
न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते । तदत्र का कथाद्यापि योग्यद्रव्यसमागमे ॥९३॥
त्वया मानुषमात्रेण यत्किंचनविलापिना । विधातुमसमानेन युद्धं दीनेन लज्ज्यते[1] ॥९४॥
विप्रलब्धस्तथाप्येतैर्युद्धं चेत्कर्तुमर्हसि । प्रव्यक्तं काललब्धोऽसि निर्वेदी वासि जीविते ॥९५॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचद्वेद्मि त्वं यादृशः प्रभुः । अद्य ते गर्जितं पाप हरामि किमिहोदितैः ॥९६॥
इत्युक्तो रावणो बाणैः[2] सुवाणैः कैकयीसुतम् । प्रावृषेण्यघनाकारो गिरिकल्पं निरुद्धवान् ॥९७॥
वज्रदण्डैः शरैस्तस्य विशल्यारमणः शरान् । अदृष्टचापसंबन्धैरन्तराले न्यवारयत् ॥९८॥
छिन्नैर्विपाटितैः क्षोदं गतैश्च विशिखोत्करैः । द्यौश्च भूमिश्च संजाता विवेकपरिवर्जिता ॥९९॥
कैकयीसूनुना व्यस्त्रः कैकसीनन्दनः कृतः । माहेन्द्रमस्त्रमुत्सृष्टं चकार गगनासनम् ॥१००॥

मयको विह्वल देख तेजसे यमकी तुलना करनेवाला रावण कुपित हो दौड़ा ॥८६॥ तब परम प्रतापी वीर लक्ष्मणने उससे कहा कि ओ विद्याधर! कहाँ जा रहे हो? मै आज तुम्हे देख पाया हूँ ॥८७॥ रे क्षुद्र! चोर! पापी! परस्त्रीरूपी दीपकपर मर मिटनेवाले शलभ! नीच पुरुष! दुश्चेष्ट! खड़ा रह, खड़ा रह, मुझसे युद्ध कर ॥८८॥ आज साहसपूर्वक तेरी वह दशा करता हूँ जिसे कुपित दुष्ट यम भी नही करेगा? ॥८९॥ यह भी राघव देव समस्त पृथिवीके अधिपति है। धर्ममय बुद्धिको धारण करनेवाले इन्होने तुझ चोरका वध करनेके लिए मुझे आज्ञा दी है ॥९०॥

तदनन्तर क्रोधसे भरे रावणने लक्ष्मणसे कहा कि अरे मूर्ख! क्या तुझे यह ऐसी लोकप्रसिद्ध बात विदित नही है कि पृथिवीतलपर जो कुछ सुन्दर, श्रेष्ठ और सुखदायक वस्तु है, मैं ही उसके योग्य हूँ। यतश्च मैं राजा हूँ अतएव वह मुझमे ही शोभा पाती है अन्यत्र नही ॥९१–९२॥ हाथीके योग्य घण्टा कुत्ताके लिए शोभा नही देता। इसलिए योग्य द्रव्यका योग्य द्रव्यके साथ समागम हुआ इसकी आज भी क्या चर्चा करनी है ॥९३॥ तू एक साधारण मनुष्य है, चाहे जो बकनेवाला है, मेरी समानता नही रखता तथा अत्यन्त दीन है अतः तेरे साथ युद्ध करनेमे यद्यपि मुझे लज्जा आती है ॥९४॥ तथापि इन सबके द्वारा बहकाया जाकर यदि युद्ध करना चाहता है तो स्पष्ट है कि तेरे मरनेका काल आ पहुँचा है अथवा तू अपने जीवनसे मानो उदास हो चुका है ॥९५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि तू जैसा प्रभु है मैं जानता हूँ। अरे पापी! इस विषयमे अधिक कहनेसे क्या? मैं तेरी सब गर्जना अभी हरता हूँ ॥९६॥ इतना कहनेपर रावणने सनसनाते हुए बाणोसे लक्ष्मणको इस प्रकार रोका जिस प्रकार कि वर्षाऋतुका मेघ किसी पर्वतको आ रोकता है ॥९७॥ इधरसे जिनका वज्रमयी दण्ड था तथा शीघ्रताके कारण जिन्होने मानो धनुषका सम्बन्ध देखा ही नही था ऐसे बाणोसे लक्ष्मणने उसके बाणोको बीचमे ही नष्ट कर दिया ॥९८॥ उस समय टूटे-फूटे और चूर-चूर हुए बाणोके समूहसे आकाश और भूमि भेदरहित हो गयी थी ॥९९॥

तदनन्तर जब लक्ष्मणने रावणको शस्त्ररहित कर दिया तब उसने आकाशको व्याप्त करने-

---

१. लज्जते म. । २. स बाणैः म. । सुवाणैः सुशब्दैः इत्यर्थः ।

संप्रयुज्य समीरास्त्रमस्त्रक्रमविपश्चिता । सौमित्रिणा परिध्वंसं तन्नीतं क्षणमात्रतः ॥१०१॥
भूयः श्रेणिक संरम्भस्फुरिताननतेजसा । रावणेनास्त्रमाग्नेयं क्षिप्तं ज्वलितसर्वदिक् ॥१०२॥
लक्ष्मीधरेण तच्चापि वारुणास्त्रप्रयोगतः । निर्वापितं निमेषेण स्थितं कार्यविवर्जितम् ॥१०३॥
कैकयेयस्ततः पापमस्त्रं चिक्षेप रक्षसि । रक्षसा तच्च धर्मास्त्रप्रयोगेण निवारितम् ॥१०४॥
ततोऽस्त्रमिन्धनं नाम लक्ष्मणेन प्रयुज्यते । इन्धनेनैव तं नीतं रावणेन कृतार्थताम् ॥१०५॥
फलासारं विमुञ्चद्भिः प्रसूनपटलान्वितम् । गगनं वृक्षसंघातैरत्यन्तगहनीकृतम् ॥१०६॥
भूयस्तामसवाणौघैरन्धकारीकृताम्बरैः । लक्ष्मीधरकुमारेण छादितो राक्षसाधिपः ॥१०७॥
सहस्रकिरणास्त्रेण तामसास्त्रमपोह्य सः । प्रायुङ्क्त दन्दशूकाख्यं विस्फुरत्फणमण्डलम् ॥१०८॥
ततस्तार्क्ष्यसमास्त्रेण लक्ष्मणेन निराकृतम् । पन्नगास्त्रं नभश्चाभूद्धेमभासेव पूरितम् ॥१०९॥
संहाराम्बुदनिर्घोषमुरगास्त्रमथो पुनः । पद्मनाभानुजोऽमुञ्चद् विषाग्निकणदुःसहम् ॥११०॥
बर्हणास्त्रेण तद्वीरस्त्रिकूटेन्दुरसारयत् । प्रायोक्षीच्च दुरुत्सारमस्त्रं विघ्नविनायकम्[1] ॥१११॥
विसृष्टे तत्र विघ्नास्त्रे वाञ्छितच्छेदकारिणि । प्रयोगे त्रिदशास्त्राणां लक्ष्मणो मोहमागमत् ॥११२॥
वज्रदण्डान् शरानेव विससर्ज स भूरिशः । रावणोऽपि शरैरेव स्वभावस्थैरयुध्यत ॥११३॥
आकर्णसंहृतैर्बाणैरासीद्युद्धं तयोः समम् । लक्ष्मीभृद्रक्षसोर्घोरं त्रिपृष्ठहयकण्ठयोः ॥११४॥

वाला माहेन्द्र शस्त्र छोडा ॥१००॥ इधरसे शस्त्रोंका क्रम जाननेमें निपुण लक्ष्मणने पवन बाणका प्रयोग कर उसके उस माहेन्द्र शस्त्रको क्षण-भरमें नष्ट कर दिया ॥१०१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! क्रोधसे जिसके मुखका तेज दमक रहा था ऐसे रावणने फिर आग्नेय बाण चलाया जिससे समस्त दिशाएँ देदीप्यमान हो उठीं ॥१०२॥ इधरसे लक्ष्मणने वारुणास्त्र चलाकर उस आग्नेय बाणको, वह कार्य प्रारम्भ करे कि उसके पूर्व ही निमेष मात्रमें बुझा दिया ॥१०३॥ तदनन्तर लक्ष्मणने रावणपर पाप नामका शस्त्र छोड़ा सो उधरसे रावणने धर्म नामक शस्त्रके प्रयोगसे उसका निवारण कर दिया ॥१०४॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने इन्धन नामक शस्त्रका प्रयोग किया जिसे रावणने इन्धन नामक शस्त्रसे निरर्थक कर दिया ॥१०५॥ तदनन्तर रावणने फल और फूलोंकी वर्षा करनेवाले वृक्षोंके समूहसे आकाशको अत्यन्त व्याप्त कर दिया ॥१०६॥ तब लक्ष्मणने आकाशको अन्धकार युक्त करनेवाले तामसबाणोंके समूहसे रावणको आच्छादित कर दिया ॥१०७॥ तदनन्तर रावणने सहस्रकिरण अस्त्रके द्वारा तामस अस्त्रको नष्ट कर जिसमें फनोंका समूह उठ रहा था ऐसा दन्दशूक अस्त्र चलाया ॥१०८॥ तत्पश्चात् इधरसे लक्ष्मणने गरुड़बाण चलाकर उस दन्दशूक अस्त्रका निराकरण कर दिया जिससे आकाश ऐसा हो गया मानो स्वर्णकी कान्तिसे ही भर गया हो ॥१०९॥ तदनन्तर लक्ष्मणने प्रलयकालके मेघके समान शब्द करनेवाला तथा विषरूपी अग्निके कणोंसे दुःसह उरगास्त्र छोड़ा ॥११०॥ जिसे धीर-वीर रावणने बर्हणास्त्रके प्रयोगसे दूर कर दिया और उसके बदले जिसका दूर करना अशक्य था ऐसा विघ्नविनाशक नामका शस्त्र छोड़ा ॥१११॥ तदनन्तर इच्छित वस्तुओंमें विघ्न डालनेवाले उस विघ्नविनाशक शस्त्रके छोड़नेपर लक्ष्मण देवोपनीत शस्त्रोंके प्रयोग करनेमें मोहको प्राप्त हो गये अर्थात् उसे निवारण करनेके लिए कौन शस्त्र चलाना चाहिए इसका निर्णय नहीं कर सके ॥११२॥ तब वे केवल वज्रमय दण्डोंसे युक्त बाणोंको ही अधिक मात्रामें चलाते रहे और रावण भी उस दशामें स्वाभाविक बाणोंसे ही युद्ध करता रहा ॥११३॥ उस समय लक्ष्मण और रावणके बीच कान तक खिंचे बाणोंसे भयंकर युद्ध हुआ जैसा कि पहले त्रिपृष्ठ और अश्वग्रीवमें हुआ था ॥११४॥

---

१. विघ्नमनायकम् म. ।

उपजातिवृत्तम्

कर्मण्युपेतेऽभ्युदयं पुराणे संप्रेरके सत्यतिदारुणाङ्के ।
तस्योचितं प्राप्तफलं मनुष्याः क्रियापवर्गप्रकृतं भजन्ते ॥११५॥
उदारसंरम्भवशं प्रपन्ना. प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः ।
नरा न तीव्रं गणयन्ति शस्त्रं न पावकं नैव रविं न वायुम् ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावण-लक्ष्मणयुद्धवर्णनाभिधानं नाम चतुःसप्ततितमं पर्व ॥७४॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि जब प्रेरणा देनेवाले पूर्वोपार्जित पुण्य-पापकर्म उदयको प्राप्त होते हैं तब मनुष्य उन्हीके अनुरूप कार्यको सिद्ध अथवा असिद्ध करनेवाले फलको प्राप्त होते है ॥११५॥ जो अत्यधिक क्रोधकी अधीनताको प्राप्त हैं और जिन्होने अपना चित्त प्रारम्भ किये हुए कार्यकी सिद्धिमे लगा दिया है ऐसे मनुष्य न तीव्र शस्त्रको गिनते है, न अग्निको गिनते है, न सूर्यको गिनते हैं और न वायुको ही गिनते हैं ॥११६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमे रावण और लक्ष्मणके युद्धका वर्णन करनेवाला चौहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७४॥



पञ्चसप्ततितमं पर्व

खिन्नाभ्यां दीयते स्वादु जलं ताभ्यां सुशीतलम् । महातर्षाभिभूताभ्यामय हि समरे विधिः ॥१॥
अमृतोपममन्नं च क्षुधाग्लपनमीयुषोः । गोशीर्षचन्दनं स्वेदसंगिनोर्ह्लादकारणम् ॥२॥
तालवृन्तादिवातश्च हिमवारिकणो रणे । क्रियते तत्परैः कार्यं तथान्यदपि पार्श्वगैः ॥३॥
तथा तयोस्तथाऽन्येषामपि स्वपरवर्गतः । इति कर्तव्यतासिद्धिः सकला प्रतिपद्यते ॥४॥
दशाहोऽतिगतस्तीव्रमेतयोर्युध्यमानयोः । वलिनोर्भङ्गनिर्मुक्तचित्तयोरतिवीरयोः ॥५॥
रावणेन समं युद्धं लक्ष्मणस्य बभूव यत् । लक्ष्मणेन समं युद्धं रावणस्य बभूव तत् ॥६॥
यक्षकिन्नरगन्धर्वाप्सरसो विस्मयं गताः । साधुशब्दविमिश्राणि पुष्पवर्षाणि चिक्षिपुः ॥७॥
चन्द्रवर्धननाम्नोऽथ विद्याधरजनप्रभोः । अष्टौ दुहितरो व्योम्नि विमानशिखरस्थिताः ॥८॥
अप्रमत्तैर्महाशङ्कैः कृतरक्षामहत्तरैः[२] । पृष्टाः संगतिमेतामिरप्सरोभिः कुतूहलात् ॥९॥
का यूयं देवताकारा भक्तिं लक्ष्मणसुन्दरे । दधाना इव वर्तध्वे सुकुमारशरीरिकाः ॥१०॥
सलज्जा इव ता ऊचुः श्रूयतां यदि कौतुकम् । वैदेहीवरणे पूर्वमस्माभिः सहितः पिता ॥११॥
आसीद्गतः तदास्थानं राज्ञां कौतुकचोदितः । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं तत्र ददात्वस्मै धियैव नः ॥१२॥
ततोऽधिगम्य मात्रातो वृत्तमेतन्निवेदितम् । दर्शनादेव चास्य मनस्येष व्यवस्थितः ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! युद्धकी यह विधि है कि दोनों पक्षके खेदखिन्न तथा महाप्याससे पीड़ित मनुष्योंके लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है । क्षुधासे दुखी मनुष्योंके लिए अमृततुल्य भोजन दिया जाता है । पसीनासे युक्त मनुष्योंके लिए आह्लादका कारण गोशीर्ष चन्दन दिया जाता है । पंखे आदिसे हवा की जाती है । बर्फके जलके छींटे दिये जाते हैं तथा इनके सिवाय जिसके लिए जो कार्य आवश्यक हो उसकी पूर्ति समीपमें रहनेवाले मनुष्य तत्परताके साथ करते हैं । युद्धकी यह विधि जिस प्रकार अपने पक्षके लोगोंके लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्षके लोगोंके लिए भी है । युद्धमें निज और परका भेद नहीं होता । ऐसा करनेसे ही कर्तव्यकी समग्र सिद्धि होती है ॥१-४॥

तदनन्तर जिनके चित्तमें हारका नाम भी नहीं था तथा जो अतिशय बलवान् थे ऐसे प्रचण्ड वीर लक्ष्मण और रावणको युद्ध करते हुए दश दिन बीत गये ॥५॥ लक्ष्मणका जो युद्ध रावणके साथ हुआ था वही युद्ध रावणका लक्ष्मणके साथ हुआ था अर्थात् उनका युद्ध उन्हींके समान था ॥६॥ उनका युद्ध देख यक्ष, किन्नर, गन्धर्व तथा अप्सराएँ आदि आश्चर्यको प्राप्त हो धन्यवाद देते और उनपर पुष्पवृष्टि छोड़ते थे ॥७॥ तदनन्तर चन्द्रवर्धन नामक विद्याधर राजाकी आठ कन्याएँ आकाशमें विमानके शिखरपर बैठी थीं ॥८॥ महती आशंकासे युक्त बड़े-बड़े प्रतीहारी सावधान रहकर जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसी उन कन्याओंसे समागमको प्राप्त हुई अप्सराओंने कूतूहलवश पूछा कि आपलोग देवताओंके समान आकारको धारण करनेवालीं तथा सुकुमार शरीरसे युक्त कौन हैं ? ऐसा जान पड़ता है मानो लक्ष्मणमें आप लोग अधिक भक्ति धारण कर रही हैं ॥९-१०॥ तब वे कन्याएँ लज्जित होती हुई बोलीं कि यदि आपको कौतुक है तो सुनिए । पहले जब सीताका स्वयंवर हो रहा था तब हमारे पिता हम लोगोंके साथ कौतुकसे प्रेरित हो सभामण्डपमें गये थे वहाँ लक्ष्मणको देखकर उन्होंने हम लोगोंको उन्हें देनेका संकल्प किया था ॥११-१२॥ वहाँसे आकर यह वृत्तान्त पिताने माताके लिए कहा और उससे हम लोगों-

१. हृदि म. । २. कृतरक्षमहत्तरैः म. ।

सोऽयं महति संग्रामे वर्त्तते संशयावहे । भविष्यति कथं न्वेतदिति विद्मो न दुःखिताः ॥१४॥
अस्य मानवचन्द्रस्य हृदयेशस्य या गतिः । लक्ष्मीधरकुमारस्य सैवास्माभिर्विनिश्चिता ॥१५॥
मनोहरस्वनं तासां श्रुत्वा तद्वचनं ततः । चक्षुरूर्ध्वं नियुञ्जानो लक्ष्मणस्ता व्यलोकत ॥१६॥
तद्दर्शनात्परं प्राप्ताः प्रमोदं ताः सुकन्यकाः । सिद्धार्थः सर्वथा नाथ भवेत्युदगिरन् स्वनम् ॥१७॥
सिद्धार्थशब्दनात्तस्मात् स्मृत्वा विहसिताननः । अस्त्रं सिद्धार्थनामानं लक्ष्मणः कृतितां गतः ॥१८॥
स सिद्धार्थमहास्त्रेण क्षिप्रं विघ्नविनायकम् । अस्त्रमस्तगतं कृत्वा सुदीप्तं योद्धुमुद्यतः ॥१९॥
गृह्णाति रावणो यद्यदस्त्रं शस्त्रविशारदः । छिनत्ति लक्ष्मणस्तत्तत्परमास्त्रविशारदः ॥२०॥
ततः पतत्रिसंघातैरस्य पक्षीन्द्रकेतुना । सर्वा दिशः परिच्छन्ना जीमूतैरिव भूभृतः ॥२१॥
ततो भगवतीं विद्यां बहुरूपविधायिनीम् । प्रविश्य रक्षसामीशः समरक्रीडनं श्रितः ॥२२॥
लक्ष्मीधरशरैस्तीक्ष्णैः शिरो लङ्कापुरीप्रभोः । छिन्नं छिन्नमभूद्भूयः श्रीमत्कुण्डलमण्डितम् ॥२३॥
एकस्मिन् शिरसिच्छिन्ने शिरोद्वयमजायत । तयोरुत्कृत्तयोर्वृद्धिं शिरांसि द्विगुणां ययुः ॥२४॥
निकृत्ते बाहुयुग्मे च जज्ञे बाहुचतुष्टयम् । तस्मिन् छिन्ने ययौ वृद्धिं द्विगुणा बाहुसंततिः ॥२५॥
सहस्रैरुत्तमाङ्गानां[1] भुजानां चातिभूरिभिः । पद्मखण्डैरगण्यैश्च ज्ञायते रावणो वृतः ॥२६॥
नभःकरिकराकारैः करैः केयूरभूषितैः । शिरोभिश्चाभवत्पूर्णं शस्त्ररत्नांशुपिञ्जरम् ॥२७॥

को विदित हुआ । साथ ही स्वयंवरमे जबसे हम लोगोने इसे देखा था तभीसे यह हमारे मनमे स्थित था ॥१३॥ वही लक्ष्मण इस समय जीवन-मरणके संशयको धारण करनेवाले इस महासंग्राममे विद्यमान है । संग्राममे क्या कैसा होगा यह हम लोग नही जानती इसलिए दुःखी हो रही हैं ॥१४॥ मनुष्योमे चन्द्रमाके समान इस हृदयवल्लभ लक्ष्मणकी जो दशा होगी वही हमारी होगी ऐसा हम सबने निश्चित किया है॥१५॥ तदनन्तर उन कन्याओंके मनोहर वचन सुन लक्ष्मणने ऊपरकी ओर नेत्र उठाकर उन्हें देखा ॥१६॥ लक्ष्मणके देखनेसे वे उत्तम कन्याएँ परम प्रमोदको प्राप्त हो इस प्रकारके शब्द बोली कि हे नाथ ! तुम सब प्रकारसे सिद्धार्थ होओ—तुम्हारी भावना सब तरह सिद्ध हो ॥१७॥ उन कन्याओंके मुखसे सिद्धार्थ शब्द सुनकर लक्ष्मणको सिद्धार्थ नामक अस्त्रका स्मरण आ गया जिससे उनका मुख खिल उठा तथा वे कृतकृत्यताको प्राप्त हो गये ॥१८॥ फिर क्या था, शीघ्र ही सिद्धार्थ महास्त्रके द्वारा रावणके विघ्नविनाशक अस्त्रको नष्ट कर लक्ष्मण बड़ी तेजीसे युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥१९॥ शस्त्रोके चलानेमे निपुण रावण जिस-जिस शस्त्रको ग्रहण करता था परमास्त्रोंके चलानेमें निपुण लक्ष्मण उसी-उसी शस्त्रको काट डालता था ॥२०॥ तदनन्तर ध्वजामे पक्षिराज—गरुड़का चिह्न धारण करनेवाले लक्ष्मणके बाणसमूहसे सब दिशाएँ इस प्रकार व्याप्त हो गयी जिस प्रकार कि मेघोसे पर्वत व्याप्त हो जाते हैं ॥२१॥

तदनन्तर रावण भगवती बहुरूपिणी विद्यामे प्रवेश कर युद्ध-क्रीड़ा करने लगा ॥२२॥ यही कारण था कि उसका शिर यद्यपि लक्ष्मणके तीक्ष्ण बाणोसे बार-बार कट जाता था तथापि वह बार-बार देदीप्यमान कुण्डलोंसे सुशोभित हो उठता था ॥२३॥ एक शिर कटता था तो दो शिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धिको प्राप्त हो जाते थे ॥२४॥ दो भुजाएँ कटती थी तो चार हो जाती थी और चार कटती थी तो उससे दूनी हो जाती थी ॥२५॥ हजारो शिरो और अत्यधिक भुजाओसे घिरा हुआ रावण ऐसा जान पड़ता था मानो अगणित कमलोके समूहसे घिरा हो ॥२६॥ हाथीकी सूँड़के समान आकारसे युक्त तथा बाजूबन्दसे सुशोभित भुजाओं और शिरोसे भरा आकाश शस्त्र तथा रत्नोकी किरणोसे पिंजर वर्ण हो गया ॥२७॥ जो शिररूपी हजारो मगरमच्छोसे भयंकर था तथा भुजाओरूपी ऊँची-ऊँची तरंगोको धारण करता था ऐसा

---

१ शिरसाम् ।

गिरोग्राहसहस्रोग्रस्तुङ्गबाहुतरङ्गभृत् । अवर्द्धत महाभीमो राक्षसाधिपसागरः ॥२८॥
बाहुसौदामिनीदण्डप्रचण्डो घोरनिस्वनः । शिरःशिखरसंघातैर्ववृधे रावणाम्बुदः ॥२९॥
बाहुमस्तकसंघट्टनिःस्वनच्छत्रभूषण. । महासैन्यसमानोऽभूदेकोऽपि त्रिदशारिभिः ॥३०॥
पुरानेकेन युद्धोऽहमधुनैकाकिनामुना । युद्धे कथमितीवास्य लक्ष्मणेन बहूकृतः ॥३१॥
रत्नशस्त्रांशुसंतानकरजालप्रदीपितः । संजातो राक्षसाधीशो दावमानवनोपमः ॥३२॥
चक्रेषुशक्तिकुन्तादिशस्त्रवर्षेण रावणः । [1]नक्तमाच्छादयितुं बाहुसहस्रैरपि लक्ष्मणम् ॥३३॥
लक्ष्मणोऽपि परं क्रुद्धो विषादपरिवर्जितः । अर्कतुण्डैः शरैः शत्रुं प्रच्छादयितुमुद्यतः ॥३४॥
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि पञ्च षट् दश विंशतिः । शतं सहस्रमयुतं चिच्छेद शिरांसि सः ॥३५॥
शिरःसहस्रसंछन्नं पतद्भिः सह बाहुभिः । सोल्कादण्डं पतज्ज्योतिश्चक्रमासीदिवाम्बरम् ॥३६॥
सबाहुमस्तकच्छन्ना रणक्षोणी निरन्तरम् । सनागभोगराजीवखण्डशोभानधारयत् ॥३७॥
समुत्पन्नं समुत्पन्नं शिरोबाहुकदम्बकम् । राक्षसो लक्ष्मणोच्छित्तकर्मेव मुनिपुङ्गवः ॥३८॥
गलद्रुधिरधाराभिः सततामिः समाकुलम् । वियत्संध्याविनिर्माणं समुद्भूतमिवापरम् ॥३९॥
असंख्यातभुज. शत्रुर्लक्ष्मणेन द्विबाहुना । महानुभावयुक्तेन कृतो निष्फलविग्रहः ॥४०॥
निरुच्छ्वासानन स्वेदबिन्दुजालचिताननः । [2]सत्त्ववानाकुलस्वाङ्गः संवृत्तो रावणः क्षणम् ॥४१॥
तावच्छ्रेणिक निर्वृत्ते तस्मिन्नत्यन्तभैरवे । स्वभावावस्थितो भूत्वा रावण. क्रोधदीपितः ॥४२॥

रावणरूपी महाभयंकर सागर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था ॥२८॥ अथवा जो भुजारूपी विद्युत् दण्डोसे प्रचण्ड था और भयंकर शब्द कर रहा था ऐसा रावणरूपी मेघ शिररूपी शिखरोंके समूहसे बढता जाता था ॥२९॥ भुजाओ और मस्तकोंके संघटनसे जिसके छत्र तथा आभूषण शब्द कर रहे थे ऐसा रावण एक होनेपर भी महासेनाके समान जान पडता था ॥३०॥ 'मैंने पहले अनेकोंके साथ युद्ध किया है अब इस अकेलेके साथ क्या करूँ' यह सोचकर ही मानो लक्ष्मणने उसे अनेक रूप कर लिया था ॥३१॥ आभूषणोके रत्न तथा शस्त्रसमूहकी किरणोसे देदीप्यमान रावण जलते हुए वनके समान हो गया था ॥३२॥ रावण अपनी हजारो भुजाओंके द्वारा चक्र, बाण, शक्ति तथा भाले आदि शस्त्रोकी वर्षासे लक्ष्मणको आच्छादित करनेमे लगा था ॥३३॥ और क्रोधसे भरे तथा विषादसे रहित लक्ष्मण भी सूर्यमुखी बाणोसे शत्रुको आच्छादित करनेमे झुके हुए थे ॥३४॥ उन्होने शत्रुके एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, दश, बीस, सौ, हजार तथा दश हजार शिर काट डाले ॥३५॥ हजारो शिरोसे व्याप्त तथा पड़ती हुई भुजाओंसे युक्त आकाश, उस समय ऐसा हो गया था मानो उल्कादण्डोसे युक्त तथा जिसमे तारा मण्डल गिर रहा है ऐसा हो गया था ॥३६॥ उस समय भुजाओ और मस्तकोसे निरन्तर आच्छादित युद्धभूमि सर्पोंके फणासे युक्त कमल-समूहकी शोभा धारण कर रही थी ॥३७॥ उसके शिर और भुजाओंका समूह जैसा-जैसा उत्पन्न होता जाता था लक्ष्मण वैसा-वैसा ही उसे उस प्रकार काटता जाता था जिस प्रकार कि मुनिराज नये-नये बँधते हुए कर्मोको काटते जाते हैं ॥३८॥ निकलते हुए रुधिरकी लम्बी-चौड़ी धाराओंसे व्याप्त आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो जिसमे सन्ध्याका निर्माण हुआ है ऐसा दूसरा ही आकाश उत्पन्न हुआ हो ॥३९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि देखो, महानुभावसे युक्त द्विबाहु लक्ष्मणने असंख्यात भुजाओंके धारक रावणको निष्फल शरीरका धारक कर दिया ॥४०॥ देखो, पराक्रमी रावण क्षण-भरमे क्यासे क्या हो गया ? उसके मुखसे श्वास निकलना बन्द हो गया, उसका मुख पसीनाकी बूँदोके समूहसे व्याप्त हो गया और उसका समस्त शरीर आकुल-व्याकुल हो गया ॥४१॥ हे श्रेणिक ! जबतक वह अत्यन्त भयंकर युद्ध होता है तबतक क्रोधसे प्रदीप्त रावणने कुछ

१ शक्त म । २ सत्त्ववाताकुलस्वांग. म. ।

युगावसानमध्याह्नसहस्रकिरणप्रभम्[1] । परपक्षक्षयक्षोवं[2]श्चक्ररत्नमचिन्तयत् ॥४३॥
अप्रमेयप्रभाजालं मुक्ताजालपरिष्कृतम् । स्वयंप्रभास्वरं दिव्यं वज्रतुण्डं महाद्भुतम् ॥४४॥
नानारत्नपरीताङ्गं दिव्यमालानुलेपनम् । अग्निप्राकारसंकाशं[3]धारामण्डलदीधितिं ॥४५॥
वैडूर्यारसहस्रेण युक्तं दर्शनदुःसहम् । सदा यक्षसहस्रेण कृतरक्षं प्रयत्नतः ॥४६॥
सम्भान्तरम्भसंबद्ध[4]कृतान्ताननसंनिभम् । चिन्तानन्तरमेवास्य चक्रं संनिहितं करे ॥४७॥
कृतस्तत्र प्रभास्त्रेण[5] निष्प्रभो ज्योतिषां पतिः । चित्रार्पितरविच्छायमात्रशेषो व्यवस्थितः ॥४८॥
गन्धर्वाप्सरसो विश्वावसुतुम्बुरुनारदाः । परित्यज्य रणप्रेक्षां गताः क्वापि विगीतिकाः ॥४९॥
मर्तव्यमिति निश्चित्य तथाप्यत्यन्तधीरधीः । शत्रुं तथाविधं वीक्ष्य पद्मनाभानुजोऽवदत् ॥५०॥
संगतेनामुना किं त्वं स्थितोऽस्येवं[6] कदर्यवत् । शक्तिश्चेदस्ति ते काचित्प्रहरस्व नराधम ॥५१॥
इत्युक्तः परमं क्रुद्धो दन्तदष्टरदच्छदः । मण्डलीकृतविस्फारिप्रभापटललोचनः ॥५२॥
क्षुब्धमेघकुलस्वानं प्रभ्रम्य सुमहाजवम् । चिक्षेप रावणश्चक्रं जनसंशयकारणम् ॥५३॥
दृष्ट्वाभिमुखमागच्छत्तदुत्पातार्कसंनिभम् । निवारयितुमुद्युक्तो वज्रास्यैर्लक्ष्मणः शरैः ॥५४॥
वज्रावर्तेन पद्माभो धनुषा वेगशालिना । हलेन चोग्रपोत्रेण[7] भ्रामितेनान्यबाहुना[8] ॥५५॥

स्वभावस्थ होकर उस चक्र-रत्नका चिन्तवन किया जो कि प्रलयकालीन मध्याह्नके सूर्यके समान प्रभापूर्ण था तथा शत्रु पक्षका क्षय करनेमे उन्मत्त था ॥४२-४३॥

तदनन्तर जो अपरिमित कान्तिके समूहका धारक था, मोतियोंकी झालरसे युक्त था, स्वयं देदीप्यमान था, दिव्य था, वज्रमय मुखसे सहित था, महा अद्भुत था, नाना रत्नोसे जिसका शरीर व्याप्त था, दिव्य मालाओं और विलेपनसे सहित था, जिसकी धारोकी मण्डलाकार किरणें अग्निके कोटके समान जान पड़ती थी, जो वैडूर्यमणिनिर्मित हजार आरोसे सहित था, जिसका देखना कठिन था, हजार यक्ष जिसकी सदा प्रयत्नपूर्वक रक्षा करते थे, और जो प्रलय कालसे सम्बद्ध यमराजके मुखके समान था ऐसा चक्र, चिन्ता करते ही उसके हाथमे आ गया ॥४४-४७॥ उस प्रभापूर्ण दिव्य अस्त्रके द्वारा सूर्य प्रभाहीन कर दिया गया जिससे वह चित्रलिखित सूर्यके समान कान्ति मात्र है शेष जिसमे ऐसा रह गया ॥४८॥ गन्धर्व, अप्सराएँ, विश्वावसु, तुम्बुरु, और नारद युद्धका देखना छोड गायन भूलकर कही चले गये ॥४९॥ 'अब तो मरना ही होगा' ऐसा निश्चय यद्यपि लक्ष्मणने कर लिया था तथापि वे अत्यन्त धीर बुद्धिके धारक हो उस प्रकारके शत्रुकी ओर देख जोरसे बोले कि रे नराधम! इस चक्रको पाकर भी कृपणके समान इस तरह क्यों खड़ा है यदि कोई शक्ति है तो प्रहार कर ॥५०-५१॥ इतना कहते ही जो अत्यन्त कुपित हो गया था, जो दांतोसे ओठको डँश रहा था, तथा जिसके नेत्रोसे मण्डलाकार विशाल कान्तिका समूह निकल रहा था ऐसे रावणने घुमाकर चक्ररत्न छोड़ा। वह चक्ररत्न क्षोभको प्राप्त हुए मेघमण्डलके समान भयकर शब्द कर रहा था, महावेगशाली था, और मनुष्योके संशयका कारण था ॥५२-५३॥

तदनन्तर प्रलय कालके सूर्यके समान सामने आते हुए उस चक्ररत्नको देखकर लक्ष्मण वज्रमुखी बाणसे उसे रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५४॥ रामचन्द्रजी एक हाथसे वेगशाली वज्रावर्त नामक धनुषसे और दूसरे हाथसे घुमाये हुए तीक्ष्णमुख हलसे, अत्यधिक क्षोभको धारण करनेवाला सुग्रीव गदासे, भामण्डल तीक्ष्ण तलवारसे, विभीषण शत्रुका विघात करनेवाले त्रिशूलसे,

---

१. किरणप्रभ. म., क । २. छविश् म, क. । ३. संकाशं धारामण्डलदीधिति म. । ४. संबन्ध म । ५ प्रभास्तेन ज., क । ६. स्यैव म. । ७ चोग्रपात्रेण क. । ८ भ्राम्यते नान्यबाहुना म. ।

संभ्रमं परमं[4] बिभ्रत्सुग्रीवो गदया तदा । मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन प्रभामण्डलसुन्दरः ॥५६॥
अरातिप्रतिकूलेन शूलेनासौ विभीषणः । उल्कामुद्गरलाङ्गूलकनकाद्यैर्मरुत्सुतः ॥५७॥
अङ्गदः परिघेनाङ्ग[1]. कुठारेणोरुतेजसा । शेषा अपि तथा शेषैः शस्त्रैः खेचरपुङ्गवाः ॥५८॥
एकीभूय समुद्युक्ता अपि जीवितनिःस्पृहाः । ते निवारयितुं शेकुर्न तत्त्रिदशपालितम् ॥५९॥
तेनागत्य परीत्य त्रिर्विनयस्थित[2]रक्षकम् । सुखं शान्तवपु. स्वैरं लक्ष्मणस्य करे स्थितम्[3] ॥६०॥

उपजातिवृत्तम्

माहात्म्यमेतत्सुसमासतस्ते निवेदितं कर्तृ सुविस्मयस्य ।
रामस्य नारायणसंगतस्य महर्द्धिकं श्रेणिक ! लोकतुङ्गम् ॥६१॥

इन्द्रवज्रावृत्तम्

एकस्य पुण्योदयकालभाज. संजायते नुः[4] परमा विभूतिः ।
पुण्यक्षयेऽन्यस्य विनाशयोगश्चन्द्रोऽभ्युदेत्येति रविर्यथास्तम् ॥६२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे चक्ररत्नोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमं पर्व ॥७५॥



हनूमान् उल्का, मुद्गर, लांगूल तथा कनक आदिसे, अंगद परिघसे, अंग अत्यन्त तीक्ष्ण कुठारसे और अन्य विद्याधर राजा भी शेष अस्त्र-शस्त्रोंसे एक साथ मिलकर जीवनकी आशा छोड़ उसे रोकनेके लिए उद्यत हुए पर वे सब मिलकर भी इन्द्रके द्वारा रक्षित उस चक्ररत्नको रोकनेमे समर्थ नही हो सके ॥५५-५९॥ इधर रामकी सेनामे व्यग्रता बढ़ी जा रही थी पर भाग्यकी बात देखो कि उसने आकर लक्ष्मणकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी, उसके सब रक्षक विनयमे खड़े हो गये, उसका आकार सुखकारी तथा शान्त हो गया और वह स्वेच्छासे लक्ष्मणके हाथमें आकर रुक गया ॥६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैने तुझे राम-लक्ष्मणका यह अत्यन्त आश्चर्यको करनेवाला महाविभूतिसे सम्पन्न एवं लोकश्रेष्ठ माहात्म्य संक्षेपसे कहा है ॥६१॥ पुण्योदयके कालको प्राप्त हुए एक मनुष्यके परम विभूति प्रकट होती है तो पुण्यका क्षय होनेपर दूसरे मनुष्यके विनाशका योग उपस्थित होता है। जिस प्रकार कि चन्द्रमा उदित होता है और सूर्य अस्तको प्राप्त होता है ॥६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके चक्ररत्नकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला पचहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७५॥



१. पारदेनाङ्गः म. । २. स्थितिरक्षकम् म । ३. करस्थितम् म. । ४. पुरुषस्य ।

षट्सप्ततितमं पर्व

उत्पन्नचक्ररत्नं तं वीक्ष्य लक्ष्मणसुन्दरम् । हृष्टा विद्याधराधीशाश्चक्रुरित्यभिनन्दनम् ॥१॥
ऊचुश्चासीत् समादिष्टः पुरा भगवता तदा । नाथेनानन्तवीर्येण योऽष्टमः कृष्णतायुजाम्[1] ॥२॥
जातो नारायणः सोऽयं चक्रपाणिर्महाद्युतिः । अत्युत्तमवपुः श्रीमान् न शक्यो बलवर्णने ॥३॥
अयं च बलदेवोऽसौ रथं यस्य वहन्त्यमी । उद्वृत्तकेसरसटा सिंहा भास्करभासुराः ॥४॥
नीतो मयमहादैत्यो येन वन्दिगृहं रणे[2] । हलरत्नं करे यस्य भृशमेतद्विराजते ॥५॥
रामनारायणावेतौ तौ जातौ पुरुषोत्तमौ । पुण्यानुभावयोगेन परमप्रेमसंगतौ ॥६॥
लक्ष्मणस्य स्थितं पाणौ समालोक्य सुदर्शनम् । रक्षसामधिपश्चिन्तायोगमेवमुपागतः ॥७॥
वन्द्येनानन्तवीर्येण दिव्यं यद्भाषितं तदा । ध्रुवं तदिदमायातं कर्मानिलसमीरितम् ॥८॥
यस्यातपत्रमालोक्य संत्रस्ताः खेचराधिपाः । भङ्गं प्रापुर्महासैन्याः पर्यस्तच्छत्रकेतनाः ॥९॥
आकूपारपयोवासा हिमवद्विन्ध्यसुस्तना । दासीवाज्ञाकरी यस्य त्रिखण्डवसुधाभवत् ॥१०॥
सोऽहं भूगोचरेणाजौ जेतुमालोचितः कथम् । कष्टेयं वर्त्ततेऽवस्था पश्यताद्भुतमीदृशम् ॥११॥
धिगिमां नृपतेर्लक्ष्मीं कुलटासमचेष्टिताम् । भक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्ती चिरसंस्तुतान् ॥१२॥
किम्पाकफलवद्भोगा विपाकविरसा भृशम् । अनन्तदुःखसंबन्धकारिणः साधुगर्हिताः ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हे चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे लक्ष्मण सुन्दरको देखकर विद्याधर राजाओंने हर्षित हो उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया ॥१॥ वे कहने लगे कि पहले भगवान् अनन्तवीर्य स्वामीने जिस आठवें नारायणका कथन किया था यह वही उत्पन्न हुआ है। चक्ररत्न इसके हाथमे आया है। यह महाकान्तिमान्, अत्युत्तम शरीरका धारक और श्रीमान् है तथा इसके बलका वर्णन करना अशक्य है ॥२-३॥ और यह राम, आठवाँ बलभद्र है जिसके रथको खड़ी जटाओंको धारण करनेवाले तथा सूर्यके समान देदीप्यमान सिंह खीचते हैं ॥४॥ जिसने रणमे मय नामक महादैत्यको वन्दीगृहमे भेजा था तथा जिसके हाथमे यह हलरूपी रत्न अत्यन्त शोभा देता है ॥५॥ ये दोनो ही पुरुषोत्तम पुण्यके प्रभावसे बलभद्र और नारायण हुए हैं तथा परम प्रीतिसे युक्त हैं ॥६॥

तदनन्तर सुदर्शन चक्रको लक्ष्मणके हाथमे स्थित देख राक्षसाधिपति रावण इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७॥ वह विचार करने लगा कि उस समय वन्दनीय अनन्तवीर्य केवलीने जो दिव्यध्वनिमे कहा था जान पड़ता है कि वही यह कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हो आया है ॥८॥ जिसका छत्र देख विद्याधर राजा भयभीत हो जाते थे, बड़ी-बड़ी सेनाएँ छत्र तथा पताकाएँ फेक विनाशको प्राप्त हो जाती थी तथा समुद्रका जल ही जिसका वस्त्र है और हिमालय तथा विन्ध्याचल जिसके स्तन हैं ऐसी तीन खण्डकी वसुधा दासीके समान जिसकी आज्ञाकारिणी थी ॥९-१०॥ वही मैं, आज युद्धमे एक भूमिगोचरीके द्वारा पराजित होनेके लिए किस प्रकार देखा गया हूँ ? अहो ! यह बड़ी कष्टकर अवस्था है ? यह आश्चर्य भी देखो ॥११॥ कुलटाके समान चेष्टाको धारण करनेवाली इस राजलक्ष्मीको धिक्कार हो। यह पापी मनुष्योका सेवन करनेके लिए चिर-परिचित पुरुषोंको एक साथ छोड़ देती है ॥१२॥ ये पंचेन्द्रियोके भोग किंपाक फलके समान परिपाक कालमे अत्यन्त विरस है, अनन्त दुःखोंका संसर्ग करानेवाले है और साधुजनोंके द्वारा निन्दित हैं ॥१३॥

---

१. नारायणतोपेताना नारायणानामिति यावत् । कृष्णतायुजान् म. ज । २. क्षणे म ।

भरताद्याः सधन्यास्ते पुरुषा भुवनोत्तमाः । चक्राङ्कं ये परिस्फीतं राज्यं कण्टकवर्जितम् ॥१४॥
विषमिश्रान्नवत्त्यक्त्वा जैनेन्द्रं व्रतमाश्रिताः । रत्नत्रयं समाराध्य प्रापुश्च परमं पदम् ॥१५॥
मोहेन बलिनात्यन्तं संसारस्फातिकारिणा[1] । पराजितो वराकोऽहं धिङ्मामीदृशचेष्टितम् ॥१६॥
उत्पन्नचक्ररत्नेन लक्ष्मणेनाथ रावणः । विभीषणास्यमालोक्य जगदे पुरुतेजसा ॥१७॥
अद्यापि खगसंपूज्य समर्प्य जनकात्मजाम् । रामदेवप्रसादेन जीवामीति वचो वद ॥१८॥
ततस्तथाविधैवेयं तव लक्ष्मीरवस्थिता । विधाय मानभङ्गं हि सन्तो यान्ति कृतार्थताम् ॥१९॥
रावणेन ततोऽवोचि लक्ष्मण स्मितकारिणा । अहो कारणनिर्मुक्तो गर्वः क्षुद्रस्य ते मुधा ॥२०॥
दर्शयाम्यद्य तेऽवस्थां यां तामनुभवाधम । अहं रावण एवासौ स च त्वं धरणीचरः[2] ॥२१॥
लक्ष्मणेन ततोऽभाणि किमत्र बहुभाषितैः । सर्वथाहं समुत्पन्नो हन्ता नारायणस्तव ॥२२॥
उक्तं तेन निजाकूताद्यदि नारायणायसे । इच्छामात्रात् सुरेन्द्रत्वं कस्मान्न प्रतिपद्यसे ॥२३॥
निर्वासितस्य ते पित्रा दुःखिनो वनचारिणः । अपत्रपाविहीनस्य ज्ञाता केशवता मया ॥२४॥
नारायणो भवान्यो वा यत्ते मनसि वर्त्तते । विस्फूर्जितं करोम्येष[3] तव भग्नं मनोरथम्[4] ॥२५॥
अनेनालातचक्रेण किल त्वं कृतितां गतः । अथवा क्षुद्रजन्तूनां खलेनापि महोत्सवम् ॥२६॥
सहामीभिः खगैः पापैः सचक्रं सहवाहनम् । पाताले त्वां नयाम्यद्य कथितेनापरेण किम् ॥२७॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य नवनारायणो रुषा । प्रभ्रम्य चक्रमुद्यम्य चिक्षेप प्रति रावणम् ॥२८॥
वज्रप्रभवमेघौघघोरनिर्घोषभीषणम् । प्रलयार्कसमच्छायं तच्चक्रमभवत्तदा ॥२९॥

वे संसारश्रेष्ठ भरतादि पुरुष धन्य हैं जो चक्ररत्नसे सहित निष्कण्टक विशाल राज्यको विषमिश्रित अन्नके समान छोड़कर जिनेन्द्र सम्बन्धी व्रतको प्राप्त हुए तथा रत्नत्रयकी आराधना कर परम पदको प्राप्त हुए ॥१४-१५॥ मैं दीन पुरुष संसार वृद्धिका अतिशय कारण जो बलवान् मोहकर्म है उसके द्वारा पराजित हुआ हूँ। ऐसी चेष्टाको धारण करनेवाले मुझको धिक्कार है ॥१६॥

अथानन्तर जिन्हें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ था ऐसे विशाल तेजके धारक लक्ष्मणने विभीषणका मुख देखकर रावणसे कहा कि हे विद्याधरोंके पूज्य ! यदि अब भी तुम सीताको सौंप कर यह वचन कहो कि मैं भी रामदेवके प्रसादसे जीवित हूँ तो तुम्हारी यह लक्ष्मी ज्योंकी त्यों अवस्थित है क्योंकि सत्पुरुष मान भंग करके ही कृतकृत्यताको प्राप्त हो जाते हैं ॥१७-१९॥ तब मन्द हास्य करनेवाले रावणने लक्ष्मणसे कहा कि अहो ! तुझ क्षुद्रका यह अकारण गर्व करना व्यर्थ है ॥२०॥ अरे नीच ! मैं आज तुझे जो दशा दिखाता हूँ उसका अनुभव कर। मैं वह रावण ही हूँ और तू वही भूमिगोचरी है ॥२१॥ तब लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? मैं सब तरहसे तुम्हें मारनेवाला नारायण उत्पन्न हुआ हूँ ॥२२॥ तदनन्तर रावणने व्यंगपूर्ण चेष्टा बनाते हुए कहा कि यदि इच्छा मात्रसे नारायण बन रहा है तो फिर इच्छा मात्रसे इन्द्रपना क्यों नहीं प्राप्त कर लेता ॥२३॥ पिताने तुझे घरसे निकाला जिससे दुखी होता हुआ वन-वनमें भटकता रहा अब निर्लज्ज हो नारायण बनने चला है सो तेरा नारायणपना मैं खूब जानता हूँ ॥२४॥ अथवा तू नारायण रह अथवा जो कुछ तेरे मनमें हो सो बन जा परन्तु मैं लगे हाथ तेरे मनोरथको भंग करता हूँ ॥२५॥ तू इस अलातचक्रसे कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि क्षुद्र जन्तुओंको दुष्ट वस्तुसे भी महान् उत्सव होता है ॥२६॥ अथवा अधिक कहनेसे क्या ? मैं आज तुझे इन पापी विद्याधरोंके साथ चक्रके साथ और वाहनके साथ सीधा पाताल भेजता हूँ ॥२७॥ यह वचन सुन नूतन नारायण—लक्ष्मणने क्रोधवश घुमाकर रावणकी ओर चक्ररत्न फेंका ॥२८॥ उस समय वह चक्र वज्रको जन्म देनेवाले मेघसमूहकी घोर गर्जनाके समान

---

१ स्फीति म. । २ धरणीचर. म. । ३ करोत्येष म. । ४. भग्नमनोरथं म. ।

हिरण्यकशिपुः[1] क्षिप्तं हरिणेव तदायुधम् । निवारयितुमुद्युक्तः संरब्धो रावणः शरैः ॥३०॥
भूयश्चण्डेन दण्डेन जविना पविना पुनः । तथापि ढौकते चक्रं वक्रं पुण्यपरिक्षये ॥३१॥
चन्द्रहासं समाकृष्य ततोऽभ्यर्णत्वमागतम् । जघान गहनोत्सर्पिस्फुलिङ्गाञ्चितपुष्करम् ॥३२॥
स्थितस्याभिमुखस्यास्य राक्षसेन्द्रस्य शालिनः । तेन चक्रेण निर्भिन्नं वज्रसारमुरःस्थलम् ॥३३॥
उत्पातवातसन्नुन्नमहाञ्जनगिरिप्रभः । पपात रावणः क्षोण्यां पतिते पुण्यकर्मणि ॥३४॥
रतेरिव पतिः सुप्तश्च्युतः स्वर्गादिवामरः । महीस्थितो रराजासौ संदष्टदशनच्छदः ॥३५॥
स्वामिनं पतितं दृष्ट्वा सैन्यं सागरनिस्वनम् । शीर्णं वितानतां प्राप्तं पर्यस्तच्छत्रकेतुकम् ॥३६॥
उत्सारय रथं देहि मार्गमश्वमितो नय । प्राप्तोऽयं पृष्ठतो हस्ती विमानं कुरु पार्श्वतः ॥३७॥
पतितोऽयमहो नाथः कष्टं जातमनुत्तमम् । इत्यालापमलं भ्रान्तं वलं तन्नैव विह्वलम् ॥३८॥
अन्योन्यापूरणासक्तान्[2]महाभयविकम्पितान् । दृष्ट्वा निःशरणानेताञ्जनान् पतितमस्तकान् ॥३९॥
किष्किन्धपतिवैदेहसमीरणसुतादयः । न भेतव्यं न भेतव्यमिति साधारमानयन् ॥४०॥
[3]भ्रमितोपरिवस्त्रान्तपल्लवानां समन्ततः । सैन्यमाश्वासितं तेषां वाक्यैः कर्णरसायनैः ॥४१॥

रुचिरावृत्तम्

तथाविधां श्रियमनुभूय भूयसीं कृताद्भुतां जगति समुद्रवारिते ।
परिक्षये सति सुकृतस्य कर्मणः खलामिमां प्रकृतिमितो दशाननः ॥४२॥

भयंकर तथा प्रलयकालीन सूर्यके समान कान्तिका धारक था ॥२९॥ जिस तरह पूर्वमे नारायणके द्वारा चलाये हुए चक्रको रोकनेके लिए हिरण्यकशिपु उद्यत हुआ था उसी प्रकार क्रोधसे भरा रावण बाणोके द्वारा उस चक्रको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥३०॥ यद्यपि उसने तीक्ष्ण दण्ड और वेगशाली वज्रके द्वारा भी उसे रोकनेका प्रयत्न किया तथापि पुण्य क्षीण हो जानेसे वह कुटिल चक्र रुका नही किन्तु उसके विपरीत समीप ही आता गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणने चन्द्रहास खड्ग खीचकर समीप आये हुए चक्ररत्नपर प्रहार किया सो उसकी टक्करसे प्रचुर मात्रामे निकलनेवाले तिलगोसे आकाश व्याप्त हो गया ॥३२॥ तत्पश्चात् उस चक्ररत्नने सम्मुख खड़े हुए शोभाशाली रावणका वज्रके समान वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिया ॥३३॥ जिससे पुण्य कर्म क्षीण होनेपर प्रलय कालकी वायुसे प्रेरित विशाल अंजनगिरिके समान रावण पृथिवीपर गिर पड़ा ॥३४॥ ओठोको डँसनेवाला रावण पृथिवीपर पड़ा ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो कामदेव ही सो रहा हो अथवा स्वर्गसे कोई देव ही आकर च्युत हुआ हो ॥३५॥ स्वामीको पड़ा देख समुद्रके समान शब्द करनेवाली जीर्ण-शीर्ण सेना छत्र तथा पताकाएँ फेंक चौड़ी हो गयी अर्थात् भाग गयी ॥३६॥ 'रथ हटाओ, मार्ग देओ, घोड़ा इधर ले जाओ, यह पीछेसे हाथी आ रहा है, विमानको वगलमे करो, अहो ! यह स्वामी गिर पड़ा है, बड़ा कष्ट हुआ' इस प्रकार वार्तालाप करती हुई वह सेना विह्वल हो भाग खड़ी हुई ॥३७-३८॥

तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरेपर पड़ रहे थे, जो महाभयसे कम्पायमान थे, और जिनके मस्तक पृथिवीपर पड़ रहे थे ऐसे इन शरणहीन मनुष्योको देखकर सुग्रीव, भामण्डल तथा हनूमान् आदिने 'नही डरना चाहिए' 'नही डरना चाहिए' आदि शब्द कहकर सान्त्वना प्राप्त करायी ॥३९-४०॥ जिन्होने सब ओर ऊपर वस्त्रका छोर घुमाया था ऐसे उन सुग्रीव आदि महापुरुषोके, कानोके लिए रसायनके समान मधुर वचनोसे सेना सान्त्वनाको प्राप्त हुई ॥४१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! समुद्रान्त पृथिवीमे अनेक आश्चर्यके कार्य करनेवाली उस

---

१ हिरण्यकशिपुक्षिप्त म । २ शक्तान्-म, क । ३ भ्रमितोपरिवस्त्रान्त पल्लवाना म, ज ।

धिगीदृशीं श्रियमतिचञ्चलात्मिकां विवर्जितां सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुटं मनसि निधाय भो जनास्तपोधना भवत रवेर्जितौजसः ॥४३॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे दशग्रीववधाभिधानं नाम षट्सप्ततितमं पर्व ॥७६॥



प्रकारकी लक्ष्मीका उपभोग कर रावण, पुण्य कर्मका क्षय होनेपर इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ ॥४२॥ इसलिए अत्यन्त चचल एवं पुण्यप्राप्तिकी आशासे रहित इस लक्ष्मीको धिक्कार है। हे भव्य जनो! ऐसा मनमे विचार कर सूर्यके तेजको जीतनेवाले तपोधन होओ—तपके धारक बनो ॥४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रावणके
वधका वर्णन करनेवाला छिहत्तरवाँ पर्व
समाप्त हुआ ॥७६॥



सप्तसप्ततितमं पर्व

सोदरं पतितं दृष्ट्वा महादुःखसमन्वितः । क्षुरिकायां करं चक्रे स्ववधाय विभीषणः ॥१॥
वारयन्ती वधं तस्य निश्चेष्टीकृतविग्रहा । मूर्च्छा कालं कियन्तं चिच्चकारोपकृतिं पराम्[1] ॥२॥
लब्धसंज्ञो जिघांसुः स्वं तापं दुःसहमुद्वहन् । रामेण विधृतः[2] कृच्छ्रादुत्तीर्य निजतो रथात् ॥३॥
त्यक्तास्त्रकवचो भूम्यां पुनर्मूर्च्छामुपागतः । प्रतिबुद्धः पुनश्चक्रे विलापं करुणाकरम् ॥४॥
हा भ्रातः करुणोदार शूर संश्रितवत्सल । मनोहर कथं प्राप्तोऽस्यवस्थामिति पापिकाम् ॥५॥
किं तन्मद्वचनं नाथ गद्यमानं हितं परम् । न मानितं यतो युद्धे वीक्षे[3] त्वां चक्रताडितम् ॥६॥
कष्टं भूमितले देव विद्याधरमहेश्वर । कथं सुप्तोऽसि लङ्केश भोगदुर्ललितात्मकः ॥७॥
उत्तिष्ठ देहि मे वाक्यं चारुवाक्यं गुणाकर । साधारय कृपाधार मग्नं मां शोकसागरे ॥८॥
एतस्मिन्नन्तरे[4] ज्ञातदशाननिपातनम् । क्षुब्धमन्तःपुरं शोकमहाकल्लोलसंकुलम् ॥९॥
सर्वाश्च वनिता बाष्पधारासिक्तमहीतलाः । रणक्षोणीं समाजग्मुर्मुहुः प्रस्खलितक्रमाः ॥१०॥
तं चूडामणिसंकाशं क्षितेरालोक्य सुन्दरम् । निश्चेतनं पतिं नार्यो निपेतुरतिवेगतः ॥११॥
रम्भा चन्द्रानना चन्द्रमण्डला[5] प्रवरोर्वशी । मन्दोदरी महादेवी सुन्दरी कमलानना ॥१२॥
रूपिणी रुक्मिणी शीला रत्नमाला तनूदरी । श्रीकान्ता श्रीमती भद्रा कनकाभा मृगावती ॥१३॥
श्रीमाला मानवी लक्ष्मीरानन्दानङ्गसुन्दरी । वसुन्धरा तडिन्माला पद्मा पद्मावती सुखा ॥१४॥

अथानन्तर भाईको पड़ा देख महादुःखसे युक्त विभीषणने अपना वध करनेके लिए छुरीपर हाथ रखा ॥१॥ सो उसके इस वधको रोकती तथा शरीरको निश्चेष्ट करती मूर्च्छाने कुछ काल तक उसका बड़ा उपकार किया ॥२॥ जब सचेत हुआ तब पुनः आत्मघातकी इच्छा करने लगा सो रामने अपने रथसे उतरकर उसे बड़ी कठिनाईसे पकड़कर रखा ॥३॥ जिसने अस्त्र और कवच छोड़ दिये थे ऐसा विभीषण पुनः मूर्च्छित हो पृथिवीपर पड़ा रहा। तत्पश्चात् जब पुनः सचेत हुआ तब करुणा उत्पन्न करनेवाला विलाप करने लगा ॥४॥ वह कह रहा था कि हे भाई! हे उदार करुणाके धारी! हे शूरवीर! हे आश्रितजनवत्सल! हे मनोहर! तुम इस पापपूर्ण दशाको कैसे प्राप्त हो गये? ॥५॥ हे नाथ! क्या उस समय तुमने मेरे कहे हुए हितकारी वचन नहीं माने इसीलिए युद्धमें तुम्हें चक्रसे ताड़ित देख रहा हूँ ॥६॥ हे देव! हे विद्याधरोंके अधिपति! हे लंकाके स्वामी! तुम तो भोगोंसे लालित हुए थे फिर आज पृथिवीतलपर क्यों सो रहे हो? ॥७॥ हे सुन्दर वचन बोलनेवाले! हे गुणोंकी खानि! उठो मुझे वचन देओ—मुझसे वार्तालाप करो। हे कृपाके आधार! शोकरूपी सागरमें डूबे हुए मुझे सान्त्वना देओ ॥८॥

तदनन्तर इसी बीचमें जिसे रावणके गिरनेका समाचार विदित हो गया था ऐसा अन्तःपुर शोककी बड़ी-बड़ी लहरोंसे व्याप्त होता हुआ क्षुभित हो उठा ॥९॥ जिन्होंने अश्रुधारासे पृथिवीतलको सींचा था तथा जिनके पैर बार-बार लड़खड़ा रहे थे ऐसी समस्त स्त्रियाँ रणभूमिमें आ गयीं ॥१०॥ और पृथिवीके चूडामणिके समान सुन्दर पतिको निश्चेतन देख अत्यन्त वेगसे भूमिपर गिर पड़ीं ॥११॥ रम्भा, चन्द्रानना, चन्द्रमण्डला, प्रवरा, उर्वशी, मन्दोदरी, महादेवी, सुन्दरी, कमलानना, रूपिणी, रुक्मिणी, शीला, रत्नमाला, तनूदरी, श्रीकान्ता, श्रीमती, भद्रा, कनकाभा, मृगावती, श्रीमाला, मानवी, लक्ष्मी, आनन्दा, अनंगसुन्दरी, वसुन्धरा, तडिन्माला, पद्मा, पद्मावती,

१ कियन्त च चकारोप- म । २ विधूत म । ३ वीक्ष्ये ज । ४ ज्ञात दशानन- म । ५ मण्डलाब्ज म ।

देवी पद्मावती कान्ति. प्रीतिः संध्यावली शुभा । प्रभावती मनोवेगा रतिकान्ता मनोवती ॥१५॥
अष्टादशैवमादीनां सहस्राणि सुयोषिताम् । परिवार्य पतिं चक्रुराक्रन्दं सुमहाशुचा ॥१६॥
काश्चिन्मोहं गताः सत्य. सिक्ताश्चन्दनवारिणा । समुत्प्लुतमृणालानां पद्मिनीनां श्रियं दधुः ॥१७॥
आश्लिष्टदयिताः काश्चिद्गाढं मूर्च्छामुपागताः । अञ्जनाद्रिसमासक्तसंध्यारेखाद्युतिं दधुः ॥१८॥
निर्व्यूढमूर्च्छना. काश्चिदुरस्ताडनचञ्चलाः । घनाघनसमासंगितडिन्मालाकृतिं श्रिताः ॥१९॥
विधाय वदनाम्भोजं काचिदङ्के सुविह्वला । वक्ष.स्थलपरामर्शकारिणी मूर्च्छिता मुहुः ॥२०॥
हा हा नाथ गतः क्वासि त्यक्त्वा मामतिकातराम् । कथं नापेक्षसे दुःखनिमग्नं जनमात्मनः ॥२१॥
स त्वं सत्त्वयुतः कान्तिमण्डनः परमद्युति. । विभूत्या शक्रसंकाशो मानी भरतभूपतिः ॥२२॥
प्रधानपुरुषो भूत्वा महाराज मनोरमः । किमर्थं स्वपिषि क्षोण्यां विद्याधरमहेश्वर. ॥२३॥
उत्तिष्ठ कान्त कारुण्यपर स्वजनवत्सल । अमृतप्रतिमं वाक्यं यच्छैकमपि सुन्दरम् ॥२४॥
अपराधविमुक्तानामस्माकं सक्तचेतसाम् । प्राणेश्वर किमित्येवं स्थितस्त्वं कोपमागतः ॥२५॥
परिहासकथासक्तं दन्तज्योत्स्नामनोहरम् । वदनेन्दुमिमं नाथ सकृद्धारय[1] पूर्ववत् ॥२६॥
वराङ्गनापरिक्रीडास्थानेऽस्मिन्नपि सुन्दरे । वक्ष.स्थले कथं न्यस्तं पदं ते चक्रधारया ॥२७॥
बन्धूकपुष्पसंकाशस्तवायं दशनच्छदः । नर्मोत्तरप्रदानाय कथं स्फुरति नाधुना ॥२८॥
प्रसीद न चिरं कोप· सेवितो जातुचित्त्वया । प्रत्युतास्माकमेव त्वमकरोः सान्त्वनं पुरा ॥२९॥

सुखा, देवी, पद्मावती. कान्ति, प्रीति, सन्ध्यावली, शुभा, प्रभावती, मनोवेगा, रतिकान्ता और मनोवती, आदि अठारह हजार स्त्रियाँ पतिको घेरकर महाशोकसे रुदन करने लगी ॥१२–१६॥ जिनके ऊपर चन्दनका जल सींचा गया था ऐसी मूर्च्छाको प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियाँ, जिनके मृणाल उखाड़ लिये गये हैं ऐसी कमलिनियोंकी शोभा धारण कर रही थी ॥१७॥ पतिका आलिंगन कर गाढ मूर्च्छाको प्राप्त हुई कितनी ही स्त्रियाँ अंजनगिरिसे संसक्त सन्ध्याकी कान्तिको धारण कर रही थी ॥१८॥ जिनकी मूर्च्छा दूर हो गयी थी तथा जो छातीके पीटनेमे चंचल थी ऐसी कितनी ही स्त्रियाँ मेघमे कौंधती हुई विद्युन्मालाकी आकृतिको धारण कर रही थी ॥१९॥ कोई एक स्त्री पतिका मुखकमल अपनी गोदमे रख अत्यन्त विह्वल हो रही थी तथा वक्षःस्थलका स्पर्श करती हुई बार-बार मूर्च्छित हो रही थी ॥२०॥

वे कह रही थी कि हाय-हाय हे नाथ ! तुम मुझ अतिशय भीरुको छोड़ कहाँ चले गये हो ? दुःखमे डूबे हुए अपने लोगोंकी ओर क्यों नहीं देखते हो ? ॥२१॥ हे महाराज ! तुम तो धैर्य गुणसे सहित हो, कान्तिरूपी आभूषणसे विभूषित हो, परम कीर्तिके धारक हो, विभूतिमे इन्द्रके समान हो, मानी हो, भरत क्षेत्रके स्वामी हो, प्रधान पुरुष हो, मनको रमण करनेवाले हो, और विद्याधरोंके राजा हो फिर इस तरह पृथिवीपर क्यों सो रहे हो ? ॥२२–२३॥ हे कान्त ! हे दयातत्पर, हे स्वजनवत्सल ! उठो एक बार तो अमृततुल्य सुन्दर वचन देओ ॥२४॥ हे प्राणनाथ ! हम लोग अपराधसे रहित हैं तथा हम लोगोंका चित्त एक आप ही मे आसक्त है फिर क्यों इस तरह कोपको प्राप्त हुए हो ? ॥२५॥ हे नाथ ! परिहासकी कथामें तत्पर और दाँतोंकी कान्तिरूपी चाँदनीमे मनोहर इस मुखरूपी चन्द्रमाको एक बार तो पहलेके समान धारण करो ॥२६॥ तुम्हारा यह सुन्दर वक्ष स्थल उत्तम स्त्रियोंका क्रीड़ास्थल है फिर भी इसपर चक्रधाराने कैसे स्थान जमा लिया ? ॥२७॥ हे नाथ ! दुपहरियाके फूलके समान लाल-लाल यह तुम्हारा ओठ क्रीड़ापूर्ण उत्तर देनेके लिए इस समय क्यो नही फड़क रहा है ? ॥२८॥ प्रसन्न होओ, तुमने कभी इतना लम्बा

---

१. मक्वारय म ।

उदपाद्येष यस्त्वत्तः कल्पलोकात् परिच्युतः। बन्धने मेघवाहोऽसौ दुःखमास्ते तथेन्द्रजित् ॥३०॥
विधाय सुकृतज्ञेन वीरेण गुणशालिना। पद्माभेन सह प्रीतिं भ्रातृपुत्रौ विमोचय ॥३१॥
जीवितेश समुत्तिष्ठ प्रयच्छ वचनं प्रियम्। सुचिरं देव किं शेषे विधत्स्व नृपतेः क्रियाम् ॥३२॥
विरहाग्निप्रदीप्तानि भृशं सुन्दरविभ्रम। कान्त विध्यापयाङ्गानि प्रसीद प्रणयिप्रिय ॥३३॥
अवस्थामेतिकां प्राप्तमिदं वदनपङ्कजम्। प्रियस्य हृदयालोक्य दीर्यते शतधा न किम् ॥३४॥
वज्रसारमिदं नूनं हृदयं दुःखभाजनम्। ज्ञात्वापि यत्तवावस्थामिमां तिष्ठति निर्दयम् ॥३५॥
विधे किं कृतमस्माभिर्भवतः सुन्दरेतरम्। विहितं येन कर्मेदं त्वया निर्दयदुष्करम् ॥३६॥
समालिङ्गनमात्रेण दूरं निर्धूय मानकम्। परस्परार्पणस्वादु नाथ यन्मधुसेवितम् ॥३७॥
यच्चान्यप्रमदागोत्रग्रहणस्खलिते सति। काञ्चीगुणेन नीतोऽसि बहुशो बन्धनं प्रिय[1] ॥३८॥
वतंसेन्दीवराघातात् कोपप्रस्फुरिताधरम्। प्रापितोऽसि प्रभो यच्च किञ्जल्कोच्छ्वसितालिकम् ॥३९॥
प्रेमकोपविनाशाय यच्चातिप्रियवादिना। कृतं पदार्पणं मूर्ध्नि हृदयद्रवकारणम् ॥४०॥
यानि चात्यन्तरम्याणि रतानि परमेश्वर। कान्त चाटुसमेतानि सेवितानि यथेप्सितम् ॥४१॥
परमानन्दकारीणि तदेतानि मनोहर। अधुना स्मर्यमाणानि दहन्ति हृदये भृशम् ॥४२॥
कुरु प्रसादमुत्तिष्ठ पादावेषा नमामि ते। न हि प्रियजने कोपः सुचिरं नाथ शोभते ॥४३॥
एवं रावणपत्नीनां श्रुत्वापि परिदेवनम्[2]। कस्य न प्राणिनः प्राप्तं हृदयं द्रवतामलम्[3] ॥४४॥

क्रोध नही किया अपितु हम लोगोको तुम पहले सान्त्वना देते रहे हो ॥२९॥ जिसने स्वर्ग लोकसे च्युत होकर आपसे जन्म ग्रहण किया था ऐसा वह मेघवाहन और इन्द्रजित् शत्रुके बन्धनमे दुःख भोग रहा है ॥३०॥ सो सुकृतको जाननेवाले गुणशाली वीर रामके साथ प्रीति कर अपने भाई कुम्भकर्ण तथा पुत्रोंको बन्धनसे छुड़ाओ ॥३१॥ हे प्राणनाथ! उठो, प्रिय वचन प्रदान करो। हे देव! चिरकाल तक क्यो सो रहे हो? उठो राजकार्य करो ॥३२॥ हे सुन्दर चेष्टाओके धारक! हे कान्त! हे प्रेमियोसे प्रेम करनेवाले! प्रसन्न होओ और विरहरूपी अग्निसे जलते हुए हमारे अंगोको शान्त करो ॥३३॥ रे हृदय! इस अवस्थाको प्राप्त हुए पतिके मुखकमलको देखकर तू सौ टूक क्यो नही हो जाता है? ॥३४॥ जान पड़ता है कि हमारा यह दुःखका भाजन हृदय वज्रका बना हुआ है इसीलिए तो तुम्हारी इस अवस्थाको जानकर भी निर्दय हुआ स्थित है ॥३५॥ हे विधातः! हम लोगोने तुम्हारा कौन-सा अशोभनीक कार्य किया था जिससे तुमने यह ऐसा कार्य किया जो निर्दय मनुष्योंके लिए भी दुष्कर है—कठिन है ॥३६॥ हे नाथ! आलिंगनमात्रसे मानको दूर कर परस्पर—एक दूसरेके आदान-प्रदानसे मनोहर जो मधुका पान किया था ॥३७॥ हे प्रिय! अन्य स्त्रीका नाम लेनेरूप अपराध होनेपर जो मैने तुम्हें अनेको बार मेखला सूत्रसे बन्धनमे डाला था ॥३८॥ हे प्रभो! मैने क्रोधसे ओठको कम्पित करते हुए जो उस समय तुम्हें कर्णाभरणके नील कमलसे ताड़ित किया था और उस कमलकी केशर तुम्हारे ललाटमे जा लगी थी ॥३९॥ प्रणय कोपको नष्ट करनेके लिए मधुर वचन कहते हुए जो तुमने हमारे पैर उठाकर अपने मस्तकपर रख लिये थे और उससे हमारा हृदय तत्काल द्रवीभूत हो गया था, और हे परमेश्वर! हे कान्त! मधुर वचनोसे सहित अत्यन्त रमणीय जो रत इच्छानुसार आपके साथ सेवन किये गये थे। हे मनोहर! परम आनन्दको करनेवाले वे सब कार्य इस समय एक-एक कर स्मृति-पथमे आते हुए हृदयमे तीव्र दाह उत्पन्न कर रहे है ॥४०–४२॥ हे नाथ! प्रसन्न होओ, उठो, मै आपके चरणोमे नमस्कार करती हूँ। क्योंकि प्रियजनोपर चिरकाल तक रहनेवाला क्रोध शोभा नही देता ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक! इस तरह रावणकी स्त्रियोका विलाप सुनकर किस प्राणीका हृदय अत्यन्त द्रवताको प्राप्त नही हुआ था? ॥४४॥

१. प्रियम् म.। २. विलापम्। ३. द्रवताम् + अलम्।

अथ पद्मामसौमित्री साकं खेचरपुङ्गवैः । स्नेहगर्भं परिष्वज्य बाष्पापूरितलोचनौ ॥४५॥
ऊचतुः करुणोद्युक्तौ परिसान्त्वनकोविदौ । विभीषणमिदं वाक्यं लोकवृत्तान्तपण्डितौ ॥४६॥
राजन्नलं रुदित्वैवं विषादमधुना त्यज । जानास्येव ननु व्यक्तं कर्मणामिति चेष्टितम् ॥४७॥
पूर्वकर्मानुभावेन प्रमादं भजतां नृणाम् । प्राप्तव्यं जायतेऽवश्यं तत्र शोकस्य कः क्रमः ॥४८॥
प्रवर्त्तते यदाकार्ये जनो ननु तदैव स. । मृतश्चिरंमृते[1] तस्मिन् किं शोकः क्रियतेऽधुना ॥४९॥
य सदा परमप्रीत्या हिताय जगतो रतः । समाहितमतिर्गाढं प्रजाकर्मणि पण्डितः ॥५०॥
सर्वशास्त्रार्थसंबोधक्षालितात्मापि रावणः । मोहेन बलिना नीतोऽवस्थामेतां सुदारुणाम् ॥५१॥
असौ विनाशमेतेन प्रकारेणानुभूतवान् । नूनं विनाशकाले हि नृणां ध्वान्तायते मतिः ॥५२॥
रामीयवचनस्यान्ते प्रभामण्डलपण्डितः । जगाद वचनं विभ्रन्माधुर्यं परमोत्कटम् ॥५३॥
विभीषण रणे भीमे युध्यमानो महामनाः । मृत्युना वीरयोग्येन[2] रावणः स्वस्थितिं श्रितः ॥५४॥
किं तस्य पतितं यस्य मानो[3] न पतितः प्रभो । नन्वत्यन्तमसौ धन्यो योऽसून्प्रत्यर्यमुज्झत[4] ॥५५॥
महासत्त्वस्य वीरस्य शोच्यं तस्य न विद्यते । शत्रुंदमसमा लोके शोच्याः पार्थिवगोत्रजाः ॥५६॥
लक्ष्मीहरिध्वजोद्भूतो[5] बभूवाक्षपुरे नृपः । अरिंदम इति ख्यातः पुरंदरसमश्रिया ॥५७॥
स जित्वा शत्रुसंघातं नानादेशव्यवस्थितम् । प्रत्यागच्छन्निजं स्थानं देवीदर्शनकाङ्क्षया ॥५८॥

अथानन्तर जिनके नेत्र आँसुओसे व्याप्त थे, जो करुणा प्रकट करनेमे उद्यत थे, सान्त्वना देनेमे निपुण थे, तथा लोकव्यवहारके पण्डित थे ऐसे राम-लक्ष्मण श्रेष्ठ विद्याधरोंके साथ विभीषणका स्नेहपूर्ण आलिंगन कर यह वचन बोले ॥४५-४६॥ कि हे राजन्! इस तरह रोना व्यर्थ है, अब विषाद छोड़ो, आप जानते हैं कि यह कर्मोंकी चेष्टा है ॥४७॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे प्रमाद करनेवाले मनुष्योंको जो वस्तु प्राप्त होने योग्य है वह अवश्य ही प्राप्त होती है इसमे शोकका क्या अवसर है? ॥४८॥ मनुष्य जब अकार्यमे प्रवृत्त होता है वह तभी मर जाता है फिर रावण तो चिरकाल बाद मरा है अतः अब शोक क्यो किया जाता है? ॥४९॥ जो सदा परम प्रीतिपूर्वक जगत्का हित करनेमे तत्पर रहता था, जिसकी बुद्धि सदा सावधान रूप रहती थी, जो प्रजाके कार्यमे पण्डित था, और समस्त शास्त्रोंके अर्थज्ञानसे जिसकी आत्मा धुली हुई थी ऐसा रावण बलवान् मोहके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है ॥५०-५१॥ उस रावणने इस अपराधसे विनाशका अनुभव किया है सो ठीक ही है क्योंकि विनाशके समय मनुष्योंकी बुद्धि अन्धकारके समान हो जाती है ॥५२॥

तदनन्तर रामके कहनेके बाद अतिशय चतुर भामण्डलने परमोत्कट माधुर्यको धारण करनेवाले निम्नांकित वचन कहे ॥५३॥ उसने कहा कि हे विभीषण! भयंकर रणमें युद्ध करता हुआ महामनस्वी रावण वीरोंके योग्य मृत्युसे मरकर आत्मस्थिति अथवा *स्वर्गस्थितिको प्राप्त हुआ है ॥५४॥ जिस प्रभुका मान नष्ट नहीं हुआ उसका क्या नष्ट हुआ? अर्थात् कुछ नहीं। यथार्थमे रावण अत्यन्त धन्य है जिसने शत्रुके सम्मुख प्राण छोड़े ॥५५॥ वह तो महाधैर्यशाली वीर रहा अतः उसके विषयमे शोक करने योग्य बात ही नहीं है। लोकमे जो क्षत्रिय अरिंदमके समान हैं वे ही शोक करने योग्य हैं ॥५६॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि अक्षपुर नामा नगरमे लक्ष्मी और हरिध्वजसे उत्पन्न हुआ अरिंदम नामका एक राजा था जो इन्द्रके समान सम्पत्तिसे प्रसिद्ध था ॥५७॥ वह एक बार नाना देशोंमे स्थित शत्रु समूहको जीतकर अपनी स्त्रीको देखनेकी

---

१. चिर मृते म । २ वीरयोगेन म । ३ मन. ज । ४. प्रति+अरि+असून्+उज्झत । ५ ध्वजो दूत म ।
* स्वस्मिन् स्थिति स्वस्थिति. ताम् । अथवा स्व स्वर्गे स्थितिः स्वस्थितिः ताम् 'खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः' इत्यनेन विकल्पेन विसर्गलोपात् । 'रणे निहताः स्वर्गं यान्ति' इति प्रसिद्धिः ।

परमोत्कण्ठया युक्तः केतुतोरणमण्डितम् । पुरं विवेश सोऽकस्मादश्वैर्मानसगत्वरैः ॥५९॥
स्वं गृहं संस्कृतं दृष्ट्वा भूषितां च स्वसुन्दरीम् । अपृच्छद्विदितोऽहं ते कथमेतीत्यवेदितम् ॥६०॥
सा जगौ मुनिमुख्येन नाथ कीर्त्तिधरेण मे । अवधिज्ञानिना शिष्टं पृष्टेनेतेन पारणाम् ॥६१॥
अवोचदीर्ष्यया युक्तो गत्वासौ मुनिपुङ्गवम् । यदि त्वं वेत्सि तच्चिन्तां मदीयां मम बोधय ॥६२॥
मुनिना गदितं चित्ते त्वयेदं विनिवेशितम् । यथा किल कथं मृत्युः कदा वा मे भविष्यति ॥६३॥
स त्वमस्माद्दिनादह्नि सप्तमे वज्रताडितः । मृत्वा भविष्यसि स्वस्मिन् कीटो विड्भवने महान् ॥६४॥
ततः प्रीतिंकराभिख्यमागत्य तनयं जगौ । त्वयाहं विड्गृहे जातो [1]हन्तव्य. स्थूलकीटकः ॥६५॥
तथाभूतं स दृष्ट्वा तं तनयं हन्तुमुद्यतम् । विड्मध्यमविशद्दूरं मृत्युभीतिपरिद्रुत ॥६६॥
मुनिं प्रीतिंकरो गत्वा पप्रच्छ भगवन् कुतः । संदिश्य मार्यमाणोऽसौ कीटो दूरं पलायते ॥६७॥
उवाच वचनं साधुर्विषादमिह मा कृथाः । योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति सः ॥६८॥
आत्मनस्तत्कुरु श्रेयो मुच्यसे येन किल्विषात् । ननु स्वकृतसंप्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः ॥६९॥
एवं भवस्थितिं ज्ञात्वा परमासुखकारिणीम् । प्रीतिकरो महायोगी बभूव विगतस्पृहः ॥७०॥

शार्दूलविक्रीडितम्

एवं ते विविधा विभीषण न किं ज्ञाता जगत्संस्थिति-
यच्छूरं कृतनिश्चयं विधिवशान्नारायणेनाहतम् ।
संग्रामेऽभिमुखं प्रधानपुरुषं शोचस्यहो रावणं
स्वार्थे संप्रति यच्च चित्तममुना शोकेन किं कारणम् ॥७१॥

इच्छासे अपने घरकी ओर लौट रहा था ॥५८॥ तीव्र उत्कण्ठासे युक्त होनेके कारण उसने मनके समान शीघ्रगामी घोड़ोसे अकस्मात् ही पताकाओ और तोरणोसे अलंकृत नगरमे प्रवेश किया ॥५९॥ अपने घरको सजा हुआ तथा स्त्रीको आभूषणादिसे अलंकृत देख उसने पूछा कि बिना कहे तुमने कैसे जान लिया कि ये आ रहे है ॥६०॥ स्त्रीने कहा कि हे नाथ! आज मुनियोमे मुख्य अवधिज्ञानी कीर्तिधर मुनि पारणाके लिए आये थे मैने उनसे आपके आनेका समय पूछा था तो उन्होने कहा कि राजा आज ही अकस्मात् आवेगे ॥६१॥ राजा अरिंदमको मुनिके भविष्यज्ञान पर कुछ ईर्ष्या हुई अतः वह उनके पास जाकर बोला कि यदि तुम जानते हो तो मेरे मनकी बात बताओ ॥६२॥ मुनिने कहा कि तुमने मनमे यह बात रख छोड़ी है कि मेरी कब और किस प्रकार मृत्यु होगी ? ॥६३॥ सो तुम आजसे सातवे दिन वज्रपातसे मरकर अपने विष्ठागृहमे महान् कीड़ा होओगे ॥६४॥ वहाँसे आकर राजा अरिंदमने अपने पुत्र प्रीतिंकरसे कहा कि मै विष्ठागृहमे एक बड़ा कीड़ा होऊँगा सो तुम मुझे मार डालना ॥६५॥

तदनन्तर जब पुत्र विष्ठागृहमे स्थूल कीड़ाको देखकर मारनेके लिए उद्यत हुआ तब वह कीड़ा मृत्युके भयसे भागकर बहुत दूर विष्ठाके भीतर घुस गया ॥६६॥ प्रीतिंकरने मुनिराजके पास जाकर पूछा कि हे भगवन्! कहे अनुसार जब मै उस कीडेको मारता हूँ तब वह दूर क्यो भाग जाता है ? ॥६७॥ मुनिराजने कहा कि इस विषयमे विवाद मत करो। यह प्राणी जिस योनिमे जाता है उसीमे प्रीतिको प्राप्त हो जाता है ॥६८॥ इसीलिए आत्माका कल्याण करनेवाला वह कार्य करो जिससे कि आत्मा पापसे छूट जाये। यह निश्चित है कि सब प्राणी अपने द्वारा किये हुए कर्मका फल प्राप्त करनेमे ही लीन है ॥६९॥ इस प्रकार अत्यन्त दु.खको उत्पन्न करनेवाली संसार दशाको जानकर प्रीतिकर निःस्पृह हो महामुनि हो गया ॥७०॥ इस प्रकार भामण्डल विभीषणसे कहता है कि हे विभीषण! क्या तुझे यह संसारकी विविध दशा ज्ञात नही है जो

---

१. हन्तव्यं म. ।

श्रुत्वेमां प्रतिबोधदानकुशलां चित्रस्वभावान्वितां
सत्प्रीतिंकरसंयतस्य चरितप्रोत्कीर्त्तनीयां कथाम् ।
सर्वैः खेचरपुङ्गवैरभिहिते साधूदितं साध्विति
भ्रष्टः [1]शुक्तिमिराद्विभीषणरविर्लोकोत्तराचारवित् ॥७२॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने प्रीतिंकरोपाख्यानं नाम सप्तसप्ततितमं पर्व ॥७७॥



शूरवीर, दृढ निश्चयी एवं कर्मोदयके कारण युद्धमें नारायणके द्वारा सम्मुख मारे हुए प्रधान पुरुष रावणके प्रति शोक कर रहा है। अब तो अपने कार्यमे चित्त देओ इस शोकसे क्या प्रयोजन है? इस प्रकार प्रतिबोधके देनेमे कुशल, नाना स्वभावसे सहित, एवं प्रीतिंकर मुनिराजके चरितको निरूपण करनेवाली कथा सुनकर सब विद्याधर राजाओंने ठीक-ठीक यह शब्द कहे और लोकोत्तर—सर्वश्रेष्ठ आचारको जाननेवाला विभीषणरूपी सूर्य शोकरूपी अन्धकारसे छूट गया अर्थात् विभीषणका शोक दूर हो गया ॥७१-७२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराण या पद्मायन नामक ग्रन्थमें प्रीतिंकरका उपाख्यान करनेवाला सतहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७७॥



---

१ शोकरूपतिमिरात् ।

अष्टसप्ततितमं पर्व

ततो हलधरोऽवोचत् कर्त्तव्यं किमतः परम् । मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ॥१॥
परलोके गतस्यातो लङ्केशस्योत्तमं वपुः । महानरस्य संस्कारं प्रापयामः सुखैधितम् ॥२॥
तत्राभिनन्दिते वाक्ये विभीषणसमन्वितौ । बलनारायणौ साकं शेषैस्तां ककुभं श्रितौ ॥३॥
यत्र मन्दोदरी शोकविह्वला कुररीसमम् । योषित्सहस्रमध्यस्था विरौति करुणावहम् ॥४॥
अवतीर्य महानागात् सत्वरं बलकेशवौ । मन्दोदरीमुपायातौ साकं खेचरपुङ्गवैः ॥५॥
दृष्ट्वा तौ सुतरां नार्यो रुरुदुर्मुक्तकण्ठकम् । विरुग्णरत्नवलया वसुधापांसुधूसराः ॥६॥
मन्दोदर्या समं सर्वमङ्गनानिवहं बलः । वाग्भिश्चित्राभिरानिन्ये समाश्वासं विचक्षणः ॥७॥
कर्पूरागुरुगोशीर्षचन्दनादिभिरुत्तमैः । संस्कार्य रावणं याताः सर्वे पद्मसरो महत् ॥८॥
उपविश्य सरस्तीरे पद्मेनोक्तं सुचेतसा । कुम्भादयो विमुच्यन्तां सामन्तैः सहिता इति ॥९॥
खेचरेशैस्ततः कैश्चिदुक्तं ते क्रूरमानसाः । हन्यन्तां वैरिणो यद्वन्म्रियन्तां बन्धने स्वयम् ॥१०॥
बलदेवो जगौ भूयः क्षात्रं नेदं विचेष्टितम् । प्रसिद्धा वा न विज्ञाता भवद्भिः किमियं स्थितिः ॥११॥
सुप्तबद्धनतत्रस्तदन्तदष्टतृणादयः । न हन्तव्या इति क्षात्रो धर्मो जगति राजते ॥१२॥
एवमस्त्विति संनद्धास्तानानेतुं महाभटाः । नानायुधधरा जग्मुः स्वाम्यादेशपरायणाः ॥१३॥
इन्द्रजित्कुम्भकर्णश्च मारीचो घनवाहनः । तथा मयमहादैत्यप्रमुखाः खेचरोत्तमाः ॥१४॥
पूरिता निगडैः स्थूलैरमी खणखणायितैः । प्रमादरहितैः शूरैरानीयन्ते समाहितैः ॥१५॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि अब क्या करना चाहिए ? क्योंकि विद्वानोके वैर तो मरण-पर्यन्त ही होते है ॥१॥ अच्छा हो कि हम लोग परलोकको प्राप्त हुए महामानव लकेश्वरके सुखसे बढ़ाये हुए उत्तम शरीरका दाह संस्कार करावे ॥२॥ रामके उक्त वचनकी सबने प्रशंसा की। तब विभीषण सहित राम-लक्ष्मण अन्य सब विद्याधर राजाओंके साथ उस दिशामे पहुँचे जहाँ हजारो स्त्रियोंके बीच बैठी मन्दोदरी शोकसे विह्वल हो कुररीके समान करुण विलाप कर रही थी ॥३–४॥ राम और लक्ष्मण महागजसे उतरकर प्रमुख विद्याधरोके साथ मन्दोदरीके पास गये ॥५॥ जिन्होने रत्नोकी चूड़ियाँ तोड़कर फेक दी थी तथा जो पृथिवीकी धूलिसे धूसर शरीर हो रही थी ऐसी सब स्त्रियाँ राम-लक्ष्मणको देख गला फाड़-फाड़कर अत्यधिक रोने लगी ॥६॥ बुद्धिमान् रामने मन्दोदरीके साथ-साथ समस्त स्त्रियोके समूहको नाना प्रकारके वचनोसे सान्त्वना प्राप्त करायी ॥७॥ तदनन्तर कपूर, अगुरु, गोशीर्ष और चन्दन आदि उत्तम पदार्थोसे रावणका संस्कार कर सब पद्म नामक महासरोवरपर गये ॥८॥ उत्तम चित्तके धारक रामने सरोवरके तीरपर बैठकर कहा कि सब सामन्तोके साथ कुम्भकर्णादि छोड़ दिये जावे ॥९॥ यह सुन कुछ विद्याधर राजाओने कहा कि वे बड़े क्रूर हृदय हैं अतः उन्हें शत्रुओके समान मारा जाये अथवा वे स्वयं ही बन्धनमे पड़े-पड़े मर जावें ॥१०॥ तब रामने कहा कि यह क्षत्रियोकी चेष्टा नही। क्या आप लोग क्षत्रियोकी इस प्रसिद्ध नीतिको नही जानते कि सोते हुए, बन्धनमे बँधे हुए, नम्रीभूत, भयभीत तथा दाँतोमे तृण दबाये हुए आदि योद्धा मारने योग्य नही हैं। यह क्षत्रियोका धर्म जगत्मे सर्वत्र सुशोभित है ॥११–१२॥ तब 'एवमस्तु' कहकर स्वामीकी आज्ञा पालन करनेमे तत्पर, नाना प्रकारके शस्त्रोके धारक महायोद्धा कवचादिसे युक्त हो उन्हे लानेके लिए गये ॥१३॥ तदनन्तर इन्द्रजित्, कुम्भकर्ण, मारीच, मेघवाहन तथा मय महादैत्यको आदि लेकर

विलोक्यानीयमानांस्तान्दिङ्मतङ्गजसंनिभान् । जजल्पुः कपयः स्वैरं संहतिस्थाः परस्परम् ॥१६॥
प्रज्वलन्तीं चितां वीक्ष्य रावणीयां रुषं यदि । प्रयातीन्द्रजितो जातु[1] कुम्भकर्णनृपोऽपि वा ॥१७॥
अनयोरेककस्यापि ततो विकृतिमीयुषः । कः समर्थः पुरः स्थातुं[2] कपिध्वजबले नृपः ॥१८॥
यो यत्रावस्थितस्तस्मात् स्थानादुद्याति नैव सः । अनयोर्हि बलं दृष्टमेतैः संग्राममूर्द्धनि ॥१९॥
भामण्डलेन चात्मीया गदिता भटपुङ्गवाः । यथा नाद्यापि विश्रम्भो विधातव्यो विभीषणे ॥२०॥
कदाचित स्वजनानेतान् प्राप्य निर्धूतबन्धनान् । भ्रातृदुःखानुतप्तस्य जायतेऽस्य विकारिता ॥२१॥
इत्युद्भूतसमाशङ्कैर्देहादिभिरावृताः । नीयन्ते कुम्भकर्णाद्या बलनारायणान्तिकम् ॥२२॥
रागद्वेषविनिर्मुक्ता मनसा मुनितां गताः । धरणीं सौम्यया दृष्ट्या वीक्षमाणाः शुभाननाः ॥२३॥
संसारे सारगन्धोऽपि न कश्चिदिह विद्यते । धर्म एको महाबन्धुः सारः सर्वशरीरिणाम् ॥२४॥
विमोक्षं यदि नामास्मात्[3] प्राप्स्यामो बन्धनाद् वयम् । पारणां पाणिमात्रेण करिष्यामो निरम्बराः ॥२५॥
प्रतिज्ञामेवमारूढा रामस्यान्तिकमाश्रिताः । विभीषणं समाजग्मुः कुम्भकर्णादयो नृपाः ॥२६॥
वृत्ते यथायथं तत्र दुःखसंभाषणेऽगदन् । प्रशान्ताः कुम्भकर्णाद्या बलनारायणाविति ॥२७॥
अहो वः परमं धैर्यं गाम्भीर्यं चेष्टितं बलम् । सुरैरप्यजयो नीतो मृत्युं यद्राक्षसाधिपः[4] ॥२८॥
परं कृतापकारोऽपि मानी निष्ठुरभाषितः । अत्युन्नतगुणः शत्रुः श्लाघनीयो विपश्चिताम् ॥२९॥

अनेक उत्तम विद्याधर जो रामके कटकमे कैद थे तथा खन-खन करनेवाली बड़ी मोटी बेड़ियोंसे जो सहित थे वे प्रमादरहित सावधान चित्तके धारक शूरवीरों द्वारा लाये गये ॥१४-१५॥ दिग्गजोके समान उन सबको लाये जाते देख, समूहके बीच बैठे हुए विद्याधर इच्छानुसार परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे कि यदि कही रावणकी जलती चिताको देखकर इन्द्रजित् अथवा कुम्भकर्ण क्रोधको प्राप्त होता है अथवा इन दोमे-से एक भी विगड़ उठता है तो उसके सामने खड़ा होनेके लिए वानरोकी सेनामे कौन राजा समर्थ है ? ॥१६-१८॥ उस समय जो जहाँ बैठा था उस स्थानसे नही उठा सो ठीक ही है क्योकि ये सब रणके अग्रभागमे उनका बल देख चुके थे ॥१९॥ भामण्डलने अपने प्रधान योद्धाओसे कह दिया कि विभीषणका अब भी विश्वास नही करना चाहिए ॥२०॥ क्योकि कदाचित् बन्धनसे छूटे हुए इन आत्मीय जनोंको पाकर भाईके दुःखसे सन्तप्त रहनेवाले इसके विकार उत्पन्न हो सकता है ॥२१॥ इस प्रकार जिन्हे नाना प्रकारकी शंकाएँ उत्पन्न हो रही थी ऐसे भामण्डल आदिके द्वारा घिरे हुए कुम्भकर्णादि राम-लक्ष्मणके समीप लाये गये ॥२२॥

वे कुम्भकर्णादि सभी पुरुष राग-द्वेषसे रहित हो हृदयसे मुनिपनाको प्राप्त हो चुके थे, सौम्य दृष्टिसे पृथिवीको देखते हुए आ रहे थे, सबके मुख अत्यन्त शुभ-शान्त थे ॥२३॥ वे अपने मनमे यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि इस संसारमे कुछ भी सार नही है एक धर्म ही सार है जो सब प्राणियोका महाबन्धु है। यदि हम इस बन्धनसे छुटकारा प्राप्त करेंगे तो निर्ग्रन्थ साधु हो पाणि मात्रसे ही आहार ग्रहण करेंगे। इस प्रकारकी प्रतिज्ञाको प्राप्त हुए वे सब रामके समीप आये। कुम्भकर्ण आदि राजा विभीषणके भी सम्मुख गये ॥२४-२६॥ तदनन्तर जब दुःखके समयका वार्तालाप धीरे-धीरे समाप्त हो गया तब परम शान्तिको धारण करनेवाले कुम्भकर्णादिने राम-लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा कि अहो ! आप लोगोका धैर्य, गाम्भीर्य, चेष्टा तथा बल आदि सभी उत्कृष्ट है क्योकि जो देवोके द्वारा भी अजेय था ऐसे रावणको आपने मृत्यु प्राप्त करा दी ॥२७-२८॥ अत्यन्त अपकारी, मानी और कटुभाषी होनेपर भी यदि शत्रुमे उत्कृष्ट गुण हैं तो वह विद्वानोका प्रशंसनीय ही होता है ॥२९॥

१ यातु म । २. स्यातुं म. । ३. नामेति सभावनायाम् । ४. मद्राक्षसाधिपः म. ।

परिसान्त्व्य ततश्चक्री वचनैर्हृदयंगमैः । जगाद पूर्ववद्यूयं भोगैस्तिष्ठत संगताः ॥३०॥
गदितं तैरलं भोगैरस्माकं विषदारुणैः । महामोहावहैर्भीमैः सुमहादुःखदायिभिः ॥३१॥
उपाया सन्ति ते नैव यैर्न ते कृतसान्त्वनाः । तथापि भोगसंबन्धं प्रतीयुर्न मनस्विनः ॥३२॥
नारायणे तथालग्ने स्वयं हलधरेऽपि च । दृष्टिर्भोगे पराचीना तेषामासीद्रवाविव ॥३३॥
भिन्नाञ्जनदलच्छाये तस्मिन् सुसरसो जले । अबन्धनैरिमैः साकं स्नाताः सर्वे सगन्धिनि ॥३४॥
राजीवसरसस्तस्मादुत्तीर्यानुक्रमेण च । यथा स्वं निलयं जग्मुः कपयो राक्षसास्तथा ॥३५॥
सरसोऽस्य तटे रम्ये खेचरा बद्धमण्डलाः । केचिच्छूरकथां चक्रुर्विस्मयव्याप्तमानसाः ॥३६॥
ददुः केचिदुपालम्भं दैवस्य क्रूरकर्मणः । मुमुचुः केचिदस्राणि[1] संततानि स्वनोज्झितम् ॥३७॥
आपूर्यमाणचेतस्का गुणैः स्मृतिपथं गतैः । रावणीयैर्जनाः केचिद्रुरुदुर्मुक्तकण्ठकम् ॥३८॥
चित्रतां कर्मणां केचिदवोचन्नतिसंकटाम् । अन्ये संसारकान्तारं निनिन्दुरतिदुस्तरम् ॥३९॥
केचिद्भोगेषु विद्वेषं परमं समुपागताः । राजलक्ष्मीं चलां केचिदमन्यन्त निरर्थकाम् ॥४०॥
गतिरेषैव वीराणामिति केचिद् बभाषिरे । अकार्यगर्हणं केचिच्चक्रुरुत्तमबुद्धयः ॥४१॥
रावणस्य कथां केचिदभजन् गर्वशालिनीम् । केचित्पद्मगुणानूचुः शक्तिं केचिच्च लाक्ष्मणीम् ॥४२॥
केचिद् बलममृष्यन्तो मन्दकम्पितमस्तकाः । सुकृतस्य फलं वीराः शशंसुः स्वच्छचेतसः ॥४३॥
गृहे गृहे तदा सर्वाः क्रियाः प्राप्ताः परिक्षयम् । प्रावर्तन्त कथा एव शिशूनामपि केवलाः ॥४४॥

तदनन्तर लक्ष्मणने मनोहर वचनो द्वारा सान्त्वना देकर कहा कि आप सब पहलेकी तरह भोगोपभोग करते हुए आनन्दसे रहिए ॥३०॥ यह सुन उन्होने कहा कि विषके समान दारुण, महामोहको उत्पन्न करनेवाले, भयकर तथा महादुःख देनेवाले भोगोकी हमे आवश्यकता नही है ॥३१॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक ! उस समय वे उपाय शेष नही रह गये थे जिनसे उन्हे सान्त्वना न दी गयी हो परन्तु फिर भी उन मनस्वी मनुष्योने भोगोका सम्बन्ध स्वीकृत नही किया ॥३२॥ यद्यपि नारायण और बलभद्र स्वयं उस तरह उनके पीछे लगे हुए थे अर्थात् उन्हे भोग स्वीकृत करानेके लिए बार-बार समझा रहे थे तथापि उनकी दृष्टि भोगोसे उस तरह विमुख ही रही जिस तरह कि सूर्यसे लगी दृष्टि अन्धकारसे विमुख रहती है ॥३३॥ मसले हुए अजनके कणोके समान कान्तिवाले उस सरोवरके सुगन्धित जलमे बन्धनमुक्त कुम्भकर्णादिके साथ सबने स्नान किया ॥३४॥ तदनन्तर उस पद्मसरोवरसे निकलकर सब वानर और राक्षस यथायोग्य अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३५॥ कितने ही विद्याधर इस सरोवरके मनोहर तटपर मण्डल बाँधकर बैठ गये और आश्चर्यसे चकितचित्त होते हुए शूरवीरोकी कथा करने लगे ॥३६॥ कितने ही विद्याधर क्रूरकर्मा दैवके लिए उपालम्भ देने लगे और कितने ही शब्द-रहित – चुपचाप अत्यधिक अश्रु छोड़ने लगे ॥३७॥ स्मृतिमे आये हुए रावणके गुणोसे जिनके चित्त भर रहे थे ऐसे कितने ही लोग गला फाड़-फाडकर रो रहे थे ॥३८॥ कितने ही लोग कर्मोकी अत्यन्त संकटपूर्ण विचित्रताका निरूपण कर रहे थे और कितने ही अत्यन्त दुस्तर संसाररूपी अटवीकी निन्दा कर रहे थे ॥३९॥ कितने ही लोग भोगोंमे परम विद्वेषको प्राप्त होते हुए राज्य-लक्ष्मीको चंचल एवं निरर्थक मान रहे थे ॥४०॥ कोई यह कह रहे थे कि वीरोकी ऐसी ही गति होती है और कोई उत्तम बुद्धिके धारक अकार्य–खोटे कार्यकी निन्दा कर रहे थे ॥४१॥ कोई रावणकी गर्व-भरी कथा कर रहे थे, कोई रामके गुण गा रहे थे और कोई लक्ष्मणकी शक्तिकी चर्चा कर रहे थे ॥४२॥ जिनका मस्तक धीरे-धीरे हिल रहा था तथा जिनका चित्त अत्यन्त स्वच्छ था ऐसे कितने ही वीर रामकी प्रशसा न कर पुण्यके फलकी प्रशसा कर रहे थे ॥४३॥ उस समय घर-घरमे सब कार्य समाप्त हो गये थे केवल बालकोमे कथाएँ चल रही थी ॥४४॥ उस

१. दश्रूणि ।

लङ्कायां सर्वलोकस्य बाष्पदुर्दिनकारिणः । शोकेनेव व्यलीयन्त महता कुट्टिमान्यपि ॥४५॥
शपभूतव्यपोहेन जलात्मकमिवाभवत् । नयनेभ्यः प्रवृत्तेन वारिणा भुवनं तदा ॥४६॥
हृदयेषु पदं चक्रुस्तापा. परमदु.सहाः । नेत्रवारिप्रवाहेभ्यो भीता इव समन्ततः ॥४७॥
धिक्धिक्कष्टमहो हा ही किमिदं जातमद्भुतम् । एवं निर्जग्मुरालापा जनेभ्यो बाष्पसंगताः ॥४८॥
भूमिशय्यासु मौनेन केचिन्नियमिताननाः । निष्कम्पविग्रहास्तस्थुः पुस्तकर्मगता इव ॥४९॥
बभञ्जु. केचिदस्त्राणि चिक्षिपुर्भूषणानि च । स्मर्णावदनाम्भोजदृष्टिक्षेपमुपागताः ॥५०॥
उष्णैर्निश्वासवातूलैर्दीर्घितैः कलुषैरलम् । असुखादिव तद्दु.खं प्ररोहान्विरलेतरान् ॥५१॥
केचित् संसारभावेभ्यो निर्वेद परमागताः । चक्रुर्दैगम्बरीं दीक्षां मानसे जिनभाषिताम् ॥५२॥
अथ तस्य दिनस्यान्ते महासंघसमन्वित. । [1]अप्रमेयबलः ख्यातो लङ्कां प्राप्तो मुनीश्वरः ॥५३॥
रावणे जीवति प्राप्तो यदि स्यात् स महामुनि. । लक्ष्मणेन सम प्रीतिर्जाता स्यात्तस्य पुष्कला ॥५४॥
तिष्ठन्ति मुनयो यस्मिन् देशे परमलब्धयः । तथा केवलिनस्तत्र योजनानां शतद्वयम् ॥५५॥
पृथिवी स्वर्गसंकाशा जायते निरुपद्रवा । वैरानुबन्धमुक्ताश्च भवन्ति निकटे नृपाः ॥५६॥
अमूर्तत्वं यथा व्योम्नश्चलत्वमनिलस्य च । महामुनेर्निसर्गेण लोकस्याह्लादनं तथा ॥५७॥
अनेकाद्भुतसंपन्नैर्मुनिभिः स समावृतः । यथागतस्तथा वक्तुं केन श्रेणिक शक्यते ॥५८॥
सुवर्णकुम्भसंकाशः[2] संयतर्द्धया स संगतः । आगत्यावासितो धीमानुद्याने कुसुमायुधे ॥५९॥

समय लंकामे जब कि सब लोग दुर्दिनकी भाँति लगातार अश्रुओकी वर्षा कर रहे थे तब ऐसा जान पड़ता था मानो वहाँके फर्श भी बहुत भारी शोकके कारण पिघल गये हो ॥४५॥ उस समय लंकामे जहाँ देखो वहाँ नेत्रोसे पानी ही पानी झर रहा था इससे ऐसा जान पड़ता था मानो संसार अन्य तीन भूतोंको दूर कर केवल जलरूप ही हो गया था ॥४६॥ सब ओर बहनेवाले नेत्र-जलके प्रवाहोसे भयभीत होकर ही मानो अत्यन्त दुःसह सन्तापोंने हृदयोमे स्थान जमा रखा था ॥४७॥ धिक्कार हो, धिक्कार हो, हाय-हाय बड़े कष्टकी बात है, अहो हा-ही यह क्या अद्‌भुत कार्य हो गया, उस समय लोगोके मुखसे अश्रुओके साथ-साथ ऐसे ही शब्द निकल रहे थे ॥४८॥ कितने ही लोग मौनसे मुँह बन्द कर पृथ्वीरूपी शय्यापर निश्चल शरीर होकर इस प्रकार बैठे थे मानो मिट्टीके पुतले ही हों ॥४९॥ कितने ही लोगोंने शस्त्र तोड़ डाले, आभूषण फेक दिये और स्त्रियोके मुख-कमलसे दृष्टि हटा ली ॥५०॥ कितने ही लोगोंके मुखसे गरम लम्बे और कलुषित श्वासके बघरूले निकल रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उनका दु.ख अविरल अंकुर ही छोड रहा हो ॥५१॥ कितने ही लोग संसारसे परम निर्वेदको प्राप्त हो मनमें जिन-कथित दिगम्बर दीक्षाको धारण कर रहे थे ॥५२॥

अथानन्तर उस दिनके अन्तिम पहरमे अनन्तवीर्य नामक मुनिराज महासंघके साथ लंका नगरीमे आये ॥५३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यदि रावणके जीवित रहते वे महामुनि लंकामे आये होते तो लक्ष्मणके साथ रावणकी घनी प्रीति होती ॥५४॥ क्योंकि जिस देशमे ऋद्धि-धारी मुनिराज और केवली विद्यमान रहते है वहाँ दो सौ योजन तककी पृथ्वी स्वर्गके सदृश सर्व-प्रकारके उपद्रवोंसे रहित होती है और उनके निकट रहनेवाले राजा निर्वैर हो जाते हैं ॥५५–५६॥ जिस प्रकार आकाशमे अमूर्तिकपना और वायुमे चंचलता स्वभावसे हैं उसी प्रकार महामुनिमें लोगोंको आह्लादित करनेकी क्षमता स्वभावसे ही होती है ॥५७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अनेक आश्चर्योसे युक्त मुनियोंसे घिरे हुए वे अनन्तवीर्य मुनिराज लंकामे जिस प्रकार आये थे उसका कथन कौन कर सकता है ? ॥५८॥ जो अनेक ऋद्धियोंसे सहित होनेके

---

१. अनन्तवीर्य । २. संकाशसंयतर्द्धया म. ।

षट्पञ्चाशत्सहस्रैस्तु खेचरैर्मुनिभिः परैः । रेजे तत्र समासीनो ग्रहैर्विधुरिवावृतः ॥६०॥
शुक्लध्यानप्रवृत्तस्य सद्विविक्ते शिलातले । तस्यामेव समुत्पन्नं शर्वर्यां तस्य केवलम् ॥६१॥
तस्यातिशयसंबन्धं कीर्त्यमानं मनोहरम् । शृणु श्रेणिक ! पापस्य नोदनं परमाद्भुतम् ॥६२॥

अथ[1] मुनिवृषभं तथानन्तसत्त्वं मृगेन्द्रासने सन्निविष्टं भुवोऽधोनिवासाः मरुन्नागविद्युत्सुपर्णादयो विंशतेरर्धभेदा. । तथा षोडशार्द्धप्रकारा. स्मृता व्यन्तराः किन्नराद्याः सहस्रांशुचन्द्रग्रहाद्याश्च पञ्चप्रकारान्विता ज्योतिराख्या, द्विरष्टप्रकाराश्च कल्पालया. ख्यातसौधर्मनामादयो धातकीखण्डवास्ये समुद्भूतकालोत्सवे स्फीतपूजां सुमेरौ. शिरस्युत्तमे देवदेवं जिनेन्द्रं शुभै रत्नधात्विन्द्रकुम्भैः सुभक्त्याभिषिच्य प्रणुत्य, प्रगीर्भिः पुनर्मातुरङ्के सुखं स्थापयित्वा प्रभुं बालकं बालकर्मप्रमुक्तं प्रवन्द्य प्रहृष्टा विधायोचितं वस्तुकृत्यं परावर्तमाना', समालोक्य तस्याभिजग्मुः समीपं, प्रभावानुकृष्टाः प्रवरविमानानि केचित्समानानि रत्नोरुदामानि दीप्तांशुबिम्बप्रकाशानि देवाः समारूढवन्तोऽत्र केचिच्च शङ्खप्रतीकाशसद्राजहंसाश्रिता केचिदुद्दामदानप्रसेकातिसद्गन्धसंबन्धसंभ्रान्तगुञ्जत्षडङ्घ्रि-प्रहृष्टोरुचक्रातिनीलप्रभाजालकोच्छूवासिगण्डस्थलानेकपाधीश - पृष्ठाधिरूढास्तथा बालचन्द्राभदंष्ट्राकरालाननव्याघ्रसिंहादिवाहाधिरूढा मुनेरन्तिकं प्रस्थिताश्चारुचित्ताः

कारण सुवर्णकलशके समान जान पड़ते थे, ऐसे वे मुनि लंकामे आकर कुसुमायुध नामक उद्यानमें ठहरे ॥५९॥ वे छप्पन हजार आकाशगामी उत्तम मुनियोके साथ उस उद्यानमे वैठे हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोसे घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो ॥६०॥ निर्मल शिलातलपर शुक्लध्यानमे आरूढ हुए उन मुनिराजको उसी रात्रिमे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥६१॥ हे श्रेणिक ! मै पापको दूर करनेवाला परम आश्चर्यसे युक्त उनके मनोहर अतिशयोका वर्णन करता हूँ सो सुन ॥६२॥

अथानन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होते ही मुनिराज वीर्यान्तिराय कर्मका क्षय हो जानेसे अनन्तवलके स्वामी हो गये तथा देवनिर्मित सिंहासनपर आरूढ़ हुए । पृथ्वीके नीचे पाताललोकमें निवास करनेवाले वायुकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार तथा सुवर्णकुमार आदि दश प्रकारके भवनवासी, किन्नरोको आदि लेकर आठ प्रकारके व्यन्तर, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह आदि पाँच प्रकारके ज्योतिषी और सौधर्म आदि सोलह प्रकारके कल्पवासी इस तरह चारो निकायके देव धातकीखण्डद्वीपमे उत्पन्न हुए किसी तीर्थंकरके जन्मकल्याणक सम्बन्धी उत्सवमे गये हुए थे, वहाँ विशाल पूजा तथा सुमेरु पर्वतके उत्तम शिखरपर विराजमान देवाधिदेव जिनेन्द्र बालकका शुभ रत्नमयी एवं सुवर्णमयी कलशो द्वारा अभिषेक कर उन्होने उत्तम शब्दोसे उनकी स्तुति की । तदनन्तर वहाँसे लौटकर जिनबालकको माताकी गोदमे सुखसे विराजमान किया । जो बालक अवस्था होनेपर भी बालको जैसी चपलतासे रहित थे ऐसे जिन-बालकको नमस्कार कर उन देवोने हर्षित हो, मेरुसे लौटनेके वाद तीर्थंकरके घरपर होनेवाले ताण्डवनृत्य आदि कार्य यथायोग्य रीतिसे किये । तदनन्तर वहाँसे लौटकर लंकामे अनन्तवीर्य मुनिका केवलज्ञान महोत्सव देख उनके समीप आये । मुनिराजके प्रभावसे खिंचे हुए उन देवोमे कितने ही देव रत्नोकी बड़ी-बड़ी मालाओसे युक्त, सूर्यबिम्बके समान प्रकाशमान एवं योग्य प्रमाणसे सहित उत्तम विमानोमे आरूढ़ थे, कितने ही शखके समान सफेद उत्तम राजहंसोपर सवार थे, कितने ही उन हाथियोंकी पीठपर आरूढ़ थे, जिनके कि गण्डस्थल अत्यधिक मदसम्बन्धी श्रेष्ठ सुगन्धिके सम्बन्धसे गूँजते हुए भ्रमरसमूहकी श्यामकान्तिके कारण कुछ बढे हुए-से दिखाई देते थे और कितने ही बालचन्द्रमाके समान दाढोसे भयकर मुखवाले व्याघ्र—सिंह आदि वाहनोपर आरूढ़ थे । वे सब देव प्रसन्न चित्तके धारक हो उन मुनिराजके समीप आ रहे थे । उस समय जोर-जोरसे बजनेवाले पटह,

१. वृत्तगन्धिगद्ययुक्तोऽयं भाग । अत्र सर्वत्र भागे भुजङ्गप्रयातच्छन्दस आभासो दृश्यते ।

पटुपटहमृदङ्गगम्भीरभेरीनिनादैः क्वणद्वंशवीणासुमुन्दैर्झणज्झर्झरीकैः, स्वनद्भूरिशङ्खैर्महामेघसंघातनिर्घोषमन्द्रध्वनि[1]दुन्दुभिव्रातरम्यैर्मनोहारिदेवाङ्गनागीतकान्तैर्नभोमण्डलं व्याप्तमासीत्तदा प्रतिभयतमसि प्रसचक्रमालोक्य तत्रार्द्धरात्रे विमानस्थरत्नादिजातं निशम्य ध्वनिं दुन्दुभीनां च [2]तारसमुद्विग्नचित्तोऽभवद्राघवो लक्ष्मणश्च क्षण तद् विदित्वा यथावस्तुनस्तुष्टिमेतौ। उदधिरिव कपिध्वजानां बलं क्षुभ्यते राक्षसानां तथैवोर्जितं भक्तितस्ते च विद्याधराः पद्मनारायणाद्याश्च सन्मानवाः सद्द्विपेन्द्राधिरूढास्तथा भानुकर्णेन्द्रजिन्मेघवाहादयो गन्तुमभ्युद्यताः रथवरतुरगान् समारुह्य शुभ्रातपत्रध्वजप्रौढहंसावलीशोभनप्रोल्लसच्चामराटोपयुक्ता नभश्छादयन्तस्समीपीवभूवुः। प्रसूनायुधोद्यानमिन्द्रा इवोदारसंमोदगन्धर्वयक्षाप्सरःसंघसंसेविता वाहनेभ्योऽवतीर्याधिनिर्मुक्तके[3]त्वातपत्रादियोगाः समागत्य योगीन्द्रमभ्यर्च्य पादारविन्दद्वयं संविधाय प्रणामं प्रभक्त्या परिष्टुत्य सत्स्तोत्रमन्त्रप्रगाढैर्वचोभिर्यथार्हं क्षितौ संनिविश्य स्थिता धर्मशुश्रूषया युक्तचित्ता. सुखं शुश्रुवुर्धर्ममेवं मुनीन्द्रास्यतो निर्गतम्। गतय [4]इह चतस्रो भवे यासु नानामहादुःखचक्राधिरूढाः सदा देहिनः पर्यटन्त्यष्टकर्मावनद्धाः शुभं चाशुभं च स्वयं कर्म कुर्वन्ति रौद्रार्त्तयुक्ताः महामोहनीयेन तस्मिन्नरा बुद्धियुक्ताः[5] कृता ये सदा प्राणिघातैरसत्यैः परद्रव्यहारैः परस्त्रीपरिष्वङ्गरागैः प्रमाणप्रहीणार्थसंगैर्महालोभसंवर्द्धितैर्यान्ति योगं कुकर्माभिनुन्नास्तके मृत्युमाप्य प्रपद्यन्त्यधस्तान्महीरत्न-

---

मृदंग, भेरियोंके गम्भीर नादसे, वजती हुई वांसुरियो और वीणाओंकी उत्तम झनकारसे, झन-झन करनेवाली झांझोंसे, शब्द करनेवाले अनेक शंखोंसे, महा मेघमण्डलकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त दुन्दुभि-समूहके रमणीय शब्दोंसे और मनको हरण करनेवाली देवांगनाओंके सुन्दर संगीतसे आकाशमण्डल व्याप्त हो गया था। उस अर्धरात्रिके समय सहसा अन्धकार विलीन हो गया और विमानोमे लगे हुए रत्नो आदिका प्रकाश फैल गया, उसे देख तथा दुन्दुभियोंकी गम्भीर गर्जना सुनकर राम-लक्ष्मण पहले तो कुछ उद्विग्नचित्त हुए फिर क्षण-एकमे ही यथार्थ समाचार जानकर सन्तोषको प्राप्त हुए। वानरों और राक्षसोकी सेनामें ऐसी हलचल मच गयी मानो समुद्र ही लहराने लगा हो। तदनन्तर भक्तिसे प्रेरित विद्याधर, राम-लक्ष्मण आदि सत्पुरुष और भानुकर्ण, इन्द्रजित्, मेघवाहन आदि राक्षस, कोई उत्तम हाथियोंपर आरूढ़ होकर और कोई रथ तथा उत्तम घोड़ेपर सवार हो केवली भगवान्के समीप चले। उस समय वे अपने सफेद छत्रो, ध्वजाओ और तरुण हंसावलीके समान शोभायमान चमरोंसे युक्त थे तथा आकाशको आच्छादित करते हुए जा रहे थे।

जिस प्रकार अत्यधिक हर्षसे युक्त गन्धर्व, यक्ष और अप्सराओंके समूहसे सेवित इन्द्र अपने कामोद्यानमे प्रवेश करता है, उसी प्रकार सब लोगोंने अपने-अपने वाहनोसे उतरकर तथा ध्वजा-छत्रादिके संयोगका त्याग कर लंकाके उस कुसुमायुध उद्यानमे प्रवेश किया। समीपमें जाकर सबने मुनिराजकी पूजा की, उनके चरणकमल-युगलमे प्रणाम किया और उत्तम स्तोत्र तथा मन्त्रोंसे परिपूर्ण वचनोंसे भक्तिपूर्वक स्तुति की। तदनन्तर धर्मश्रवण करनेकी इच्छासे सब यथायोग्य पृथिवीपर बैठ गये और सावधान चित्त होकर मुनिराजके मुखसे निकले हुए धर्मका इस प्रकार श्रवण करने लगे—

उन्होने कहा कि इस संसारमे नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवके भेदसे चार गतियां हैं जिनमे नाना प्रकारके महादुःखरूपी चक्रपर चढ़े हुए समस्त प्राणी निरन्तर घूमते रहते हैं तथा अष्टकर्मोंसे बद्ध हो स्वयं शुभ-अशुभ कर्म करते हैं। सदा आर्त्त-रौद्रध्यानसे युक्त रहते हैं तथा मोहनीय कर्म उन्हें बुद्धिरहित कर देता है। ये प्राणी सदा प्राणिघात, असत्य भाषण, परद्रव्यापहरण, परस्त्रीसमालिंगन और अपरिमित धनका समागम, महालोभ कषायके साथ वृद्धिको प्राप्त हुए

---

१. ध्वनि म.। २. तारां म.। ३. केत्वादिपत्र म. ज.। ४. इव म.। ५. युक्ता. म. ज.।

प्रभाशर्करावालुकापङ्कधूमप्रभाध्वान्तमातिप्रकृष्टान्धकाराभिधास्ताश्च नित्यं महाध्वान्तयुक्ताः सुदुर्गन्धबीभत्सदुःप्रेक्ष्यदुःस्पर्शरूपा महादारुणास्तप्तलोहोपमक्ष्मातलाः क्रन्दनाक्रोशनत्रासनैराकुला यत्र ते नारका. पापबन्धेन दुष्कर्मणा सर्वकालं महातीव्रदुःखामनेकार्णवौपम्यबन्धस्थितिं प्राप्नुवन्तीदमेवं विदित्वा बुधाः पापबन्धादलिद्विष्टचित्ता रमध्वं सुधर्मे व्रतनियमविनाकृताश्च स्वभावार्जवाद्यैर्गुणैरञ्चिताः केचिदायान्ति मानुष्यमन्ये तपोभिर्विचित्रैः सुराणां निवासं ततश्च्युताः प्राप्य भूयो मनुष्यत्वमुत्सृष्टधर्माभिलाषा जना ये भवन्त्येतके श्रेयसा विप्रमुक्ताः पुनर्जन्ममृत्युद्रुमोदारकान्तारमध्ये भ्रमन्त्युग्रदुःखाहताशाः। अथातोऽपरे भव्यधर्मेस्थिताः प्राणिनो देवदेवस्य वाग्भिर्भृशं भाविताः सिद्धिमार्गानुसारेण शीलेन सत्येन शौचेन सम्यक्तपोदर्शनज्ञानचारित्रयोगेन चात्युत्कटाः येन ये यावदष्टप्रकारस्य कुर्वन्ति निर्नाशनं कर्मणस्तावदुत्तुङ्गभूत्यन्विता. स्वर्भवानां भवन्त्युत्तमाः स्वामिनस्तत्र चाम्भोधितुल्यान् प्रभूताननेकप्रभेदान् समासाद्य सौख्य ततः प्रच्युता धर्मशेषस्य लब्ध्वा फलं स्फीतभोगान् श्रियं प्राप्य बोधिं परित्यज्य राज्यादिकं जैनलिङ्गं समादाय कृत्वा तपोऽत्यन्तघोरं समुत्पाद्य सद्ध्यानिनः केवलज्ञानमायुःक्षये कृत्स्नकर्मप्रमुक्ता भवन्तस्त्रिलोकाग्रमारुह्य सिद्धा अनन्तं शिवं सौख्यमात्मस्वभावं परिप्राप्नुवन्त्युत्तमम्।

उपजातिवृत्तम्

अथेन्द्रजिद्वारिदवाहनाभ्यां पृष्टः स्वपूर्वं जननं मुनीन्द्रः।
उवाच कौशाम्ब्यभिधानपुर्यां भ्रातृद्वयं निःस्वकुलीनमासीत् ॥६२॥

इन पाँच पापोके साथ संसर्गको प्राप्त होते है। अन्तमे खोटे कर्मोसे प्रेरित हुए मानव मृत्युको प्राप्त हो नीचे पाताललोकमे जन्म लेते हैं। नीचेकी पृथिवीके नाम इस प्रकार है—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा। ये पृथिवियाँ निरन्तर महाअन्धकारसे युक्त, अत्यन्त दुर्गन्धित, घृणित, दुर्दृश्य एवं दुःखदायी स्पर्शरूप है। महादारुण हैं, वहाँकी पृथिवी तपे हुए लोहेके समान है। सबकी सब तीव्र आक्रन्दन, आक्रोशन और भयसे आकुल हैं। जिन पृथिवियोमे नारकी जीव पापसे बँधे हुए दुष्कर्मके कारण सदा महातीव्र दुःख अनेक सागरोकी स्थिति पर्यन्त प्राप्त होते रहते हैं। ऐसा जानकर हे विद्वज्जन ! पापबन्धसे चित्तको द्वेषमुक्त कर उत्तम धर्ममे रमण करो। जो प्राणी व्रत-नियम आदिसे तो रहित है परन्तु स्वाभाविक सरलता आदि गुणोसे सहित है ऐसे कितने ही प्राणी मनुष्य गतिको प्राप्त होते हैं और कितने ही नाना प्रकारके तपश्चरण कर देवगतिको प्राप्त होते हैं। वहांसे च्युत हो पुन मनुष्य पर्याय पाकर जो धर्मकी अभिलाषा छोड़ देते हैं वे कल्याणसे रहित हो पुनः उग्र दुःखसे दुःखी होते हुए जन्म-मरणरूपी वृक्षोसे युक्त विशाल संसार वनमे भ्रमण करते रहते हैं।

अथानन्तर जो भव्य प्राणी देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्के वचनोसे अत्यन्त प्रभावित हो मोक्षमार्गके अनुरूप शील, सत्य, शौच, सम्यक् तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्रके युक्त होते हुए अष्ट कर्मोके नाशका प्रयत्न करते है, वे उत्कृष्ट वैभवसे युक्त हो देवोके उत्तम स्वामी होते है और वहाँ अनेक सागर पर्यन्त नाना प्रकारका सुख प्राप्त करते रहते हैं। तदनन्तर वहांसे च्युत हो अवशिष्ट धर्मके फल स्वरूप बहुत भारी भोग और लक्ष्मीको प्राप्त होते है और अन्तमे रत्नत्रयको प्राप्त कर राज्यादि वैभवका त्याग कर जैनलिंग—निर्ग्रन्थ मुद्रा धारण करते हैं तथा अत्यन्त तीव्र तपश्चरण कर शुक्लध्यानके धारी हो केवलज्ञान प्राप्त करते है और आयुका क्षय होनेपर समस्त कर्मोसे रहित होते हुए तीन लोकके अग्र भागपर आरूढ़ हो सिद्ध बनते हैं एवं अन्तरहित आत्मस्वभावमय आह्लाद-रूप अनन्त सुख प्राप्त करते हैं।

अथानन्तर इन्द्रजित् और मेघवाहनने अनन्तवीर्य मुनिराजसे अपने पूर्वभव पूछे। इसके

आद्योऽत्र नाम्ना 'प्रथमो' द्वितीयः प्रकीर्त्तितः 'पश्चिम' नामधेयः ।
अथान्यदा तां भवदत्तनामा पुरीं प्रयातो विहरन् भदन्तः ॥६४॥
श्रुत्वास्य पार्श्वे विनयेन धर्मं तौ भ्रातरौ क्षुल्लकरूपमेतौ ।
मुनिं च तं द्रष्टुमितो नगर्यास्तस्याः पतिः सद्युतिरिन्दुनामा[1] ॥६५॥
उपेक्षयैवाऽऽदरकार्यमुक्तः स्थितः समालोक्य मुनिर्मनीषी ।
मिथ्या यतो दर्शनमस्य राज्ञो विज्ञातमेतेन तदानुपायम् ॥६६॥
श्रेष्ठीति नन्दीति जिनेन्द्रभक्तस्ततः पुरो द्रष्टुमितो भदन्तम् ।
तस्यादरो राजसमस्य भूत्या कृतोऽनगारेण यथाभिधानम् ॥६७॥
तमादृतं वीक्ष्य मुनीश्वरेण निदानमाबध्यत पश्चिमेन ।
भवाम्यहं नन्दिसुतो यथेति धर्मं तदर्थं च कुधीरकार्षीत् ॥६८॥
स बोध्यमानोऽप्यनिवृत्तचित्तो मृतो निदानग्रहदूषितात्मा ।
सुतोऽभवन्नन्दिन इन्दुमुख्यां सुयोषिति श्लाघ्यगुणान्वितायाम् ॥६९॥
गर्भस्थ[2] एवात्र महीपतीनां स्थानेषु लिङ्गानि बहून्यभूवन् ।
एतस्य राज्योद्भवसूचनानि प्राकारपातप्रभृतीनि सद्यः ॥७०॥
ज्ञात्वा नृपास्तं विविधैर्निमित्तैर्महानरं भाविनमुग्रसूतिम् ।
जन्मप्रभृत्यादरसंप्रयुक्तैर्द्रव्यैरसेवन्त सुदूतनीतैः ॥७१॥
रतेरसौ वर्द्धनमादधानः समस्तलोकस्य यथार्थशब्दः ।
अभून्नरेशो रतिवर्द्धनाख्यो यस्येन्दुरप्यागतवान् प्रणामम् ॥७२॥

उत्तरमे उन्होने कहा कि कौशाम्बी नगरीमे दरिद्रकुलमें उत्पन्न हुए दो भाई रहते थे। पहलेका नाम 'प्रथम' था और दूसरा 'पश्चिम' कहलाता था। किसी एक दिन विहार करते हुए भवदत्त मुनि उस नगरीमे आये ॥६३–६४॥ उनके पास धर्म श्रवण कर दोनों भाई क्षुल्लक हो गये। किसी दिन उस नगरीका कान्तिमान इन्दु नामका राजा उन मुनिराजके दर्शन करने आया, सो उसे देख मुनिराज उपेक्षा भावसे बैठे रहे। उन्होने राजाके प्रति कुछ भी आदर भाव प्रकट नही किया। इसका कारण यह था कि बुद्धिमान् मुनिराजने यह जान लिया था कि राजाका मिथ्या दर्शन अनुपाय है—दूर नही किया जा सकता ॥६५–६६॥ तदनन्तर राजाके चले जानेके बाद नगरका नन्दी नामक जिनेन्द्र भक्त सेठ मुनिके दर्शन करनेके लिए आया। वह सेठ विभूति मे राजाके ही समान था और मुनिने उसके प्रति यथायोग्य सम्मान प्रकट किया ॥६७॥ नन्दी सेठको मुनिराजके द्वारा आदृत देख पश्चिम नामक क्षुल्लकने निदान बाँधा कि मै नन्दी सेठके पुत्र होऊँ। यथार्थमे वह दुर्बुद्धि इसके लिए ही धर्म कर रहा था ॥६८॥ यद्यपि उसे बहुत समझाया गया तथापि उसका चित्त उस ओरसे नही हटा, अन्तमे वह निदान बन्धसे दूषित चित्त होता हुआ मरा और मरकर नन्दी सेठकी प्रशंसनीय गुणोसे युक्त इन्दुमुखी नामक स्त्रीके पुत्र हुआ ॥६९॥ जब यह गर्भमे स्थित था तभी इसकी राज्य प्राप्तिकी सूचना देनेवाले, कोटका गिरना आदि बहुतसे चिह्न राजाओंके स्थानोमे होने लगे थे ॥७०॥ नाना प्रकारके निमित्तोसे यह जानकर कि यह आगे चलकर महापुरुष होगा। राजा लोग जन्मसे ही लेकर उत्तम दूतोके द्वारा आदरपूर्वक भेजे हुए पदार्थोसे उसकी सेवा करने लगे थे ॥७१॥ वह सब लोगोकी रति अर्थात् प्रीतिकी वृद्धि करता था, इसलिए सार्थक नामको धारण करनेवाला रतिवर्द्धन नामका राजा हुआ। ऐसा राजा कि कौशाम्बीका अधिपति इन्दु भी जिसे प्रणाम करता था ॥७२॥

---

१. रिन्द्रनामा म.। २. गर्भस्य म.।

एवं स तावत्सुमहाविभूत्या मत्तोऽभवद् यः पुनरस्य पूर्वम् ।
ज्यायानभूद्धर्ममसौ विधाय मृत्वा गतः कल्पनिवासिभावम् ॥७३॥
स पूर्वमेव प्रतिबोधकार्ये कनीयसा याचित उद्धदेवः ।
समाश्रितः क्षुल्लकरूपमेतं प्रबोधमानेतुमभूत्कृताश. ॥७४॥
गृहं च तस्य प्रविशन्नियुक्तैर्द्वारे नरैर्दूरनिराकृतः सन् ।
रूपं श्रितोऽसौ रतिवर्द्धनस्य देवः क्षणेनोपनतं यथावत् ॥७५॥
कृत्वा च तं तन्नगरप्रभावितोन्मत्तकाकारमरण्यमारात् ।
निर्वास्य गत्वा [1]गदति स्म का ते वार्त्ताधुना मत्परिभूतिभाजः ॥७६॥
जगौ च पूर्वं जननं यथावत्ततः प्रबोधं समुपागतोऽसौ ।
सम्यक्त्वयुक्तो रतिवर्द्धनोऽभून्नन्द्यादयश्चापि नृपा विशेषात् ॥७७॥
प्रव्रज्य राजा प्रथमामरस्य गतः सकाशं कृतकालधर्मः ।
ततश्च्युतौ तौ विजयेऽभिजातौ उर्वार्वसाख्यौ नगरे नरेन्द्रात् ॥७८॥
सहोदरौ तौ पुनरेव धर्मं विधाय जैनं त्रिदशावभूताम् ।
ततश्च्युताविन्द्रजिदब्दवाहौ जातौ भवन्ताविह खेचरेशौ ॥७९॥
या नन्दिनश्चेन्दुमुखी द्वितीया भवान्तरान्तर्हितजन्मिका सा ।
मन्दोदरी स्नेहवशेन सेयं मातामवद्वा जिनधर्मसक्ता ॥८०॥

आर्याच्छन्दः

श्रुत्वा भवमिति विविधं त्यक्त्वा संसारवस्तुनि प्रीतिम् ।
पुरुसंवेगसमेतौ जगृहतुरुग्रामिमौ दीक्षाम् ॥८१॥

इस प्रकार प्रथम और पश्चिम इन दो भाइयोंमे पश्चिम तो महाविभूति पाकर मत्त हो गया उसके मदमे भूल गया और पूर्वभवमे जो उसका बड़ा भाई प्रथम था वह मरकर स्वर्गमे देव पर्यायको प्राप्त हुआ ॥७३॥ पश्चिमने प्रथमसे उस पर्यायमे याचना की थी कि यदि तुम देवता होओ और मै मनुष्य होऊँ तो तुम मुझे सम्बोधन करना। इस याचनाको स्मृतिमे रखता हुआ प्रथमका जीव देव रतिवर्धनको सम्बोधनके लिए क्षुल्लकका रूप धरकर उसके घरमे प्रवेश कर रहा था कि द्वारपर नियुक्त पुरुषो द्वारा उसने उसे दूर हटा दिया। तदनन्तर उस देवने क्षणभरमे रतिवर्धनका रूप रख लिया और असली रतिवर्धनको पागल जैसा बनाकर जंगलमे दूर खदेड़ दिया। तदनन्तर उसके पास जाकर बोला कि तुमने मेरा अनादर किया था, अब कहो तुम्हारा क्या हाल है ? ॥७४–७६॥ इतना कहकर उस देवने रतिवर्धनके लिए अपने पूर्व जन्मका यथार्थ निरूपण किया जिससे वह शीघ्र ही प्रबोधको प्राप्त हो सम्यग्दृष्टि हो गया। साथ ही नन्दीसेठ आदि भी सम्यग्दृष्टि हो गये ॥७७॥ तदनन्तर राजा रतिवर्धन दीक्षा धारण कर कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त होता हुआ बडे भाई प्रथमका जीव जहाँ देव था वही जाकर उत्पन्न हुआ। तदनन्तर दोनो देव वहाँसे च्युत हो विजय नामक नगरमे वहाँके राजाके उर्व और उर्वस् नामक पुत्र हुए ॥७८॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र प्रणीत धर्म धारण कर दोनो भाई फिरसे देव हुए और वहाँसे च्युत हो आप दोनो यहाँ इन्द्रजित् और मेघवाहन नामक विद्याधराधिपति हुए हो ॥७९॥ और जो नन्दी सेठकी इन्दुमुखी नामकी भार्या थी वह भवान्तरमे एक जन्मका अन्तर ले स्नेहके कारण जिनधर्ममे लीन तुम्हारी माता मन्दोदरी हुई है ॥८०॥

इस प्रकार अपने अनेक भव सुन संसार सम्बन्धी वस्तुओमे प्रीति छोड़ परम संवेगसे युक्त

---

१. गदितस्य म, गदितस्स ख.. । २. मत्परिभूतभाजः म. ।

कुम्भश्रुतिमारीचावन्येऽत्र महाविशालसंवेगाः ।
अपगतकषायरागाः श्रामण्येऽवस्थिताः परमे ॥८२॥
तृणमिव खेचरविभवं विहाय विधिना सुधर्मचरणस्थाः ।
बहुविधलब्धिसमेताः पर्यटुरिमे महीं मुनयः ॥८३॥
मुनिसुव्रततीर्थकृतस्तीर्थे तपसा परेण संबद्धाः ।
ज्ञेयास्ते वरमुनयो वन्द्या [1]भव्यासुवाहानाम् ॥८४॥
पतिपुत्रविरहदुःखज्वलनेन विदीपिता सती जाता ।
मन्दोदरी नितान्तं विह्वलहृदया महाशोका ॥८५॥
मूर्च्छामेत्य विबोधं प्राप्य पुनः कुररकामिनी करुणम् ।
कुरुते स्म समाक्रन्दं पतिता दुःखाम्बुधावुग्रे ॥८६॥
हा पुत्रेन्द्रजितेदं व्यवसितमीदृक् कथं त्वया कृत्यम् ।
हा मेघवाहन कथं जननी नापेक्षिता दीना ॥८७॥
युक्तमिदं किं भवतोरनपेक्ष्य यदुग्रदुःखसंतप्ताम् ।
मातरमेवद्विहितं किंचित्कार्यं सुदुःखेन ॥८८॥
विरहितविद्याविभवौ मुक्ततनू क्षितितले कथं परुषे ।
स्थातास्थो मे वत्सौ देवोपमभोगदुर्ललितौ ॥८९॥
हा तात कृतं किमिदं भवतापि विमुच्य भोगमुत्तमं रूपम् ।
एकपदे कथय कथं [2]त्यक्तः स्नेहस्त्वया त्वपत्यासक्तः ॥९०॥
जनको भर्त्ता पुत्रः स्त्रीणामेतावदेव रक्षानिमित्तम् ।
मुक्ता सर्वैरेभिः कं शरणं संश्रयामि पुण्यविहीना ॥९१॥

हुए इन्द्रजित् और मेघनादने कठिन दीक्षा धारण कर ली। इनके सिवाय जो कुम्भकर्ण तथा मारीच आदि अन्य विद्याधर थे वे भी अत्यधिक संवेगसे युक्त हो कषाय तथा रागभाव छोड़कर उत्तम मुनिपदमे स्थित हो गये ॥८१-८२॥ जिन्होने विद्याधरोके विभवको तृणके समान छोड़ दिया था, जो विधिपूर्वक उत्तम धर्मका आचरण करते थे, तथा जो नाना प्रकारकी ऋद्धियोसे सहित थे, ऐसे ये मुनिराज पृथिवीमे सर्वत्र भ्रमण करने लगे ॥८३॥ मुनिसुव्रत तीर्थंकरके तीर्थमे वे परम तपसे युक्त तथा भव्य जीवोके वन्दना करने योग्य उत्तम मुनि हुए हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥८४॥

जो पति और पुत्रोके विरहजन्य दुःखाग्निसे जल रही थी ऐसी मन्दोदरी महाशोकसे युक्त हो अत्यन्त विह्वल हृदय हो गयी ॥८५॥ दुःखरूपी भयंकर समुद्रमे पड़ी मन्दोदरी पहले तो मूछित हो गयी फिर सचेत हो कुररीके समान करुण विलाप करने लगी ॥८६॥ वह कहने लगी कि हाय पुत्र इन्द्रजित्! तूने यह ऐसा कार्य क्यो किया? हाय मेघवाहन! तूने दुःखिनी माताकी अपेक्षा क्यो नहीं की? ॥८७॥ तीव्र दुःखसे सन्तप्त माताकी उपेक्षा कर अतिशय दुःखसे दुःखी हो तुम लोगोने यह जो कुछ कार्य किया है सो क्या ऐसा करना तुम्हें उचित था? ॥८८॥ हे पुत्रो! तुम देवतुल्य भोगोसे लड़ाये हुए हो। अब विद्याके विभवसे रहित हो, शरीरसे स्नेह छोड़ कठोर पृथ्वीतलपर कैसे पड़ोगे? ॥८९॥ तदनन्तर मन्दोदरी मयको लक्ष्य कर बोली कि हाय पिता! तुमने भी उत्तम भोग छोड़कर यह क्या किया? कहो तुमने अपनी सन्तानका स्नेह एक साथ कैसे छोड दिया? ॥९०॥ पिता, भर्ता और पुत्र इतने ही तो स्त्रियोकी रक्षाके निमित्त हैं,

---

१ भव्यप्राणिनाम् इत्यर्थ, भव्या. सुवाहानाम् म ज. ख. । २. त्यक्तस्नेहस् म. ज. ।

परिदेवनमिति करुणं भजमाना वाष्पदुर्दिनं जनयन्ती।
शशिकान्तयार्ययासौ प्रतिबोधं वाग्भिरुत्तमाभिरानीता ॥९२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

मूढे ! रोदिषि किं त्वनादिसमये संसारचक्रे त्वया
तिर्यङ्मानुषभूरियोनिनिवहे संभूतिमायातया।
नानाबन्धुवियोगविह्वलधिया भूयः कृत रोदनम्
किं दुःखं पुनरभ्युपैषि पदवीं स्वास्थ्यं भजस्वाधुना ॥९३॥
संसारप्रकृतिप्रबोधनपरैर्वाक्यैर्मनोहारिभि—
स्तस्याः प्राप्य विबोधमुत्तमगुणा संवेगमुग्रं श्रिता।
त्यक्ताशेषगृहस्थवेषरचना मन्दोदरी संयता
जातात्यन्तविशुद्धधर्मनिरता शुक्लैकवस्त्रावृता ॥९४॥
लब्ध्वा बोधिमनुत्तमां शशिनखाप्यार्यामिमामाश्रिता
संशुद्धश्रमणा व्रतोरुविभवा जाता नितान्तोत्कटा।
चत्वारिंशदथाष्टकं सुमनसां ज्ञेयं सहस्राणि हि
स्त्रीणां संयममाश्रितानि परमं तुल्यानि भासां रवेः ॥९५॥

[1]इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे इन्द्रजितादिनिष्क्रमणाभिधाने नामाष्टसप्ततितम पर्व ॥७८॥



सो मै पापिनी इन सबके द्वारा छोड़ी गयी हूँ, अब किसकी शरणमे जाऊँ? ॥९१॥ इस तरह जो करुण विलापको प्राप्त होती हुई आँसुओंकी अविरल वर्षा कर रही थी ऐसी मन्दोदरीको शशिकान्ता नामक आर्यिकाने उत्तम वचनोके द्वारा प्रतिबोध प्राप्त कराया ॥९२॥ आर्यिकाने समझाया कि अरी मूर्खे ! व्यर्थ ही क्यों रो रही है ? इस अनादिकालीन संसारचक्रमे भ्रमण करती हुई तू तिर्यंच और मनुष्योकी नाना योनियोमे उत्पन्न हुई है, वहाँ तूने नाना बन्धुजनोके वियोगसे विह्वल वुद्धि हो अत्यधिक रुदन किया है। अब फिर क्यो दुःखको प्राप्त हो रही है, आत्मपदमे लीन हो स्वस्थताको प्राप्त हो ॥९३॥

तदनन्तर जो संसार-दशाका निरूपण करनेमे तत्पर शशिकान्ता आर्यिकाके मनोहारी वचनोंसे प्रबोधको प्राप्त हो उत्कृष्ट संवेगको प्राप्त हुई थी ऐसी उत्तम गुणोकी धारक मन्दोदरी गृहस्थ सम्बन्धी समस्त वेष रचनाको छोड अत्यन्त विशुद्ध धर्ममे लीन होती हुई एक सफेद वस्त्रसे आवृत आर्यिका हो गयी ॥९४॥ रावणकी बहन चन्द्रनखा भी इन्ही आर्याके पास उत्तम रत्नत्रयको पाकर व्रतरूपी विशाल सम्पदाको धारण करनेवाली उत्तम साध्वी हुई। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिस दिन मन्दोदरी आदिने दीक्षा ली उस दिन उत्तम हृदयको धारण करनेवाली एवं सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान अड़तालीस हजार स्त्रियोने सयम धारण किया ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें इन्द्रजित् आदिकी दीक्षाका कथन करनेवाला अठहत्तरवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७८॥



१. इति पद्मायने इन्द्रजितादि ज.।

एकोनाशीतितमं पर्व

ततश्च पद्मनाभस्य लक्ष्मणस्य च पार्थिव । कर्त्तव्या सुमहाभूतिः कथा लङ्काप्रवेशने ॥१॥
महाविमानसंघातैर्घण्टाभिश्च सुदन्तिनाम् । परमैरश्ववृन्दैश्च रथैश्च भवनोपमैः ॥२॥
निकुञ्जप्रतिस्वानबधिरीकृतदिङ्मुखैः । वादित्रनिःस्वनै रम्यैः शङ्खस्वनविमिश्रितैः ॥३॥
विद्याधरमहाचक्रसमेतौ परमद्युती । बलनारायणौ लङ्कां प्रविष्टाविन्द्रसंनिभौ ॥४॥
दृष्ट्वा तौ परमं हर्षं जनता समुपागता । मेने जन्मान्तरोपात्तधर्मस्य विपुलं फलम् ॥५॥
तस्मिन् राजपथे प्राप्ते बलदेवे सचक्रिणि । व्यापाराः पौरलोकस्य प्रयाताः क्वापि पूर्वकाः ॥६॥
विकचाक्षैर्मुखैः स्त्रीणां जालमार्गास्तिरोहिताः । सनीलोत्पलराजीवैरिव रेजुर्निरन्तरम् ॥७॥
महाकौतुकयुक्तानामाकुलानां निरीक्षणे । तासां मुखेषु निश्चेरुरिति वाचो मनोहराः ॥८॥
सखि पश्यैष रामोऽसौ राजा दशरथात्मजः । राजत्युत्तमया योऽयं रत्नराशिरिव श्रिया ॥९॥
संपूर्णचन्द्रसंकाशः पुण्डरीकायतेक्षणः । अपूर्वकर्मणां सर्गः कोऽपि स्तुत्यधिकाकृतिः ॥१०॥
इमं या लभते कन्या धन्या रमणमुत्तमम् । कीर्तिस्तम्भस्तया लोके स्थापितोऽयं स्वरूपया ॥११॥
परमश्चरितो धर्मश्चिरं जन्मान्तरे यया । ईदृशं लभते नाथं सा सुनारी कुतोऽपरा ॥१२॥
सहायतां निशास्वस्य या नारी प्रतिपद्यते । सैवैका योषितां मूर्ध्नि वर्त्तते परया तु किम् ॥१३॥
स्वर्गतः प्रच्युता नूनं कल्याणी जनकात्मजा । इमं रमयति श्लाघ्यं पतिमिन्द्रं शचीव या ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! अब राम और लक्ष्मणका महावैभवके साथ लंकामे प्रवेश हुआ, सो उसकी कथा करनी चाहिए ॥१॥ महाविमानोंके समूह, उत्तम हाथियोके घण्टा, उत्कृष्ट घोड़ोके समूह, मन्दिर तुल्य रथ, लतागृहोमें गूँजनेवाली प्रतिध्वनिसे जिन्होने दिशाएँ बहरी कर दी थी तथा जो शंखके शब्दोसे मिले थे ऐसे वादित्रोंके मनोहर शब्दोसे तथा विद्याधरोके महाचक्रसे सहित, उत्कृष्ट कान्तिके धारक, इन्द्र समान राम और लक्ष्मणने लंकामे प्रवेश किया ॥२-४॥ उन्हे देख जनता परम हर्षको प्राप्त हुई और जन्मान्तरमे संचित धर्मका महाफल मानती हुई ॥५॥ जब चक्रवर्ती—लक्ष्मणके साथ बलभद्र—श्रीराम राजपथमे आये तब नगरवासी जनोके पूर्व व्यापार मानो कही चले गये अर्थात् वे अन्य सब कार्य छोड इन्हें देखने लगे ॥६॥ जिनके नेत्र फूल रहे थे, ऐसे स्त्रियोके मुखोंसे आच्छादित झरोखे निरन्तर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो नीलकमल और लाल कमलोंसे ही युक्त हों ॥७॥ जो राम-लक्ष्मणके देखनेमे आकुल हो महाकौतुकसे युक्त थी ऐसी उन स्त्रियोंके मुखसे इस प्रकारके मनोहर वचन निकलने लगे ॥८॥ कोई कह रही थी कि सखि ! देख, ये दशरथके पुत्र राजा रामचन्द्र हैं जो अपनी उत्तम शोभासे रत्नराशिके समान सुशोभित हो रहे है ॥९॥ जो पूर्ण चन्द्रमाके समान हैं, जिनके नेत्र पुण्डरीकके समान विशाल है तथा जिनकी आकृति स्तुतिसे अधिक है ऐसे ये राम मानो अपूर्व कर्मोकी कोई अद्भुत सृष्टि ही हैं ॥१०॥ जो कन्या इस उत्तम पतिको प्राप्त होती है वही धन्या है तथा उसी सुन्दरीने लोकमे अपनी कीर्तिका स्तम्भ स्थापित किया है ॥११॥ जिसने जन्मान्तरमे चिरकाल तक परम धर्मका आचरण किया है वही ऐसे पतिको प्राप्त होती है। उस स्त्रीसे बढ़कर और दूसरी उत्तम स्त्री कौन होगी ? ॥१२॥ जो स्त्री रात्रिमे इसकी सहायताको प्राप्त होती है वही एक मानो स्त्रियोंके मस्तकपर विद्यमान है अन्य स्त्रीसे क्या प्रयोजन है ? ॥१३॥ कल्याणवती जानकी निश्चित ही स्वर्गसे च्युत हुई है जो इन्द्राणीके समान इस प्रशंसनीय पतिको रमण कराती है ॥१४॥

असुरेन्द्रसमो येन रावणो रणमस्तके । साधितो लक्ष्मणः सोऽयं चक्रपाणिर्विराजते ॥१५॥
भिन्नाञ्जनदलच्छाया कान्तिरस्य वलत्विषा[1] । भिन्ना प्रयागतीर्थस्य धत्ते शोभां विसारिणीम् ॥१६॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विराधितनरेश्वरः । नययोगेन येनेयं विपुला श्रीरवाप्यते ॥१७॥
असौ किष्किन्धराजोऽयं सुग्रीवः सत्त्वसंगतः । परमं रामदेवेन प्रेम यत्र नियोजितम् ॥१८॥
अयं स जानकीभ्राता प्रभामण्डलमण्डितः । इन्दुना खेचरेन्द्रेण यो नीतः पदमीदृशम् ॥१९॥
वीरोऽङ्गदकुमारोऽयममौ दुर्ललितः परम् । यस्तदा राक्षसेन्द्रस्य विघ्नं कर्त्तुं समुद्यतः ॥२०॥
पश्य पश्येममुत्तुङ्गं स्यन्दनं सखि सुन्दरम् । वातेरितमहाध्मातघनाभा यत्र दन्तिनः ॥२१॥
रणाङ्गणे विपक्षाणां यस्य वानरलक्ष्मणा[2] । ध्वजयष्टिरलं भीष्मा श्रीशैलोऽयं स मारुतिः ॥२२॥
एवं वाग्भिर्विचित्राभिः पूज्यमाना महौजसः । राजमार्गं व्यगाहन्त पद्मनाभादयः सुखम् ॥२३॥
अथान्तिकस्थितामुक्त्वा पद्मश्चामरधारिणीम् । पप्रच्छ सादरं प्रेमरसार्द्रहृदयः परम् ॥२४॥
या सा मद्विरहे दुःखं परिप्राप्ता सुदुःसहम् । भामण्डलस्वसा क्वासाविह देशेऽवतिष्ठते ॥२५॥
ततोऽसौ रत्नवलयप्रभाजटिलबाहुका । करशाखां प्रसार्योचे स्वामितोषणतत्परा ॥२६॥
अट्टहासान्विमुञ्चन्तमिमं निर्झरवारिभिः । पुष्पप्रकीर्णनामानं राजन् पश्यति यं गिरिम् ॥२७॥
नन्दनप्रतिमेऽमुष्मिन्नुद्याने जनकात्मजा । कीर्तिशीलपरीवारा रमणी तव तिष्ठति ॥२८॥
तस्या अपि समीपस्था सखी सुप्रियकारिणी । अङ्गुलीमूर्मिकारम्यां[3] प्रसार्यैवमभाषत ॥२९॥

कोई कह रही थी कि जिसने रणके अग्रभागमे असुरेन्द्रके समान रावणको जीता है ऐसे ये चक्र हाथमे लिये लक्ष्मण सुशोभित हो रहे हैं ॥१५॥ श्रीरामकी धवल कान्तिसे मिली तथा मसले हुए अंजन कणकी समानता रखनेवाली इनकी श्यामल कान्ति प्रयाग तीर्थकी विस्तृत शोभा धारण कर रही है ॥१६॥ कोई कह रही थी कि यह चन्द्रोदरका पुत्र राजा विराधित है जिसने नीतिके संयोगसे यह विपुल लक्ष्मी प्राप्त की है ॥१७॥ कोई कह रही थी कि यह किष्किन्धका राजा बलशाली सुग्रीव है जिसपर श्रीरामने अपना परम प्रेम स्थापित किया है ॥१८॥ कोई कह रही थी कि यह जानकीका भाई भामण्डल है जो चन्द्रगति विद्याधरके द्वारा ऐसे पदको प्राप्त हुआ है ॥१९॥ कोई कह रही थी कि यह अत्यन्त लड़ाया हुआ वीर अंगद कुमार है जो उस समय रावणके विघ्न करनेके लिए उद्यत हुआ था ॥२०॥ कोई कह रही थी कि हे सखि! देख-देख इस ऊँचे सुन्दर रथको देख, जिसमे वायुसे कम्पित गरजते मेघके समान हाथी जुते है ॥२१॥ कोई कह रही थी कि जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा रणांगणमे शत्रुओंके लिए अत्यन्त भय उपजानेवाली थी ऐसा यह पवनजयका पुत्र श्रीशैल—हनूमान है ॥२२॥ इस तरह नाना प्रकारके वचनोसे जिनकी पूजा हो रही थी तथा जो उत्तम प्रतापसे युक्त थे ऐसे राम आदिने सुखसे राजमार्गमें प्रवेश किया ॥२३॥

अथानन्तर प्रेमरूपी रससे जिनका हृदय आर्द्र हो रहा था ऐसे श्रीरामने अपने समीपमे स्थित चमर ढोलनेवाली स्त्रीसे परम आदरके साथ पूछा कि हमारे विरहमे अत्यन्त दुःसह दुःखको प्राप्त हुई है ऐसी भामण्डलकी बहन यहाँ किस स्थानमे विद्यमान है? ॥२४–२५॥ तदनन्तर रत्नमयी चूड़ियोकी प्रभासे जिसकी भुजाएँ व्याप्त थी एवं जो स्वामीको सन्तुष्ट करनेमे तत्पर थी ऐसी चमरग्राहिणी स्त्री अंगुली पसारकर बोली कि यह जो सामने निर्झरनोके जलसे अट्टहासको छोड़ते हुए पुष्प-प्रकीर्णक नामा पर्वतको देख रहे हो इसीके नन्दन वनके समान उद्यानमे कीर्ति और शील रूपी परिवारसे सहित आपकी प्रिया विद्यमान है ॥२६–२८॥

उधर सीताके समीपमे भी जो सुप्रियकारिणी सखी थी वह अँगूठीसे सुशोभित अंगुली

---

१ वलत्विष म. । २ लक्ष्मणम् म । ३ मूर्मिका रम्या म. ।

आतपत्रमिदं यस्य चन्द्रमण्डलसंनिभम् । चन्द्रादित्यप्रतीकाशे धत्ते यश्चैव कुण्डले ॥३०॥
शरन्निर्झरसंकाशो हारो यस्य विराजते । सोऽयं मनोहरो देवि देवि महाभूतिर्नरोत्तमः ॥३१॥
परमं त्वद्वियोगेन सुवक्त्रे खेदमुद्वहन् । दिग्गजेन्द्र इवायाति पद्मः पद्मनिरीक्षणे ॥३२॥
मुखारविन्दमालोक्य प्राणनाथस्य जानकी । चिरात्स्वप्नमिव प्राप्तं मेने भूयो विषादिनी ॥३३॥
उत्तीर्य[1] द्विरदाधीशात्पद्मनाभः ससंभ्रमः । प्रमोदमुद्वहन्सीतां ससार विकचेक्षणः ॥३४॥
घनवृन्दादिवोत्तीर्य चन्द्रवल्लाङ्गलायुधः । रोहिण्या इव वैदेह्यास्तुष्टिं चक्रे समाव्रजन् ॥३५॥
प्रत्यासन्नत्वमायातं ज्ञात्वा नाथं ससंभ्रमा[2] । मृगीवदाकुला सीता समुत्तस्थौ महाधृतिः ॥३६॥
भूरेणुधूसरीभूतकेशीं मलिनदेहिकाम् । कालनिर्गलितच्छायबन्धूकसदृशाधराम् ॥३७॥
स्वभावेनैव तन्वङ्गीं विरहेण विशेषतः । तथापि किंचिदुच्छ्वासं दर्शनेन समागताम् ॥३८॥
आलिङ्गतीमिव स्निग्धैर्मयूखैः करजोद्गतैः । स्नपयन्तीमिवोद्वेलविलोचनमरीचिभिः ॥३९॥
लिम्पन्तीमिव लावण्यसंपदा क्षणवृद्धया । वीजयन्तीमिवोच्छ्वासैर्हर्षनिर्भर[3]निर्गतैः ॥४०॥
पृथुलारोहवच्छ्रोणीं नेत्रविश्राममूमिकाम् । पाणिपल्लवसौन्दर्यजितश्रीपाणिपङ्कजाम् ॥४१॥
सौभाग्यरत्नसंभूतिधारिणीं धर्मरक्षिताम् । संपूर्णचन्द्रवदनां कलङ्कपरिवर्जिताम् ॥४२॥
सौदामिनीसदृच्छायामतिधीरत्वयोगिनीम् । मुखचन्द्रान्तरोद्भूतस्फीतनेत्रसरोरुहाम् ॥४३॥
कलुषत्वविनिर्मुक्तां समुन्नतपयोधराम् । चापयष्टिमनङ्गस्य वक्रतापरिवर्जिताम् ॥४४॥

पसारकर इस प्रकार बोली कि जिनके ऊपर यह चन्द्रमण्डलके समान छत्र फिर रहा है, जो चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशमान कुण्डलोंको धारण कर रहे है तथा जिनके वक्षःस्थलमे शरदृऋतुके निर्झरके समान हार शोभा दे रहा है, हे कमललोचने देवि ! वही ये महावैभवके धारी नरोत्तम श्रीराम तुम्हारे वियोगसे परम खेदको धारण करते हुए दिग्गजेन्द्रके समान आ रहे है ॥२९–३२॥ अत्यधिक विवादसे युक्त सीताने चिरकाल वाद प्राणनाथका मुखकमल देख ऐसा माना, मानो स्वप्न ही प्राप्त हुआ हो ॥३३॥ जिनके नेत्र विकसित हो रहे थे ऐसे राम शीघ्र ही गजराजसे उतरकर हर्ष धारण करते हुए सीताके समीप चले ॥३४॥ जिस प्रकार मेघमण्डल से उतरकर आता हुआ चन्द्रमा रोहिणीको सन्तोप उत्पन्न करता है उसी प्रकार हाथीसे उतरकर आते हुए श्रीरामने सीताको सन्तोष उत्पन्न किया ॥३५॥ तदनन्तर रामको निकट आया देख महा सन्तोपको धारण करनेवाली सीता सम्भ्रमके साथ मृगीके समान आकुल होती हुई उठकर खड़ी हो गयी ॥३६॥

अथानन्तर जिसके केश पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थे, जिसका शरीर मलिन था, जिसके ओठ मुरझाये हुए वन्धूकके फूलके समान निष्प्रभ थे, जो स्वभावसे ही दुबली थी और उस समय विरहके कारण और भी अधिक दुवली हो गयी थी, यद्यपि दुबली थी तथापि पतिके दर्शनसे जो कुछ-कुछ उल्लासको धारण कर रही थी, जो नखोसे उत्पन्न हुई सचिक्कण किरणोसे मानो आलिगन कर रही थी, खिले हुए नेत्रोकी किरणोंसे मानो अभिषेक कर रही थी, क्षण-क्षणमे बढ़ती हुई लावण्यरूप सम्पत्तिके द्वारा मानो लिप्त कर रही थी और हर्षके भारसे निकले हुए उच्छ्वासो से मानो पंखा ही झल रही थी, जिसके नितम्ब स्थूल थे, जो नेत्रोंके विश्राम करनेकी भूमि थी, जिसने कर-किसलयके सौन्दर्यसे लक्ष्मीके हस्त-कमलको जीत लिया था, जो सौभाग्यरूपी रत्न-सम्पदाको धारण कर रही थी, धर्मने ही जिसकी रक्षा की थी, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, अत्यन्त धैर्यगुणसे सहित थी, जिसके मुखरूपी चन्द्रमाके भीतर विशाल नेत्ररूपी कमल उत्पन्न हुए थे, जो कलुषतासे रहित थी, जिसके स्तन अत्यन्त उन्नत थे, और जो कामदेवकी मानो कुटिलतासे

१. उत्तीर्ण म । २ ससंभ्रमात् म । ३ निर्मद- म. ।

आयान्तीमन्तिकं किंचिद्वैदेहीमापरा[1]जितः । विलोक्य निरुपाख्यानं भावं कमपि संगतः ॥४५॥
विनयेन समासाद्य रमणं रतिसुन्दरी । वाष्पाकुलेक्षणा तस्थौ पुरः संगमनाकुला ॥४६॥
शचीव संगता शक्रं रतिर्वा कुसुमायुधम् । जिनधर्ममहिंसा नु सुभद्रा भरतेश्वरम् ॥४७॥
चिरस्यालोक्य तां पद्मः सगमं नूतनं विदन् । मनोरथशतैर्लब्धां फलभारप्रणामिभिः ॥४८॥
हृदयेन वहन् कम्पं चिरासंगस्वभावजम् । महाद्युतिधरः कान्तः संभ्रान्ततरलेक्षण. ॥४९॥
केयूरदष्टमूलाभ्यां भुजाभ्यां क्षणमात्रतः । सजातपीवरत्वाभ्यामालिलिङ्ग रसाधिकम् ॥५०॥
तामालिङ्गन्विलीनो नु मग्नो नु सुखसागरे । हृदयं संप्रविष्टो नु पुनर्विरहतो भयात् ॥५१॥
प्रियकण्ठसमासक्तबाहुपाशा सुमानसा । कल्पपादपसंसक्तहेमवल्लीव सा बभौ ॥५२॥
उद्भूतपुलकस्यास्य संगमेनातिसौख्यतः । मिथुनस्योपमां प्राप्त तदेव मिथुनं परम् ॥५३॥
दृष्ट्वा सुविहितं सीतारामदेवसमागमम् । तमम्बरगता देवा मुमुचुः कुसुमाञ्जलिम् ॥५४॥
गन्धोदकं च संगुञ्जद्भ्रान्तभ्रमरभीरुकम् । विमुच्य मेघपृष्ठस्था' समुर्जुर्भारतीरिति ॥५५॥
अहो निरुपमं धैर्यं सीतायाः साधुचेतसः । अहो गाम्भीर्यमक्षोभमहो शीलमनोज्ञता ॥५६॥
अहो नु[2] व्रतनैष्कम्प्यमहो सत्त्वं समुन्नतम् । मनसापि यया नेष्टो रावणः शुद्धवृत्तया ॥५७॥
संभ्रान्तो लक्ष्मणस्तावद् वैदेह्याश्चरणद्वयम् । अभिवाद्य पुरस्तस्थौ विनयानतविग्रहः ॥५८॥

रहित—सीधी धनुषयष्टि हो ऐसी सीताको कुछ समीप आती देख श्रीराम किसी अनिर्वचनीय भावको प्राप्त हुए ॥३७–४५॥ रतिके समान सुन्दरी सीता विनयपूर्वक पतिके समीप जाकर मिलनेकी इच्छासे आकुल होती हुई सामने खड़ी हो गयी। उस समय उसके नेत्र हर्षके अश्रुओसे व्याप्त हो रहे थे ॥४६॥ उस समय रामके समीप खड़ी सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो इन्द्रके समीप इन्द्राणी ही आयी हो, कामके समीप मानो रति ही आयी हो, जिन धर्मके समीप मानो अहिंसा ही आयी हो और भरत चक्रवर्तीके समीप मानो सुभद्रा ही आयी हो ॥४७॥ जो फलके भारसे नम्रीभूत हो रहे थे ऐसे सैकड़ो मनोरथोसे प्राप्त सीताको चिरकाल बाद देखकर रामने ऐसा समझा मानो नवीन समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥४८॥ अथानन्तर जो चिरकाल बाद होनेवाले समागमके स्वभावसे उत्पन्न हुए कम्पनको हृदयमे धारण कर रहे थे, जो महादीप्तिके धारक थे, सुन्दर थे और जिनके चचल नेत्र घूम रहे थे ऐसे श्रीरामने अपनी उन भुजाओसे रसनिमग्न हो सीताका आलिगन किया, जिनके कि मूल भाग बाजूबन्दोसे अलंकृत थे तथा क्षणमात्रमे ही जो स्थूल हो गयी थी ॥४९–५०॥ सीताका आलिगन करते हुए राम क्या विलीन हो गये थे, या सुखरूपी सागरमें निमग्न हो गये थे या पुनः विरहके भयसे मानो हृदयमे प्रविष्ट हो गये थे ॥५१॥ पतिके गलेमे जिसके भुजपाश पड़े थे, ऐसी प्रसन्नचित्तकी धारक सीता उस समय कल्पवृक्षसे लिपटी सुवर्णलताके समान सुशोभित हो रही थी ॥५२॥ समागमके कारण बहुत भारी सुखसे जिसे रोमांच उठ आये थे ऐसे इस दम्पतीकी उपमा उस समय उसी दम्पतीको प्राप्त थी ॥५३॥ सीता और श्रीरामदेवका सुख-समागम देख आकाशमे स्थित देवोने उनपर पुष्पाजलियाँ छोड़ी ॥५४॥ मेघोके ऊपर स्थित देवोने गुजारके साथ घूमते हुए भ्रमरोको भय देनेवाला गन्धोदक बरसाकर निम्नलिखित वचन कहे ॥५५॥ वे कहने लगे कि अहो! पवित्र चित्तकी धारक सीताका धैर्य अनुपम है। अहो! इसका गाम्भीर्य क्षोभरहित है, अहो! इसका शीलव्रत कितना मनोज्ञ है? अहो! इसकी व्रतसम्बन्धी दृढ़ता कैसी अद्भुत है? अहो इसका धैर्य कितना उन्नत है कि शुद्ध आचारको धारण करनेवाली इसने रावणको मनसे भी नही चाहा ॥५६–५७॥

तदनन्तर जो हड़बड़ाये हुए थे और विनयसे जिनका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे

१. रामः। २. अहोणुव्रतनैष्कम्प्य -ख. ज.।

पुरंदरसमच्छायं दृष्ट्वा चक्रधरं तदा । अस्रान्वितेक्षणा साध्वी जानकी परिषस्वजे ॥५९॥
उवाच च यथा भद्र गदितं श्रमणोत्तमैः । महाज्ञानधरैः प्राप्तं पदमुच्चैस्तथा त्वया ॥६०॥
स त्वं चक्राङ्कराज्यस्य भाजनत्वमुपागतः । न हि निर्ग्रन्थसंभूतं वचनं जायतेऽन्यथा ॥६१॥
एषोऽसौ बलदेवत्वं तव ज्येष्ठः समागतः । विरहानलमग्नाया येन मे जनिता कृपा ॥६२॥
उडुनाथांशुविशदद्युतिस्तावदुपाययौ । स्वसुः समीपधरणीं श्रीभामण्डलमण्डितः ॥६३॥
दृष्ट्वा तं मुदितं सीता सौदर्यस्नेहनिर्भरा । रणप्रत्यागतं वीरं विनीतं परिषस्वजे ॥६४॥
सुग्रीवो वायुतनयो नलो नीलोऽङ्गदस्तथा[1] । विराधितोऽथ चन्द्राभः सुषेणो जाम्बवो बली ॥६५॥
जीमूतशल्यदेवाद्यास्तथा परमखेचराः । संश्राव्य निजनामानि मूर्ध्ना कृत्वाभिवादनम् ॥६६॥
विलेपनानि चारूणि वस्त्राण्याभरणानि च । पारिजातादिजातानि माल्यानि सुरभीणि च ॥६७॥
सीताचरणराजीवयुगलान्तिकभूतले । अतिष्ठिपन् सुवर्णादिपात्रस्थानि प्रमोदिनः ॥६८॥

उपजातिवृत्तम्

ऊचुश्च देवि त्वमुदारभावा सर्वत्र लोके प्रथितप्रभावा ।
श्रिया महत्या गुणसंपदा च प्राप्ता पदं तुङ्गतमं मनोज्ञम् ॥६९॥
देवस्तुताचारविभूतिधानी प्रीताधुना मङ्गलभूतदेहा ।
जीया[2] जयश्रीर्बलदेवयुक्ता प्रभारवेर्यद्वदुदात्तलीला ॥७०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतासमागमाभिधानं नामैकोनाशीतितमं पर्व ॥७९॥

लक्ष्मण सीताके चरण युगलको नमस्कार कर सामने खड़े हो गये ॥५८॥ उस समय इन्द्रके समान कान्तिके धारक चक्रधरको देख साध्वी सीताके नेत्रोमे वात्सल्यके अश्रु निकल आये और उसने बड़े स्नेहसे उनका आलिंगन किया ॥५९॥ साथ ही उसने कहा कि हे भद्र ! महाज्ञानके धारक मुनियोने जैसा कहा था वैसा ही तुमने उच्च पद प्राप्त किया है ॥६०॥ अब तुम चक्रचिह्नित राज्य—नारायण पदकी पात्रताको प्राप्त हुए हो । सच है कि निर्ग्रन्थ मुनियोसे उत्पन्न वचन कभी अन्यथा नही होते ॥६१॥ यह तुम्हारे बड़े भाई बलदेव पदको प्राप्त हुए हैं जिन्होने विरहाग्निमें डूबी हुई मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है ॥६२॥ इतनेमें ही चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिको धारण करनेवाला भामण्डल बहनकी समीपवर्ती भूमिमे आया ॥६३॥ प्रसन्नतासे भरे, रणसे लौटे उस विजयी वीरको देख, भाईके स्नेहसे सीताने उसका आलिंगन किया ॥६४॥ सुग्रीव, हनूमान्, नल, नील, अंगद, विराधित, चन्द्राभ, सुषेण, बलवान् जाम्बव, जीमूत और शल्यदेव आदि उत्तमोत्तम विद्याधरोने अपने-अपने नाम सुनाकर सीताको शिरसे अभिवादन किया ॥६५–६६॥ उन सबने हर्षसे युक्त हो सीताके चरणयुगलकी समीपवर्ती भूमिमे सुवर्णादिके पात्रमे स्थित सुन्दर विलेपन, वस्त्र, आभरण और पारिजात आदि वृक्षोंकी सुगन्धित मालाएँ भेट की ॥६७–६८॥ तदनन्तर सबने कहा कि हे देवि ! तुम उत्कृष्ट भावको धारण करनेवाली हो, तुम्हारा प्रभाव समस्त लोकमे प्रसिद्ध है तथा तुम बहुत भारी लक्ष्मी और गुणरूप सम्पदाके द्वारा अत्यन्त श्रेष्ठ मनोहर पदको प्राप्त हुई हो ॥६९॥ तुम देवोके द्वारा स्तुत आचाररूपी विभूतिको धारण करनेवाली हो, प्रसन्न हो, तुम्हारा शरीर मंगलरूप है, तुम विजय-लक्ष्मीस्वरूप हो, उत्कृष्ट लीलाको धारक हो, ऐसी हे देवि ! तुम सूर्यकी प्रभाके समान बलदेवके साथ चिरकाल तक जयवन्त रहो ॥७०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें सीताके समागमका वर्णन करनेवाला उन्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥७९॥

---

१. नीलाङ्गदस्तथा म. । २. येय म., जेयं क. ।

अशीतितमं पर्व

ततस्तां संगमादित्यप्रबोधितमुखाम्बुजाम् । पाणावादाय हस्तेन समुत्तस्थौ हलायुधः ॥१॥
ऐरावतोपमं नागमारोप्य स्ववशानुगम् । आरोपयन् महातेजा. समग्रां कान्तिमुद्वहन् ॥२॥
चलद्घण्टाभिरामस्य नागमेघस्य पृष्ठत. । जानकीरोहिणीयुक्तः शुशुभे पद्मचन्द्रमाः ॥३॥
समाहितमति. प्रीतिं दधानोऽत्यर्थमुन्नताम् । पूर्यमाणो जनौघेन महद्धर्या परितो वृतः ॥४॥
महद्भिरनुयातेन खेचरैरनुरागिभिः । अन्वितश्चक्रहस्तेन लक्ष्मणेनोत्तमत्विषा ॥५॥
रावणस्य विमानाभं भवनं भुवनद्युते.[1] । पद्मनाभः परिप्राप्तः प्रविष्टश्च विचक्षणः ॥६॥
अपश्यच्च गृहस्यास्य मध्ये परमसुन्दरम् । भवनं शान्तिनाथस्य युक्तविस्तारतुङ्गतम् ॥७॥
हेमस्तम्भसहस्रेण रचितं विकटद्युति । नानारत्नसमाकीर्णभित्तिभागं मनोरमम् ॥८॥
विदेहमध्यदेशस्थमन्दराकारशोभितम् । क्षीरोदफेनपटलच्छाय[2] नयनबन्धनम् ॥९॥
क्वणत्किङ्किणिकाजालमहाध्वजविराजितम् । मनोज्ञरूपसंकीर्णमशक्यपरिवर्णनम् ॥१०॥
उत्तीर्य नागतो मत्तनागेन्द्रसमविक्रमः । प्रसन्ननयनः श्रीमान् तद्विवेश सहाङ्गन. ॥११॥
कायोत्सर्गविधानेन प्रलम्बितभुजद्वयः । प्रशान्तहृदयः कृत्वा सामायिकपरिग्रहम् ॥१२॥
बद्ध्वा करद्वयाम्भोजकुड्मलं सह सीतया । अघप्रमथनं पुण्य राम स्तोत्रमुदाहरत् ॥१३॥

अथानन्तर समागमरूपी सूर्यसे जिसका मुखकमल खिल उठा था ऐसी सीताका हाथ अपने हाथसे पकड़ श्रीराम उठे और इच्छानुकूल चलनेवाले ऐरावतके समान हाथीपर बैठाकर स्वय उसपर आरूढ हुए। महातेजस्वी तथा सम्पूर्ण कान्तिको धारण करनेवाले श्रीराम हिलते हुए घटोसे मनोहर हाथीरूपी मेघपर सीतारूपी रोहिणीके साथ बैठे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१–३॥ जिनकी बुद्धि स्थिर थी, जो अत्यधिक उन्नत प्रीतिको धारण कर रहे थे, बहुत भारी जनसमूह जिनके साथ था, जो चारो ओरसे बहुत बड़ी सम्पदासे घिरे थे, बडे-बड़े अनुरागी विद्याधरोसे अनुगत, उत्तम कान्तियुक्त चक्रपाणि लक्ष्मणसे जो सहित थे तथा अतिशय निपुण थे ऐसे श्रीराम, सूर्यके विमानके समान जो रावणका भवन था उसमे जाकर प्रविष्ट हुए ॥४–६॥ वहाँ उन्होने भवनके मध्यमे स्थित श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌का परमसुन्दर मन्दिर देखा। वह मन्दिर योग्य विस्तार और ऊँचाईसे सहित था, स्वर्णके हजार खम्भोसे निर्मित था, विशाल कान्तिका धारक था, उसकी दीवालोके प्रदेश नाना प्रकारके रत्नोसे युक्त थे, वह मनको आनन्द देनेवाला था, विदेह क्षेत्रके मध्यमे स्थित मेरुपर्वतके समान था, क्षीर समुद्रके फेनपटलके समान कान्तिवाला था, नेत्रोको बांधनेवाला था, रुणझुण करनेवाली किंकिणियोके समूह एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाओसे सुशोभित था, मनोज्ञ रूपसे युक्त था तथा उसका वर्णन करना अशक्य था ॥७–१०॥

तदनन्तर जो मत्तगजराजके समान पराक्रमी थे, निर्मल नेत्रोके धारक थे तथा श्रेष्ठ लक्ष्मीसे सहित थे, ऐसे श्रीरामने हाथीसे उतरकर सीताके साथ उस मन्दिरमे प्रवेश किया ॥११॥ तत्पश्चात् कायोत्सर्ग करनेके लिए जिन्होने अपने दोनो हाथ नीचे लटका लिये थे और जिनका हृदय अत्यन्त शान्त था, ऐसे श्रीरामने सामायिक कर सीताके साथ दोनो करकमलरूपी कुड्मलोको जोड़कर श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌का पापभंजक पुण्यवर्धक स्तोत्र पढ़ा ॥१२–१३॥

१. भवनद्युते. म । २. क्षीरोदकेन पटल -म ।

यस्यावतरणे शान्तिर्जाता सर्वत्र विष्टपे । प्रलयं सर्वरोगाणां कुर्वती द्युतिकारिणी ॥१४॥
चलितासनकैरिन्द्रैरागत्योत्तमभूतिभिः । यो मेरुशिखरे हृष्टैरभिषिक्तः सुभक्तिभिः ॥१५॥
[1]चक्रेणारिगणं जित्वा बाह्यं बाह्येन यो नृपः । आन्तरं ध्यानचक्रेण जिगाय मुनिपुङ्गवः ॥१६॥
मृत्युजन्मजराभीतिखड्गाद्यायुधचञ्चलम् । [2]भवासुरं परिध्वस्य योऽगात्सिद्धिपुरं शिवम् ॥१७॥
उपमारहितं नित्यं शुद्धमात्माश्रयं परम् । प्राप्तं निर्वाणसाम्राज्यं [3]येनात्यन्तदुरासदम् ॥१८॥
तस्मै ते शान्तिनाथाय त्रिजगच्छान्तिहेतवे । नमस्त्रिधा महेशाय प्राप्तात्यन्तिकशान्तये ॥१९॥
चराचरस्य सर्वस्य नाथ त्वमतिवत्सलः[4] । शरण्यः परमस्त्राता समाधिद्युतिबोधिदः ॥२०॥
गुरुर्बन्धुः प्रणेता च त्वमेकः परमेश्वरः । चतुर्णिकायदेवानां सशक्राणां समर्चितः ॥२१॥
त्वं कर्त्ता धर्मतीर्थस्य येन भव्यजनः सुखम् । प्राप्नोति परमं स्थानं सर्वदुःखविमोक्षदम् ॥२२॥
नमस्ते देवदेवाय नमस्ते स्वस्तिकर्मणे । नमस्ते कृतकृत्याय लब्धलभ्याय ते नमः ॥२३॥
महाशान्तिस्वभावस्थं सर्वदोषविवर्जितम् । प्रसीद भगवन्नुच्चैः पदं नित्यं विदेहि नः[5] ॥२४॥
एवमादि पठन् स्तोत्रं पद्मः पद्मायतेक्षणः । चैत्यं प्रदक्षिणं चक्रे दक्षिणः पुण्यकर्मणि ॥२५॥
प्रह्वाङ्गा पृष्ठतस्तस्य जानकी स्तुतितत्परा । समाहितकराम्भोजकुड्मला भाविनी स्थिता ॥२६॥

स्तोत्र पाठ करते हुए उन्होंने कहा कि जन्म लेते ही संसारमें सर्वत्र ऐसी शान्ति छा गयी कि जो सब रोगोका नाश करनेवाली थी तथा दीप्तिको बढ़ानेवाली थी ॥१४॥ जिनके आसन कम्पायमान हुए थे तथा जो उत्तम विभूतिसे युक्त थे ऐसे हर्षसे भरे भक्तिमन्त इन्द्रोंने आकर जिनका मेरुके शिखरपर अभिषेक किया था॥१५॥ जिन्होंने राज्य अवस्थामें बाह्यचक्रके द्वारा बाह्यशत्रुओंके समूह को जीता था और मुनि होनेपर ध्यानरूपी चक्रके द्वारा अन्तरंग शत्रुसमूहको जीता था ॥१६॥ जो जन्म, जरा, मृत्यु, भयरूपी खड्ग आदि शस्त्रोंसे चंचल संसाररूपी असुरको नष्ट कर कल्याणकारी सिद्धिपुर मोक्षको प्राप्त हुए थे ॥१७॥ जिन्होंने उपमारहित, नित्य, शुद्ध, आत्माश्रय, उत्कृष्ट और अत्यन्त दुरासद निर्वाणका साम्राज्य प्राप्त किया था, जो तीनो लोकोंकी शान्तिके कारण थे, जो महाऐश्वर्यसे सहित थे तथा जिन्होने अनन्त शान्ति प्राप्त की थी ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान्‌के लिए मन, वचन, कायसे नमस्कार हो ॥१८-१९॥ हे नाथ ! आप समस्त चराचर विश्वसे अत्यन्त स्नेह करनेवाले हैं, शरणदाता हैं, परम रक्षक हैं, समाधिरूप तेज तथा रत्नत्रय-रूपी बोधिको देनेवाले हैं ॥२०॥ तुम्हीं एक गुरु हो, बन्धु हो, प्रणेता हो, परमेश्वर हो, इन्द्र सहित चारो निकायोके देवोसे पूजित हो ॥२१॥ हे भगवन् ! आप उस धर्मरूपी तीर्थके कर्ता हो जिससे भव्य जीव अनायास ही समस्त दुःखोसे छुटकारा देनेवाला परम स्थान—मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं ॥२२॥ हे नाथ ! आप देवोके देव हो इसलिए आपको नमस्कार हो, आप कल्याणरूप कार्यके करनेवाले हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कृतकृत्य है अत. आपको नमस्कार हो और आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थोको प्राप्त कर चुके हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ॥२३॥ हे भगवन् ! प्रसन्न होइए और हम लोगोंके लिए महाशान्तिरूप स्वभावमे स्थित, सर्वदोष रहित, उत्कृष्ट तथा नित्यपद—मोक्षपद प्रदान कीजिए ॥२४॥ इस प्रकार स्तोत्र पाठ पढते हुए कमलायतलोचन तथा पुण्य कर्ममे दक्ष श्रीरामने शान्ति जिनेन्द्रकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी ॥२५॥ जिसका शरीर नम्र था, जो स्तुति पाठ करनेमे तत्पर थी तथा जिसने हस्तकमल जोड़ रखे थे ऐसी भावभीनी सीता श्रीरामके पीछे खड़ी थी ॥२६॥

१. 'चक्रेण य. शत्रुभयकरेण जित्वा नृप. सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥' बृहत्स्वयंभूस्तोत्रे स्वामिसमन्तभद्रस्य ।
२. भावासुरं म. । ३ यो नात्यन्त- म. । ४ विह्वलः म. । ५. न.=अस्मभ्यम् ।

महादुन्दुभिनिर्घोषप्रतिमे रामनिस्वने । जानकीस्वनितं जज्ञे वीणानिःक्वणकोमलम् ॥२७॥
सविशल्यस्ततश्चक्री सुग्रीवो रश्मिमण्डलः । तथा वायुसुताद्याश्च मङ्गलस्तोत्रतत्पराः ॥२८॥
बद्धपाणिपुटा धन्या भाविता जिनपुङ्गवे । गृहीतमुकुलाम्भोजा इव राजन्ति ते तदा ॥२९॥
विमुञ्चत्सु स्वनं तेषु मुरजस्वनसुन्दरम् । मेघध्वनिकृताशङ्का ननृतुश्छेकबर्हिणः ॥३०॥
कृत्वा स्तुतिं प्रणामं च भूयो भूयः सुचेतसः । यथासुखं समासीनाः प्राङ्गणे जिनवेश्मनः ॥३१॥
यावत्ते वन्दनां चक्रुस्तावद्राजा बिभीषणः । सुमालिमाल्यवद्रत्नश्रवप्रभृतिबान्धवान् ॥३२॥
संसारानित्यताभावदेशनात्यन्तकोविदः । परिसान्त्वनमानिन्ये महादुःखनिपीडितान् ॥३३॥
आर्यौ तात स्वकर्मोत्थफलभोजिषु जन्तुषु । विधीयते मुधा शोकः क्रियतां स्वहिते मनः ॥३४॥
दृष्टागमा महाचित्ता यूयमेवं विचक्षणाः । वित्थ जातो यदि प्राणी मृत्युं न प्रतिपद्यते ॥३५॥
पुष्पसौन्दर्यसंकाशं यौवनं दुर्व्यतिक्रमम् । पल्लवश्रीसमालक्ष्मीर्जीवितं विद्युदध्रुवम् ॥३६॥
जलबुद्बुदसंयोगप्रतिमा[1] बन्धुसंगमाः । संध्यारागसमा भोगा क्रियाः स्वप्नक्रियोपमाः ॥३७॥
यदि नाम प्रपद्येरन् जन्तवो नैव [2]पञ्चताम् । कथं [3]स भवतां गोत्रमागतः[4] स्याद्भवान्तरात् ॥३८॥
आत्मनोऽपि यदा नाम नियमाद्विशरारुता । तदा कथमिवात्यर्थं क्रियते शोकमूढता ॥३९॥
एवमेतदिति ध्यानं संसाराचारगोचरम् । सतां शोकविनाशाय पर्याप्तं क्षणमात्रकम् ॥४०॥
भावितान्यनुभूतानि दृष्टानि च सुबन्धुभिः । समं वृत्तानि साधूनां तापयन्ति मनः क्षणम् ॥४१॥

रामका स्वर महादुन्दुभिके स्वरके समान अत्यन्त परुष था तो सीताका स्वर वीणाके स्वरके समान अत्यन्त कोमल था ॥२७॥ तदनन्तर विशल्या सहित लक्ष्मण, सुग्रीव, भामण्डल तथा हनूमान् आदि सभी लोग मंगलमय स्तोत्र पढनेमे तत्पर थे ॥२८॥ जिन्होने हाथ जोड़ रखे थे तथा जो जिनेन्द्र भगवान्मे अपनी भावना लगाये हुए थे, ऐसे वे सब धन्यभाग विद्याधर उस समय ऐसे जान पडते थे मानो कमलकी वोडियाँ ही धारण कर रहे हो ॥२९॥ जब वे मृदंग ध्वनिके समान सुन्दर शब्द छोड रहे थे तब चतुर मयूर मेघगर्जनाकी शंका करते हुए नृत्य कर रहे थे ॥३०॥ इस प्रकार वार-बार स्तुति तथा प्रणाम कर शुद्ध हृदयको धारण करनेवाले वे सव जिन मन्दिरके चौकमे यथायोग्य सुखसे वैठ गये ॥३१॥ जबतक इन सबने वन्दना की तवतक राजा विभीषणने सुमाली, माल्यवान् तथा रत्नश्रवा आदि परिवारके लोगोको जो कि महादुःखसे पीड़ित हो रहे थे सान्त्वना दी। विभीषण संसारकी अनित्यताका भाव बतलानेमे अत्यन्त निपुण था ॥३२-३३॥ उसने सान्त्वना देते हुए कहा कि हे आर्यो! हे तात! संसारके प्राणी अपने-अपने कर्मोके अनुसार फलको भोगते ही है अतः शोक करना व्यर्थ है आत्महितमे मन लगाइए ॥३४॥ आप लोग तो आगमके द्रष्टा, विशाल हृदय और विज्ञपुरुष है अतः जानते हैं कि उत्पन्न हुआ प्राणी मृत्युको प्राप्त होता है या नही ॥३५॥ जिसका वर्णन करना बड़ा कठिन है ऐसा यौवन फूलके सौन्दर्यके समान है, लक्ष्मी पल्लवकी शोभाके समान है, जीवन बिजलीके समान अनित्य है ॥३६॥ बन्धुजनोके समागम जलके बबूलेके समान हैं, भोग सन्ध्याकी लालीके तुल्य है, और क्रियाएँ स्वप्नकी क्रियाओके समान हैं ॥३७॥ यदि ये प्राणी मृत्युको प्राप्त नही होते तो वह रावण भवान्तरसे आपके गोत्रमे कैसे आता ?॥३८॥ अरे! जब हम लोगोको भी एक दिन नियम-से नष्ट हो जाना है तब यह शोक-विषयक मूर्खता किस लिए की जाती है? ॥३९॥ 'यह ऐसा है' अर्थात् नष्ट होना इसका स्वभाव ही है इस प्रकार संसारके स्वभावका ध्यान करना सत्पुरुषोके शोकको क्षणमात्रमे नष्ट करनेके लिए पर्याप्त है। भावार्थ—जो ऐसा विचार करते हैं कि ससारके पदार्थं नश्वर ही है उनका शोक क्षण मात्रमे नष्ट हो जाता है ॥४०॥ बन्धुजनोके साथ कथित,

---

१ प्रतिमा म । २ मृत्युम् । ३ संभवता म. । ४. मागतं ख ।

भवत्येव हि शोकेन संगो बन्धुवियोगिनः । बलादिव विशालेन स्मृतिविभ्रंशकारिणा ॥४२॥
तथाप्यनादिकेऽमुष्मिन्संसारे भ्रमतो मम । के न बान्धवतां प्राप्ता इति ज्ञात्वा सुगुह्यताम् ॥४३॥
यथा शक्त्या जिनेन्द्राणां भवध्वंसविधायिनाम् । विधाय शासने चित्तमात्मा स्वार्थे नियुज्यताम् ॥४४॥
एवमादिभिरालापैर्मधुरैर्हृदयंगमैः । परिसान्त्व्य समाधाय बन्धून् कृत्ये गृहं गतः ॥४५॥
अग्र्यां देवीसहस्रस्य व्यवहारविचक्षणाम् । प्रहिणाय[1] विदग्धाख्यां महिषीं हलिनोऽन्तिकम् ॥४६॥
आगत्य साभिजातेन प्रणामेन कृतार्थनाम् । समीतौ भ्रातरौ वाक्यमिदं क्रमविदब्रवीत् ॥४७॥
अस्मत्स्वामिगृहं देव स्वगृहागयलक्षितम् । कर्तुं पादतलासंगान्महानुग्रहमर्हसि ॥४८॥
वर्तते संकथा यावत्तेषां वार्तासमुद्भवा । स्वयं विभीषणस्तावत्प्राप्तोऽत्यन्तमहादरः ॥४९॥
उत्तिष्ठत गृहं यामः प्रसादः क्रियतामिति । तेनोक्तः मानुगः पद्मस्तद्गृहं गन्तुमुद्यतः ॥५०॥
यानैर्नानाविधैस्तुङ्गैर्गजैरम्बुदसंनिभैः । तरङ्गचञ्चलैरश्वै रथैः प्रासादशोभिभिः ॥५१॥
विधाय कृतसंस्कारं राजमार्गं निरन्तरम् । विभीषणगृहं तेन प्रस्थितास्ते यथाक्रमम् ॥५२॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषास्तूर्यशब्दाः[2] समुद्गताः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्रा गह्वरप्रतिनादिनः[3] ॥५३॥
भम्भाभेरीमृदङ्गानां पटहानां सहस्रशः । लम्पाककाहलाधुन्धुन्दुदुभीनां च निःस्वनैः ॥५४॥
झल्लाम्लातकढक्कानां हैकानां च निरन्तरम् । गुञ्जाहुङ्कारसुन्दानां तथा पूरितमम्बरम् ॥५५॥
स्फीतैर्हलहलाशब्दैरट्टहासैश्च संततैः । नानावाहननादैश्च दिगन्ता बधिरीकृता ॥५६॥

अनुभूत और दृष्ट पदार्थ सत् पुरुषोंके मनको एक क्षण ही सन्ताप देते हैं अधिक नहीं ॥४१॥ जिसका बन्धु-जनोंके साथ वियोग होता है यद्यपि उसका स्मृतिको नष्ट करनेवाले विशाल शोकके साथ समागम मानो बलपूर्वक ही होता है तथापि इस अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए मेरे कौन-कौन लोग बन्धु नहीं हुए हैं ऐसा विचारकर उस शोकको छिपाना चाहिए ॥४२-४३॥ इसलिए संसारको नष्ट करनेवाले श्री जिनेन्द्रदेवके शासनमें यथाशक्ति मन लगाकर आत्माको आत्माके हितमें लगाइए ॥४४॥ इत्यादि हृदयको लगनेवाले मधुर वचनोंसे सबको काममें लगाकर विभीषण अपने घर गया ॥४५॥

घर आकर उसने एक हजार स्त्रियोंमें प्रधान तथा सब व्यवहारमें विचक्षण विदग्धा नामक रानीको श्रीरामके समीप भेजा ॥४६॥ तदनन्तर क्रमको जाननेवाली विदग्धाने आकर प्रथम ही सीता सहित राम-लक्ष्मणको कुलके योग्य प्रणाम किया। तदनन्तर यह वचन कहे कि हे देव ! हमारे स्वामीके घरको अपना घर समझ चरण-तलके संसर्गसे पवित्र कीजिए ॥४७-४८॥ जब-तक उन सबके बीचमें यह वार्ता हो रही थी तबतक महाआदरसे भरा विभीषण स्वयं आ पहुँचा ॥४९॥ आते ही उसने कहा कि उठिए, घर चलें प्रसन्नता कीजिए। इस प्रकार विभीषणके कहनेपर राम, अपने अनुगामियोके साथ उसके घर जानेके लिए उद्यत हो गये ॥५०॥ राजमार्गकी अविरल सजावट की गयी और उससे वे नाना प्रकारके वाहनों, मेघ समान ऊँचे हाथियों, लहरोंके समान चंचल घोड़ों और महलोंके समान सुशोभित रथोंपर यथाक्रमसे सवार हो विभीषणके घरकी ओर चले ॥५१-५२॥ प्रलयकालीन मेघोंकी गर्जनाके समान जिनका विशाल शब्द था, जिनमें करोड़ों शंखोंका शब्द मिल रहा था तथा गुफाओंमें जिनकी प्रतिध्वनि पड़ रही थी ऐसे तुरहीके विशाल शब्द उत्पन्न हुए ॥५३॥ भम्भा, भेरी, मृदंग, हजारों पटह, लंपाक, काहला, धुन्धु, दुन्दुभि, झाँझ, अम्लातक, ढक्का, हैका, गुंजा, हुँकार और सुन्द नामक वादित्रोंके शब्दसे आकाश भर गया ॥५४-५५॥ अत्यन्त विस्तारको प्राप्त हुआ हलहला शब्द, बहुत भारी अट्टहास और नाना वाहनोंके शब्दोंसे दिशाएँ बहरी हो गयी ॥५६॥

---

१ प्रतिघाय म । २. प्रलम्बाम्बुद -ख. । ३. प्रतिवादिनः म. ।

केचिच्छार्दूलपृष्ठस्थाः केचित् केसरिपृष्ठगाः । केचिद् रथादिभिर्वीराः प्रस्थिताः खेचरेश्वराः ॥५७॥
नर्त्तकीनटभण्डाद्यैर्नृत्यद्भिरतिसुन्दरम् । वन्दिवृन्दैश्च ते जग्मुः स्तूयमाना महास्वनैः ॥५८॥
अकाण्डकौमुदीसर्गमण्डितैश्छत्रमण्डलैः । नानायुधदलैश्चासन् भानुमालस्तिरोहिताः ॥५९॥
दिव्यस्त्रीवदनाम्भोजखण्डनन्दनमुत्तमम् । कुर्वन्तस्ते परिप्राप्ता विभीषणनृपालयम् ॥६०॥
विभूतिर्या तदा तेषां बभूव शुभलक्षणा । सा परं द्युनिवासानां विद्यते जनिताद्भुता ॥६१॥
अवतीर्याथ नागेन्द्राद् रत्नार्घादिपुरस्कृतौ । रम्यं विविशतुः सद्म ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥६२॥
मध्ये महालयस्यास्य रत्नतोरणसंगतम् । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य भवनं हेमसंनिभम् ॥६३॥
प्रान्तावस्थितहर्म्यालीपरिवारमनोहरम् । शेषपर्वतमध्यस्थं मन्दरौपम्यमागतम् ॥६४॥
हेमस्तम्भसहस्रेण धृतमुत्तमभासुरम् । पूजितायामविस्तारं नानामणिगणार्चितम् ॥६५॥
बहुरूपधरैर्युक्तं चन्द्राभैर्वलभीपुटैः । गवाक्षप्रान्तसंसक्तैर्मुक्ताजालैर्विराजितम् ॥६६॥
अनेकाद्भुतसंकीर्णैर्युक्तैः प्रतिसरादिभिः । प्रदेशैर्विविधैः कान्तं पापप्रमथनं परम् ॥६७॥
एवंविधे गृहे तस्मिन् पद्मरागमयीं प्रभोः । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य प्रतिमां प्रतिमोज्झिताम्[1] ॥६८॥
भासमम्भोजखण्डानां दिशन्ती मणिभूमिषु । स्तुत्वा च परिवन्दित्वा यथार्हं समवस्थिताः ॥६९॥
यथायथं ततो याता खेचरेन्द्रा निरूपितम् । समाश्रयं बलं चित्ते बिभ्राणाश्चक्रिणां तथा ॥७०॥
अथ विद्याधरस्त्रीभिः पद्मलक्ष्मणयोः पृथक् । सीतायाश्च शरीरस्य क्रियायोगः प्रवर्त्तितः ॥७१॥

कितने ही विद्याधर व्याघ्रोकी पीठपर बैठकर जा रहे थे, कितने ही सिंहोकी पीठपर सवार होकर चल रहे थे और कितने ही रथ आदि वाहनोसे प्रस्थान कर रहे थे ॥५७॥ उनके आगे-आगे नर्तकियाँ, नट तथा भाँड़ आदि सुन्दर नृत्य करते जाते थे तथा चारणोके समूह बडी उच्च ध्वनिमे उनका विरद बखानते जा रहे थे ॥५८॥ असमयमे प्रकट हुई चाँदनीके समान मनोहर छत्रोके समूहसे तथा नाना शस्त्रोके समूहसे सूर्यकी किरणे आच्छादित हो गयी थी ॥५९॥ इस प्रकार सुन्दरी स्त्रियोके मुख-कमलोंको विकसित करते हुए वे सब विभीषणके राजभवनमे पहुँचे ॥६०॥ उस समय राम-लक्ष्मण आदिकी शुभलक्षणोंसे युक्त जो विभूति थी वह देवोके लिए भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थी ॥६१॥

अथानन्तर हाथीसे उतरकर, जिनका रत्नोके अर्घ आदिसे सत्कार किया गया था ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मणने विभीषणके सुन्दर भवनमे प्रवेश किया ॥६२॥ विभीषणके विशाल भवनके मध्यमे श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्रका वह मन्दिर था जो रत्नमयी तोरणोसे सहित था, स्वर्णके समान देदीप्यमान था, समीपमे स्थित महलोके समूहसे मनोहर था, शेष नामक पर्वतके मध्यमे स्थित था, प्रेमकी उपमाको प्राप्त था, स्वर्णमयी हजार खम्भोसे युक्त था, उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लम्बाई और विस्तारसे सहित था, नाना मणियोके समूहसे शोभित था, चन्द्रमाके समान चमकती हुई नाना प्रकारकी वलभियोसे युक्त था, झरोखोके समीप लटकती हुई मोतियोकी जालीसे सुशोभित था, अनेक अद्भुत रचनाओसे युक्त प्रतिसर आदि विविध प्रदेशोमे सुन्दर था, और पापको नष्ट करनेवाला था ॥६३–६७॥ इस प्रकारके उस मन्दिरमें श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्रकी पद्मराग मणि निर्मित वह अनुपम प्रतिमा विराजमान थी जो अपनी प्रभासे मणिमय भूमिमें कमल-समूहकी शोभा प्रकट कर रही थी। सब लोग उस प्रतिमाकी स्तुति-वन्दना कर यथायोग्य बैठ गये ॥६८–६९॥ तदनन्तर विद्याधर राजा हृदयमे राम और लक्ष्मणको धारण करते हुए जहाँ जिसके लिए जो स्थान बनाया गया था वहाँ यथायोग्य रीतिसे चले गये ॥७०॥

अथानन्तर विद्याधर स्त्रियोने राम-लक्ष्मण और सीताके स्नानकी पृथक्-पृथक् विधि प्रस्तुत

१. उपमारहिताम् ।

अभ्यङ्गः सुगन्धिभिः[1] पथ्यैः स्नेहैः वर्णमनोहरैः । घ्राणदेहानुकूलैश्च शुभैरुद्वर्तनैः कृतः ॥७२॥
स्थितानां स्नानपीठेषु प्राङ्मुखानां सुमङ्गलः । ऋद्धया स्नानविधिस्तेषां क्रमयुक्तः प्रवर्तितः ॥७३॥
वपुःकर्षणपानीयविसर्जनलयान्वितम् । हारि[2] प्रवृत्तमातोद्यं सर्वोपकरणाश्रितम् ॥७४॥
हैमैर्मारकतैर्वाज्रैः स्फाटिकैरिन्द्रनीलजैः । कुम्भैर्गन्धोदकापूर्णैः स्नानं तेषां समापितम् ॥७५॥
पवित्रवस्त्रसंवीताः सुस्नाताः सदलंकृताः । प्रविश्य चैत्यभवनं पद्माभं ते ववन्दिरे ॥७६॥
तेषां प्रत्यवसानार्थां कार्या विस्तारिणी कथा । घृताद्यैः पूरिता वाप्यः सद्भक्ष्यैः पर्वताः कृताः[3] ॥७७॥
वनेषु नन्दनाद्येषु वस्तुजातं यदुद्गतम् । मनोघ्राणेक्षणाभीष्टं तत्कृतं भोजनावनौ ॥७८॥
मृष्टमन्नं स्वभावेन जानक्या तु समन्ततः । कथं वर्णयितुं शक्यं पद्मनाभस्य चेतसः ॥७९॥
पञ्चानामर्थयुक्तत्वमिन्द्रियाणां तदैव हि । यदाभीष्टसमायोगे जायते कृतनिर्वृतिः ॥८०॥
तदा भुक्तं तदा घ्रातं तदा स्पृष्टं तदेक्षितम् । तदा श्रुतं यदा जन्तोर्जायते प्रियसंगमः ॥८१॥
विषयः स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते । स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ॥८२॥
रसायनरसैः कान्तैरद्भुतैर्बहुवर्णकैः । भक्ष्यैश्च विविधैस्तेषां निवृत्ता भोजनक्रिया ॥८३॥
खेचरेन्द्रा यथायोग्यं कृतभूमिनिवेशनाः । भोजिताः कृतसन्मानाः परिवारसमन्विताः ॥८४॥

की ॥७१॥ सर्वप्रथम उन्हें सुगन्धित, हितकारी तथा मनोहर वर्णवाले तेलका मर्दन किया गया, फिर घ्राण और शरीरके अनुकूल पदार्थोंका उपटन किया गया ॥७२॥ तदनन्तर स्नानकी चौकी-पर पूर्व दिशाकी ओर मुख कर बैठे हुए उनका बड़े वैभवसे क्रमपूर्वक मंगलमय स्नान कराया गया ॥७३॥ उस समय शरीरको घिसना, पानी छोड़ना आदिकी लयसे सहित मनको हरण करने-वाले तथा सब प्रकारकी साज-सामग्रीसे युक्त बाजे बज रहे थे ॥७४॥ गन्धोदकसे परिपूर्ण सुवर्ण, मरकत मणि, हीरा, स्फटिक मणि तथा इन्द्रनीलमणि निर्मित कलशोंसे उनका अभिषेक पूर्ण हुआ ॥७५॥ तदनन्तर अच्छी तरह स्नान करनेके बाद उन्होंने पवित्र वस्त्र धारण किये, उत्तम अलंकारोंसे शरीर अलंकृत किया और तदनन्तर मन्दिरमें प्रवेश कर श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्रकी वन्दना की ॥७६॥

अथानन्तर उन सबके लिए जो भोजन तैयार किया गया था, उसकी कथा बहुत विस्तृत है। उस समय घी, दूध, दही आदिकी वावड़ियाँ भरी गयी थीं और खाने योग्य उत्तमोत्तम पदार्थोंके मानो पर्वत बनाये गये थे अर्थात् पर्वतोंके समान बड़ी-बड़ी राशियाँ लगायी गयी थीं ॥७७॥ मन, घ्राण और नेत्रोंके लिए अभीष्ट जो भी वस्तुएँ नन्दन आदि वनोंमें उत्पन्न हुई थीं वे सब भोजन-भूमिमें एकत्रित की गयी थीं ॥७८॥ वह भोजन स्वभावसे ही मधुर था फिर जानकीके समीप रहते हुए तो कहना ही क्या था? उस समय श्रीरामके मनकी जो दशा थी उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है! ॥७९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! पाँचों इन्द्रियोंकी सार्थकता तभी है जब इष्ट पदार्थोंका संयोग होनेपर उन्हें सन्तोष उत्पन्न होता है ॥८०॥ इस प्राणीने उसी समय भोजन किया है, उसी समय सूँघा है, उसी समय स्पर्श किया है, उसी समय देखा है और उसी समय सुना है जब कि इसे प्रियजनका समागम प्राप्त होता है। भावार्थ—प्रियजनके विरहमें भोजन आदि सभी निःसार जान पड़ते हैं ॥८१॥ विरह कालमें स्वर्ग तुल्य भी देश नरकके समान जान पड़ता है और प्रियजनके समागम रहते हुए महावन भी स्वर्गके समान जान पड़ता है ॥८२॥ सुन्दर, अद्भुत और बहुत प्रकारके रसायन सम्बन्धी रसोंकी तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे उन सबकी भोजन-क्रिया पूर्ण हुई ॥८३॥ जो यथायोग्य भूमिपर बैठाये गये थे, जिनका सम्मान किया गया था तथा जो अपने-अपने परिवार इष्ट जनोंसे

१. सुगन्धिभिः ख.। २. हारिम् । ३. पर्वताकृताः ख., ज.। ४. महेन म.।

चन्दनाद्यै. कृताः सर्वैर्गन्धैराबद्धषट्पदैः । भद्रशाला[1]धरण्योत्थैः कुसुमैश्च विभूषिताः ॥८५॥
स्पर्शानुकूललघुभिर्वस्त्रैर्युक्ता महाधनै. । नानारत्नप्रभाजालकरालितदिगाननाः ॥८६॥
सर्वे सभाविता. सर्वे फलयुक्तमनोरथाः । दिवा रात्रौ च चित्राभिः कथाभी रतिमागता ॥८७॥
अहो राक्षसवंशस्य भूषणोऽयं विभीषणः । अनुवृत्तिरियं येन कृतेदृक्पद्मचक्रिणोः ॥८८॥
श्लाघ्यो महानुभावोऽयं जगत्युत्तुङ्गतां यतः । कृतार्थौ भवने यस्य स्थितः पद्मः सलक्ष्मणः ॥८९॥
एवं विभीषणाधारगुणग्रहणतत्परः । विद्याधरजनस्तस्थौ सुखं मत्सरवर्जितः ॥९०॥
पद्मलक्ष्मणवैदेहीविभीषणकथागत. । पौरलोकः समस्तोऽभूत् परित्यक्तान्यसंकथः ॥९१॥
संप्राप्तबलदेवत्वं पद्म लाङ्गललक्षणम् । नारायणं च संप्राप्तचक्ररत्नं नरेश्वरम् ॥९२॥
अभिषेक्तुं समासक्ता विभीषणपुर.सराः । सर्वविद्याधराधीशा विनयेन ढुढौकिरे ॥९३॥
ऊचतुस्तौ गुरोः पूर्वमभिषेकमवाप्तवान् । प्रभुर्भरत एवास्तेऽयोध्यायां व. स एव नौ ॥९४॥
उक्तं तैरेवमेवैतत्तथाप्यभिषवेऽत्र क । मङ्गले दृश्यते दोषो महापुरुषसेविते ॥९५॥
क्रियमाणामसौ पूजां भवतोरनुमन्यते । श्रूयतेऽत्यन्तधीरोऽसौ मनसौ नैति विक्रियाम् ॥९६॥
वस्तुतो बलदेवत्वचक्रित्वप्राप्तिकारणात् । संप्रतिष्ठा तयोरासीत् पूजासंभारसंगता ॥९७॥
एवमत्युन्नतां लक्ष्मीं संप्राप्तौ रामलक्ष्मणौ । लङ्कायामूषतु[2]ः स्वर्गनगर्यां त्रिदशाविव ॥९८॥

सहित थे ऐसे समस्त विद्याधर राजाओको भोजन कराया गया ॥८४॥ जिनपर भ्रमरोने मण्डल बाँध रखे थे ऐसे चन्दन आदि सब प्रकारकी गन्धोसे तथा भद्रशाल आदि वनोमे उत्पन्न हुए पुष्पोसे सब विभूषित किये गये ॥८५॥ जो स्पर्शके अनुकूल, हलके और अत्यन्त सघन बुने हुए वस्त्रोसे युक्त थे तथा नाना प्रकारके रत्नोकी किरणोसे जिन्होने दिशाओको व्याप्त कर रखा था ऐसे उन सब लोगोका सम्मान किया गया था, उनके सब मनोरथ सफल किये गये थे, और रात-दिन नाना प्रकारकी कथाओसे सबको प्रसन्न किया गया था ॥८६–८७॥ अहो ! यह विभीषण राक्षस वंशका आभूषण है, जिसने कि इस प्रकार राम-लक्ष्मणकी अनुवृत्ति की—उनके अनुकूल आचरण किया ॥८८॥ यह महानुभाव प्रशंसनीय है तथा जगत्मे अत्यन्त उत्तम अवस्थाको प्राप्त हुआ है। जिसके घरमे कृतकृत्य हो राम-लक्ष्मणने निवास किया उसकी महिमाका क्या कहना है ? ॥८९॥ इस प्रकार विभीषणमें पाये जानेवाले गुणोके ग्रहण करनेमे जो तत्पर थे तथा मात्सर्य भावसे रहित थे ऐसे सब विद्याधर भी विभीषणके घर सुखसे रहे ॥९०॥ उस समय नगरीके समस्त लोक राम, लक्ष्मण, सीता और विभीषणकी ही कथामे संलग्न रहते थे—अन्य सब कथाएँ उन्होने छोड़ दी थी ॥९१॥

अथानन्तर विभीषण आदि समस्त विद्याधर राजा जिन्हे बलदेव पद प्राप्त हुआ था ऐसे हल लक्षणधारी राम और जिन्हे नारायण पद प्राप्त हुआ था ऐसे चक्ररत्नके धारी राजा लक्ष्मणका अभिषेक करनेके लिए उद्यत हो विनयपूर्वक आये ॥९२–९३॥ तब राम-लक्ष्मणने कहा कि पहले पिता दशरथसे जिसे राज्याभिषेक प्राप्त हुआ है ऐसा राजा भरत अयोध्यामे विद्यमान है वही तुम्हारा और हम दोनोका स्वामी है ॥९४॥ इसके उत्तरमे विभीषणादिने कहा कि जैसा आप कह रहे है यद्यपि वैसा ही है तथापि महापुरुषोके द्वारा सेवित इस मंगलमय अभिषेकमे क्या दोष दिखाई देता है ? अर्थात् कुछ नही ! ॥९५॥ आप दोनोके इस किये जानेवाले सत्कारको राजा भरत अवश्य ही स्वीकृत करेंगे क्योकि वे अत्यन्त धीर-गम्भीर सुने जाते हैं। वे मनमे रंचमात्र भी विकारको प्राप्त नही होते ॥९६॥ यथार्थमे बलदेवत्व और चक्रवर्तित्वकी प्राप्तिके कारण उनके अनेक प्रकारकी पूजासे युक्त प्रतिष्ठा हुई थी ॥९७॥ इस प्रकार अत्यन्त उन्नत लक्ष्मीको

१ भद्रशोभा- म. । २. -मूचतु. म. ।

पुरे तत्रेन्द्रनगरप्रतिमे स्फीतभोगदे । नदीसरस्तटाद्येषु देशेष्वस्थुर्नभश्चराः ॥९९॥
[1]दिव्यालंकारताम्बूलवस्त्रहारविलेपनाः । चिक्रीडुस्तत्र ते स्वेच्छं सस्त्रीकाः स्वर्गिणो यथा ॥१००॥
दिनरत्नकरालीढसितपद्मान्तरद्युति । वैदेहीवदनं पश्यन् पद्मस्तृप्तिमियाय न ॥१०१॥
विरामरहितं रामस्तयात्यन्ताभिरामया । रामया सहितो रेमे रमणीयासु भूमिषु ॥१०२॥
विशल्यासुन्दरीयुक्तस्तथा नारायणो रतिम् । जगाम चिन्तितप्राप्तसर्ववस्तुसमागमः ॥१०३॥
यातास्मः श्व इति स्वान्तं कृत्वापि पुनरुत्तमाम् । संप्राप्य रतिमेतेषां गमनं स्मृतितश्च्युतम् ॥१०४॥
तयोर्बहूनि वर्षाणि रतिभोगोपयुक्तयोः । गतान्येकदिनौपम्यं भजमानानि सौख्यतः ॥१०५॥
कदाचिदथ संस्मृत्य लक्ष्मणश्चारुलक्षणः । पुराणि कूबरादीनि प्रजिवाय विराधितम् ॥१०६॥
साभिज्ञानानसौ लेखानुपादाय महर्द्धिकः । कन्याभ्योऽदर्शयद् गत्वा क्रमेण विधिकोविदः ॥१०७॥
सवादजनितानन्दाः पितृभ्यामनुमोदिताः । आजग्मुरनुरूपेण परिवारेण संगताः ॥१०८॥
[2]दशाङ्गभोगनगरस्वामिनः कुलिशश्रुतेः[3] । प्राप्ता रूपवती नाम कन्या रूपवती परा ॥१०९॥
कूबरस्थाननाथस्य वालिखिल्यस्य देहजा । सर्वकल्याणमालाख्या प्राप्ता परमसुन्दरी ॥११०॥
पृथिवीपुरनाथस्य पृथिवीधरभूभृतः । प्रथिता वनमालेति दुहिता समुपागता ॥१११॥
क्षेमाञ्जलिपुरेशस्य जितशत्रोर्महीक्षितः । जितपद्मेति विख्याता तनया समुपागमत् ॥११२॥
उज्जयिन्यादितोऽप्येता नगराद् राजकन्यकाः । जन्मान्तरकृतात् पुण्यात् परमात्पतिमीदृशम् ॥११३॥

प्राप्त हुए राम-लक्ष्मण लंकामे इस प्रकार रहे जिस प्रकार कि स्वर्गकी नगरीमे दो देव रहते हैं ॥९८॥ इन्द्रके नगरके समान अत्यधिक भोगोको देनेवाले उस नगरमे विद्याधर लोग नदियों और तालावो आदिके तटोपर आनन्दसे वैठते थे ॥९९॥ दिव्य अलंकार, पान, वस्त्र, इच्छानुसार हार और विलेपन आदिसे सहित वे सब विद्याधर अपनी-अपनी स्त्रियोके साथ उस लंकामे देवोके समान क्रीड़ा करते थे ॥१००॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीताका मुख सूर्यकी किरणोसे व्याप्त सफेद कमलके भीतरी भागके समान कान्तियुक्त था, उसे देखते हुए श्रीराम तृप्तिको प्राप्त नही हो रहे थे ॥१०१॥ उस अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीके साथ राम निरन्तर मनोहर भूमियोमे क्रीड़ा करते थे ॥१०२॥ जिन्हे इच्छा करते ही सर्व वस्तुओका समागम प्राप्त हो रहा था ऐसे राम-लक्ष्मण विशल्या सुन्दरीके साथ अलग ही प्रीतिको प्राप्त हो रहे थे ॥१०३॥ वे यद्यपि हम कल चले जावेंगे, ऐसा मनमे संकल्प करते थे तथापि विभीषणादिका उत्तम प्रेम पाकर 'जाना' इनकी स्मृतिसे छूट जाता था ॥१०४॥ इस प्रकार रति और भोगोपभोगकी सामग्रीसे युक्त राम-लक्ष्मणके सुखसे भोगे जानेवाले अनेक वर्ष एक दिनके समान व्यतीत हो गये ॥१०५॥

अथानन्तर किसी दिन सुन्दर लक्षणोके धारक लक्ष्मणने स्मरण कर विराधितको कूवरादि नगर भेजा ॥१०६॥ सो महाविभूतिके धारक एवं सब प्रकारकी विधि मिलानेमे निपुण विराधितने क्रम-क्रमसे जाकर कन्याओंके लिए परिचायक चिह्नोके साथ लक्ष्मणके पत्र दिखाये ॥१०७॥ तदनन्तर शुभ-समाचारसे जिन्हे हर्ष उत्पन्न हुआ था और माता-पिताने जिन्हे अनुमति दे रखी थी ऐसी वे कन्याएँ अनुकूल परिवारके साथ वहाँ आयी ॥१०८॥ कहाँ-कहाँसे कौन-कौन कन्याएँ आयी थी इसका सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है। दशपुर नगरके स्वामी राजा वज्रकर्णकी रूपवती नामकी अत्यन्त सुन्दरी कन्या आयी थी ॥१०९॥ कूबर स्थान नगरके राजा वालिखिल्यकी सर्वकल्याणमाला नामकी सुन्दरी पुत्री आयी ॥११०॥ पृथिवीपुर नगरके राजा पृथिवीधरकी प्रसिद्ध पुत्री वनमाला आयी ॥१११॥ क्षेमांजलिपुरके राजा जितशत्रुकी प्रसिद्ध पुत्री जितपद्मा आयी ॥११२॥ इनके सिवाय उज्जयिनी आदि नगरोसे आयी हुईं राजकन्याओने जन्मान्तरमें किये हुए

१. विद्या- म । २. देशांग- म. । ३. श्रुते म. ।

दमदानदयायुक्तं शीलाढ्यं गुरुसाक्षिकम् । न ह्युत्तमं तपोऽकृत्वा प्राप्यते पतिरीदृशः ॥११४॥
नूनं नास्तमिते भानौ युक्तं साध्वी न दूषिता । विमानिता न दिग्वस्त्रा जातोऽयं पतिरीदृशः ॥११५॥
योग्यो नारायणस्तासां योग्या नारायणस्य ताः । अन्योऽन्यं तेन ताभिश्च गृहीतं सुरतामृतम् ॥११६॥
न सा संपन्न[1] सा शोभा न सा लीला न सा कला । तस्य तासां च या नासीत् तत्र श्रेणिक का कथा॥११७॥
कथं पद्मं कथं चन्द्रः कथं लक्ष्मीः कथं रतिः । मण्यतां[2] सुन्दरत्वेन श्रु वा तं किल तास्तथा ॥११८॥
रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा संपदं तां तथाविधाम् । विद्याधरजनौघानां विस्मयः परमोऽभवत् ॥११९॥
चन्द्रवर्द्धनजातानामपि सगमनी कथा । कर्तव्या सुमहानन्दा विवाहस्य च सूचनी ॥१२०॥
पद्मनाभस्य कन्यानां सर्वासां संगमस्तथा । स विवाहोऽभवत्सर्वलोकानन्दकरः परः ॥१२१॥
यथेप्सितमहाभोगसंबन्धसुखभागिनौ । ताविन्द्राविव लङ्कायां रेमाते प्रमदान्वितौ ॥१२२॥
वैदेहीदेहविन्यस्तसमस्तेन्द्रियसंपद । वर्षाणि षडतीतानि लङ्कायां सीरलक्ष्मणः[3] ॥१२३॥
सुखार्णवे निमग्नस्य चारुचेष्टाविधायिनः । काकुत्स्थस्य तदा सर्वमन्यत्स्मृतिपथाच्च्युतम् ॥१२४॥
एवं तावदिदं वृत्तं कथान्तरमिदं पुनः । पापक्षयकरं भूप शृणु तत्परमानसः ॥१२५॥
असाविन्द्रजितो योगी भगवान् सर्वपापहा । विद्यालब्धिसुसंपन्नो विजहार महीतलम् ॥१२६॥
[4]वैराग्यानिलयुक्तेन सम्यक्त्वारणिजन्मना । कर्मकक्षं महाघोरमदहद्ध्यानवह्निना ॥१२७॥

परम पुण्यसे ऐसा पति प्राप्त किया ॥११३॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक ! दम, दान और दयासे युक्त, शीलसे सहित एवं गुरुकी साक्षीपूर्वक लिये हुए उत्तम तपके किये बिना ऐसा पति नही प्राप्त हो सकता ॥११४॥ सूर्यास्त होनेपर जिसने भोजन नही किया है, जिसने कभी आर्यिकाको दोष नही लगाया है और दिगम्बर मुनि जिसके द्वारा अपमानित नही हुए, उसी स्त्रीका ऐसा पति होता है ॥११५॥ नारायण उन सबके योग्य थे और वे सब नारायणके योग्य थी, इसीलिए नारायण और उन स्त्रियोने परस्पर सम्भोगरूपी अमृत ग्रहण किया था ॥११६॥ हे श्रेणिक ! न तो वह सम्पत्ति थी, न वह शोभा थी, न वह लीला थी और न वह कला थी जो लक्ष्मण और उनकी उन स्त्रियोमे न पायी जाती फिर औरकी क्या कथा की जाये ? ॥११७॥ सौन्दर्यकी अपेक्षा उनके मुखको देखकर कहा जाये कि कमल क्या है ? चन्द्रमा क्या है ? और उन स्त्रियोको देखकर कहा जाये कि लक्ष्मी क्या है ? और रति क्या है ? ॥११८॥ राम-लक्ष्मणकी उस-उस प्रकारकी सम्पदाको देखकर विद्याधरजनोको बड़ा आश्चर्य हो रहा था ॥११९॥ यहाँ चन्द्रवर्धनकी पुत्रियोका समागम कराने तथा उनके विवाहकी आनन्दमयी सूचना देनेवाली कथाका निरूपण करना भी उचित जान पड़ता है ॥१२०॥ उस समय श्रीराम तथा चन्द्रवर्धनकी समस्त कन्याओका समागम करानेवाला वह विवाहोत्सव हुआ जो समस्त लोगोको परम आनन्दका करनेवाला था ॥१२१॥ इच्छानुसार महाभोगोके सम्बन्धसे सुखको प्राप्त होनेवाले वे राम-लक्ष्मण, अपनी-अपनी स्त्रियोके साथ लंकामे इन्द्र-प्रतीन्द्रके समान क्रीड़ा करते थे ॥१२२॥ जिनकी समस्त इन्द्रियोकी सम्पदा सीताके शरीरके आधीन थी, ऐसे श्रीरामको लंकामे रहते हुए छह वर्ष व्यतीत हो गये ॥१२३॥ उस समय उत्तम चेष्टाओके धारक रामचन्द्र सुखके सागरमे ऐसे निमग्न हुए कि अन्य सब कुछ उनकी स्मृतिके मार्गसे च्युत हो गया ॥१२४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस प्रकारकी यह कथा तो रहने दो अब एकाग्र चित्त हो पापका क्षय करनेवाली दूसरी कथा सुनो ॥१२५॥

अथानन्तर समस्त पापोको नष्ट करनेवाले भगवान् इन्द्रजित् मुनिराज अनेक ऋद्धियोकी प्राप्तिसे युक्त हो पृथिवीतलपर विहार करने लगे ॥१२६॥ उन्होने वैराग्यरूपी पवनसे युक्त तथा सम्यग्दर्शनरूपी वाससे उत्पन्न ध्यानरूपी अग्निके द्वारा कर्मरूपी भयकर वनको भस्म कर दिया

---

१. सपन्नता म. । २ रम्यताम् म. । ३. रामस्य । ४. वैराग्यानलयुक्तेन ज. ।

[1]मेघवाहोऽनगारोऽपि विषयेन्धनपावकः । केवलज्ञानतः प्राप्तः स्वभावं जीवगोचरम् ॥१२८॥
तयोरनन्तरं सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितः । शुक्ललेश्याविशुद्धात्मा [2]कलशश्रवणो मुनिः ॥१२९॥
पश्यंल्लोकमलोकं च केवलेन तथाविधम् । विरजस्कः परिप्राप्तः परमं पदमच्युतम् ॥१३०॥
सुरासुरजनाधीशैरुद्गीतोत्तमकीर्त्तयः । शुद्धशीलधरा दीप्ताः प्रणताश्च महर्षयः ॥१३१॥
गोष्पदीकृतनिःशेषगहनज्ञेयतेजसः । संसारक्लेशदुर्मोचजालबन्धननिर्गताः ॥१३२॥
अपुनःपतनस्थानसंप्राप्तिस्वार्थसंगताः । उपमानविनिर्मुक्तनिष्प्रत्यूहसुखात्मकाः ॥१३३॥
एतेऽन्ये च महात्मानः सिद्धा निर्धूतशत्रवः । दिशन्तु बोधिमारोग्यं श्रोतृणां जिनशासने ॥१३४॥
यशसा परिवीतान्यद्यत्वेऽपि परमात्मनाम् । स्थानानि तानि दृश्यन्ते दृश्यन्ते साधवो न ते ॥१३५॥
विन्ध्यारण्यमहास्थल्यां सार्द्धमिन्द्रजिता[3] यतः । मेघनादः स्थितस्तेन तीर्थं मेघरवं स्मृतम् ॥१३६॥
तूर्णीगतिमहाशैले नानाद्रुमलताकुले । नानापक्षिगणाकीर्णे नानाश्वापदसेविते ॥१३७॥
परिप्राप्तोऽहमिन्द्रत्वं जम्बुमाली महाबलः । अहिंसादिगुणाढ्यस्य किमु धर्मस्य दुष्करम् ॥१३८॥
ऐरावतेऽवतीर्यासौ महाव्रतविभूषणः । कैवल्यतेजसा युक्तः सिद्धस्थानं गमिष्यति ॥१३९॥
अरजा निस्तमो योगी कुम्भकर्णो महामुनिः । निर्वृत्तो नर्मदातीरे तत्तीर्थं पिठरक्षतम् ॥१४०॥
नभोविचारिणीं पूर्वं लब्धिं प्राप्य महाद्युतिः । मयो विहरणं चक्रे स्वेच्छं निर्वाणभूमिषु ॥१४१॥
प्रदेशानृषभादीनां देवागमनसेवितान् । महाद्युतिपरोऽपश्यद्रत्नत्रितयमण्डनः ॥१४२॥

था ॥१२७॥ विषयरूपी ईन्धनको जलानेके लिए अग्निके समान जो मेघवाहन मुनिराज थे वे केवलज्ञान प्राप्त कर आत्मस्वभावको प्राप्त हुए ॥१२८॥ उन दोनोके बाद सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको धारण करनेवाले कुम्भकर्ण मुनिराज भी शुक्ललेश्याके प्रभावसे अत्यन्त विशुद्धात्मा हो केवलज्ञानके द्वारा लोक और अलोकको ज्योका त्यो देखते हुए कर्मधूलिको दूर कर अविनाशी परम पदको प्राप्त हुए ॥१२९-१३०॥ इनके सिवाय सुरेन्द्र, असुरेन्द्र तथा चक्रवर्ती जिनकी उत्तम कीर्तिका गान करते थे, जो शुद्ध शीलके धारक थे, देदीप्यमान थे, गर्व रहित थे, जो समस्त पदार्थरूपी सघन ज्ञेयको गोष्पदके समान तुच्छ करनेवाले तेजसे सहित थे, जो संसारके क्लेशरूपी कठिन बन्धनके जालसे निकल चुके थे, जहाँसे पुनः लौटकर नही आना पडता ऐसे मोक्षस्थानकी प्राप्तिरूपी स्वार्थसे जो सहित थे, अनुपम तथा निर्विघ्न सुख ही जिनका स्वरूप था, जिनकी आत्मा महान् थी, जो सिद्ध थे तथा शत्रुओंको नष्ट करनेवाले थे, ऐसे ये तथा अन्य जो महर्षि थे वे जिनशासनके श्रोता मनुष्योके लिए रत्नत्रयरूपी आरोग्य प्रदान करें ॥१३१-१३४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उनपर महात्माओंका प्रभाव तो देखो कि आज भी उन परमात्माओके यशसे व्याप्त वे दिखाई देते है पर वे साधु नही दिखाई देते ॥१३५॥ विन्ध्यवनकी महाभूमिमे जहाँ इन्द्रजित्के साथ मेघवाहन मुनिराज विराजमान रहे वहाँ आज मेघरव नामका तीर्थं प्रसिद्ध हुआ है ॥१३६॥ अनेक वृक्षो और लताओसे व्याप्त, नाना पक्षियोके समूहसे युक्त एव नाना जानवरोसे सेवित तूणीगति नामका महाशैलपर महाबलवान् जम्बुमाली नामक मुनि अहमिन्द्र अवस्थाको प्राप्त हुआ सो ठीक ही है क्योकि अहिंसादि गुणोंसे युक्त धर्मके लिए क्या कठिन है ? ॥१३७-१३८॥ यह जम्बुमालीका जीव ऐरावत क्षेत्रमे अवतार ले महाव्रतरूपी विभूषणसे अलकृत तथा केवलज्ञानरूपी तेजसे युक्त हो मुक्तिस्थानको प्राप्त होगा ॥१३९॥ रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित महामुनि कुम्भकर्ण योगो नर्मदाके जिस तीरपर निर्वाणको प्राप्त हुए थे वहाँ पिठरक्षत नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ॥१४०॥ महादीप्तिके धारक मय मुनिने आकाशगामिनी ऋद्धि पाकर इच्छानुसार निर्वाण-भूमियोंमे विहार किया ॥१४१॥ रत्नत्रयरूपी मण्डनको

---

१. मेघवाहानगारोऽपि म । २. कुम्भकर्णः । ३. मिन्द्रजितो म. ।

मारीचः कल्पवासित्वं प्राप्यान्ये च महर्षयः । सत्त्वं यथाविध यस्य फलं तस्य तथाविधम् ॥१४३॥
वैदेह्याः पश्य माहात्म्यं दृढव्रतसमुद्भवम् । यथा संपालित शीलं द्विषन्तश्च विवर्जिताः ॥१४४॥
सीताया अतुलं धैर्यं रूपं सुभगता मतिः । कल्याणगुणपूर्णायाः स्नेहबन्धश्च भर्तरि ॥१४५॥
शीलतः स्वर्गगामिन्या स्वभर्तृपरितुष्टया । चरितं रामदेवस्य सीतया साधु भूषितम् ॥१४६॥
एकेन व्रतरत्नेन पुरुषान्तरवर्जिना । स्वर्गारोहणसामर्थ्यं योषितामपि विद्यते ॥१४७॥
मयोऽपि मायया तीव्रः कृत्वा प्राणिवधान् बहून् । प्रपद्य वीतरागत्वं पापलब्धीः[1] सुसंयतः ॥१४८॥
उवाच श्रेणिको नाथ ! श्रुतमिन्द्रजिदादिजम् । माहात्म्यमधुना श्रोतुं वाञ्छामि मयसंभवम् ॥१४९॥
सन्त्यन्याः शीलवत्यश्च नृणां वसुमतीतले । स्वभर्तृनिरतात्मानस्ता नु किं स्वर्गभाविताः ॥१५०॥
गण्यूचे यदि सीताया निश्चयेन व्रतेन च । तुल्याः पतिव्रताः स्वर्गं व्रजन्त्येव गुणान्विताः ॥१५१॥
सुकृतासुकृतास्वादनिस्पन्दीकृतवृत्तयः । शीलवत्यः समा राजन् ननु सर्वा विचेष्टितैः ॥१५२॥
वीरुद्धङ्गेभलोहानामुपलद्रुमवाससाम् । योषितां पुरुषाणां च विशेषोऽस्ति महान्[2] नृप ॥१५३॥
न हि चित्रभृत[3] वल्ल्यां वरर्यां कूष्माण्डमेव वा । एवं न सर्वनारीषु सद्वृत्तं नृप विद्यते ॥१५४॥
पतिव्रताभिमाना [4]प्रागतिवंशसमुद्भवा । शीलाङ्कुशादिनिर्याता प्राप्ता दुर्मतवारणम् ॥१५५॥

धारण करनेवाले तथा महान् धैर्यके धारक उन मय मुनिने देवागमनसे सेवित ऋषभादि तीर्थंकरों-के कल्याणक प्रदेशोंके दर्शन किये ॥१४२॥ मारीच मुनि कल्पवासी देव हुए तथा अन्य महर्षियोंने जिसका जैसा तपोबल था उसने वैसा ही फल प्राप्त किया ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक ! शीलव्रतकी दृढतासे उत्पन्न सीताका माहात्म्य तो देखो कि उसने शीलव्रतका पालन किया तथा शत्रुओंको नष्ट कर दिखाया ॥१४४॥ कल्याणकारी गुणोसे परिपूर्ण सीताका धैर्य, रूप, सौभाग्य, वुद्धि और पति-विषयक स्नेहका बन्धन—सभी अनुपम था ॥१४५॥ जो शीलव्रतके प्रभावसे स्वर्गगामिनी थी तथा अपने पतिमे ही सन्तुष्ट रहती थी ऐसी सीताने श्रीरामदेवके चरितको अच्छी तरह अलंकृत किया था ॥१४६॥ पर-पुरुषका त्याग करनेवाले एक व्रतरूपी रत्न-के द्वारा स्त्रियोंमे भी स्वर्ग प्राप्त करनेकी सामर्थ्य विद्यमान है ॥१४७॥ जिस विकट मायावी मयने पहले अनेक जीवोंका वध किया था, अब उसने भी वीतराग भावको धारण कर उत्तम मुनि हो अनेक ऋद्धियां प्राप्त की थी ॥१४८॥

तदनन्तर राजा श्रेणिकने कहा कि हे नाथ ! मैने इन्द्रजित् आदिका माहात्म्य तो सुन लिया है अब मयका माहाम्य सुनना चाहता हूँ ॥१४९॥ हे भगवन् ! इस पृथिवीतलपर मनुष्योंकी और भी शीलवती ऐसी स्त्रियाँ हुई है जो कि अपने पतिमे ही लीन रही हैं सो क्या वे सब भी स्वर्गको प्राप्त हुई हैं ? ॥१५०॥ इसके उत्तरमे गणधर बोले कि यदि वे निश्चय और व्रतकी अपेक्षा सीताके समान हैं, पातिव्रत्य धर्मसे सहित एव अनेक गुणोसे युक्त है तो नियमसे स्वर्गको ही जाती हैं ॥१५१॥ हे राजन् ! पुण्य-पापका फल भोगनेमें जिनकी आत्मा निश्चल है अर्थात् जो समता भावसे पूर्वकृत पुण्य-पापका फल भोगती है ऐसी सभी शीलवती स्त्रियाँ अपनी चेष्टाओसे समान ही होती हैं ॥१५२॥ वैसे हे राजन् ! लता, घोड़ा, हाथी, लोहा, पाषाण, वृक्ष, वस्त्र, स्त्री और पुरुष इनमे परस्पर वड़ा अन्तर होता है ॥१५३॥ जिस प्रकार हर एक लतामे न ककड़ी फलती है और न कुम्हड़ा ही, इसी प्रकार हे राजन् ! सब स्त्रियोंमे सदाचार नही पाया जाता ॥१५४॥ पहले अति-वंशमे उत्पन्न हुई एक अभिमाना नामकी स्त्री हो गयी है जो अपने आपको पतिव्रता प्रकट करती थी किन्तु यथार्थमे शीलरूपी अकुशसे रहित हो दुर्मतरूपी वारणको प्राप्त हुई थी। भावार्थ—

---

१ प्राप लब्धी म । २ महानृप. म । ३ चित्रभृत ख, कर्कटिका (श्रीचन्द्रमुनिकृतटिप्पण्याम्)। ४ च प्रति- म ।

लोकशास्त्रातिनिःसारसृणिना नैष शक्यते । वशीकर्तुं[1] मनोहस्ती कुगतिं नयते ततः ॥१५६॥
सर्वज्ञोक्त्यङ्कुशेनैव[1] दयासौख्यान्विते पथि । शक्यो योजयितुं युक्तमतिना भव्यजन्तुना ॥१५७॥
शृणु संक्षेपतो वक्ष्येऽभिमानाशीलवर्णनम् । परम्परासमायातमाख्यानकं विपश्चिताम् ॥१५८॥
आसीज्जनपदो यस्मिन् काले रोगानिलाहतः । धान्यग्रामात्तदा पत्न्या सहैको निर्गतो द्विजः ॥१५९॥
आसीन्नोदननामासावभिमानाभिधाङ्गना । अग्निनाम्ना समुत्पन्ना मानिन्यामभिमानिनी ॥१६०॥
नोदनेनाभिमानासौ क्षुद्बाधाविह्वलात्मना । त्यक्ता[2] गजवने प्राप्ता पतिं कररुहं नृपम् ॥१६१॥
पुष्पप्रकीर्णनगरस्वामी लब्धप्रसादया । पादेन मस्तके जातु तयासौ ताडितो रतौ ॥१६२॥
आस्थानस्थः प्रभातेऽसौ पर्यपृच्छद् बहुश्रुतान् । पादेनाहन्ति यो राजशिरस्तस्य किमिष्यते ॥१६३॥
तस्मिन् बहवः प्रोचुः सभ्याः पण्डितमानिनः । यथास्य छिद्यते पादः प्राणैर्वा स वियोज्यताम् ॥१६४॥
हेमाङ्कस्तत्र नामैको विप्रोऽभिप्रायकोविदः । जगाद तस्य पादोऽसौ पूजां संप्राप्यतां पराम् ॥१६५॥
कोविदः कथमीदृक् त्वमिति पृष्टः स भूभृता । इष्टस्त्रीदन्तशस्त्रीयं[3] क्षतमिष्टं स्वमैक्षयत् ॥१६६॥
अभिप्रायविदित्येष हेमाङ्कस्तेन भूभृता । प्रापितः परमामृद्धिं सर्वेभ्यश्चान्तरं गतम्[4] ॥१६७॥
हेमाङ्कस्य गृहे तस्य नाम्ना मित्रयशाः सती । अमोघशरसंज्ञस्य भार्गवस्य प्रियावसत् ॥१६८॥

इस प्रकार झूठ-मूठ ही पतिव्रताका अभिमान रखनेवाली स्त्री पतिव्रता नही है ॥१५५॥ यह मन-रूपी हाथी लौकिक शास्त्ररूपी निर्बल अंकुशके द्वारा वश नहीं किया जा सकता इसलिए वह इस जीवको कुमतिमे ले जाता है ॥१५६॥ उत्तम बुद्धिको धारण करनेवाला भव्यजीव, जिनवाणीरूपी अंकुशके द्वारा ही मनरूपी हाथीको दया और सुखसे सहित समीचीन मार्गमें ले जा सकता है ॥१५७॥ गौतम स्वामी कहते है कि अब मैं विद्वानोके बीच परम्परासे आगत अभिमानाके शील वर्णनकी कथा संक्षेपमे कहता हूँ सो सुन ॥१५८॥

वे कहने लगे कि जिस समय समस्त देश रोगरूपी वायुसे पीड़ित था उस समय धान्यग्राम-का रहनेवाला एक ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ उस ग्रामसे बाहर निकला ॥१५९॥ उस ब्राह्मणका नाम नोदन था और उसकी स्त्रीका नाम अभिमाना था। अभिमाना अग्निनामक पितासे मानिनी नामक स्त्रीमे उत्पन्न हुई थी तथा अत्यधिक अभिमानको धारण करनेवाली थी ॥१६०॥ तदनन्तर भूखकी बाधासे जिसकी आत्मा विह्वल हो रही थी ऐसे नोदनने अभिमानाको छोड़ दिया। धीरे-धीरे अभिमाना हाथियोके वनमे पहुँची वहाँ उसने राजा कररुहको अपना पति बना लिया ॥१६१॥ राजा कररुह पुष्पप्रकीर्ण नगरका स्वामी था। तदनन्तर जिसे पतिकी प्रसन्नता प्राप्त थी ऐसी उस अभिमानाने किसी समय रतिकालमें राजा कररुहके शिरमें अपने पैरसे आघात किया अर्थात् उसके शिरमे लात मारी ॥१६२॥ दूसरे दिन प्रभात होनेपर जब राजा सभामे बैठा तब उसने बहुश्रुत विद्वानोसे पूछा कि जो राजाके शिरको पैरके आघातसे पीड़ित करे उसका क्या करना चाहिए ॥१६३॥ राजाका प्रश्न सुन सभामे अपने आपको पण्डित माननेवाले जो बहुत-से सभासद बैठे थे उन्होने कहा कि उसका पैर काट दिया जाये अथवा उसे प्राणोंसे वियुक्त किया जाये ? ॥१६४॥ उसी सभामें राजाके अभिप्रायको जाननेवाला एक हेमांक नामका ब्राह्मण भी बैठा था सो उसने कहा कि राजन्, उसके पैरकी अत्यधिक पूजा की जाये अर्थात् अलकार आदिसे अलंकृत कर उसका सत्कार किया जाये ॥१६५॥ राजाने उससे पूछा कि तुम इस प्रकार विद्वान् कैसे हुए अर्थात् तुमने यथार्थ बात कैसे जान ली ? तब उसने कहा कि इष्ट स्त्रीके इस दन्तरूपी शस्त्रने अपने इष्टको अपने द्वारा घायल दिखलाया है अर्थात् आपके ओठमे स्त्रीका दन्तघात देखकर मैंने सब रहस्य जाना है ॥१६६॥ यह सुन राजाने 'यह अभिप्रायका जाननेवाला है' ऐसा समझ हेमांकको बहुत सम्पदा दी तथा अपनी निकटता प्राप्त करायी ॥१६७॥ हेमांकके घरमे अमोघशर नामक ब्राह्मणकी मित्रयशा

---

1. अंकुशेन म.। 2. त्यक्त्वा म.। 3. दृष्टस्त्रीदन्तशस्त्री ज., म.। 4. गता म ।

विधवा दु खिनी तस्मिन् वसन्ती भवने सुतम् । अशिक्षयदसावेवं स्मृतभर्तृगुणोत्करा ॥१६९॥
सुनिश्चितात्मना येन बाल्ये विद्यागमः कृत. । हेमाङ्कस्य द्युतिं तस्य विदुषः पश्य पुत्रक ॥१७०॥
शरविज्ञाननिर्धूतसर्वभार्गवसंपदः । पितुस्तथाविधस्य त्वं तनयो बालिशोऽभवः ॥१७१॥
बाष्पविप्लुतनेत्रायाः श्रुत्वा मातुर्वचस्तदा । प्रशाम्यतां गतो विद्यां शिक्षितुं सोऽभिमानवान् ॥१७२॥
ततो व्याघ्रपुरे सर्वाः कलाः प्राप्य गुरोर्गृहे । तत्प्रदेशसुकान्तस्य सुतां हृत्वा विनिर्गत. ॥१७३॥
तस्या. शीलाभिधानायाः कन्यकाया. सहोदरः । सिंहेंदुरिति निर्यातो युद्धार्थी पुरुविक्रमः[1] ॥१७४॥
एकको बलसंपन्ने जित्वा सिंहेन्दुमाहवे । श्रीवर्द्धितोऽन्वितो मात्रा संप्राप्तः परमां धृतिम् ॥१७५॥
महाविज्ञानयुक्तेन तेन प्रख्यातकीर्त्तिना । लब्धं कररुहाद्राज्यं नगरे पोदनाह्वये ॥१७६॥
सुकान्ते पञ्चता प्राप्ते सिंहेन्दुर्द्युतिशत्रुणा । अभिभूतः समं देव्या निरैद्गेहात् सुरङ्गया ॥१७७॥
संभ्रान्त शरणं गच्छन् भगिनी खेदवान् भृशम् । प्राप्तस्ताम्बूलिकैर्भारं वाहितः सह भार्यया ॥१७८॥
भानावस्तंगतेऽभ्याशं[2] पोदनस्य स संगतः । मुक्तो राजभटै[3] रात्रौ त्रासितो गहनं श्रितः ॥१७९॥
महोरगेण संदष्टस्तं देवी परिदेविनी[4] । कृत्वा स्कन्धे परिप्राप्ता देशं यत्र मयः स्थितः ॥१८०॥
वज्रस्तम्भसमानस्य प्रतिमास्थानमीयुषः । महालब्धे' समीपस्य पादयोस्तमतिष्ठिपत् ॥१८१॥

नामकी पतिव्रता पत्नी रहती थी। वह बेचारी विधवा तथा दु.खिनी होकर उसी घरमे निवास करती और अपने पतिके गुणोका स्मरण कर पुत्रको ऐसी शिक्षा देती थी ॥१६८–१६९॥ कि हे पुत्र ! जिसने बाल्य अवस्थामे निश्चिन्त चित्त होकर विद्याभ्यास किया था उस विद्वान् हेमांकका प्रभाव देख ॥१७०॥ जिसने बाणविद्याके द्वारा समस्त ब्राह्मणो अथवा परशुरामकी सम्पदाको तिरस्कृत कर दिया था उस पिताके तू ऐसा मूर्ख पुत्र हुआ है ॥१७१॥ आँसुओसे जिसके नेत्र भर रहे थे ऐसो माताके वचन सुन उसका श्रीवर्धित नामका अभिमानी बालक माताको सान्त्वना देकर उसी समय विद्या सीखनेके लिए चला गया ॥१७२॥

तदनन्तर व्याघ्रपुर नगरमे गुरुके घर समस्त कलाओको सीख विद्वान् हुआ और वहांके राजा सुकान्तकी पुत्रीका हरणकर वहाँसे निकल भागा ॥१७३॥ पुत्रीका नाम शीला था और उसके भाईका नाम सिंहेन्दु था, सो प्रबल पराक्रमका धारक सिंहेन्दु बहनको वापस लानेके लिए युद्धकी इच्छा करता हुआ निकला ॥१७४॥ परन्तु श्रीवर्धित अस्त्र-शस्त्रमे इतना निपुण हो गया था कि उसने अकेले ही सेनासे युक्त सिंहेन्दुको युद्धमे जीत लिया और वह घर आकर तथा मातासे मिलकर परम सन्तोपको प्राप्त हुआ ॥१७५॥ श्रीवर्धित महाविज्ञानी तो था ही धीरे-धीरे उसका यश भी प्रसिद्ध हो गया, अतः उसे राजा कररुहसे पोदनपुर नगरका राज्य मिल गया ॥१७६॥ कालक्रमसे जब व्याघ्रपुरका राजा सुकान्त मृत्युको प्राप्त हो गया तब द्युतिनामक शत्रुने उसके पुत्र सिंहेन्दुपर आक्रमण किया जिससे भयभीत हो वह अपनी स्त्रीके साथ एक सुरंग द्वारा घरसे बाहर निकल गया ॥१७७॥ वह अत्यन्त घबड़ा गया था तथा बहुत खिन्न होता हुआ बहनकी शरणमे जा रहा था। मार्गमे तम्बोलियोका साथ हो गया सो उनका भार शिरपर रखते हुए वह अपनी स्त्री सहित सूर्यास्त होनेके बाद पोदनपुरके समीप पहुँचा। वहाँ राजाके योद्धाओने उसे पकड़कर धमकाया सो जिस-किसी तरह छूटकर भयभीत होता हुआ वनमे पहुँचा ॥१७८–१७९॥ सो वहाँ एक महासर्पने उसे डँस लिया जिससे विलाप करती हुई उसकी स्त्री उसे कन्धेपर रखकर उस स्थानपर पहुँची जहाँ मयमुनि विराजमान थे ॥१८०॥ महाऋद्धियोके धारक मयमुनि प्रतिमा योग धारणकर वज्र स्तम्भके समान निश्चल खड़े थे, रानीने सिंहेन्दुको उनके चरणोके समीप

---

१. पुरविक्रम. म । २ ऽभ्यास म । ३ राजन् म. । ४. परिदेवनी म. ।

पादौ मुनेः परामृश्य पत्युर्गात्रं [1]समास्पृशत् । देवी ततः परिप्राप्तः सिंहेन्दुर्जीवितं पुनः ॥१८२॥
चैत्यस्य वन्दनां कृत्वा भक्त्या केसरिचन्द्रमाः । प्रणनाम मुनिं भूयो भूयो दयितया समम् ॥१८३॥
उद्गते भास्करे साधुः समाप्तनियमोऽभवत् । प्राप्तो विनयदत्तस्तं वन्दनार्थमुपासकः ॥१८४॥
संदेशाच्छ्रावको गत्वा पुरं श्रीवर्द्धिताय तम् । सिंहेन्दुं प्राप्तमाचख्यौ श्रुत्वा संनद्धुमुद्यतः ॥१८५॥
ततो यथावदाख्याते प्रीतिसंगतमानसः । महोपचारशेमुष्या श्यालं श्रीवर्द्धितोऽगमत् ॥१८६॥
ततो बन्धुसमायोगं प्राप्तः परमसमदः । श्रीवर्द्धितः सुखासीनं पप्रच्छेति मयं नतः ॥१८७॥
भगवन् ज्ञातुमिच्छामि पूर्वं जननमात्मनः । स्वजनानां च सत्साधुस्ततो वचनमब्रवीत् ॥१८८॥
आसीच्छोभपुरे नाम्ना भद्राचार्यो दिगम्बरः । अमलाख्यः पुरस्यास्य स्वामी गुणसमुत्करः ॥१८९॥
स तं प्रत्यहमाचार्यं सेवितुं याति सन्मनाः । अन्यदा गन्धमाजघ्रौ देशे तत्र सुदुःसहम् ॥१९०॥
स तं गन्धं समाघ्राय कुष्टिन्यङ्गसमुद्गतम् । पद्भ्यामेव निजं गेहं गतोऽसहनको द्रुतम् ॥१९१॥
अन्यतः कुष्टिनी सा तु प्राप्ता चैत्यान्तिके तदा । विश्रान्ताऽऽसीद्व्रणेभ्योऽस्या दुर्गन्धोऽसौ विनिर्ययौ॥१९२
अणुव्रतानि सा प्राप्य भद्राचार्यसकाशतः । देवलोकं गता च्युत्वासौ कान्ता शीलवत्यभूत् ॥१९३॥
यस्त्वसावमलो राजा पुत्रन्यस्तनृपक्रियः । सतुष्टः सोऽष्टभिर्ग्रामैः श्रावकत्वमुपाचरत् ॥१९४॥

लिटा दिया ॥१८१॥ सिंहेन्दुकी स्त्रीने मुनिराजके चरणोका स्पर्श कर पतिके शरीरका स्पर्श किया जिससे वह पुनः जीवित हो गया ॥१८२॥ तदनन्तर सिंहेन्दुने भक्तिपूर्वक प्रतिमाकी वन्दना की और उसके वाद आकर अपनी स्त्रीके साथ वार-वार मुनिराजको प्रणाम किया ॥१८३॥

अथानन्तर सूर्योदय होनेपर मुनिराजका नियम समाप्त हुआ, उसी समय वन्दनाके लिए विनयदत्त नामका श्रावक उनके समीप आया ॥१८४॥ सिंहेन्दुके सन्देशसे श्रावकने नगरमे जाकर श्रीवर्धितके लिए वताया कि राजा सिंहेन्दु आया है। यह सुन श्रीवर्धित युद्धके लिए तैयार हो गया ॥१८५॥

तदनन्तर जव यथार्थ वात मालूम हुई तव प्रीतियुक्त चित्त होता हुआ श्रीवर्धित सम्मान करनेकी भावनासे अपने सालेके पास गया ॥१८६॥ तत्पश्चात् इष्टजनोका समागम प्राप्त कर हर्षित होते हुए श्रीवर्धितने सुखसे वैठे हुए मय मुनिराजसे विनयपूर्वक पूछा कि हे भगवन् ! मै अपने तथा अपने परिवारके लोगोंके पूर्वभव जानना चाहता हूँ। तदनन्तर उत्तम मुनिराज इस प्रकार वचन वोले कि ॥१८७–१८८॥

शोभपुर नगरमे एक भद्राचार्य नामक दिगम्बर मुनिराज थे। उस नगरका राजा अमल था जो कि गुणोके समूहसे सुशोभित था ॥१८९॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला अमल प्रतिदिन उन आचार्यकी सेवा करनेके लिए आता था। एक दिन आनेपर उसे उस स्थानपर अत्यन्त दुःसह दुर्गन्ध आयी ॥१९०॥

कोढिनीके शरीरसे उत्पन्न हुई वह दुर्गन्ध इतनी भयंकर थी कि राजा उसे सहन नही कर सका और पैदल ही शीघ्र अपने घर चला गया ॥१९१॥ वह कोढ़िनी स्त्री किसी अन्य स्थानसे आकर उस मन्दिरके समीप ठहरी थी, उसीके घावोसे वह दुर्गन्ध निकल रही थी ॥१९२॥ उस स्त्रीने भद्राचार्यके पास अणुव्रत धारण किये जिसके फलस्वरूप वह मरकर स्वर्ग गयी और वहाँसे च्युत होकर यह शीला नामक तुम्हारी स्त्री हुई है ॥१९३॥ वहाँ जो अमल नामका राजा था उसने सव राज्यकार्य पुत्रके लिए सौंप दिया और स्वयं वह आठ गाँवोसे

---

१. समापृशत् म. ।

देवलोकमसौ गत्वा च्युतः श्रीवर्द्धितोऽभवत् । अधुना पूर्वकं जन्म मातुस्तव वदाम्यहम् ॥१९५॥
एको वैदेशिको भ्राम्यन् ग्रामं क्षुद्व्याधितोऽविशत् । स भोजनगृहे भुक्तिमलब्ध्वा कोपसंगतः ॥१९६॥
सर्वं ग्रामं दहामीति निगद्य [1]कटुकस्वरम् । निष्क्रान्तः सुप्तितोऽसौ च ग्रामः प्राप्तः प्रदोपनम् ॥१९७॥
ग्राम्यैरानीय सक्रुद्धैः [2]क्षिप्तोऽसौ तत्र पावके । मृतो दुःखेन संभूतः सूपकारी नृपालये ॥१९८॥
ततो मृता परिप्राप्ता नरकं घोरवेदनम् । तस्मादुत्तीर्य माताऽभूत्तव मित्रयशोऽभिधा ॥१९९॥
बभूव पोदनस्थाने नाम्ना गोवाणिजो महान् । भुजपत्रेति तद्भार्या सौक्रान्ति. सोऽभवन्मृतः ॥२००॥
भुजपत्रापि जातास्य कामिनी रतिवर्द्धनी । पीडनाद् गर्दभादोनां पुरा भार च वाहितौ ॥२०१॥
एवमुक्त्वा मयो व्योम भासयन् स्वेप्सितं ययौ । श्रीवर्द्धितोऽपि नगरं प्राप्तबन्धुसमागमः ॥२०२॥
पूर्वभाग्योदयाद्राजन् संसारे चित्रकर्मणि । राज्यं कश्चिदवाप्नोति प्राप्तं नश्यति कस्यचित् ॥२०३॥
अप्येकस्माद्गुरोः प्राप्य जन्तूनां धर्मसंगतिम्[3] । निदाननिर्निदानाभ्यां मरणाभ्यां पृथग्गति. ॥२०४॥
उत्तरन्त्युदधिं केचिद्रत्नपूर्णाः सुखान्विताः । मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्धनाधिपाः ॥२०५॥
इति ज्ञात्वात्मनः श्रेयः सदा कार्यं मनीषिभिः । दयादमतप शुद्ध्या[4] विनयेनागमेन वा ॥२०६॥
सकलं पोदनं नूनं तदा मयवचःश्रुते । उपशान्तमभूद्धर्मगतचित्तं[5] नराधिप ॥२०७॥

सन्तुष्ट हो श्रावक हो गया ॥१९४॥ आयुके अन्तमे वह स्वर्ग गया और वहाँसे च्युत हो श्रीवर्धित हुआ। इतना कहकर मय मुनिराजने कहा कि अब मै तुम्हारी माताका पूर्वभव कहता हूँ ॥१९५॥

एक बार एक विदेशी मनुष्य भूखसे पीड़ित हो घूमता हुआ नगरमे प्रविष्ट हुआ। नगरकी भोजनशालामे भोजन न पाकर वह कुपित होता हुआ कटुक शब्दोमे यह कहकर बाहर निकल गया कि 'मै समस्त गाँवको अभी जलाता हूँ'। भाग्यकी बात कि उसी समय गाँवमे आग लग गयी ॥१९६-१९७॥ तब क्रोधसे भरे ग्रामवासियोने उसे लाकर उसी अग्निमे डाल दिया, जिससे दुःखपूर्वक मरकर वह राजाके घर रसोइन हुआ ॥१९८॥ तदनन्तर मरकर घोर वेदनासे युक्त नरक पहुँची और वहाँसे निकलकर तुम्हारी माता मित्रयशा हुई है ॥१९९॥ पोदनपुरमे एक गोवाणिज नामका बड़ा गृहस्थ था, भुजपत्रा उसकी स्त्रीका नाम था। गोवाणिज मरकर सिंहेन्दु हुआ और भुजपत्रा उसकी रतिवर्धनी नामकी स्त्री हुई। इन दोनोंने पूर्वभवमे गर्दभ आदि पशुओंपर अधिक बोझ लाद-लाद उन्हे पीड़ा पहुँचायी थी इसलिए उन्हे भी तम्बोलियोका भार उठाना पड़ा ॥२००-२०१॥ इस प्रकार कहकर मय मुनिराज आकाशको देदीप्यमान करते हुए अपने इच्छित स्थानपर चले गये और श्रीवर्धित भी इष्टजनोका समागम प्राप्तकर नगरमे चला गया ॥२०२॥

गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! इस विचित्र संसारमे पूर्वकृत भाग्यका उदय होनेपर कोई राज्यको प्राप्त होता है और किसीका प्राप्त हुआ राज्य नष्ट हो जाता है ॥२०३॥ एक ही गुरुसे धर्मकी संगति पाकर निदान अथवा निदानरहित मरणसे जीवोकी गति भिन्न-भिन्न होती है ॥२०४॥

रत्नोसे पूर्णताको प्राप्त हुए कितने ही धनेश्वरी मनुष्य सुखपूर्वक समुद्रको पार करते हैं, कितने ही बीचमे डूब जाते हैं और कितने ही तटपर डूब मरते है ॥२०५॥ ऐसा जानकर बुद्धिमान् मनुष्योको सदा दया, दम, तपश्चरणकी शुद्धि, विनय तथा आगमके अभ्याससे आत्माका कल्याण करना चाहिए ॥२०६॥ हे राजन् ! उस समय मय मुनिराजके वचन सुनकर समस्त

---

१ कटुक. स्वरम् म. । २ संक्रुद्ध. । ३. धर्मसगति. म, ख., ज. । ४ तपस्तुष्टचा ज । ५. चित्त म. ।

आर्याच्छन्दः

ईदृग्गुणो विधिज्ञः प्रासुविहारी मयः प्रशान्तात्मा ।
पण्डितमरणं प्राप्तोऽभूदीशाने सुरश्रेष्ठः ॥२०८॥
एतन्मयस्य साधोर्माहात्म्यं ये पठन्ति सच्चित्ताः ।
अरयः क्रव्यादा वा हिंसन्ति न तान् कदाचिदपि ॥२०९॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मयोपाख्यानं नामाऽशीतितमं पर्व ॥८०॥



पोदनपुर अत्यन्त शान्त हो गया तथा धर्ममे उसका चित्त लग गया ॥२०७॥ इस प्रकारके गुणोसे युक्त, धर्मकी विधिको जाननेवाले, प्रशान्त चित्त तथा प्रासुक स्थानमे विहार करनेवाले मय मुनिराज, पण्डितमरणको प्राप्त हो श्रेष्ठ देव हुए ॥२०८॥ इस तरह जो उत्तम चित्त होकर मय मुनिराजके इस माहात्म्यको पढ़ते हैं, शत्रु अथवा मांसभोजी सिंहादि उनकी कभी भी हिंसा नहीं करते ॥२०९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे मय मुनिराजकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला अस्सीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८०॥

एकाशीतितमं पर्व

ब्रह्मलोकसमाकारां लक्ष्मीं लक्ष्मणपूर्वजः । [1]चन्द्राङ्कचूडदेवेन्द्रप्रतिमोऽनुभवन्नसौ ॥१॥
भर्तृपुत्रवियोगाग्निज्वालाशोषितविग्रहाम् । विस्मृतः कथमेकान्तं जननीमपराजिताम्[2] ॥२॥
सप्तमं तलमारूढा प्रासादस्य सखीवृता । उद्विग्नास्रप्रपूर्णाक्षा नवधेनुरिवाकुला[3] ॥३॥
[4]वीक्षते सा दिशः सर्वाः पुत्रस्नेहपरायणा । काङ्क्षन्ती दर्शनं तीव्रशोकसागरवर्त्तिनी ॥४॥
पताकाशिखरे तिष्ठन्नुत्पतोत्पतवायस[5] । पद्मः पुत्रो ममाऽऽयातु तव दास्यामि पायसम् ॥५॥
इत्युक्त्वा चेष्टितं तस्य ध्यात्वा ध्यानं मनोहरम् । विलापं कुरुते [6]नेत्रवाष्पदुर्दिनकारिणी ॥६॥
हा वत्सक क यातोऽसि सततं सुखलालितः । विदेशभ्रमणे प्रीतिस्तव केयं समुद्गता ॥७॥
पादपल्लवयोः पीडां प्राप्नोषि परुषे पथि । विश्रमिष्यसि कस्याधो गहनस्योत्कटश्रमः ॥८॥
मन्दभाग्यां परित्यज्य मकामत्यर्थदुःखिताम् । यातोऽसि कतमामाशां [7]भ्रात्रा पुत्रक संगतः ॥९॥
[8]परदेवनमारेभे सा कर्त्तुं चैवमादिकम् । देवर्षिश्च परिप्राप्तो गगनाङ्गणगोचरः ॥१०॥
जटाकूर्चधरः शुक्लवस्त्रप्रावृतविग्रहः । अवद्वारगुणाभिख्यो नारदः क्षितिविश्रुतः ॥११॥
तं [9]समीपत्वमायातमभ्युत्थायापराजिता । आसनाद्युपचारेण सादरं सममानयत् ॥१२॥

अथानन्तर जो स्वर्ग लोककी लक्ष्मीके समान राजलक्ष्मीका उपभोग कर रहे थे ऐसे चन्द्राकचूड़ इन्द्रके तुल्य श्रीराम, पति और पुत्रके वियोगरूपी अग्निकी ज्वालासे जिनका शरीर सूख गया था ऐसी माता कौसल्याको एकदम क्यो भूल गये थे ? ॥१–२॥ जो निरन्तर उद्विग्न रहती थी, जिसके नेत्र आँसुओसे व्याप्त रहते थे, जो नवप्रसूता गायके समान अपने पुत्रसे मिलनेके लिए अत्यन्त व्याकुल थी, पुत्रके प्रति स्नेह प्रकट करनेमे तत्पर थी, तीव्र शोकरूपी सागरमे विद्यमान थी और पुत्रके दर्शनकी इच्छा रखती थी, ऐसी कौसल्या सखियोके साथ महलके सातवे खण्डपर चढ़कर सब दिशाओकी ओर देखती रहती थी ॥३–४॥ वह पागलकी भाँति पताकाके शिखरपर बैठे हुए काकसे कहती थी कि रे वायस ! उड़-उड़ । यदि मेरा पुत्र राम आ जायेगा तो मै तुझे खीरका भोजन देऊँगी ॥५॥ ऐसा कहकर उसकी मनोहर चेष्टाओका ध्यान करती और जब उसकी ओरसे कुछ उत्तर नही मिलता तब नेत्रोसे आँसुओकी घनघोर वर्षा करती हुई विलाप करने लगती ॥६॥ वह कहती कि हाय पुत्र ! तू कहाँ चला गया ? तू निरन्तर सुखसे लड़ाया गया था । तुझे विदेश भ्रमणकी यह कौन-सी प्रीति उत्पन्न हुई है ? ॥७॥ तू कठोर मार्गमे चरण-किसलयोकी पीड़ाको प्राप्त हो रहा होगा । अर्थात् कंकरीले पथरीले मार्गमे चलते-चलते तेरे कोमल पैर दुखने लगते होगे तब तू अत्यन्त थककर किस वनके नीचे विश्राम करता होगा ? ॥८॥ हाय बेटा ! अत्यन्त दुःखिनी मुझ मन्दभागिनीको छोड़ तू भाई लक्ष्मणके साथ किस दिशामे चला गया है ? ॥९॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक ! वह कौसल्या जिस समय इस प्रकारका विलाप कर रही थी उसी समय आकाश मार्गमे विहार करनेवाले देवर्षि नारद वहाँ आये ॥१०॥ वे नारद जटारूपी कूर्चको धारण किये हुए थे, सफेद वस्त्रसे उनका शरीर आवृत था, अवद्वार नामके धारक थे और पृथिवीमे सर्वत्र प्रसिद्ध थे ॥११॥ उन्हे समीपमे आया देख कौसल्याने उठकर तथा आसन आदि देकर उनका आदर किया ॥१२॥

---

१. चन्द्रार्क म. । २ कौशल्याम् । ३. रिवावृता म. । ४. जननी ब. । ५ वायस. म. । ६ नेत्रवास्य म. । ७. भ्रातृ म. । ८ परिवेदन- म । ९. समीपस्थ म ।

सिद्धयोगमुनिर्दृष्ट्वा तामश्रुतरलेक्षणाम् । आकारसूचितोदारशोकां संपरिपृष्टवान् ॥१३॥
कुतः प्राप्तासि कल्याणि विमाननमिदं यतः । रुद्यते न तु संभाव्यं तव दुःखस्य कारणम् ॥१४॥
सुकोशलमहाराजदुहिता लोकविश्रुता । श्लाघ्यापराजिताभिख्या पत्नी दशरथश्रुतेः ॥१५॥
पद्मनामनृरत्नस्य प्रसवित्री सुलक्षणा । येन त्वं कोपिता मान्या देवतेव हतात्मना ॥१६॥
अद्यैव कुरुते तस्य प्रतापाक्रान्तविष्टप. । नृपो दशरथः श्रीमान्निग्रहं प्राणहारिणम् ॥१७॥
उवाच नारद देवी न त्वं चिरतरागतः । देवर्षे वेत्सि वृत्तान्तं नेमं येनेति भाषसे ॥१८॥
अन्य एवासि संवृत्तो वात्सल्यं तत्पुरातनम् । कुतो विशिथिलीभूतं लक्ष्यते निष्ठुरस्य ते ॥१९॥
कथं वार्त्तामपीदानीं त्वं नोपलभसे गुरुः । अतिदूरादिवायातः कुतोऽपि भ्रमणप्रियः ॥२०॥
तेनोक्तं धातकीखण्डे सुरेन्द्ररमणे पुरे । विदेहेऽजनि पूर्वस्मिंस्त्रैलोक्यपरमेश्वर. ॥२१॥
मन्दरे तस्य देवेन्द्रैः सुरासुरसमन्वितैः । दिव्ययाद्भुतया भूत्या जननाभिषव. कृतः ॥२२॥
तस्य देवाधिदेवस्य सर्वपापप्रणाशनः । अभिषेको मया दृष्टः पुण्यकर्मप्रवर्द्धकः ॥२३॥
आनन्द ननृतुस्तत्र देवाः प्रमुदिताः परम् । विद्याधराश्च बिभ्राणा विभूतिमतिशोभनाम् ॥२४॥
जिनेन्द्रदर्शनासक्तस्तस्मिन्नतिमनोहरे । त्रयोविंशतिवर्षाणि द्वीपेऽहमुषितः सुखम् ॥२५॥
तथापि जननीतुल्यां संस्मृत्य भरतक्षितिम् । महाधृतिकरीमेष प्राप्तोऽस्मि चिरसेविताम् ॥२६॥
जम्बूभरतभागस्य व्रजाम्यद्यापि न क्वचित । भवतीं द्रष्टुमायातो वार्त्ताज्ञानपिपासितः ॥२७॥

जिसके नेत्र आँसुओसे तरल थे तथा जिसकी आकृतिसे ही बहुत भारी शोक प्रकट हो रहा था ऐसी कौसल्याको देख नारदने पूछा कि हे कल्याणि! तुमने किससे अनादर प्राप्त किया है, जिससे रो रही हो? तुम्हारे दुःखका कारण तो सम्भव नहीं जान पड़ता? ॥१३–१४॥ तुम सुकोशल महाराजकी लोकप्रसिद्ध पुत्री हो, प्रशसनीय हो तथा राजा दशरथकी अपराजिता नामकी पत्नी हो ॥१५॥ मनुष्योंमे रत्नस्वरूप श्रीरामकी माता हो, उत्तम लक्षणोंसे युक्त हो तथा देवताके समान माननीय हो। जिस दुष्टने तुम्हें क्रोध उत्पन्न कराया है, प्रतापसे समस्त संसारको व्याप्त करनेवाले श्रीमान् राजा दशरथ आज ही उसका प्राणापहारी निग्रह करेंगे अर्थात् उसे प्राणदण्ड देंगे ॥१६–१७॥

इसके उत्तरमे देवी कौसल्याने कहा कि हे देवर्षे! तुम बहुत समय बाद आये हो इसलिए इस समाचारको नही जानते और इसीलिए ऐसा कह रहे हो ॥१८॥ जान पड़ता है कि अब तुम दूसरे ही हो गये हो और तुम्हारी निष्ठुरता बढ़ गयी है अन्यथा तुम्हारा वह पुराना वात्सल्य शिथिल क्यो दिखाई देता? ॥१९॥ आज तक भी तुम इस वार्ताको क्यो नही प्राप्त हो सके? जान पड़ता है कि तुम भ्रमण प्रिय हो और अभी कही बहुत दूरसे आ रहे हो ॥२०॥ नारदने कहा कि धातकी खण्ड-द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे एक सुरेन्द्ररमण नामका नगर है वहाँ श्रीतीर्थंकर भगवान्का जन्म हुआ था ॥२१॥ सुरासुर सहित इन्द्राने सुमेरु पर्वतपर आश्चर्यकारी दिव्य वैभवके साथ उनका जन्माभिषेक किया था ॥२२॥ सो समस्त पापोंको नष्ट करने एव पुण्यकर्मको बढ़ानेवाला तीर्थंकर भगवान्का वह अभिषेक मैंने देखा है ॥२३॥ उस उत्सवमे आनन्दसे भरे देवोंने तथा अत्यन्त शोभायमान विभूतिको धारण करनेवाले विद्याधरोने आनन्दसे नृत्य किया था ॥२४॥ जिनेन्द्र भगवान्के दर्शनोमे आसक्त हो मै उस अतिशय मनोहारी द्वीपमे यद्यपि तेईस वर्ष तक सुखसे निवास करता रहा ॥२५॥ तथापि चिरकालसे सेवित तथा महान् धैर्य उत्पन्न करनेवाली माताके तुल्य इस भरत-क्षेत्रको भूमिका स्मरण कर यहाँ पुन. आ पहुँचा हूँ ॥२६॥ जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमे आकर मै अभीतक कही अन्यत्र नही गया हूँ, सीधा समाचार जाननेकी प्यास लेकर तुम्हारा दर्शन करनेके लिए आया हूँ ॥२७॥

ततोऽपराजितावादीद् यथावृत्तमशेषतः । सर्वप्राणिहिताचार्यस्यागतिं गणधारिणः ॥२८॥
वैदेहस्य समायोगं महाविद्याधरप्रभोः । दशस्यन्दनराजस्य प्रव्रज्यां पार्थिवैः समम् ॥२९॥
सीतालक्ष्मणयुक्तस्य पद्मनामस्य निर्गमम् । वियोग सीतया साकं सुग्रीवादिसमागमम् ॥३०॥
लक्ष्मण समरे शक्त्या लङ्कानाथेन ताडितम् । द्रोणमेघस्य कन्याया नयनं त्वरयान्वितम् ॥३१॥
इत्युक्त्वानुस्मृतात्यन्ततीव्रदु:खपरायणा । अश्रुधारां विमुञ्चन्ती सा पुनः पर्यदेवत ॥३२॥
हा हा पुत्र गत. क्वासि चिरमेहि प्रयच्छ मे । वचनं कुरु साधारं मग्नायाः शोकसागरे ॥३३॥
पुण्योज्झिता त्वदीयास्यमपश्यन्ती सुजातक । तीव्रदु.खानलालीढा हतं मन्ये स्वजीवितम् ॥३४॥
वन्दीगृहं समानीता राजपुत्री सुखैधिता । वाला वनमृगीमुग्धा सीता दु.खेन तिष्ठति ॥३५॥
निर्घृणेन दशास्येन शक्त्या लक्ष्मणसुन्दर' । ताडितो जीवितं धत्ते नेति वार्त्ता न विद्यते ॥३६॥
हा सुदुर्लभकौ पुत्रौ हा सीते सति वालिके । प्राप्तासि जलधेर्मध्ये कथं दु खमिदं परम् ॥३७॥
त वृत्तान्तं ततो ज्ञात्वा वीणा क्षिप्त्वा महीतले । उद्विग्नो नारदस्तस्थौ हस्तावाधाय मस्तके ॥३८॥
क्षणनिष्कम्पदेहश्च विमृश्य वहुवीक्षितः । अब्रवीद् देवि नो सम्यग्वृत्तमेतद्विभाति मे ॥३९॥
त्रिखण्डाधिपतिश्चण्डो विद्याधरमहेश्वर. । वैदेहकपिनाथाभ्यां रावण. किं प्रकोपित. ॥४०॥
तथापि कौशले शोकं मा कृथा. परमं शुभे । अचिरादेष ते वार्त्तामानयामि न संशयः ॥४१॥
कृत्य विधातुमेतावद्देवि सामर्थ्यमस्ति मे । शक्त' स एव शेषस्य कार्यस्य तव नन्दनः ॥४२॥
प्रतिज्ञामेवमादाय नारदः स समुद्गतः । वीणां कक्षान्तरे कृत्वा सखीमिव परां प्रियाम् ॥४३॥

तदनन्तर अपराजिता (कौसल्या) ने जो वृत्तान्त जैसा हुआ था वह सब नारदसे कहा। उसने कहा कि संघसहित सर्वभूतहित आचार्यका आगमन हुआ। महा विद्याधरोंके राजा भामण्डलका सयोग हुआ। राजा दशरथने अनेक राजाओंके साथ दीक्षा धारण की, सीता और लक्ष्मणके साथ राम वनको गये, वहाँ सीताके साथ उनका वियोग हुआ, सुग्रीवादिके साथ समागम हुआ, युद्धमे लकाके धनी रावणने लक्ष्मणको शक्तिसे ताड़ित किया और द्रोणमेघकी कन्या विशल्या शीघ्रतासे वहाँ ले जायी गयी ॥२८–३१॥ इतना कहते ही जिसे तीव्र दु:खका स्मरण हो आया था ऐसी कौसल्या अश्रुधारा छोडती हुई पुनः विलाप करने लगी ॥३२॥ हाय-हाय पुत्र ! तू कहाँ गया ? कहाँ है ? बहुत समय हो गया, शीघ्र ही आ, मेरे लिए वचन दे—मुझसे वार्तालाप कर और शोकसागरमे डूबी हुई मेरे लिए सान्त्वना दे ॥३३॥ हे सत्पुत्र ! मै पुण्यहीना तुम्हारे मुखको न देखती तथा तीव्र दु.खाग्निसे व्याप्त हुई अपने जीवनको निरर्थक मानती हूँ ॥३४॥ सुखसे जिसका लालन-पालन हुआ तथा जो वनकी हरिणीके समान भोली है ऐसी राजपुत्री बेटी सीता शत्रुके बन्दीगृहमे पडी दु:खसे समय काट रही होगी ॥३५॥ निर्दय रावणने लक्ष्मणको शक्तिसे घायल किया सो जीवित है या नही इसकी कोई खबर नही है ॥३६॥ हाय मेरे अत्यन्त दुर्लभ पुत्रो ! और हाय मेरी पतिव्रते बेटी सीते ! तुम समुद्रके मध्य इस भयंकर दुःखको कैसे प्राप्त हो गयी ॥३७॥ तदनन्तर यह वृत्तान्त जानकर नारदने वीणा पृथ्वीपर फेक दी और स्वयं उद्विग्न हो दोनो हाथ मस्तकसे लगा चुपचाप बैठ गये ॥३८॥ उनका शरीर क्षणमात्रमे निश्चल पड़ गया। जब विचारकर उनकी ओर अनेक बार देखा तब वे बोले कि हे देवि ! मुझे यह बात अच्छी नही जान पडती॥३९॥ रावण तीन खण्डका स्वामी है, अत्यन्त क्रोधी तथा समस्त विद्याधरोका स्वामी है सो उसे भामण्डल तथा सुग्रीवने क्यो कुपित कर दिया ? ॥४०॥ फिर भी हे कौसल्ये ! हे शुभे ! अत्यधिक शोक मत करो। यह मै शीघ्र ही जाकर तुम्हारे लिए समाचार लाता हूँ इसमे कुछ भी सशय नही है ॥४१॥ हे देवि ! इतना ही कार्य करनेकी मेरी सामर्थ्य है। शेष कार्यके करनेमे तुम्हारा पुत्र ही समर्थ है ॥४२॥ इस प्रकार प्रतिज्ञा कर तथा परमप्यारी सखीके समान वीणाको बगलमे दबाकर नारद आकाशमे उड़ गये ॥४३॥

ततो वातगतिः क्षोणीं पश्यन् दुर्लक्ष्यपर्वताम् । लङ्कां प्रति-कृताशङ्को नारदश्चकितं ययौ ॥४४॥
समीपीभूय लङ्कायाश्चिन्तामेवमुपागतः । कथं वार्तापरिज्ञानं करोमि निरुपायकम् ॥४५॥
पद्मलक्ष्मणवार्तायाः प्रश्ने दोषोऽभिलक्ष्यते । पृच्छतो दशवक्त्रं तु स्फीतमार्गो न दृश्यते ॥४६॥
अनेनैवानुपूर्व्येण वार्तां ज्ञास्ये मनीषिताम् । इति ध्यात्वा सुविश्रब्धो गतः पद्मसरो यतः ॥४७॥
तस्यां च तत्र वेलायामन्तःपुरसमन्वितः । नारायास्तनयः क्रीडां कुरुते चारुविभ्रम. ॥४८॥
तटस्थं पुरुषं तस्य कृतपूर्वप्रियोदितः । कुशलं रावणस्येति पप्रच्छावस्थितः क्षणम् ॥४९॥
श्रुत्वा तद्वचनं क्रुद्धाः किङ्करा स्फुरिताधरा. । जगदुः कथमेवं त्वं दुष्ट तापस भाषसे ॥५०॥
कुतो रावणवर्गीणो मुनिखेटस्त्वमागतः । इत्युक्त्वा परिवार्यासावङ्गदस्यान्तिकीकृत. ॥५१॥
कुशलं रावणस्यायं पृच्छतीत्युदिते भटै. । न कार्यं दशवक्त्रेण ममेति मुनिरभ्यधात् ॥५२॥
तैरुक्तं यद्यदः सत्यं तस्य कस्मात्प्रमोदवान् । कुशलोदन्तसंप्रश्ने[1] वर्तसे परमादरः ॥५३॥
ततोऽङ्गद प्रहस्योचे व्रजतैनं कुतापसम् । दुरीहं पद्मनाभाय मूढं दर्शयत द्रुतम् ॥५४॥
पृष्ठतः प्रेर्यमाणोऽसौ बाह्वाकर्षणतत्परैः । सुकष्टं नीयमानस्तै रिति चिन्तामुपागतः ॥५५॥
बहवः पद्मनामाख्या सन्त्यत्र वसुधातले । न जाने कतमः स स्यान्नीये यस्याहमन्तिकम् ॥५६॥
अर्हच्छासनवात्सल्या देवता मम शायनम् । काचित् कुर्वीत किं नाम पतितोऽस्म्यतिसंशये ॥५७॥

तदनन्तर वायुके समान तीव्र गतिसे जाते और दुर्लक्ष्य पर्वतोंसे युक्त पृथिवीको देखते हुए नारद लंकाकी ओर चले। उस समय उनके मनमे कुछ शंका तथा कुछ आश्चर्य—दोनो ही उत्पन्न हो रहे थे ॥४४॥ चलते-चलते नारद जब लंकाके समीप पहुँचे तब ऐसा विचार करने लगे कि मैं उपायके विना राम-लक्ष्मणका समाचार किस प्रकार ज्ञात करूँ ? ॥४५॥ यदि साक्षात् रावणसे राम-लक्ष्मणकी वार्ता पूछता हूँ तो इसमे दोष दिखाई देता है। क्या करूँ ? कुछ स्पष्ट मार्ग दिखाई नही देता ॥४६॥ अथवा मैं इसी क्रमसे इच्छित वार्ताको जानूँगा। इस प्रकार मनमें ध्यान कर निश्चिन्त हो पद्मसरोवरकी ओर गये ॥४७॥ उस समय उस पद्मसरोवरमे उत्तम शोभाको धारण करनेवाला अंगद अपने अन्तःपुरके साथ क्रीड़ा कर रहा था ॥४८॥ वहाँ जाकर नारद मधुर वार्ता द्वारा तटपर स्थित किसी पुरुषसे रावणकी कुशलता पूछते हुए क्षणभर खडे रहे ॥४९॥ उनके वचन सुन, जिनके ओठ काँप रहे थे ऐसे सेवक कुपित हो बोले कि रे तापस ! तू इस तरह दुष्टतापूर्ण वार्ता क्यों कर रहा है ? ॥५०॥ 'रावणके वर्गका तू दुष्ट तापस यहाँ कहाँसे आ गया ?' इस प्रकार कहकर तथा घेरकर किंकर लोग उन्हे अंगदके समीप ले गये ॥५१॥ 'यह तापस रावणकी कुशल पूछता है' इस प्रकार जब किंकरोने अंगदसे कहा तब नारदने उत्तर दिया कि मुझे रावणसे कार्य नही है ॥५२॥ तब किंकरोने कहा कि यदि यह सत्य है तो फिर तू हर्षित हो रावणका कुशल पूछनेमें परम आदरसे युक्त क्यों है ? ॥५३॥ तदनन्तर अंगदने हँसकर कहा कि जाओ इस खोटी चेष्टाके धारक मूर्ख तापसको शीघ्र ही पद्मनाभके दर्शन कराओ अर्थात् उनके पास ले जाओ ॥५४॥ अंगदके इतना कहते ही कितने ही किंकर नारदकी भुजा खीचकर आगे ले जाने लगे और कितने ही पीछेसे प्रेरणा देने लगे। इस प्रकार किंकरो द्वारा कष्टपूर्वक ले जाये गये नारदने मनमे विचार किया कि इस पृथ्वीतलपर पद्मनाभ नामको धारण करनेवाले बहुतसे पुरुष हैं। न जाने वह पद्मनाभ कौन है जिसके कि पास मैं ले जाया जा रहा हूँ ? ॥५५-५६॥ जिनशासनसे स्नेह रखनेवाली कोई देवी मेरी रक्षा करे, मैं अत्यन्त संशयमें पड़ गया हूँ ॥५७॥

---

1 संप्रश्नो म.।

गिरान्तिकगतप्राणो नारदः पुरुवेपथुः । विभीषणगृहद्वारं प्रविष्टः सद्गुहाकृतिम्[1] ॥५८॥
पद्माभं दूरतो दृष्ट्वा सहसोद्भ्रान्तमानसः । अब्रह्मण्यमिति स्फीतं प्रस्वेदी मुमुचे स्वरम् ॥५९॥
श्रुत्वा तस्य रवं दत्त्वा दृष्टिं लक्ष्मणपूर्वज. । अवद्वारं परिज्ञाय स्वयमाहादरान्वित. ॥६०॥
मुञ्चध्वमाशु मुञ्चध्वमेतमित्युज्झितश्च सः । पद्माभस्यान्तिकं गत्वा प्रहृष्टोऽवस्थितः पुरः ॥६१॥
स्वस्त्याशीर्भिः समानन्द्य पद्मनारायणावृषिः । परित्यक्तपरित्रासः स्थितो दत्ते सुखासने ॥६२॥
पद्मनामस्ततोऽवोचत् सोऽवद्वारगतिर्भवान् । क्षुल्लकोऽभ्यागत. कस्मादुक्तश्च स जगौ क्रमात् ॥६३॥
व्यसनार्णवमग्नाया जनन्या भवतोऽन्तिकात् । प्राप्तोऽस्मि वेदितुं वार्त्तां त्वत्पादकमलान्तिकम् ॥६४॥
मान्यापराजिता देवी भव्या भगवती तव । माताश्रुधौतवदना दुःखमास्ते त्वया विना ॥६५॥
सिंही किशोररूपेण रहितेव समाकुला । विकीर्णकेशसंभारा कृतकुट्टिमलोठना ॥६६॥
विलापं कुरुते देव तादृशं येन तत्क्षणम् । मन्ये संजायते व्यक्तं दृषदामपि मार्दवम् ॥६७॥
तिष्ठति त्वयि सत्पुत्रे कथं तनयवत्सला । महागुणधरी स्तुत्या कृच्छ्रं सा परमं गता ॥६८॥
अद्यश्वीनमिदं मन्ये तस्याः प्राणविवर्जनम् । यदि तां नेक्षसे शुष्कां त्वद्वियोगोरुभानुना ॥६९॥
प्रसादं कुरुतां पश्य व्रजोत्तिष्ठ किमास्यते । एतस्मिन्ननु संसारे बन्धुर्माता प्रधानत. ॥७०॥
वार्त्तेयमेव कैकय्या अपि दुःखेन वर्त्तते । तया हि कुट्टिमतलं कृतमस्रेण[2] पल्वलम् ॥७१॥
नाहारे शयने रात्रौ न दिवास्ति मनागपि । तस्याः स्वस्थतया योगो भवतोर्विप्रयोगतः ॥७२॥

अथानन्तर चोटी तक जिनके प्राण पहुँच गये थे, तथा जिन्हे अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसे नारद उत्तम गुहाका आकार धारण करनेवाले विभीषणके घरके द्वारमे प्रविष्ट हुए ॥५८॥ वहाँ दूरसे ही रामको देख, जिनका चित्त सहसा हर्षको प्राप्त हो रहा था ऐसे पसीनेसे लथपथ नारदने 'अहो अन्याय हो रहा है' इस प्रकार जोरसे आवाज लगायी ॥५९॥ रामने नारदका शब्द सुन उनकी ओर दृष्टि डालकर पहचान लिया कि ये तो अवद्वार नामक नारद है। उसी समय उन्होने आदरके साथ सेवकोसे कहा कि इन्हे छोड़ो, शीघ्र छोड़ो। तदनन्तर सेवकोने जिन्हे तत्काल छोड़ दिया था ऐसे नारद श्रीरामके पास जाकर हर्षित हो सामने खड़े हो गये ॥६०–६१॥ जिनका भय छूट गया था ऐसे ऋद्धि मंगलमय आशीर्वादोसे राम-लक्ष्मणका अभिनन्दन कर दिये हुए सुखासनपर बैठ गये ॥६२॥

तदनन्तर श्रीरामने कहा कि आप तो अवद्वारगति नामक क्षुल्लक है। इस समय कहाँसे आ रहे है? इस प्रकार श्रीरामके कहनेपर नारदने क्रम-क्रमसे कहा कि ॥६३॥ मै दुःखरूपी सागरमे निमग्न हुई आपकी माताके पाससे उनका समाचार जतानेके लिए आपके चरणकमलोके समीप आया हूँ ॥६४॥ इस समय आपकी माता माननीय भगवती अपराजितादेवी आपके बिना बडे कष्टमे हैं, वे रात-दिन आँसुओसे मुख प्रक्षालित करती रहती है ॥६५॥ जिस प्रकार अपने बालकके बिना सिंही व्याकुल रहती है उसी प्रकार आपके बिना वे व्याकुल रहती हैं। उनके बाल बिखरे हुए है तथा वे पृथ्वीपर लोटती रहती है ॥६६॥ हे देव! वे ऐसा विलाप करती हैं कि उस समय स्पष्ट हो पत्थर भी कोमल हो जाता है ॥६७॥ तुम सत्पुत्रके रहते हुए भी वह पुत्र-वत्सला, महागुणधारिणी स्तुतिके योग्य उत्तम माता कष्ट क्यो उठा रही है? ॥६८॥ यदि अपने वियोगरूपी सूर्यसे सूखी हुई उस माताके आप शीघ्र ही दर्शन नही करते है तो मै समझता हूँ कि आजकलमे ही उसके प्राण छूट जावेगे ॥६९॥ अतः प्रसन्न होओ, चलो, उठो माताके दर्शन करो। क्यो बैठे हो? यथार्थमे इस संसारमे माता ही सर्वश्रेष्ठ बन्धु है ॥७०॥ जो बात आपकी माताकी है ठीक यही बात दु खसे कैकेयी-सुमित्राकी हो रही है। उसने अश्रु बहा-बहाकर महलके फर्शको मानो छोटा-मोटा तालाब ही बना दिया है ॥७१॥ आप दोनोके वियोगसे उसे न आहारमे,

---

१ सद्गृहाकृतिम् ज, ख. । २ -मस्रेण म ।

कुररीव कृताक्रन्दा शावकेन वियोगिनी । उरः शिरश्च सा हन्ति कराभ्यां विह्वला भृशम् ॥७३॥
हा लक्ष्मीधर सञ्जात जननीमेहि जीवय । द्रुतं वाक्यं प्रयच्छेति विलापं सा निषेवते ॥७४॥
तनयायोगतीव्राग्निज्वालालीढशरीरके । दर्शनामृतधाराभिर्मातरौ नयतं शमम् ॥७५॥
एवमुक्तं निशम्यैतौ संजातौ तु खिन्नौ भृशम् । विमुक्तास्रौ समाश्वासं खेचरेशैरुपाहृतौ ॥७६॥
उवाच वचनं पद्मः कथंचिद्धैर्यमागतः । अहो महोपकारोऽयमस्माकं भवता कृतः ॥७७॥
विकर्मणा[1] स्मृतेरेव जननी नः परिच्युता । स्मारिता भवता साहं किमतोऽन्यन्महत्प्रियम् ॥७८॥
पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये[2] स्थितः । कुरुते परिशुश्रूषां किंकरत्वमुपागतः ॥७९॥
एवं मातृमहास्नेहरसप्लावितमानसः । अपूजयद्देवर्षिं लक्ष्मणेन समं नृपः ॥८०॥
अतिसंभ्रान्तचित्तश्च समाहूय विभीषणम् । प्रभामण्डलसुग्रीवसंनिधावित्यभाषत ॥८१॥
महेन्द्रभवनाकारे भवनेऽस्मिन् विभीषण । तव नो विदितोऽस्माभिर्यातः कालो महानपि ॥८२॥
ग्रैष्मादित्यांशुसंतानतापितस्यैव [3]सत्सरः । चिरादवस्थितं चित्ते मातृदर्शनमद्य मे ॥८३॥
स्मृतमात्रवियोगाग्नितापितान्यतिमात्रकम् । तद्दर्शनाम्बुनाङ्गानि प्रापयाम्यतिनिर्वृतिम् ॥८४॥
अयोध्यानगरीं द्रष्टुं मनो मेऽत्युत्सुकं स्थितम् । सा हि माता द्वितीयेव स्मरयत्यधिकं[4] वरा ॥८५॥
ततो विभीषणोऽवोचत् स्वामिन्नेवं विधीयताम् । यथाज्ञापयसि स्वान्तं देवस्योपैतु शान्तताम् ॥८६॥

न शयनमें, न दिनमे और न रात्रिमें थोड़ा भी आनन्द प्राप्त होता है ॥७२॥ वह पुत्र-वियोगसे कुररीके समान रुदन करती रहती है तथा अत्यन्त विह्वल हो दोनों हाथोंसे छाती और शिर पीटती रहती है ॥७३॥ 'हाय लक्ष्मण बेटा ! आओ माताको जीवित करो, शीघ्र ही वचन बोलो' इस प्रकार वह निरन्तर विलाप करती रहती है ॥७४॥ पुत्रोंके वियोगरूपी तीव्र अग्निकी ज्वालाओंसे जिनके शरीर व्याप्त हैं ऐसी दोनो माताओंको दर्शनरूपी अमृतकी धाराओंसे शान्ति प्राप्त कराओ ॥७५॥ यह सुनकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई अत्यन्त दुःखी हो उठे, उनके नेत्रोंसे आँसू निकलने लगे । तब विद्याधरोंने उन्हें सान्त्वना प्राप्त करायी ॥७६॥

तदनन्तर किसी तरह धैर्यको प्राप्त हुए रामने कहा कि अहो ऋषे ! आपने हमारा बड़ा उपकार किया ॥७७॥ खोटे कर्मके उदयसे माता हम लोगोंकी स्मृतिसे ही छूट गयी थी सो आपने उसका हमे स्मरण करा दिया इससे प्रिय बात और क्या हो सकती है ? ॥७८॥ संसारमें वह मनुष्य बड़ा पुण्यात्मा है जो माताकी विनयमें तत्पर रहता है तथा किंकरभावको प्राप्त हो उसकी सेवा करता है ॥७९॥ इस प्रकार माताके महास्नेहरूपी रससे जिनका मन आर्द्र हो रहा था ऐसे राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणके साथ नारदकी बहुत पूजा की ॥८०॥ और अत्यन्त सम्भ्रान्तचित्त हो विभीषणको बुलाकर भामण्डल तथा सुग्रीवके समीप इस प्रकार कहा कि हे विभीषण ! इन्द्र-भवनके समान आपके इस भवनमें हम लोगोंका बिना जाने ही बहुत भारी काल व्यतीत हो गया है ॥८१-८२॥ जिस प्रकार ग्रीष्मकालीन सूर्यकी किरणोंके समूहसे सन्तापित मनुष्यके हृदयमें सदा उत्तम सरोवर विद्यमान रहता है उसी प्रकार हमारे हृदयमे यद्यपि चिरकालसे माताके दर्शनकी लालसा विद्यमान थी तथापि आज उस वियोगाग्निके स्मरण मात्रसे मेरे अंग-अंग अत्यन्त सन्तप्त हो उठे हैं सो मैं माताके दर्शनरूपी जलके द्वारा उन्हें अत्यन्त शान्ति प्राप्त कराना चाहता हूँ ॥८३-८४॥ आज अयोध्यानगरीको देखनेके लिए मेरा मन अत्यन्त उत्सुक हो रहा है क्योंकि वह दूसरी माताके समान मुझे अधिक स्मरण दिला रही है ॥८५॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि हे स्वामिन् ! जैसी आज्ञा हो वैसा कीजिए । आपका हृदय

---

१. विकर्मणः म. । २. विनयस्थित. क. । ३ वत्सर म , मत्सरः ज , क., ख. । ४. का वरा क.,ख. ।

प्रेष्यन्ते नगरीं दूता वार्तां ज्ञापयितुं शुभाम् । भवतोऽत्रागमं येन जनन्यौ व्रजतः सुखम् ॥८७॥
त्वया तु षोडशाहानि स्थातुमत्र पुरे विभो । प्रसादो मम कर्त्तव्यः समाश्रितसुवत्सल[1] ॥८८॥
इत्युक्त्वा मस्तकं न्यस्य समणि रामपादयोः । तावद् विभीषणस्तस्थौ यावत्स प्रतिपन्नवान् ॥८९॥
अथ प्रासादमूर्धस्था नित्यदक्षिणदिङ्मुखी । दूरतः खेचरान् वीक्ष्य जगादेत्यपराजिता ॥९०॥
पश्य पश्य सुदूरस्थानेतान् कैकयि खेचरान् । आयातोऽभिमुखानाशु वातेरितघनोपमान् ॥९१॥
अद्यैते श्राविकेऽवश्यं कथयिष्यन्ति शोभनाम् । वार्तां संप्रेषिता नूनं सानुजेन सुतेन मे ॥९२॥
सर्वथैवं भवत्वेतदिति यावत् कथा तयोः । वर्त्तते तावदायाताः समीपं दूतखेचराः ॥९३॥
उत्सृजन्तश्च पुष्पाणि समुत्तीर्य नभस्तलात् । प्रविश्य भवनं ज्ञाताः प्रहृष्टा भरतं ययुः ॥९४॥
राज्ञा प्रमोदिना तेन सन्मानं समुपाहृताः । आशीर्वादप्रसक्तास्ते योग्यासनसमाश्रिताः ॥९५॥
यथावद्वृत्तमाचख्युरतिसुन्दरचेतसः । पद्मामं बलदेवत्वं प्राप्तं लाङ्गललक्ष्मणम् ॥९६॥
उत्पन्नचक्ररत्नं च लक्ष्मणं[2] हरितामितम् । तयोर्भरतवास्यस्य[3] स्वामित्वं परमोन्नतम् ॥९७॥
रावणं पञ्चतां प्राप्तं लक्ष्मणेन हतं रणे । दीक्षामिन्द्रजिदादीनां वन्दिगृहमुपेयुषाम् ॥९८॥
तार्क्ष्यकेसरिसद्विद्याप्राप्तिं साधुप्रसादत. । विभीषणमहाप्रीतिं भोगं लङ्काप्रवेशनम् ॥९९॥
एवं पद्मामलक्ष्मीभृदुदयस्तुतिसमदी । स्रक्ताम्बूलसुगन्धाद्यैर्दूतानभ्यर्हयन्नृपः ॥१००॥

शान्तिको प्राप्त हो यही हमारी भावना है ॥८६॥ हम माताओंको यह शुभवार्ता सूचित करनेके लिए अयोध्या नगरीके प्रति दूत भेजते है जिससे आपका आगमन जानकर माताएँ सुखको प्राप्त होंगी ॥८७॥ हे विभो ! हे आश्रितजनवत्सल ! आप सोलह दिन तक इस नगरमे ठहरनेके लिए मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिए ॥८८॥ इतना कहकर विभीषणने अपना मणि सहित मस्तक रामके चरणोमे रख दिया और तबतक रखे रहा जब तककि उन्होंने स्वीकृत नही कर लिया ॥८९॥

अथानन्तर महलके शिखरपर खड़ी अपराजिता (कौशल्या) निरन्तर दक्षिण दिशाकी ओर देखती रहती थी। एक दिन उसने दूरसे विद्याधरोको आते देख समीपमे खड़ी कैकयी (सुमित्रा) से कहा कि हे कैकयि ! देख देख वे बहुत दूरीपर वायुसे प्रेरित मेघोके समान विद्याधर शीघ्रतासे इसी ओर आ रहे है ॥९०–९१॥ हे श्राविके ! जान पड़ता है कि ये छोटे भाई सहित मेरे पुत्रके द्वारा भेजे हुए हैं और आज अवश्य ही शुभ वार्ता कहेगे ॥९२॥ कैकयीने कहा कि जैसा आप कहती है सर्वथा ऐसा ही हो। इस तरह जबतक उन दोनोमे वार्ता चल रही थी तबतक वे विद्याधर दूत समीपमे आ गये ॥९३॥ पुष्पवर्षा करते हुए उन्होने आकाशसे उतरकर भवनमे प्रवेश किया और अपना परिचय दे हर्षित होते हुए वे भरतके पास गये ॥९४॥ राजा भरतने हर्षित हो उनका सम्मान किया और आशीर्वाद देते हुए वे योग्य आसनोपर आरूढ हुए ॥९५॥ सुन्दर चित्तको धारण करनेवाले उन विद्याधर दूतोने सब समाचार यथायोग्य कहे। उन्होने कहा कि रामको बलदेव पद प्राप्त हुआ है। लक्ष्मणके चक्ररत्न प्रकट हुआ है तथा उन्हे नारायण पद मिला है। राम-लक्ष्मण दोनोको भरत क्षेत्रका उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हुआ है। युद्धमे लक्ष्मणके द्वारा घायल हो रावण मृत्युको प्राप्त हुआ है, बन्दीगृहमे रहनेवाले इन्द्रजित् आदिने जिनदीक्षा धारण कर ली है, देशभूषण और कुलभूषण मुनिका उपसर्ग दूर करनेसे गरुड़ेन्द्र प्रसन्न हुआ था सो उसके द्वारा राम-लक्ष्मणको सिंहवाहिनी तथा गरुडवाहिनी विद्याएँ प्राप्त हुई है। विभीषणके साथ महाप्रेम उत्पन्न हुआ है, उत्तमोत्तम भोग-सम्पदाएँ प्राप्त हुई है तथा लंकामे उनका प्रवेश हुआ है ॥९६–९९॥ इस प्रकार राम-लक्ष्मणके अभ्युदयसूचक समाचारोसे प्रसन्न हुए राजा भरतने उन दूतोका माला, पान तथा सुगन्ध आदिके द्वारा सम्मान किया ॥१००॥

---

१ सुवत्सलः म.। २. हरेर्भावो हरिता ता नारायणताम् इतम्-प्रातम् म.। ३ वासस्य म.।

गृहीत्वा तांस्तयोर्मात्रोः सकाशं भरतो ययौ । शोकिन्यौ वाष्पपूर्णाक्ष्यौ ते समानन्दिते च तैः ॥१०१॥
पद्मनाभचक्रभृन्मात्रोर्दूतानां च सुसंकथा । मनःप्रह्लादिनी यावद् वर्त्तते भूतिशंसिनी ॥१०२॥
रवेरावृत्य पन्थानं तावत्तत्र सहस्रगः । हेमरत्नादिसंपूर्णैर्वाहनैरतिगत्वरैः ॥१०३॥
विचित्रजलदाकाराः प्रापुर्वैद्याधरा गणाः । जिनावतरणे काले देवा इव महौजसः ॥१०४॥
ततस्ते व्योमपृष्ठस्था नानारत्नमयीं पुरि । वृष्टिं मुमुचुरुद्योतपूरिताशां समन्ततः ॥१०५॥
पूरितायामयोध्यायामेकैकस्य कुटुम्बिनः । गृहेषु भूधराकाराः कृता हेमादिराशयः ॥१०६॥
जन्मान्तरकृतश्लाघ्यकर्मा स्वर्गच्युतोऽथवा । लोकोऽयोध्यानिवासी यो येन प्राप्तस्तथा श्रियम् ॥१०७॥
तस्मिन्नेव पुरे दत्ता घोषणानेन वस्तुना । मणिचामीकराद्येन यो न तृप्तिमुपागतः ॥१०८॥
प्रविश्य स नरः स्त्री वा निर्भयं पार्थिवालयम् । द्रव्येण [1]पूरयत्वात्मभवनं निजयेच्छया ॥१०९॥
श्रुत्वा तां घोषणां सर्वस्तस्यां जनप्रदोऽगदत् । अस्माकं भवने शून्यं स्थानमेव न विद्यते ॥११०॥
विस्मयादित्यसंपर्कविकचाननपङ्कजाः । शशंसुर्वनिता पद्मं कृतदारिद्र्यनाशनाः ॥१११॥
आगत्य बहुभिस्तावद्दक्षैः खेचरशिल्पिभिः । रूप्यहेमादिभिर्लेपैर्लिप्ता भवनभूमयः ॥११२॥
चैत्यागाराणि दिव्यानि जनितान्यतिभूरिशः । महाप्रासादमालां च विन्ध्यकूटावलीसमाः ॥११३॥
सहस्रस्तम्भसपद्मा मुक्तादामविराजिताः । रचिता मण्डपाश्चित्राश्चित्रपुस्तोपशोभिताः ॥११४॥
खचितानि महारत्नैर्द्वाराणि [2]करभास्वरैः । पताकालीसमायुक्तास्तोरणौघाः समुच्छ्रिताः ॥११५॥
अनेकाश्चर्यसंपूर्णा प्रवृत्तसुमहोत्सवा । सायोध्या नगरी जाता लङ्कादिजयकारिणी ॥११६॥

तदनन्तर भरत उन विद्याधरोको लेकर उन माताओके पास गया और विद्याधरोने निरन्तर शोक करने तथा अश्रुपूर्ण नेत्रोको धारण करनेवाली उन माताओंको आनन्दित किया ॥१०१॥ राम-लक्ष्मणकी माताओ और उन विद्याधर दूतोके बीच मनको प्रसन्न करने तथा उनकी विभूतिको सूचित करनेवाली यह मनोहर कथा जवतक चलती है तबतक सुवर्ण और रत्नादिसे परिपूर्ण हजारो शीघ्रगामी वाहनोसे सूर्यका मार्ग रोककर रंग-बिरंगे मेघोका आकार धारण करनेवाले हजारो विद्याधरोके झुण्ड उस तरह आ पहुँचे जिस तरह कि जिनेन्द्रावतारके समय महातेजस्वी देव आ पहुँचे हैं ॥१०२–१०४॥ तदनन्तर आकाशमे स्थित उन विद्याधरोने सब ओरसे दिशाओको प्रकाशके द्वारा परिपूर्ण करनेवाली नानारत्नमयी वृष्टि छोड़ी ॥१०५॥ अयोध्याके भर जानेपर हर एक कुटुम्बके घरमे पर्वतोके समान सुवर्णादिकी राशियाँ लग गयीं ॥१०६॥ जान पड़ता था कि अयोध्यानिवासी लोगोने जन्मान्तरसे पुण्य कर्म किये थे अथवा स्वर्गसे चलकर वहाँ आये थे इसीलिए तो उन्हे उस समय उस प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त हुई थी ॥१०७॥ उसी समय भरतने नगरमे यह घोषणा दिलवायी कि जो रत्न तथा स्वर्णादि वस्तुओंसे सन्तोषको प्राप्त नही हुआ हो वह पुरुष अथवा स्त्री निर्भय हो राजमहलमे प्रवेश कर अपनी इच्छानुसार द्रव्यसे अपने घरको भर ले ॥१०८–१०९॥ उस घोषणाको सुनकर अयोध्यावासी लोगोने आकर कहा कि हमारे घरमे खाली स्थान ही नही है ॥११०॥ विस्मयरूपी सूर्यके सम्पर्कसे जिनके मुख कमल खिल रहे थे तथा जिनकी दरिद्रता नष्ट हो चुकी थी ऐसी स्त्रियाँ रामकी स्तुति कर रही थी॥१११॥ उसी समय वहुतसे चतुर विद्याधर कारीगरोने आकर चाँदी तथा सुवर्णादिके लेपसे भवनकी भूमियोको लिप्त किया ॥११२॥ अच्छे-अच्छे वहुतसे जिन-मन्दिर तथा विन्ध्याचलके शिखरोके समान अत्यन्त उन्नत बड़े-बड़े महलोके समूहकी रचना की ॥११३॥ जो हजारो खम्भोसे सहित थे, मोतियोकी मालाओसे सुशोभित थे, तथा नाना प्रकारके पुतलोसे युक्त थे ऐसे विविध प्रकारके मण्डप बनाये ॥११४॥ दरवाजे किरणोसे चमकते हुए बड़े-बड़े रत्नोसे खचित किये तथा पताकाओकी पंक्तिसे युक्त तोरणोके समूह खड़े किये ॥११५॥ इस तरह जो अनेक आश्चर्योमे परिपूर्ण थी तथा

१. पूरयित्वा म., ज. । २. करभस्वरैः म. ।

महेन्द्रशिखराभेषु चैत्यगेहेषु संतताः । अभिषेकोत्सवा लग्नाः संगीतध्वनिनादिताः ॥११७॥
भ्रमरैरुपगीतानि समानि सजलैर्घनैः । उद्यानानि [1]सपुष्पाणि जातानि सफलानि च ॥११८॥
बहिराशास्वशेषासु वनैर्मुदितजन्तुभिः । नन्दनप्रतिमैर्जाता नगरी सुमनोहरा ॥११९॥
[2]नवयोजनविस्तारा द्वादशायामसंगता । द्व्यधिकानि तु षड्त्रिंशत्परिक्षेपेण पूरसौ ॥१२०॥
दिनैः षोडशभिश्चारुनभोगोचरशिल्पिभिः । निर्मिता शसितुं शक्या न सा वर्षशतैरपि ॥१२१॥
वाप्यः काञ्चनसोपाना दीर्घिकाश्च सुरोधसः । पद्मादिभिः समाकीर्णा जाता ग्रीष्मेऽप्यशोषिताः ॥१२२॥
स्नानक्रीडातिसंभोग्यास्तटस्थितजिनालयाः । दधुस्ताः परमां शोभां वृक्षपालीसमावृताः ॥१२३॥
कृतां स्वर्गपुरीतुल्यां ज्ञात्वा तां नगरीं हली । श्वोयानशंसिनीं स्थाने घोषणां समदापयत् ॥१२४॥

वंशस्थवृत्तम्

यदैव वार्ता गगनाङ्गणायनो मुनिस्तयोर्मातृसमुद्भवां जगौ ।
ततः प्रभृत्येव हि सीरिचक्रिणौ सदा सचिन्त्यौ हृदयेन बभ्रतुः ॥१२५॥
अचिन्तितं कृत्स्नमुपैति चारुतां कृतेन पुण्येन पुरासुधारिणाम् ।
ततो जनः पुण्यपरोऽस्तु सततं न येन चिन्तारवितापमश्नुते ॥१२६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे साकेतनगरीवर्णनं नामैकाशीतितमं पर्व ॥८१॥



जिसमे निरन्तर महोत्सव होते रहते थे ऐसी वह अयोध्यानगरी लका आदिको जीतनेवाली हो रही थी ॥११६॥ महेन्द्रगिरिके शिखरोके समान आभावाले जिनमन्दिरोमे निरन्तर सगीत-ध्वनिके साथ अभिषेकोत्सव होते रहते थे ॥११७॥ जो जलभृत मेघोके समान श्यामवर्ण थे तथा जिनपर भ्रमर गुंजार करते रहते थे ऐसे बाग-बगीचे उत्तमोत्तम फूलो और फलोसे युक्त हो गये थे ॥११८॥ बाहरकी समस्त दिशाओमे अर्थात् चारो ओर प्रमुदित जन्तुओसे युक्त नन्दन वनके समान सुन्दर वनोसे वह नगरी अत्यन्त मनोहर जान पड़ती थी ॥११९॥ वह नगरी नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी और अड़तीस योजन परिधिसे सहित थी ॥१२०॥ सोलह दिनोमे चतुर विद्याधर कारीगरोने अयोध्याको ऐसा बना दिया कि सौ वर्षोंमे भी उसकी स्तुति नही हो सकती थी ॥१२१॥ जिनमे सुवर्णकी सीढियाँ लगी थी ऐसी वापिकाएँ तथा जिनके सुन्दर-सुन्दर तट थे ऐसी परिखाएँ कमल आदिके फूलोसे आच्छादित हो गयी और उनमे इतना पानी भर गया कि ग्रीष्म ऋतुमे भी नही सूख सकती थी ॥१२२॥ जो स्नान सम्बन्धी क्रीड़ासे उपभोग करने योग्य थी, जिनके तटोंपर उत्तमोत्तम जिनालय स्थित थे तथा जो हरेभरे वृक्षोकी कतारोसे सुशोभित थी ऐसी परिखाएँ उत्तम शोभा धारण करती थी ॥१२३॥ अयोध्यापुरीको स्वर्गपुरीके समान की हुई जानकर हलके धारक श्रीरामने स्थान-स्थानपर आगामी दिन प्रस्थानको सूचित करनेवाली घोषणा दिलवायी ॥१२४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! आकाशरूपी आँगनमे विहार करनेवाले नारद ऋषिने जबसे माताओ सम्बन्धी समाचार सुनाया था तभीसे राम-लक्ष्मण अपनी-अपनी माताओको हृदयमे धारण कर रहे थे ॥१२५॥ पूर्वभवमे किये हुए पुण्यकर्मके प्रभाव-से प्राणियोंके समस्त अचिन्तित कार्य सुन्दरताको प्राप्त होते है इसलिए समस्त लोग सदा पुण्य संचय करनेमे तत्पर रहे जिससे कि उन्हे चिन्तारूपी सूर्यका सन्ताप न भोगना पड़े ॥१२६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे अयोध्याका वर्णन करनेवाला इक्यासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८१॥



---

१. सुपुष्पाणि म । २ दशयोजन ज. ।

द्व्यशीतितमं पर्व

अथोदयमिते भानौ पद्मनारायणौ तदा । यानं पुष्पकमारुह्य साकेतां प्रस्थितौ शुभौ ॥१॥
परिवारसमायुक्ता विविधैर्यानवाहनैः । विद्याधरेश्वरा गन्तुं[1] सक्तास्तत्सेवनोद्यताः ॥२॥
छत्रध्वजनिरुद्धार्ककिरणं वायुगोचरम् । समाश्रिता[2] महीं दूरं पश्यन्तो गिरिभूषिताम् ॥३॥
विलसद्विविधप्राणिसंघातं[3] क्षारसागरम् । व्यतीत्य खेचरा लीलां वहन्तो यान्ति हर्षिणः ॥४॥
पद्मस्याङ्कगता सीता सती गुणसमुत्कटा । लक्ष्मीरिव महाशोभा पुरोन्यस्तेक्षणा जगौ ॥५॥
जम्बूद्वीपतलस्येदं मध्ये नाथ किमीक्ष्यते । अत्यन्तमुज्ज्वलं पद्मस्ततोऽभापत सुन्दरीम्[4] ॥६॥
देवि यत्र पुरा देवैर्मुनिसुव्रततीर्थकृत् । देवदेवप्रभुर्बाल्ये हृष्टैर्नीतोऽभिषेचनम् ॥७॥
सोऽयं रत्नमयैस्तुङ्गैः शिखरैश्चित्तहारिभिः । विराजते नगाधीशो मन्दरो नाम विश्रुतः ॥८॥
अहो वेगादतिक्रान्तं विमानं पदवीं पराम् । एहि भूयो बलं याम इति गत्वा पुनर्जगौ ॥९॥
एतत्तु दण्डकारण्यमिभाभोगमहातमः । लङ्कानाथेन यत्रस्था हृता त्वं स्वोपघातिना ॥१०॥
चारणश्रमणौ यत्र त्वया सार्द्धं मया तदा । पारणं लम्भितौ सैषा सुभगे दृश्यते नदी ॥११॥
सोऽयं सुलोचने भूभृद्वंशोऽभिख्योऽभिलक्ष्यते । [5]दृष्टौ यत्र मुनी युक्तौ देशगोत्रविभूषणौ ॥१२॥
कृतं मया ययोरासीद् भवत्या लक्ष्मणेन च । प्रातिहार्यं ततो यातं केवलं शिवसौख्यदम् ॥१३॥
वालिखिल्यपुरं भद्रे तदेतद् यत्र लक्ष्मणः । प्राप कल्याणमालाख्यां कन्यां कांचित्त्वया समाम् ॥१४॥

अथानन्तर सूर्योदय होनेपर शुभ चेष्टाओंके धारक राम और लक्ष्मण पुष्पक विमानमे आरूढ हो अयोध्याकी ओर चले ॥१॥ उनकी सेवामे तत्पर रहनेवाले अनेक विद्याधरोके अधिपति अपने-अपने परिवारके साथ नाना प्रकारके यानो और वाहनोपर सवार हो साथ चले ॥२॥ छत्रों और ध्वजाओसे जहां सूर्यकी किरणें रुक गयी थी ऐसे आकाशमे स्थित सब लोग पर्वतोंसे भूषित पृथिवीको दूरसे देख रहे थे ॥३॥ जिसमे नाना प्रकारके प्राणियोके समूह क्रीड़ा कर रहे थे ऐसे लवण-समुद्रको लाँघकर हर्षसे भरे वे विद्याधर लीला धारण करते हुए जा रहे थे ॥४॥ रामके समीप बैठी गुणगणको धारण करनेवाली सती सीता लक्ष्मीके समान महाशोभाको धारण कर रही थी । वह सामनेकी ओर दृष्टि डालती हुई रामसे बोली कि हे नाथ ! जम्बूद्वीपके मध्यमे यह अत्यन्त उज्ज्वल वस्तु क्या दिख रही है ? तब रामने सुन्दरी सीतासे कहा कि हे देवि ! जहाँ पहले बाल्यावस्थामे देवाधिदेव भगवान् मुनिसुव्रतनाथका हर्षसे भरे देवोने अभिषेक किया था ॥५–७॥ यह वही रत्नमय ऊँचे मनोहारी शिखरोसे युक्त मन्दर नामका प्रसिद्ध पर्वतराज सुशोभित हो रहा है ॥८॥ 'अहो ! वेगके कारण विमान दूसरे मार्गमे आ गया है, आओ अब पुनः सेनाके पास चलें' यह कह तथा सेनाके पास जाकर राम बोले कि हे प्रिये ! यह वही दण्डक वन है जहाँ काले-काले हाथियोंकी घटासे महा-अन्धकार फैल रहा है तथा जहाँ पर बैठी हुई तुम्हे अपना घात करनेवाला रावण हरकर ले गया था ॥९–१०॥ हे सुन्दरी ! यह वही नदी दिखाई देती है जहाँ मेरे साथ तुमने दो चारण ऋद्धिधारी मुनियोंके लिए पारणा करायी थी ॥११॥ हे सुलोचने ! यह वही वंशस्थविल नामका पर्वत दिखाई देता है जहां एक साथ विराजमान देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंके दर्शन किये थे ॥१२॥ जिन मुनियोकी मैंने, तुमने तथा लक्ष्मणने उपसर्ग दूर कर सेवा की थी और जिन्हे मोक्षसुखका देनेवाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ था ॥१३॥ हे भद्रे ! यह वालिखिल्यका नगर है जहाँ

---

१. शक्ता म । २. समाश्रिता म. । ३ क्षीरसागरम् । ४ सुन्दरी म । ५. दृष्टौ म. ।

दशाङ्गभोगनगरमदस्तद् दृश्यते प्रिये । रूपवत्या· पिता वज्रश्रवा यच्छ्रावकः[1] परः ॥१५॥
पुनरालोक्य धरणीं पुनः पप्रच्छ जानकी । कान्तेयं नगरी कस्य खेचरेशस्य दृश्यते ॥१६॥
विमानसदृशैर्गेहैरियमत्यन्तमुत्कटा । न जातुचिन्मया दृष्टा त्रिविष्टपविडम्बिनी ॥१७॥
जानकीवचनं श्रुत्वा दिशश्चालोक्य मन्थरम् । क्षणं विभ्रान्तचेतस्को ज्ञात्वा पद्मः स्मिती जगौ ॥१८॥
पूरयोध्या प्रिये सेयं नूनं खेचरशिल्पिभिः । अन्येव रचिता भाति जितलङ्का परद्युतिः ॥१९॥
ततोऽत्युग्रं विहाय स्थं विमानं सहसा परम् । द्वितीयादित्यसंकाशं वीक्ष्य क्षुब्धा नगर्यसौ ॥२०॥
आरुह्य च महानागं भरतः प्राप्तसंभ्रमः । विभूत्या परया युक्तः शक्रवन्निरगात् पुरः ॥२१॥
तावदैक्षत सर्वाशाः स्थगिता गगनायनै. । नानायानविमानस्थैर्विचित्रर्द्धिसमन्वितैः ॥२२॥
दृष्ट्वा भरतमायान्तं भूमिस्थापितपुष्पकौ । पद्मलक्ष्मीधरौ यातौ समीपत्वं सुसंमदौ ॥२३॥
समीपौ तावितौ दृष्ट्वा गजादुत्तीर्य कैकेयः[2] । पूजामर्घशतैश्चक्रे तयो स्नेहादिपूरितैः ॥२४॥
विमानशिखरात्तौ तं निष्क्रम्य प्रीतिनिर्भरम् । केयूरभूषितभुजावग्रजावालिलिङ्गतुः ॥२५॥
दृष्ट्वा पृष्टौ च कुशलं कृतशंसनसत्कथौ । भरतेन समेतौ तावारूढौ पुष्पकं पुन· ॥२६॥
प्रविशन्ति तत. सर्वे क्रमेण कृतसत्क्रियाम् । अयोध्यानगरीं चित्रपताकाशबलीकृताम् ॥२७॥
संघट्टसंगतैर्यानैर्विमानैर्युग्मी[3] रथैः । अनेकपघटामिश्र मार्गोऽभूद् व्यवकाशकः[4] ॥२८॥

लक्ष्मणने तुम्हारे समान कल्याणमाला नामकी अद्‌भुत कन्या प्राप्त की थी ॥१४॥ हे प्रिये ! यह दशागभोग नामका नगर दिखायी देता है जहाँ रूपवतीका पिता वज्रकर्ण नामका उत्कृष्ट श्रावक रहता था ॥१५॥ तदनन्तर पृथिवीकी ओर देखकर सीताने पुनः पूछा कि हे कान्त ! यह नगरी किस विद्याधर राजाकी दिखाई देती है ॥१६॥ यह नगरी विमानोके समान उत्तम भवनोसे अत्यन्त व्याप्त है तथा स्वर्गकी विडम्बना करनेवाली ऐसी नगरी मैने कभी नही देखी ॥१७॥

सीताके वचन सुन तथा धीरे-धीरे दिशाओंकी ओर देख रामका चित्त स्वय क्षणभरके लिए विभ्रममे पड़ गया। परन्तु बादमे सब समाचार जानकर मन्द हास्य करते हुए बोले कि हे प्रिये ! यह अयोध्या नगरी है। जान पड़ता है कि विद्याधर कारीगरोने इसकी ऐसी रचना की है कि यह अन्य नगरीके समान जान पड़ने लगी है, इसने लंकाको जीत लिया है तथा उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त है ॥१८–१९॥ तदनन्तर द्वितीय सूर्यके समान देदीप्यमान तथा आकाशके मध्यमे स्थित विमानको सहसा देख नगरी क्षोभको प्राप्त हो गयी ॥२०॥ क्षोभको प्राप्त हुआ भरत महागजपर सवार हो महाविभूतियुक्त होता हुआ इन्द्रके समान नगरीसे बाहर निकला ॥२१॥ उसी समय उसने नाना यानो और विमानोमे स्थित तथा विचित्र ऋद्धियोसे युक्त विद्याधरोसे समस्त दिशाओंको आच्छादित देखा ॥२२॥ भरतको आता हुआ देख जिन्होने पुष्पकविमानको पृथिवी-पर खड़ा कर दिया था ऐसे राम और लक्ष्मण हर्षित हो समीपमे आये ॥२३॥ तदनन्तर उन दोनोको समीपमे आया देख भरत हाथीसे उतरकर स्नेहादिसे पूरित सैकड़ो अर्घोसे उनकी पूजा की ॥२४॥

तत्पश्चात् विमानके शिखरसे निकलकर बाजूबन्दोंसे सुशोभित भुजाओको धारण करने-वाले दोनों अग्रजोने बड़े प्रेमसे भरतका आलिंगन किया ॥२५॥ एक दूसरेको देखकर तथा कुशल समाचार पूछकर राम-लक्ष्मण पुनः भरतके साथ पुष्पकविमानपर आरूढ हुए ॥२६॥

तदनन्तर जिसकी सजावट की गयी थी और जो नाना प्रकारकी पताकाओसे चित्रित थी ऐसी अयोध्या नगरीमे क्रमसे सबने प्रवेश किया ॥२७॥ धक्काधूमीके साथ चलनेवाले यानो,

---

१ पुर म. । २. भरत । ३ अश्वै. । ४ विगतावकाशः ।

प्रलम्ब[1]जलभृत्तुल्यास्तूर्यघोषाः समुद्ययुः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्रा भम्भाभेरीमहारवाः ॥२९॥
पटहानां पटीयांसो मन्द्राणां मन्द्रता ययुः । लम्पानां कम्पशम्पानां[2] धुन्धूनां मधुरा भृशम् ॥३०॥
झल्लाम्लातकहक्कानां हैकहुङ्कारसंगिनाम् । गुञ्जारटितनाम्नां च वादित्राणां महास्वनाः ॥३१॥
सुकलाः काहला नादा घना हलहलारवाः । [3]अट्टहासास्तुरङ्गेभसिंहव्याघ्रादिनिस्वनाः ॥३२॥
वंशस्वनानुगामीनि गीतानि विविधानि च । विनर्दितानि भाण्डानां वन्दिनां पठितानि च ॥३३॥
संक्रीडितानि रम्याणि रथानां सूर्यतेजसाम् । वसुधाक्षोभघोषाश्च प्रतिशब्दाश्च कोटिशः ॥३४॥
एवं विद्याधराधीशैर्विभ्रद्भिः परमां श्रियम् । वृतौ विविशतः कान्तौ पुरं पद्मामचक्रिणौ ॥३५॥
आसन् विद्याधरा देवा इन्द्रौ पद्मामचक्रिणौ । अयोध्यानगरी स्वर्गो वर्णना तत्र कीदृशी ॥३६॥
पद्माननिशानाथं वीक्ष्य लोकमहोदधिः । कलध्वनिर्ययौ वृद्धिमत्यावर्तनवेलया ॥३७॥
विज्ञायमानपुरुषै पूज्यमानौ पदे पदे । जय वर्द्धस्व जीवेति नन्देति च कृताशिषौ ॥३८॥
अत्युत्तुङ्गविमानाभभवनानां शिरः स्थिताः । सुन्दर्यस्तौ विलोकन्त्यो विकचाम्भोजलोचनाः ॥३९॥
संपूर्णचन्द्रसंकाशं पद्मं पद्मनिभेक्षणम् । प्रावृषेण्यघनच्छायं लक्ष्मणं च सुलक्षणम् ॥४०॥
नार्यो निरीक्षितुं सक्ता[5] मुक्ताशेषापरक्रियाः । गवाक्षान् वदनैश्चक्रुर्व्योमाम्भोजवनोपमान् ॥४१॥
राजन्नन्योन्यसंपर्के निर्भरे सति योषिताम् । सृष्टापूर्वा तदा वृष्टिश्छिन्नहारैः पयोधरैः ॥४२॥

विमानो, घोडो, रथो और हाथियोकी घटाओसे अयोध्याके मार्ग अवकाशरहित हो गये ॥२८॥ झूमते हुए मेघोंकी गर्जनाके समान तुरहीके शब्द तथा करोड़ों शंखोके शब्दोसे मिश्रित भम्भा और भेरियोके शब्द होने लगे ॥२९॥ बड़े-बड़े नगाड़ोंके जोरदार शब्द तथा बिजलीके समान चंचल लम्प और धुन्धुओके मधुर शब्द गम्भीरताको प्राप्त हो रहे थे ॥३०॥ हैक नामक वादित्रोकी हुंकारसे सहित झाल्लर, अम्लातक, हक्का, और गुंजा रटित नामक वादित्रोके महाशब्द, काहलोके अस्फुट एवं मधुर शब्द, निविड़ताको प्राप्त हुए हलहलाके शब्द, अट्टहासके शब्द, घोड़े, हाथी, सिंह और व्याघ्रादिके शब्द, बाँसुरीके स्वरसे मिले हुए नाना प्रकारके संगीतके शब्द, भाँड़ोके विशाल शब्द, बन्दीजनोके विरद पाठ, सूर्यके समान तेजस्वी रथोकी मनोहर चीत्कार, पृथिवीके कम्पनसे उत्पन्न हुए शब्द और इन सबकी करोड़ो प्रकारकी प्रतिध्वनियोके शब्द सब एक साथ मिलकर विशाल शब्द कर रहे थे ॥३१–३४॥ इस प्रकार परम शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर राजाओसे घिरे हुए सुन्दर शरीरके धारक राम और लक्ष्मणने नगरीमे प्रवेश किया ॥३५॥

उस समय विद्याधर देव थे, राम-लक्ष्मण इन्द्र थे और अयोध्यानगरी स्वर्ग थी तब उनका वर्णन कैसा किया जाये ? ॥३६॥ श्रीरामके मुखरूपी चन्द्रमाको देखकर मधुरध्वनि करनेवाला लोकरूपी सागर, बढती हुई वेलाके साथ वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३७॥ पहचानमे आये पुरुष जिन्हे पद-पद पर पूज रहे थे, तथा जयवन्त रहो, वढ़ते रहो, जीते रहो, समृद्धिमान् होओ, इत्यादि शब्दोके द्वारा जिन्हे स्थान-स्थानपर आशीर्वाद किया जा रहा था ऐसे दोनो भाई नगरमे प्रवेश कर रहे थे ॥३८॥ अत्यन्त ऊँचे विमानतुल्य भवनोके शिखरो पर स्थित स्त्रियोके नेत्रकमल राम लक्ष्मणको देखते ही खिल उठते थे ॥३९॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान कमल-लोचन राम और वर्षाकालीन मेघके समान श्याम, सुन्दर लक्षणोंके धारक लक्ष्मणको देखनेके लिए तत्पर स्त्रियाँ अन्य सब काम छोड अपने मुखोसे झरोखोको कमलवनके समान कर रही थी ॥४०–४१॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! उस समय परस्परमे अत्यधिक सम्पर्क होनेपर जिनके हार टूट गये थे ऐसी स्त्रियोके पयोधरों अर्थात् स्तनरूपी पयोधरो अर्थात् मेघोने अपूर्व वृष्टि की थी ॥४२॥

१ प्रलय- म. । २ कम्पे शम्पा इव तेषाम् । ३. भट्टहासा -म. । ४ चक्र -म । ५ शक्ता म , क ।

च्युतं नि[1]पतितं भूमौ काञ्चीनूपुरकुण्डलम् । तासां तद्गतचित्तानां ध्वनयश्चैवमुद्गताः ॥४३॥
यस्यैषाङ्कगता भाति प्रिया गुणधरा सती । देवी विदेहजा सोऽयं पद्मनाभो महेक्षणः ॥४४॥
निहतः प्रधने येन सुग्रीवाकृतितस्करः । वृत्रदैत्यपतेर्नप्ता स साहसगतिः खलः ॥४५॥
अय लक्ष्मीधरो येन शक्रतुल्यपराक्रमः । हतो लङ्केश्वरो युद्धे स्वेन चक्रेण वक्षसि ॥४६॥
सुग्रीवोऽयं महासत्त्वस्तनयोऽस्यायमङ्गदः । अयं भामण्डलाभिख्यः सीतादेव्याः सहोदरः ॥४७॥
देवेन जातमात्रः सन्नासीद् योऽपहृतस्तदा । मुक्तोऽनुकम्पया भूयो दृष्टो विद्याधरेन्दुना ॥४८॥
[2]उन्मादेन (?) वने तस्मिन् गृहीत्वा च प्रमोदिना । पुत्रस्तवायमित्युक्त्वा पुष्पवत्यै समर्पितः ॥४९॥
एषोऽसौ दिव्यरत्नात्मकुण्डलोद्योतिताननः । विद्याधरमहाधीशो भाति सार्थकशब्दितः ॥५०॥
चन्द्रोदरसुतः सोऽयं सखि श्रीमान् विराधितः । श्रीशैलः पवनस्यायं पुत्रो वानरकेतनः ॥५१॥
एवं विस्मययुक्ताभिस्तोषिणीभिः समुत्कटाः । लक्षिताः पौरनारीभिः प्राप्तास्ते पार्थिवालयम् ॥५२॥
तावत्प्रासादमूर्द्धस्थे पुत्रस्नेहपरायणे । संप्रस्नुतस्तने वीरमातराववतेरतुः ॥५३॥
महागुणधरा देवी साधुशीलापराजिता । केकयी केकया चापि सुप्रजाश्च सुचेष्टिताः ॥५४॥
भवान्तरसमायोगमिव प्राप्तास्तयोरमा । मातरोऽगुः समीपत्वं मङ्गलोद्यतचेतसः ॥५५॥
ततो मातृजनं वीक्ष्य मुदितौ कमलेक्षणौ । पुष्पयानात् समुत्तीर्य लोकपालोपमद्युती ॥५६॥

जिनके चित्त राम-लक्ष्मणमे लग रहे थे ऐसी स्त्रियोकी मेखला, नूपुर और कुण्डल टूट-टूटकर पृथिवीपर पड रहे थे तथा उनमे परस्पर इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था ॥४३॥ कोई कह रही थी कि जिनकी गोदमे गुणोको धारण करनेवाली यह राजा जनककी पुत्री पतिव्रता सीता प्रिया विद्यमान है यही विशाल नेत्रोको धारण करनेवाले राम हैं ॥४४॥ कोई कह रही थी कि हाँ, ये वे ही राम हैं जिन्होने सुग्रीवकी आकृतिके चोर दैत्यराज वृत्रके नाती दुष्ट साहसगतिको युद्धमे मारा था ॥४५॥ कोई कह रही थी कि ये इन्द्रतुल्य पराक्रमके धारी लक्ष्मण है जिन्होने युद्धमे अपने चक्रसे वक्षःस्थलपर प्रहार कर रावणको मारा था ॥४६॥ कोई कह रही थी कि यह महाशक्तिशाली सुग्रीव है, यह उसका बेटा अंगद है, यह सीतादेवीका सगा भाई भामण्डल है जिसे उत्पन्न होते ही देवने पहले तो हर लिया था फिर दयासे छोड़ दिया था और चन्द्रगति विद्याधरने देखा था ॥४७–४८॥ यही नही किन्तु हर्षसे युक्त हो उसे वनमे झेला था तथा 'यह तुम्हारा पुत्र है' इस प्रकार कहकर रानी पुष्पवतीके लिए सौपा था। अपने दिव्य रत्नमयी कुण्डलोसे जिसका मुख देदीप्यमान हो रहा है तथा जो सार्थक नामका धारी है ऐसा यह विद्याधरोंका राजा भामण्डल अत्यधिक शोभित हो रहा है ॥४९–५०॥ हे सखि ! यह चन्द्रोदरका लड़का श्रीमान् विराधित है और यह वानरचिह्नित पताकाको धारण करनेवाला पवनंजयका पुत्र श्रीशैल (हनूमान्) है ॥५१॥ इस प्रकार आश्चर्य तथा सन्तोषको धारण करनेवाली नगरवासिनी स्त्रियाँ जिन्हे देख रही थी ऐसे उत्कट शोभाके धारक सब लोग राजभवनमे पहुँचे ॥५२॥ जबतक ये सब राजभवनमे पहुँचे तबतक जो भवनके शिखरपर स्थित थी, पुत्रोके प्रति स्नेह प्रकट करनेमे तैयार थी तथा जिनके स्तनोसे दूध झर रहा था ऐसी दोनों वीर-माताएँ ऊपरसे उतरकर नीचे आ गयी ॥५३॥ महागुणोको धारण करनेवाली तथा उत्तम शीलसे युक्त अपराजिता (कौशल्या) कैकयी (सुमित्रा), केकया (भरतकी माता) और सुप्रजा (सुप्रभा) उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली तथा मंगलाचारमे निपुण ये चारो माताएँ साथ-साथ राम-लक्ष्मणके समीप आयी मानो भवान्तरमे ही संयोगको प्राप्त हुई हो ॥५४–५५॥

तदनन्तर जो माताओको देखकर प्रसन्न थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे और जो लोक-

---

१. न पतितं क, ख, म. । २. 'उन्मादेन' इति पाठेन भाव्यम् ।

कृताञ्जलिपुटौ नम्रौ सनृपौ साङ्गनाजनौ । मातॄणां नेमतुः पादावुपगम्य क्रमेण तौ ॥५७॥
आशीर्वादसहस्राणि यच्छन्त्यः शुभदानि ताः । परिषस्वजिरे पुत्रौ स्वसंवेद्यमिताः सुखम् ॥५८॥
पुनः पुनः परिष्वज्य तृप्तिसंबन्धवर्जिताः । चुचुम्बुर्मस्तके कम्पिकरामर्शनतत्पराः ॥५९॥
आनन्दबाष्पपूर्णाक्षाः कृतासनपरिग्रहाः । सुखदुःखं समावेद्य धृतिं ताः परमां ययुः ॥६०॥
मनोरथसहस्राणि गुणितान्यसकृत्पुरा । तासां श्रेणिक पुण्येन फलितानीप्सिताधिकम् ॥६१॥
सर्वा. शूरजनन्यस्ताः साधुभक्ताः सुचेतस. । स्नुषाशतसमाकीर्णा लक्ष्मीविभवसंगताः ॥६२॥
वीरपुत्रानुभावेन निजपुण्योदयेन च । महिमानं परिप्राप्ता गौरवं च सुपूजितम् ॥६३॥
क्षारोदसागरान्तायां प्रतिघातविवर्जिताः । क्षितावेकातपत्रायां ददुराज्ञां यथेप्सितम् ॥६४॥

आर्याच्छन्दः

इष्टसमागममेतं शृणोति यः पठति चातिशुद्धमतिः ।
लभते संपदमिष्टामायुः पूर्णं सुपुण्यं च ॥६५॥
एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्तोऽभ्युदयं जनस्य सद्बुद्धेः ।
कुरुते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिमं कुरुत ॥६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलक्ष्मणसमागमाभिधानं नाम द्व्यशीतितमं पर्व ॥८२॥



पालोंके तुल्य कान्तिको धारण करनेवाले थे ऐसे राम-लक्ष्मण दोनों भाई पुष्पक विमानसे उतर-कर नीचे आये और दोनोंने हाथ जोड़कर नम्रीभूत हो साथमे आये हुए समस्त राजाओं और अपनी स्त्रियोके साथ क्रमसे समीप जाकर माताओंके चरणोमें नमस्कार किया ॥५६–५७॥ कल्याणकारी हजारों आशीर्वादोको देती हुईं उन माताओने दोनो पुत्रोका आलिंगन किया। उस समय वे सव स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हो रही थी अर्थात् जो सुख उन्हें प्राप्त हुआ था उसका अनुभव उन्हीको हो रहा था—अन्य लोग उसका वर्णन नही कर सकते थे ॥५८॥ वे बार-बार आलिंगन करती थी फिर भी तृप्त नही होती थीं, मस्तकपर चुम्बन करती थी, कांपते हुए हाथसे उनका स्पर्श करती थी, और उनके नेत्र हर्षके आँसुओंसे पूर्ण हो रहे थे। तदनन्तर आसनपर आरूढ़ हो परस्परका सुख-दुःख पूछकर वे सब परम धैर्यको प्राप्त हुईं ॥५९–६०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इनके जो हजारो मनोरथ पहले अनेकों वार गुणित होते रहते थे वे अब पुण्यके प्रभावसे इच्छासे भी अधिक फलीभूत हुए ॥६१॥ जो साधुओंकी भक्त थीं, उत्तम चित्तको धारण करनेवाली थी, सैकड़ो पुत्र-वधुओंसे सहित थी, तथा लक्ष्मीके वैभवको प्राप्त थी ऐसी उन वीर माताओने वीर पुत्रोके प्रभाव और अपने पुण्योदयसे लोकोत्तर महिमा तथा गौरवको प्राप्त किया ॥६२–६३॥ वे एक छत्रसे सुशोभित लवणसमुद्रान्त पृथिवीमे बिना किसी बाधाके इच्छा-नुसार आज्ञा प्रदान करती थी ॥६४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अत्यन्त विशुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाला जो मनुष्य इस इष्ट समागमके प्रकरणको सुनता है अथवा पढ़ता है वह इष्ट सम्पत्ति पूर्ण आयु तथा उत्तम पुण्यको प्राप्त होता है ॥६५॥ सद्बुद्धि मनुष्यका किया हुआ एक नियम भी अभ्युदयको प्राप्त हो सूर्यके समान उत्तम प्रकाश करता है। हे भव्य जनो ! उस नियमको अवश्य करो ॥६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणके समागमका वर्णन करनेवाला बयासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८२॥



त्र्यशीतितमं पर्व

पुनः प्रणम्य शिरसा पृच्छति श्रेणिको यतिम् । गृहे श्रीविस्तरं[1] तेषां समुद्भूतातिकौतुकः ॥१॥
उवाच गौतमः पाद्माः लाक्ष्मणा भारता नृप । शात्रुघ्नाश्च न शक्यन्ते भोगाः कार्त्स्न्येन शंसितुम् ॥२॥
तथापि शृणु ते राजन् वेदयामि समासतः । रामचक्रिप्रभावेण विभवस्य समुद्भवम् ॥३॥
नन्द्यावर्त्ताख्यसंस्थानं बहुद्वारोच्चगोपुरम् । शक्रालयसम कान्तं भवनं भवनं श्रियः ॥४॥
चतु शाल इति ख्यातः प्राकारोऽस्य विराजते । महाद्रिशिखरोत्तुङ्गो वैजयन्त्यभिधा सभा ॥५॥
शाला चन्द्रमणी रम्या सुवीथीति प्रकीर्त्तिता । प्रासादकूटमत्यन्तमुत्तुङ्गमवलोकनम् ॥६॥
प्रेक्षागृह च विन्ध्याभं वर्द्धमानककीर्त्तनम् । परिकर्मोपयुक्तानि कर्मान्तिभवनानि च ॥७॥
कुक्कुटाण्डप्रभं गर्भगृहकूटं महाद्भुतम् । एकस्तम्भधृतं कल्पतरुतुल्यं मनोहरम् ॥८॥
मण्डलेन तदावृत्य देवीनां गृहपालिका । तरङ्गाली परिख्याता स्थिता रत्नसमुज्ज्वला ॥९॥
महदम्भोनकाण्डं च विद्युद्दलसमद्युति[2] । सुश्लिष्टा सुभगस्पर्शा शय्या सिंहशिरःस्थिता ॥१०॥
उद्यद्भास्करसंकाशमुत्तमं हरिविष्टरम् । चामराणि शशाङ्कांशुसंचयप्रतिमानि च ॥११॥
इष्टच्छायकरं स्फीत छत्रं तारापतिप्रभम् । सुखेन[3] गमने कान्ते पादुके विषमोचिके ॥१२॥
अनर्घाणि च वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च । दुर्भेद्यं कवचं कान्तं मणिकुण्डलयुग्मकम् ॥१३॥
अमोघाश्च गदाखड्गकनकारिशिलीमुखाः । अन्यानि च महास्त्राणि भासुराणि रणाजिरे ॥१४॥

अथानन्तर जिसे अत्यन्त कौतुक उत्पन्न हुआ था ऐसे राजा श्रेणिकने शिरसे प्रणाम कर गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! उन राम-लक्ष्मणके घरमे लक्ष्मीका विस्तार कैसा था ? ॥१॥ तब गौतम स्वामीने कहा कि हे राजन् ! यद्यपि राम-लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके भोगोका वर्णन सम्पूर्ण रूपसे नहीं किया जा सकता तथापि हे राजन् ! बलभद्र और नारायणके प्रभावसे उनके जो वैभव प्रकट हुआ था वह संक्षेपसे कहता हूँ सो सुन ॥२-३॥ उनके अनेक द्वारो तथा उच्च गोपुरोसे युक्त, इन्द्रभवनके समान सुन्दर लक्ष्मीका निवासभूत नन्द्यावर्त नामका भवन था ॥४॥ किसी महागिरिके शिखरोके समान ऊँचा चतु.शाल नामका कोट था, वैजयन्ती नामकी सभा थी। चन्द्रकान्त मणियोसे निर्मित सुवीथी नामकी मनोहर शाला थी, अत्यन्त ऊँचा तथा सब दिशाओका अवलोकन करानेवाला प्रासादकूट था, विन्ध्यगिरिके समान ऊँचा वर्द्धमानक नामक प्रेक्षागृह था, अनेक प्रकारके उपकरणोसे युक्त कार्यालय थे, उनका गर्भगृह कुक्कुटीके अण्डे-के समान महान् आश्चर्यकारी था, एक खम्भेपर खड़ा था, और कल्पवृक्षके समान मनोहर था ॥५-८॥ उस गर्भगृहको चारो ओरसे घेरकर तरंगाली नाममे प्रसिद्ध तथा रत्नोसे देदीप्यमान रानियोके महलोकी पंक्ति थी ॥९॥ बिजलीके खण्डोके समान कान्तिवाला अम्भोजकाण्ड नामका शय्यागृह था, सुन्दर, सुकोमल स्पर्शवाली तथा सिंहके शिरके समान पायोपर स्थित शय्या थी, उगते हुए सूर्यके समान उत्तम सिंहासन था, चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान चमर थे ॥१०-११॥ इच्छानुकूल छायाको करनेवाला चन्द्रमाके समान कान्तिसे युक्त बड़ा भारी छत्र था, सुखसे गमन करानेवाली विषमोचिका नामकी दो खड़ाऊँ थी ॥१२॥ अनर्घ्य वस्त्र थे, दिव्य आभूषण थे, दुर्भेद्य कवच था, देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोका जोड़ा था, कभी व्यर्थ नही जानेवाले गदा, खड्ग, कनक, चक्र, बाण तथा रणांगणमे चमकनेवाले अन्य बड़े-बडे शस्त्र थे ॥१३-१४॥

---

१. श्रीविस्तरे म । २. द्युतिः म., ज. । ३. गगने म., ज ।

[1]पञ्चाशद्धलकोटीनां लक्षाणि गदितानि च । स्वयं क्षरे[2]णशीलानां कोटिरभ्यधिका गवाम् ॥१५॥
सप्तति. साधिकाः कोटयः कुलीनां स्फीतसंपदाम् । नित्यं न्यायप्रवृत्तानां साकेतनगरीजुषाम् ॥१६॥
भवनान्यतिशुभ्राणि सर्वाणि विविधानि च । अक्षीणकोशपूर्णानि रत्नवन्ति कुटुम्बिनाम् ॥१७॥
पाल्या बहुविधैर्धान्यैः पूर्णा गण्डाद्रिसंनिभाः । विज्ञेयाः कुट्टिमतलाश्चतुःशालाः सुखावहाः ॥१८॥
प्रवरोद्यानमध्यस्था नानाकुसुमशोभिताः । दीर्घिकाश्चारुसोपाना. परिक्रीडनकोचिताः ॥१९॥
प्रेक्ष्यगोमहिषीवृन्दस्फीतास्तत्र कुटुम्बिनः । सौख्येन महता युक्ताः रेजु. सुरवरा इव ॥२०॥
दण्डनायकसामन्ता लोकपाला इवोदिताः । महेन्द्रतुल्यविभवा राजानः पुरुतेजसः ॥२१॥
सुन्दर्योऽप्सरसां तुल्याः संसारसुखभूमयः । निखिलं [3]चोपकरणं यथाभिमतसौख्यदम् ॥२२॥
एवं रामेण भरतं नीतं शोभां परामिदम् । हरिषेणनरेन्द्रेण यथा चक्रभृता पुरा ॥२३॥
चैत्यानि रामदेवेन कारितानि सहस्रश. । भान्ति भव्यजनैर्नित्यं पूजितानि महर्द्धिभिः ॥२४॥
देशग्रामपुरारण्यगृहरथ्यागतो जनः । सदेति संकथां चक्रे सुखी रचितमण्डलः ॥२५॥
साकेतविषय. सर्वः सर्वथा पश्यताधुना । विलम्बयितुमुद्युक्तस्त्रिविष्टपम् ॥२६॥
मध्ये शक्रपुरीतुल्या नगरी यस्य राजते । अयोध्या निलयैस्तुङ्गैरशक्यपरिवर्णनै. ॥२७॥
किममी त्रिदशक्रीडापर्वतास्तेजसावृताः । आहोस्विच्छरदभ्रौघाः किंवा विद्यामहालया. ॥२८॥
प्राकारोऽयं समस्ताशा द्योतयन् परमोन्नतः । समुद्रवेदिकातुल्यो महाशिखरशोभितः ॥२९॥

पचास लाख हल थे, एक करोड़से अधिक अपने आप दूध देनेवाली गायें थीं ॥१५॥ जो अत्यधिक सम्पत्तिके धारक थे तथा निरन्तर न्यायमें प्रवृत्त रहते थे ऐसे अयोध्या नगरीमें निवास करनेवाले कुलोंकी संख्या कुछ अधिक सत्तर करोड़ थी ॥१६॥ गृहस्थोंके समस्त घर अत्यन्त सफेद, नाना आकारोंके धारक, अक्षीण खजानोंसे परिपूर्ण तथा रत्नोंसे युक्त थे ॥१७॥ नाना प्रकारके अन्नोंसे परिपूर्ण नगरके बाह्य प्रदेश छोटे-मोटे गोल पर्वतोंके समान जान पड़ते थे और पक्के फर्शोंसे युक्त भवनोंकी चौशालें अत्यन्त सुखदायी थीं ॥१८॥ उत्तमोत्तम बगीचोंके मध्यमें स्थित, नाना प्रकारके फूलोंसे सुशोभित, उत्तम सीढ़ियोंसे युक्त एवं क्रीड़ाके योग्य अनेकों वापिकाएँ थीं ॥१९॥ देखनेके योग्य अर्थात् सुन्दर-सुन्दर गायों और भैंसोंके समूहसे युक्त वहाँके कुटुम्बी अत्यधिक सुखसे सहित होनेके कारण उत्तम देवोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२०॥ सेनाके नायकस्वरूप जो सामन्त थे वे लोकपालोंके समान कहे गये थे तथा विशाल तेजके धारक राजा लोग महेन्द्रके समान वैभवसे युक्त थे ॥२१॥ अप्सराओंके समान संसारके सुखकी भूमिस्वरूप अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ थीं, और इच्छानुकूल सुखके देनेवाले अनेक उपकरण थे ॥२२॥ जिस प्रकार पहले, चक्ररत्नको धारण करनेवाले राजा हरिषेणके द्वारा यह भरत क्षेत्र परम शोभाको प्राप्त हुआ था उसी प्रकार यह भरत क्षेत्र रामके द्वारा परम शोभाको प्राप्त हुआ था ॥२३॥ अत्यधिक सम्पदाको धारण करनेवाले भव्यजन जिनकी निरन्तर पूजा करते थे ऐसे हजारों चैत्यालय श्रीरामदेवने निर्मित कराये थे ॥२४॥ देश, गाँव, नगर, वन, घर और गलियोंके मध्यमें स्थित सुखिया मनुष्य मण्डल बाँध-बाँधकर सदा यह चर्चा करते रहते थे ॥२५॥ कि देखो यह समस्त साकेत देश, इस समय आश्चर्यकारी स्वर्ग लोककी उपमा प्राप्त करनेके लिए उद्यत है ॥२६॥ जिस देशके मध्यमें जिनका वर्णन करना शक्य नहीं है ऐसे ऊँचे-ऊँचे भवनोंसे अयोध्यापुरी इन्द्रकी नगरीके समान सुशोभित हो रही है ॥२७॥ वहाँके बड़े-बड़े विद्यालयोंको देखकर यह सन्देह उत्पन्न होता था कि क्या ये तेजसे आवृत देवोंके क्रीड़ाचल हैं अथवा शरद् ऋतुके मेघोंका समूह है ? ॥२८॥ इस नगरीका यह प्राकार समस्त दिशाओंको देदीप्यमान कर रहा है, अत्यन्त ऊँचा है, समुद्रकी वेदिकाके

---

१. पञ्चाशद्वलकोटीनां म. । २. लक्ष्मण—म., ख. । रक्षण ज. । ३. चोपशरण म ।

सुवर्णरत्नसंघातो रश्मिदीपितपुष्करः । कुत ईदृक्त्रिलोकेऽस्मिन् मानसस्याप्यगोचरः ॥३०॥
नूनं पुण्यजनैरेषा विनीता नगरी शुभा । संपूर्णा रामदेवेन विहितान्येव शोभना ॥३१॥
सम्प्रदायेन यः स्वर्ग. श्रूयते कोऽपि सुन्दरः । नूनं तमेवमादाय सम्प्राप्तौ रामलक्ष्मणौ ॥३२॥
आहोस्वित् सैव पूर्वेयं भवेदुत्तरकोशला । दुर्गमा जनितात्यन्तं प्राणिनां पुण्यवर्जिनाम् ॥३३॥
[1]सशरीरेण लोकेन [2]सस्त्रीपशुधनादिना । त्रिदिवं रघुचन्द्रेण नीता कान्तिमिमां गता ॥३४॥
एक एव महान् दोषः [3]सुप्रकाशेऽत्र दृश्यते । महानिन्दात्रपाहेतुः सतामत्यन्तदुस्त्यजः ॥३५॥
यद्विद्याधरनाथेन हृताभिरमता ध्रुवम् । वैदेही पुनरानीता तत्किं पद्मस्य युज्यते ॥३६॥
क्षत्रियस्य कुलीनस्य ज्ञानिनो मानशालिनः । जनाः पश्यत कर्मेद किमन्यस्याभिधीयताम् ॥३७॥
इति क्षुद्रजनोद्गीतः परिवादः समन्ततः । सीतायाः कर्मत. पूर्वाद् विस्तारं विष्टपे गतः ॥३८॥
अथासौ भरतस्तत्र पुरे [4]स्वर्गत्रपाकरे । सुरेन्द्रसदृशैर्भोगैरपि नो विन्दते रतिम् ॥३९॥
स्त्रीणां शतस्य सार्द्धस्य भर्त्ता प्राणमहेश्वरः । विद्वेष्टि संतत [5]राज्यलक्ष्मीं तुङ्गां तथापि ताम् ॥४०॥
निर्व्यूहवलभीशृङ्गप्रघणद्युतिहारिभिः । प्रासादैर्मण्डलीवन्धरचितैरुपशोभिते[6] ॥४१॥
विचित्रमणिनिर्माणकुट्टिमे चारुदीर्घिके । मुक्तादामचिते हेमखचिते पुष्पितद्रुमे ॥४२॥
अनेकाश्चर्यसंकीर्णे [7]यथाकालमनोहरे । सवंशमुरजस्थाने सुन्दरीजनसकुले ॥४३॥

समान है और बड़े-बड़े शिखरोसे सुशोभित है ॥२९॥ जिसने अपनी किरणोसे आकाशको प्रकाशित कर रखा है तथा जिसका चिन्तवन मनसे भी नही किया जा सकता ऐसे सुवर्ण और रत्नोंकी राशि जैसी अयोध्यामें थी वैसी तीन लोकमे भी अन्यत्र उपलब्ध नही थी ॥३०॥ जान पड़ता है कि पुण्यजनोके द्वारा भरी हुई यह शुभ और शोभायमान नगरी श्रीरामदेवके द्वारा मानो अन्य ही कर दी गयी है ॥३१॥ सम्प्रदायवश सुननेमे आता है कि स्वर्ग नामका कोई सुन्दर पदार्थ है सो ऐसा लगता है मानो उस स्वर्गको लेकर ही राम-लक्ष्मण यहाँ पधारे हो ॥३२॥ अथवा यह वही पहलेकी उत्तरकोशल पुरी है जो कि पुण्यहीन मनुष्योके लिए अत्यन्त दुर्गम हो गयी है ॥३३॥ ऐसा जान पड़ता है कि इस कान्तिको प्राप्त हुई यह नगरी श्रीरामचन्द्रके द्वारा इसी शरीर तथा स्त्री-पशु और धनादि सहित लोगोके साथ ही साथ स्वर्ग भेज दी गयी है ॥३४॥ इस नगरीमे यही एक सबसे बड़ा दोष दिखाई देता है जो कि महानिन्दा और लज्जाका कारण है तथा सत्पुरुषोंके अत्यन्त दुःखपूर्वक छोड़नेके योग्य है ॥३५॥ वह दोष यह है कि विद्याधरोंका राजा रावण सीता-को हर ले गया था सो उसने अवश्य ही उसका सेवन किया होगा। अब वही सीता फिर लायी गयी है सो क्या रामको ऐसा करना उचित है ? ॥३६॥ अहो जनो ! देखो जब क्षत्रिय, कुलीन, ज्ञानी और मानी पुरुषका यह काम है तब अन्य पुरुपका क्या कहना है ॥३७॥ इस प्रकार क्षुद्र मनुष्योके द्वारा प्रकट हुआ सीताका अपवाद, पूर्व कर्मोदयसे लोकमे सर्वत्र विस्तारको प्राप्त हो गया ॥३८॥ अथानन्तर स्वर्गको लज्जा करनेवाले इस नगरमे रहता हुआ भरत इन्द्रतुल्य भोगोसे भी प्रीतिको प्राप्त नही हो रहा था ॥३९॥ वह यद्यपि डेढ सौ स्त्रियोका प्राणनाथ था तथापि निरन्तर उस उन्नत राज्यलक्ष्मीके साथ द्वेष करता था ॥४०॥ वह ऐसे मनोहर क्रीड़ास्थलमे जो कि छपरियो-अट्टालिकाओ, शिखरों और देहलियोकी मनोहर कान्तिसे युक्त, पक्तिबद्ध रचित बड़े-बड़े महलोसे सुशोभित था, जहाँका फर्श नाना प्रकारके रंग-बिरगे मणियोसे बना हुआ था, जहाँ सुन्दर-सुन्दर वापिकाएँ थी, जो मोतियोंकी मालाओसे व्याप्त था, सुवर्णजटित था, जहाँ वृक्ष फूलोसे युक्त थे, जो अनेक आश्चर्यकारी पदार्थोसे व्याप्त था, समयानुकूल मनको हरण करनेवाला था, बाँसुरी और मृदंगके बजनेका स्थान था, सुन्दरी स्त्रियोसे युक्त था, जिसके समीप ही मदभीगे

१ स्वशरीरेण ज., ख., म । २ स्वस्त्री म । ३ सुप्रकाशेऽत्र म. । ४. स्वर्ग्य म. । ५. राज्य लक्ष्मी म., ज. । ६ -रुपशोभितै. त. । ७. यथा काले म. ।

प्रान्तस्थितमदक्लिन्नकपोलवरवारणे । वासिते मदगन्धेन तुरङ्गरवहारिणि ॥४४॥
कृतकोमलसंगीते रत्नोद्योतपटावृते[1] । रम्ये क्रीडनकस्थाने रुचिष्ये स्वर्गिणामपि ॥४५॥
संसारभीरुरत्यन्तं नृपश्चकितमानसः । धृतिं न लभते व्याधभीरुः सारङ्गको यथा ॥४६॥
लभ्यं दुःखेन मानुष्यं चपलं जलविन्दुवत् । यौवनं फेनपुञ्जेन सदृशं दोषसंकटम् ॥४७॥
समाप्तिविरसा भोगा जीवितं स्वप्नसंनिभम् । संबन्धो बन्धुभिः सार्द्धं पक्षिसंगमनोपमः ॥४८॥
इति निश्चित्य यो धर्मं करोति न शिवावहम् । स जराजर्जरः पश्चाद्दह्यते शोकवह्निना ॥४९॥
यौवनेऽभिनवे रागः कोऽस्मिन् मूढकवल्लभे । अपवादकुलावासे संध्योद्योतविनश्वरे ॥५०॥
अवश्यं त्यजनीये च नानाव्याधिकुलालये । शुक्रशोणितसंमूले देहयन्त्रेऽपि का रतिः ॥५१॥
न तृप्यतीन्धनैर्वह्निः[2] सलिलैर्न नदीपतिः । न जीवो विषयैर्यावत्संसारमपि सेवितैः ॥५२॥
कामासक्तमतिः पापो न किंचिद् वेत्ति देहवान् । पतङ्गसमो लोभी दुःखं प्राप्नोति दारुणम् ॥५३॥
गलगण्डसमानेषु क्लेदक्षरणकारिषु । स्तनाख्यमांसपिण्डेषु बीभत्सेषु कथं रतिः ॥५४॥
दन्तकीटकसंपूर्णे ताम्बूलरसलोहिते । क्षुरिकाच्छेदसदृशे शोभा वक्त्रविले नु[3] का ॥५५॥
नारीणां चेष्टिते वायुदोषादिव समुद्गते । उन्मादजनिते प्रीतिर्विलासामिहितेऽपि का ॥५६॥
गृहान्तर्ध्वनिना तुल्ये मनोधृतिनिवासिनी । संगीते रुदिते चैव विशेषो नोपलक्ष्यते ॥५७॥

कपोलोंसे युक्त हाथी विद्यमान थे, जो मदकी गन्धसे सुवासित था, घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे मनोहर था, जहाँ कोमल संगीत हो रहा था, जो रत्नोंके प्रकाशरूपी पटसे आवृत था, तथा देवोंके लिए भी रुचिकर था, धैर्यको प्राप्त नही होता था। चकित चित्तका धारक भरत संसारसे अत्यन्त भयभीत रहता था। जिस प्रकार शिकारीसे भयको प्राप्त हुआ हरिण सुन्दर स्थानोमें धैर्यको प्राप्त नही होता उसी प्रकार भरत भी उक्त प्रकारके सुन्दर स्थानोमें धैर्यको प्राप्त नही हो रहा था ॥४१–४६॥ वह सोचता रहता था कि मनुष्य पर्याय बड़े दुःखसे प्राप्त होती है फिर भी पानीकी बूँदके समान चंचल है, यौवन फेनके समूहके समान भंगुर तथा अनेक दोषोंसे संकटपूर्ण है ॥४७॥ भोग अन्तिम कालमे विरस अर्थात् रससे रहित है, जीवन स्वप्नके समान है और भाई-बन्धुओंका सम्बन्ध पक्षियोके समागमके समान है ॥४८॥ ऐसा निश्चय करनेके बाद भी जो मनुष्य मोक्ष-सुखदायी धर्म धारण नही करता है वह पीछे जरासे जर्जर चित्त हो शोकरूपी अग्निसे जलता रहता है ॥४९॥ जो मूर्ख मनुष्योको प्रिय है, अपवाद अर्थात् निन्दाका कुलभवन है एवं सन्ध्याके प्रकाशके समान विनश्वर है ऐसे नवयौवनमे क्या राग करना है ? ॥५०॥ जो अवश्य ही छोड़ने योग्य है, नाना व्याधियोका कुल भवन है, और रजवीर्य जिसका मूल कारण है ऐसे इस शरीररूपी यन्त्रमे क्या प्रीति करना है ? ॥५१॥ जिस प्रकार ईन्धनसे अग्नि नही तृप्त होती और जलसे समुद्र नही तृप्त होता उसी प्रकार जबतक संसार है तबतक सेवन किये हुए विषयोसे यह प्राणी तृप्त नही होता ॥५२॥ जिसकी बुद्धि पापमे आसक्त हो रही है ऐसा पापी मनुष्य कुछ भी नही समझता है और लोभी मनुष्य पतंगके समान दारुण दुःखको प्राप्त होता है ॥५३॥ जिनका आकार गलगण्डके समान है तथा जिनसे निरन्तर पसीना झरता है, ऐसे स्तन नामक मांसके घृणित पिण्डोमे क्या प्रेम करना है ? ॥५४॥ जो दाँतरूपी कीड़ोसे युक्त है तथा जो ताम्बूलके रसरूपी रुधिरसे सहित है ऐसे छुरीके छापके समान जो मुखरूपी बिल है उसमे क्या शोभा है ? ॥५५॥ स्त्रियोकी जो चेष्टा मानो वायुके दोषसे ही उत्पन्न हुई है अथवा उन्मादजनित है उसके विलासपूर्ण होनेपर भी उसमे क्या प्रीति करना है ? ॥५६॥ जो घरके भीतरकी ध्वनिके समान है तथा जो मनके धैर्यमे निवास करता है (रोदन पक्षमें मनके अधैर्यमे निवास करता है)

१. पटादृते म । २. तृप्यंति वनै- म । ३. विलेन का म. ।

अमेध्यमयदेहाभिश्छन्नाभि· केवलं त्वचा । नारीभिः कीदृशं सौख्यं सेवमानस्य जायते ॥५८॥
विट्कुम्भद्वितयं[1] नीत्वा संयोगमतिलज्जनम् । विमूढमानसः लोकः[2] सुखमित्यभिमन्यते ॥५९॥
इच्छामात्रसमुद्भूतैर्दिव्यैर्यो भोगविस्तरैः । न तृप्यति कथं तस्य तृप्तिर्मानुषभोगकैः ॥६०॥
तृप्तिं न तृणकोटिस्थैरवश्यायकणैर्वने । व्रजतीन्धनविक्रायः केवलं श्रममृच्छति ॥६१॥
तथाप्युत्तमया राज्यश्रिया तृप्तिमनाप्तवान् । सौदासः कुत्सितं कर्म तथाविधमसेवत ॥६२॥
गङ्गायां पूरयुक्तायां प्रविष्टाः मांसलुब्धका · । काका हस्तिशवं मृत्युं प्राप्नुवन्ति महोदधौ ॥६३॥
मोहपङ्कनिमग्नेयं [3]प्रजामण्डूकिकाद्य ते । लोभाहिनातितीव्रेण नरकच्छिद्रमाषिता[4] ॥६४॥
एवं चिन्तयतस्तस्य भरतस्य विरागिण. । विघ्नेन बहवो यान्ति दिवसाः शान्तचेतसः ॥६५॥
व्रतमप्राप्नुवञ्जैनं सर्वदु·खविनाशनम् । पञ्जरस्थो यथा सिंह स समर्थोऽपि सीदति ॥६६
प्रशान्तहृदयोऽत्यर्थंकेकयायाचनादसौ । ध्रियते हलिचक्रिभ्यां सस्नेहाभ्यां समुत्कटम् ॥६७॥
उच्यते च यथा भ्रातस्त्वमेव पृथिवीतले । सकले स्थापितो राजा पित्रा दीक्षाभिलाषिणा ॥६८॥
सोऽभिषिक्तो भवान्नाथो गुरुणा विष्टपे न[5] नु । अस्माकमपि हि स्वामी कुरु लोकस्य पालनम् ॥६९॥
इदं सुदर्शनं चक्रमिमे विद्याधराधिपाः । तवाज्ञासाधनं पत्नीमिव भुङ्क्ष्व वसुंधराम् ॥७०॥
धारयामि स्वयं छत्रं शशाङ्कधवलं तव । शत्रुघ्नश्चामरं धत्ते मन्त्री लक्ष्मणसुन्दरः ॥७१॥

ऐसे संगीत तथा रोदनमे कोई विशेषता नही दिखाई देती ॥५७॥ जिनका शरीर अपवित्र वस्तुओ-से तन्मय है तथा जो केवल चमडेसे आच्छादित है ऐसी स्त्रियोंसे उनकी सेवा करनेवाले पुरुषको क्या सुख होता है ? ॥५८॥ मूर्खमना प्राणी मलभृत घटके समान अत्यन्त लज्जाकारी संयोगको प्राप्त हो मुझे सुख हुआ है ऐसा मानता है ॥५९॥ अरे ! जो इच्छामात्रसे उत्पन्न होनेवाले स्वर्ग-सम्बन्धी भोगोके समूहसे तृप्त नही होता उसे मनुष्य पर्यायके तुच्छ भोगोसे कैसे तृप्ति हो सकती है ? ॥६०॥ ईन्धन बेचनेवाला मनुष्य वनमे तृणोके अग्रभागपर स्थित ओसके कणोसे तृप्तिको प्राप्त नही होता केवल श्रमको ही प्राप्त होता है ॥६१॥ उस सौदासको तो देखो जो राजलक्ष्मीसे तृप्त नही हुआ किन्तु इसके विपरीत जिसने नरमांस-भक्षण जैसा अयोग्य कार्य किया ॥६२॥ जिस प्रकार प्रवाहयुक्त गंगामे मासके लोभी काक, मृत हस्तीके शवको चूथते हुए तृप्त नही होते और अन्तमे महासागरमे प्रविष्ट हो मृत्युको प्राप्त होते है उसी प्रकार संसारके प्राणी विषयोमे तृप्त न हो अन्तमे भवसागरमे डूबते हैं ॥६३॥ हे आत्मन् ! मोहरूपी कीचड़मे फँसी यह तेरी प्रजारूपी मेढकी लोभरूपी तीव्र सर्पके द्वारा ग्रस्त हो आज नरकरूपी बिलमे ले जायी जा रही है ॥६४॥ इस प्रकार विचार करते हुए उस शान्त चित्तके धारक विरागी भरतकी दीक्षामे विघ्न करनेवाले बहुतसे दिन व्यतीत हो गये ॥६५॥ जिस प्रकार समर्थ होनेपर भी पिंजडेमें स्थित सिंह दुखी होता है उसी प्रकार भरत दीक्षा धारण करनेमे समर्थ होता हुआ भी सर्व दुःखको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्रव्रतको नही प्राप्त होता हुआ दुःखी हो रहा था ॥६६॥ भरतकी माता केकयाने उसे रोकनेके लिए राम-लक्ष्मणसे याचना की सो अत्यधिक स्नेहके धारक राम-लक्ष्मणने प्रशान्तचित्त भरतको रोककर इस प्रकार समझाया कि हे भाई ! दीक्षाके अभिलाषी पिताने तुम्हीको सकल पृथिवीतल-का राजा स्थापित किया था ॥६७–६८॥ यतश्च पिताने जगत्का शासन करनेके लिए निश्चयसे आपका अभिषेक किया था इसलिए हम लोगोके भी आप ही स्वामी हो । अतः आप ही लोकका पालन कीजिए ॥६९॥ यह सुदर्शन चक्र और ये विद्याधर राजा तुम्हारी आज्ञाके साधन है इसलिए पत्नीके समान इस वसुधाका उपभोग करो ॥७०॥ मै स्वयं तुम्हारे ऊपर चन्द्रमाके समान सफेद

१ द्वितीयं । २ शोक म । ३ प्रजा मण्डूकिकायते म. । ४. मायिना म. । दायिना ख. । नरकच्छिद्र-नायिना ज., क. । ५ विष्टपेव न तु म.।

इत्युक्तोऽपि न चेद्वाक्यं ममेदं कुरुते भवान् । यास्यामोऽद्य ततो भूयस्तदेव मृगवद्वनम् ॥७२॥
जित्वा राक्षसवंशस्य तिलकं रावणाभिधम् । भवद्दर्शनसौख्यस्य तृषिता वयमागताः ॥७३॥
निःप्रत्यूहमिदं राज्यं भुज्यतां तावदायतम् । अस्माभि[1] सहितः पश्चात्प्रवेक्ष्यसि तपोवनम् ॥७४॥
एवं मापितुमासक्तमेनं पद्म सुचेतसम् । जगाद भरतोऽत्यन्तविषयासक्तिनिःस्पृहः ॥७५॥
इच्छामि देव संत्यक्तुमेतां राज्यश्रियं द्रुतम् । त्यक्त्वा यां सत्तपः कृत्वा वीरा मोक्षं समाश्रिताः ॥७६॥
सदा नरेन्द्र कामार्थौ चञ्चलौ दुःखसंगतौ । विद्वेष्यौ सूरिलोकस्य सुमूढजनसेवितौ ॥७७॥
अशाश्वतेषु भोगेषु सुरलोकसमेष्वपि । हलायुध न मे तृष्णा समुद्रौपम्यवत्स्वपि ॥७८॥
संसारसागरं घोरं मृत्युपातालसंकुलम् । जन्मकल्लोलसंकीर्णं रत्यरत्युरुवीचिकम् ॥७९॥
रागद्वेषमहाग्राहं नानादुःखभयंकरम् । व्रतपोतं समारुह्य वाञ्छामि तरितुं नृप ॥८०॥
पुनःपुनरहं राजन् भ्राम्यन् विविधयोनिषु । गर्भवासादिषु श्रान्तो दुःसहं दुःखमाप्तवान् ॥८१॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य वाष्पव्याकुललोचनाः । नृपा विस्मयमापन्ना जगदुः कम्पितस्वनाः ॥८२॥
वचनं कुरु तातीय लोकं पालय पार्थिव । यदि तेऽवमता लक्ष्मीर्मुनिः पश्चाद् भविष्यसि ॥८३॥
उवाच भरतो बाढं वातस्योक्तं मया कृतम् । चिरं प्रपालितो लोको मानितो भोगविस्तरः ॥८४॥
दत्तं च परमं दानं साधुवर्गः सुतर्पितः । तातेन यत्कृतं कर्तुं तदपीच्छामि सांप्रतम् ॥८५॥
अनुमोदनमद्यैव मह्यं किं न प्रयच्छत । श्लाघ्ये वस्तुनि संबन्धः कर्तव्यो हि यथा तथा ॥८६॥

छत्र धारण करता हूँ, शत्रुघ्न चमर धारण करता है और लक्ष्मण तेरा मन्त्री है ॥७१॥ इस प्रकार कहनेपर भी यदि तुम मेरी बात नही मानते हो तो मैं फिर उसी तरह हरिणकी नाईं आज वनमें चला जाऊँगा ॥७२॥ राक्षस वंशके तिलक रावणको जीतकर हम लोग आपके दर्शन सम्बन्धी सुखकी तृष्णासे ही यहाँ आये हैं ॥७३॥ अभी तुम इस निर्विघ्न विशाल राज्यका उपभोग करो पश्चात् हमारे साथ तपोवनमे प्रवेश करना ॥७४॥ विषय सम्बन्धी आसक्तिसे जिसका हृदय अत्यन्त निःस्पृह हो गया था ऐसे भरतने पूर्वोक्त प्रकार कथन करनेमे तत्पर एवं उत्तम हृदयके धारक रामसे इस तरह कहा कि ॥७५॥ हे देव ! जिसे छोड़कर तथा उत्तम तप कर वीर मनुष्य मोक्षको प्राप्त हुए हैं मै उस राज्यलक्ष्मीका शीघ्र ही त्याग करता चाहता हूँ ॥७६॥ हे राजन् ! ये काम और अर्थ चंचल हैं, दुःखसे प्राप्त होते हैं, अत्यन्त मूर्खजनोके द्वारा सेवित हैं तथा विद्वज्जनो-के द्वेषके पात्र हैं ॥७७॥ हे हलायुध ! ये नश्वर भोग स्वर्गलोकके समान हो अथवा समुद्रकी उपमाको धारण करनेवाले हों तो भी मेरी इनमे तृष्णा नही है ॥७८॥ हे राजन् ! जो अत्यन्त भयंकर है, मृत्युरूपी पाताल तक व्याप्त है, जन्मरूपी कल्लोलोंसे युक्त है, जिसमे रति और अरति-रूपी बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं, जो राग-द्वेषरूपी बड़े-बड़े मगरमच्छोंसे सहित है एवं नाना प्रकारके दुःखोसे भयंकर है, ऐसे इस संसाररूपी सागरको मैं व्रतरूपी जहाजपर आरूढ़ हो तैरना चाहता हूँ ॥७९–८०॥ हे राजन् ! नाना योनियोमे बार-बार भ्रमण करता हुआ मैं गर्भवासादिके दुःसह दुःख प्राप्त कर थक गया हूँ ॥८१॥

इस प्रकार भरतके शब्द सुन जिनके नेत्र आँसुओसे व्याप्त हो रहे थे, जो आश्चर्यको प्राप्त थे तथा जिनके स्वर कम्पित थे ऐसे राजा बोले कि हे राजन् ! पिताका वचन अंगीकृत करो और लोकका पालन करो । यदि लक्ष्मी तुम्हे इष्ट नही है तो कुछ समय पीछे मुनि हो जाना ॥८२–८३॥ इसके उत्तरमे भरतने कहा कि मैंने पिताके वचनका अच्छी तरह पालन किया है, चिरकाल तक लोककी रक्षा की है, भोगसमूहका सम्मान किया है ॥८४॥ परमदान दिया है, साधुओके समूहको सन्तुष्ट किया है, अब जो कार्य पिताने किया था वही करना चाहता हूँ ॥८५॥ आप लोग मेरे लिए आज ही अनुमति क्यो नही देते हैं ? यथार्थमे उत्तम कार्यके साथ तो जिस तरह

---

१. सगती म. ।

जित्वा शत्रुगणं संख्ये द्विपसंघातभीषणे । नन्दाद्यैरिव या लक्ष्मीर्भवद्भिः समुपार्जिता ॥८७॥
महत्यपि न सा तृप्तिं ममोत्पादयितुं क्षमा । गङ्गेव वारिनाथस्य तत्त्वमार्गे घटे ततः ॥८८॥
इत्युक्त्वात्यन्तमंविग्नस्तानापृच्छ्य ससंभ्रमः । सिंहासनात् समुत्तस्थौ भरतो [1]भरतो यथा ॥८९॥
मनोहरगतिश्चैव यावद् गन्तुं समुद्यतः । नारायणेन संरुद्धस्तावत् सस्नेहसंभ्रमम् ॥९०॥
करेणोद्वर्तयन्नेष सौमित्रिकरपल्लवम् । यावदाश्वासयत्यश्रुदुर्दिनास्यां च मातरम् ॥९१॥
तावद् रामाज्ञया प्राप्ताः स्त्रियो लक्ष्मीसुविभ्रमाः । रुरुदुर्भरतं वातकम्पितोत्पललोचनाः ॥९२॥
एतस्मिन्नन्तरे सीता स्वयं श्रीरिव देहिनी । उर्वी भानुमती देवी विशल्या सुन्दरी तथा ॥९३॥
ऐन्द्री रत्नवती लक्ष्मीः सार्था गुणवतीश्रुतिः । कान्ता बन्धुमती भद्रा कौवेरी नलकूबरा ॥९४॥
तथा कल्याणमालासौ चन्द्रिणी मानसोत्सवा । मनोरमा प्रियनन्दा चन्द्रकान्ता कलावती ॥९५॥
रत्नस्थली सुरवती श्रीकान्ता गुणसागरा । पद्मावती तथान्याश्च स्त्रियो दुःशक्यवर्णना. ॥९६॥
मनःप्रहरणाकारा दिव्यवस्त्रविभूषणाः । समुद्भवशुभक्षेत्रभूमयः स्नेहगोत्रजा. ॥९७॥
कलासमस्तसंदोहफलदर्शनतत्पराः । [2]वृत्ताः समन्ततश्चारुचेतसो लोभनोद्यताः ॥९८॥
सर्वादरेण भरतं जगदुर्हारिनिःस्वनाः । [3]वातोद्धूतनवोदारपद्मिनीखण्डकान्तयः ॥९९॥
देवर क्रियतामेकः प्रसादोऽस्माकमुन्नतः । सेवामहे जलक्रीडां भवता सह सुन्दरीम् ॥१००॥
त्यज्यतामप[4]रा [5]चिन्ता नाथ मानसखेदिनी । भ्रातृजायासमूहस्य क्रियतामस्य सुप्रियम् ॥१०१॥

वने उसी तरह सम्बन्ध जोडना चाहिए ॥८६॥ हाथियोकी भीडसे भयंकर युद्धमे शत्रुसमूहको जीतकर नन्द आदि पूर्व बलभद्र और नारायणोके समान आपने जो लक्ष्मी उपार्जित की है वह यद्यपि बहुत बड़ी है तथापि मुझे सन्तोष उत्पन्न करनेके लिए समर्थ नही है। जिस प्रकार गंगा नदी समुद्रको तृप्त करनेमे समर्थ नही है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी मुझे तृप्त करनेमे समर्थ नही है, इसलिए अब तो मैं यथार्थ मार्गमे ही प्रवृत्त होता हूँ ॥८७–८८॥ इस प्रकार कहकर तथा उनसे पूछकर तीव्र संवेगसे युक्त भरत सम्भ्रमके साथ भरत चक्रवर्तीकी नाईं शीघ्र ही सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ ॥८९॥ अथानन्तर मनोहर गतिको धारण करनेवाला भरत ज्यो ही वनको जानेके लिए उद्यत हुआ त्योही लक्ष्मणने स्नेह और सम्भ्रमके साथ उसे रोक लिया अर्थात् उसका हाथ पकड लिया ॥९०॥ अपने हाथसे लक्ष्मणके करपल्लवको अलग करता हुआ भरत जबतक अविरल अश्रुवर्षा करनेवाली माताको समझाता है तबतक रामकी आज्ञासे, जिनकी लक्ष्मीके समान चेष्टाएँ थी तथा जिनके नेत्र वायुसे कम्पित नील कमलके समान थे ऐसी भरतकी स्त्रियाँ आकर उसके प्रति रोदन करने लगी ॥९१–९२॥ इसी बीचमे शरीरधारिणी साक्षात् लक्ष्मीके समान सीता, उर्वी, भानुमती, विशल्या, सुन्दरी, ऐन्द्री, रत्नवती, लक्ष्मी, सार्थक नामको धारण करनेवाली गुणवती, कान्ता, बन्धुमती, भद्रा, कौवेरी, नलकूबरा, कल्याणमाला, चन्द्रिणी, मानसोत्सवा, मनोरमा, प्रियानन्दा, चन्द्रकान्ता, कलावती, रत्नस्थली, सुरवती, श्रीकान्ता, गुणसागरा, पद्मावती, तथा जिनका वर्णन करना अशक्य है ऐसी दोनो भाइयोकी अन्य अनेक स्त्रियाँ वहाँ आ पहुँची ॥९३–९६॥ उन सब स्त्रियोंका आकार मनको हरण करनेवाला था, वे सब दिव्य वस्त्राभूषणोसे सहित थी, अनेक शुभभावोंके उत्पन्न होनेकी क्षेत्र थी, स्नेहकी वंशज थी, समस्त कलाओंके समूह एव फलके दिखानेमे तत्पर थी, घेरकर सब ओर खडी थी, सुन्दर चित्तकी धारक थी, लुभावनेमे उद्यत थी, मनोहर शब्दोसे युक्त थी, तथा वायुसे कम्पित कमलिनियोके समूहके समान कान्तिकी धारक थी। उन सबने बडे आदरके साथ भरतसे कहा ॥९७–९९॥ कि देवर! हम लोगोपर एक बड़ी प्रसन्नता कीजिए। हम लोग आपके साथ मनोहर जलक्रीड़ा करना चाहती है ॥१००॥ हे नाथ! मनको खिन्न करनेवाली अन्य चिन्ता छोड़िए, और अपनी भौजाइयोके

१. भरत-चक्रवर्तीव। २ वृता. म। ३. वातोद्भूत -म.। ४. -मपरा म.। ५ चिन्ता म।

तादृशीभिस्तथाप्यस्य संगतस्य न मानसम् । जगाम विक्रियां कांचिद् दाक्षिण्यं केवलं श्रितः ॥१०२॥
संप्राप्तप्रसरास्तस्मात्ततः शङ्काविवर्जिताः । नार्यस्ता भरतीयाश्च[1] प्रापुः परमसंमदम् ॥१०३॥
परिवार्य ततस्तास्तं समस्ताश्चारुविभ्रमाः । अवतीर्णा महारम्यं सरः सरसिजेक्षणाः ॥१०४॥
क्रीडानिस्पृहचित्तोऽसौ तत्त्वार्थगतमानसः । योषितामनुरोधेन जलसंगमशिश्रियत् ॥१०५॥
देवीजनसमाकीर्णो विनयेन समन्वितः । विरराज सरः प्राप्तः करी यूथपतिर्यथा ॥१०६॥
स्निग्धैः सुगन्धिभिः कान्तैस्त्रिभिरुद्वर्तनैरसौ । उद्वर्तितः पृथुच्छायापट्टरञ्जितवारिभिः ॥१०७॥
किंचित्संक्रीड्य संचेष्टः सुस्नानः सुमनोहरः । सरसः कैकयीसूनुरुत्तीर्णः परमेश्वरः ॥१०८॥
विहिताहंन्महापूजः पद्मनीलोत्पलादिभिः । सादरेणाङ्गनौघेन स समग्रमलंकृतः ॥१०९॥
एतस्मिन्नन्तरे योऽसौ महाजलधराकृतिः । त्रिलोकमण्डनाभिख्यः ख्यातो गजपतिः शुभः ॥११०॥
आलानं स समाभिद्य महाभैरवनिःस्वनः । निःससार निजावासाद् दानदुर्दिनिताम्बरः ॥१११॥
घनाघनघनोदारगम्भीरं तस्य गर्जितम् । श्रुत्वायोध्यापुरी जाता[2] समुन्मत्तजनेव सा ॥११२॥
जनितोदारसंघट्टैर्भयस्तब्धश्रुतेक्षणैः । राजमार्गान्तराः पूर्णाः सायासाधोरणैर्गजैः ॥११३॥
यथानुकूलमाश्रित्य दिशो दश महाभयाः । नेशुस्ते मदनिर्मुक्ता गृहीतहयरंहसः ॥११४॥
हेमरत्नमहाकूटं गोपुरं गिरिसंनिभम् । विध्वस्य भरतं तेन प्रवृत्तो वारणोत्तमः ॥११५॥

समूहकी यह प्रिय प्रार्थना स्वीकृत कीजिए ॥१०१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि उन सब स्त्रियोंने भरतको घेर लिया था फिर भी उसका चित्त रंचमात्र भी विकारको प्राप्त नहीं हुआ। केवल दाक्षिण्यवश उसने उनकी प्रार्थना स्वीकृत कर ली ॥१०२॥

तदनन्तर आज्ञा प्राप्त कर राम, लक्ष्मण और भरतकी स्त्रियाँ शंकारहित हो परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१०३॥ तत्पश्चात् सुन्दर चेष्टाओंसे युक्त वे कमललोचना स्त्रियाँ भरतको घेरकर महारमणीय सरोवरमे उतरी ॥१०४॥ जिसका चित्त तत्त्वके चिन्तन करनेमे लगा हुआ था तथा क्रीड़ासे निःस्पृह था ऐसा भरत केवल स्त्रियोके अनुरोधसे ही जलके समागमको प्राप्त हुआ था अर्थात् जलमे उतरा था ॥१०५॥ स्त्रियोसे घिरा हुआ विनयी भरत, सरोवरमे पहुँचकर ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो झुण्डका स्वामी गजराज ही हो ॥१०६॥ अपनी विशाल कान्तिसे जलको रंगीन करनेवाले, चिकनाईसे युक्त, सुन्दर तथा सुगन्धित तीन उपटन उस भरतकी देहपर लगाये गये थे ॥१०७॥ उत्तम चेष्टाओसे युक्त एवं अतिशय मनोहर राजा भरत, कुछ क्रीड़ा कर तथा अच्छी तरह स्नान कर सरोवरसे बाहर निकल आये ॥१०८॥ तदनन्तर कमल और नीलोत्पल आदिसे जिसने अर्हन्त भगवान्की महापूजा की थी ऐसा भरत उन आदरपूर्ण स्त्रियोके समूहसे अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१०९॥

इसी बीचमें महामेघके समान त्रिलोकमण्डन नामका जो प्रसिद्ध गजराज था वह खम्भेको तोड़कर अपने निवासगृहसे बाहर निकल आया। उस समय वह महाभयंकर शब्द कर रहा था तथा मदजलसे आकाशको वर्षायुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ मेघकी सघन विशाल गर्जनाके समान उसकी गर्जना सुनकर समस्त अयोध्यापुरी ऐसी हो गयी मानो उसके समस्त लोग उन्मत्त ही हो गये हों ॥११२॥ जिन्होने भीड़के कारण धक्कामुक्की कर रखी थी, तथा जिनके कान और नेत्र भयसे स्थिर थे ऐसे इधर-उधर दौड़नेका श्रम उठानेवाले महावतोंसे युक्त हाथियोसे नगरके राजमार्ग भर गये थे ॥११३॥ घोड़ोंके वेगको ग्रहण करनेवाले वे महाभयदायी मदोन्मत्त हाथी इच्छानुकूल दशों दिशाओमे बिखर गये—फैल गये ॥११४॥ जिसके महाशिखर सुवर्ण तथा रत्नमय थे ऐसे पर्वतके समान विशाल गोपुरको तोड़कर वह त्रिलोकमण्डन हाथी जिस ओर भरत

---

१ भारतीयाश्च म.। २. याता म.।

त्रासाकुलेक्षणा नार्यो महासंभ्रमसंगता. । शिश्रियुर्भरतं त्राणं भानुं दीधितयो तथा ॥११६॥
भरताभिमुखं यान्तं जनो वीक्ष्य गजोत्तमम् । हाहेति परमं तारं विलापं परितोऽकरोत् ॥११७॥
विह्वला मातरश्चास्य महोद्वेगसमागताः । बभूवुः परमाशङ्काः पुत्रस्नेहपरायणाः ॥११८॥
तावत् परिकरं बद्ध्वा पद्माभो लक्ष्मणस्तथा । उपसर्पति सच्छद्ममहाविज्ञानसंगतः ॥११९॥
नभश्चरमहामात्रान् समुत्सार्य भयार्दितान् । बलाद् गृहीतुमुद्युक्तो तमिभेन्द्रमल चलम् ॥१२०॥
सरोषमुक्तनिस्वानो दुःप्रेक्ष्यः प्रबलो जवी । नागपाशैरपि गजः संरोद्धुं न स शक्यते ॥१२१॥
ततोऽङ्गनाजनान्तस्थं श्रीमन्तं कमलेक्षणम् । भरतं वीक्ष्य नागोऽसौ व्यतीतं भवमस्मरत्[1] ॥१२२॥
संजातोद्वेगभारश्च कृत्वा प्रशिथिलं करम् । भरतस्याग्रतो नागस्तस्थौ विनयसंगतः ॥१२३॥
जगाद भरतश्चैन परं मधुरया गिरा । अहोऽनेकपनाथ त्वं रोषितः केन हेतुना ॥१२४॥
निशम्य वचन तस्य सज्ञां संप्राप्य वारण । अत्यर्थशान्तचेतस्को निश्चल. सौम्यदर्शनः ॥१२५॥
स्थितमग्रे वरस्त्रीणां स्निग्धं भरतमीक्षते । पुरे [2]वाप्सरसां वृन्दे स्वर्गे गीर्वाणसत्तमम् ॥१२६॥
परिज्ञानी ततो नागश्चिन्तामेवं समाश्रितः । मुक्तात्यायतनिःश्वासो विकारपरिवर्जितः ॥१२७॥
एषोऽसौ यो महानासीत् कल्पे ब्रह्मोत्तराभिधे । देवः शशाङ्कशुभ्रश्रीर्वयस्यः परमो मम ॥१२८॥
च्युतोऽऽयं पुण्यशेषेण जातः पुरुषसत्तमः । कष्टं निन्दितकर्माहं तिर्यग्योनिमुपागत. ॥१२९॥
कार्याकार्यविवेकेन सुदूरं परि[3]वर्जितम् । कथ प्राप्तोऽस्मि हस्तित्व धिगेतदिति गर्हितम् ॥१३०॥

विद्यमान था उसी ओर गया ॥११५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र भयसे व्याकुल थे और जो बहुत भारी बेचैनीसे युक्त थी ऐसी समस्त स्त्रियाँ रक्षाके निमित्त भरतके समीप उस प्रकार पहुँची जिस प्रकार कि किरणें सूर्यके समीप पहुँचती है ॥११६॥ उस गजराजको भरतके सम्मुख जाता देख, लोग चारो ओर 'हाय-हाय' इस प्रकार जोरसे विलाप करने लगे ॥११७॥ पुत्रस्नेहमे तत्पर माताएँ भी महाउद्वेगसे सहित, परम शंकासे युक्त तथा अत्यन्त विह्वल हो उठी ॥११८॥ उसी समय छल तथा महाविज्ञानसे युक्त राम और लक्ष्मण, कमर कसकर भयसे पीड़ित विद्याधर महावतोको दूर हटा उस अतिशय चपल गजराजको बलपूर्वक पकडनेके लिए उद्यत हुए ॥११९–१२०॥ वह गजराज क्रोधपूर्वक उच्च चिघाड़ कर रहा था, दुर्दर्शनीय था, प्रबल था, वेगशाली था, और नागपाशोके द्वारा भी नही रोका जा सकता था ॥१२१॥

तदनन्तर स्त्रीजनोके अन्तमे स्थित श्रीमान् कमललोचन भरतको देखकर उस हाथीको अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया ॥१२२॥ जिसे बहुत भारी उद्वेग उत्पन्न हुआ था ऐसा वह हाथी सूँड़को शिथिल कर भरतके आगे विनयसे बैठ गया ॥१२३॥ भरतने मधुर वाणीमे उससे कहा कि अहो गजराज ! तुम किस कारण रोषको प्राप्त हुए हो ॥१२४॥ भरतके उक्त वचन सुन चैतन्यको प्राप्त हुआ गजराज अत्यन्त शान्तचित्त हो गया, उसकी चंचलता जाती रही और उसका दर्शन अत्यन्त सौम्य हो गया ॥१२५॥ उत्तमोत्तम स्त्रियोंके आगे स्थित स्नेहपूर्ण भरतको वह हाथी इस प्रकार देख रहा था मानो स्वर्गमे अप्सराओके समूहमे बैठे हुए इन्द्रको ही देख रहा हो ॥१२६॥

तदनन्तर जो परिज्ञानी था, अत्यन्त दीर्घ उच्छ्वास छोड रहा था ऐसा वह विकाररहित हाथी इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२७॥ वह चिन्ता करने लगा कि यह वही है जो ब्रह्मोत्तर स्वर्गमे चन्द्रमाके समान शुक्ल शोभाको धारण करनेवाला मेरा परम मित्र देव था ॥१२८॥ यह वहांसे च्युत हो अवशिष्ट पुण्यके कारण उत्तम पुरुष हुआ और खेद है कि मै निन्दित कार्य करता हुआ इस तिर्यंच योनिमे उत्पन्न हुआ हूँ ॥१२९॥ मै कार्य-अकार्यके विवेकसे रहित इस

---

१. -मस्मरन् म । २. वा सरसा म । ३. परिवर्तितम् म ।

परितप्येऽधुना व्यर्थं किमिदं स्मृतिसंगतः। करोमि कर्म तद्येन लभ्यते हितमात्मने ॥१३१॥
उद्वेगकरणं नात्र कारणं दुःखमोचने। तस्मादुपायमेवाहं घटे सर्वादरान्वितः ॥१३२॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्मृतातीतभवो गजेन्द्रो भवे तु[1] वैराग्यमलं प्रपन्नः।
दुरीहितैकान्तपराङ्मुखात्मा स्थितः सुकर्मार्जनचिन्तनाग्रः ॥१३३॥

उपजातिवृत्तम्

कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं संतापमुग्रं जनयन्ति पश्चात्।
तस्माज्जनाः कर्म शुभं कुरुध्वं रवौ सति प्रस्खलनं न युक्तम् ॥१३४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे त्रिभुवनालकारक्षोभाभिधानं नाम त्र्यशीतितमं पर्व ॥८३॥



हस्ती पर्यायको कैसे प्राप्त हो गया? अहो, इस पापपूर्ण चेष्टाको धिक्कार हो ॥१३०॥ अब इस समय पूर्व भवकी स्मृतिको प्राप्त हो व्यर्थ ही क्यो सन्ताप करूँ, अब तो वह कार्य करता हूँ कि जिससे आत्महितकी प्राप्ति हो ॥१३१॥ उद्वेग करना दुःखके छूटनेका कारण नही है इसलिए मैं पूर्ण आदरके साथ वही उपाय करता हूँ जो दुःखके छूटनेका कारण है ॥१३२॥ इस प्रकार जिसे पूर्वभवका स्मरण हो रहा था, जो संसारके विषयमें अत्यधिक वैराग्यको प्राप्त हुआ था, जिसकी आत्मा पापरूप चेष्टासे अत्यन्त विमुख थी तथा जो पुण्य कर्मके संचय करनेकी चिन्तासे युक्त था ऐसा वह त्रिलोकमण्डन हाथी भरतके आगे शान्तिसे बैठ गया ॥१३३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! पूर्वभवमे किये हुए अशुभकर्म पीछे चलकर उग्र सन्ताप उत्पन्न करते हैं इसलिए हे भव्यजनो! शुभ कार्य करो क्योकि सूर्यके रहते हुए स्खलित होना उचित नही है ॥१३४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें त्रिलोकमण्डन हाथीके क्षुभित होनेका वर्णन करनेवाला तिरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८३॥



१. भवेत्तु म।

चतुरशीतितमं पर्व

तथा विचिन्तयन्नेष विनयी द्विपसत्तमः । पद्मामचक्रपाणिभ्यां वहद्भ्यां विस्मयं परम् ॥१॥
किंचिदाशङ्कितात्मभ्यामुपसृत्य शनैः शनैः । महाकालघनाकारो जगृहे भाषितप्रिय ॥२॥
प्राप्य नारायणादाज्ञामन्यैरुत्तमसंमदैः । सर्वालंकारयोगेन परां पूजां च लम्भितः ॥३॥
प्रशान्ते द्विरदश्रेष्ठे नगर्याकुलतोज्झिता । घनावनपटोन्मुक्ता रराज शरदा समम् ॥४॥
विद्याधरजनाधीशैश्चण्डा यस्योत्तमा गतिः । रोद्धुं नातिवलैः शक्या नाकसद्मभिरेव वा ॥५॥
सोऽयं कैलासकम्पस्य राक्षसेन्द्रस्य वाहनः । [1]भूतपूर्वकथं रुद्धः सीरिणा लक्ष्मणेन च ॥६॥
तादृशीं विकृतिं गत्वा यदयं शममागतः । तदस्य पूर्वलोकस्य पुण्य दीर्घायुरावहम् ॥७॥
नगर्यामिति सर्वस्यां परं विस्मयमीयुषः । लोकस्य संकथा जाता विधूतकरमस्तका ॥८॥
ततः सीताविशल्याभ्यां समं तं वारणेश्वरम् । आरुह्य सुमहाभूतिभरतः प्रस्थितो गृहम् ॥९॥
महालंकारधारिण्यः शेषा अपि वराङ्गनाः । विचित्रवाहनारूढा भरतं पर्यवेष्टयन् ॥१०॥
तुरङ्गरथमारूढो विभूत्या परयान्वितः । शत्रुघ्नोऽस्य महातेजाः प्रययावग्रतः स्थितः ॥११॥
कम्लाम्लातकभेर्यादिमहावादित्रनिस्वनः । संजातः शङ्खशब्देन मिश्रः कोलाहलान्वित ॥१२॥
कुसुमामोदमुद्यानं त्यक्त्वा ते नन्दनोपमम् । त्रिदशा इव संप्रापुरालयं सुमनोहरम् ॥१३॥
उत्तीर्य द्विरदाद् राजा प्रविश्याहारमण्डपम् । साधून् संतर्प्य विधिवत् प्रणम्य च विशुद्धधीः ॥१४॥

अथानन्तर जो इस प्रकार विचार कर रहा था, जिसका आकार महाश्याम मेघके समान था तथा जिसके प्रति मधुर शब्दोका उच्चारण किया गया था ऐसे उस हाथीको परम आश्चर्य धारण करनेवाले तथा कुछ-कुछ शंकित चित्तवाले राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर पकड लिया ॥१–२॥ लक्ष्मणकी आज्ञा पाकर उत्तम हर्षसे युक्त अन्य लोगोने सर्व प्रकारसे अलंकार पहनाकर उस हाथीका बहुत भारी सत्कार किया ॥३॥ उस गजराजके शान्त होनेपर जिसकी आकुलता छूट गयी थी ऐसी वह नगरी मेघरूपी पटसे रहित हो शरद् ऋतुके समान सुशोभित हो रही थी ॥४॥ जिसकी अत्यन्त प्रचण्ड गति विद्याधर राजाओ तथा अत्यन्त बलवान् देवोके द्वारा भी नही रोकी जा सकती थी ॥५॥ ऐसा यह कैलासको कम्पित करनेवाले रावणका भूतपूर्व वाहन राम और बलभद्रके द्वारा कैसे रोक लिया गया ? ॥६॥ उस प्रकारकी विकृतिको प्राप्त होकर जो यह शान्त भावको प्राप्त हुआ है सो यह उसकी दीर्घायुका कारण पूर्व पर्यायका पुण्य ही समझना चाहिए ॥७॥ इस तरह समस्त नगरीमे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए लोगोमे हाथ तथा मस्तकको हिलानेवाली चर्चा हो रही थी ॥८॥ तदनन्तर सीता और विशल्याके साथ उस गजराजपर सवार हो महाविभूतिके धारक भरतने घरकी ओर प्रस्थान किया ॥९॥ जो उत्तमोत्तम अलंकार धारण कर रही थी तथा नाना प्रकारके वाहनोपर आरूढ़ थी ऐसी शेष स्त्रियाँ भी भरतको घेरे हुए थी ॥१०॥ घोड़ोके रथपर बैठा परम विभूतिसे युक्त महातेजस्वी शत्रुघ्न, भरतके आगे-आगे चल रहा था ॥११॥ शंखोके शब्दसे मिश्रित तथा कोलाहलसे युक्त कम्ला, अम्लातक तथा भेरी आदि महावादित्रोका शब्द हो रहा था ॥१२॥ जिस प्रकार देव नन्दन वनको छोड़कर अपने अत्यन्त मनोहर स्वर्गको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे सब फूलोंकी सुगन्धिसे युक्त कुसुमामोद नामक उद्यानको छोड़कर अपने मनोहर घरको प्राप्त हुए ॥१३॥

तदनन्तर विशुद्ध बुद्धिके धारक राजा भरतने हाथीसे उतरकर आहार मण्डपमे प्रवेश कर

१. कृतपूर्वकथ म ।

मित्रामात्यादिभिः सार्द्धं भ्रातृपत्नीभिरेव च । आहारमकरोत् स्वं स्वं ततो यातो जनः पदम् ॥१५॥
किं क्रुद्धः किं पुनः शान्तः किं स्थितो भरतान्तिके । किमेतदिति लोकस्य कथा नैव निवर्तते ॥१६॥
मगधेन्द्राथ निःशेषा महामात्राः समागताः । प्रणम्यादरिणोऽवोचन् पद्मं लक्ष्मणसंगतम् ॥१७॥
अहोऽद्य वर्तते देव तुरीयो राजदन्तिनः । विमुक्तपूर्वकृत्यस्य श्लथविग्रहधारिणः ॥१८॥
यतः प्रभृति संक्षोभं संप्राप्य शममागतः । तत एव समारभ्य वर्तते ध्यानसंगतः ॥१९॥
महायतं विनिःश्वस्य मुकुलाक्षोऽतिविह्वलः । चिरं किं किमपि ध्यात्वा हन्ति हस्तेन मेदिनीम् ॥२०॥
बहुप्रियशतैः स्तोत्रैः स्तूयमानोऽपि संततम् । कवलं नैव गृह्णाति न रवं कुरुते श्रुतौ ॥२१॥
विधाय दन्तयोरग्रे करं मीलितलोचनः । लेप्यकर्म गजेन्द्रस्य चिरं याति समुन्नतम् ॥२२॥
किमयं कृत्रिमो दन्ती किंवा सत्यमहाद्विपः । इति तत्र समस्तस्य मतिर्लोकस्य वर्तते ॥२३॥
चाटुवाक्यानुरोधेन गृहीतमपि कृच्छ्रतः । विमुञ्चत्यास्यमप्राप्तं कवलं मृष्टमप्यलम् ॥२४॥
त्रिपदीछेदललितं समुत्सृज्य शुचान्वितः । आमज्य किंचिदालाने विनिःश्वस्यावतिष्ठते ॥२५॥
समस्तशास्त्रसत्कारविमलीकृतमानसैः । प्रख्यातैरप्यलं वैद्यैर्भावो नास्योपलभ्यते ॥२६॥
रचितं स्वादरेणापि संगीतं सुमनोहरम् । न शृणोति यथापूर्वं क्वापि निक्षिप्तमानसः ॥२७॥
मङ्गलैः कौतुकैर्योगैर्मन्त्रैर्विद्याभिरौषधैः । न प्रत्यापत्तिमायाति लालितोऽपि महादरैः ॥२८॥
न विहारे न निद्रायां न ग्रासे न च वारिणि । कुरुते याचितोऽपीच्छां सुहृन्मानमितो यथा ॥२९॥

और विधिपूर्वक प्रणाम कर साधुओको सन्तुष्ट किया ॥१४॥ तदनन्तर मित्रो, मन्त्री आदि परिजनों और भौजाइयोंके साथ भोजन किया । उसके बाद सब लोग अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥१५॥ त्रिलोकमण्डन हाथी कुपित क्यो हुआ ? फिर शान्त कैसे हो गया ? भरतके पास क्यो जा बैठा ? यह सब क्या बात है ? इस प्रकार लोगोंकी हस्तिविषयक कथा दूर ही नहीं होती थी ॥ भावार्थ—जहाँ देखो वही हाथीके विषयकी चर्चा होती रहती थी ॥१६॥ तदनन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सब महावतोंने आकर तथा आदरपूर्वक प्रणाम कर राम-लक्ष्मणसे कहा ॥१७॥ कि हे देव ! अहो ! सब कार्य छोड़े और शिथिल शरीरको धारण किये हुए त्रिलोकमण्डन हाथीको आज चौथा दिन है ॥१८॥ जिस समयसे वह क्षोभको प्राप्त हो शान्त हुआ है उसी समयसे लेकर वह ध्यानमे आरूढ है ॥१९॥ वह आँख बन्द कर अत्यन्त विह्वल होता हुआ बड़ी लम्बी साँस भरता है और चिरकाल तक कुछ-कुछ ध्यान करता हुआ सूँड़से पृथ्वीको ताड़ित करता रहता है अर्थात् पृथिवीपर सूँड़ पटकता रहता है ॥२०॥ यद्यपि उसकी निरन्तर सैकड़ों प्रिय स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है तथापि वह न ग्रास ग्रहण करता है और न कानोमें शब्द ही करता है अर्थात् कुछ भी सुनता नही है ॥२१॥ वह नेत्र बन्द कर दाँतोके अग्रभागपर सूँड़ रखे हुए ऐसा निश्चल खड़ा है मानो चिरकाल तक स्थिर रहनेवाला हाथीका चित्राम ही है ॥२२॥ क्या यह बनावटी हाथी है ? अथवा सचमुचका महागजराज है इस प्रकार उसके विषयमे लोगोमे तर्क उत्पन्न होता रहता है ॥२३॥ मधुर वचनोके अनुरोधसे यदि किसी तरह ग्रास ग्रहण कर भी लेता है तो वह उस मधुर ग्रासको मुख तक पहुँचनेके पहले ही छोड़ देता है ॥२४॥ वह त्रिपदी छेदकी लीलाको छोड़कर शोकसे युक्त होता हुआ किसी खम्भेमे कुछ थोड़ा अटककर साँस भरता हुआ खड़ा है ॥२५॥ समस्त शास्त्रोंके सत्कारसे जिनका मन अत्यन्त निर्मल हो गया है ऐसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैद्योके द्वारा भी इसके अभिप्रायका पता नही चलता ॥२६॥ जिसका चित्त किसी अन्य पदार्थमे अटक रहा है ऐसा यह हाथी बड़े आदरके साथ रचित अत्यन्त मनोहर संगीतको पहलेके समान नही सुनता है ॥२७॥ वह महान् आदरसे प्यार किये जानेपर भी मंगलमय कौतुक, योग, मन्त्र, विद्या और औषधि आदिके द्वारा स्वस्थताको प्राप्त नही हो रहा है ॥२८॥ वह मानको प्राप्त हुए मित्रके समान याचित होनेपर भी न विहारमे, न निद्रामें, न ग्रास उठानेमे और

दुर्ज्ञानान्तरमीदृक्षं रहस्यं परमाद्भुतम् । किमेतदिति नो विद्मो गजस्य मनसि स्थितम् ॥३०॥
न शक्यस्तोषमानेतुं न च लोभं कदाचन । न याति क्रोधमप्येष दन्ती चित्रार्पितो यथा ॥३१॥
सकलस्यास्य राज्यस्य मूलमद्भुतविक्रम. । त्रिलोकभूषणो देव वर्तते करटीदृशः ॥३२॥
इति विज्ञाय देवोऽत्र प्रमाणं कृत्यवस्तुनि । निवेदनक्रियामात्रसारा ह्यस्मादृशां मतिः ॥३३॥

इन्द्रवज्रा

श्रुत्वेहितं नागपतेस्तदीदृक् पूर्वेहितात्यन्तविभिन्नरूपम् ।
जातौ नरेन्द्रावधिकं विचिन्तौ पद्माभलक्ष्मीनिलयौ क्षणेन ॥३४॥

उपजातिः

आलानगेहान्निसृतः किमर्थं शम पुनः केन गुणेन यातः[1] ।
वृणोति कस्मादशन न नाग इत्युद्युतिः पद्मरविर्बभूव ॥३५

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे त्रिभुवनालङ्कारशमाभिधान नाम
चतुरशीतितमं पर्व ॥८४॥



न जलमे ही इच्छा करता है ॥२९॥ जिसका जानना कठिन है ऐसा यह कौनसा परम अद्भुत रहस्य इस हाथीके मनमे स्थित है यह हम नही जानते ॥३०॥ यह हाथी न तो सन्तोषको प्राप्त हो सकता है, न कभी लोभको प्राप्त होता है और न कभी क्रोधको प्राप्त होता है, यह तो चित्र-लिखितके समान खडा है ॥३१॥ हे देव ! अद्भुत पराक्रमका धारी यह हाथी समस्त राज्यका मूल कारण है। हे देव ! यह त्रिलोकमण्डन ऐसा ही हाथी है ॥३२॥ हे देव ! इस प्रकार जानकर अब जो कुछ करना हो सो इस विषयमे आप ही प्रमाण है अर्थात् जो कुछ आप जाने सो करे क्योकि हमारे जैसे लोगोकी वुद्धि तो निवेदन करना ही जानती है ॥३३॥ इस प्रकार गजराजकी पूर्वचेष्टाओसे अत्यन्त विभिन्न पूर्वोक्त चेष्टाको सुनकर राम-लक्ष्मण राजा क्षण-भरमे अत्यधिक चिन्तित हो उठे ॥३४॥ 'यह हाथी वन्धनके स्थानसे किस लिए बाहर निकला ? फिर किस कारण शान्तिको प्राप्त हो गया ? और किस कारण आहारको स्वीकृत नही करता है' इस प्रकार रामरूपी सूर्य अनेक वितर्क करते हुए उदित हुए ॥३५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें त्रिलोकमण्डन हाथीके शान्त होनेका वर्णन करनेवाला चौरासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८४॥



1. जातः म. ।

पञ्चाशीतितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे राजन् भगवान् देशभूषणः । कुलभूषणयुक्तश्च संप्राप्तो मुनिभिः समम् ॥१॥
ययोर्वंशगिरावासीत् प्रतिमां चतुराननाम् । श्रितयोरुपसर्गोऽसौ जनितः पूर्ववैरिणा ॥२॥
पद्मलक्ष्मणवीराभ्यां प्रातिहार्ये कृते ततः । केवलज्ञानमुत्पन्नं लोकालोकावभासनम् ॥३॥
ततस्तुष्टेन तार्क्ष्येण भक्तिस्नेहमुपेयुषा[1] । रत्नास्त्रवाहनान्याभ्यां दत्तानि विविधानि वै ॥४॥
यत्प्रमादान्निरस्त्रत्वं प्राप्तौ संशयितौ रणे । चक्रतुर्विजयं शत्रोर्यतो राज्यमवापतुः ॥५॥
देवासुरस्तुतावेतौ तौ लोकत्रयविश्रुतौ । मुनीन्द्रौ नगरीमुख्यां प्राप्तावुत्तरकोशलाम् ॥६॥
नन्दनप्रतिमे तौ च महेन्द्रोदयनामनि । उद्यानेऽवस्थितौ पूर्वं यथा संजयनन्दनौ ॥७॥
महागणसमाकीर्णौ चन्द्रार्कप्रतिमाविमौ । संप्राप्तौ नगरीलोको विवेद परमोदयौ ॥८॥
ततः पद्माभचक्रेशौ भरतारिनिषूदनौ । एते वन्दारवो गन्तुं संयतेन्द्रौ समुद्यताः ॥९॥
आरुह्य वारणानुग्रानुक्त्वा भानौ समुद्गते । जातिस्मरं पुरस्कृत्य त्रिलोकविजयं द्विपम् ॥१०॥
देवा इव प्रदेशं तं प्रस्थिताश्चारुचेतसः । कल्याणपर्वतौ यत्र स्थितौ निर्ग्रन्थसत्तमौ ॥११॥
कैकया कैकयी देवी कोशलेन्द्रात्मजा तथा । सुप्रजाश्चेति विख्यातास्तेषां श्रेणिक मातरः ॥१२॥
जिनशासनसद्भावाः साधुभक्तिपरायणाः । देवीशतसमाकीर्णा देव्याभा गन्तुमुद्यताः ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! इसी बीचमें अनेक मुनियोंके साथ-साथ देशभूषण और कुलभूषण केवली अयोध्यामे आये ॥१॥ वे देशभूषण-कुलभूषण जिन्हे कि वंगस्थविल पर्वतपर चतुरानन प्रतिमा योगको प्राप्त होनेपर उनके पूर्वभवके वैरीने उपसर्ग किया था और वीर राम-लक्ष्मणके द्वारा सेवा किये जानेपर जिन्हे लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था ॥२–३॥ तदनन्तर सन्तोषको प्राप्त हुए गरुडेन्द्रने भक्ति और स्नेहसे युक्त हो राम-लक्ष्मणके लिए नाना प्रकारके रत्न, अस्त्र और वाहन प्रदान किये थे ॥४॥ निरस्त्र होनेके कारण रणमें संशय अवस्थाको प्राप्त हुए राम-लक्ष्मणने जिनके प्रसादसे शत्रुको जीता था तथा राज्य प्राप्त किया था ॥५॥ देव और धरणेन्द्र जिनकी स्तुति कर रहे थे तथा तीनो लोकोमे जिनकी प्रसिद्धि थी ऐसे वे मुनिराज देशभूषण तथा कुलभूषण नगरियोमे प्रमुख अयोध्या नगरीमें आये ॥६॥ जिस प्रकार पहले संजय और नन्दन नामक मुनिराज आये थे उसी प्रकार आकर वे नन्दनवनके समान महेन्द्रोदय नामक वनमें ठहर गये ॥७॥ वे केवली मुनियोके महासंघसे सहित थे, चन्द्रमा और सूर्यके समान देदीप्यमान थे तथा परम अभ्युदयके धारक थे। उनके आते ही नगरीके लोगोंको इनका ज्ञान हो गया ॥८॥ तदनन्तर वन्दना करनेके अभिलाषी राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ये चारों भाई उन केवलियोके पास जानेके लिए उद्यत हुए ॥९॥ सूर्योदय होनेपर उन्होने नगरमे सर्वत्र घोषणा करायी। तदनन्तर उन्नत हाथियों पर सवार हो एवं जातिस्मरणसे युक्त त्रिलोकमण्डन हाथीको आगे कर देवोके समान सुन्दर चित्तके धारक होते हुए वे सब उस स्थानकी ओर चले जहाँ कि कल्याणके पर्वतस्वरूप दोनो निर्ग्रन्थ मुनिराज विराजमान थे ॥१०–११॥ जिनका उत्तम अभिप्राय जिनशासनमे लग रहा था, जो साधुओंकी भक्ति करनेमे तत्पर थीं, सैकड़ो देवियाँ जिनके साथ थी तथा देवांगनाओके समान जिनकी आभा थी ऐसी हे श्रेणिक ! उन चारों भाइयोंकी माताएँ कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रजा (सुप्रभा) भी जानेके लिए उद्यत हुईं। जो मुनिराजके दर्शन करनेकी तृष्णासे ग्रस्त थे

---

१ -मुपेयुषाम् म ।

मुनिदर्शनदृढप्रस्ता सुग्रीवप्रमुखा मुदा । विद्याधराः समायाता महाविभवसंगताः ॥१४॥
आतपत्रं मुनेर्दृष्ट्वा सकलोडुपमनिभम् । उत्तीर्य पद्मनामाद्या द्विरदेभ्यः समागताः ॥१५॥
कृताञ्जलिपुटाः [1]स्तुत्वा प्रणम्य च यथाक्रमम् । समर्च्य च मुनींस्तस्थुरात्मयोग्यासु भूमिषु ॥१६॥
शुश्रुवुश्च मुनेर्वाक्यं सुसमाहितचेतसः । संसारकारणध्वंसि धर्मशंसनतत्परम् ॥१७॥
अणुधर्मोऽग्रधर्मश्च श्रेयसः पदवी द्वयी । पारम्पर्येण तत्राद्या परा साक्षात्प्रकीर्तिता ॥१८॥
गृहाश्रमविधिः [2]पूर्वः महाविस्तारसंगतः । परो निर्ग्रन्थशूराणां कीर्तितोऽत्यन्तदुःसहः ॥१९॥
अनादिनिधने लोके यत्र लोभेन मोहिताः । जन्तवो दुःखमत्युग्रं प्राप्नुवन्ति कुयोनिषु ॥२०॥
धर्मो नाम परो बन्धुः सोऽयमेको [3]हितो महान् । मूलं यस्य दया शुद्धा फलं वक्तुं न शक्यते ॥२१॥
ईप्सितं[4] जन्तुना सर्वं लभ्यते धर्मसंगमात् । धर्मः पूज्यतमो लोके बुधा धर्मेण भाविताः ॥२२॥
दयामूलस्तु यो धर्मो महाकल्याणकारणम् । दग्धधर्मेषु सोऽन्येषु विद्यते नैव जातुचित् ॥२३॥
जिनेन्द्रविहिते स्योऽयं मार्गे परमदुर्लभे । सदा संनिहिता[5] येन त्रैलोक्याग्रमवाप्यते ॥२४॥
पातालेऽसुरनाथाद्या क्षोण्यां चक्रधरादयः । फलं शक्रादयः स्वर्गे परमं यस्य भुञ्जते ॥२५॥
तावत् प्रस्तावमासाद्य साधुं नारायणः स्वयम् । प्रणम्य शिरसापृच्छदिति संगतपाणिकः ॥२६॥
उपमृद्य प्रभो स्तम्भं नागेन्द्रः क्षोभमागतः । प्रशमं हेतुना केन सहसा पुनरागतः ॥२७॥
भगवन्निति संशीतिमप्यपाकर्तुमर्हसि । ततो जगाद वचनं केवली देशभूषणः ॥२८॥

तथा महावैभवसे सहित थे ऐसे सुग्रीव आदि विद्याधर भी हर्षपूर्वक वहाँ आये थे ॥१२–१४॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान मुनिराजका छत्र देखते ही रामचन्द्र आदि हाथियोसे उतरकर पैदल चलने लगे ॥१५॥ सबने हाथ जोड़कर यथाक्रमसे मुनियोकी स्तुति की, प्रणाम किया, पूजा की और तदनन्तर सब अपने-अपने योग्य भूमियोमे बैठ गये ॥१६॥ उन्होने एकाग्रचित्त होकर संसारके कारणोको नष्ट करनेवाले एवं धर्मकी प्रशंसा करनेमें तत्पर मुनिराजके वचन सुने ॥१७॥ उन्होने कहा कि अणुधर्म और पूर्णधर्म—अणुव्रत और महाव्रत ये दोनो मोक्षके मार्ग है इनमे से अणुधर्म तो परम्परासे मोक्षका कारण है, पर महाधर्म साक्षात् ही मोक्षका कारण कहा गया है ॥१८॥ पहला अणुधर्म महाविस्तारसे सहित है तथा गृहस्थाश्रममे होता है और दूसरा जो महाधर्म है वह अत्यन्त कठिन है तथा महाशूर-वीर निर्ग्रन्थ साधुओके ही होता है ॥१९॥ इस अनादिनिधन संसारमे लोभसे मोहित हुए प्राणी नरक आदि कुयोनियोमे तीव्र दुःख पाते है ॥२०॥ इस संसारमे धर्म ही परम बन्धु है, धर्म ही महाहितकारी है। निर्मल दया जिसकी जड़ है उस धर्मका फल नही कहा जा सकता ॥२१॥ धर्मके समागमसे प्राणी समस्त इष्ट वस्तुओको प्राप्त होता है। लोकमे धर्म अत्यन्त पूज्य है। जो धर्मकी भावनासे सहित है, लोकमे वही विद्वान् कहलाते है ॥२२॥ जो धर्म दयामूलक है वही महाकल्याणका कारण है। ससारके अन्य अधम धर्मोमे वह दयामूलक धर्म कभी भी विद्यमान नही है अर्थात् उनसे वह भिन्न है ॥२३॥ वह दयामूलकधर्म, जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा प्रणीत परम दुर्लभमार्गमे सदा विद्यमान रहता है जिसके द्वारा तीन लोकका अग्रभाग अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है ॥२४॥ जिस धर्मके उत्तम फलको पातालमे धरणेन्द्र आदि, पृथिवी पर चक्रवर्ती आदि और स्वर्गमे इन्द्र आदि भोगते है ॥२५॥ उसी समय प्रकरण पाकर लक्ष्मणने स्वयं हाथ जोडकर शिरसे प्रणाम कर मुनिराजसे यह पूछा कि हे प्रभो! त्रिलोक-मण्डन नामक गजराज खम्भेको तोड़कर किस कारण क्षोभको प्राप्त हुआ और फिर किस कारण अकस्मात् ही शान्त हो गया? ॥२६–२७॥ हे भगवन्! आप मेरे इस संशयको दूर करनेके लिए योग्य हैं। तदनन्तर देशभूषण केवलीने निम्न प्रकार वचन कहे ॥२८॥

---

१ श्रुत्वा म । २. पूर्वं म । ३ हित. पुमान् म । ४. इक्षितं म । ५ सन्निहिते म ।

बलोद्रेकादयं तुङ्गात् संक्षोभं परमं गतः । स्मृत्वा पूर्वभवं भूयः शमयोगमशिश्रियत् ॥२९॥
आसीदाद्ये युगेऽयोध्यानगर्यामुत्तमश्रुतिः । नाभितो मरुदेव्याश्च निमित्तात्तनुमाश्रितः ॥३०॥
त्रैलोक्यक्षोभणं कर्म समुपार्ज्य महोदयः । प्रकटत्वं परिप्रापदिति देवेन्द्रभूतिभिः ॥३१॥
विन्ध्यहिमनगोत्तुङ्गस्तनीं[1] सागरमेखलाम् । पत्नीमिव निजां साध्वीं वश्यां योऽसेवत क्षितिम् ॥३२॥
भगवान् पुरुपेन्द्रोऽसौ लोकत्रयनमस्कृत । पुरारमत पुर्यस्यां दिवीव त्रिदशाधिपः ॥३३॥
श्रीमानृषभदेवोऽसौ द्युतिकान्तिसमन्वितः । लक्ष्मीश्रीकान्तिसंपन्न. कल्याणगुणसागरः ॥३४॥
त्रिज्ञानी धीरगम्भीरो दृङ्मनोहारिचेष्टितः । अभिरामवपु. सत्त्वो प्रतापी परमोऽभवत् ॥३५॥
सौधर्मेन्द्रप्रधानैर्यस्त्रिदशैरग्रजन्मनि । हेमरत्नघटैर्मेरावभिपिक्तः सुभक्तिभिः ॥३६॥
गुणान् कस्तस्य शक्नोति वक्तुं केवलिवर्जितः । ऐश्वर्यं प्रार्थ्यते यस्य सुरेन्द्रैरपि संततम् ॥३७॥
कालं द्राघिष्ठमत्यन्तं भुक्त्वा श्रीविभवं परम् । अप्सरःपरमां वीक्ष्य तां नीलाञ्जननर्तकीम् ॥३८॥
स्तुतो लोकान्तिकैर्देवैः स्वयंबुद्धो महेश्वरः । न्यस्य पुत्रशते राज्यं निष्क्रान्तो जगतां गुरु. ॥३९॥
उद्याने तिलकाभिख्ये प्रजाभ्यो यदसौ गतः । [2]प्रजागमिति तत्तेन लोके तीर्थं प्रकीर्तितम् ॥४०॥
संवत्सरसहस्रं स दिव्यं मेरुरिवाचलः । गुरुः प्रतिमया तस्थौ त्यक्ताशेषपरिग्रहः ॥४१॥
स्वामिभक्त्या समं तेन ये श्रामण्यमुपस्थिताः । षण्मासाभ्यन्तरे भग्ना दुःसहैस्ते परीपहैः ॥४२॥

उन्होंने कहा कि यह हाथी अत्यधिक पराक्रमकी उत्कटतासे पहले तो परम क्षोभको प्राप्त हुआ था और उसके वाद पूर्वभवका स्मरण होनेसे शान्तिको प्राप्त हो गया था ॥२९॥ इस कर्मभूमिरूपी युगके आदिमे इसी अयोध्या नगरीमे राजा नाभिराज और रानी मरुदेवीके निमित्तसे शरीरको प्राप्त कर उत्तम नामको धारण करनेवाले भगवान् ऋषभदेव प्रकट हुए थे । उन्होने पूर्वभवमे तीन लोकको क्षोभित करनेवाले तीर्थंकर कर्मका वन्ध किया था उसीके फलस्वरूप वे इन्द्रके समान विभूतिसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए थे ॥३०–३१॥ विन्ध्याचल और हिमाचल ही जिसके उन्नत स्तन थे तथा समुद्र जिसकी करधनी थी ऐसी पृथिवीका जिन्होने सदा अनुकूल चलनेवाली अपनी पतिव्रता पत्नीके समान सदा सेवन किया था ॥३२॥ तीनो लोक जिन्हे नमस्कार करते थे ऐसे वे भगवान् ऋषभदेव पहले इस अयोध्यापुरीमे उस प्रकार रमण करते थे जिस प्रकार कि स्वर्गमें इन्द्र रमण करता है ॥३३॥ वे श्रीमान् ऋषभदेव द्युति तथा कान्तिसे सहित थे, लक्ष्मी, श्री और कान्तिसे सम्पन्न थे, कल्याणकारी गुणोके सागर थे, तीन ज्ञानके धारी थे, धीर और गम्भीर थे, नेत्र और मनको हरण करनेवाली चेष्टाओसे सहित थे, सुन्दर शरीरके धारक थे, वलवान् थे और परम प्रतापी थे ॥३४–३५॥ जन्मके समय भक्तिसे भरे सौधर्मेन्द्र आदि देवोने सुमेरु पर्वतपर सुवर्ण तथा रत्नमयी घटोसे उनका अभिषेक किया था ॥३६॥ इन्द्र भी जिनके ऐश्वर्यकी निरन्तर चाह रखते थे उन ऋषभदेवके गुणोका वर्णन केवली भगवान्‌को छोड़कर कौन कर सकता है ? ॥३७॥ वहुत लम्बे समय तक लक्ष्मीके उत्कृष्ट वैभवका उपभोग कर वे एक दिन नीलांजना नामकी अप्सराको देख प्रतिवोधको प्राप्त हुए ॥३८॥ लौकान्तिक देवोने जिनकी स्तुति की थी ऐसे महावैभवके धारी जगद्गुरु भगवान् ऋषभदेव अपने सौ पुत्रोंपर राज्यभार सौंपकर घरसे निकल पड़े ॥३९॥ यतश्च भगवान् प्रजासे निःस्पृह हो तिलकनामा उद्यानमे गये थे इसलिए लोकमें वह उद्यान प्रजाग इस नामका तीर्थ प्रसिद्ध हो गया ॥४०॥ वे भगवान् समस्त परिग्रहका त्याग कर एक हजार वर्ष तक मेरुके समान अचल प्रतिमा योगसे खड़े रहे अर्थात् एक हजार वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्या की ॥४१॥ स्वामिभक्तिके कारण उनके साथ जिन चार हजार राजाओने मुनिव्रतको धारण किया था वे छह महीनेके भीतर ही दुःसह परीपहोंसे पराजित हो गये ॥४२॥

---

१ स्वर्णी म । २ प्रयाग म. ।

ते भग्ननिश्चयाः क्षुद्राः स्वेच्छाविरचितव्रता.। [1]वल्मिन. फलमूलाद्यैर्वालवृत्तिमुपाश्रिताः ॥४३॥
तेषां मध्ये महामानो मरीचिरिति यो ह्यसौ । परिव्राज्यमथश्चक्रे काषायी सकषायधी. ॥४४॥
सुप्रभस्य विनीतायां सूर्यचन्द्रोदयौ सुतौ । प्रह्लादनाख्यमहिषीकुक्षिभूमिमहामणी ॥४५॥
स्वामिना सह निष्क्रान्तौ प्रथितौ सर्वविष्टपे । भग्नौ [2]श्रामण्यतोऽत्यन्तप्रीतौ त शरण गतौ ॥४६॥
मरीचिशिष्ययो. कूटप्रतापव्रतमानिनोः । तयोः शिष्यगणो जातः परिव्राड्गदितो महान् ॥४७॥
कुधर्माचरणाद् भ्रान्तौ संसारं तौ चतुर्गतिम् । सहितौ पूरिता क्षोणी ययोस्त्यक्तकलेवरैः ॥४८॥
ततश्चन्द्रोदयः कर्मवशान्नागामिधे पुरे । राज्ञो हरिपतेः पुत्रो मनोलूतासमुद्भवः ॥४९॥
जातः कुलकराभिख्यः प्राप्तश्च नृपतां पराम् । पूर्वस्नेहानुबन्धेन भावितेन भवान् बहून् ॥५०॥
सूर्योदयः पुरेऽत्रैव ख्यात. श्रुतिरतः श्रुती । विश्वाङ्के[3]नाग्निकुण्डायां जातोऽभूत्तत्पुरोहितः ॥५१॥
कुलकरोऽन्यदा गोत्रसंतत्या कृतसेवनान् । तापसान् सेवितुं गच्छन्नपश्यन्मुनिपुङ्गवम् ॥५२॥
अभिनन्दितसंज्ञेन तेनासौ नतिमागत' । जगदेऽवधिनेत्रेण सर्वलोकहितैषिणा ॥५३॥
यत्र त्वं प्रस्थितस्तत्र [4]तव चेभ्यः पितामहः । तापसः सर्पतां प्राप्त. काष्ठमध्येऽवतिष्ठते ॥५४॥
काष्ठे विपाट्यमाने तं तापसेन गतो भवान् । रक्षिस्यति[5] गतस्यास्य तच्च सर्वं तथाभवत् ॥५५॥

उन क्षुद्र पुरुषोने अपना निश्चय तोड दिया, स्वेच्छानुसार नाना प्रकारके व्रत धारण कर लिये और अज्ञानी-जैसी चेष्टाको प्राप्त हो फल-मूल आदिका भोजन करने लगे ॥४३॥

उन भ्रष्ट राजाओके बीच महामानी, कषायले—गेरूसे रँगे वस्त्रोको धारण करनेवाला तथा कषाययुक्त बुद्धिसे युक्त जो मरीचि नामका साधु था उसने परिव्राजकका मत प्रचलित किया ॥४४॥ इसी विनीता नगरीमे एक सुप्रभ नामका राजा था उसकी प्रह्लादना नामकी स्त्रीकी कुक्षिरूपी भूमिसे उत्पन्न हुए महामणियोके समान सूर्योदय और चन्द्रोदय नामके दो पुत्र थे ॥४५॥ ये दोनो पुत्र समस्त संसारमे प्रसिद्ध थे। उन्होने भगवान् अदिनाथके साथ ही दीक्षा धारण की थी परन्तु मुनिपदसे भ्रष्ट होकर वे पारस्परिक तीव्र प्रीतिके कारण अन्तमे मरीचिकी शरणमे चले गये ॥४६॥ मायामयी तपश्चरण और व्रतको धारण करनेवाले मरीचिके उन दोनो शिष्योके अनेक शिष्य हो गये जो परिव्राट् नामसे प्रसिद्ध हुए ॥४७॥ मिथ्याधर्मका आचरण करनेसे वे दोनो चतुर्गतिरूप संसारमे साथ-साथ भ्रमण करते रहे। उन दोनो भाइयोने पूर्वभवोमे जो शरीर छोडे थे उनसे समस्त पृथिवी भर गयी थी ॥४८॥

तदनन्तर चन्द्रोदयका जीव कर्मके वशीभूत हो नाग नामक नगरमे राजा हरिपतिके मनोलूता नामक रानीसे कुलकर नामका पुत्र हुआ जो आगे चलकर उत्तम राज्यको प्राप्त हुआ। और सूर्योदयका जीव इसी नगरमे विश्वाक नामक ब्राह्मणके अग्निकुण्डा नामकी स्त्रीसे श्रुतिरत नामका विद्वान् पुत्र हुआ। अनेक भवोमे वृद्धिको प्राप्त हुए पूर्वस्नेहके सस्कारसे श्रुतिरत राजा कुलंकरका पुरोहित हुआ ॥४९–५१॥ किसी समय राजा कुलकर गोत्रपरम्परासे जिनकी सेवा होती आ रही थी ऐसे तपस्वियोकी सेवा करनेके लिए जा रहा था सो मार्गमे उसने किन्ही दिगम्बर मुनिराजके दर्शन किये ॥५२॥ उन मुनिराजका नाम अभिनन्दित था, वे अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे सहित थे तथा सब लोगोका हित चाहनेवाले थे। जब राजा कुलंकरने उन्हे नमस्कार किया तब उन्होने कहा कि हे राजन्! तू जहाँ जा रहा है वहाँ तेरा सम्पन्न पितामह जो तापस हो गया था मरकर साँप हुआ है और काष्ठके मध्यमे विद्यमान है। एक तापस उस काष्ठको चीर रहा है सो तू जाकर उसकी रक्षा करेगा। जब कुलकर वहाँ गया तब मुनिराजके कहे अनुसार ही सब

---

१ वल्लिन. म । २. श्रामयतोऽ -म.। विश्वाह्नेना -म., क.। ४. तापसेभ्य म । तव च + इभ्य ।
५ रक्षिष्यसि म , ज ।

कदागमसमापन्नान् दृष्ट्वासौ तापसांस्ततः । प्रबोधमुत्तमं प्राप्तः श्रामण्यं कर्तुमुद्यतः ॥५६॥
वसुपर्वतकश्रुत्या मूढश्रुतिरतस्ततः । तममोहयदेवं च पापकर्मा पुनर्जगौ ॥५७॥
गोत्रक्रमागतो राजन् धर्मोऽयं तव वैदिकः । ततो हरिपतेः पुत्रो यदि त्वं तत्तमाचर ॥५८॥
नाथ वेदविधिं कृत्वा सुतं न्यस्य निजे पदे । करिष्यसि हितं पश्चात् प्रसादः क्रियतां मम ॥५९॥
एवमेतद्यथासीष्टा श्रीदामेति प्रकीर्त्तिता । मद्धिष्यचिन्तयत्यस्य नूनं राज्ञान्यसंगता ॥६०॥
ज्ञातास्मि येन वैराग्यात् प्रव्रज्यां कर्त्तुमिच्छति । प्रव्रज्येदपि किं नो वा को जानाति मनोगतिम् ॥६१॥
तस्माद्व्यापादयाम्येनं विषेणेत्यनुचिन्त्य सा । पुरोहितान्वितं पापा कुलंकरममारयत् ॥६२॥
ततोऽनुध्यात[1]मात्रेण पशुघातेन पापतः । कालप्राप्तावभूतां तौ निकुञ्जे शशकौ वने ॥६३॥
भेकत्वं मूषकत्वं च बर्हिणत्वं [2]पृदाकुताम् । [3]रुरुत्वं च पुनः प्राप्तौ कर्मानिलजवेरितौ ॥६४॥
पूर्वश्रुतिरतो हस्ती दर्दुरश्चेतरोऽभवत् । तस्याक्रान्तः स पादेन चकारासुविमोचनम् ॥६५॥
[4]वर्षाभूत्वं पुनः प्राप्तः शुष्के सरसि भक्षितः । काकैः [5]कुक्कुटतां प्राप्तो मार्जारत्वं तु द्वस्यमौ ॥६६॥
कुलंकरचरो जन्मत्रितयं कुक्कुटोऽभवत् । भक्षितो द्विजपूर्वेण मार्जारेण नृजन्मना ॥६७॥
राजद्विजचरौ मत्स्यशिशुमारत्वमागतौ । बद्धौ जालेन कैवर्त्तैः कुठारेणाहतौ मृतौ ॥६८॥
शिशुमारस्तयोरल्कावह्वाशतनयोऽभवत् । विनोदो रमणो मत्स्यो द्विजो राजगृहे तयोः ॥६९॥

हुआ ॥५३–५५॥ तदनन्तर उन तापसोंको मिथ्याशास्त्रसे युक्त देखकर राजा कुलंकर उत्तम प्रबोधको प्राप्त हो मुनिपद धारण करनेके लिए उद्यत हुआ ॥५६॥

अथानन्तर राजा वसु और पर्वतके द्वारा अनुमोदित 'अजैर्यष्टव्यम्' इस श्रुतिसे मोहको प्राप्त हुए पापकर्मा श्रुतिरत नामा पुरोहितने उन्हें मोहमे डालकर इस प्रकार कहा कि हे राजन् ! वैदिक धर्मं तुम्हारी वंशपरम्परासे चला आ रहा है इसलिए यदि तुम राजा हरिपतिके पुत्र हो तो उसी वैदिक धर्मका आचरण करो ॥५७–५८॥ हे नाथ ! अभी तो वेदमे बतायी हुई विधिके अनुसार कार्यं करो फिर पिछली अवस्थामे अपने पदपर पुत्रको स्थापित कर आत्माका हित करना। हे राजन् ! मुझपर प्रसाद करो—प्रसन्न होओ ॥५९॥

अथानन्तर राजा कुलंकरने 'यह बात ऐसी ही है' यह कहकर पुरोहितकी प्रार्थना स्वीकृत की। तदनन्तर राजाकी श्रीदामा नामकी प्रिय स्त्री थी जो परपुरुषासक्त थी। उसने उक्त घटनाको देखकर विचार किया कि जान पड़ता है इस राजाने मुझे अन्य पुरुषमे आसक्त जान लिया है इसीलिए यह विरक्त हो दीक्षा लेना चाहता है। अथवा यह दीक्षा लेगा या नहीं लेगा इसकी मन-की गतिको कौन जानता है ? मै तो इसे विष देकर मारती हूँ ऐसा विचार कर उस पापिनीने पुरोहित सहित राजा कुलंकरको मार डाला ॥६०–६२॥ तदनन्तर पशुघातका चिन्तवन करने मात्रके पापसे वे दोनो मरकर निकुंज नामक वनमे खरगोश हुए ॥६३॥ तदनन्तर कर्मरूपी वायुके वेगसे प्रेरित हो क्रमसे मेढक, चूहा, मयूर, अजगर और मृग पर्यायको प्राप्त हुए ॥६४॥ तत्पश्चात् श्रुतिरत पुरोहितका जीव हाथी हुआ और राजा कुलंकरका जीव मेढक हुआ सो हाथीके पैरसे दबकर मेढक मृत्युको प्राप्त हुआ ॥६५॥ पुनः सूखे सरोवरमे मेढक हुआ सो कौओने उसे खाया। तदनन्तर मुर्गा हुआ और हाथीका जीव मार्जार हुआ ॥६६॥ सो मार्जारने मुर्गाका भक्षण किया। इस तरह कुलंकरका जीव तीन भव तक मुर्गा हुआ और पुरोहितका जीव जो मार्जार था वह मनुष्योमे उत्पन्न हुआ सो उसने उस मुर्गाको खाया ॥६७॥ तदनन्तर राजा और पुरोहितके जीव क्रमसे मच्छ और शिशुमार अवस्थाको प्राप्त हुए। सो धीवरोने जालमे फँसाकर उन्हे पकड़ा तथा कुल्हाड़ोसे काटा जिससे मरणको प्राप्त हुए ॥६८॥ तदनन्तर उन दोनोमे जो शिशुमार था वह

१. ऽनुध्यान -म, क. । २ सर्पताम् । ३. कुरुत्व म. । ४. मण्डूकताम् । ५ कुक्कुटोऽ- म. ।

निःस्वत्वेनाक्षरत्वे च सति जन्तुर्द्विपान्[1] पशुः । रमणः संप्रधार्यैवं वेदार्थी निःसृतो गृहात् ॥७०॥
क्षोण्यां पर्यटता तेन गुरुवेश्मसु शिक्षिताः । चत्वारः साङ्गका वेदाः प्रस्थितश्च पुनर्गृहम् ॥७१॥
मागधं नगरं प्राप्तो भ्रातृदर्शनलालसः । भास्करेऽस्तगते चासौ व्योम्नि मेघान्धकारिते ॥७२॥
नगरस्य बहिर्यक्षनिलये वा समाश्रितः । जीर्णोद्यानस्य मध्यस्थे तत्र चेदं प्रवर्त्तते ॥७३॥
विनोदस्याङ्गना तस्य समिधाख्या कुशीलिका[2] । अशोकदत्तसंकेता तं यक्षालयमागता ॥७४॥
अशोकदत्तको मार्गे गृहीतो दण्डपाशिकैः । विनोदोऽपि गृहीतासिर्भार्यानुपदमागतः ॥७५॥
सद्भावसन्त्रणं श्रुत्वा समिधा क्रोधसङ्गिना । सायकेन विनोदेन रमणः प्रासुकीकृतः ॥७६॥
विनोदो दयितायुक्तो हृष्टः प्रच्छन्नपापकः । गृहं गतः पुनस्तौ च संसारं पुरुमाटतुः ॥७७॥
महिषत्वमितोऽरण्ये विनोदो रमणः पुनः । ऋक्षो बभूव निश्चक्षुर्दग्धौ शालवने च तौ ॥७८॥
जातौ गिरिवने व्याधौ मृतौ च हरिणौ पुनः । तयोर्बन्धुजनस्त्रासाद्दिशो यातो यथायथम् ॥७९॥
जीवन्तावेव [3]तावात्तौ [4]निषादैः कान्तलोचनौ । स्वयम्भूतिरथो राजा विमलं वन्दितुं गतः ॥८०॥
सुरासुरैः समं नत्वा जिनेन्द्रं सन्महर्द्धिकः । प्रत्यागच्छन्ददर्शैतौ स्थापितौ च जिनालये ॥८१॥

मरकर राजगृह नगरमे वह्लाश नामक पुरुष और उल्का नामक स्त्रीके विनोद नामका पुत्र हुआ तथा जो मच्छ था वह भी कुछ समय बाद उसी नगरमे तथा उन्ही दम्पतीके रमण नामका पुत्र हुआ ॥६९॥ दोनो ही अत्यन्त दरिद्र तथा मूर्ख थे इसलिए रमणने विचार किया कि अत्यन्त दरिद्रता अथवा मूर्खताके रहते हुए मनुष्य मानो दो पैरवाला पशु ही है। ऐसा विचारकर वह वेद पढ़नेकी इच्छासे घरसे निकल पडा ॥७०॥ तदनन्तर पृथिवीमे घूमते हुए उसने गुरुओके घर जाकर अंगो सहित चारो वेदोका अध्ययन किया। अध्ययनके बाद वह पुन॰ अपने घर की ओर चला ॥७१॥ जिसे भाईके दर्शनकी लालसा लग रही थी ऐसा रमण चलता-चलता जब सूर्यास्त हो गया था और आकाशमे मेघोसे अन्धकार छा रहा था तब राजगृह नगर आया ॥७२॥ वहाँ वह नगरके बाहर एक पुराने बगीचामे जो यक्षका मन्दिर था उसमे ठहर गया। वहाँ निम्न प्रकार घटना हुई ॥७३॥ रमणका जो भाई विनोद राजगृह नगरमे रहता था उसकी स्त्रीका नाम समिधा था। यह समिधा दुराचारिणी थी सो अशोकदत्त नामक जारका संकेत पाकर उसी यक्ष-मन्दिरमे पहुँची जहाँ कि रमण ठहरा हुआ था ॥७४॥ अशोकदत्तको मार्गमे कोतवालने पकड लिया इसलिए वह संकेतके अनुसार समिधाके पास नही पहुँच सका। इधर समिधाका असली पति विनोद तलवार लेकर उसके पीछे-पीछे गया ॥७५॥ वहाँ समिधाके साथ रमणका सद्भावपूर्ण वार्तालाप सुन विनोदने क्रोधित हो रमणको तलवारसे निष्प्राण कर दिया ॥७६॥

तदनन्तर प्रच्छन्न पापी विनोद हर्षित होता हुआ अपनी स्त्रीके साथ घर आया। उसके बाद वे दोनो दीर्घकाल तक संसारमे भटकते रहे ॥७७॥ तत्पश्चात् विनोदका जीव तो बनमे भैंसा हुआ और रमणका जीव उसी वनमे अन्धा रीछ हुआ सो दोनो ही उस शालवनमे जलकर मरे ॥७८॥ तदनन्तर दोनो ही गिरिवनमे व्याध हुए फिर मरकर हरिण हुए। उन हरिणोके जो माता-पिता आदि बन्धुजन थे वे भयके कारण दिशाओमे इधर-उधर भाग गये। दोनो बच्चे अकेले रह गये। उनके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे इसलिए व्याधोने उन्हे जीवित ही पकड़ लिया। अथानन्तर तीसरा नारायण राजा स्वयम्भूति श्रीविमलनाथ स्वामीके दर्शन करनेके लिए गया ॥७९-८०॥ बहुत भारी ऋद्धिको धारण करनेवाला राजा स्वयम्भू जब सुरो और असुरोके साथ जिनेन्द्रदेवकी वन्दना करके लौट रहा था तब उसने उन दोनो हरिणोको देखा सो व्याधोके पाससे लेकर उसने

---

१ पादद्वयवारकः पशु इत्यर्थः । २. कुशीलक म । ३. तौ + आत्तौ इतिच्छेदः । तावत्तौ म. । ४ विषादैः म., निषादैः व्याधैः ।

संयतान्[1] तत्र पश्यन्तौ भक्षयन्तौ यथेप्सितम् । अन्नं राजकुले प्राप्तौ हरिणौ परमां धृतिम् ॥८२॥
आयुष्येव परिक्षीणे लब्धमृत्युः समाधिना । सुरलोकमितोऽन्योऽपि तिर्यक्षु पुनरभ्रमत् ॥८३॥
ततः कथमपि प्राप कर्मयोगान्मनुष्यताम् । विनोदचरसारङ्गः स्वप्ने राज्यमिवोदितम् ॥८४॥
जम्बूद्वीपस्य भरते काम्पिल्यनगरे धनी । द्वाविंशतिप्रमाणाभिर्हेमकोटिभिरूर्जितः ॥८५॥
अमुष्य धनदाह्वस्य वणिजो रमणोऽमरः । च्युतो भूषणनामाभूद् वारुण्यां तनयः शुभः ॥८६॥
नैमित्तेनायमादिष्टः प्रव्रजिष्यत्ययं ध्रुवम् । श्रुत्वैवं धनदो लोकादभूदुद्विग्नमानसः ॥८७॥
सत्पुत्रप्रेमसक्तेन तेन वेश्म निधापितम् । योग्यं सर्वक्रियायोगे यत्र तिष्ठति भूषणः ॥८८॥
सेव्यमानो वरस्त्रीभिर्वस्त्राहारविलेपनैः । विविधैर्ललितं चक्रे सुन्दरं तत्र भूषणः ॥८९॥
नैक्षिष्ट भानुमुद्यन्तं नास्तं यान्तं च नोडुपम्[2] । स्वप्नेऽप्यसौ गतो भूमिं गृहशैलस्य पञ्चमीम् ॥९०॥
मनोरथशतैर्लब्धः पुत्रोऽसावेक एव हि । पूर्वस्नेहानुबन्धेन दयितो जीवितादपि ॥९१॥
धनदः सोदरः पूर्वं भूषणस्य पिताभवत् । विचित्रं खलु संसारे प्राणिनां नटचेष्टितम् ॥९२॥
तावत्क्षपाक्षये श्रुत्वा देवदुन्दुभिनिस्वनम् । दृष्ट्वा देवागमं श्रुत्वा शब्दं चाभूद् विबुद्धवान् ॥९३॥
स्वभावान्मृदुचेतस्कः सद्धर्माचारतत्परः । महाप्रमोदसंपन्नः करकुड्मलमस्तकः ॥९४॥

उन्हे जिनमन्दिरमे रखवा दिया ॥८१॥ वहाँ मुनियोके दर्शन करते और राजदरबारसे इच्छानुकूल भोजन ग्रहण करते हुए दोनो हरिण परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥८२॥ उन दोनो हरिणोमें एक हरिण आयु क्षीण होनेपर समाधिमरण कर स्वर्ग गया और दूसरा तिर्यंचोमे भ्रमण करता रहा ॥८३॥

तदनन्तर विनोदका जीव जो हरिण था उसने कर्मयोगसे किसी तरह मनुष्य पर्याय प्राप्त की मानो स्वप्नमे राज्य ही उसे मिल गया हो ॥८४॥ अथानन्तर जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमे कापिल्य नामक नगरके मध्य बाईस करोड दीनारका धनी एक धनद नामका वैश्य रहता था सो रमणका जीव मरकर जो देव हुआ था यह वहाँसे च्युत हो उसकी वारुणी नामक स्त्रीसे भूषण नामका उत्तम पुत्र हुआ ॥८५-८६॥ किसी निमित्तज्ञानीने धनद वैश्यसे कहा कि तेरा यह पुत्र निश्चित ही दीक्षा धारण करेगा सो निमित्तज्ञानीके वचन सुन धनद संसारसे उद्विग्नचित्त रहने लगा ॥८७॥ उस उत्तम पुत्रको प्रीतिसे युक्त धनद सेठने एक ऐसा घर बनवाया जो सब कार्य करनेके योग्य था। उसी घरमे उसका भूषणनामा पुत्र रहता था। भावार्थ—उसने सब प्रकारकी सुविधाओसे पूर्ण महल बनवाकर उसमे भूषण नामक पुत्रको इसलिए रखा कि कही बाहर जानेपर किसी मुनिको देखकर वह दीक्षा न ले ले ॥८८॥ उत्तमोत्तम स्त्रियाँ नाना प्रकारके वस्त्र, आहार और विलेपन आदिके द्वारा जिसकी सेवा करती थी ऐसा भूषण वहाँ सुन्दर चेष्टाएँ करता था ॥८९॥ वह सदा अपने महलरूपी पर्वतके पाँचवें खण्डमे रहता था इसलिए उसने कभी स्वप्नमे भी न तो उदित हुए सूर्यको देखा था और न अस्त होता हुआ चन्द्रमा ही देखा था ॥९०॥ धनद सेठने सैकड़ों मनोरथोके बाद यह एक ही पुत्र प्राप्त किया था इसलिए वह उसे पूर्वस्नेहके संस्कारवश प्राणोसे भी अधिक प्यारा था ॥९१॥ धनद, पूर्वभवमे भूषणका भाई था अब इस भवमे पिता हुआ सो ठीक ही है क्योकि संसारमे प्राणियोकी चेष्टाएँ नटकी चेष्टाओंके समान विचित्र होती हैं ॥९२॥ तदनन्तर किसी दिन रात्रि समाप्त होते ही भूषणने देव-दुन्दुभिका शब्द सुना, देवोंका आगमन देखा और उनका शब्द सुना जिससे वह विबोधको प्राप्त हुआ ॥९३॥ वह भूषण स्वभावसे ही कोमलचित्त था, समीचीन धर्मका आचरण करनेमे तत्पर था, महाहर्षसे युक्त था तथा उसने दोनो हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा रखे थे ॥९४॥

---

१. सगतो म. । २. चन्द्रम् ।

श्रीधरस्य मुनीन्द्रस्य वन्दनार्थं त्वरान्वितः । सोपानेऽवतरन्दष्टः सोऽहिना तनुमत्यजत् ॥९५॥
माहेन्द्रस्वर्गमारूढश्च्युतो द्वीपे च पुष्करे । चन्द्रादित्यपुरे जातः प्रकाशयशसः सुत. ॥९६॥
मातास्य माधवीत्यासीत् स जगद्द्युतिसंज्ञित. । राजलक्ष्मीं परिप्राप्तः परमां यौवनोदये ॥९७॥
संसारात् परमं भीतरसौ स्थविरमन्त्रिभिः । उपदेशं प्रयच्छद्भि. राज्य कृच्छ्रेण कार्यते ॥९८॥
कुलक्रमागतं वत्स राज्यं पालय सुन्दरम् । पालितेऽस्मिन् समस्तेयं सुखिनी जायते प्रजा ॥९९॥
तपोधनान् स राज्यस्थः साधून् सतर्प्य संततम् । गत्वा देवकुरुं काले कल्पमैशानमाश्रितः ॥१००॥
पल्योपमान् बहून् तत्र देवीजनसमावृत. । नानारूपधरो भोगान् बुभुजे परमद्युतिः ॥१०१॥
च्युतो जम्बूमति द्वीपे विदेहे मेरुपश्चिमे । रत्नाख्या[1] बालहरिणी महिष्यं[2] चलचक्रिणः ॥१०२॥
बभूव तनयस्तस्य सर्वलोकमहोत्सवः । अभिरामोऽङ्गनामभ्यां महागुणसमुच्चय. ॥१०३॥
महावैराग्यसम्पन्नं प्रव्रज्याभिमुख च तम् । ऐश्वर्येऽयोजयच्चक्री [3]कृतवीवाहकं बलात् ॥१०४॥
त्रीणि नारीसहस्राणि सतत गुणवर्तिनम् । लालयन्ति स्म यत्नेन वारिस्थमिव वारणम् ॥१०५॥
वृतस्ताभिरसौ मेने रतिसौख्यं विषोपमम् । श्रामण्य केवलं कर्तुं न लेभे शान्तमानसः ॥१०६॥
असिधाराव्रत तीव्रं तासां मध्यगतो विभुः । चकार हारकेयूरमुकुटादिविभूषितः ॥१०७॥
स्थितो वरासने श्रीमान् वनिताभ्यः समन्ततः । उपदेशं ददौ जैनधर्मशंसनकारिणम् ॥१०८॥

वह श्रीधर मुनिराजकी वन्दनाके लिए शीघ्रतासे सीढ़ियोपर उतरता चला आ रहा था कि साँपके काटनेसे उसने शरीर छोड दिया ॥९५॥ वह मरकर माहेन्द्र नामक चतुर्थ स्वर्गमे उत्पन्न हुआ। वहाँसे च्युत होकर पुष्करद्वीपके चन्द्रादित्य नामक नगरमे राजा प्रकाशयशका पुत्र हुआ। माधवी इसकी माता थी और स्वयं उसका जगद्द्युति नाम था। यौवनका उदय होनेपर वह अत्यन्त श्रेष्ठ राज्यलक्ष्मीको प्राप्त हुआ ॥९६–९७॥ वह ससारसे अत्यन्त भयभीत रहता था, इसलिए वृद्ध मन्त्री उपदेश दे-देकर बडी कठिनाईसे उससे राज्य कराते थे ॥९८॥ वृद्ध मन्त्री उससे कहा करते थे कि हे वत्स ! कुलपरम्परासे आये हुए इस सुन्दर राज्यका पालन करो क्योकि राज्यका पालन करनेसे ही समस्त प्रजा सुखी होती है ॥९९॥ भूषण, राज्यकार्यमे स्थिर रहता हुआ सदा तपस्वी मुनियोको आहारादिसे सन्तुष्ट रखता था। अन्तमे वह मरकर देवकुरु नामा भोगभूमिमे गया और वहाँसे मरकर ऐशान स्वर्गमे उत्पन्न हुआ ॥१००॥ वहाँ परम कान्तिको धारण करनेवाले उस भूषणके जीवने देवीजनोसे आवृत होकर तथा नानारूपके धारक हो अनेक पल्यो तक भोगोका उपभोग किया ॥१०१॥ वहाँसे च्युत हो जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमे अचल चक्रवर्तीकी बालमृगीके समान सरल, रत्ना नामकी रानीके सब लोगोको आनन्दित करनेवाला महागुणोका धारी पुत्र हुआ। वह पुत्र शरीर तथा नाम दोनोसे ही अभिराम था अर्थात् 'अभिराम' इस नामका धारी था और शरीरसे अत्यन्त सुन्दर था ॥१०२–१०३॥ अभिराम महावैराग्यसे सहित था तथा दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत था परन्तु चक्रवर्तीने उसका विवाह कर उसे जबरदस्ती ऐश्वर्यमे–राज्यपालनमे नियुक्त कर दिया ॥१०४॥ सदा तीन हजार स्त्रियाँ, जलमे स्थित हाथीके समान उस गुणी पुत्रका सावधानीपूर्वक लालन करती थी ॥१०५॥ उन सब स्त्रियोसे घिरा हुआ अभिराम, रतिसम्बन्धी सुखको विषके समान मानता था और शान्त चित्त हो केवल मुनिव्रत धारण करनेके लिए उत्कण्ठित रहता था परन्तु पिताकी परतन्त्रतासे उसे वह प्राप्त नही कर पाता था ॥१०६॥ उन सब स्त्रियोके बीचमे बैठा तथा हार, केयूर, मुकुट आदिसे विभूषित हुआ वह अत्यन्त कठिन असिधारा व्रतका पालन करता था ॥१०७॥ जिसे चारो ओरसे स्त्रियाँ घेरे हुई थी ऐसा वह श्रीमान् अभिराम, उत्तम आसनपर बैठकर उन सबके लिए जैनधर्मकी

१ रत्नाख्यान् ज । २ महिष्या ज । ३ विवाहक म. ।

चिरं संसारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः । मानुष्यकमिदं कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥१०९॥
जानानः को जन कूपे क्षिपति स्वं महाशयः । विषं वा कः पिबेत् को वा भृगौ निद्रां निषेवते ॥११०॥
को वा रत्नेप्सया नागमस्तकं पाणिना स्पृशेत् । विनाशकेषु कामेषु धृतिर्जायेत कस्य वा ॥१११॥
सुकृतासक्तिरेकैव श्लाघ्या मुक्तिसुखावहा । जनानां चञ्चलेऽत्यन्तं जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥११२॥
एवमाद्या गिरः श्रुत्वा परमार्थोपदेशिनीः । उपशान्ता स्त्रियः शक्त्या[1] नियमेषु रराजिरे ॥११३॥
राजपुत्र सुदेहेऽपि स्वकीये रागवर्जितः । चतुर्थादिनिराहारैः[2] कर्मकालुष्यमक्षिणोत् ॥११४॥
तपसा च विचित्रेण समाहितमना विभुः । शरीरं तनुतां निन्ये ग्रीष्मादित्य इवोदकम् ॥११५॥
चतुःषष्टिसहस्राणि वर्षाणां स सुदर्शनः । अकम्पितमना वीरस्तपश्चक्रेऽतिदुःसहम् ॥११६॥
पञ्चप्रणामसंयुक्तं समाधिमरणं श्रितः । अशिश्रियत् सुदेवत्वं कल्पे ब्रह्मोत्तरश्रुतौ ॥११७॥
असौ धनदपूर्वस्तु जीवः संसृत्य योनिषु । पोदने नगरे जज्ञे जम्बूभरतदक्षिणे ॥११८॥
[3]शकुनाग्निमुखास्तस्य माहनौ जन्मकारणम् । नाम्ना मृदुमतिश्चासौ व्यर्थेन परिभाषितः ॥११९॥
द्यूताविनयसक्तात्मा रथ्यारेणुसमुक्षितः । नानापराधवद्द्वेष्यः स बभूव दुरीहितः ॥१२०॥
लोकोपालम्भसंखिन्नाभ्यां पितृभ्यां स निराकृतः । पर्यट्य धरणीं प्राप यौवने पोदनं पुनः ॥१२१॥

प्रशंसा करनेवाला उपदेश देता था ॥१०८॥ वह कहा करता था इस संसाररूपी अटवीमे चिरकालसे भ्रमण करनेवाला प्राणी पुण्यकर्मोदयसे बड़ी कठिनाईसे इस मनुष्य भवको प्राप्त होता है ॥१०९॥ उदार अभिप्रायको धारण करनेवाला कौन मनुष्य जान-बूझकर अपने-आपको कुएँमे गिरता है ? कौन मनुष्य विषपान करता है ? अथवा कौन मनुष्य पहाड़की चोटीपर शयन करता है ? ॥११०॥ अथवा कौन मनुष्य रत्न पानेकी इच्छासे नागके मस्तकको हाथसे छूता है ? अथवा विनाशकारी इन इन्द्रियोके विषयोमे किसे कब सन्तोष हुआ है ? ॥१११॥ अत्यन्त चंचल जीवनमें जिनकी स्पृहा शान्त हो चुकी है ऐसे मनुष्योकी जो एक पुण्यमे प्रशंसनीय आसक्ति है वही उन्हें मुक्तिका सुख देनेवाली है ॥११२॥ इत्यादि परमार्थका उपदेश देनेवाली वाणी सुनकर उसकी वे स्त्रियाँ शान्त हो गयी थी तथा शक्ति अनुसार नियमोंका पालन करने लगी थी ॥११३॥ वह राजपुत्र अपने सुन्दर शरीरमे भी रागसे रहित था इसलिए बेला आदि उपवासोसे कर्मकी कलुषताको दूर करता रहता था ॥११४॥ जिसका चित्त सदा सावधान रहता था ऐसा वह राजपुत्र विचित्र तपस्याके द्वारा शरीरको उस तरह कृश करता रहता था जिस तरह कि ग्रीष्मऋतुका सूर्य पानीको कृश करता रहता है ॥११५॥ निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण करनेवाले उस निश्चलचित्त वीर राजपुत्रने चौंसठ हजार वर्ष तक अत्यन्त दुःसह तप किया ॥११६॥ अन्तमें पचपरमेष्ठियोके नमस्कारसे युक्त समाधिमरणको प्राप्त हो ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्गमे उत्तम देव पर्यायको प्राप्त हुआ है ॥११७॥

अथानन्तर भूषणके भवमे जो उसका पिता धनदसेठ था उसका जीव नाना योनियोमे भ्रमण कर जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामे स्थित जो पोदनपुर नामका नगर था उसमे अग्निमुख और शकुना नामक ब्राह्मण-ब्राह्मणी उसके जन्मके कारण हुए। उन दोनोके वह मृदुमति नामका पुत्र हुआ। वह मृदुमति निरर्थक नामका धारी था अर्थात् मृदुबुद्धि न होकर कठोर बुद्धि था ॥११८-११९॥ जिसकी बुद्धि जुआ तथा अविनयमे आसक्त रहती थी, जो मार्ग-धूलिसे धूसरित रहता था तथा जो नाना प्रकारके अपराध करनेके कारण लोगोंके द्वेषका पात्र था, ऐसा वह अत्यन्त दुष्ट चेष्टाओका धारक था ॥१२०॥ लोगोके उलाहनोसे खिन्न होकर माता-पिताने उसे घरसे निकाल दिया जिससे वह पृथिवीमे जहाँ-तहाँ भ्रमण कर यौवनके समय पुनः

---

१. शक्त्या म । २ -भिराहारैः म । ३. शकुनाग्निमुखस्तस्य माहनी म. ।

प्रविष्टो भवनं किंचिज्जलं पातुमयाचत । अददान्माहनी तस्मै जलं निपतदश्रुका ॥१२२॥
सुशीतलाम्बुतृप्तात्मा पप्रच्छासौ कुतस्त्वया । रुद्यते करुणायुक्ते[1] इत्युक्ते माहनी जगौ ॥१२३॥
भद्र त्वदाकृतिर्बालो मया पतिसमेतया । करुणोज्झितया गेहात् पुत्रको हा निराकृतः ॥१२४॥
स त्वया भ्राम्यता देशे यदि स्याद्वीक्षितः क्वचित् । नीलोत्पलप्रतीकाशस्ततो वेदय तद्गतम् ॥१२५॥
ततोऽसावश्रुमानूचे सवित्रि[2] रुदितं त्यज । समाश्वसिहि सोऽहं ते चिरदुर्लक्ष्यकः सुतः ॥१२६॥
शकुनाग्निमुखेनासौ पुत्रप्राप्तिमहोत्सवम् । परिप्राप्ता सुखं तस्थौ तत्क्षणप्रस्तुतस्तनी ॥१२७॥
तेजस्वी सुन्दरो धीमान्नानाशास्त्रविशारदः । सर्वस्त्रीदृङ्मनोहारी धूर्तानां मस्तके स्थितः ॥१२८॥
दुरोदरे सदा जेता सुविदग्धः कलालयः । कामोपभोगसक्तात्मा रेमे मृदुमतिः पुरे ॥१२९॥
वसन्तडमरा[3] नाम गणिकानामनुत्तमा । द्वितीया रमणाचारे तस्याभूत्[4] परमेप्सिता ॥१३०॥
पितरौ बन्धुभिः सार्धं दारिद्र्यात्तेन मोचितौ । राजलीलां परिप्राप्तौ लब्धसर्वसमीहितौ ॥१३१॥
कुण्डलाद्यैरलंकारैः पिताभूद्‌दृतिभासुरः । नानाकार्यगणव्यग्रा माता काञ्च्यादिमण्डिता ॥१३२॥
शशाङ्कनगरे राजगृहं चौर्यस्ततोऽन्यदा । विष्टो मृदुमतिः शब्दमश्रृणोन्नान्दिवर्द्धनम्[5] ॥१३३॥
शशाङ्कमुखसंज्ञस्य गुरोश्चरणमूलतः । मयाद्य परमो धर्मः श्रुतः शिवसुखप्रदः ॥१३४॥
विषया विषवद्देवि परिणामे सुदारुणाः । तस्माद्व्रजाम्यहं दीक्षां न शोकं कर्तुमर्हसि ॥१३५॥

पोदनपुरसे आया ॥१२१॥ वहाँ एक ब्राह्मणके घरमे प्रविष्ट हो उसने पीनेके लिए जल माँगा सो ब्राह्मणीने उसे जल दिया। जल देते समय उस ब्राह्मणीके नेत्रोंसे टप-टप कर आँसू नीचे पड़ रहे थे ॥१२२॥ अत्यन्त शीतल जलसे जिसकी आत्मा सन्तुष्ट हो गयी थी ऐसे उस मृदुमतिने पूछा कि हे दयावति ! तू इस तरह क्यो रो रही है ? उसके इस प्रकार कहनेपर ब्राह्मणीने कहा कि ॥१२३॥ हे भद्र ! मुझने निर्दया हो अपने पतिके साथ मिलकर तेरे ही समान आकृतिवाले अपने छोटे-से पुत्रको बड़े दुःखकी बात है कि घरसे निकाल दिया था ॥१२४॥ सो अनेक देशोमे घूमते हुए तूने यदि कही उसे देखा हो तो उसका पता बता, वह नीलकमलके समान श्यामवर्ण था ॥१२५॥ तदनन्तर अश्रु छोड़ते हुए उसने कहा कि हे माता ! रोना छोड़, धैर्य धारण कर, वह मै ही तेरा पुत्र हूँ जो चिरकाल बाद सामने आया हूँ ॥१२६॥ शकुना ब्राह्मणी, अपने अग्निमुख नामक पतिके साथ पुत्र-प्राप्तिके महोत्सवको प्राप्त हो सुखसे रहने लगी और उसके स्तनोसे दूध झरने लगा ॥१२७॥ मृदुमति अत्यन्त तेजस्वी था, सुन्दर था, बुद्धिमान् था, नाना शास्त्रोमे निपुण था, सर्व स्त्रियोके नेत्र और मनको हरनेवाला था, धूर्तोके मस्तकपर स्थित था अर्थात् उनमे शिरोमणि था ॥१२८॥ वह जुआमे सदा जीतता था, अत्यन्त चतुर था, कलाओका घर था, और कामोपभोगमे सदा आसक्त रहता था। इस तरह वह नगरमे सदा क्रीड़ा करता रहता था ॥१२९॥ उस पोदनपुर नगरमे एक वसन्तडमरा नामकी वेश्या, समस्त वेश्याओंमे उत्तम थी। जो कामभोगके विषयमे उसकी अत्यन्त इष्ट स्त्री थी ॥१३०॥ उसने अपने माता-पिताको अन्य बन्धुजनोके साथ-साथ दरिद्रतासे मुक्त कर दिया था जिससे वे समस्त इच्छित पदार्थोको प्राप्त कर राजा-रानी-जैसी लीलाको प्राप्त हो रहे थे ॥१३१॥ उसका पिता कुण्डल आदि अलंकारोसे अत्यन्त देदीप्यमान था तथा माता मेखला आदि अलंकारोसे युक्त हो नाना कार्यकलापमे सदा व्यग्र रहती थी ॥१३२॥ एक दिन वह मृदुमति चोरी करनेके लिए शशांकनामा नगरके राजमहलमे घुसा। वहाँका राजा नन्दिवर्धन विरक्त हो रानीसे कह रहा था सो उसे उसने सुना था ॥१३३॥ उसने कहा कि आज मैने शशाकमुख नामक गुरुके चरणमूलमे मोक्ष सुखका देनेवाला उत्तम धर्म सुना है ॥१३४॥ हे देवि ! ये विषय विषके समान अत्यन्त दारुण हैं इसलिए मै दीक्षा धारण करता हूँ तुम शोक

१ करुणायुक्त म , करुणायुक्ते इत्युक्ते इति पदच्छेद । २. सवितृ म. । ३. वसन्तसमये म. । ४ परमेप्सिता म । ५. नन्दिवर्धनम् म ।

शिक्षयन्तं नृपं देवीमेवं श्रीनन्दिवर्द्धनम् । श्रुत्वा मृदुमतिर्बोधिं निर्मलां समुपाश्रितः ॥१३६॥
संसारभावसंविग्नः साधोश्चन्द्रमुखश्रुतेः । पादमूलेऽभजद्दीक्षां सर्वग्रन्थविमोचिताम् ॥१३७॥
अतपत् स तपो घोरं विधिं शास्त्रोक्तमाचरन् । भिक्षां[1] स्यात्प्राप्नुवन् किंचित् प्रासुकां सत्क्षमान्वितः॥१३८
अथ दुर्गगिरेर्मूर्द्धि नाम्ना गुणनिधिर्मुनिः । चकार चतुरो मासान्वार्षुकानन्न[2]मुक्तिदान् ॥१३९॥
सुरासुरस्तुतो धीरः समाप्तनियमोऽभवत् । उत्पपात मुनिः क्वापि विधिना गगनायनः ॥१४०॥
अथो मृदुमतिर्भिक्षाकरणार्थं सुचेष्टितः । आलोकनगरं प्राप्तो युगमात्राहितेक्षणः ॥१४१॥
ददर्श सम्भ्रमेणैतं पौरलोकः सपार्थिवः । शैलाग्रेऽवस्थित. सोऽयमिति ज्ञात्वा सुभक्तिकः ॥१४२॥
भक्ष्यैर्बहुप्रकारैस्तं तर्पयन्ति स्म पूजितम् । जिह्वेन्द्रियरतो मायां स च भेजे कुकर्मतः ॥१४३॥
स त्वं यः पर्वतस्याग्रे यतिनाथो व्यवस्थितः । वन्दितस्त्रिदशैरेवमुक्तः सोऽनमयच्छिरः ॥१४४॥
अज्ञानादभिमानेन दुःखबीजमुपार्जितम् । स्वादगौरवसक्तेन[3] तेनेदं स्वस्य वञ्चनम् ॥१४५॥
एतत्तेन गुरोरग्रे न मायाशल्यमुद्धृतम् । दुःखभाजनतां येन संप्राप्तः परमामिमाम् ॥१४६॥
ततो मृदुमतिः कालं कृत्वा तं कल्पमाश्रितः । अभिरामोऽमरो यत्र वर्त्तते महिमान्वितः ॥१४७॥
पूर्वकर्मानुभावेन तयोरतिनिरन्तरा । त्रिविष्टपेऽभवत् प्रीतिः परमर्द्धिसमेतयोः ॥१४८॥
देवीजनसमाकीर्णौ सुखसागरवर्त्तिनौ । बहून्विधिस[4]मांस्तत्र रेमाते तौ स्वपुण्यतः ॥१४९॥

करनेके योग्य नही हो ॥१३५॥ इस प्रकार रानीको शिक्षा देते हुए श्री नन्दिवर्धन राजाको सुनकर वह मृदुमति अत्यन्त निर्मल बोधिको प्राप्त हुआ ॥१३६॥ संसारकी दशासे विरक्त हो उसने शशांकमुख नामा गुरुके पादमूलमे सर्व परिग्रहका त्याग करानेवाली जिनदीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ अब वह शास्त्रोक्त विधिका आचरण करता तथा जब कभी प्रासुक भिक्षा प्राप्त करता हुआ क्षमाधर्मसे युक्त हो घोर तप करने लगा ॥१३८॥

अथानन्तर गुणनिधि नामक एक उत्तम मुनिराजने दुर्गगिरि नामक पर्वतके शिखरपर आहारका परित्याग कर चार माहके लिए वर्षायोग धारण किया ॥१३९॥ सुर और असुरोने जिसकी स्तुति की तथा जो चारण ऋद्धिके धारक थे ऐसे वे धीर-वीर मुनिराज चार माहका नियम समाप्त कर कही विधिपूर्वक आकाश मार्गसे उड़ गये—विहार कर गये ॥१४०॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाओके धारक एवं युगमात्र पृथिवीपर दृष्टि डालनेवाले मृदुमति नामक मुनिराज भिक्षाके लिए आलोकनामा नगरमे आये ॥१४१॥ सो राजा सहित नगरवासी लोगोने यह जानकर कि ये वे ही महामुनि हैं जो पर्वतके अग्रभाग पर स्थित थे उन्हे आते देख बड़े संभ्रमसे भक्ति सहित उनके दर्शन किये ॥१४२॥ तथा उनकी पूजा कर उन्हे नाना प्रकारके आहारोंसे सन्तुष्ट किया। और जिह्वा इन्द्रियमे आसक्त हुए उन मुनिने पाप कर्मके उदयसे माया धारण की ॥१४३॥ नगरवासी लोगोने कहा कि तुम वही मुनिराज हो जो पर्वतके अग्रभागपर स्थित थे तथा देवोने जिनकी वन्दना की थी। इस प्रकार कहनेपर उन्होने अपना सिर नीचा कर लिया किन्तु यह नही कहा कि मै वह नही हूँ ॥१४४॥ इस प्रकार भोजनके स्वादमे लीन मृदुमति मुनिने अज्ञान अथवा अभिमानके कारण दुःखके बीजस्वरूप इस आत्मवंचनाका उपार्जन किया अर्थात् माया की ॥१४५॥ यतश्च उन्होने गुरुके आगे अपनी यह माया शल्य नही निकाली इसलिए वे इस परम दु.खकी पात्रताको प्राप्त हुए ॥१४६॥ तदनन्तर मृदुमति मुनि मरण कर उसी स्वर्गमे पहुँचे जहाँ कि ऋद्धियो सहित अभिराम नामका देव रहता था ॥१४७॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे परम ऋद्धिको धारण करनेवाले उन दोनो देवोकी स्वर्गमे अत्यन्त प्रीति थी ॥१४८॥ देवियोके समूहसे

---

१. भिक्षा प्राप्नुवन् किंचित्प्रासुकां स क्षमान्वितः म०। २. -नत्र म.। न्नतु प.। ३ तेनैदं म.। ४. समास्तत्र ज ।

च्युतो मृदुमतिस्तस्मात् पुण्यराशिपरिक्षये । मायावशेषकर्माक्तो जम्बूद्वीपं समागतः ॥१५०॥
उत्तुङ्गशिखरो नाम्ना निकुञ्ज इति भूधरः । अटव्यां तस्य शल्लक्यां गहनायां विशेषतः ॥१५१॥
अयं जीमूतसंघातसंकाशो वारणोऽभवत् । क्षुब्धार्णवसमस्वानो गतिनिर्जितमारुतः ॥१५२॥
अत्यन्तभैरवाकारः कोपकालेऽभिमानवान् । शशाङ्काकृतिसद्दंष्ट्रो दन्तिराजगुणान्वितः ॥१५३॥
विजयादिमहानागगोत्रजः परमद्युतिः । द्विषन्नैरावतस्येव स्वच्छन्दकृतविग्रहः ॥१५४॥
सिंहव्याघ्रमहावृक्षगण्डशैलविनाशकृत् । आसतां मानुषास्तावद्दुर्ग्रहः खेचरैरपि ॥१५५॥
समस्तश्वापदत्रासं कुर्वन्नामोदमात्रतः । रमते गिरिकुञ्जेषु नानापल्लवहारिषु ॥१५६॥
अक्षोभ्ये विमले नानाकुसुमैरुपशोभिते । मानसे सरसि क्रीडां कुरुतेऽनुचरान्वितः ॥१५७॥
विलासं सेवते सारं कैलासे सुलभेक्षिते । मन्दाकिन्याः मनोज्ञेषु ह्रदेषु च परः सुखी ॥१५८॥
अन्येषु च नगारण्यप्रदेशेष्वतिहारिषु । भजते क्रीडनं कान्तं बान्धवानां महोदयः ॥१५९॥
अनुवृत्तिप्रसक्तानां करेणूनां स भूरिभिः । सहस्रैः संगतः सौख्यं भजते यूथपोचितम् ॥१६०॥
इतस्ततश्च विचरन् द्विरदौघसमावृतः । शोभते पक्षिसंघातैर्विनतानन्दनो यथा ॥१६१॥
घनाघनघनस्वानो दाननिर्झरपर्वतः । लङ्केन्द्रेणेक्षितः सोऽयमासीद्वारणसत्तमः ॥१६२॥
विद्यापराक्रमोग्रेण तेनाथ साधितोऽभवत् । त्रिलोककण्टकाभिख्यां प्रापितश्चारुलक्षणः ॥१६३॥

युक्त तथा सुखरूपी सागरमे निमग्न रहनेवाले वे दोनो देव अपने पुण्योदयसे अनेक सागरपर्यन्त उस स्वर्गमे क्रीड़ा करते रहे ॥१४९॥

तदनन्तर मृदुमतिका जीव, पुण्यराशिके क्षीण होनेपर वहाँसे च्युत हो मायाचारके दोषसे दूषित होनेके कारण जम्बूद्वीपमे आया ॥१५०॥ जम्बूद्वीपमे ऊँचे-ऊँचे शिखरोसे सहित निकुज नामका एक पर्वत है उस पर अत्यन्त सघन शल्लकी नामक वन है ॥१५१॥ उसी वनमे यह मेघ-समूहके समान हाथी हुआ है। इसका शब्द क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान है, इसने अपनी गतिसे वायुको जीत लिया है, क्रोधके समय इसका आकार अत्यन्त भयकर हो जाता है, यह महाअभिमानी है, इसकी दाँढे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हैं। यह गजराजके गुणोसे सहित है, विजय आदि महागजराजोके वंशमे उत्पन्न हुआ है, परम दीप्तिको धारण करनेवाला है, मानो ऐरावत हाथीसे द्वेष ही रखता है, स्वेच्छानुसार युद्ध करनेवाला है, सिंह-व्याघ्र, बड़े-बड़े वृक्ष तथा छोटी मोटी अनेक गोल चट्टानोका विनाश करनेवाला है, मनुष्योकी बात जाने दो विद्याधरोके द्वारा भी इसका पकड़ा जाना सरल नही है, यह अपनी गन्धमात्रसे समस्त वन्य पशुओको भय उत्पन्न करता है तथा नाना प्रकारके पल्लवोसे युक्त पहाड़ी निकुजोंमे क्रीड़ा करता रहता है ॥१५२–१५६॥ जिसे कोई क्षोभित नही कर सकता तथा जो नाना प्रकारके फूलोसे सुशोभित है ऐसे मानस सरोवरमे यह अपने अनुयायियोके साथ क्रीड़ा करता है ॥१५७॥ यह अनायास दृष्टिमे आये हुए कैलास पर्वतपर तथा गंगा नदीके मनोहर ह्रदोमे अत्यन्त सुखी होता हुआ श्रेष्ठ शोभाको प्राप्त होता है ॥१५८॥ अपने बन्धुजनोके महाभ्युदयको बढ़ानेवाला यह हाथी इनके सिवाय अत्यन्त मनोहर पहाड़ी वनप्रदेशोमे सुन्दर क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ अनुकूल आचरण करनेमे तत्पर रहनेवाली हजारो हथिनियोके साथ मिलकर यह यूथपतिके योग्य सुखका उपभोग करता है ॥१६०॥ हाथियोके समूहसे घिरा हुआ यह हाथी जब यहाँ-वहाँ विचरण करता है तब पक्षियोके समूहसे आवृत गरुड़के समान सुशोभित होता है ॥१६१॥

जिसकी गर्जना मेघगर्जनाके समान सघन है तथा जो दानरूप झरनोके निकलनेके लिए मानो पर्वत ही है ऐसा यह उत्तम गजराज लकाके धनी रावणके द्वारा देखा गया अर्थात् रावणने इसे देखा ॥१६२॥ तथा विद्या और पराक्रमसे उग्र रावणने इसे वशीभूत किया एव सुन्दर-सुन्दर

अप्सरोभिः समं स्वर्गे प्रक्रीड्य सुचिरं सुखम् । करिणीभिः समं क्रीडामकरोत् सुकरी पुनः ॥१६४॥
ईदृशी कर्मणां शक्तिर्यज्जीवा. सर्वयोनिषु । वस्तुतो दुःखयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परां रतिम् ॥१६५॥
च्युतः सन्नभिरामोऽपि साकेतानगरे नृपः । भरतोऽयमभूद्धीमान् सद्धर्मगतमानसः ॥१६६॥
विलीनमोहनिचयः सोऽयं भोगपराङ्मुखः । श्रामण्यमीहते कर्तुं पुनर्भवनिवृत्तये ॥१६७॥
गोदण्डमार्गसदृशे यौ[1] मरीचिप्रवर्त्तिते[2] । समये दीक्षितावास्तां परित्यक्तमहाव्रतौ ॥१६८॥
तावेतौ मानिनौ भानुशशाङ्कोदयसंज्ञितौ । संसारदुःखितौ भ्रान्तौ भ्रातरौ कर्मचेष्टितौ ॥१६९॥
कृतस्य कर्मणो लोके सुखदुःखविधायिनः । जना निस्तपसोऽवश्यं प्राप्नुवन्ति फलोदयम् ॥१७०॥
चन्द्रः कुलंकरो यश्च समाधिमरणो[3] मृगः । सोऽयं नरपतिर्जातो भरतः साधुमानसः ॥१७१॥
आदित्यश्रुतिविप्रश्च कुष्टमृत्युः कुरङ्गकः । संप्राप्तो गजतामेष पापकर्मानुभावतः ॥१७२॥
प्रमृद्य बन्धनस्तम्भं बलवानुद्धतः परम् । भरतालोकनात् स्मृत्वा पूर्वजन्म शमं गतः ॥१७३॥

शार्दूलविक्रीडितम्

ज्ञात्वैवं गतिमागतिं च विविधां बाह्यं सुखं वा ध्रुवं
कर्मारण्यमिदं विहाय विषम धर्मे रमध्वं बुधा ।
मानुष्यं समवाप्य यैर्जिनवरप्रोक्तो न धर्मः कृत-
स्ते संसारसुहृत्त्वमभ्युपगताः स्वार्थस्य दूरे स्थिताः ॥१७४॥

लक्षणोंसे युक्त इस हाथीका त्रिलोककण्टक नाम रखा ॥१६३॥ यह पूर्वभवमे स्वर्गमे अप्सराओंके साथ चिरकाल तक क्रीड़ा कर सुखी हुआ अब हस्तिनियोंके साथ क्रीड़ा कर सुखी हो रहा है ॥१६४॥ यथार्थमे कर्मोकी ऐसी ही विचित्र शक्ति है कि जीव, दुःखोंसे युक्त नाना योनियोमें परम प्रीतिको प्राप्त होते है ॥१६५॥ अभिरामका जीव भी च्युत हो अयोध्या नगरीमे राजा भरत हुआ है। यह भरत अत्यन्त वुद्धिमान् है तथा समीचीन धर्ममे इसका हृदय लग रहा है ॥१६६॥ जिसके मोहका समूह विलीन हो चुका है तथा जो भोगोंसे विमुख है ऐसा यह भरत पुनर्भव दूर करनेके लिए मुनि दीक्षा धारण करना चाहता है ॥१६७॥ श्री ऋषभदेवके समय ये दोनो सूर्योदय और चन्द्रोदय नामक भाई थे तथा उन्ही ऋषभदेवके साथ जिनधर्ममे दीक्षित हुए थे किन्तु वादमे अभिमानसे प्रेरित हो महाव्रत छोड़कर मरीचिके द्वारा चलाये हुए परिव्राजक मतमे दीक्षित हो गये जिसके फलस्वरूप संसारके दुःखसे दुःखी हो कर्मोका फल भोगते हुए चिरकाल तक संसारमे भ्रमण करते रहे ॥१६८–१६९॥ सो ठीक ही है क्योकि संसारमे जो मनुष्य तप नही करते हैं वे अपने द्वारा किये सुख-दुःखदायी कर्मका फल अवश्य ही प्राप्त करते हैं ॥१७०॥ जो चन्द्रोदयका जीव पहले कुलंकर और उसके वाद समाधिमरण करनेवाला मृग हुआ था वही क्रम-क्रमसे उत्तम हृदयको धारण करनेवाला राजा भरत हुआ है ॥१७१॥ और सूर्योदय ब्राह्मणका जीव मरकर मृग हुआ फिर क्रम-क्रमसे पापकर्मके उदयसे इस हस्ती पर्यायको प्राप्त हुआ है ॥१७२॥ अत्यन्त उत्कट वलको धारण करनेवाला यह हाथी पहले तो वन्धनका खम्भा उखाड़कर क्षोभको प्राप्त हुआ परन्तु वादमे भरतके देखनेसे पूर्वभवका स्मरण कर शान्त हो गया ॥१७३॥ गौतम स्वामो कहते हैं कि हे विद्वज्जनो ! इस तरह नाना प्रकारकी गति-आगति तथा वाह्य सुख और दुःखको जानकर इस विषम कर्म अटवीको छोड़ धर्ममे रमण करो क्योकि जिन्होने मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जिनेन्द्रकथित धर्म धारण नही किया है वे संसार-भ्रमणको प्राप्त हो आत्म-हितसे दूर रहते

---

१. यो म. । २. मरीचि- प्रवर्तते म. । ३. रमणी मृग. ज. ।

आर्यागीतिवृत्तम्

जिनवरवदनविनिर्गतमुपलभ्य शिवैकदानतत्परमतुलम् ।
निर्जितरविरुचिसुकृतं कुरुत यतो यात निर्मल परमपदम् ॥१७५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतत्रिभुवनालकारसमाध्यनुभवानुकीर्त्तन नाम पञ्चाशीतितमं पर्व ॥८५॥



है ॥१७४॥ हे भव्यजनो ! जो श्री जिनेन्द्र देवके मुखारविन्दसे प्रकट हुआ है तथा मोक्षके देनेमे तत्पर है ऐसे अनुपम जिनधर्मको पाकर सूर्यकी कान्तिको जीतनेवाला पुण्य संचय करो जिससे निर्मल परम पदको प्राप्त हो सको ॥१७५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरत तथा त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला पचासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८५॥



षडशीतितमं पर्व

साधोस्तद्वचनं श्रुत्वा सुपवित्रं तमोऽपहम् । संसारसागरे घोरे नानादुःखनिवेदनम् ॥१॥
विस्मयं परमं प्राप्ता भरतानुभवोद्भवम् । पुस्तकर्मगतेवासीन् सा सभा चेष्टितोज्झिता ॥२॥
भरतोऽथ समुत्थाय प्रचलद्धारकुण्डलः । प्रतापप्रथितः श्रीमान् देवेन्द्रसमविभ्रमः ॥३॥
वहन् संवेगमुत्तुङ्गं प्रह्वकायो महामनाः । रभसान्वितमासाद्य [1]बद्धपाण्यब्जकुड्मलः ॥४॥
जानुसंपीडितक्षोणिः प्रणिपत्य मुनीश्वरम् । संसारवासखिन्नोऽसौ जगाद सुमनोहरम् ॥५॥
नाथ योनिसहस्रेषु संकटेषु चिरं भ्रमन् । महाध्वश्रमखिन्नो[2]ऽहं यच्छ मे मुक्तिकारणम् ॥६॥
उह्यमानाय संसृतिमरणोग्रतरङ्गया । मह्यं संसृतिन[3]द्या त्वं हस्ताल[4]म्बकरो भव ॥७॥
इत्युक्त्वा त्यक्तनिःशेषग्रन्थः पर्यङ्कबन्धगः । स्वकरेणाकरोल्लुञ्चं महासत्त्वसमन्वितः ॥८॥
परं सम्यक्त्वमासाद्य महाव्रतपरिग्रहः । दीक्षितो भरतो जातस्तत्क्षणेन मुनिः परः ॥९॥
साधु साध्विति देवानामन्तरिक्षेऽभवत् स्वनः । पेतुः पुष्पाणि दिव्यानि भरते मुनितामिते ॥१०॥
सहस्रमधिकं राज्ञां भरतस्यानुरागतः । क्रमागतां श्रियं त्यक्त्वा श्रामण्यं समशिश्रियत् ॥११॥
अनुग्रशक्तयः केचिन्नमस्कृत्य मुनिं जनाः । उपासांचक्रिरे धर्मं विधिनागारसंगतम् ॥१२॥
संभ्रान्ता केकया बाष्पदुर्दिनाकुलचेतना । धावन्ती पतिता भूमौ व्यामोहं च समागता ॥१३॥

अथानन्तर जो अत्यन्त पवित्र थे, अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले थे, संसाररूपी घोर सागरके नाना दुःखोंका निरूपण करनेवाले थे और भरतके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाले थे ऐसे महामुनि श्री देशभूषण केवलीके उक्त वचन सुनकर वह समस्त सभा चित्रलिखितके समान निश्चल हो गयी ॥१-२॥ तदनन्तर जिनके हार और कुण्डल हिल रहे थे, जो प्रतापसे प्रसिद्ध थे, श्रीमान् थे, इन्द्रके समान विभ्रमको धारण करनेवाले थे, अत्यधिक संवेगके धारक थे, जिनका शरीर नम्रीभूत था, मन उदार था, जिन्होंने हस्तरूपी कमलकी बोड़ियोंको बाँध रखा था और जो संसार सम्बन्धी निवाससे अत्यन्त खिन्न थे ऐसे भरतने पृथिवीपर घुटने टेककर मुनिराजको नमस्कार कर इस प्रकारके अत्यन्त मनोहारी वचन कहे ॥३-५॥ कि हे नाथ! मैं संकटपूर्ण हजारों योनियोंमें चिरकालसे भ्रमण करता हुआ मार्गके महाश्रमसे खिन्न हो चुका हूँ अतः मुझे मोक्षका कारण जो तपश्चरण है वह दीजिये ॥६॥ हे भगवन्! मैं जन्म-मरण रूपी ऊँची लहरोंसे युक्त संसाररूपी नदीमें चिरकालसे बहता चला आ रहा हूँ सो आप मुझे हाथका सहारा दीजिये ॥७॥ इस प्रकार कहकर भरत समस्त परिग्रहका परित्याग कर पर्यंकासनसे स्थित हो गये तथा महाधैर्यसे युक्त हो उन्होंने अपने हाथसे केशलोंच कर डाले ॥८॥ इस प्रकार परम सम्यक्त्वको पाकर महाव्रतको धारण करनेवाले भरत तत्क्षणमें दीक्षित हो उत्कृष्ट मुनि हो गये ॥९॥ उस समय भरतके मुनि अवस्थाको प्राप्त होनेपर आकाशमें देवोंका धन्य-धन्य यह शब्द हुआ तथा दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हुई ॥१०॥ भरतके अनुरागसे प्रेरित हो कुछ अधिक एक हजार राजाओंने क्रमागत राज्यलक्ष्मीका परित्याग कर मुनिदीक्षा धारण की ॥११॥ जिनकी शक्ति हीन थी ऐसे कितने ही लोगोंने मुनिराजको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म धारण किया ॥१२॥ जो निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा कर रही थी, तथा जिसकी चेतना अत्यन्त आकुल थी ऐसी भरतकी माता केकया घबड़ाकर उनके पीछे-पीछे दौड़ती जा रही थी सो बीचमें ही पृथिवी

---

१. बद्ध पाण्यब्ज -म । २. -सन्नोऽहं ख., ज. । ३. नद्यास्त्वं म., ज. । ४. हस्तलम्ब -म ।

सुतप्रीतिभराक्रान्ता ततोऽसौ निश्चलाङ्गिका । गोशीर्षादिपयःसेकैरपि संज्ञामुपैति न ॥१४॥
व्यक्तचेतनतां प्राप्य चिराय स्वयमेव सा । अरोदीत् करुणं धेनुर्वत्सेनेव वियोजिता ॥१५॥
हा मे वत्स मनोह्लाद सुविनीत गुणाकर । क्व प्रयातोऽसि वचनं प्रयच्छाङ्गानि धारय ॥१६॥
त्वया पुत्रक संत्यक्ता दुःखसागरवर्तिनी । कथं स्थास्यामि शोकार्त्ता हा किमेतदनुष्ठितम् ॥१७॥
कुर्वन्तीति समाक्रन्दं हलिना चक्रिणा च सा । आनीयत समाश्वासं वचनैरतिसुन्दरैः ॥१८॥
पुण्यवान् भरतो विद्वानम्ब शोकं परित्यज । आवां ननु न किं पुत्रौ तवाज्ञाकरणोद्यतौ ॥१९॥
इति कातरतां कृच्छ्रात्त्याजिता शान्तमानसा । सपत्नीवाक्यजातैश्च सा बभूव विशोकिका ॥२०॥
विबुद्धा चाकरोन्निन्दामात्मनः शुद्धमानसा । धिक् स्त्रीकलेवरमिदं बहुदोषपरिप्लुतम् ॥२१॥
अत्यन्ताशुचिबीभत्सं नगरीनिर्झरोपमम् । करोमि कर्म तद् येन विमुच्ये पापकर्मतः ॥२२॥
पूर्वमेव जिनोक्तेन धर्मेणासौ सुभाविता । महासंवेगसंपन्ना सितैकवसनान्विता ॥२३॥
सकाशे पृथिवीमत्याः सह नारीशतैस्त्रिभिः । दीक्षां जग्राह सम्यक्त्वं धारयन्ती सुनिर्मलम् ॥२४॥

उपजातिः

त्यक्त्वा समस्तं गृहिधर्मजालं प्राप्यार्यिकाधर्ममनुत्तमं सा ।
रराज मुक्ता घनसंगमेन शशाङ्कलेखेव कलङ्कहीना ॥२५॥
इतोऽभवद्भिक्षुगणः सुतेजास्तथार्यिकाणां प्रचयोऽन्यतोऽभूत् ।
तदा सदो भूरिसरोजयुक्तसरः[1] समं तद्भवति स्म कान्तम् ॥२६॥

पर गिरकर मूर्च्छित हो गयी थी ॥१३॥ तदनन्तर जो पुत्रकी प्रीतिके भारसे युक्त थी, तथा जिसका शरीर निश्चल पड़ा हुआ था ऐसी वह केकया गोशीर्ष आदि चन्दनके जलके सींचनेपर भी चेतनाको प्राप्त नही हो रही थी ॥१४॥ बहुत समय बाद जब वह स्वयं चेतनाको प्राप्त हुई तब बछडेसे रहित गायके समान करुण रोदन करने लगी ॥१५॥ वह कहने लगी कि हाय मेरे वत्स ! तू मनको आह्लादित करनेवाला था, अत्यन्त विनीत था और गुणोकी खान था। अब तू कहाँ चला गया ? उत्तर दे और मेरे अंगोंको धारण कर ॥१६॥ हाय पुत्रक ! तेरे द्वारा छोड़ी हुई मै दुःखरूपी सागरमे निमग्न हो शोकसे पीड़ित होती हुई कैसे रहूँगी ? यह तूने क्या किया ? ॥१७॥ इस प्रकार विलाप करती हुई भरतकी माताको राम और लक्ष्मणने अत्यन्त सुन्दर वचनोसे सन्तोष प्राप्त कराया ॥१८॥ उन्होने कहा—हे माता ! भरत बड़ा पुण्यवान् और विद्वान् है, तू शोक छोड । क्या हम दोनो तेरे आज्ञाकारी पुत्र नही हैं ? ॥१९॥ इस प्रकार जिससे बड़े भयसे उत्पन्न कातरता छुडायी गयी थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध था, ऐसी वह केकया सपत्नीजनोके वचनोंसे शोकरहित हो गयी थी ॥२०॥ वह शुद्धहृदया जब सचेत हुई तब अपने आपकी निन्दा करने लगी । वह कहने लगी कि स्त्रीके इस शरीरको धिक्कार हो जो अनेक दोषोसे आच्छादित है ॥२१॥ अत्यन्त अपवित्र है, ग्लानिपूर्ण है, नगरी निर्झर अर्थात् गटरके प्रवाहके समान है। अब तो मै वह कार्य करूँगी जिसके द्वारा पापकर्मसे मुक्त हो जाऊँगी ॥२२॥ वह जिनेन्द्र-प्रणीत धर्मसे तो पहले ही प्रभावित थी, इसलिए महान् वैराग्यसे प्रयुक्त हो एक सफेद साड़ीसे युक्त हो गयी ॥२३॥ तदनन्तर निर्मल सम्यक्त्वको धारण करती हुई उसने तीन सौ स्त्रियोके साथ पृथिवीमती नामक आर्यिके पास दीक्षा ग्रहण कर ली ॥२४॥ समस्त गृहस्थधर्मके जालको छोड़कर तथा आर्यिकाका उत्कृष्ट धर्म धारण कर वह केकया मेघके सगमसे रहित निष्कलंक चन्द्रमाकी रेखाके समान सुशोभित हो रही थी ॥२५॥ उस समय देशभूषण मुनिराजकी सभामे एक ओर तो उत्तम तेजको धारण करनेवाले मुनियोका समूह विद्यमान था और दूसरी ओर

---

१. युक्तं सद. सम म ।

एवं जनस्तत्र बभूव नाना-व्रतक्रियासंगपवित्रचित्तः ।
समुद्गते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न [1]युक्तिरस्ति ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतकेकयानिष्क्रमणाभिधानं नाम
षडशीतितमं पर्व ॥८६॥



आर्यिकाओंका समूह स्थित था। इसलिए वह सभा अत्यधिक कमल और कमलिनियोंसे युक्त सरोवरके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह वहाँ जितने मनुष्य विद्यमान थे उन सभीके चित्त नाना प्रकारकी व्रत सम्बन्धी क्रियाओंके संगसे पवित्र हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि सूर्योदय होनेपर कौन भव्यजन प्रकाशसे युक्त नहीं होता? अर्थात् सभी होते हैं ॥२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरत और केकयाकी
दीक्षाका वर्णन करनेवाला छियासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८६॥



१. मुक्ति म.।

सप्ताशीतितमं पर्व

अथ साधु. प्रशान्तात्मा लोकत्रयविभूषणः । अणुव्रतानि मुनिना विधिना परिलम्भितः ॥१॥
सम्यग्दर्शनसंयुक्त. संज्ञानः सत्क्रियोद्यतः । सागारधर्मसंपूर्णो मतङ्गजवरोऽभवत् ॥२॥
पक्षमासादिभिर्भक्तच्युतैः[1] पत्रादिभि. स्वयम् । शुष्कैः स पारणां चक्रे दिनपूर्णैकवेलिकाम् ॥३॥
गज. संसारभीतोऽयं सच्चेष्टितपरायणः । अर्च्यमानो जनैः क्षोणीं विजहार विशुद्धिमान् ॥४॥
लड्डुकान् मण्डकान् मृष्टान्विविधाश्चारुपूरिकाः । पारणासमये तस्मै ससत्कारं ददौ जनः ॥५॥
तनुकर्मशरीरोऽसौ संवेगालानसंयतः । उग्रं चत्वारि वर्षाणि तपश्चक्रे यमाङ्कुश. ॥६॥
शनैः शनैः परित्यज्य भुक्तिमुग्रतपा गजः । सल्लेखनां परिप्राप्य ब्रह्मोत्तरमशिश्रियत् ॥७॥
वराङ्गनासमाकीर्णो हारकुण्डलमण्डितः । पूर्वं सुरसुखं प्राप्तो गजः पुण्यानुभावतः ॥८॥
भरतोऽपि महातेजा महाव्रतधरो विभुः । धराधरगुरुस्त्यक्तबाह्यान्तरपरिग्रहः ॥९॥
व्युत्सृष्टाङ्गो महाधीरस्तिष्ठत्यस्तमिते रवौ । विजहार यथान्यायं चतुराराधनोद्यतः ॥१०॥
अविरुद्धो यथा वायुर्मृगेन्द्र इव निर्भयः । अकूपार इवाक्षोभ्यो निष्कम्पो मन्दरो यथा ॥११॥
जातरूपधरः सत्यकवचः क्षान्तिसायकः । परीषहजयोद्युक्तस्तपः[2]संयत्यवर्तत ॥१२॥
समः शत्रौ च मित्रे च समानः सुखदुःखयो. । उत्तम. श्रमण. सोऽभूत् समधीस्तृणरत्नयोः ॥१३॥

अथानन्तर जिसकी आत्मा अत्यन्त शान्त थी ऐसे उस उत्तम त्रिलोकमण्डन हाथीको मुनिराजने विधिपूर्वक अणुव्रत धारण कराये ॥१॥ इस तरह वह उत्तम हाथी, सम्यग्दर्शनसे युक्त, सम्यग्ज्ञानका धारी, उत्तम क्रियाओंके आचरणमे तत्पर और गृहस्थ धर्मसे सहित हुआ ॥२॥ वह एक पक्ष अथवा एक मास आदिका उपवास करता था तथा उपवासके बाद अपने आप गिरे हुए सूखे पत्तोसे दिनमे एक बार पारणा करता था ॥३॥ इस तरह जो संसारसे भयभीत था, उत्तम चेष्टाओके धारण करनेमे तत्पर था, और अत्यन्त विशुद्धिसे युक्त था ऐसा वह गजराज मनुष्योके द्वारा पूजित होता हुआ पृथिवीपर भ्रमण करता था ॥४॥ लोग पारणाके समय उसके लिए बड़े सत्कारके साथ मीठे-मीठे लाड्डू, मांडे और नाना प्रकारकी पूरियाँ देते थे ॥५॥ जिसके शरीर और कर्म—दोनों ही अत्यन्त क्षीण हो गये थे, जो संवेगरूपी खम्भेसे बँधा हुआ था, तथा यम ही जिसका अंकुश था ऐसे उस हाथीने चार वर्ष तक उग्र तप किया ॥६॥ जो धीरे-धीरे भोजनका परित्याग कर अपने तपश्चरणको उग्र करता जाता था ऐसा वह हाथी सल्लेखना धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्गको प्राप्त हुआ ॥७॥ वहाँ उत्तम स्त्रियोसे सहित तथा हार और कुण्डलोसे मण्डित उस हाथीने पुण्यके प्रभावसे पहले ही जैसा देवोका सुख प्राप्त किया ॥८॥

इधर जो महातेजके धारक थे, महाव्रती थे, विभु थे, पर्वतके समान स्थिर थे, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहके त्यागी थे, शरीरकी ममतासे रहित थे, महाधीर-वीर थे, जहाँ सूर्य डूब जाता था वही बैठ जाते थे, और चार आराधनाओंकी आराधनामे तत्पर थे ऐसे भरत महामुनि न्यायपूर्वक विहार करते थे ॥९–१०॥ वे वायुके समान बन्धनसे रहित थे, सिंहके समान निर्भय थे, समुद्रके समान क्षोभसे रहित थे, और मेरुके समान निष्कम्प थे ॥११॥ जो दिगम्बर मुद्राको धारण करनेवाले थे, सत्यरूपी कवचसे युक्त थे, क्षमारूपी बाणोसे सहित थे और परीषहोके जीतनेमे सदा तत्पर रहते थे ऐसे वे भरतमुनि सदा तपरूपी युद्धमे विद्यमान रहते थे ॥१२॥ वे शत्रु और मित्र, सुख और दुःख तथा तृण और रत्नमे समान रहते थे। इस तरह वे समबुद्धिके धारक उत्तम

---

१ च्युत' म । २ तपोरूपसंग्रामे ।

सूचीनिचितमार्गेषु भ्राम्यतः शास्त्रपूर्वकम् । शत्रुस्थानेषु तस्याभूच्चतुरङ्गुलचारिता ॥१४॥
अत्यन्तप्रलयं कृत्वा मोहनीयस्य कर्मणः । अवाप केवलज्ञानं लोकालोकावभासनम् ॥१५॥

आर्यागीतिः

ईदृङ्माहात्म्ययुतः काले समनुक्रमेण विगतरजस्कः ।
यदभीप्सितं तदेष स्थानं प्राप्तो यतो न भूयः पातः ॥१६॥
भरतर्षेरिदमनघं सुचरितमनुकीर्तयेन्नरो यो भक्त्या ।
स्वायुरियर्त्ति स कीर्त्तिं यशो बलं धनविभूतिमारोग्यं च ॥१७॥
सारं सर्वकथानां परममिदं चरितमुन्नतगुणं शुभ्रम् ।
शृण्वन्तु जना भव्या निर्जितरवितेजसो भवन्ति यदाशु ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भरतनिर्वाणगमनं नाम सप्ताशीतितमं पर्व ॥८७॥



मुनि थे ॥१३॥ वे डाभकी अनियोंसे व्याप्त मार्गमें शास्त्रानुसार ईर्यासमितिसे चलते थे तथा शत्रुओंके स्थानोंमें भी उनका निर्भय विहार होता था ॥१४॥ तदनन्तर मोहनीय कर्मका अत्यन्त प्रलय—समूल क्षय कर वे लोक-अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त हुए ॥१५॥ जो इस प्रकारकी महिमासे युक्त थे तथा अनुक्रमसे जिन्होंने कर्मरजको नष्ट किया था ऐसे वे भरतमुनि उस अभीष्ट स्थान—मुक्तिस्थानको प्राप्त हुए कि जहाँसे फिर लौटकर आना नहीं होता ॥१६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य भरतमुनिके इस निर्मल चरितको भक्ति-पूर्वक कहता-सुनता है वह अपनी आयु पर्यन्त कीर्ति, यश, बल, धनवैभव और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७॥ यह चरित्र सर्व कथाओंका उत्तम सार है, उन्नत गुणोंसे युक्त है और उज्ज्वल है। हे भव्यजनो! इसे तुम सब ध्यानसे सुनो जिससे शीघ्र ही सूर्यके तेजको जीतनेवाले हो सको ॥१८॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भरतके निर्वाणका कथन करनेवाला सत्तासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८७॥



अष्टाशीतितमं पर्व

भरतेन समं वीरा निष्क्रान्ता ये महानृपाः। निःस्पृहा स्वशरीरेऽपि प्रव्रज्यां समुपागताः ॥१॥
प्राप्तानां दुर्लभं मार्गं तेषां सुपरमात्मनाम्। कीर्तयिष्यामि केषांचिन्नामानि शृणु पार्थिव ॥२॥
सिद्धार्थः सिद्धसाध्यार्थो रतिदो रतिवर्द्धनः। अम्बुवाहरथो जाम्बूनदः शल्यः शशाङ्कपात् ॥३॥
विरसो नन्दनो नन्द आनन्दः सुमतिः सुधीः। सदाश्रयो महाबुद्धिः सूर्यारो जनवल्लभः ॥४॥
इन्द्रध्वजः श्रुतधरः सुचन्द्रः पृथिवीधरः। अलकः सुमतिः क्रोधः कुन्दरः सत्त्ववान्हरिः ॥५॥
सुमित्रो धर्ममित्रायः संपूर्णेन्दुः प्रभाकरः। नघुषः[1] सुन्दनः शान्तिः प्रियधर्मादयस्तथा ॥६॥
विशुद्धकुलसंभूताः सदाचारपरायणाः। सहस्राधिकसंख्याना भुवनाख्यातचेष्टिताः ॥७॥
एते हस्त्यश्वपादातं प्रवालस्वर्णमौक्तिकम्। अन्तःपुरं च राज्यं च बहुजीर्णतृणं यथा ॥८॥
महाव्रतधराः शान्ता नानालब्धिसमागताः। आत्मध्यानानुरूपेण यथायोग्यं पदं श्रिताः ॥९॥
निष्क्रान्ते भरते तस्मिन् भरतोपमचेष्टिते। मेने शून्यकमात्मानं लक्ष्मणः स्मृततद्गुणः ॥१०॥
शोकाकुलितचेतस्को विषादं परमं भजन्। सूत्कारमुखरः क्लान्तलोचनेन्दीवरद्युतिः ॥११॥
विराधितभुजस्तम्भकृतावष्टम्भविग्रहः। तथापि प्रज्वलन् लक्ष्म्या मन्दवर्णमवोचत ॥१२॥
अधुना वर्त्तते क्वासौ भरतो गुणभूषणः। तरुणेन सता येन शरीरे प्रीतिरुज्झिता ॥१३॥
इष्टं बन्धुजनं त्यक्त्वा राज्यं च त्रिदशोपमम्। सिद्धार्थी स कथं भेजे जैनधर्मं सुदुर्धरम् ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! अपने शरीरमें भी स्पृहा नहीं रखनेवाले जो बड़े-बड़े वीर राजा भरतके साथ दीक्षाको प्राप्त हुए थे तथा अत्यन्त दुर्लभ मार्गको प्राप्त हो जिन्होंने परमात्म पद प्राप्त किया था ऐसे उन राजाओंमें-से कुछके नाम कहता हूँ सो सुनो ॥१-२॥ जिसके समस्त साध्य पदार्थ सिद्ध हो गये थे ऐसा सिद्धार्थ, रतिको देनेवाला रतिवर्द्धन, मेघरथ, जाम्बूनद, शल्य, शशांकपाद (चन्द्रकिरण), विरस, नन्दन, नन्द, आनन्द, सुमति, सुधी, सदाश्रय, महाबुद्धि, सूर्यार, जनवल्लभ, इन्द्रध्वज, श्रुतधर, सुचन्द्र, पृथिवीधर, अलक, सुमति, क्रोध, कुन्दर, सत्त्ववान्, हरि, सुमित्र, धर्ममित्राय, पूर्णचन्द्र, प्रभाकर, नघुष, सुन्दन, शान्ति और प्रियधर्म आदि ॥३-६॥ ये सभी राजा विशुद्ध कुलमें उत्पन्न हुए थे, सदाचारमें तत्पर थे, हजारसे अधिक संख्याके धारक थे और संसारमें इनकी चेष्टाएँ प्रसिद्ध थीं ॥७॥ ये सब हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक, मूँगा, सोना, मोती, अन्तःपुर और राज्यको जीर्ण-तृणके समान छोडकर महाव्रतके धारी हुए थे। सभी शान्तचित्त एवं नाना ऋद्धियोंसे युक्त थे और अपने-अपने ध्यानके अनुरूप यथायोग्य पदको प्राप्त हुए थे ॥८-९॥

भरत चक्रवर्तीके समान चेष्टाओंके धारक भरतके दीक्षा ले लेनेपर उसके गुणोंका स्मरण करनेवाले लक्ष्मण अपने आपको सूना मानने लगे ॥१०॥ यद्यपि उनका चित्त शोकसे आकुलित हो रहा था, वे परम विषादको प्राप्त थे, उनके मुखसे सू-सू शब्द निकल रहा था, उनके नेत्ररूपी नील-कमलोंकी कान्ति म्लान हो गयी थी और उनका शरीर विराधितकी भुजारूपी खम्भोंके आश्रय स्थित था तथापि वे लक्ष्मीसे देदीप्यमान होते हुए धीरे-धीरे बोले कि ॥११-१२॥ गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाला वह भरत इस समय कहाँ है? जिसने तरुण होनेपर भी शरीरसे प्रीति छोड दी है ॥१३॥ इष्ट बन्धुजनोंको तथा देवोंके समान राज्यको छोड़कर सिद्ध होनेकी इच्छा रखता हुआ वह अत्यन्त कठिन जैनधर्मको कैसे धारण कर गया? ॥१४॥

---

१. नहुष.।

आह्लादयन् सदः सर्वं ततः पद्मो विधानवित् । जगाद परमं धन्यो भरतः सुमहानसौ ॥१५॥
तस्यैकस्य मतिः शुद्धा तस्य जन्मार्थमंगतम् । विषान्नमिव यस्त्यक्त्वा राज्यं प्राव्रज्यमास्थितः ॥१६॥
पूज्यता वर्ण्यतां तस्य कथं परमयोगिनः । देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तुं गुणाकरम् ॥१७॥
केकयानन्दनस्यैव प्रारब्धगुणकीर्त्तनाः । सुखदुःखरसोन्मिश्रा मुहूर्त्तं पार्थिवा स्थिताः ॥१८॥
तत. समुत्थिते पद्मे सोद्वेगे लक्ष्मणे तथा । तथा स्वमास्पदं याता नरेन्द्रा बहुविस्मयाः ॥१९॥
संप्रधार्य पुनः प्राप्ताः कर्त्तव्याहितचेतसः । पद्मनाभं नमस्कृत्य प्रीत्या वचनमब्रुवन् ॥२०॥
विदुषामज्ञकानां वा प्रसादं कुरु नाथ नः । राज्याभिषेकमन्विच्छ सुरलोके[1]समद्युतिः ॥२१॥
विदधत्स्वै[2]फलत्व नश्चक्षुषोर्हृदयस्य च । तवाभिषेकसौख्येन भरितस्य नरोत्तम ॥२२॥
बिभ्रत्सप्तगुणैश्वर्यं राजराजो दिने दिने । पादौ नमति यत्रैष तत्र राज्येन किं मम ॥२३॥
प्रतिकूलमिदं वाच्यं न भवद्भिर्मयीदृशम् । स्वेच्छाविधानमात्रं हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥२४॥
इत्युक्ते जयशब्देन पद्माभमभिनन्द्य ते । गत्वा नारायणं प्रोचुः स चायातो बलान्तिकम् ॥२५॥
प्रावृडारम्भसंभूतडम्बराम्भोदनिःस्वनाः । तत. समाहता भेर्यः शङ्खशब्दपुरःसराः ॥२६॥
दुन्दुभ्यानकझल्लर्यस्तूर्याणि प्रवराणि च । मुमुचुर्नादमुत्तुङ्गं वंशादिस्वनसंगतम् ॥२७॥
चारुमङ्गलगीतानि नाट्यानि विविधानि च । प्रवृत्तानि मनोज्ञानि यच्छन्ति प्रमदं परम् ॥२८॥

तदनन्तर समस्त सभाको आह्लादित करते हुए विधि-विधानके वेत्ता रामने कहा कि वह भरत परम धन्य तथा अत्यन्त महान् है ॥१५॥ एक उसीकी बुद्धि शुद्ध है, और उसीका जन्म सार्थक है कि जो विषमिश्रित अन्नके समान राज्यका त्याग कर दीक्षाको प्राप्त हुआ है ॥१६॥ जिसके गुणोकी खानका वर्णन करनेके लिए इन्द्र भी समर्थ नही है ऐसे उस परम योगीकी पूज्यता-का कैसे वर्णन किया जाये ? ॥१७॥ जिन्होने भरतके गुणोका वर्णन करना प्रारब्ध किया था, ऐसे राजा मुहूर्त-भर सुख-दुःखके रससे मिश्रित होते हुए स्थित थे ॥१८॥ तदनन्तर उद्वेगसे सहित राम और लक्ष्मण जब उठकर खड़े हुए तब बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त राजा लोग अपने-अपने स्थान-पर चले गये ॥१९॥

अथानन्तर करने योग्य कार्यमे जिनका चित्त लग रहा था ऐसे राजा लोग परस्पर विचार-कर पुनः रामके पास आये और नमस्कार कर प्रीतिपूर्वक निम्न वचन बोले ॥२०॥ उन्होने कहा कि हे नाथ ! हम विद्वान् हों अथवा मूर्ख ! हम लोगोंपर प्रसन्नता कीजिए। आप देवोके समान कान्तिको धारण करनेवाले है अतः राज्याभिषेककी स्वीकृति दीजिए ॥२१॥ हे पुरुषोत्तम ! आप हमारे नेत्रो तथा अभिषेक सम्बन्धी सुखसे भरे हुए हमारे हृदयकी सफलता करो ॥२२॥ यह सुन रामने कहा कि जहाँ सात गुणोके ऐश्वर्यको धारण करनेवाला राजाओका राजा लक्ष्मण प्रतिदिन हमारे चरणोमे नमस्कार करता है वहाँ हमे राज्यकी क्या आवश्यकता है ? ॥२३॥ इसलिए आप लोगोको मेरे विषयमे इस प्रकारके विरुद्ध वचन नही कहना चाहिए क्योकि इच्छानुसार कार्य करना ही तो राज्य कहलाता है ॥२४॥ कहनेका सार यह है कि आप लोग लक्ष्मणका राज्याभिषेक करो। रामके इस प्रकार कहनेपर सबलोग जयध्वनिके साथ रामका अभिनन्दन कर लक्ष्मणके पास पहुँचे और नमस्कार कर राज्याभिषेक स्वीकृत करनेकी बात बोले। इसके उत्तरमे लक्ष्मण श्रीरामके समीप आये ॥२५॥

तदनन्तर वर्षाऋतुके प्रारम्भमे एकत्रित घनघटाके समान जिनका विशाल शब्द था तथा जिनके प्रारम्भमे शंखोके शब्द हो रहे थे ऐसी भेरियाँ बजायी गयी ॥२६॥ दुन्दुभि, ढक्का, झालर, और उत्तमोत्तम तूर्य, बाँसुरी आदिके शब्दोंसे सहित उच्च शब्द छोड़ रहे थे ॥२७॥ मंगलमय

---

१. सुरलोकसमुद्युति म. । २. विदधत्सफलत्वं नश्च -म. ।

तस्मिन् महोत्सवे जाते स्नानीयासनवर्त्तिनौ । विभूत्या परया युक्तौ संगतौ रामलक्ष्मणौ ॥२९॥
रुक्मकाञ्चननिर्माणैर्नानारत्नमयैस्तथा । कलशैर्युक्तपद्मास्यैरभिषिक्तौ यथाविधि ॥३०॥
मुकुटाङ्गदकेयूरहारकुण्डलभूषितौ । दिव्यस्रग्वस्त्रसंपन्नौ वरालेपनचर्चितौ ॥३१॥
सीरपाणिर्जयत्वेषश्चक्री जयतु लक्ष्मणः । इति तौ जयशब्देन खेचरैरभिनन्दितौ ॥३२॥
राजेन्द्रयोस्तयोः कृत्वा खेचरेन्द्रा महोत्सवम् । गत्वाभिषिषिचुर्देवीं स्वामिनीं नु विदेहजाम् ॥३३॥
महासौभाग्यसंपन्ना पूर्वमेव हि सामवत् । प्रधाना सर्वदेवीनामभिषेकाद् विशेषतः ॥३४॥
आनन्द्य जयशब्देन वैदेहीमभिषेचनम् । ऋद्ध्या चक्रुर्विशल्यायाश्चक्रिपत्नीविभुत्वकृत् ॥३५॥
स्वामिनी लक्ष्मणस्यापि प्राणदानाद् बभूव या । मर्यादामात्रकं तस्यास्तज्जातमभिषेचनम् ॥३६॥
जय त्रिखण्डनाथस्य लक्ष्मणस्याथ सुन्दरि । इति तां जयशब्देन तेऽभिनन्द्य स्थिताः सुखम् ॥३७॥
त्रिकूटशिखरे राज्यं ददौ रामो विभीषणे । सुग्रीवस्य च किष्किन्धे वानरध्वजभूभृतः ॥३८॥
श्रीपर्वते मरुज्जस्य गिरौ श्रीनगरे पुरे । विराधितनरेन्द्रस्य गोत्रक्रमनिषेविते ॥३९॥
महार्णवोर्मिसंतानचुम्बिते बहुकौतुके । कैष्किन्धे च पुरे स्फीतं पतित्वं नलनीलयोः ॥४०॥
विजयार्द्धदक्षिणे स्थाने प्रख्याते रथनूपुरे । राज्यं जनकपुत्रस्य प्रणतोग्रनभश्चरम् ॥४१॥
देवोपगीतनगरे कृतो रत्नजटी नृपः । शेषा अपि यथायोग्यं विषयस्वामिनः कृताः ॥४२॥

सुन्दर गीत, और नाना प्रकारके मनोहर नृत्य उत्तम आनन्द प्रदान कर रहे थे ॥२८॥ इस प्रकार उस महोत्सवके होनेपर परम विभूतिसे युक्त राम और लक्ष्मण साथ ही साथ अभिषेकके आसनपर आरूढ हुए ॥२९॥ तत्पश्चात् जिनके मुख, कमलोसे युक्त थे ऐसे चाँदी, सुवर्ण तथा नाना प्रकारके रत्नोसे निर्मित कलशोके द्वारा विधिपूर्वक उनका अभिषेक हुआ ॥३०॥ दोनो ही भाई मुकुट, अंगद, केयूर, हार और कुण्डलोसे विभूषित किये गये। दोनो ही दिव्य मालाओं और वस्त्रोसे सम्पन्न तथा उत्तमोत्तम विलेपनसे चर्चित किये गये ॥३१॥ जिनके हाथमे हलायुध विद्यमान है ऐसे श्रीराम और जिनके हाथमे चक्ररत्न विद्यमान है ऐसे लक्ष्मणकी जय हो इस प्रकार जय-जयकारके द्वारा विद्याधरोने दोनोका अभिनन्दन किया ॥३२॥ इस प्रकार उन दोनों राजाधिराजोका महोत्सव कर विद्याधर राजाओने स्वामिनी सीतादेवीका जाकर अभिषेक किया ॥३३॥ वह सीतादेवी पहलेसे ही महासौभाग्यसे सम्पन्न थी फिर उस समय भिषेक होनेसे विशेष कर सब देवियोमे प्रधान हो गयी थी ॥३४॥ तदनन्तर जय-जयकारसे सीताका अभिनन्दन कर उन्होने बड़े वैभवके साथ विशल्याका अभिषेक किया। उसका वह अभिषेक चक्रवर्तीकी पट्टराज्ञीके विभुत्वको प्रकट करनेवाला था ॥३५॥ जो विशल्या प्राणदान देनेसे लक्ष्मणकी भी स्वामिनी थी उसका अभिषेक केवल मर्यादा मात्रके लिए हुआ था अर्थात् वह स्वामिनी तो पहलेसे ही थी उसका अभिषेक केवल नियोग मात्र था ॥३६॥ अथानन्तर हे तीन खण्डके अधिपति लक्ष्मणकी सुन्दरि! तुम्हारी जय हो इस प्रकारके जय-जयकारसे उसका अभिनन्दन कर सब राजा लोग सुखसे स्थित हुए ॥३७॥

तदनन्तर श्रीरामने विभीषणके लिए त्रिकूटाचलके शिखरका, वानरवंशियोके राजा सुग्रीवको किष्किन्ध पर्वतका, हनुमानको श्रीपर्वतका, राजा विराधितके लिए उसकी वंश-परम्परासे सेवित श्रीपुर नगर और नल तथा नीलके लिए महासागरकी तरंगोसे चुम्बित अनेक कौतुकोको धारण करनेवाले, किष्किन्धपुरका विशाल साम्राज्य दिया ॥३८-४०॥ भामण्डलके लिए विजयार्ध पर्वतके दक्षिणमे स्थित रथनूपुर नगर नामक प्रसिद्ध स्थानमे उग्र विद्याधरोको नम्रीभूत करनेवाला राज्य दिया ॥४१॥ रत्नजटीको देवोपगीत नगरका राजा बनाया और शेष लोग भी यथायोग्य देशोके स्वामी किये गये ॥४२॥

एवमास्थां समारूढे तस्मिन्नुत्तमतेजसि । विस्मयं परमं प्राप्ता विद्याधरमहेश्वराः ॥१४॥
ततस्तमुद्यतं गन्तुं समुत्सार्य हलायुधः । जगाद दक्षिणामेकां धीर मे यच्छ याचितः ॥१५॥
तमरिघ्नोऽब्रवीद्दाता त्वमनन्यसमो विभुः । याचसे किं ततः श्लाघ्यं परं मेऽन्यद् भविष्यति ॥१६॥
असूनामपि नाथस्त्वं का कथान्यत्र वस्तुनि । युद्धविघ्नं विमुच्यैकं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥१७॥
ध्यात्वा जगाद पद्माभो वत्स कार्यं त्वया मधुः । रहितः शूलरत्नेन क्षोभ्यः छिद्रे सदर्थनात् ॥१८॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा सिद्धान्नत्वा समर्च्य च । ¹भुक्त्वा मातरमागम्य नत्वापृच्छत सुखस्थिताम् ॥१९॥
समीक्ष्य तनयं देवी स्नेहादाघ्राय मस्तके । जगाद जय वत्स त्वं शरैः शत्रुगणं ²शितैः ॥२०॥
वत्समर्धासने कृत्वा वीरसूरगदत् पुनः । वीर दर्शयितव्यं ते पृष्ठं संयति न द्विषाम् ॥२१॥
प्रत्यागतं कृतार्थं त्वां वीक्ष्य जातक संयुगात् । पूजां परां करिष्यामि जिनानां हेमपङ्कजैः ॥२२॥
त्रैलोक्यमङ्गलात्मानः सुरासुरनमस्कृताः । मङ्गलं तव यच्छन्तु जिनरागादयो जिनाः ॥२३॥
संसारप्रभवो मोहो यैर्जितोऽत्यन्तदुर्जयः । अर्हन्तो भगवन्तस्ते भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२४॥
चतुर्गतिविधानं ये देशयन्ति त्रिकालगम् । ददतां ते स्वयंबुद्धास्तव बुद्धिं रिपोर्जये ॥२५॥
करस्थामलकं यद्वल्लोकालोकं स्वतेजसा । पश्यन्तः केवलालोका भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२६॥
कर्मणाष्टप्रकारेण मुक्तास्त्रैलोक्यमूर्द्धगाः । सिद्धाः सिद्धिकरा वत्स भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२७॥
कमलादित्यचन्द्रक्ष्मामन्दराब्धिवियत् समाः । आचार्याः परमाधारा भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२८॥

कहलाऊँ ॥१३॥ इस प्रकार उत्तम तेजका धारक शत्रुघ्न जब पूर्वोक्त प्रतिज्ञाको प्राप्त हुआ तब विद्याधर राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१४॥ तदनन्तर वहाँ जानेके लिए उद्यत शत्रुघ्नको सामनेसे दूर हटाकर श्रीरामने कहा कि हे धीर ! मैं तुझसे याचना करता हूँ तू मुझे एक दक्षिणा दे ॥१५॥ यह सुन शत्रुघ्नने कहा कि असाधारण दाता तो आप ही हैं सो आप ही जब याचना कर रहे हैं तब मेरे लिए इससे बढ़कर अन्य प्रशंसनीय क्या होगा ? ॥१६॥ आप तो मेरे प्राणोंके भी स्वामी हैं फिर अन्य वस्तुकी क्या कथा है ? एक युद्धके विघ्नको छोड़कर कहिए कि मैं आपकी क्या करूँ ? आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥१७॥

तदनन्तर रामने कुछ ध्यान कर उससे कहा कि हे वत्स ! मेरे कहनेसे तू एक बात मान ले। वह यह कि जब मधु शूल रत्नसे रहित हो तभी तू अवसर पाकर उसे क्षोभित करना अन्य समय नहीं ॥१८॥ तत्पश्चात् 'जैसी आपकी आज्ञा हो' यह कहकर तथा सिद्ध परमेष्ठियोंको नमस्कार और उनकी पूजा कर भोजनोपरान्त शत्रुघ्न सुखसे बैठी हुई माताके पास आकर तथा प्रणाम कर पूछने लगा ॥१९॥ रानी सुप्रजाने पुत्रको देखकर उसका मस्तक सूँघा और उसके बाद कहा कि हे पुत्र ! तू तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा शत्रुसमूहको जीते ॥२०॥ वीरप्रसविनी माताने पुत्रको अर्धासन पर बैठाकर पुनः कहा कि हे वीर ! तुझे युद्धमें शत्रुओंको पीठ नहीं दिखाना चाहिए ॥२१॥ हे पुत्र ! तुझे युद्धसे विजयी हो लौटा देखकर मैं सुवर्ण कमलोंसे जिनेन्द्र भगवान्की परम पूजा करूँगी ॥२२॥ जो तीनों लोकोंके लिए मंगल स्वरूप हैं, तथा सुर और असुर जिन्हें नमस्कार करते हैं ऐसे वीतराग जिनेन्द्र तेरे लिए मंगल प्रदान करें ॥२३॥ जिन्होंने संसारके कारण अत्यन्त दुर्जय मोहको जीत लिया है ऐसे अर्हन्त भगवान् तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥२४॥ जो तीन कालसम्बन्धी चतुर्गतिके विधानका निरूपण करते हैं ऐसे स्वयंबुद्ध जिनेन्द्र भगवान् तेरे लिए शत्रुके जीतनेमें बुद्धि प्रदान करें ॥२५॥ जो अपने तेजसे समस्त लोकालोकको हाथपर रखे हुए आमलकके समान देखते हैं ऐसे केवलज्ञानी तुम्हारे लिए मंगलस्वरूप हों ॥२६॥ जो आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित हो त्रिलोक शिखरपर विद्यमान हैं ऐसे सिद्धिके करनेवाले सिद्ध परमेष्ठी, हे वत्स ! तेरे लिए मंगलस्वरूप हों ॥२७॥ जो कमलके समान निर्लिप्त सूर्यके समान,

---

१. भक्त्वा म. । २. तीक्ष्णै. ।

पराक्रमशासनाभिज्ञाः कृतानुगतशासनाः । सदायुष्मन्नुपाध्यायाः[1] कुर्वन्तु तव मङ्गलम् ॥२९॥
तपसा द्वादशाङ्गेन निर्वाणं साधयन्ति ये । भद्र ते साधवः शूरा भवन्तु तव मङ्गलम् ॥३०॥
इति प्रतीष्य[2] विघ्नघ्नी[3]माशिषं दिव्यमङ्गलाम् । प्रणम्य मातरं यातः शत्रुघ्नः सद्मनो बहिः ॥३१॥
हेमकक्षापरीतं स समारूढो महागजम् । रराजाम्बुदपृष्ठस्थः संपूर्ण इव चन्द्रमाः ॥३२॥
नानायानसमारूढैर्नरराजशतैर्वृतः । शुशुभे स वृतो देवैः सहस्रनयनो यथा ॥३३॥
त्रीनावासाननुप्रीतिं भ्रातरं स समागतम् । जगौ पूज्य निवर्त्तस्व द्राग्व्रजाम्यनपेक्षतः ॥३४॥
लक्ष्मणेन धनूरत्नं समुद्रावर्तमर्पितम् । तस्मै ज्वलनवक्त्राश्च शराः पवनरंहसः ॥३५॥
कृतान्तवक्त्रमात्मार्सं नियोज्यास्मै चमूपतिम् । लक्ष्मणेन समं रामश्चिन्तायुक्तो न्यवर्तत ॥३६॥
राजन्नरिघ्नवीरोऽपि महाबलसमन्वितः । मथुरां प्रति याति स्म मधुराजेन पालिताम् ॥३७॥
क्रमेण पुण्यभागायास्तीरं प्राप्य ससंभ्रमम् । सैन्यं न्यवेशयद्दूरमध्वानं समुपागतम् ॥३८॥
कृताशेषक्रियस्तत्र मन्त्रिवर्गो गतश्रमः । चकार संशयापन्नो मन्त्रमत्यन्तसूक्ष्मधीः ॥३९॥
मधुमङ्गकृताशंसां पश्यतास्य धियं शिशोः । केवलं योऽभिमानेन प्रवृत्तो नयवर्जितः ॥४०॥
महावीर्यः पुरा येन मान्धाता निर्जितो रणे । खेचरैरपि दुःसाध्यो जय्यः सोऽस्य कथं मधुः ॥४१॥
[4]चलत्पादाततुङ्गोर्मिशस्त्रग्राहकुलाकुलम् । कथं वाञ्छति बाहुभ्यां तरितुं मधुसागरम् ॥४२॥

तेजस्वी, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक, पृथिवीके समान निश्चल, सुमेरुके समान उन्नत-उदार, समुद्रके समान गम्भीर और आकाशके समान निःसंग हैं तथा परम आधार स्वरूप है ऐसे आचार्य परमेष्ठी तेरे लिए मंगलरूप हो ॥२८॥ जो निज और पर शासनके जाननेवाले है तथा जो अपने अनुगामी जनोको सदा उपदेश करते है ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हे आयुष्मन् ! तेरे लिए मंगलरूप हो ॥२९॥ और जो बारह प्रकारके तपके द्वारा मोक्ष सिद्ध करते है—निर्वाण प्राप्त करते हैं ऐसे शूरवीर साधु परमेष्ठी हे भद्र ! तेरे लिए मंगलस्वरूप हो ॥३०॥ इस प्रकार विघ्नोको नष्ट करनेवाले दिव्य मंगलस्वरूप आशीर्वादको स्वीकृत कर तथा माताको प्रणाम कर शत्रुघ्न घरसे बाहर चला गया ॥३१॥ सुवर्णमयी मालाओसे युक्त महागजपर बैठा शत्रुघ्न मेघपृष्ठपर स्थित पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥३२॥ नाना प्रकारके वाहनोपर आरूढ सैकड़ो राजाओसे घिरा हुआ वह शत्रुघ्न, देवोसे घिरे इन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३३॥ अत्यधिक प्रीतिको धारण करनेवाले भाई राम और लक्ष्मण तीन पड़ाव तक उसके साथ गये थे। तदनन्तर उसने कहा कि हे पूज्य ! आप लौट जाइए, अब मै निरपेक्ष हो शीघ्र ही आगे जाता हूँ ॥३४॥ उसके लिए लक्ष्मणने सागरावर्त नामका धनुषरत्न और वायुके समान वेगशाली अग्निमुख बाण समर्पित किये ॥३५॥ तत्पश्चात् अपनी समानता रखनेवाले कृतान्तवक्त्रको सेनापति बनाकर रामचन्द्रजी चिन्तायुक्त होते हुए लक्ष्मणके साथ वापस लौट गये ॥३६॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! बड़ी भारी सेना अथवा अत्यधिक पराक्रमसे युक्त वीर शत्रुघ्नने मधु राजाके द्वारा पालित मथुराकी ओर प्रयाण किया ॥३७॥ क्रम-क्रमसे पुण्यभागा नदीका तट पाकर उसने दीर्घ मार्गको पार करनेवाली अपनी सेना सम्भ्रम सहित ठहरा दी ॥३८॥ वहाँ जिन्होने समस्त क्रिया पूर्ण की थी, जिनका श्रम दूर हो गया था और जिनकी बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म थी ऐसे मन्त्रियोंके समूहने संशयारूढ हो परस्पर इस प्रकार विचार किया ॥३९॥ कि अहो ! पराजयकी आकांक्षा करनेवाली इस बालककी बुद्धि तो देखो जो नीतिरहित हो केवल अभिमानसे ही युद्धके लिए प्रवृत्त हुआ है ॥४०॥ जो विद्याधरोके द्वारा भी दुःसाध्य था ऐसा महाशक्तिशाली मान्धाता जिसके द्वारा पहले युद्धमे जीता गया था वह मधु इस बालकके द्वारा कैसे जीता जा सकेगा ? ॥४१॥ जिसमे चलते हुए पैदल सैनिकरूपी ऊँची-ऊँची लहरे उठ रही हैं तथा जो

१. सदा युष्मानुपाध्यायाः म । २ प्रतीक्ष्य । ३. विघ्नापहारिणीम् । ४. बलात् ज. ।

पादातसुमहावृक्षं मत्तवारणभीषणम् । प्रविश्य मधुकान्तारं को निःक्रामति जीवितः ॥४३॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य कृतान्तकुटिलोऽवदत् । यूयं भीताः किमित्येवं त्यक्त्वा मानसमुन्नतिम् ॥४४॥
अमोघेन किलारूढो गर्वं शूलेन यद्यपि । हन्तुं तथापि तं शक्तो मधुं शत्रुघ्नसुन्दरः ॥४५॥
करेण बलवान् दन्ती पातयेद्धरणीरुहान् । प्रक्षरद् दानधारोऽपि सिंहेन तु निपात्यते ॥४६॥
लक्ष्मीप्रतापसंपन्नः सत्त्ववान् बलवान् बुधः । सुसहायश्च शत्रुघ्नः शत्रुघ्नो जायते ध्रुवम् ॥४७॥
अथ मन्त्रिजनादेशान् मथुरानगरीं गताः । प्रत्यावृत्य चरा वार्त्तां वदन्ति स्म यथाविधि ॥४८॥
शृणु देवास्ति पूर्वस्यां मथुरा नगरी दिशि । उद्यानं रम्यमत्यन्तं राजलोकसमावृतम् ॥४९॥
मध्येऽमरं[1]कुरोर्यद्वत्कुबेरच्छदसंज्ञितम् । इच्छापूरणसंपन्नं विपुलं राजतेतराम् ॥५०॥
जयन्त्यात्र महादेव्या सहितस्याद्य वर्त्तते । वारीगतगजस्येव स्पर्शवश्यस्य भूभृतः ॥५१॥
कामिनो दिवसः षष्ठस्त्यक्ताशेषान्यकर्मणः । महासुस्थाभिमानस्य प्रमादवशवर्त्तिनः ॥५२॥
प्रतिज्ञां तव नो वेद नागमं कामवश्यधीः । बुधैरुपेक्षितो मोहात्स भिषग्भिः सरोगवत् ॥५३॥
प्रस्तावे यदि नैतस्मिन् मथुराध्यास्यते ततः । अन्यपुंवाहिनीवाहैर्दुःसहः स्यान्मधूदधिः ॥५४॥
वचनं तत्समाकर्ण्य शत्रुघ्नः क्रमकोविदः । ययौ शतसहस्रेण [2]ययूनां मथुरां पुरीम् ॥५५॥

शस्त्ररूपी मगरमच्छोसे व्याप्त है ऐसे मधुरूपी सागरको यह भुजाओंसे कैसे तैरना चाहता है? ॥४२॥ जो पैदल सैनिकरूपी बडे-बड़े वृक्षोंसे युक्त तथा मदोन्मत्त हाथियोसे भयंकर है ऐसे मधुरूपी वनमे प्रवेश कर कौन पुरुप जीवित निकलता है? ॥४३॥ इस प्रकार मन्त्रियोका कहा सुनकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिने कहा कि तुम लोग अभिमानको छोडकर इस तरह भयभीत क्यों हो रहे हो? ॥४४॥ यद्यपि मधु, अमोघ शूलके कारण गर्वपर आरूढ है—अहंकार कर रहा है तथापि शत्रुघ्न उसे मारनेके लिए समर्थ हैं ॥४५॥ जिसके मदकी धारा झर रही है ऐसा बलवान् हाथी यद्यपि अपनी सूँडसे वृक्षोको गिरा देता है तथापि वह सिंहके द्वारा मारा जाता है ॥४६॥ यतश्च शत्रुघ्न लक्ष्मी और प्रतापसे सहित है, धैर्यवान् है, बलवान् है, बुद्धिमान् है, और उत्तम सहायकोसे युक्त है इसलिए अवश्य ही शत्रुको नष्ट करनेवाला होगा ॥४७॥

अथानन्तर मन्त्रिजनोके आदेशसे जो गुप्तचर मथुरा नगरी गये थे उन्होने लौटकर विधिपूर्वक यह समाचार कहा कि हे देव! सुनिए, यहाँसे उत्तर दिशामे मथुरा नगरी है। वहाँ नगरके बाहर राजलोकसे घिरा हुआ एक अत्यन्त सुन्दर उद्यान है ॥४८–४९॥ सो जिस प्रकार देवकुरुके मध्यमे इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला कुबेरच्छन्द नामका विशाल उपवन सुशोभित है उसी प्रकार वहाँ वह उद्यान सुशोभित है ॥५०॥ अपनी जयन्ती नामक महादेवीके साथ राजा मधु इसी उद्यानमे निवास कर रहा है। जिस प्रकार हथिनीके वशमें हुआ हाथी बन्धनमे पड़ जाता है उसी प्रकार राजा मधु भी महादेवीके वशमें हुआ बन्धनमे पड़ा है ॥५१॥ वह राजा अत्यन्त कामी है, उसने अन्य सब काम छोड़ दिये हैं, वह महा अभिमानी है तथा प्रमादके वशीभूत है। उसे उद्यानमे रहते हुए आज छठा दिन है ॥५२॥ जिसकी बुद्धि कामके वशीभूत है ऐसा वह मधु राजा, न तो तुम्हारी प्रतिज्ञाको जानता है और न तुम्हारे आगमनका ही उसे पता है। जिस प्रकार वैद्य किसी रोगीकी उपेक्षा कर देते हैं उसी प्रकार मोहकी प्रबलतासे विद्वानोने भी उसकी उपेक्षा कर दी है ॥५३॥ यदि इस समय मथुरापर अधिकार नहीं किया जाता है तो फिर वह मधुरूपी सागर अन्य पुरुषोकी सेनारूपी नदियोके प्रवाहसे दुःसह हो जायेगा—उसका जीतना कठिन हो जायेगा ॥५४॥ गुप्तचरोंके यह वचन सुनकर क्रमके जाननेमें निपुण शत्रुघ्न एक लाख घोड़ा लेकर मथुराकी ओर चला ॥५५॥

१. देवकुरो- । २. अश्वानाम् ।

अर्द्धरात्रे व्यतीतेऽसौ परलोके प्रमादिनि । निवृत्य प्राविशद्द्वारस्थानं लब्धमहोदयः ॥५६॥
आसीद् योगीव शत्रुघ्न द्वारं कर्मेव चूर्णितम् । प्रासात्यन्तमनोज्ञा च मथुरा सिद्धिभूरिव ॥५७॥
देवो जयति शत्रुघ्नः श्रीमान् दशरथात्मजः । बन्दिनामिति वक्त्रेभ्यो महान्नादः समुद्ययौ ॥५८॥
परेणाथ समाक्रान्तां विज्ञाय नगरी जनः । लङ्कायामङ्गदप्राप्तौ यथा क्षोभमितो भयात् ॥५९॥
त्रासात्तरलनेत्राणां स्त्रीणामाकुलताजुषाम् । सद्यः प्रचलिता गर्भा हृदयेन समं भृशम् ॥६०॥
महाकलकलारावप्रेरणे प्रतिबोधिनः । उद्ययुः सहसा शूराः सिंहा इव भयोज्झिताः ॥६१॥
विध्वस्य शब्दमात्रेण शत्रुलोकं मधोर्गृहम् । सुप्रमातनयोऽविक्षदत्यन्तोर्जितविक्रमः ॥६२॥
तत्र दिव्यायुधाकीर्णां सुतेजाः परिपालयन् । शालामवस्थितः प्रीतो यथार्हं समितोदयः ॥६३॥
मधुराभिर्मनोज्ञाभिर्भारतीभिरशेषतः । नीतो लोकः समाश्वासं जहौ त्राससमागमम् ॥६४॥
शत्रुघ्नं मथुरां ज्ञात्वा प्रविष्टं मधुसुन्दरः । निरैद् रावणवत्कोपादुद्यानात् स महाबलः ॥६५॥
शत्रुघ्नरक्षितं स्थानं प्रवेष्टुं मधुपार्थिवः । निर्ग्रन्थरक्षितं मोहो यथा शक्नोति नो तदा ॥६६॥
प्रवेशं विविधोपायैरलब्ध्वाप्यभिमानवान् । रहितश्चापि शूलेन न सन्धिं वृणुते मधुः ॥६७॥
असहन्तः परानीकं द्रष्टुं दर्पसमुद्धुरम् । शत्रुघ्नसैनिकाः सैन्यात् स्वस्मान्निर्ययुरश्विनः ॥६८॥
तत्राहवसमारम्भे शात्रुघ्नं सकलं बलम् । प्राप्तं जातश्च संयोगस्तयोः सैन्यसमुद्रयोः ॥६९॥
रथेभसादिपादाताः समर्था विविधायुधाः । रथेभैः सादिपादातैरालग्नाः सह वेगिभिः ॥७०॥

तदनन्तर अर्धरात्रि व्यतीत होनेपर जब सब लोग आलस्यमे निमग्न थे, तब महान् ऐश्वर्यको प्राप्त हुए शत्रुघ्नने लौटकर मथुराके द्वारमे प्रवेश किया ॥५६॥ वह शत्रुघ्न योगीके समान था, द्वार कर्मोके समूहके समान चूर-चूर हो गया था, और अत्यन्त मनोहर मथुरा नगरी सिद्ध भूमिके समान थी ॥५७॥ 'राजा दशरथके पुत्र शत्रुघ्नकी जय हो' इस प्रकार वन्दीजनोके मुखोसे बड़ा भारी शब्द उठ रहा था ॥५८॥

अथानन्तर जिस प्रकार लकामे अगदके पहुँचनेपर लकाके निवासी लोग भयसे क्षोभको प्राप्त हुए थे उसी प्रकार नगरी शत्रुके द्वारा आक्रान्त जान मथुरावासी लोग भयसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥५९॥ भयके कारण जिनके नेत्र चचल हो रहे थे तथा जो आकुलताको प्राप्त थी ऐसी स्त्रियोके गर्भ उनके हृदयके साथ-साथ अत्यन्त विचलित हो गये ॥६०॥ महा कलकल शब्दकी प्रेरणा होनेपर जो जाग उठे थे ऐसे निर्भय शूर-वीर सिहोके समान सहसा उठ खडे हुए ॥६१॥ तत्पश्चात् अत्यन्त प्रबल पराक्रमको धारण करनेवाला शत्रुघ्न, शब्दमात्रसे ही शत्रु-समूहको नष्ट कर राजा मधुके घरमे प्रविष्ट हुआ ॥६२॥ वहाँ वह अतिशय प्रतापी शत्रुघ्न दिव्य शस्त्रोसे व्याप्त आयुधशालाकी रक्षा करता हुआ स्थित था। वह प्रसन्न था तथा यथायोग्य अभ्युदयको प्राप्त था ॥६३॥ वह मधुर तथा मनोज्ञ वाणीके द्वारा सबको सान्त्वना प्राप्त कराता था इसलिए सबने भयका परित्याग किया था ॥६४॥ तदनन्तर शत्रुघ्नको मथुरामे प्रविष्ट जानकर वह महाबलवान् मधुसुन्दर रावणके समान क्रोधवश उद्यानसे बाहर निकला ॥६५॥ उस समय जिस प्रकार निर्ग्रन्थ मुनिके द्वारा रक्षित आत्मामे मोह प्रवेश करनेके लिए समर्थ नही है उसी प्रकार शत्रुघ्नके द्वारा रक्षित अपने स्थानमे राजा मधु प्रवेश करनेके लिए समर्थ नही हुआ ॥६६॥ यद्यपि मधु नाना उपाय करनेपर भी मथुरामे प्रवेशको नही पा रहा था, और शूलसे रहित था तथापि वह अभिमानी होनेके कारण शत्रुघ्नसे सन्धिकी प्रार्थना नही करता था ॥६७॥ तत्पश्चात् अहकारसे उत्कट शत्रु सेनाको देखनेके लिए असमर्थ हुए शत्रुघ्नके घुडसवार सैनिक अपनी सेनासे बाहर निकले ॥६८॥ वहाँ युद्ध प्रारम्भ होते-होते शत्रुघ्नकी समस्त सेना आ पहुँची और दोनो ही पक्षकी सेनारूपी सागरोके बीच सयोग हो गया अर्थात् दोनो ही सेनाओमे मुठभेड़ शुरू हुई ॥६९॥ उस समय शक्तिसे सम्पन्न तथा नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले रथ, हाथी तथा घोड़ोके

असहन्परसैन्यस्य दर्पं रौद्रमहास्वनम् । कृतान्तकुटिलोऽविक्षद् वेगवानाहितं बलम् ॥७१॥
अवारितगतिस्तत्र रणे क्रीडां चकार सः । स्वयम्भूरमणोद्याने त्रिविष्टपपतिर्यथा ॥७२॥
अथ तं गोचरीकृत्य कुमारो लवणार्णवः । बाणैर्घन इवाम्भोभिस्तिरश्चक्रे महीधरम् ॥७३॥
सोऽप्याकर्णसमाकृष्टैः शरैराशीविषप्रभैः । चिच्छेद सायकानस्य तैश्च व्याप्तं महीनभः ॥७४॥
अन्योन्यं विरथीकृत्य सिंहाविव बलोत्कटौ । करिपृष्ठसमारूढौ सरोषौ चक्रतुर्युधम् ॥७५॥
विताडितः कृतान्तः स प्रथमं वक्षसीपुणा । चकार कवचं शत्रुं शरैरस्त्रैरनन्तरम् ॥७६॥
ततस्तोमरमुद्यम्य कृतान्तवदनं पुनः । लवणोऽताडयत् क्रोधविस्फुरल्लोचनद्युतिः ॥७७॥
स्वशोणितनिषेकाक्तौ महासंरम्भवर्तिनौ । किंशुकानोकहच्छायौ प्रवीरौ तौ विरेजतुः ॥७८॥
गदासिचक्रसंपातो बभूव तुमुलस्तयोः । परस्परबलोन्मादविषादकरणोत्कटः ॥७९॥
दत्तयुद्धश्चिरं शक्त्या ताडितो लवणार्णवः । वक्षस्यपासृतः क्षोणीं स्वर्गीव सुकृतक्षयात् ॥८०॥
पतितं तनयं वीक्ष्य मधुराहवमस्तके । धावन् कृतान्तवक्राय शत्रुघ्नेन विशब्दितः ॥८१॥
शत्रुघ्नगिरिणा रुद्धो मधुवाहो व्यवर्द्धत । गृहीतः शोककोपाभ्यां दुःसहाभ्यामुपक्रमन् ॥८२॥
दृष्टिमाशीविषस्येव तस्याशक्तं निरीक्षितुम् । सैन्यं व्यद्रवदत्युग्राद् वाताद् वानदलौघवत् ॥८३॥
तस्याभिमुखमालोक्य व्रजन्तं[1] सुप्रजः सुतम् । अभिमानसमारूढा योधाः प्रत्यागता मुहुः ॥८४॥

सवार एवं पैदल सैनिक, वेगशाली रथ, हाथी तथा घोड़ोंके सवारो एवं पैदल सैनिकोंके साथ भिड़ गये ॥७०॥ शत्रु सेनाके भयंकर शब्द करनेवाले दर्पको सहन नही करता हुआ कृतान्तवक्र बड़े वेगसे शत्रुकी सेनामे जा घुसा ॥७१॥ सो जिस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्रमे इन्द्र विना किसी रोक-टोकके क्रीड़ा करता है उसी प्रकार वह कृतान्तवक्र भी बिना किसी रोक-टोकके युद्धमें क्रीड़ा करने लगा ॥७२॥ तदनन्तर जिस प्रकार मेघ, जलके द्वारा महापर्वतको आच्छादित करता है उसी प्रकार मधुसुन्दरके पुत्र लवणार्णवने, कृतान्तवक्रका सामना कर उसे बाणोसे आच्छादित किया ॥७३॥ इधर कृतान्तवक्रने भी, कान तक खिचे हुए सर्प तुल्य बाणोके द्वारा उसके बाण काट डाले और उनसे पृथिवी तथा आकाशको व्याप्त कर दिया ॥७४॥ सिंहोके समान बलसे उत्कट दोनो योद्धा परस्पर एक दूसरेके रथ तोड़कर हाथीकी पीठ पर आरूढ़ हो क्रोध सहित युद्ध करने लगे ॥७५॥ प्रथम ही लवणार्णवने कृतान्तवक्रके वक्षस्थलपर बाणसे प्रहार किया सो उसके उत्तरमें कृतान्तवक्रने भी बाणो तथा शस्त्रोंके प्रहारसे शत्रु और कवचको अन्तरसे रहित कर दिया अर्थात् शत्रुका कवच तोड़ डाला ॥७६॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसके नेत्रोंकी कान्ति देदीप्यमान हो रही थी ऐसे लवणार्णवने तोमर उठाकर कृतान्तवक्रपर पुनः प्रहार किया ॥७७॥ जो अपने रुधिरके निषेकसे युक्त थे तथा महाक्रोध पूर्वक जो भयकर युद्ध कर रहे थे ऐसे दोनो वीर फूले हुए पलाश वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ उन दोनोके बीच, अपनी-अपनी सेनाके हर्ष-विषाद करनेमे उत्कट गदा, खड्ग और चक्र नामक शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा हो रही थी ॥७९॥ तदनन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जिसके वक्षःस्थलपर शक्ति नामक शस्त्रसे प्रहार किया गया था ऐसा लवणार्णव पृथिवीपर इस प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार कि पुण्य क्षय होनेसे कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥८०॥

रणाग्र भागमे पुत्रको गिरा देख मधु कृतान्तवक्रको लक्ष्य कर दौड़ा परन्तु शत्रुघ्नने उसे बीचमे धर ललकारा ॥८१॥ जो दुःखसे सहन करने योग्य शोक और क्रोधके वशीभूत था ऐसा मधुरूपी प्रवाह शत्रुघ्नरूपी पर्वतसे रुककर समीपमे वृद्धिको प्राप्त हुआ ॥८२॥ आशीविष सर्पके समान उसकी दृष्टिको देखनेके लिए असमर्थ हुई शत्रुघ्नकी सेना उस प्रकार भाग उठी जिस प्रकार कि तीक्ष्ण वायुसे सूखे पत्तोंका समूह भाग उठता है ॥८३॥ तदनन्तर शत्रुघ्नको उसके

1 शत्रुघ्नम् ।

तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्गं भीत्यानुगामिनः । यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विकचाननम् ॥८५॥
अथोत्तमरथारूढो दिव्यं कार्मुकमाश्रयन् । हारराजितवक्षस्को मुकुटी लोलकुण्डलः ॥८६॥
शरदादित्यसंकाशो निःप्रत्यूहगतिः प्रभुः । व्रजन्नभिमुखः शत्रोरत्युग्रक्रोधसंगतः ॥८७॥
तदा शतानि योधानां बहूनि दहति क्षणात् । संशुष्कपत्रकूटानि यथा दावोऽरिमर्दनः ॥८८॥
न कश्चिदग्रतस्तस्य रणे वीरोऽवतिष्ठते । जिनशासनवीरस्य यथान्यमतदूषितः ॥८९॥
योऽपि तेन समं योद्धुं कश्चिद् वाञ्छति मानवान् । सोऽपि दन्तीव सिंहाग्रे विध्वंसं व्रजति क्षणात् ॥९०॥
उन्मत्तसदृशं जातं तत्सैन्यं परमाकुलम् । निपतत्क्षतभूयिष्ठं मधुं शरणमाश्रितम् ॥९१॥
रंहसा गच्छतस्तस्य मधुश्चिच्छेद [1]केतनम् । रथाश्वास्तस्य तेनापि विलुप्ताः क्षुरसायकैः ॥९२॥
ततः संभ्रान्तचेतस्को मधुः क्षितिधरोपमम् । वारणेन्द्रं समारुह्य क्रोधज्वलितविग्रहः ॥९३॥
प्रच्छादयितुमुद्युक्तः शरैरन्तरवर्जितैः । महामेघ इवादित्यबिम्बं दशरथात्मजः ॥९४॥
छिन्दानेन शरान् बद्धकवचं तस्य पुष्कलः । रणप्राघूर्णकाचारः कृतः शत्रुघ्नसूरिणा ॥९५॥
अथ शूलायुधत्यक्तं ज्ञात्वात्मानं निबोधवान् । सुतमृत्युमहाशोको वीक्ष्य शत्रुं सुदुर्जयम् ॥९६॥
बुद्ध्वात्मनोऽवसानं च कर्म च क्षीणमूर्जितम् । नैर्ग्रन्थ्यं वचनं धीरः स्मारानुशयान्वितः ॥९७॥

सामने जाते देख जो अभिमानी योद्धा थे वे पुनः लौट आये ॥८४॥ सो ठीक ही है क्योंकि अनुगामी सैनिक भयसे तभी तक पराजयको प्राप्त होते हैं जबतक कि वे सामने प्रसन्नमुख स्वामीको नहीं देख लेते हैं ॥८५॥

अथानन्तर जो उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ दिव्य धनुषको धारण कर रहा था, जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था, जो सिरपर मुकुट धारण किये हुए था, जिसके कुण्डल हिल रहे थे, जो शरत् ऋतुके सूर्यके समान देदीप्यमान था, जिसकी चालको कोई रोक नहीं सकता था, जो सब प्रकारसे समर्थ था, और अत्यन्त तीक्ष्ण क्रोधसे युक्त था ऐसा शत्रुघ्न शत्रुके सामने जा रहा था ॥८६-८७॥ जिस प्रकार दावानल, सूखे पत्तोंकी राशिको क्षण-भरमें जला देता है उसी प्रकार शत्रुओंको नष्ट करनेवाला वह शत्रुघ्न सैकड़ों योधाओंको क्षण-भरमें जला देता था ॥८८॥ जिस प्रकार जिनशासनमें निपुण विद्वान्के सामने अन्य मतसे दूषित मनुष्य नहीं ठहर पाता है उसी प्रकार कोई भी वीर युद्धमें उसके आगे नहीं ठहर पाता था ॥८९॥ जो कोई भी मानी मनुष्य, उसके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करता था वह सिंहके आगे हाथीके समान क्षण-भरमें विनाशको प्राप्त हो जाता था ॥९०॥ जो उन्मत्तके समान अत्यन्त आकुल थी तथा जो अधिकांश घायल होकर गिरे हुए योद्धाओंसे प्रचुर थी ऐसी राजा मधुकी सेना मधुकी शरणमें पहुँची ॥९१॥

अथानन्तर मधुने वेगसे जाते हुए शत्रुघ्नकी ध्वजा काट डाली और शत्रुघ्नने भी क्षुराके समान तीक्ष्ण बाणोंसे उसके रथ और घोड़े छेद दिये ॥९२॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त सम्भ्रान्त था, और जिसका शरीर क्रोधमें प्रज्वलित हो रहा था ऐसा मधु पर्वतके समान विशाल गजराजपर आरूढ़ होकर निकला ॥९३॥ सो जिस प्रकार महामेघ सूर्यके बिम्बको आच्छादित कर लेता है उसी प्रकार मधु भी निरन्तर छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुघ्नको आच्छादित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥९४॥ इधर चतुर शत्रुघ्नने भी उसके बाण और कसे हुए कवचको छेदकर रणके पाहुनेका जैसा सत्कार होना चाहिए वैसा पुष्कलताके साथ उसका सत्कार किया अर्थात् खूब खबर ली ॥९५॥

अथानन्तर जो अपने आपको शूल नामक शस्त्रसे रहित जानकर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ था तथा पुत्रकी मृत्युका महाशोक जिसे पीड़ित कर रहा था ऐसे मधुने शत्रुको दुर्जेय देखकर विचार किया कि अब मेरा अन्त होनेवाला है। भाग्यकी बात कि उसी समय उसके प्रबल

---

१. काननम् म.।

अशाश्वते समस्तेऽस्मिन्नारम्भे दुःखदायिनि । कर्मैकमेव संसारे शस्यते धर्मकारणम् ॥९८॥
नृजन्म सुकृती प्राप्य धर्मे दत्ते न यो मतिम् । स मोहकर्मणा जन्तुर्वञ्चितः परमार्थत ॥९९॥
ध्रुवं पुनर्भवं ज्ञात्वा पापेनात्महितं मया । न कृतं स्ववशे काले धिङ्मां मूढं प्रमादिनम् ॥१००॥
आत्माधीनस्य पापस्य कथं जाता न मे सुधी. । पुरस्कृतोऽरिणेदानीं किं करोमि हताशकः ॥१०१॥
प्रदीप्ते भवने कीदृक् तडागखननादरः । को वा भुजङ्गदष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥१०२॥
सर्वथा यावदेतस्मिन् समये स्वार्थकारणम् । शुभं मनःसमाधानं कुर्वे तावदनाकुलः ॥१०३॥
अर्हद्भ्योऽथ विमुक्तेभ्य आचार्येभ्यस्तथा त्रिधा । उपाध्यायगुरुभ्यश्च साधुभ्यश्च नमो नमः ॥१०४॥
अर्हन्तोऽथ विमुक्ताश्च साधव. केवलीरितः । धर्मश्च मङ्गलं शश्वदुत्तमं मे चतुष्टयम् ॥१०५॥
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु त्रिपञ्चार्जनभूमिषु[1] । अर्हतां लोकनाथानामेषोऽस्मि प्रणतस्त्रिधा[2] ॥१०६॥
यावज्जीवं सहावद्यं योगं मुञ्चे न चात्मकम् । निन्दामि च पुरोपात्तं प्रत्याख्यानपरायणः ॥१०७॥
अनादौ भवकान्तारे यन्मया समुपार्जितम् । मिथ्या दुष्कृतमेतन्मे स्थितोऽहं तत्त्वसंगतौ ॥१०८॥
व्युत्सृजाम्येष हातव्यमुपादेयमुपाददे । ज्ञ.नं दर्शनमात्मा मे शेषं संयोगलक्षणम् ॥१०९॥
संस्तरः परमार्थेन न तृणं न च भू. शुभा । मत्या कलुषया मुक्तो जीव एव हि संस्तरः ॥११०॥
एवं सद्ध्यानमारुह्य त्यक्त्वा ग्रन्थं द्वयात्मकम् । द्रव्यतो गजपृष्ठस्थो मधु. केशानपातयत् ॥१११॥

कर्मका उदय क्षीण हो गया जिससे उसने बड़ी धीरता और पश्चात्तापके साथ दिगम्बर मुनियोके वचनका स्मरण किया ॥९६–९७॥ वह विचार करने लगा कि यह समस्त आरम्भ क्षणभंगुर तथा दुःख देनेवाला है। इस संसारमे एक वही कार्य प्रशंसा योग्य है जो धर्मका कारण है ॥९८॥ जो पुण्यात्मा प्राणी मनुष्य जन्म पाकर धर्ममे बुद्धि नही लगाता है वह यथार्थमें मोह कर्मके द्वारा ठगा गया है ॥९९॥ पुनर्जन्म अवश्य ही होगा ऐसा जानकर भी मुझ पापीने उस समय अपना हित नही किया जिस समय कि काल अपने अधीन था अतः प्रमाद करनेवाले मुझ मूर्खको धिक्कार है ॥१००॥ मै पापी जब स्वाधीन था तब मुझे सद्बुद्धि क्यो नही उत्पन्न हुई ? अब जब कि शत्रु मुझे अपने सामने किये हुए है तब मैं अभागा क्या करूँ ? ॥१०१॥ जब भवन जलने लगता है तब कुआँ खुदवानेके प्रति आदर कैसा ? और जिसे साँपने डस लिया है उसे मन्त्र सिद्ध करनेका समय क्या है ? अर्थात् ये सब कार्य तो पहलेसे करनेके योग्य होते हैं ॥१०२॥ इस समय तो सब प्रकारसे यही उचित जान पड़ता है कि मैं निराकुल हो मनका शुभ समाधान करूँ क्योकि वही आत्महितका कारण है ॥१०३॥ अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँचो परमेष्ठियोंके लिए मन, वचन, कायसे बार-बार नमस्कार हो ॥१०४॥ अर्हन्त, सिद्ध, साधु और केवली भगवान्के द्वारा कहा हुआ धर्म ये चारों पदार्थ मेरे लिए सदा मंगलस्वरूप है ॥१०५॥ अढ़ाई द्वीप सम्बन्धी पन्द्रह कर्मभूमियोमे जितने अर्हन्त है मै उन सबको मन, वचन, कायसे नमस्कार करता हूँ ॥१०६॥ मै जीवन पर्यन्तके लिए सावद्य योगका त्याग करता हूँ उसके विपरीत शुद्ध आत्माका त्याग नही करता हूँ तथा प्रत्याख्यानमे तत्पर होकर पूर्वोपार्जित पाप-कर्मकी निन्दा करता हूँ ॥१०७॥ इस आदिरहित संसाररूप अटवीमे मैने जो पाप किया है वह मिथ्या हो। अब मै तत्त्वविचार करनेमे लीन होता हूँ ॥१०८॥ यह मै छोडने योग्य समस्त कार्योको छोड़ता हूँ और ग्रहण करने योग्य कार्यको ग्रहण करता हूँ, ज्ञानदर्शन ही मेरी आत्मा है, परपदार्थके संयोगसे होनेवाले अन्य भाव सब पर-पदार्थ है ॥१०९॥ समाधिमरणके लिए यथार्थमे न तृण ही साँथरा है और न उत्तम भूमि ही साँथरा है किन्तु कलुषित बुद्धिसे रहित आत्मा ही उत्तम साँथरा है ॥११०॥ इस प्रकार समीचीन ध्यानपर आरूढ़ हो उसने अन्तरग

---

१. पञ्चदशकर्मभूमिषु । २ प्रणतीस्त्रिधा म ।

गाढक्षतशरीरोऽसौ धृतिं परमदुर्धराम् । अध्यासीन. कृतोत्सर्गः कायादेः सुविशुद्धधी. ॥११२॥
शत्रुघ्नोऽपि तदागत्य नमस्कारपरायणः । क्षन्तव्यं च त्वया साधो मम दुष्कृतकारिणः ॥११३॥
अमराप्सरसः संख्यं[1] निरीक्षितुमुपागताः । पुष्पाणि मुमुचुस्तस्मै विस्मिता भावतत्पराः ॥११४॥

उपजातिवृत्तम्

ततः समाधिं समुपेत्य कालं कृत्वा मधुस्तत्क्षणमात्रकेण ।
महासुखाम्भोधिनिमग्नचेताः सनत्कुमारे विबुधोत्तमोऽभूत् ॥११५॥
शत्रुघ्नवीरोऽप्यभवत्कृतार्थो विवेश मोदी मथुरां सुतेजा. ।
स्थितश्च तस्यां गजसञ्ज्ञितायां पुरीव मेघेश्वरसुन्दरोऽसौ ॥११६॥
एव जनस्य स्वविधानभाजो भवे भवत्यात्मनि दिव्यरूपम् ।
तस्मात् सदा कर्म शुभ कुरुध्वं रवे. परां येन रुचिं प्रयाता.[2] ॥११७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मधुसुन्दरवधाभिधान नाम नवाशीतितम पर्व ॥८९॥



तथा बहिरंग दोनो प्रकारके परिग्रह छोड दिये और बाह्यमे हाथीपर बैठे बैठे ही उसने केश उखाड़कर फेंक दिये ॥१११॥ यद्यपि उसके शरीरमे गहरे घाव लग रहे थे, तथापि वह अत्यन्त दुर्धर धैर्यको धारण कर रहा था। उसने शरीर आदिकी ममता छोड़ दी थी और अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि धारण की थो ॥११२॥ जब शत्रुघ्नने यह हाल देखा तब उसने आकर उसे नमस्कार किया और कहा कि हे साधो ! मुझ पापोके लिए क्षमा कीजिए ॥११३॥ उस समय जो अप्सराएँ युद्ध देखनेके लिए आयी थी उन्होने आश्चर्यसे चकित हो विशुद्ध भावनासे उसपर पुष्प छोड़े ॥११४॥ तदनन्तर समाधिमरण कर मधु क्षण मात्रमे ही जिसका हृदय उत्तम सुखरूपी सागरमे निमग्न था ऐसा सनत्कुमार स्वर्गमे उत्तम देव हुआ ॥११५॥ इधर वीर शत्रुघ्न भी कृतकृत्य हो गया। अब उत्तम तेजके धारक उस शत्रुघ्नने बड़ी प्रसन्नतासे मथुरामे प्रवेश किया और जिस प्रकार हस्तिनापुरमे मेघेश्वर—जयकुमार रहते थे उसी प्रकार वह मथुरामे रहने लगा ॥११६॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! इस प्रकार समाधि धारण करनेवाले पुरुष जो भव धारण करते है उसमे उन्हे दिव्य रूप प्राप्त होता है इसलिए हे भव्य जनो ! सदा शुभ कार्य ही करो जिससे सूर्यसे भी अधिक उत्कृष्ट कान्तिको प्राप्त हो सको ॥११७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मधुसुन्दरके वधका वर्णन करनेवाला नवासीवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥८९॥



१ सख्य म. । २ प्रयात म ।

नवतितमं पर्व

ततोऽरिघ्नानुभावेन विफलं तेजसोज्झितम् । अमोघमपि तद्दिव्यं शूलरत्नं विधिच्युतम् ॥१॥
वहन् खेदं च शोकं च त्रपां च जवमुक्तवत । स्वामिनोऽसुरनाथस्य चमरस्यान्तिकं ययौ ॥२॥
मरणे कथिते तेन मधोश्चमरपुङ्गवः । आहत खेदशोकाभ्यां तत्सौहार्दगतस्मृतिः ॥३॥
रसातलात्समुत्थाय त्वरावानतिभासुरः । प्रवृत्तो मथुरा गन्तुमसौ मन्युसंगतः ॥४॥
भ्राम्यन्नथ सुपर्णेन्द्रो वेणुदारी[1] तमैक्षत । अपृच्छच्च क्व दैत्येन्द्र गमनं प्रस्तुतं त्वया ॥५॥
[2]ऊचेऽसौ परमं मित्रं येन मे निहतं मधुः । सज्जनस्यास्य वैषम्यं विधातुमहमुद्यतः ॥६॥
सुपर्णेशो जगौ किं न विशल्यासंभवं त्वया । माहात्म्यं निहितं कर्णे येनैवमभिलष्यसि ॥७॥
जगादासावतिक्रान्ता. कालास्ते परमाद्भुता. । अचिन्त्यं येन माहात्म्यं विशल्यायास्तथाविधम् ॥८॥
कौमारव्रतयुक्तासावासीदद्भुतकारिणी । योगेन जनितेदानीं निर्विषेव भुजङ्गिका ॥९॥
नियताचारयुक्ताना प्रभवन्ति मनीषिणाम् । भावा निरतिचाराणां श्लाघ्या. पूर्वकपुण्यजाः ॥१०॥
जितं विशल्यया तावद् गर्वमाश्रितया परम् । यावन्नारायणस्यास्यं न दृष्टं मदनावहम् ॥११॥
सुरासुरपिशाचाद्या बिभ्यति [3]व्रतचारिणाम् । तावद् यावन्न ते तीक्ष्णं निश्चयासि [4]जहत्यहो ॥१२॥

अथानन्तर मधु सुन्दरका वह दिव्य शूल रत्न यद्यपि अमोघ था तथापि शत्रुघ्नके प्रभावसे निष्फल हो गया था, उसका तेज छूट गया था और वह अपनी विधिसे च्युत हो गया था ॥१॥ अन्तमे वह खेद, शोक और लज्जाको धारण करता हुआ निर्वेगकी तरह अपने स्वामी असुरोंके अधिपति चमरेन्द्रके पास गया ॥२॥ शूल रत्नके द्वारा मधुके मरणका समाचार कहे जानेपर उसके सौहार्दका जिसे बार-बार स्मरण आ रहा था ऐसा चमरेन्द्र खेद और शोकसे पीड़ित हुआ ॥३॥ तदनन्तर वेगसे युक्त, अत्यन्त देदीप्यमान और क्रोधसे सहित वह चमरेन्द्र पातालसे उठकर मथुरा जानेके लिए उद्यत हुआ ॥४॥ अथानन्तर भ्रमण करते हुए गरुड़कुमार देवोंके इन्द्र वेणुदारीने चमरेन्द्रको देखा और देखकर उससे पूछा कि हे दैत्यराज ! तुमने कहाँ जानेकी तैयारी की है ? ॥५॥ तब चमरेन्द्रने कहा कि जिसने मेरे परम मित्र मधु सुन्दरको मारा है उस मनुष्यकी विषमता करनेके लिए यह मैं उद्यत हुआ हूँ ॥६॥ इसके उत्तरमे गरुड़ेन्द्रने कहा कि क्या तुमने कभी विशल्याका माहात्म्य कर्णमे धारण नही किया—नही सुना जिससे कि ऐसा कह रहे हो ? ॥७॥ यह सुन चमरेन्द्रने कहा कि अब अत्यन्त आश्चर्यको करनेवाला वह समय व्यतीत हो गया जिस समय कि विशल्याका वैसा अचिन्त्य माहात्म्य था ॥८॥ जब वह कौमार व्रतसे युक्त थी तभी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थी अब इस समय तो नारायणके संयोगसे वह विष-रहित भुजंगीके समान हो गयी है ॥९॥ जो मनुष्य नियमित आचारका पालन करते हैं, बुद्धिमान् हैं तथा सब प्रकारके अतिचारोसे रहित हैं उन्हीके पूर्व पुण्यसे उत्पन्न हुए प्रशंसनीय भाव अपना प्रभाव दिखाते हैं ॥१०॥ अत्यधिक गर्वको धारण करनेवाली विशल्याने तभी तक विजय पायी है जबतक कि उसने काम चेष्टाको धारण करनेवाला नारायणका मुख नही देखा था ॥११॥ व्रतका आचरण करनेवाले मनुष्योसे सुर-असुर तथा पिशाच आदि तभी तक डरते हैं जबतक कि वे निश्चय रूपी तीक्ष्ण खड्गको नही छोड़ देते है ॥१२॥ जो मनुष्य मद्य-मांससे निवृत्त है, सैकड़ो प्रतिपक्षियोको नष्ट करनेवाले उसके अन्तरको दुष्ट जीव तबतक नही लांघ सकते जबतक कि इसके नियमरूपी कोट विद्यमान रहता है ॥१३॥ रुद्रोमे एक कालाग्नि नामक भयंकर

१. वेणुधारी म । २ क. पुस्तके एष श्लोको नास्ति । ३ प्रतिचारिणा म. । ४ जहत्यहो म., ज. ।

मद्यामिषनिवृत्तस्य तावदूध्वस्तशतान्तरम् । लङ्घयन्ति न दुःखवा यावत् सालोऽस्य नैयमः ॥१३॥
कालाग्निर्नाम रुद्राणां दारुणो न श्रुतस्त्वया । सक्तो दयितया साकं निर्विद्यो निधने गतः ॥१४॥
व्रज वा किं तवैतेन कुरु कृत्यं मनीषितम् । ज्ञास्यामि स्वयमेवाहं कर्त्तव्यं मित्रविद्विषः ॥१५॥
इत्युक्त्वा खं व्यतिक्रम्य मथुरायां सुदुर्मनाः । ऐक्षतोत्सवमत्यन्तं महान्तं सर्वलोकगम् ॥१६॥
अचिन्तयच्च लोकोऽयमकृतज्ञो महाखलः । स्थाने राष्ट्रे च यद्दैन्यस्थाने तोषमितः परम् ॥१७॥
बाहुच्छायां समाश्रित्य सुचिरं सुरसौख्यवान् । स्थितो यः स कथं लोको मधोर्मृत्योर्न दुःखितः ॥१८॥
प्रवीरैः कातरैः शूरसहस्रेण च पण्डितः । सेव्यः क्रिचिद्व्रजेन्मूर्खमकृतज्ञं परित्यजेत् ॥१९॥
आस्तां तावदसौ राजा स्निग्धो मे येन सूदितः । सस्थानं राष्ट्रमेवैतत्क्षयं तावन्नयाम्यहम् ॥२०॥
इति ध्यात्वा महारौद्रः क्रोधसंभारचोदितः । उपसर्गं समारेभे कर्त्तुं लोकस्य दुःसहम् ॥२१॥
विकृत्य सुमहारोगांल्लोकं दग्धुं समुद्यतः । क्षयदाव इवोदारं कक्ष्यं कारुण्यवर्जितः ॥२२॥
यत्रैव यः स्थितः स्थाने निविष्टः शयितोऽपि वा । अचलस्तत्र तत्रैव दीर्घनिद्रामसौ[1]वितः ॥२३॥
उपसर्गं समालोक्य कुलदैवतचोदितः । अयोध्यानगरी यातः शत्रुघ्नः साधनान्वितः ॥२४॥
तमुपात्तजयं शूरं प्रत्यायातं महाहवात् । समभ्यनन्दयन् हृष्टा बलचक्रधरादयः ॥२५॥
पूर्णाशा सुप्रजाश्चासौ विधाय जिनपूजनम् । धार्मिकेभ्यो महादानं दुःखितेभ्यस्तथाददात् ॥२६॥

आर्यावृत्तम्

यद्यपि महाभिरामा साकेता काञ्चनोज्ज्वलैः प्रासादैः ।
धेनुरिव सर्वकामप्रदानचतुरा त्रिविष्टपोपभोगा ॥२७॥

रुद्रका नाम क्या तुमने नहीं सुना जो आसक्त होनेके कारण विचाररहित हो स्त्रीके साथ ही साथ मृत्युको प्राप्त हुआ था ॥१४॥ अथवा जाओ, तुझे इससे क्या प्रयोजन ? इच्छानुसार काम करो, मैं स्वयं ही मित्र और शत्रुका कर्तव्य ज्ञात करूँगा ॥१५॥

इतना कहकर अत्यन्त दुष्ट चित्तको धारण करनेवाला वह चमरेन्द्र आकाशको लाँघकर मथुरा पहुँचा और वहाँ पहुँचकर उसने समस्त लोगोंमें व्याप्त बहुत भारी उत्सव देखा ॥१६॥ वह विचार करने लगा कि ये मथुराके लोग अकृतज्ञ तथा महादुष्ट हैं जो घर अथवा देशमें दुःखका अवसर होनेपर भी परम सन्तोषको प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् खेदके समय हर्ष मना रहे हैं ॥१७॥ जिसकी भुजाओंकी छाया प्राप्त कर जो चिरकाल तक देवों-जैसा सुख भोगते रहे वे अब उस मधु की मृत्युसे दुःखी क्यों नहीं हो रहे हैं ? ॥१८॥ शूर-वीर मनुष्य कायर मनुष्योंके द्वारा सेवनीय है और पण्डित-जन हजारों शूर-वीरोंके द्वारा सेव्य हैं सो कदाचित् मूर्खकी तो सेवा की जा सकती है पर अकृतज्ञ मनुष्यको छोड़ देना चाहिए ॥१९॥ अथवा यह सब रहे, जिसने हमारे स्नेही राजाको मारा है मैं उसके निवासस्वरूप इस समस्त देशको पूर्णरूपसे क्षय प्राप्त कराता हूँ ॥२०॥ इस प्रकार विचारकर महारौद्र परिणामोंके धारक चमरेन्द्रने क्रोधके भारसे प्रेरित हो लोगोंपर दुःसह उपसर्ग करना प्रारम्भ किया ॥२१॥ जिस प्रकार प्रलयकालका दावानल विशाल वनको जलानेके लिए उद्यत होता है उसी प्रकार वह निर्दय चमरेन्द्र अनेक महारोग फैलाकर लोगोंको जलानेके लिए उद्यत हुआ ॥२२॥ जो मनुष्य जिस स्थानपर खड़ा था अथवा सो रहा था वह वहीं अचल हो दीर्घ निद्रा—मृत्युको प्राप्त हो गया ॥२३॥ उपसर्ग देखकर कुलदेवतासे प्रेरित हुआ शत्रुघ्न अपनी सेनाके साथ अयोध्या चला गया ॥२४॥ विजय प्राप्त कर महायुद्धसे लौटे हुए शूरवीर शत्रुघ्नका राम, लक्ष्मण आदिने हर्षित हो अभिनन्दन किया ॥२५॥ जिसकी आशा पूर्ण हो गयी थी ऐसी शत्रुघ्नकी माता सुप्रजाने जिनपूजा कर धर्मात्माओं तथा दीन-दुःखी मनुष्योंके लिए दान दिया ॥२६॥ यद्यपि अयोध्या नगरी सुवर्णमयी महलोंसे अत्यन्त सुन्दर थी, कामधेनुके

---

१ असौ+इत इतिच्छेदः ।

शत्रुघ्नकुमारोऽसौ मथुरापुर्यां सुरक्तहृदयोऽत्यन्तम् ।
न तथापि धृतिं भेजे वैदेह्या विरहितो तथासीद् रामः ॥२८॥
स्वप्न इव भवति चारुसंयोगः प्राणिनां यदा तनुकालः ।
जनयति परमं तापं निदाघरविरश्मिजनितादधिकम् ॥२९॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मथुरोपसर्गाभिधानं नाम नवतितमं पर्व ॥९०॥



समान समस्त मनोरथोंके प्रदान करनेमे चतुर थी और स्वर्ग-जैसे भोगोपभोगोंसे सहित थी तथापि शत्रुघ्नकुमारका हृदय मथुरामे ही अत्यन्त अनुरक्त रहता था। वह, जिस प्रकार सीताके विना राम, धैर्यको प्राप्त नही होते थे उसी प्रकार मथुराके विना धैर्यको प्राप्त नहीं होता था ॥२७–२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! प्राणियोंको सुन्दर वस्तुओंका समागम जब स्वप्नके समान अल्प कालके लिए होता है तब वह ग्रीष्मऋतु सम्बन्धी सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न सन्तापसे भी कही अधिक सन्तापको उत्पन्न करता है ॥२९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मथुरापर उपसर्गका वर्णन करनेवाला नव्वेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९०॥



एकनवतितमं पर्व

अथ राजगृहस्वामी जगादाद्भुतकौतुकः । भगवन्केन कार्येण तामेवासावयाचत ॥१॥
यद्वो राजधान्योऽन्याः सन्ति स्वर्लोकसन्निभाः । तत्र शत्रुघ्नवीरस्य का प्रीतिर्मथुरां प्रति ॥२॥
दिव्यज्ञानसमुद्रेण गणोडुशशिना ततः । गौतमेनोच्यत [1]प्रीतिर्यथा तत्कुरु चेतसि ॥३॥
यद्वो हि भवास्तस्य तस्यामेवाभवंस्ततः । तामेव प्रति सोद्रेकं स्नेहमेप न्यपेवत ॥४॥
संसारार्णवसंसेवी जीवः कर्मस्वभावतः । जम्बूमद्द्वीपभरते मथुरां समुपागतः ॥५॥
क्रूरो यमुनदेवाख्यो धर्मैकान्तपराङ्मुखः । स प्रेत्य क्रोडवालेयवायसत्वान्यसेवत ॥६॥
अजत्वं च परिप्राप्तो मृतो भवनदाहतः । महिषो जलवाहोऽभूदायते गवले वहन् ॥७॥
षड्वारान्महिषो भूत्वा दुःखप्रापणसंगतः । पञ्चकृत्वो मनुष्यत्वं दुःकुलेष्वधनोऽभजत् ॥८॥
मध्यकर्मसमाचाराः प्राप्यार्यत्वं मनुष्यताम् । प्राणिनः प्रतिपद्यन्ते किंचित्कर्मपरिक्षयम् ॥९॥
ततः कुलंधराभिख्यः साधुसेवापरायणः । विप्रोऽसावभवद्रूपी शीलसेवाविवर्जितः ॥१०॥
अशङ्कित इव स्वामी पुरस्तस्या जयाशया । यातो देशान्तरं तस्य महिषी ललिताभिधा ॥११॥
प्रासादस्था कदाचित्सा वातायनगतेक्षणा । निरैक्षत तकं विप्रं दुश्चेष्टं कृतकारणम् ॥१२॥
सा तं क्रीडन्तमालोक्य मनोभवशराहता । आनाययद्रहोऽत्यन्तमाप्तया चित्तहारिणम् ॥१३॥
तस्या एकासने चासावुपविष्टो नृपश्च सः । अज्ञातागमनोऽपश्यत्सहसा तद्विचेष्टितम् ॥१४॥

अथानन्तर अद्भुत कौतुकको धारण करनेवाले राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे भगवन् ! वह शत्रुघ्न किस कार्यसे उसी मथुराकी याचना करता था ॥१॥ स्वर्गलोकके समान अन्य बहुत-सी राजधानियाँ है उनमे-से केवल मथुराके प्रति ही वीर शत्रुघ्नकी प्रीति क्यो है ? ॥२॥ तब दिव्य ज्ञानके सागर एवं गणरूपी नक्षत्रोके बीच चन्द्रमाके समान गौतम गणधरने कहा कि जिस कारण शत्रुघ्नकी मथुरामे प्रीति थी उसे मै कहता हूँ चित्तमे धारण कर ॥३॥ यतश्च उसके बहुत-से भव उसी मथुरामे हुए थे इसलिए उसीके प्रति वह अत्यधिक स्नेह धारण करता था ॥४॥ संसाररूपी सागरका सेवन करनेवाला एक जीव कर्मस्वभावके कारण जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रकी मथुरा नगरीमे यमुनदेव नामसे उत्पन्न हुआ। वह स्वभावका क्रूर था तथा धर्मसे अत्यन्त विमुख रहता था। मरनेके बाद वह क्रमसे सूकर, गधा और कौआ हुआ ॥५-६॥ फिर बकरा हुआ, तदनन्तर भवनमे आग लगनेसे मरकर लम्बे-लम्बे सीगोको धारण करनेवाला भैंसा हुआ। यह भैंसा पानी ढोनेके काम आता था ॥७॥ यह यमुनदेवका जीव छह बार तो नाना दुःखोको प्राप्त करनेवाला भैसा हुआ और पाँच बार नीच कुलोमे निर्धन मनुष्य हुआ ॥८॥ सो ठीक ही है क्योकि जो प्राणी मध्यम आचरण करते है वे आर्य मनुष्य हो कुछ-कुछ कर्मोका क्षय करते है ॥९॥ तदनन्तर वह साधुओकी सेवामे तत्पर रहनेवाला कुलन्धर नामका ब्राह्मण हुआ। वह कुलन्धर रूपवान् तो था, पर शीलकी आराधनासे रहित था ॥१०॥ एक दिन उस नगरका राजा विजय प्राप्त करनेकी आशासे निःशंककी तरह दूसरे देशको गया था और उसकी ललिता नामकी रानी महलमे अकेली थी। एक दिन वह झरोखेपर दृष्टि डाल रही थी कि उसने संकेत करनेवाले उस दुश्चेष्ट ब्राह्मणको देखा ॥११-१२॥ क्रीड़ा करते हुए उस कुलन्धर ब्राह्मणको देखकर रानी कामके बाणोसे घायल हो गयी जिससे उसने एक विश्वासपात्र सखीके द्वारा उस हृदयहारीको अत्यन्त एकान्त स्थानमे बुलवाया ॥१३॥ महलमे जाकर वह

---

१. प्रीतिं म. ।

मायाप्रवीणया तावद्देव्या क्रन्दितमुन्नतम् । वन्दिकोऽयमिति त्रस्तो गृहीतश्च भटैरसौ ॥१५॥
अष्टाङ्गनिग्रहं कर्तुं नगरीतो बहिः कृतः । सेवितेनासकृद्दृष्टः कल्याणाख्येन साधुना ॥१६॥
यदि प्रव्रजसीत्युक्त्वा तेनासौ प्रतिपन्नवान् । राज्ञः क्रूरमनुष्येभ्यो मोचितः [1]श्रमणोऽभवत् ॥१७॥
सोऽतिकष्टं तपः कृत्वा महाभावनयान्वितः । अभूदृतुविमानेशः किन्तु धर्मस्य दुष्करम् ॥१८॥
मथुरायां महाचित्तश्चन्द्रभद्र इति प्रभुः । तस्या भार्या धरा नाम त्रयस्तस्याश्च सोदराः ॥१९॥
सूर्याब्धियमुनाशब्दैर्देवान्तैर्नामभिः स्मृताः । श्रीसत्त्विन्द्रप्रभोग्रार्का मुखान्ताश्चापरा. सुताः ॥२०॥
द्वितीया चन्द्रभद्रस्याद्वितीया कनकप्रभा । आगत्यर्तुविमानात् स तस्यां जातोऽचलाभिधः ॥२१॥
कलागुणसमृद्धोऽसौ सर्वलोकमनोहरः । रेमौ देवकुमाराभः सत्क्रीडाकरणोद्यतः ॥२२॥
अथान्य. कश्चिदङ्काख्यः कृत्वा धर्मानुमोदनम् । श्रावस्त्यामङ्गिकागर्भे कम्पेनापाभिधोऽभवत् ॥२३॥
कवाटजीविना तेन कम्पेनाविनयान्वित. । अपो निर्वाटितो गेहाद् दुद्राव भयदुःखितः ॥२४॥
अथाचलकुमारोऽसौ नितान्तं दयितः पितु. । धराया भ्रातृभिस्तैश्च मुखान्तैरष्टभिः सुतै. ॥२५॥
[2]ईर्ष्यमाणो रहो हन्तुं मात्रा ज्ञात्वा पलायितः । महता कण्टकेनाङ्घ्रौ ताडितस्तिलके वने ॥२६॥

रानीके साथ जिस समय एक आसनपर बैठा था उसी समय राजा भी कहीसे अकस्मात् आ गया और उसने उसकी वह चेष्टा देख ली ॥१४॥ यद्यपि मायाचारमे प्रवीण रानीने जोरसे रोदन करते हुए कहा कि यह वन्दीजन है तथापि राजाने उसका विश्वास नही किया और योद्धाओने उस भयभीत ब्राह्मणको पकड़ लिया ॥१५॥ तदनन्तर आठो अंगोका निग्रह करनेके लिए वह कुलन्धर विप्र नगरीके बाहर ले जाया गया। वहाँ जिसकी इसने कई बार सेवा की थी ऐसे कल्याण नामक साधुने इसे देखा और देखकर कहा कि यदि तू दीक्षा ले ले तो तुझे छुड़ाता हूँ। कुलन्धरने दीक्षा लेना स्वीकृत कर लिया जिससे साधुने राजाके दुष्ट मनुष्योसे उसे छुड़ाया और छुड़ाते ही वह श्रमण—साधु हो गया ॥१६–१७॥ तदनन्तर बहुत बड़ी भावनाके साथ अत्यन्त कष्टदायी तप तपकर वह सौधर्म स्वर्गके ऋतुविमानका स्वामी हुआ सो ठीक ही है क्योकि धर्मके लिए क्या कठिन है ? ॥१८॥

अथानन्तर मथुरामे चन्द्रभद्र नामका उदारचित्त राजा था, उसकी स्त्रीका नाम धरा था और धराके तीन भाई थे—सूर्यदेव, सागरदेव और यमुनादेव। इन भाइयोके सिवाय उसके श्रीमुख, सन्मुख, सुमुख, इन्द्रमुख, प्रभामुख, उग्रमुख, अर्कमुख और अपरमुख ये आठ पुत्र थे ॥१९–२०॥ उसी चन्द्रभद्र राजाकी द्वितीय होनेपर भी जो अद्वितीय—अनुपम थी ऐसी कनकप्रभा नामकी द्वितीय पत्नी थी सो कुलन्धर विप्रका जीव ऋतु-विमानसे च्युत हो उसके अचल नामका पुत्र हुआ ॥२१॥ वह अचल कला और गुणोसे समृद्ध था, सब लोगोके मनको हरनेवाला था और समीचीन क्रीड़ा करनेमे उद्यत रहता था इसलिए देव कुमारके समान सुशोभित होता था ॥२२॥

अथानन्तर कोई अंक नामका मनुष्य धर्मकी अनुमोदना कर श्रावस्ती नामा नगरीसे कम्प नामक पुरुषकी अंगिका नामक स्त्रीसे अप नामका पुत्र हुआ ॥२३॥ कम्प कपाट बनानेकी आजीविका करता था अर्थात् जातिका बढई था और उसका पुत्र अत्यन्त अविनयी था इसलिए उसने उसे घरसे निकाल दिया था। फलस्वरूप वह भयसे दुखी होता हुआ इधर-उधर भटकता रहा ॥२४॥ अथानन्तर पूर्वोक्त अचलकुमार पिताका अत्यन्त प्यारा था इसलिए इसकी सौतेली माता धराके तीन भाई तथा मुखान्त नामको धारण करनेवाले आठो पुत्र एकान्तमे मारनेके लिए उसके साथ ईर्ष्या करते थे। अचलकी माता कनकप्रभाको उनकी इस ईर्ष्याका पता चल गया

१. भ्रमणो म.। २. दृष्यमाणो म.।

गृहीतदारुभारेण तेनापेनाथ वीक्षितम् । अतिकष्टं क्वणन् खेदादचलो निश्चलः स्थितः ॥२७॥
दारुभारं परित्यज्य तेन तस्यासिकन्यया । आकृष्टः कण्टको[1] दत्त्वा कटकं चेति भाषितः ॥२८॥
यदि नामाचल किंचिच्छृणुयाल्लोकविश्रुतम् । त्वया तस्य ततोऽभ्याश गन्तव्यं संशयोज्झितम् ॥२९॥
अपो[2] यथोचितं यातो राजपुत्रोऽपि दुःखवान् । कौशाम्बीबाह्यमुद्देशं प्राप्तः सत्त्वसमुन्नतः ॥३०॥
तत्रेन्द्रदत्तनामान[3] कोशावत्ससमुद्भवम् । ययौ कलकलाशब्दात् सेवमानं खलूलिकाम् ॥३१॥
विजित्य विशिखाचार्यं लब्धपूजोऽथ भूभृता । प्रवेश्य नगरीमिन्द्रदत्ताख्यां लम्भितः सुताम् ॥३२॥
क्रमेण चानुभावेन चारुणा पूर्वकर्मणा । उपाध्याय इति ख्यातो वीरोऽसौ पार्थिवोऽभवत् ॥३३॥
अङ्गाद्यान् विषयाञ्जित्वा प्रतापी मथुरां श्रित. । बाह्योद्देशे कृतावासः स्थित. कटकसंगत. ॥३४॥
चन्द्रभद्रनृपः पुत्रमारोऽयमिति भाषितैः । सामन्ताः सकलास्तस्य भिन्नास्येनार्थसंगतैः ॥३५॥
एकाकी चन्द्रभद्रश्च विषादं परमं भजन् । श्यालान् संप्रेषयद्देवशब्दान्तान् सन्धिवाञ्छया ॥३६॥
दृष्ट्वा ते तं परिज्ञाय विलक्षास्त्रासमागताः । अदृष्टसेवका. साकं धरायास्तनयैः कृताः ॥३७॥
अचलस्य समं मात्रा संजात' परमोत्सवः । राज्यं च प्रणताशेषराजक गुणपूजितम् ॥३८॥

इसलिए उसने उसे कही बाहर भगा दिया। एक दिन अचल तिलक नामक वनमे जा रहा था कि उसके पैरमे एक बड़ा भारी काँटा लग गया। काँटा लग जानेके कारण दुःखसे अत्यन्त दुःख-दायी शब्द करता हुआ वह उसी तिलक वनमे एक ओर खड़ा हो गया। उसी समय लकड़ियोका भार लिये हुए अप वहाँसे निकला और उसने अचलको देखा ॥२५–२७॥ अपने लकड़ियोका भार छोड छुरीसे उसका काँटा निकाला। इसके बदले अचलने उसे अपने हाथका कड़ा देकर कहा कि यदि तू कभी किसी लोकप्रसिद्ध अचलका नाम सुने तो तुझे सशय छोडकर उसके पास जाना चाहिए ॥२८–२९॥

तदनन्तर अप यथायोग्य स्थानपर चला गया और राजपुत्र अचल भी दुःखी होता हुआ धैर्यसे युक्त हो कौशाम्बी नगरीके बाह्यप्रदेशमे पहुँचा ॥३०॥ वहाँ कौशाम्बीके राजा कोशावत्सका पुत्र इन्द्रदत्त, बाण चलानेके स्थानमें बाण विद्याका अभ्यास कर रहा था सो उसका कलकला शब्द सुन अचल उसके पास चला गया ॥३१॥ वहाँ इन्द्रदत्तके साथ जो उसका विशिखाचार्य अर्थात् शस्त्र विद्या सिखानेवाला गुरु था उसे अचलने पराजित किया था। तदनन्तर जब राजा कोशावत्सको इसका पता चला तब उसने अचलका बहुत सम्मान किया और सम्मानके साथ नगरीमे प्रवेश कराकर उसे अपनी इन्द्रदत्ता नामकी कन्या विवाह दी ॥३२॥ तदनन्तर वह क्रमसे अपने प्रभाव और पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मसे पहले तो उपाध्याय इस नामसे प्रसिद्ध था और उसके बाद राजा हो गया ॥३३॥ तत्पश्चात् यह प्रतापी अग आदि देशोको जीतकर मथुरा आया और उसके बाह्य स्थानमे डेरे देकर सेनाके साथ ठहर गया ॥३४॥ यह चन्द्रभद्र राजा 'पुत्रको मारनेवाला है' ऐसे यथार्थ शब्द कहकर उसने उसके समस्त सामन्तोको अपनी ओर फोड़ लिया ॥३५॥ जिससे चन्द्रभद्र अकेला रह गया। अन्तमे परम विषादको प्राप्त होते हुए उसने सन्धिकी इच्छासे अपने सूर्यदेव, अब्धिदेव और यमुनादेव नामक तीन साले भेजे ॥३६॥ सो वे उसे देख तथा पहचानकर लज्जित हो भयको प्राप्त हुए और धरा रानीके आठो पुत्रोके साथ-साथ सेवकोसे रहित हो गये अर्थात् भयसे भाग गये ॥३७॥ अचलको माताके साथ मिलकर बडा उल्लास हुआ और जिसमे समस्त राजा नम्रीभूत थे तथा जो गुणोसे पूजित था ऐसा राज्य उसे प्राप्त हुआ ॥३८॥

---

१. कण्टक म.। २ अथो ख.। ३. कोशाम्बात्ससमुद्भवम्। कोशावसमयोज्झितम् क.।

अन्यदा नटरङ्गस्य मध्ये तमपमागतम् । हन्यमानं प्रतीहारैर्दृष्ट्वाभिज्ञातवान् नृपः ॥३९॥
तस्मै संयुक्तमापाद्य श्रावस्तीं जन्मभूमिकाम् । कृतापरङ्गसंज्ञाय ददावचलभूपतिः ॥४०॥
तावुद्यानं गतौ क्रीडां विधातुं पुरुसंपदौ । यशःसमुद्रमाचार्यं दृष्ट्वा नैर्ग्रन्थ्यमाश्रितौ ॥४१॥
संयमं परमं कृत्वा सम्यग्दर्शनभावितौ । मृतौ समाधिना जातौ देवेशौ कमलोत्तरे ॥४२॥
ततश्च्युतः समानोऽस्मादचलः पुण्यशेषतः । [1]सुप्रजोल्लोचनानन्दः शत्रुघ्नोऽयमभून्नृपः ॥४३॥
तेनानेकभवप्राप्तिसंबन्धेनास्य भूपतेः । बभूव परमप्रीतिर्मथुरां प्रति पार्थिव ॥४४॥
गृहस्य शाखिनो वापि यस्यच्छायां समाश्रयेत । स्थीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ॥४५॥
किं पुनर्यत्र भूयोऽपि जन्मभिः संगतिः कृता । संसारभावयुक्तानां जीवानामीदृशी गतिः ॥४६॥
परिच्युत्यापरङ्गोऽपि पुण्यशेषादभूदसौ । कृतान्तवक्त्रविख्यातः सेनायाः पतिरूर्जितः ॥४७॥
इति [2]धर्मार्जनादेतौ प्राप्तौ परमसंपदः । धर्मेण रहितैर्लभ्यं न हि किंचित्सुखावहम् ॥४८॥
अनेकमपि संचित्य जन्तुर्दुःखमलक्षये । धर्मतीर्थे श्रुवे(श्रयेत) शुद्धिं जलतीर्थमनर्थकम् ॥४९॥

आर्या

एवं पारम्पर्यादागतमिदमद्भुतं नितान्तमुदारम् ।
कथितं शत्रुघ्नायनमवबुध्य बुधा भवन्तु धर्मसुरताः ॥५०॥

अथानन्तर किसी एक समय पैरका कांटा निकालनेवाला अप नटोंकी रंगभूमिमें आया सो प्रतीहारी लोग उसे मार रहे थे। राजा अचलने उसे देखते ही पहचान लिया ॥३९॥ और अपने पास बुलाकर उसका अपरंग नाम रखा तथा उसकी जन्मभूमिस्वरूप श्रावस्ती नगरी उसके लिए दे दी ॥४०॥ ये दोनो ही मित्र साथ-साथ ही रहते थे। परम सम्पदाको धारण करनेवाले दोनो मित्र एक दिन क्रीड़ा करनेके लिए उद्यान गये थे सो वहाँ यशःसमुद्र नामक आचार्यके दर्शन कर उनके समीप दोनों ही निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हो गये ॥४१॥ सम्यग्दर्शनकी भावनासे युक्त दोनो मुनियोने परम सयम धारण किया और दोनो ही आयुके अन्तमे समाधिमरण कर स्वर्गमे देवेन्द्र हुए ॥४२॥

सम्मानसे सुशोभित वह अचलका जीव, स्वर्गसे च्युत हो अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे माता सुप्रजाके नेत्रोको आनन्दित करनेवाला यह राजा शत्रुघ्न हुआ है ॥४३॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन्! अनेक भवोमे प्राप्तिका सम्बन्ध होनेसे इसको मथुराके प्रति परम प्रीति है ॥४४॥ जिस घर अथवा वृक्षकी छायाका आश्रय लिया जाता है अथवा वहाँ एक दिन भी ठहरा जाता है उसकी उसमे प्रीति हो जाती है ॥४५॥ फिर जहाँ अनेक जन्मोमे बार-बार रहना पड़ता है उसका क्या कहना है? यथार्थमे संसारमें परिभ्रमण करनेवाले जीवोंकी ऐसी ही गति होती है ॥४६॥ अपरंग जीव भी स्वर्गसे च्युत हो पुण्य शेष रहनेसे कृतान्तवक्त्र नामका प्रसिद्ध एवं बलवान् सेनापति हुआ है ॥४७॥ इस प्रकार धर्मार्जनके प्रभावसे ये दोनो परम सम्पदाको प्राप्त हुए है सो ठीक ही है क्योकि धर्मसे रहित प्राणी किसी सुखदायक वस्तुको नही प्राप्त कर पाते है ॥४८॥ इस प्राणीने अनेक भवोमे पापका संचय किया है सो दुःखरूपी मलका क्षय करनेवाले धर्मरूपी तीर्थमे शुद्धिको प्राप्त करना चाहिए इसके लिए जलरूपी तीर्थका आश्रय लेना निरर्थक है ॥४९॥ इस प्रकार आचार्य परम्परासे आगत, अत्यन्त आश्चर्यकारी एवं उत्कृष्ट शत्रुघ्नके इस चरितको जानकर हे विद्वज्जनो! सदा धर्ममे अनुरक्त होओ ॥५०॥

---

१. सुप्रजालोचनानन्द म., ज.। २ धर्माज्ञनादेतौ म.।

श्रुत्वा परमं धर्मं न भवति येषां सदीहिते प्रीतिः ।
शुभनेत्राणां तेषां रविरुदितोऽनर्थकीभवति ॥५१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शत्रुघ्नभवानुकीर्तनं नामैकनवतितमं पर्व ॥९१॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि इस परमधर्मको सुनकर जिनकी उत्तम चेष्टामे प्रवृत्ति नही होती शुभ नेत्रोको धारण करनेवाले उन लोगोके लिए उदित हुआ सूर्य भी निरर्थक हो जाता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें शत्रुघ्नके भवोका
वर्णन करनेवाला एकानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९१॥



द्विनवतितमं पर्व

विहरन्तोऽन्यदा प्राप्ता निर्ग्रन्था मथुरां पुरीम् । गगनायनिनः सप्त [1]सप्तसप्तिसमत्विषः ॥१॥
सुरमन्युर्द्वितीयश्च श्रीमन्युरिति कीर्तितः । अन्यः श्रीनिचयो नाम तुरीयः सर्वसुन्दरः ॥२॥
पञ्चमो जयवान् ज्ञेयः षष्ठो विनयलालसः । चरमो जयमित्राख्यः सर्वे चारित्रसुन्दराः ॥३॥
राज्ञः श्रीनन्दनस्यैते धरणीसुन्दरीभवाः । तनया जगति ख्याता गुणैः शुद्धैः प्रभापुरे ॥४॥
प्रीतिंकरमुनीन्द्रस्य देवागममुदीक्ष्य ते । प्रतिबुद्धाः समं पित्रा धर्मं कर्तुं समुद्यताः ॥५॥
मासजातं नृपो न्यस्य राज्ये डमरमङ्गलम् । प्रवव्राज समं पुत्रैर्वीरः प्रीतिंकरान्तिके ॥६॥
केवलज्ञानमुत्पाद्य काले श्रीनन्दनोऽविशत् । सप्तर्षयस्त्वमी तस्य तनया मुनिसत्तमाः ॥७॥
काले विकालवत्काले कन्दवृन्दावृतान्तरे । न्यग्रोधतरुमूले ते योगं सन्मुनयः श्रिताः ॥८॥
तेषां तपःप्रभावेन चमरासुरनिर्मिता । मारी श्वशुरदृष्टेव नारी विटगताऽनशत् ॥९॥
घनजीमूतसंसिक्ता[2] मथुराविषयोर्वरा । अकृष्टपच्यसस्यौघैः संछन्ना सुमहागमैः ॥१०॥
रोगेतिपरिनिर्मुक्ता मथुरानगरी शुभा । पितृदर्शनतुष्टेव रराज नविका वधूः ॥११॥
युक्तं बहुप्रकारेण रसत्यागादिकेन ते । [3]षष्ठादिनोपवासेन चक्रुरत्युत्कटं तपः ॥१२॥
नभो निमेषमात्रेण विप्रकृष्टं विलङ्घ्य ते । चक्रुः पुरेषु विजयपोदनादिषु पारणाम् ॥१३॥

अथानन्तर किसी समय गगनगामी एवं सूर्यके समान कान्तिके धारक सात निर्ग्रन्थ मुनि विहार करते हुए मथुरापुरी आये । उनमें-से प्रथम सुरमन्यु, द्वितीय श्रीमन्यु, तृतीय श्रीनिश्चय, चतुर्थ सर्वसुन्दर, पंचम जयवान्, षष्ठ विनयलालस और सप्तम जयमित्र नामके धारक थे । ये सभी चारित्रसे सुन्दर थे अर्थात् निर्दोष चारित्रके पालक थे । राजा श्रीनन्दनकी धरणी नामक रानीसे उत्पन्न हुए पुत्र थे, निर्दोष गुणोंसे जगत्‌मे प्रसिद्ध थे तथा प्रभापुर नगरके रहनेवाले थे ॥१-४॥ ये सभी, प्रीतिकर मुनिराजके केवलज्ञानके समय देवोंका आगमन देख प्रतिबोधको प्राप्त हो पिताके साथ धर्म करनेके लिए उद्यत हुए थे ॥५॥ वीरशिरोमणि राजा श्रीनन्दन, डमर-मंगल नामक एक माहके बालकको राज्य देकर अपने पुत्रोंके साथ प्रीतिकर मुनिराजके समीप दीक्षित हुए थे ॥६॥ समय पाकर श्रीनन्दन राजा तो केवलज्ञान उत्पन्न कर सिद्धालयमे प्रविष्ट हुए और उनके उक्त पुत्र उत्तम मुनि हो सप्तर्षि हुए ॥७॥ जहाँ परस्परका अन्तर कन्दोके समूहसे आवृत था ऐसे वर्षाकालके समय वे सब मुनि मथुरा नगरीके समीप वटवृक्षके नीचे वर्षा योग लेकर विराजमान हुए ॥८॥ उन मुनियोके तपके प्रभावसे चमरेन्द्रके द्वारा निर्मित महामारी उस प्रकार नष्ट हो गयी जिस प्रकार कि श्वसुरके द्वारा देखी हुई विट मनुष्यके पास गयी नारी नष्ट हो जाती है ॥९॥ अत्यधिक मेघोंसे सीची गयी मथुराके देशोंकी उपजाऊ भूमि बिना जोते बखरे अर्थात् अनायास ही उत्पन्न होनेवाले बहुत भारी धान्यके समूहसे व्याप्त हो गयी ॥१०॥ उस समय रोग और ईतियोंसे छूटी शुभ मथुरा नगरी उस प्रकार सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार कि पिताके देखनेसे सन्तुष्ट हुई नयी बहू सुशोभित होती है ॥११॥ वे सप्तर्षि नाना प्रकारके रस परित्याग आदि तथा बेला-तेला आदि उपवासोंके साथ अत्यन्त उत्कट तप करते थे ॥१२॥ वे अत्यन्त दूरवर्ती आकाशको निमेष मात्रमे लाँघकर विजयपुर, पोदनपुर आदि दूर-दूरवर्ती नगरोंमें

---

१. सूर्यसमकान्तय. । २. संसक्ता म. । ३. पृष्ठादिनोप -म. ।

लब्धां परगृहे भिक्षां पाणिपात्रतलस्थिताम् । शरीरधृतिमात्राय जक्षुस्ते क्षपणोत्तमाः ॥१४॥
नभोमध्यगते भानावन्यदा ते महाशमाः । साकेतामविशन् वीरा युगमात्रावलोकिनः ॥१५॥
शुद्धभिक्षैषणाकूताः प्रलम्बितमहाभुजाः । अर्हद्दत्तगृहं प्राप्ता भ्राम्यन्तस्ते यथाविधि ॥१६॥
अर्हद्दत्तश्च संप्राप्तश्चिन्तामेतामसंभ्रमः । वर्षाकालः क्व चेदृक्षः क्व चेदं मुनिचेष्टितम् ॥१७॥
प्राग्भारकन्दरासिन्धुतटे मूले च शाखिनः[1] । शून्यालये जिनागारे ये चान्यत्र क्वचित्स्थिताः ॥१८॥
नगर्यां श्रमणा अस्यां नेमे समयखण्डनम् । कृत्वा हिण्डनशीलत्वं प्रपद्यन्ते सुचेष्टिताः ॥१९॥
प्रतिकूलितसूत्रार्था एते तु ज्ञानवर्जिताः । निराचार्या निराचाराः कथं कालेऽत्र हिण्डकाः ॥२०॥
अकालेऽपि किल प्राप्ताः स्नुषयास्य सुभक्तया । तर्पिताः प्राप्तकान्नेन ते गृहीतार्थया तया ॥२१॥
आर्हतं भवनं जग्मुः शुद्धसंयतसंकुलम् । यत्र त्रिभुवनानन्दः स्थापितो मुनिसुव्रतः ॥२२॥
चतुरङ्गुलमानेन ते त्यक्तधरणीतलाः । आयान्तो द्युतिना दृष्टा लब्धिप्राप्ताः प्रसाधवः ॥२३॥
पद्भ्यामेव जिनागारं प्रविष्टाः श्रद्धयोद्धया । अभ्युत्थाननमस्यादिविधिना द्युतिनार्चिताः ॥२४॥
अस्मदीयोऽयमाचार्यो यत्किंचिद्वन्दनोद्यतः । इति ज्ञात्वा द्युतेः शिष्या दध्युः सप्तर्षिनिन्दनम्[2] ॥२५॥
जिनेन्द्रवन्दनां कृत्वा सम्यक् स्तुतिपरायणाः । यातास्ते वियदुत्पत्य स्वमाश्रमपदं पुनः ॥२६॥
चारणश्रमणान् ज्ञात्वा मुनींस्ते मुनयः पुनः । स्वनिन्दनादिना युक्ताः साधुचित्तमुपागताः ॥२७॥

पारणा करते थे ॥१३॥ वे उत्तम मुनिराज परगृहमे प्राप्त एवं हस्तरूपी पात्रमे स्थित भिक्षाको केवल शरीरकी स्थिरताके लिए ही भक्षण करते थे ॥१४॥

अथानन्तर किसी एक दिन जब कि सूर्य आकाशके मध्यमे स्थित था तब महाशान्तिको धारण करनेवाले वे धीर-वीर मुनिराज जूडा प्रमाण भूमिको देखते हुए अयोध्या नगरीमे प्रविष्ट हुए ॥१५॥ जो शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनेके अभिप्रायसे युक्त थे और जिनकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थी ऐसे वे मुनि विधिपूर्वक भ्रमण करते हुए अर्हद्दत्त सेठके घर पहुँचे ॥१६॥ उन मुनियोको देखकर सम्भ्रमसे रहित अर्हद्दत्त सेठ इस प्रकार विचार करने लगा कि यह ऐसा वर्षा काल कहाँ और यह मुनियोकी चेष्टा कहाँ ? ॥१७॥ इस नगरीके आस-पास प्राग्भार पर्वतकी कन्दराओमे, नदीके तटपर, वृक्षके मूलमे, शून्य घरमे, जिनालयमे तथा अन्य स्थानोमे जहाँ कही जो मुनिराज स्थित हैं उत्तम चेष्टाओको धारण करनेवाले वे मुनिराज समयका खण्डन कर अर्थात् वर्षायोग पूरा किये विना इधर-उधर परिभ्रमण नही करते ॥१८–१९॥ परन्तु ये मुनि आगमके अर्थको विपरीत करनेवाले है, ज्ञानसे रहित हैं, आचार्योंसे रहित है और आचारसे भ्रष्ट हैं इसीलिए इस समय यहाँ घूम रहे है ॥२०॥ यद्यपि वे मुनि असमयमे आये थे तो भी अर्हद्दत्त सेठकी भक्त एवं अभिप्रायको ग्रहण करनेवाली वधूने उन्हें आहार देकर सन्तुष्ट किया था ॥२१॥ आहारके बाद वे शुद्ध-निर्दोष प्रवृत्ति करनेवाले मुनियोसे व्याप्त अर्हन्त भगवान्के उस मन्दिरमे गये जहाँ कि तीन लोकको आनन्दित करनेवाले श्री मुनिसुव्रत भगवान्की प्रतिमा विराजमान थी ॥२२॥ अथानन्तर जो पृथिवीसे चार अंगुल ऊपर चल रहे थे ऐसे उन ऋद्धिधारी उत्तम मुनियोको मन्दिरमे विद्यमान श्री द्युतिभट्टारकने देखा ॥२३॥ उन मुनियोने उत्तम श्रद्धाके साथ पैदल चलकर ही जिनमन्दिरमे प्रवेश किया तथा द्युतिभट्टारकने खड़े होकर नमस्कार करना आदि विधिसे उनकी पूजा की ॥२४॥ 'यह हमारे आचार्य चाहे जिसकी वन्दना करनेके लिए उद्यत हो जाते हैं।' यह जानकर द्युतिभट्टारकके शिष्योने उन सप्तर्षियोकी निन्दाका विचार किया ॥२५॥ तदनन्तर सम्यक् प्रकारसे स्तुति करनेमे तत्पर वे सप्तर्षि, जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना कर आकाशमार्गसे पुनः अपने स्थानको चले गये ॥२६॥ जब वे आकाशमे उड़े तब उन्हे चारण ऋद्धिके धारक जानकर द्युतिभट्टारकके शिष्य जो अन्य मुनि थे वे अपनी निन्दा-गर्हा आदि

१. शालिन म । २ नन्दनम् म. । वन्दनम् ख. ।

अर्हद्दत्ताय याताय जिनालयमिहान्तरे । द्युतिना गदितं दृष्टा साधवः स्युस्त्वयोत्तमाः ॥२८॥
वन्दिताः पूजिताः वा स्युर्महासत्त्वा महौजसः । मथुराकृतसंवासा [1]मयामा कृतसंकथाः ॥२९॥
महातपोधना दृष्टास्तेऽस्माभिः शुभचेष्टिताः । मुनयः परमोदारा वन्द्या गगनगामिनः ॥३०॥
ततः प्रभावमाकर्ण्य साधूनां श्रावकाधिपः । तदा विषण्णहृदयः पश्चात्तापेन तप्यते ॥३१॥
धिक् सोऽहमगृहीतार्थः सम्यग्दर्शनवर्जितः । अयुक्तोऽपसदाचारो न तुल्यो मेऽस्त्यधार्मिकः ॥३२॥
मिथ्यादृष्टिः कुतोऽस्त्यन्यो मत्तः प्रत्यपरोऽधुना । अभ्युत्थायार्चिता[2] नत्वा साधवो यन्न तर्पिताः ॥३३॥
साधुरूपं समालोक्य न मुञ्चत्यासनं तु यः । दृष्ट्वापमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ॥३४॥
पापोऽहं पापकर्मा च पापात्मा पापभाजनम् । यो वा निन्द्यतमः कश्चिज्जिनवाक्यबहिःकृतः ॥३५॥
शरीरे मर्मसंघाते तावन्मे दह्यते मनः । यावदञ्जलिमुद्घृत्य साधवस्ते न वन्दिताः ॥३६॥
अहंकारसमुत्थस्य पापस्यास्य न विद्यते । प्रायश्चित्तं परं तेषां मुनीनां वन्दनादृते ॥३७॥
अथ ज्ञात्वा समासन्नां[3] कार्तिकीं परमोत्सुकः । अर्हच्छ्रेष्ठी महादृष्टिर्नृपतुल्यपरिच्छदः ॥३८॥
निर्ज्ञातमुनिमाहात्म्यः स्वनिन्दाकरणोद्यतः । महर्षिपूजनं कर्तुं प्रस्थितो बन्धुभिः समम् ॥३९॥
रथकुञ्जरपादाततुरङ्गौघसमन्वितः । पूजां यौगेश्वरीं कर्तुमसौ याति स्म सत्वरम् ॥४०॥
समृद्ध्या परया युक्तः शुभध्यानपरायणः । कार्त्तिकामलसप्तम्यां प्राप्तः साप्तमुनं[4] पदम् ॥४१॥

करते हुए निर्मल हृदयको प्राप्त हुए अर्थात् जो मुनि पहले उन्हे उन्मार्गगामी समझकर उनकी निन्दाका विचार कर रहे थे वे ही मुनि अब उन्हे चारण ऋद्धिके धारक जानकर अपने अज्ञानकी निन्दा करने लगे तथा अपने चित्तकी कलुषताको उन्होंने दूर कर दिया ॥२७॥ इसी बीचमे अर्हद्दत्त सेठ जिन-मन्दिरमे आया सो द्युतिभट्टारकने उससे कहा कि आज तुमने उत्तम मुनि देखे होगे ? ॥२८॥ वे मुनि सबके द्वारा वन्दित है, पूजित है, महाधैर्यशाली हैं, एवं महाप्रतापी है। वे मथुराके निवासी है और उन्होने मेरे साथ वार्तालाप किया है ॥२९॥ महातपश्चरण ही जिनका धन है, जो शुभ चेष्टाओके धारक है, अत्यन्त उदार हैं, वन्दनीय है और आकाशमे गमन करनेवाले हैं ऐसे उन मुनियोके आज हमने दर्शन किये हैं ॥३०॥ तदनन्तर द्युतिभट्टारकसे साधुओका प्रभाव सुनकर अर्हद्दत्त सेठ बहुत ही खिन्न चित्त हो पश्चात्तापसे सन्तप्त हो गया ॥३१॥ वह विचार करने लगा कि यथार्थ अर्थको नही समझनेवाले मुझ मिथ्यादृष्टिको धिक्कार हो। मेरा अनिष्ट आचरण अयुक्त था, अनुचित था, मेरे समान दूसरा अधार्मिक नही है ॥३२॥ इस समय मुझसे बढकर दूसरा मिथ्यादृष्टि कौन होगा जिसने उठकर मुनियोंकी पूजा नही की तथा नमस्कार कर उन्हें आहारसे सन्तुष्ट नही किया ॥३३॥ जो मुनिको देखकर आसन नही छोड़ता है तथा देखकर उनका अपमान करता है वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है ॥३४॥ मै पापी हूँ, पापकर्मा हूँ, पापात्मा हूँ, पापका पात्र हूँ अथवा जिनागमकी श्रद्धासे दूर रहनेवाला जो कोई निन्द्यतम है वह मै हूँ ॥३५॥ जबतक मै हाथ जोड़कर उन मुनियोंकी वन्दना नही कर लेता तबतक शरीर एवं मर्मस्थलमे मेरा मन दाहको प्राप्त होता रहेगा ॥३६॥ अहंकारसे उत्पन्न हुए इस पापका प्रायश्चित्त उन मुनियोंकी वन्दनाके सिवाय और कुछ नही हो सकता ॥३७॥

अथानन्तर कार्तिकी पूर्णिमाको निकटवर्ती जानकर जिसकी उत्सुकता बढ़ रही थी, जो महासम्यग्दृष्टि था, राजाके समान वैभवका धारक था, मुनियोके माहात्म्यको अच्छी तरह जानता था, तथा अपनी निन्दा करनेमे तत्पर था ऐसा अर्हद्दत्त सेठ सप्तर्षियोकी पूजा करनेके लिए अपने बन्धुजनोके साथ मथुराकी ओर चला ॥३८-३९॥ रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोके समूहके साथ वह सप्तर्षियोकी पूजा करनेके लिए बड़ी शीघ्रतासे जा रहा था ॥४०॥ परम समृद्धिसे युक्त एवं शुभध्यान करनेमे तत्पर रहनेवाला वह सेठ कार्तिक शुक्ला सप्तमीके दिन सप्तर्षियोके स्थानपर

१ मया सार्धम् । २. चित्वा नुत्वा म । ३. समासन्न म । ४. साप्तमुनिम् म. ।

तत्राप्युत्तमसम्यक्त्वो विधाय मुनिवन्दनाम् । पूजोपकरणं कर्तुमुद्यतः सर्वयत्नतः ॥४२॥
प्रपानाटकसंगीतशालादिपरिराजितम् । जातं तदाश्रमस्थानं स्वर्गदेशमनोहरम् ॥४३॥
तं वृत्तान्तं समाकर्ण्य शत्रुघ्नः स्वतुरीयकः । महातुरङ्गमारूढः सप्तमुन्यन्तिकं ययौ ॥४४॥
मुनीनां परया भक्त्या पुत्रस्नेहाच्च पुष्कलात् । माताप्यस्य गता पश्चात् समुद्ग्राहितकोष्ठिका ॥४५॥
ततः प्रणम्य भक्तात्मा समदी रिपुमर्दनः । मुनीन् समाप्तनियमान् पारणार्थमयाचत ॥४६॥
तत्रोक्तं मुनिमुख्येन नरपुङ्गव कल्पितम् । उपेत्य भोक्तुमाहारं संयतानां न वर्त्तते ॥४७॥
अकृताकारिता भिक्षां मनसा नानुमोदिताम् । गृह्णतां विधिनां युक्तां तपः पुष्यति योगिनाम् ॥४८॥
ततो जगाद शत्रुघ्नः प्रसादं मुनिपुङ्गवाः । ममेदं कर्तुमर्हन्ति विज्ञापकसुवत्सलाः ॥४९॥
कियन्तमपि कालं मे नगर्यामिह तिष्ठत । शिवं सुभिक्षमेतस्यां प्रजानां येन जायते ॥५०॥
आगतेषु भवत्स्वेषा समृद्धा सर्वतोऽभवत् । नष्टापातेषु[1] नलिनी यथा विसरदुत्सवा ॥५१॥
इत्युक्त्वाचिन्तयच्छ्राद्धः कदा नु खलु वाञ्छितम् । अन्नं[2] दास्यामि साधुभ्यो विधिना सुसमाहितः ॥५२॥
अथ श्रेणिक शत्रुघ्नं निरीक्ष्यानतमस्तकम् । कालानुभावमाचख्यौ यथावन्मुनिसत्तमः ॥५३॥
धर्मनन्दनकालेषु व्ययं यातेष्वनुक्रमात् । भविष्यति प्रचण्डोऽत्र निर्धर्मसमयो महान् ॥५४॥
दुःपापण्डैरिदं जैनं शासनं परमोन्नतम् । तिरोधायिष्यते क्षुद्रैरजोभिर्भानुबिम्बवत् ॥५५॥

पहुँच गया ॥४१॥ वहाँ उत्तम सम्यक्त्वको धारण करनेवाला वह श्रेष्ठ मुनियोकी वन्दना कर पूर्ण प्रयत्नसे पूजाकी तैयारी करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४२॥ प्याऊ, नाटक-गृह तथा सगीत-शाला आदिसे सुशोभित वह आश्रमका स्थान स्वर्गप्रदेशके समान मनोहर हो गया ॥४३॥ यह वृत्तान्त सुन राजा दशरथका चतुर्थ पुत्र शत्रुघ्न महातुरंगपर सवार हो सप्तर्षियोके समीप गया ॥४४॥ मुनियोकी परम भक्ति और पुत्रके अत्यधिक स्नेहसे उसकी माता सुप्रजा भी खजाना लेकर उसके पीछे आ पहुँची ॥४५॥

तदनन्तर भक्त हृदय एवं हर्षसे भरे शत्रुघ्नने नियमको पूर्ण करनेवाले मुनियोको नमस्कार कर उनसे पारणा करनेकी प्रार्थना की ॥४६॥ तब उन मुनियोमे जो मुख्य मुनि थे उन्होने कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! जो आहार मुनियोके लिए संकल्प कर बनाया जाता है उसे ग्रहण करनेके लिए मुनि प्रवृत्ति नही करते ॥४७॥ जो न स्वयं की गयी है, न दूसरेसे करायी गयी और न मनसे जिसकी अनुमोदना की गयी है ऐसी भिक्षाको विधिपूर्वक ग्रहण करनेवाले योगियोंका तप पुष्ट होता है ॥४८॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठो ! आप प्रार्थना करनेवालोपर अत्यधिक स्नेह रखते है अतः हमारे ऊपर यह प्रसन्नता करनेके योग्य हैं कि आप कुछ काल तक मेरी इस नगरीमे और ठहरिए जिससे कि इसमे रहनेवाली प्रजाको आनन्ददायी सुभिक्षकी प्राप्ति हो सके ॥४९-५०॥ आप लोगोके आनेपर यह नगरी उस तरह सब ओरसे समृद्ध हो गयी है जिस तरह कि वर्षाके नष्ट हो जानेपर कमलिनी सब ओरसे समृद्ध हो जाती है—खिल उठती है ॥५१॥ इतना कहकर श्रद्धासे भरा शत्रुघ्न चिन्ता करने लगा कि मै प्रमादरहित हो विधिपूर्वक मुनियो-के लिए मनवांछित आहार कब दूँगा ॥५२॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक ! शत्रुघ्नको नतमस्तक देखकर उन उत्तम मुनिराजने उसके लिए यथायोग्य कालके प्रभावका निरूपण किया ॥५३॥ उन्होने कहा कि जब अनुक्रमसे तीर्थंकरोका काल व्यतीत हो जायेगा तब यहाँ धर्मकर्मसे रहित अत्यन्त भयंकर समय होगा ॥५४॥ दुष्ट पाखण्डी लोगोके द्वारा यह परमोन्नत जैन शासन उस तरह तिरोहित हो जायेगा जिस तरह कि धूलिके छोटे-छोटे कणोके द्वारा सूर्यका बिम्ब तिरोहित हो जाता है ॥५५॥

१. प्रातेषु म. । २. अन्य म. ।

श्मशानसदृशा ग्रामाः प्रेतलोकोपमा. पुरः । क्लिष्टा जनपदाः कुत्स्या भविष्यन्ति दुरीहिताः ॥५६॥
कुकर्मनिरतैः क्रूरैश्चौरैरिव निरन्तरम् । दु.पापण्डैरयं लोको भविष्यति समाकुलः ॥५७॥
महीतलं खलं द्रव्यपरिमुक्ताः कुटुम्बिनः । हिंसाक्लेशसहस्राणि भविष्यन्तीह सन्ततम् ॥५८॥
पितरौ प्रति नि.स्नेहाः पुत्रास्तौ च सुतान् प्रति । चौरा इव च राजानो भविष्यन्ति कलौ सति ॥५९॥
सुखिनोऽपि नराः केचिन् मोहयन्तः परस्परम् । कथाभिर्दुर्गतीशाभी रंस्यन्ते पापमानसाः ॥६०॥
नङ्क्ष्यन्त्यतिशयाः सर्वे त्रिदशागमनादय । कषायबहुले काले शत्रुघ्न ! समुपागते ॥६१॥
जातरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान् । संजुगुप्सां करिष्यन्ति महामोहान्विता जनाः ॥६२॥
अप्रशस्ते प्रशस्तत्वं मन्यमानाः कुचेतसः । भयपक्षे पतिष्यन्ति पतङ्गा इव मानवाः ॥६३॥
प्रशान्तहृदयान् साधून् निर्भर्त्स्य विहसोद्यताः[1] । मूढा मूढेषु दास्यन्ति केचिदन्नं प्रयत्नतः ॥६४॥
इत्थमेतं निराकृत्य प्राहूयान्यं[2] समागतम् । यतिनो मोहिनो देयं दास्यन्त्यहितभावनाः ॥६५॥
बीज शिलातले न्यस्तं सिच्यमानं सदापि हि । अनर्थक यथा दानं तथाशीलेषु गेहिनाम् ॥६६॥
अवज्ञाय मुनीन् गेही गेहिने यः प्रयच्छति । त्यक्त्वा स चन्दनं मूढो गृह्णात्येव विभीतकम् ॥६७॥
इति ज्ञात्वा समायातं काल दु.षमताधमम् । विधत्स्वात्महितं किंचित्स्थिरं[3] कार्यं शुभोदयम् ॥६८॥
नामग्रहणकोऽस्माकं भिक्षावृत्तिमवाससाम् । परिकल्पय तत्सारं तव द्रविणसंपदः ॥६९॥
आगमिष्यति काले सा श्रान्तानां त्यक्तवेश्मनाम् । भविष्यत्याश्रयो राजन् स्वगृहाशयसंमिता ॥७०॥

उस समय ग्राम श्मशानके समान, नगर यमलोकके समान और देश क्लेशसे युक्त निन्दित तथा दुष्ट चेष्टाओके करनेवाले होगे ॥५६॥ यह संसार चोरोके समान कुकर्ममे निरत तथा क्रूर, दुष्ट, पाषण्डी लोगोसे निरन्तर व्याप्त होगा ॥५७॥ यह पृथिवीतल दुष्ट तथा गृहस्थ निर्धन होगे साथ ही यहाँ हिंसा सम्बन्धी हजारो दु.ख निरन्तर प्राप्त होते रहेगे ॥५८॥ पुत्र, माता-पिताके प्रति और माता-पिता पुत्रोके प्रति स्नेहरहित होगे तथा कलिकालके प्रकट होनेपर राजा लोग चोरोके समान धनके अपहर्ता होगे ॥५९॥ कितने ही मनुष्य यद्यपि सुखी होगे तथापि उनके मनमे पाप होगा और वे दुर्गतिको प्राप्त करानेमे समर्थ कथाओसे परस्पर एक दूसरेको मोहित करते हुए क्रीडा करेंगे ॥६०॥ हे शत्रुघ्न ! कषाय बहुल समयके आनेपर देवागमन आदि समस्त अतिशय नष्ट हो जावेगे ॥६१॥ तीव्र मिथ्यात्वसे युक्त मनुष्य व्रतरूप गुणोसे सहित एवं दिगम्बर मुद्राके धारक मुनियोको देखकर ग्लानि करेगे ॥६२॥ अप्रशस्तको प्रशस्त मानते हुए कितने ही दुर्हृदय लोग भयके पक्षमे उस तरह जा पड़ेगे जिस तरह कि पतंगे अग्निमे जा पड़ते है ॥६३॥ हँसी करनेमे उद्यत कितने ही मूढ मनुष्य शान्त चित्त मुनियोंको तिरस्कृत कर मूढ़ मनुष्योके लिए आहार देवेंगे ॥६४॥ इस प्रकार अनिष्ट भावनाको धारण करनेवाले गृहस्थ उत्तम मुनिका तिरस्कार कर तथा मोही मुनिको बुलाकर उसके लिए योग्य आहार आदि देगे ॥६५॥ जिस प्रकार शिलातल-पर रखा हुआ बीज यद्यपि सदा सीचा जाये तथापि निरर्थक होता है—उसमे फल नही लगता है उसी प्रकार शीलरहित मनुष्योके लिए दिया हुआ गृहस्थोंका दान भी निरर्थक होता है ॥६६॥ जो गृहस्थ मुनियोकी अवज्ञा कर गृहस्थके लिए आहार आदि देता है वह मूर्ख चन्दनको छोड़कर बहेड़ा ग्रहण करता है ॥६७॥ इस प्रकार दु.षमताके कारण अधम कालको आया जान आत्माका हित करनेवाला कुछ शुभ तथा स्थायी कार्य कर ॥६८॥ तू नामी पुरुष है अतः निर्ग्रन्थ मुनियोंको भिक्षावृत्ति देनेका निश्चय कर। यही तेरी धन-सम्पदाका सार है ॥६९॥ हे राजन् ! आगे आनेवाले कालमे थके हुए मुनियोके लिए भिक्षा देना अपने गृहदानके समान एक बड़ा भारी आश्रय होगा

१ विहस्योद्यता. म॰। २. प्राहूयान्यसमागतं म । ३ स्थिरं कार्यं म. । क. पुस्तके ६८ त. ७१ पर्यन्ता. श्लोका न सन्ति ।

तस्माद्दानमिदं दत्त्वा वत्स त्वमधुना भज । सागारशीलनियमं कुरु जन्मार्थसंगतम् ॥७१॥
जायतां मधुरालोकः सम्यग्धर्मपरायणः । दयावात्सल्यसंपन्नो जिनशासनभावितः ॥७२॥
स्थाप्यन्तां जिनबिम्बानि पूजितानि गृहे गृहे । अभिषेकाः प्रवर्त्यन्तां विधिना पाल्यतां प्रजा ॥७३॥
सप्तर्षिप्रतिमा दिक्षु चतसृष्वपि यत्नत । नगर्यां कुरु शत्रुघ्न तेन शान्तिर्भविष्यति ॥७४॥
अद्यप्रभृति यद्गेहे बिम्बं जैनं न विद्यते । मारी भक्ष्यति तद्व्याघ्री यथानाथं कुरङ्गकम् ॥७५॥
यस्याङ्गुष्ठप्रमाणापि जैनेन्द्री प्रतियातना[1] । गृहे तस्य न मारी स्यात्तार्क्ष्यभीता यथोरगी ॥७६॥
यथाज्ञापयसीत्युक्ताः[2] शत्रुघ्नेन प्रमोदिना । समुत्पत्य नमो याताः साधवः साधुवाञ्छिताः ॥७७॥
अथ निर्वाणधामानि परिसृत्य प्रदक्षिणम् । मुनयो जानकीगेहमवतेरुः शुभायना. ॥७८॥
वहन्ती संमदं तुङ्गं श्रद्धादिगुणशालिनी । परमान्नेन तान् सीता विधियुक्तमपारयत्[3] ॥७९॥
जानक्या भक्तितो दत्तमन्नं सर्वगुणान्वितम् । भुक्त्वा पाणितले दत्त्वाशीर्वादं मुनयो ययुः ॥८०॥
नगर्या बहिरन्तश्च शत्रुघ्न प्रतिमास्तत. । अतिष्ठिपज्जिनेन्द्राणां प्रतिमारहितात्मनाम्[4] ॥८१॥
सप्तर्षिप्रतिमाश्चापि काष्ठासु चतसृष्वपि । अस्थापयन्मनोज्ञाङ्गा सर्वेतिकृतवारणाः ॥८२॥
पृष्ठे त्रिविष्टपस्यैव[5] पुरमन्यां न्यवेशयत् । मनोज्ञां सर्वत. स्फीतां सर्वोपद्रववर्जिताम् ॥८३॥
योजनत्रयविस्तारां सर्वतस्त्रिगुणां च यत् । [6]अधिकां मण्डलत्वेन स्थितामुत्तमतेजसम् ॥८४॥
आपातालतलाद् भिन्नमूला पृथ्व्यो मनोहराः । परिखा[7] भाति सुमहार्सालवासगृहोपमा ॥८५॥

इसलिए हे वत्स ! तू यह दान देकर इस समय गृहस्थके शीलव्रतका नियम धारण कर तथा अपना जीवन सार्थक बना ॥७०–७१॥ मथुराके समस्त लोग समीचीन धर्मके धारण करनेमे तत्पर, दया और वात्सल्य भावसे सम्पन्न तथा जिन शासनकी भावनासे युक्त हो ॥७२॥ घर-घरमे जिन-प्रतिमाएँ स्थापित की जावे, उनकी पूजाएँ हो, अभिषेक हो और विधिपूर्वक प्रजाका पालन किया जाये ॥७३॥ हे शत्रुघ्न ! इस नगरीकी चारो दिशाओमे सप्तर्षियोंकी प्रतिमाएँ स्थापित करो। उसीसे सब प्रकारकी शान्ति होगी ॥७४॥ आजसे लेकर जिस घरमे जिन-प्रतिमा नही होगी उस घरको मारी उस तरह खा जायेगी जिस तरह कि व्याघ्री अनाथ मृगको खा जाती है ॥७५॥ जिसके घरमे अँगूठा प्रमाण भी जिन-प्रतिमा होगी उसके घरमे गरुड़से डरी हुई सर्पिणीके समान मारीका प्रवेश नही होगा ॥७६॥ तदनन्तर 'जैसी आप आज्ञा करते है वैसा ही होगा' इस प्रकार हर्षसे युक्त सुग्रीवने कहा और उसके बाद उत्तम अभिप्रायको धारण करनेवाले वे सभी साधु आकाशमे उडकर चले गये ॥७७॥

अथानन्तर निर्वाण क्षेत्रोकी प्रदक्षिणा देकर शुभगतिको धारण करनेवाले वे मुनिराज सीताके घरमे उतरे ॥७८॥ सो अत्यधिक हर्षको धारण करनेवाली एवं श्रद्धा आदि गुणोसे सुशोभित सीताने उन्हे विधिपूर्वक उत्तम अन्नसे पारणा करायी ॥७९॥ जानकीके द्वारा भक्ति-पूर्वक दिये हुए सर्वगुणसम्पन्न अन्नको अपने हस्ततलमे ग्रहण कर तथा आशीर्वाद देकर वे मुनि चले गये ॥८०॥ तदनन्तर शत्रुघ्नने नगरके भीतर और बाहर सर्वत्र उपमारहित जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमाएँ स्थापित करायी ॥८१॥ और सुन्दर अवयवोकी धारक तथा समस्त ईतियोका निवारण करनेवाली सप्तर्षियोकी प्रतिमाएँ भी चारो दिशाओमे विराजमान करायी ॥८२॥ उसने एक दूसरी ही नगरीकी रचना करायी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्गके ऊपर ही रची गयी हो। वह सब ओरसे मनोहर थी, विस्तृत थी, सब प्रकारके उपद्रवोसे रहित थी, तीन योजन विस्तारवाली थी, सब ओरसे त्रिगुण थी, विशाल थी, मण्डलाकारमे स्थित थी और उत्तम तेजकी धारक थी ॥८३–८४॥ जिनकी जड़े पाताल तक फूटी थी ऐसी सुन्दर वहाँ की भूमियाँ थी तथा जो बडे-बड़े

---

१. प्रतिमा। २ -त्युक्त्वा म. ज.। ३ पारणा कारयामास। ४ उपमारहितानाम्। ५. पुरी ज.। ६. अधिकं म.। ७ परितो म.। ८. शाल म ।

उद्यानान्यधिकां शोभां दधुः पुष्पफलाकुलाम् । वाप्यः पद्मोत्पलच्छन्ना जाताः शकुनिनादिताः ॥८६॥
कैलासशिखराकाराः प्रासादाश्चारुलक्षणाः । विमानप्रतिमा रेजुर्विलोचनमलिम्लुचाः ॥८७॥
सुवर्णधान्यरत्नाढ्याः[1] सम्मेदशिखरोपमाः । नरेन्द्रख्यातयः श्लाघ्या जाताः सर्वकुटुम्बिनः ॥८८॥
राजानस्त्रिदशैस्तुल्या असमानविभूतयः । धर्मार्थकामसंसक्ताः साधुचेष्टापरायणाः ॥८९॥
प्रयच्छन्निच्छया तेषामाज्ञां विज्ञानसंगतः । रराज पुरि शत्रुघ्नः सुराणां वरुणो यथा ॥९०॥

आर्यागीतिच्छन्दः

एवं मथुरापुर्यां निवेशमत्यद्भुतं च सप्तर्षीणाम् ।
शृण्वन् कथयन्वापि प्राप्नोति जनश्चतुष्टयं भद्रतरम् ॥९१॥
साधुसमागमसक्ताः पुरुषाः सर्वमनीषितं सेवन्ते ।
तस्मात् साधुसमागममाश्रित्य सदारवेः समाभ्य दीप्ताः ॥९२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मथुरापुरीनिवेशर्षिदानगुणोपसर्गहननाभिधानं नाम द्विनवतितमं पर्व ॥९२॥



वृक्षोंके निवासगृहके समान जान पड़ती थी ऐसी परिखा उसके चारों ओर सुशोभित हो रही थी ॥८५॥ वहाँके बाग-बगीचे फूलों और फलोंसे युक्त अत्यधिक शोभाको धारण कर रहे थे और कमल तथा कुमुदोंसे आच्छादित वहाँकी वापिकाएँ पक्षियोंके नादसे मुखरित हो रही थीं ॥८६॥ जो कैलासके शिखरोंके समान थे, सुन्दर सुन्दर लक्षणोंसे युक्त थे, तथा नेत्रोंके चोर थे ऐसे वहाँके भवन विमानोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥८७॥ वहाँके सर्व कुटुम्बी सुवर्ण, अनाज तथा रत्न आदिसे सम्पन्न थे, सम्मेद शिखरकी उपमा धारण करते थे, राजाओंके समान प्रसिद्धिसे युक्त तथा अत्यन्त प्रशंसनीय थे ॥८८॥ वहाँके राजा देवोंके समान अनुपम विभूतिके धारक थे, धर्म अर्थ और काममें सदा आसक्त रहते थे तथा उत्तम चेष्टाओंके करनेमें निपुण थे ॥८९॥ इच्छानुसार उन राजाओंपर आज्ञा चलाता हुआ विशिष्ट ज्ञानी शत्रुघ्न मथुरा नगरीमें उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि देवोंपर आज्ञा चलाता हुआ वरुण सुशोभित होता है ॥९०॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि जो इस प्रकार मथुरापुरीमें सप्तर्षियोंके निवास और उनके आश्चर्यकारी प्रभावको सुनता अथवा कहता है वह शीघ्र ही चारों प्रकारके मंगलको प्राप्त होता है ॥९१॥ जो मनुष्य साधुओंके समागममें सदा तत्पर रहते हैं वे सर्व मनोरथोंको प्राप्त होते हैं इसीलिए हे सत्पुरुषो ! साधुओंका समागम कर सदा सूर्यके समान देदीप्यमान होओ ॥९२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मथुरापुरीमें सप्तर्षियोंके निवास, दान, गुण तथा उपसर्गके नष्ट होनेका वर्णन करनेवाला बानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९२॥



१. रत्नाढ्या: म. ।

त्रिनवतितमं पर्व

अथ रत्नपुरं नाम विजयार्द्धेऽस्ति दक्षिणम् । पुरं रत्नरथस्तत्र राजा विद्याधराधिपः ॥१॥
मनोरमेति तस्यास्ति दुहिता रूपशालिनी । पूर्णचन्द्राननाभिख्यमहिषीकुक्षिसंभवा ॥२॥
समीक्ष्य यौवनं तस्या नवं राजा सुचेतनः । वरान्वेषणशेमुष्या बभूव परमाकुलः ॥३॥
मन्त्रिभिः सह संगत्य स चक्रे सम्प्रधारणाम् । कस्मै योग्याय यच्छामः कुमारीमेतकामिति ॥४॥
एवं दिनेषु गच्छत्सु राज्ञि चिन्ताराशीकृते । कदाचिन्नारदः प्राप्तस्ततः स मानमाप च ॥५॥
तस्मै विदितनिःशेषलोकचेष्टितबुद्धये । राजा प्रस्तुतमाचख्यौ सुखासीनाय सादरम् ॥६॥
अवद्वारो जगौ राजन् विज्ञातो भवता न किम् । भ्राता युगप्रधानस्य पुंसो लाङ्गललक्ष्मणः ॥७॥
बिभ्राणः परमां लक्ष्मीं लक्ष्मणश्चारुलक्षणः । चक्रानुभावविनतसमस्तप्रतिमानवः ॥८॥
तस्येयं सदृशी कन्या हृदयानन्ददायिनी । ज्योत्स्ना कुमुदखण्डस्य यथा परमसुन्दरी ॥ ॥
एवं प्रभाषमाणेऽस्मिन् रत्नस्यन्दनसूनवः । क्रुद्धा हरिमनोवातवेगाद्या मानशालिनः ॥१०॥
स्मृत्वा स्वजनघातोत्थं वैरं प्रत्यग्रमुन्नतम् । जगुः कालाग्निवद्दीप्ताः परिस्फुरितविग्रहाः ॥११॥
अद्यैव प्रतिपत्याशु समाहूय दुरीहितः । अस्माभिर्यो विहन्तव्यस्तस्मै कन्या न दीयते ॥१२॥
इत्युक्ते राजपुत्रभ्रूविकारपरिचोदितैः । किङ्करौघैरवद्वारः पादाकर्षणमापितः ॥१३॥
नभस्तलं समुत्पत्य ततः सुरमुनिर्द्रुतम् । साकेतायां सुमित्राजमुपसृप्तो महादरः ॥१४॥
अस्य विस्तरतो वार्तां निवेद्य भुवनस्थिताम् । कन्याश्चाख्य विशेषेण व्यक्तकौतुकलक्षणः ॥१५॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामे रत्नपुर नामका नगर है वहाँ विद्याधरोका राजा रत्नरथ राज्य करता था ॥१॥ उसकी पूर्ण चन्द्रानना नामकी रानीके उदरसे उत्पन्न मनोरमा नामकी रूपवती पुत्री थी ॥२॥ पुत्रीका नव-यौवन देख विचारवान् राजा वरके अन्वेषणकी बुद्धिसे परम आकुल हुआ ॥३॥ 'यह कन्या किस योग्य वरके लिए देवे' इस प्रकार उसने मन्त्रियोके साथ मिलकर विचार किया ॥४॥ इस तरह राजाके चिन्ताकुल रहते हुए जब कितने ही दिन बीत गये तब किसी समय नारद आये और राजासे उन्होने सम्मान प्राप्त किया ॥५॥ जिनकी बुद्धि समस्त लोककी चेष्टाको जाननेवाली थी ऐसे नारद जब सुखसे बैठ गये तब राजाने आदरके साथ उनसे प्रकृत बात कही ॥६॥ इसके उत्तरमें अवद्वार नामके धारक नारदने कहा कि हे राजन् ! क्या आप इस युगके प्रधान पुरुष श्रीरामके भाई लक्ष्मणको नही जानते ? वह लक्ष्मण उत्कृष्ट लक्ष्मीको धारण करनेवाला है, सुन्दर लक्षणोसे सहित है तथा चक्रके प्रभावसे उसने समस्त शत्रुओको नतमस्तक कर दिया है ॥७-८॥ सो जिस प्रकार चन्द्रिका कुमुदवनको आनन्द देनेवाली है उसी प्रकार हृदयको आनन्द देनेवाली यह परम सुन्दरी कन्या उसके अनुरूप है ॥९॥ नारदके इस प्रकार कहनेपर रत्नरथके हरिवेग, मनोवेग तथा वायुवेग आदि अभिमानी पुत्र कुपित हो उठे ॥१०॥ आत्मीय जनोके घातसे उत्पन्न अत्यधिक नूतन वैरका स्मरण कर वे प्रलय कालकी अग्निके समान प्रदीप्त हो उठे तथा उनके शरीर क्रोधसे काँपने लगे। उन्होने कहा कि जिस दुष्टको आज ही जाकर तथा शीघ्र ही बुलाकर हम लोगोको मारना चाहिए उसके लिए कन्या नही दी जानी है ॥११-१२॥ इतना कहनेपर राजपुत्रोकी भौंहोके विकारसे प्रेरित हुए किंकरोके समूहने नारदके पैर पकडकर खींचना चाहा परन्तु उसी समय देवर्षि नारद शीघ्र ही आकाशतलमे उड़ गये और बडे आदरके साथ अयोध्या नगरीमे लक्ष्मणके समीप जा पहुँचे ॥१३-१४॥ पहले तो नारदने विस्तारके साथ लक्ष्मणके लिए समस्त ससारकी वार्ता सुनायी और उसके बाद

कन्यामदर्शयंश्चित्रे चित्रां दृक्चित्तहारिणीम् । त्रैलोक्यसुन्दरीशोभामेकीकृत्येव निर्मिताम् ॥१६॥
तां समालोक्य सौमित्रिः पुस्तनिष्कम्पलोचनः । अनन्यजस्य[1] वीरोऽपि परिप्राप्तोऽतिवश्यताम् ॥१७॥
अचिन्तयच्च यद्येतत्स्त्रीरत्नं न लभे ततः । इदं मे निष्फलं राज्यं शून्यं जीवितमेव वा ॥१८॥
उवाच चादरं बिभ्रद् भगवन् गुणकीर्तनम् । कुर्वन् मम कुमारैस्तैः कथं वा त्वं खलीकृतः ॥१९॥
प्रचण्डत्वमिदं तेषां पापानां विक्षिपाम्यहम् । असमीक्षितकार्याणां क्षुद्राणां निहतात्मनाम् ॥२०॥
व्रज स्वास्थ्यं रजः शुद्धं तव मूर्द्धानमाश्रितम् । पादस्तु शिरसि न्यस्तो मदीयेऽसौ महामुने ॥२१॥
इत्युक्त्वाह्वाय संरब्धो विराधितखगेश्वरम् । जगाद लक्ष्मणो रत्नपुरं गम्यं त्वरान्वितम् ॥२२॥
तस्मादेशय पन्थानमित्युक्तः स रणोत्कटः[2] । लेखैराह्वाय[3] यत् सर्वान् तीव्राज्ञ खेचराधिपान् ॥२३॥
महेन्द्रविन्ध्यकिष्किन्धमलयादिपुराधिपाः । विमानाच्छादिताकाशाः साकेतामागतास्ततः ॥२४॥
वृतस्तैः सुमहासैन्यैर्लक्ष्मणो विजयोन्मुखः । लोकपालैर्यथा लेखो ययौ पद्मपुरःसरः ॥२५॥
नानाशस्त्रदलग्रस्तदिवाकरमरीचयः । प्राप्ता रत्नपुरं भूपाः सितच्छत्रोपशोभिताः ॥२६॥
ततः परबलं प्राप्तं ज्ञात्वा रत्नपुरो नृपः । सार्कं समस्तसामन्तैः संख्यशुब्धुर्विनिर्ययौ ॥२७॥
तेन निष्क्रान्तमात्रेण महारमसधारिणा[4] । विस्तीर्णदक्षिणं सैन्यं क्षणं ग्रस्तमिवाभवत् ॥२८॥
चक्रक्रकचबाणासिकुन्तपाशगदादिभिः । बभूव गहनं तेषां युद्धमुद्धतयोद्भवम् ॥२९॥

मनोरमा कन्याकी वार्ता विशेष रूपसे बतलायी। उसी समय कौतुकके चिह्न प्रकट करते हुए नारदने चित्रपटमे अंकित वह अद्भुत कन्या दिखायी। वह कन्या नेत्र तथा हृदयको हरनेवाली थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो तीन लोककी सुन्दरियोकी शोभाको एकत्रित कर ही बनायी गयी हो ॥१५-१६॥ उस कन्याको देखकर जिसके नेत्र मृण्मय पुतलेके समान निश्चल हो गये थे ऐसा लक्ष्मण वीर होनेपर भी कामके वशीभूत हो गया ॥१७॥ वह विचार करने लगा कि यदि यह स्त्रीरत्न मुझे नही प्राप्त होता है तो मेरा यह राज्य निष्फल है तथा यह जीवन भी सूना है ॥१८॥ आदरको धारण करते हुए लक्ष्मणने नारदसे कहा कि हे भगवन् ! मेरे गुणोका निरूपण करते हुए आपको उन कुमारोने दुःखी क्यों किया ? ॥१९॥ कार्यका विचार नही करनेवाले उन हृदयहीन पापी क्षुद्र पुरुषोकी इस प्रचण्डताको मै अभी हाल नष्ट करता हूँ ॥२०॥ हे महामुने ! उन कुमारोने जो पादप्रहार किया है सो उसकी धूलि आपके मस्तकका आश्रय पाकर शुद्ध हो गयी है और उस पादप्रहारको मैं समझता हूँ कि वह मेरे मस्तकपर ही किया गया है अतः आप स्वस्थताको प्राप्त हों ॥२१॥ इतना कहकर क्रोधसे भरे लक्ष्मणने विराधित नामक विद्याधरोके राजाको बुलाकर कहा कि मुझे शीघ्र ही रत्नपुरपर चढाई करनी है ॥२२॥ इसलिए मार्ग दिखाओ। इस प्रकार कहनेपर कठिन आज्ञाको धारण करनेवाले उस रणवीर विराधितने पत्र लिखकर समस्त विद्याधर राजाओको बुला लिया ॥२३॥

तदनन्तर महेन्द्र, विन्ध्य, किष्किन्ध और मलय आदि पर्वतोंपर बसे नगरोके अधिपति, विमानोके द्वारा आकाशको आच्छादित करते हुए अयोध्या आ पहुँचे ॥२४॥ बहुत भारी सेनासे सहित उन विद्याधर राजाओंके द्वारा घिरा हुआ लक्ष्मण विजयके सम्मुख हो रामचन्द्रजीको आगे कर उस प्रकार चला जिस प्रकार कि लोकपालोसे घिरा हुआ देव चलता है ॥२५॥ जिन्होने नाना शस्त्रोके समूहसे सूर्यकी किरणें आच्छादित कर ली थी तथा जो सफेद छत्रोसे सुशोभित थे ऐसे राजा रत्नपुर पहुँचे ॥२६॥ तदनन्तर परचक्रको आया जान, रत्नपुरका युद्धनिपुण राजा समस्त सामन्तोके साथ बाहर निकला ॥२७॥ महावेगको धारण करनेवाले उस राजाने निकलते ही दक्षिणकी समस्त सेनाको क्षण-भरमे ग्रस्त-जैसा कर लिया ॥२८॥ तदनन्तर चक्र, क्रकच, बाण, खड्ग, कुन्त, पाश, गदा आदि शस्त्रोके द्वारा उन सबका उद्दण्डताके कारण गहन युद्ध हुआ ॥२९॥

१. कामस्य। २ शरणोत्कट म.। ३. राह्वाय -तत्सर्वान् -म। ४. वारिणा म.।

अप्सरःसंहतिर्योग्यनभोदेशव्यवस्थिता। मुमोचाद्भुतयुक्तेषु स्थानेषु कुसुमाञ्जली ॥३०॥
ततः परबलाम्भोधौ सौमित्रिर्वडवानलः। विजृम्भितुं समायुक्तो योधयादःपरिक्षयः ॥३१॥
रथा वरतुरङ्गाश्च नागाश्च मदतोयदाः। तृणवत्तस्य वेगेन दिशो दश समाश्रिताः ॥३२॥
युद्धक्रीडां क्वचिच्चक्रे शक्रशक्तिर्हलायुधः। किष्किन्धपार्थिवोऽन्यत्र परमः कपिलक्ष्मण ॥३३॥
अपरत्र प्रभाजालपरवीरो महाजवः। लाङ्गूलपाणिरुग्रात्मा विविधाद्भुतचेष्टितः ॥३४॥
एवमेतैर्महायोधैर्विजयार्द्धबलं महत्। शरत्प्रभातमेघाभं क्वापि[1] नीतं मरुत्समैः ॥३५॥
ततोऽधिपतिना सार्कं विजयाद्रिभुवो नृपाः। स्वस्थानाभिमुखा नेशुः प्रक्षीणप्रधनेप्सिताः ॥३६॥
दृष्ट्वा पलायमानांस्तान् वीरान् रत्नरथात्मजान्। परमामर्षसंपूर्णान्नारदः कलहप्रियः ॥३७॥
कृत्वा कलकलं व्योम्नि कृततालमहास्वनः। जगाद विस्फुरद्गात्रः[2] स्मितास्यो विकचेक्षणः ॥३८॥
एते ते चपलाः क्रुद्धा दुश्चेष्टा मन्दबुद्धयः। पलायन्ते न संसोढा यैर्लक्ष्मणगुणोन्नतिः ॥३९॥
दुर्विनीतान् प्रसह्यैतानरं गृह्णीत मानवाः। परामवं तदा कृत्वा क्वाधुना मे पलाय्यते ॥४०॥
इत्युक्ते पृष्ठतस्तेषामुपात्तजयकीर्तयः। प्रतापपरमा धीराः प्रस्थिता ग्रहणोद्यताः ॥४१॥
प्रत्यासन्नेषु तेष्वासीत्तदा रत्नपुरं पुरम्। आसन्नपार्श्वसंसक्तमहादावदवनोपमम् ॥४२॥
तावत् सुकन्यका रत्नभूता तत्र मनोरमा। सखीभिरावृता दृष्टमात्रलोकमनोरमा ॥४३॥

आकाशमे योग्य स्थानपर स्थित अप्सराओके समूह आश्चर्यसे युक्त स्थानोपर पुष्पांजलियाँ छोड रहे थे ॥३०॥ तत्पश्चात् जो योधारूपी जलजन्तुओका क्षय करनेवाला था ऐसा लक्ष्मणरूपी वड़वानल परचक्ररूपी समुद्रके बीच अपना विस्तार करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३१॥ रथ, उत्तमोत्तम घोडे, तथा मदरूपी जलको बहानेवाले हाथी, उसके वेगसे तृणके समान दशों दिशाओ-मे भाग गये ॥३२॥ कही इन्द्रके समान शक्तिको धारण करनेवाले राम युद्ध-क्रीडा करते थे तो कही वानररूप चिह्नसे उत्कृष्ट सुग्रीव युद्धकी क्रीड़ा कर रहे थे ॥३३॥ और किसी एक जगह प्रभाजालसे युक्त, महावेगशाली उग्रहृदय एवं नाना प्रकारकी अद्भुत चेष्टाओको करनेवाला हनूमान् युद्धक्रीड़ाका अनुभव कर रहा था ॥३४॥ जिस प्रकार शरदृतुके प्रातःकालीन मेघ वायुके द्वारा कही ले जाये जाते हैं—तितर-बितर कर दिये जाते है उसी प्रकार इन महायोद्धाओ-के द्वारा विजयार्धं पर्वतकी बड़ी भारी सेना कही ले जायी गयी थी—पराजित कर इधर-उधर खदेड़ दी गयी थी ॥३५॥ तदनन्तर जिनके युद्धके मनोरथ नष्ट हो गये थे ऐसे विजयार्ध पर्वत-परके राजा अपने अधिपति—स्वामीके साथ अपने-अपने स्थानोकी ओर भाग गये ॥३६॥ तीव्र क्रोधसे भरे, रत्नरथके उन वीर पुत्रोको भागते हुए देखकर जिन्होने आकाशमे ताली पीटनेका बड़ा शब्द किया था, जिनका शरीर चंचल था, मुख हास्यसे युक्त था, तथा नेत्र खिल रहे थे ऐसे कलहप्रिय नारदने कल-कल शब्द कर कहा कि ॥३७-३८॥ अहो! ये वे ही चपल, क्रोधी, दुष्ट चेष्टाके धारक तथा मन्दबुद्धिसे युक्त रत्नरथके पुत्र भागे आ रहे है जिन्होने कि लक्ष्मणके गुणोंकी उन्नति सहन नही की थी ॥३९॥ अरे मानवो! इन उद्दण्ड लोगोको शीघ्र ही बलपूर्वक पकड़ो। उस समय मेरा अनादर कर अब कहाँ भागना हो रहा है? ॥४०॥ इतना कहनेपर जिन्होने जीतका यश प्राप्त किया था तथा जो प्रतापसे श्रेष्ठ थे, ऐसे कितने ही धीर-वीर उन्हे पकड़नेके लिए उद्यत हो उनके पीछे दौडे ॥४१॥ उस समय उन सबके निकटस्थ होनेपर रत्नपुर नगर उस वनके समान हो गया था जिसके कि समीप बहुत बड़ा दावानल लग रहा था ॥४२॥

अथानन्तर उसी समय, जो दृष्टिमे आये हुए मनुष्यमात्रके मनको आनन्दित करनेवाली थी, घबड़ायी हुई थी, घोडोंके रथपर आरूढ थी, तथा महाप्रेमके वशीभूत थी ऐसी रत्नस्वरूप

---

१. भङ्क्त्वा म। २. गात्रस्मितास्यो म।

संभ्रान्ताश्वरथारूढा महाप्रेमवशीकृता । सौमित्रिमुपसंपन्ना पौलोमीव बिडौजसम्[1] ॥४४॥
तां प्रसादनसंयुक्तां प्रसाद्यां प्राप्य लक्ष्मणः । प्रशान्तकलुषो जातो भ्रुकुटीरहिताननः ॥४५॥
ततो रत्नरथः[2] साकं सुतैर्मानविवर्जितः । प्रीत्या निर्गम्य नगरादुपायनसमन्वितः ॥४६॥
देशकालविधानज्ञो दृष्टात्मपरपौरुषः । संगत्य सुष्टु तुष्टाव मृगनाथार्क्ष्यकेतनौ ॥४७॥
अन्तरेऽत्र समागत्य सुमहाजनमध्यगम् । नारदोऽक्षेपयद्रत्नरथं सस्मितभाषितैः ॥४८॥
का वार्त्ता तेऽधुना रत्नरथ पांसुरथोऽथ वा । [3]कच्चित्कुशलमुत्तुङ्गभटगर्जितकारिणः ॥४९॥
नूनं रत्नरथो न त्वं स हि गर्वमहाचलः[4] । नारायणाङ्घ्रिसेवाढ्यो भवान् कोऽप्यपरो नृपः ॥५०॥
कृत्वा कहकहाशब्दं कराहतकरः पुनः । जगौ नो स्थीयते कच्चित्सुखं रत्नरथात्मजाः ॥५१॥
सोऽयं नारायणो यस्य भवद्भिस्तादृशं तदा । गदितं हृदयग्राहि स्वगृहोद्धतचेष्टितैः ॥५२॥
एवं सत्यपि तैरुक्तं त्वयि नारद कोपिने । महापुरुषसंपर्कः प्राप्तोऽस्माभिः सुदुर्लभः ॥५३॥
इति नर्मसमेताभिः कथाभिः क्षणमात्रकम् । अवस्थाय पुरं सर्वे विविशुः परमर्द्धयः ॥५४॥

इन्द्रवज्रा

श्रीदामनामा रतितुल्यरूपा रामाय दत्ता सुमनोऽभिरामा ।
रामामिमां प्राप्य परं स रेमे मेरुप्रभावः कृतपाणियोगः ॥५५॥

उपजातिः

दत्ता तथा रत्नरथेन जाता स्वयं [5]दशास्यक्षयकारणाय ।
मनोरमार्थप्रतिपन्ननामा तयोश्च वृत्ता परिणीतिरस्या ॥५६॥

मनोरमा कन्या वहाँ लक्ष्मणके समीप उस प्रकार आयी जिस प्रकार कि इन्द्राणी इन्द्रके पास जाती है ॥४३–४४॥ जो प्रसाद करनेवाले लोगोंसे सहित थी तथा जो स्वयं प्रसाद करानेके योग्य थी ऐसी उस कन्याको पाकर लक्ष्मणकी कलुषता शान्त हो गयी तथा मुख भ्रकुटियोंसे रहित हो गया ॥४५॥ तत्पश्चात् जिसका मान नष्ट हो गया था, जो देशकालकी विधिको जाननेवाला था, जिसने अपना-पराया पौरुष देख लिया था और जो योग्य भेंटसे सहित था ऐसे राजा रत्नरथने प्रीतिपूर्वक पुत्रोंके साथ नगरसे बाहर निकलकर सिंह और गरुडकी पताकाओंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणकी अच्छी तरह स्तुति की ॥४६–४७॥ इसी बीचमें नारदने आकर बहुत बड़ी भीड़के मध्यमें स्थित रत्नरथको मन्द हास्यपूर्ण वचनोंसे इस प्रकार लज्जित किया कि अहो! अब तेरा क्या हाल है? तू रत्नरथ था अथवा रजोरथ? तू बहुत बड़े योद्धाओंके कारण गर्जना कर रहा था सो अब तेरी कुशल तो है? ॥४८–४९॥ जान पड़ता है कि तू गर्वका महा-पर्वतस्वरूप वह रत्नरथ नहीं है किन्तु नारायणके चरणोंकी सेवामें स्थित रहनेवाला कोई दूसरा ही राजा है ॥५०॥ तदनन्तर कहकहा शब्द कर तथा एक हाथसे दूसरे हाथकी ताली पीटते हुए कहा कि अहो! रत्नरथके पुत्रो! सुखसे तो हो? ॥५१॥ यह वही नारायण है कि जिसके विषयमें उस समय अपने घरमें ही उद्धत चेष्टा दिखानेवाले आप लोगोंने उस तरह हृदयको पकड़नेवाली बात कही थी ॥५२॥ इस प्रकार यह होनेपर भी उन सबने कहा कि हे नारद! तुम्हें कुपित किया उसीका यह फल है कि हम लोगोंको जिसका मिलना अत्यन्त दुर्लभ था ऐसा महापुरुषोंका सम्पर्क प्राप्त हुआ ॥५३॥ इस प्रकार विनोदपूर्ण कथाओंसे वहाँ क्षणभर ठहरकर सब लोगोंने बड़े वैभवके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥५४॥ उसी समय जो रतिके समान रूपकी धारक थी तथा देवोंको भी आनन्दित करनेवाली थी ऐसी श्रीदामा नामकी कन्या रामके लिए दी गयी। ऐसी स्त्रीको पाकर जिनका मेरुके समान प्रभाव था तथा जिन्होंने उसका पाणिग्रहण किया था ऐसे श्रीराम अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥५५॥ तदनन्तर राजा रत्नरथने रावणका क्षय करनेवाले लक्ष्मण-

१ इन्द्रम्। २ सारं म। ३. केचित् म। ४. महावल. ज.। ५. दशास्यक्षणकरणाय म.।

एवं प्रचण्डा अपि यान्ति [1]साम रत्नान्यनर्घाणि च संश्रयन्ते ।
पुण्यानुभावेन यतो जनानां ततः कुरुध्व रविनिर्मलं तत् ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मनोरमालभाभिधान नाम त्रिनवतितमं पर्व ॥९३॥



के लिए सार्थक नामवाली मनोरमा कन्या दी और उन दोनोका उत्तम पाणिग्रहण हुआ ॥५६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यतश्च इस तरह मनुष्योके पुण्य प्रभावसे अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी शान्तिको प्राप्त हो जाते हैं और अमूल्य रत्न उन्हे प्राप्त होते रहते है इसलिए हे भव्यजनो ! सूर्यके समान निर्मल पुण्यका सचय करो ॥५७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे मनोरमाकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला तेरानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९३॥



१. नाम म क, ख, ज ।

चतुर्णवतितमं पर्व

अन्येऽपि[1] दक्षिणश्रेण्यां विजयार्धस्य खेचराः । शस्त्रान्धकारिते संख्ये लक्ष्मणेन वशीकृताः ॥१॥
अत्यन्तदुःसहाः सन्तो महापन्नगसंनिभाः । शौर्यक्ष्वेडविनिर्मुक्ता जाता रामानुसेविनः ॥२॥
नामानि राजधानीनां तासां स्यातानि कानिचित् । कीर्तयिष्यामि ते राजन् स्वःपुरीसमतेजसाम् ॥३॥
पुरं रविनिभं नाम तथा वह्निप्रभं शुभम् । काञ्चनं मेघसंज्ञं च तथा च शिवमन्दिरम् ॥४॥
[2]गन्धर्वगीतममृतं पुरं लक्ष्मीधरं तथा । किन्नरोद्गीतसंज्ञं च जीमूतशिखरं परम् ॥५॥
मर्त्यानुगीतं चक्राह्वं विश्रुतं रथनूपुरम् । श्रीमद्बहुरवाभिख्यं चारुश्रीमलयश्रुतिम् ॥६॥
श्रीगृहं[3] भास्कराभं च तथारिंजयसंज्ञकम् । ज्योतिःपुरं शशिच्छायं गान्धारमलयं घनम् ॥७॥
सिंहस्थानं मनोज्ञं च भद्रं श्रीविजयस्वनम् । कान्तं यक्षपुरं रम्यं तिलकस्थानमेव च ॥८॥
परमाण्येवमादीनि पुराणि पुरुषोत्तम । परिक्रान्तानि भूरीणि लक्ष्मणेन महात्मना ॥९॥
प्रसाध्य धरणीं सर्वां रत्नैः सप्तभिरन्वितः । नारायणपदं कृत्स्नं प्राप लक्ष्मणसुन्दरः ॥१०॥
चक्रं छत्रं धनुः शक्तिर्गदा मणिरसिस्तथा । एतानि सप्त रत्नानि परिप्राप्तानि लक्ष्मणम् ॥११॥
उवाच श्रेणिको भूपो भगवंस्त्वत्प्रसादतः । रामलक्ष्मणयोर्ज्ञातं माहात्म्यं विधिना मया ॥१२॥
अधुना ज्ञातुमिच्छामि लवणाङ्कुशसंभवम् । सौमित्रिपुत्रसंभूतिं तथा तद्वक्तुमर्हसि ॥१३॥
ततो मुनिगणस्वामी जगाद परमस्वनम् । शृणु वक्ष्यामि ते राजन् कथावस्तु मनीषितम् ॥१४॥
युगप्रधाननरयोः पद्मलक्ष्मणयोस्तयोः । निष्कण्टकमहाराज्यजातभोगोपयुक्तयोः ॥१५॥
व्रजन्त्यहानि पक्षाश्च मासा वर्षयुगानि च । दोदुन्दकामराज्ञातसुमहासुखसक्तयोः ॥१६॥

अथानन्तर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें रत्नरथके सिवाय जो अन्य विद्याधर थे शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त युद्धमें लक्ष्मणने उन सबको भी वश कर लिया ॥१॥ जो विद्याधर पहले महानागके समान अत्यन्त दुःसह थे वे अब शूर-वीरतारूपी विषसे रहित हो रामके सेवक हो गये ॥२॥ हे राजन् ! अब मैं स्वर्गके समान तेजको धारण करनेवाली उन नगरियोंके कुछ नाम तेरे लिए कहूँगा सो श्रवण कर ॥३॥ रविप्रभ, वह्निप्रभ, कांचन, मेघ, शिवमन्दिर, गन्धर्वगीत, अमृतपुर, लक्ष्मीधर, किन्नरोद्गीत, जीमूतशिखर, मर्त्यानुगीत, चक्रपुर, रथनूपुर, बहुरव, मलय, श्रीगृह, भास्कराभ, अरिंजय, ज्योतिःपुर, शशिच्छाय, गान्धार, मलय, सिंहपुर, श्रीविजयपुर, यक्षपुर और तिलकपुर । हे पुरुषोत्तम ! इन्हें आदि लेकर अनेक उत्तमोत्तम नगर उन महापुरुष लक्ष्मणने वशमें किये ॥४–९॥ इस प्रकार लक्ष्मणसुन्दर समस्त पृथिवीको वश कर सात रत्नोंसे सहित होता हुआ सम्पूर्ण नारायण पदको प्राप्त हुआ ॥१०॥ चक्र, छत्र, धनुष, शक्ति, गदा, मणि और खड्ग ये सात रत्न लक्ष्मणको प्राप्त हुए थे ॥११॥ [तथा हल, मुसल, गदा और रत्नमाला ये चार रत्न रामको प्राप्त थे ।] तदनन्तर श्रेणिकने गौतम स्वामीसे कहा कि हे भगवन् ! मैंने आपके प्रसादसे विधिपूर्वक राम और लक्ष्मणका माहात्म्य जान लिया है अब लवणांकुशकी उत्पत्ति तथा लक्ष्मणके पुत्रोंका जन्म जानना चाहता हूँ सो आप कहनेके योग्य हैं ॥१२–१३॥

तदनन्तर मुनिसंघके स्वामी श्री गौतम गणधरने उच्चस्वरमें कहा कि हे राजन् ! सुन, मैं तेरी इच्छित कथावस्तु कहता हूँ ॥१४॥ अथानन्तर युगके प्रधान पुरुष जो राम, लक्ष्मण थे वे निष्कण्टक महाराज्यसे उत्पन्न भोगोपभोगकी सामग्रीसे सहित थे तथा दोदुन्दक नामक देवके द्वारा अनुज्ञात महासुखमें आसक्त थे । इस तरह उनके दिन, पक्ष, मास, वर्ष और युग व्यतीत हो

---

१. अन्योऽपि म. । २. गान्धर्वं म. । ३. श्रीगुह म. ।

सुरस्त्रीभिः समानानां स्त्रीणां सत्कुलजन्मनाम् । सहस्राण्यवबोध्यानि दश सप्त च लक्ष्मणे ॥१७॥
तासामष्टौ महादेव्यः कीर्तिश्रीरतिसंनिभाः । गुणशीलकलावत्यः सौम्याः सुन्दरविभ्रमाः ॥१८॥
तासां जगत्प्रसिद्धानि कीर्त्यमानानि भूपते । शृणु नामानि चारूणि यथावदनुपूर्वशः ॥१९॥
राज्ञः श्रीद्रोणमेघस्य विशल्याङ्गा सुतादितः । ततो रूपवती ख्याता प्रतिरूपविवर्जिता ॥२०॥
तृतीया वनमालेति वसन्तश्रीयुतेव सा । अन्या कल्याणमालाख्या नामाख्यातमहागुणा ॥२१॥
पञ्चमी रतिमालेति रतिमालेव रूपिणी । षष्ठी च जितपद्मेति जितपद्मा मुखश्रिया[1] ॥२२॥
अन्या भगवती नाम चरमा च मनोरमा । अग्रपत्न्य इमा अष्टावुक्ता गरुडलक्ष्मणः ॥२३॥
दयिताष्टसहस्री तु पद्मामरयामरीसमा । चतस्रश्च महादेव्यो जगत्प्रख्यातकीर्तयः ॥२४॥
प्रथमा जानकी ख्याता द्वितीया च प्रभावती । ततो रतिनिभाभिख्या श्रीदामा च रमा स्मृता ॥२५॥
एतासां च समस्तानां मध्यस्था चारुलक्षणा[2] । जानकी शोभतेऽत्यर्थं सतारेन्दुकला यथा ॥२६॥
द्वे शते सत्यमर्द्धं च पुत्राणां तार्क्ष्यलक्ष्मणः । तेषां च कीर्तयिष्यामि शृणु नामानि कानिचित् ॥२७॥
वृषभो धरणश्चन्द्रः शरभो मकरध्वजः । धारणो हरिनागश्च श्रीधरो मदनोऽच्युतः ॥२८॥
तेषामष्टौ प्रधानाश्च कुमाराश्चारुचेष्टिताः । अनुरक्ता गुणैर्येषामनन्यमनसो जनाः ॥२९॥
विशल्यासुन्दरीसूनुः प्रथमः श्रीधरः स्मृतः । असौ पुरि विनीतायां राजते दिवि चन्द्रवत् ॥३०॥
ज्ञेयो रूपवतीपुत्रः पृथिवीतिलकाभिधः । पृथिवीतलविख्यातः पृथ्वीं कान्तिं समुद्वहन् ॥३१॥
पुत्रः कल्याणमालाया बहुकल्याणभाजनम् । बभूव मङ्गलाभिख्यो मङ्गलैकक्रियोदितः ॥३२॥
विमलप्रभनामाभूत् पद्मावत्यां शरीरजः । तनयोऽर्जुनवृक्षाख्यो वनमालासमुद्भवः ॥३३॥

गये ॥१५–१६॥ जो देवांगनाओंके समान थीं तथा उत्तम कुलमें जिनका जन्म हुआ था ऐसी सत्तरह हजार स्त्रियाँ लक्ष्मणकी थीं ॥१७॥ उन स्त्रियोंमें कीर्ति, लक्ष्मी और रतिकी समानता प्राप्त करनेवाली गुणवती, शीलवती, कलावती, सौम्य और सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाली आठ महादेवियाँ थीं ॥१८॥ हे राजन् ! अब मैं यथाक्रमसे उन महादेवियोंके सुन्दर नाम कहता हूँ सो सुन ॥१९॥ सर्वप्रथम राजा द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या, उसके अनन्तर उपमासे रहित रूपवती, फिर तीसरी वनमाला, जो कि वसन्तकी लक्ष्मीसे मानो सहित ही थी, जिसके नामसे ही महागुणोंकी सूचना मिल रही थी ऐसी चौथी कल्याणमाला, जो रतिमालाके समान रूपवती थी ऐसी पाँचवीं रतिमाला, जिसने अपने मुखसे कमलको जीत लिया था ऐसी छठी जितपद्मा, सातवीं भगवती और आठवीं मनोरमा ये लक्ष्मणकी आठ प्रमुख स्त्रियाँ थीं ॥२०–२३॥ रामचन्द्रजीको देवागनाओंके समान आठ हजार स्त्रियाँ थीं । उनमें जगत्-प्रसिद्ध कीर्तिको धारण करनेवाली चार महादेवियाँ थीं ॥२४॥ प्रथम सीता, द्वितीय प्रभावती, तृतीय रतिनिभा और चतुर्थ श्रीदामा ये उन महादेवियोंके नाम हैं ॥२५॥ इन सब स्त्रियोंके मध्यमें स्थित सुन्दर लक्षणोंवाली सीता, ताराओंके मध्यमें स्थित चन्द्रकलाके समान सुशोभित होती थी ॥२६॥ लक्ष्मणके अढ़ाई सौ पुत्र थे उनमें-से कुछके नाम कहता हूँ सो सुन ॥२७॥ वृषभ, धरण, चन्द्र, शरभ, मकरध्वज, धारण, हरिनाग, श्रीधर, मदन और अच्युत ॥२८॥ जिनके गुणोंमें अनुरक्त हुए पुरुष अनन्यचित्त हो जाते थे ऐसे सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले आठ कुमार उन पुत्रोंमें प्रमुख थे ॥२९॥

उनमें-से श्रीधर, विशल्या सुन्दरीका पुत्र था जो अयोध्यापुरीमें उस प्रकार सुशोभित होता था जिस प्रकार कि आकाशमें चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३०॥ रूपवतीके पुत्रका नाम पृथिवीतिलक था जो उत्तम कान्तिको धारण करता हुआ पृथिवीतलपर अत्यन्त प्रसिद्ध था ॥३१॥ कल्याणमालाका पुत्र मंगल नामसे प्रसिद्ध था वह अनेक कल्याणोंका पात्र था तथा मांगलिक क्रियाओंके करनेमें सदा तत्पर रहता था ॥३२॥ पद्मावतीके विमलप्रभ नामका पुत्र हुआ था ।

१. सुखश्रिया म. । २. लक्ष्मणा म. ।

अतिवीर्यस्य तनया श्रीकेशिनमसूत च । आत्मजो भगवत्याश्च सत्यकीर्त्तिः प्रकीर्त्तितः ॥३४॥
सुपार्श्वकीर्त्तिनामानं सुतं प्राप मनोरमा । सर्वे चैते महासत्त्वाः शस्त्रशास्त्रविशारदाः ॥३५॥
नखमांसवदेतेषां भ्रातॄणां संगतिर्दृढा । सर्वत्र शस्यते लोके समानोचितचेष्टिता ॥३६॥
अन्योन्यहृदयासीनाः प्रेमनिर्भरचेतसः । अष्टौ दिवीव वसवो रेमिरे स्वेप्सितं पुरि ॥३७॥
पूर्वं जनितपुण्यानां प्राणिनां शुभचेतसाम् । आरभ्य जन्मतः सर्वं जायते सुमनोहरम् ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं च कार्त्स्न्येन कुमारकोट्यः स्मृता नरेन्द्रप्रभवाश्चतस्त्र. ।
कोट्यर्द्धयुक्ताः पुरि तत्र शक्त्या ख्याता नितान्तं परया मनोज्ञाः ॥३९॥

आर्या

नानाजनपदनिरतं परिगतमुकुटोत्तमाङ्गकं नृपचक्रम् ।
षोडशसहस्रसंख्यं बलहरिचरणानुगं स्मृतं रवितेजः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलक्ष्मणविभूतिदर्शनोयाभिधानं नाम
चतुर्णवतितमं पर्व ॥९४॥



वनमालाने अर्जुनवृक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया था ॥३३॥ राजा अतिवीर्यकी पुत्रीने श्रीकेशी नामक पुत्र उत्पन्न किया था। भगवतीका पुत्र सत्यकीर्ति इस नामसे प्रसिद्ध था ॥३४॥ और मनोरमाने सुपार्श्वकीर्ति नामक पुत्र प्राप्त किया था। ये सभी कुमार महाशक्तिशाली तथा शस्त्र और शास्त्र दोनोमे निपुण थे ॥३५॥ इन सब भाइयोकी नख और मासके समान सुदृढ संगति थी तथा इन सबकी समान एवं उचित चेष्टा लोकमे सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती थी ॥३६॥ जो परस्पर एक दूसरेके हृदयमे विद्यमान थे तथा जिनके चित्त प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे ये आठो कुमार स्वर्गमे आठ वसुओंके समान नगरमे अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥३७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिन्होने पूर्व पर्यायमे पुण्य उत्पन्न किया है तथा जिनका चित्त शुभभाव रूप रहा है ऐसे प्राणियोकी समस्त चेष्टाएँ जन्मसे ही अत्यन्त मनोहर होती है इस प्रकार उस नगरीमे सब मिलाकर साढ़े चार करोड़ राजकुमार थे जो उत्कृष्ट शक्तिसे प्रसिद्ध तथा अत्यन्त मनोहर थे ॥३८-३९॥ जो नाना देशोमे निवास करते थे, जिनके मस्तकपर मुकुट बँधे हुए थे, तथा जिनका तेज सूर्यके समान था ऐसे सोलह हजार राजा राम और लक्ष्मणके चरणोकी सेवा करते थे ॥४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणकी
विभूति दिखानेवाला चौरानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९४॥



पञ्चनवतितमं पर्व

एवं दिनेषु गच्छत्सु भोगसंभारयोगिषु । धर्मार्थकामसंबन्धनितान्तरतिकारिषु ॥१॥
विमानाभेऽन्यदा सुप्ता भवने जानकी सुखम् । शयनीये शरन्मेघमालासमितमार्दवे ॥२॥
अपश्यत् पश्चिमे यामे स्वप्नमम्भोजलोचना । दिव्यतूर्यनिनादैश्च मङ्गलैर्बोधमागता ॥३॥
ततोऽतिविमले जाते प्रभाते संशयान्विता । कृतदेहस्थितिः कान्तमियाय सुसखीवृता ॥४॥
अपृच्छच्च मया नाथ स्वप्नो योऽद्य निरीक्षितः । अर्थं कथयितुं तस्य [1]लब्धवर्ण त्वमर्हसि ॥५॥
शरदिन्दुसमच्छायौ क्षुब्धसागरनिःस्वनौ । कैलासशिखराकारौ सर्वालंकारभूषितौ ॥६॥
कान्तिमत्सितसद्दंष्ट्रौ प्रवरौ शरभोत्तमौ । प्रविष्टौ मे मुखं मन्ये विलसत्सितकेसरौ ॥७॥
शिखरात् पुष्पकस्याथ सम्भ्रमेणोरुणान्विता । वातनुन्ना पताकेवापतितास्मि किल क्षितौ ॥८॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचच्छरभद्वयदर्शनात् । [2]प्रवरोर्वचिरेणैव पुत्रयुग्ममवाप्स्यसि[3] ॥९॥
पतनं पुष्पकस्याग्राद्दयिते न प्रशस्यते । अथवा शमदानस्थाः प्रयान्तु प्रशमं ग्रहाः ॥१०॥
वसन्तोऽथ परिप्राप्तस्तिलकामुक्तकङ्कटः । नीपनागेश्वरारूढः सहकारशरासनः ॥११॥
पद्मनाराचसंयुक्तः केसरापूरितेषुधिः । गीयमानोऽमलश्लोकैर्मधुव्रतकदम्बकैः ॥१२॥
कदम्बघनवातेन हारिणा निःश्वसन्निव । मल्लिकाकुसुमोद्योतैः शत्रूनन्यान् हसन्निव ॥१३॥

अथानन्तर इस प्रकार भोगोके समूहसे युक्त तथा धर्म, अर्थ और कामके सम्बन्धसे अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करनेवाले दिनोके व्यतीत होनेपर किसी दिन सीता विमानतुल्य भवनमे शरद् ऋतुकी मेघमालाके समान कोमल शय्यापर सुखसे सो रही थी कि उस कमललोचनाने रात्रिके पिछले प्रहरमे स्वप्न देखा और देखते ही दिव्य वादित्रोके मंगलमय शब्दसे वह जागृत हो गयी ॥१-३॥ तदनन्तर अत्यन्त निर्मल प्रभातके होनेपर सशयको प्राप्त सीता, शरीर सम्बन्धी क्रियाएँ करके सखियो सहित पतिके पास गयी ॥४॥ और पूछने लगी कि हे नाथ! आज मैने जो स्वप्न देखा है हे विद्वन्! आप उसका फल कहनेके लिए योग्य है ॥५॥ मुझे ऐसा जान पड़ता है कि शरद्ऋतुके चन्द्रमाके समान जिनकी कान्ति थी, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान जिनका शब्द था, कैलासके शिखरके समान जिनका आकार था, जो सब प्रकारके अलंकारोसे अलंकृत थे, जिनकी उत्तम दाढें कान्तिमान् एवं सफेद थी और जिनकी गरदनकी उत्तम जटाएँ सुशोभित हो रही थी ऐसे अत्यन्त श्रेष्ठ दो अष्टापद मेरे मुखसे प्रविष्ट हुए हैं ॥६-७॥ यह देखनेके बाद दूसरे स्वप्नमें मैने देखा है कि मै वायुसे प्रेरित पताकाके समान अत्यधिक सम्भ्रमसे युक्त हो पुष्पक-विमानके शिखरसे गिरकर नीचे पृथिवीपर आ पडी हूँ ॥८॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे वरोरू! अष्टापदोका युगल देखनेसे तू शीघ्र ही दो पुत्र प्राप्त करेगी ॥९॥ हे प्रिये! यद्यपि पुष्पकविमानके अग्रभागसे गिरना अच्छा नही है तथापि चिन्ताकी बात नही है क्योकि शान्तिकर्म तथा दान करनेसे पापग्रह शान्तिको प्राप्त हो जावेगे ॥१०॥

अथानन्तर जो तिलकपुष्पकरूपी कवचको धारण किये हुए था। कदम्बरूपी गजराजपर आरूढ़ था, आम्ररूपी धनुष साथ लिये था, कमलरूपी बाणोसे युक्त था, वकुलरूपी भरे हुए तरकसोसे सहित था, निर्मल गुंजार करनेवाले भ्रमरोके समूह जिसका सुयश गा रहे थे, जो कदम्बसे सुवासित सघन सुन्दर वायुसे मानो साँस ही ले रहा था, मालतीके फूलोके प्रकाशसे जो मानो दूसरे शत्रुओकी हँसी कर रहा था और कोकिलाओके मधुर आलापसे जो मानो अपने

---

१ हे विद्वन्। 'लब्धवर्णो विचक्षण' इत्यमर। २ हे प्रवरोरु + अचिरेण। ३ -मवाप्स्यति म।

कलपुंस्कोकिलालापैर्जल्पन्निव निजोचितम् । बिभ्रन्नरपतेर्लीलां लोकाकुलत्वकारिणीम् ॥१४॥
अङ्कोटनखरो बिभ्रद्दंष्ट्राकुरवकात्मिकाम् । लोहिताशोकनयनश्चलत्पल्लवजिह्वकः ॥१५॥
वसन्तकेसरी प्राप्तो[1] विदेशजनमानसम् । नयमान.[2] परं त्रासं सिंहकेसरकेसरः ॥१६॥
रमणीयं स्वभावेन वसन्तेन विशेषतः । महेन्द्रोदयमुद्यानं जातं नन्दनसुन्दरम् ॥१७॥
विचित्रकुसुमा वृक्षा विचित्रचलपल्लवा । मत्ता इव निघूर्णन्ते दक्षिणानिलसंगता. ॥१८॥
[3]पद्मोत्पलादिसंछन्ना. शकुन्तगणनादिता. । वाप्यो वरं विराजन्ते जनसेवितरोधसः ॥१९॥
हंससारसचक्राह्वकुरराणां मनोहरा । स्वना कारण्डवानां च प्रवृत्ता रागिदुःसहा ॥२०॥
निपातोत्पतनैस्तेषां विमलं लुलितं जलम् । प्रमोदादिव संवृत्तं तरङ्गाढ्यं समाकुलम् ॥२१॥
पद्मादिभिर्जलं व्याप्तं स्थल कुरवकादिभि । गगनं रजसा तेषां वसन्ते जृम्भिते सति ॥२२॥
गुच्छगुल्मलतावृक्षाः प्रकारा बहुधा स्थिताः । वनस्पतेः परां शोभामुपजग्मु. समन्ततः ॥२३॥
काले तस्मिन्नरेन्द्रस्य जनकस्य शरीरजाम् । किंचिद् गर्भकृतश्रान्तिकृशीभूतशरीरिकाम् ॥२४॥
वीक्ष्य [4]पृच्छति पद्माभ किं ते कान्ते मनोहरम् । संपादयाम्यहं ब्रूहि दोहकं किमसीदृशी ॥२५॥
ततः संस्मित्य वैदेही जगाद कमलानना । नाथ चैत्यालयान्द्रष्टुं भूरीन् वाञ्छामि भूतले ॥२६॥
त्रैलोक्यमङ्गलात्मभ्यः पञ्चवर्णेभ्य आदरात । जिनेन्द्रप्रतिबिम्बेभ्यो नमस्कर्तुं ममाशयः ॥२७॥
हेमरत्नमयैः पुष्पैः पूजयामि जिनानिति । इयं मे महती श्रद्धा किमन्यदभिवाञ्छ्यते ॥२८॥

योग्य वार्तालाप ही कर रहा था ऐसा लोकमे आकुलता उत्पन्न करनेवाली राजाकी शोभाको धारण करता हुआ वसन्तकाल आ पहुँचा ॥११-१४॥ अंकोट पुष्प ही जिसके नाखून थे, जो कुरवकरूपी दाढको धारण कर रहा था, लाल लाल अशोक ही जिसके नेत्र थे, चंचल किसलय ही जिसकी जिह्वा थी, जो परदेशी मनुष्यके मनको परम भय प्राप्त करा रहा था और बकुल पुष्प ही जिसकी गरदनके बाल थे ऐसा वसन्तरूपी सिंह आ पहुँचा ॥१५-१६॥ अयोध्याका महेन्द्रोदय उद्यान स्वभावसे ही सुन्दर था परन्तु उस समय वसन्तके कारण विशेष रूपसे नन्दन-वनके समान सुन्दर हो गया था ॥१७॥ जिनमे रंग-बिरंगे फूल फूल रहे थे तथा जिनके नाना प्रकारके पल्लव हिल रहे थे, ऐसे वृक्ष दक्षिणके मलय समीरसे मिलकर मानो पागलकी तरह झूम रहे थे ॥१८॥ जो कमल तथा नील कमल आदिसे आच्छादित थी, पक्षियोके समूह जहाँ शब्द कर रहे थे, और जिनके तट मनुष्योसे सेवित थे ऐसी वापिकाएँ अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥१९॥ रागी मनुष्योके लिए जिनका सहना कठिन था ऐसे हस, सारस, चकवा, कुरर और कारण्डव पक्षियोके मनोहर शब्द होने लगे ॥२०॥ उन पक्षियोके उत्पतन और विपतनसे क्षोभको प्राप्त हुआ निर्मल जल हर्षसे ही मानो तरग युक्त होता हुआ व्याकुल हो रहा था ॥२१॥ वसन्तका विस्तार होनेपर जल कमल आदिसे, स्थल कुरवक आदिसे और आकाश उनकी परागसे व्याप्त हो गया था ॥२२॥ उस समय गुच्छे, गुल्म, लता तथा वृक्ष आदि जो वनस्पतिकी जातियाँ अनेक प्रकारसे स्थित थी वे सब ओरसे परम शोभाको प्राप्त हो रही थी ॥२३॥

उस समय गर्भके द्वारा की हुई थकावटसे जिसका शरीर कुछ-कुछ श्रान्त हो रहा था ऐसी जनकनन्दिनीको देखकर रामने पूछा कि हे कान्ते ! तुझे क्या अच्छा लगता है ? सो कह । मै अभी तेरी इच्छा पूर्ण करता हूँ तू ऐसी क्यों हो रही है ? ॥२४-२५॥ तब कमलमुखी सीताने मुसकराकर कहा कि हे नाथ ! मैं पृथिवीतलपर स्थित अनेक चैत्यालयोके दर्शन करना चाहती हूँ ॥२६॥ जिनका स्वरूप तीनो लोकोके लिए मंगलरूप है ऐसी पंचवर्णकी जिन-प्रतिमाओको आदरपूर्वक नमस्कार करनेका मेरा भाव है ॥२७॥ सुवर्ण तथा रत्नमयी पुष्पोसे जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करूँ यह मेरी बड़ी श्रद्धा है। इसके सिवाय और क्या इच्छा करूँ ? ॥२८॥

१ विवश म । २ नीयमानः म. । ३ सद्मोत्पलादि -म. । ४ पृच्छसि म. ।

एवमाकर्ण्य पद्माभः स्मेरवक्त्रः प्रमोदवान् । समादिशत् प्रतीहारीं तत्क्षणप्रणताङ्गिकाम् ॥२९॥
अयि कल्याणि ! निक्षेपममात्यो गद्यतामिति । जिनालयेषु क्रियतामर्चना महतीत्यलम् ॥३०॥
महेन्द्रोदयमुद्यानं समेत्य सुमहादरम् । क्रियतां सर्वलोकेन सुशोभा जिनवेश्मनाम् ॥३१॥
तोरणैर्वैजयन्तीभिर्घण्टालम्बूषबुद्बुदैः । अर्धचन्द्रैर्वितानैश्च वस्त्रैश्च सुमनोहरैः ॥३२॥
तथोपकरणैरन्यैः समस्तैरतिसुन्दरैः । लोको मह्यां समस्तायां करोतु जिनपूजनम् ॥३३॥
निर्वाणधामचैत्यानि विभूष्यन्तां विशेषतः । महानन्दाः प्रवर्त्यन्तां सर्वसंपत्तिसंगताः ॥३४॥
कल्याण दोहदं तेषु वैदेह्या प्रतिपूजयन् । विहराम्यनया साकं महिमानं समेधयन् ॥३५॥
आदिष्टया तयेत्यात्मपदे कृत्वात्मसम्मिताम् । यथोक्तं गदितोऽमात्यस्तेनादिष्टाः स्वकिंकराः ॥३६॥
व्यतिपत्य महोद्योगैस्ततस्तैः संमदान्वितैः । उपशोभा[1] जिनेन्द्राणामालयेषु प्रवर्तिता ॥३७॥
महागिरिगुहाद्वारगम्भीरेषु मनोहरा । स्थापिताः पूर्णकलशाः सुहारादिविभूषिताः ॥३८॥
मणिचित्रसमाकृष्टचित्ता[2] परमपट्टकाः । प्रसारिता विशालासु हेममण्डलभित्तिषु ॥३९॥
अत्यन्तविमला शुद्धाः स्तम्भेषु मणिदर्पणाः । हारा गवाक्षवक्त्रेषु स्वच्छनिर्झरहारिणः ॥४०॥
विचित्रा भक्तयो न्यस्ता रत्नचूर्णेन चारुणा । विसक्ताः पञ्चवर्णेन पादगोचरभूमिषु ॥४१॥
न्यस्तानि शतपत्राणि सहस्रच्छदनानि च । [3]देहलीकाण्डयुक्तानि कमलान्यपरत्र च ॥४२॥
हस्तसम्पर्कयोग्येषु स्थानेषु कृतमुज्ज्वलम् । किङ्किणीजालकं मत्तकामिनीसमनिःस्वनम् ॥४३॥
पञ्चवर्णैर्विकाराढ्यैश्चामरैर्मण्डिदण्डकैः । संयुक्ताः [4]पट्टलम्बूषा स्वायताङ्गाः प्रलम्बिताः ॥४४॥

यह सुनकर हर्षसे मुसकराते हुए रामने तत्काल ही नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाली द्वारपालिनीसे कहा कि हे कल्याणि ! विलम्ब किये बिना ही मन्त्रीसे यह कहो कि जिनालयोमे अच्छी तरह विशाल पूजा की जावे ॥२९-३०॥ सब लोग बहुत भारी आदरके साथ महेन्द्रोदय उद्यानमे जाकर जिन-मन्दिरोकी शोभा करें ॥३१॥ तोरण, पताका, घण्टा, लम्बूष, गोले, अर्धचन्द्र, चन्दोवा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र, तथा अत्यन्त सुन्दर अन्यान्य समस्त उपकरणोके द्वारा लोग सम्पूर्ण पृथिवीपर जिन-पूजा करें ॥३२-३३॥ निर्वाण क्षेत्रोके मन्दिर विशेष रूपसे विभूषित किये जावे तथा सर्व सम्पत्तिसे सहित महाआनन्द—बहुत भारी हर्षके कारण प्रवृत्त किये जावे ॥३४॥ उनमे पूजा करनेका जो सीताका दोहला है वह बहुत ही उत्तम है सो मै पूजा करता हुआ तथा जिन शासनकी महिमा बढ़ाता हुआ इसके साथ विहार करूँगा ॥३५॥ इस प्रकार आज्ञा पाकर द्वारपालिनीने अपने स्थानपर अपने ही समान किसी दूसरी स्त्रीको नियुक्त कर रामके कहे अनुसार मन्त्रीसे कह दिया और मन्त्रीने भी अपने सेवकोके लिए तत्काल आज्ञा दे दी ॥३६॥

तदनन्तर महान् उद्योगी एवं हर्षसे सहित उन सेवकोने शीघ्र ही जाकर जिन-मन्दिरोमें सजावट कर दी ॥३७॥ महापर्वतकी गुफाओके समान जो मन्दिरोके विशाल द्वार थे उनपर उत्तम हार आदिसे अलंकृत पूर्ण कलश स्थापित किये गये ॥३८॥ मन्दिरोकी सुवर्णमयी लम्बी-चौड़ी दीवालोपर मणिमय चित्रोसे चित्तको आकर्षित करनेवाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाये गये ॥३९॥ खम्भोके ऊपर अत्यन्त निर्मल एव शुद्ध मणियोके दर्पण लगाये गये और झरोखोके अग्रभागमे स्वच्छ झरनेके समान मनोहर हार लटकाये गये ॥४०॥ मनुष्योके जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियोमे पाँच वर्णके रत्नमय सुन्दर चूर्णोसे नाना प्रकारके बेल-बूटे खीचे गये थे ॥४१॥ जिनमे सौ अथवा हजार कलिकाएँ थी तथा जो लम्बी डण्डीसे युक्त थे ऐसे कमल उन मन्दिरोकी देहलियोपर तथा अन्य स्थानोपर रखे गये थे ॥४२॥ हाथसे पाने योग्य स्थानोमे मत्त स्त्रीके समान शब्द करनेवाली उज्ज्वल छोटी-छोटी घण्टियोके समूह लगाये गये थे ॥४३॥ जिनकी मणिमय

---

1 उपशोभी म. । 2. चित्रा. म. । 3 'देहल्याम्' इति पाठ सम्यक् प्रतिभाति । 4 पद- म ।

साल्यान्यत्यन्तचित्राणि प्रापितानि प्रमारणम् । सौरभाकृष्टभृङ्गाणि कृतान्युत्तमशिल्पिभिः ॥४५॥
विशालातोद्यशालाभिः कल्पिताभिश्च नैकशः । तथा प्रेक्षकशालाभिः तदुद्यानमलंकृतम् ॥४६॥
एवमत्यन्तचार्वीभिरत्युर्वीभिर्विभूतिभिः । महेन्द्रोदयमुद्यानं जातं नन्दनसुन्दरम् ॥४७॥

आर्याच्छन्दः

अथ भूत्यासुरपतिवन्सपुरजनपदसमन्वितो देवीभिः ।
सर्वामात्यसमेतः पद्मः सीतान्वितो ययावुद्यानम् ॥४८॥
परमं गजमारूढः सीतायुक्तो रराज वाढं पद्मः ।
ऐरावतपृष्ठगतः शच्या यथा दिवौकसां नाथः ॥४९॥
नारायणोऽपि च यथा परमामृद्धिं समुद्वहन् याति स्म ।
शेषजनश्च सदार्हं हृष्टः स्फीतो [1]महान्नपानसमृद्धः ॥५०॥
कदलीगृहमनोहरगृहेष्वतिमुक्तकमण्डपेषु च मनोज्ञेषु ।
देव्यः स्थिता महर्द्ध्या यथार्हमन्यो जनश्च सुखमासीनः ॥५१॥
अवतीर्य गजाद् रामः [2]कामः कमलोत्पलसकुले समुद्रोदारे ।
सरसि सुखं विमलजले रेमे क्षीरोदसागरे शक्र इव ॥५२॥
तस्मिन् संक्रीड्य चिरं कृत्वा पुष्पोच्चयं जलादुत्तीर्य ।
दिव्येनार्चनविधिना वैदेह्या संगतो जिनानानर्च ॥५३॥
रामो मनोभिरामः काननलक्ष्मीसमाभिरुत्तमस्त्रीभिः ।
[3]कृतपरिवरणो रेजे वसन्त इव मूर्तिमानुपेत श्रीमान् ॥५४॥

डण्डियाँ थी ऐसे पाँचवर्णके कामदार चमरोके साथ-साथ बड़ी-बड़ी हाँड़ियाँ लटकायी गयी थीं ॥४४॥ जो सुगन्धिनसे भ्रमरोको आकर्षित कर रही थी तथा उत्तम कारीगरोंने जिन्हे निर्मित किया था ऐसी नाना प्रकारकी मालाएँ फैलायी गयी थी ॥४५॥ अनेकोंकी संख्यामे जगह-जगह बनायी गयी विशाल वादनशालाओ और प्रेक्षकशालाओं—दर्शकगृहोसे वह उद्यान अलंकृत किया गया था ॥४६॥ इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर विशाल विभूतियोसे वह महेन्द्रोदय उद्यान नन्दनवनके समान सुन्दर हो गया था ॥४७॥

अथानन्तर नगरवासी तथा देशवासी लोगोंके साथ, स्त्रियोके साथ, समस्त मन्त्रियोके साथ, और सीताके साथ रामचन्द्रजी इन्द्रके समान बड़े वैभवसे उस उद्यानकी ओर चले ॥४८॥ सीताके साथ-साथ उत्तम हाथीपर बैठे हुए राम ठीक उसी तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह इन्द्राणीके साथ ऐरावतके पृष्ठपर बैठा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है ॥४९॥ यथायोग्य ऋद्धिको धारण करनेवाले लक्ष्मण तथा हर्षसे युक्त एवं अत्यधिक अन्न-पानकी सामग्रीसे सहित शेष लोग भी अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार जा रहे थे ॥५०॥ वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदली गृहोमे तथा अतिमुक्तक लताके सुन्दर निकुंजोमें महावैभवके साथ ठहर गयी तथा अन्य लोग भी यथा-योग्य स्थानोमे सुखसे बैठ गये ॥५१॥ हाथीसे उतरकर रामने कमलो तथा नील कमलोसे व्याप्त एवं समुद्रके समान विशाल, निर्मल जलवाले सरोवरमे सुखपूर्वक उस तरह क्रीड़ा की जिस तरह कि क्षीरसागरमे इन्द्र करता है ॥५२॥ तदनन्तर सरोवरमे चिरकाल तक क्रीड़ा कर उन्होने फूल तोड़े और जलसे बाहर निकलकर पूजाकी दिव्य सामग्रीसे सीताके साथ मिलकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५३॥ वनलक्ष्मियोके समान उत्तमोत्तम स्त्रियोंसे घिरे हुए मनोहारी राम उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो शरीरधारी श्रीमान् वसन्त ही आ पहुँचा हो ॥५४॥

१. मदान्न -म. । २ काम. कमलोत्पलसंकुले समुदारे म । ३. क्षतपरिचरणो म. ।

देवीभिरनुपमाभिः सोऽष्टसहस्रप्रमाणसंसक्ताभिः ।
रेजे निर्मलदेहस्ताराभिरिवावृतो ग्रहाणामधिपः ॥५५॥
अमृताहारविलेपनशयनासनवासगन्धमाल्यादिभवम् ।
शब्दरसरूपगन्धस्पर्शसुखं तत्र राम आपोदारम्[1] ॥५६॥
एवं जिनेन्द्रभवने प्रतिदिनपूजाविधानयोगरतस्य ।
रामस्य रतिः परमा जाता रवितेजसः सुदारयुतस्य ॥५७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे जिनेन्द्रपूजादोहदाभिधानं नाम पञ्चनवतितम पर्व ॥९५॥



आठ हजार प्रमाण अनुपम देवियोंसे घिरे हुए, निर्मल शरीरके धारक राम उस समय ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ उस उद्यानमें रामने अमृतमय आहार, विलेपन, शयन, आसन, निवास, गन्ध तथा माला आदिसे उत्पन्न होनेवाले शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श सम्बन्धी उत्तम सुख प्राप्त किया था ॥५६॥ इस प्रकार जिनेन्द्र मन्दिरमें प्रतिदिन पूजा-विधान करनेमें तत्पर सूर्यके समान तेजस्वी, उत्तम स्त्रियोंसे सहित रामको अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हुई ॥५७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें जिनेन्द्र पूजारूप दोहलेका वर्णन करनेवाला पंचानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९५॥



---

१. आप + उदारम् ।

षण्णवतितमं पर्व

उद्यानेऽवस्थितस्यैवं राघवस्य सुचेतसः । तृषिता इव संप्रापुः प्रजा दर्शनकाङ्क्षया ॥१॥
आवितं प्रतिहारीभिः पारम्पर्यात् प्रजागमम् । विज्ञाय दक्षिणस्याक्ष्णः स्पन्दं प्राप विदेहजा ॥२॥
अचिन्तयच्च किं [1]न्वेतन्निवेदयति मे परम् । दुःखस्यागमनं नेत्रमधस्तात् स्पन्दनं भजत् ॥३॥
पापेन विधिना दुःखं प्रापिता सागरान्तरे । [2]दुष्टस्तेन न सतुष्टः किमन्यत् प्रापयिष्यति ॥४॥
निर्मितानां स्वयं शश्वत् कर्मणासुचितं फलम् । ध्रुवं प्राणिभिरास्वाद्यं न तच्छक्यं[3] निवारणम् ॥५॥
उपगुण्य प्रयत्नेन सितांशुकमिवांशुमान् । पालयन्नपि नित्यं स्वं कर्मणां फलमश्नुते ॥६॥
अगदच्च विचेतस्का देव्यो ब्रूत श्रुतागमाः । सम्यग्विचार्य मेऽधस्तान्नेत्रस्पन्दनजं फलम् ॥७॥
तासामनुमती नाम देवी निश्चयकोविदा । जगाद [4]देवि को नाम विधिरन्योऽत्र दृश्यते ॥८॥
यत् कर्म निर्मितं पूर्वं सितं मलिनमेव वा । स कृतान्तो विधिश्चासौ दैवं तच्च तदीश्वरः ॥९॥
कृतान्तेनाहमानीता व्यवस्थामेतिकामिति । पृथङ्निरूपणं तत्र जनस्याज्ञानसंभवम् ॥१०॥
अथातो गुणदोषज्ञा गुणमालेति कीर्तिता । जगाद सान्त्वनोद्युक्ता देवीं देवनयान्विताम् ॥११॥
देवि त्वमेव देवस्य सर्वतोऽपि गरीयसी । तवैव च प्रसादेन जनस्यान्यस्य संयुता[5] ॥१२॥
ततोऽहं न प्रपश्यामि सुयुक्तेनापि चेतसा । यत्ते यास्यति दुःखस्य कारणत्वं सुचेष्टिते ॥१३॥

अथानन्तर जब इस प्रकार शुद्ध हृदयके धारक राम महेन्द्रोदय नामक उद्यानमे अवस्थित थे तब उनके दर्शनकी आकांक्षासे प्रजा उनके समीप इस प्रकार पहुँची मानो प्यासी ही हो ॥१॥ 'प्रजाका आगमन हुआ है' यह समाचार परम्परासे प्रतिहारियोने सीताको सुनाया, सो सीताने जिस समय इस समाचारको जाना उसी समय उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी ॥२॥ सीताने विचार किया कि अधोभागमे फड़कनेवाला नेत्र मेरे लिए किस भारी दुःखके आगमनकी सूचना दे रहा है ॥३॥ पापी विधाताने मुझे समुद्रके बीच दुःख प्राप्त कराया है सो जान पड़ता है कि वह दुष्ट उससे सन्तुष्ट नही हुआ, देखूँ अब वह और क्या प्राप्त कराता है? ॥४॥ प्राणियोने जो निरन्तर स्वय कर्म उपार्जित किये हैं उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है—उसका निवारण करना शक्य नही है ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि चन्द्रमाका पालन करता है परन्तु प्रयत्नपूर्वक अपने तेजसे उसे तिरोहित कर पालन करता है इसलिए वह निरन्तर अपने कर्मका फल भोगता है (?) व्याकुल होकर सीताने अन्य देवियोसे कहा कि अहो देवियो! तुमने तो आगमको सुना है इसलिए अच्छी तरह विचार कर कहो कि मेरे नेत्रके अधोभागके फड़कनेका क्या फल है? ॥६-७॥ उन देवियोंके बीच निश्चय करनेमे निपुण जो अनुमती नामकी देवी थी वह बोली कि हे देवि! इस संसारमे विधि नामका दूसरा कौन पदार्थ दिखाई देता है? ॥८॥ पूर्व पर्यायमे जो अच्छा या बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, दैव अथवा ईश्वर कहलाता है ॥९॥ 'मै पृथक् रहनेवाले कृतान्तके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त करायी गयी हूँ, ऐसा जो मनुष्यका निरूपण करना है वह अज्ञानमूलक है ॥१०॥

तदनन्तर गुण-दोषको जाननेवाली गुणमाला नामकी दूसरी देवीने सान्त्वना देनेमे उद्यत हो दुःखिनी सीतासे कहा कि हे देवि! प्राणनाथको तुम्ही सबसे अधिक प्रिय हो और तुम्हारे ही प्रसादसे दूसरे लोगोंको सुखका योग प्राप्त होता है ॥११-१२॥ इसलिए सावधान चित्तसे भी मै

---

१ त्वेतन्नि-म । २. दुष्टस्तेन म । ३ शक्य निवारण म, ज. । ४ देवी म । ५ सुखयोगः ।

अन्यास्तत्र जगुर्देव्यो देव्यत्र जनितेन किम् । [1]वितर्केण विशालेन शान्तिकर्म विधीयताम् ॥१४॥
अभिषेकैर्जिनेन्द्राणामत्युदारैश्च पूजनैः । दानैरिच्छाभिपूरैश्च क्रियतामशुभेरणम् ॥१५॥
एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधु समीरितम् । दानं पूजाभिषेकश्च तपश्चाशुभसूदनम् ॥१६॥
विघ्नानां नाशनं दानं रिपूणां वैरनाशनम् । पुण्यस्य समुपादानं महतो यशसस्तथा ॥१७॥
इत्युक्त्वा भद्रकलशं समाहूय जगाविति । किमिच्छदानमासूतेर्दीयतां प्रतिवासरम् ॥१८॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा द्रविणाधिकृतो ययौ । इयमप्यादरे तस्थौ जिनपूजादिगोचरे ॥१९॥
ततो जिनेन्द्रगेहेषु तूर्यशब्दाः समुद्ययुः । शङ्खकोटिरवोन्मिश्राः प्रावृड्घनरवोपमा. ॥२०॥
जिनेन्द्रचरितन्यस्तचित्रपट्टाः प्रसारिताः । पयोघृतादिसंपूर्णाः कलशा समुपाहृताः ॥२१॥
[2]भूषिताङ्गो द्विपारूढः कञ्चुकी सितवस्त्रभृत् । कः केनार्थीत्ययोध्यायां घोषणामददात् स्वयम् ॥२२॥
एवं सुविधिना दानं महोत्साहमदीयत । विविध नियमं देवी निजशक्त्या चकार च ॥२३॥
प्रावर्त्यन्त महापूजा अभिषेकाः सुसंपदः । पापवस्तुनिवृत्तात्मा बभूव समधीर्जनः ॥२४॥
इतिक्रियाप्रसक्तायां सीतायां शान्तचेतसि । आस्थानमण्डपे तस्थौ दर्शने शक्रवद्बल[3] ॥२५॥
प्रतीहारविनिर्मुक्तद्वारा संभ्रान्तचेतसः । ततो जनपदाः सैंहं धामेवास्थानमाश्रिता. ॥२६॥
रत्नकाञ्चननिर्माणामदृष्टां जातुचित् पुनः । सभामालोक्य गम्भीरां प्रजानां चलितं मनः ॥२७॥

उस पदार्थको नही देखती जो हे सुचेष्टिते ! तुम्हारे दु.खका कारणपना प्राप्त कर सके ॥१३॥ उक्त दोके सिवाय जो वहाँ अन्य देवियाँ थी उन्होने कहा कि हे देवि ! इस विषयमे अत्यधिक तर्क-वितर्क करनेसे क्या लाभ है ? शान्तिकर्म करना चाहिए ॥१४॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के अभिषेक, अत्युदार पूजन और किमिच्छक दानके द्वारा अशुभ कर्मको दूर हटाना चाहिए ॥१५॥ इस प्रकार कहनेपर सीताने कहा कि हे देवियो ! आप लोगोने ठीक कहा है क्योकि दान, पूजा, अभिषेक और तप अशुभ कर्मोको नष्ट करनेवाला है ॥१६॥ दान विघ्नोका नाश करनेवाला है, शत्रुओका वैर दूर करनेवाला है, पुण्यका उपादान है तथा बहुत भारी यशका कारण है ॥१७॥ इतना कहकर सीताने भद्रकलश नामक कोषाध्यक्षको बुलाकर कहा कि प्रसूतिपर्यन्त प्रतिदिन किमिच्छक दान दिया जावे ॥१८॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर उधर कोषाध्यक्ष चला गया और इधर यह सीता भी जिनपूजा आदि सम्बन्धी आदरमे निमग्न हो गयी ॥१९॥

तदनन्तर जिन-मन्दिरोमे करोड़ो शंखोके शब्दमे मिश्रित, एवं वर्षाकालिक मेघ गर्जनाकी उपमा धारण करनेवाले तुरही आदि वादित्रोके शब्द उठने लगे ॥२०॥ जिनेन्द्र भगवान्‌के चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाले चित्रपट फैलाये गये और दूध, घृत आदिसे भरे हुए कलश बुलाये गये ॥२१॥ आभूषणोसे आभूषित तथा श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाले कञ्चुकीने हाथीपर सवार हो अयोध्यामे स्वयं यह घोषणा दी कि कौन किस पदार्थकी इच्छा रखता है ? ॥२२॥ इस प्रकार विधिपूर्वक बडे उत्साहसे दान दिया जाने लगा और देवी सीताने अपनी शक्तिके अनुसार नाना प्रकारके नियम ग्रहण किये ॥२३॥ उत्तम वैभवके अनुरूप महापूजाएँ और अभिषेक किये गये तथा मनुष्य पापपूर्ण वस्तुसे निवृत्त हो शान्तचित्त हो गये ॥२४॥ इस प्रकार जब शान्त चित्तकी धारक सीता दान आदि क्रियाओमे आसक्त थी तब रामचन्द्र इन्द्रके समान सभामण्डपमे आसीन थे ॥२५॥

तदनन्तर द्वारपालोने जिन्हे द्वार छोड़ दिये थे तथा जिनके चित्त व्यग्र थे ऐसे देशवासी लोग सभामण्डपमे उस तरह डरते-डरते पहुँचे जिस तरह कि मानो सिंहके स्थानपर ही जा रहे हो ॥२६॥ रत्न और सुवर्णसे जिसकी रचना हुई थी तथा जो पहले कभी देखनेमे नही आयी

---

१. वितर्कणविशालेन म. । २ ऋषिताङ्गो म. । ३ राम. ।

हृदयानन्दनं राममालोक्य नयनोत्सवम् । उल्लसन् मनसो नेमुः प्रबद्धाञ्जलयः प्रजाः ॥२८॥
वीक्ष्य कम्पितदेहास्ता मुहुः कम्पितमानसाः । पद्मो जगाद भो भद्रा ब्रूतागमनकारणम् ॥२९॥
विजयोऽथ सुराजिश्च मधुमान् वसुलो धरः । काश्यपः पिङ्गलः कालः क्षेमाद्याश्च महत्तराः ॥३०॥
निश्चलाश्चरणन्यस्तलोचना गलितौजसः । न किंचिद्दूचुराक्रान्ताः प्रभावेण महीपतेः ॥३१॥
चिरादुत्सहते वक्तुं मतिर्यद्यपि कृच्छ्रतः । निःक्रामति तथाप्येषा वक्त्रागारान्न वाग्वधूः ॥३२॥
गिरा सान्त्वनकारिण्या पद्मः पुनरभाषत । ब्रूत स्वागतिनो ब्रूत कैमर्थ्येन समागताः ॥३३॥
इत्युक्ता अपि ते भूयः समस्तकरणोज्झिताः । तस्थुः पुस्त इव न्यस्ताः सुनिष्णातेन शिल्पिना ॥३४॥
ह्रीपाशकण्ठबद्धास्ते किंचिच्चञ्चललोचनाः । अर्भका इव सारङ्गा जग्मुराकुलचेतसः[1] ॥३५॥
ततः प्राग्रहरस्तेषामुवाच चलिताक्षरम् । देवाभयप्रसादेन प्रसादः क्रियतामिति ॥३६॥
ऊचे नरपतिर्भद्रा न किंचिद्भवतां भयम् । प्रकाशयत चित्तस्थं स्वस्थतामुपगच्छत ॥३७॥
अवद्यं सकलं त्यक्त्वा साध्विदानीं भजाम्यहम् । मिश्रीभूतं जलं त्यक्त्वा यथा हंसः स्तनोद्भवम्[2] ॥३८॥
अभयेऽपि ततो लब्धे कृच्छ्रप्रस्थापिताक्षरः । जगाद मन्दनिःस्वानो विजयोऽञ्जलिमस्तकः ॥३९॥
विज्ञाप्यं श्रूयतां नाथ पद्मनाभ नरोत्तम । प्रजाधुनाखिला जाता मर्यादारहितात्मिका ॥४०॥
स्वभावादेव लोकोऽयं महाकुटिलमानसः । प्रकटं प्राप्य दृष्टान्तं न किंचित्तस्य दुष्करम् ॥४१॥

थी ऐसी उस गम्भीर सभाको देखकर प्रजाके लोगोका मन चंचल हो गया ॥२७॥ हृदयको आनन्दित करनेवाले और नेत्रोंको उत्सव देनेवाले श्रीरामको देखकर जिनके चित्त खिल उठे थे ऐसे प्रजाके लोगोने हाथ जोड़कर उन्हे नमस्कार किया ॥२८॥ जिनके शरीर कम्पित थे तथा जिनका मन बार-बार काँप रहा था ऐसे प्रजाजनोंको देखकर रामने कहा कि अहो भद्रजनो ! अपने आगमनका कारण कहो ॥२९॥ अथानन्तर विजय, सुराजि, मधुमान्, वसुल, धर, काश्यप, पिंगल, काल और क्षेम आदि बड़े-बड़े पुरुष, राजा रामचन्द्रजीके प्रभावसे आक्रान्त हो कुछ भी नही कह सके। वे चरणोमे नेत्र लगाकर निश्चल खड़े रहे और सबका ओज समाप्त हो गया ॥३०–३१॥ यद्यपि उनकी बुद्धि कुछ कहनेके लिए चिरकालसे उत्साहित थी तथापि उनकी वाणीरूपी वधू मुखरूपी घरसे बड़ी कठिनाईसे नही निकलती थी ॥३२॥ तदनन्तर रामने सान्त्वना देनेवाली वाणीसे पुनः कहा कि आप सब लोगोंका स्वागत है। कहिए आप सब किस प्रयोजनसे यहाँ आये है ॥३३॥ इतना कहनेपर भी वे पुनः समस्त इन्द्रियोंसे रहितके समान खड़े रहे। निश्चल खड़े हुए वे सब ऐसे जान पड़ते थे कि मानो किसी कुशल कारीगरने उन्हे मिट्टी आदिके खिलौनेके रूपमे रचकर निक्षिप्त किया हो—वहाँ रख दिया हो ॥३४॥ जिनके कण्ठ लज्जारूपी पाशसे बँधे हुए थे, जो मृगोके बच्चोके समान कुछ-कुछ चंचल लोचनवाले थे तथा जिनके हृदय अत्यन्त आकुल हो रहे थे ऐसे वे प्रजाजन उल्लाससे रहित हो गये—म्लान मुख हो गये ॥३५॥

तदनन्तर उनमें जो मुखिया था वह जिस किसी तरह टूटे-फूटे अक्षरोमे बोला कि हे देव ! अभयदान देकर प्रसन्नता कीजिए ॥३६॥ तब राजा रामचन्द्रने कहा कि हे भद्र पुरुषो ! आप लोगोंको कुछ भी भय नही है, हृदयमे स्थित बातको प्रकट करो और स्वस्थताको प्राप्त होओ ॥३७॥ मैं इस समय समस्त पापका परित्याग कर उस तरह निर्दोष वस्तुको ग्रहण करता हूँ जिस प्रकार कि हंस मिले हुए जलको छोड़कर केवल दूधको ग्रहण करता है ॥३८॥ तदनन्तर अभय प्राप्त होनेपर भी जो बड़ी कठिनाईसे अक्षरोंको स्थिर कर सका था ऐसा विजय नामक पुरुष हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मन्द स्वरमें बोला कि हे नाथ ! हे राम ! हे नरोत्तम ! मैं जो निवेदन करना चाहता हूँ उसे सुनिए, इस समय समस्त प्रजा मर्यादासे रहित हो गयी है ॥३९–४०॥ यह मनुष्य

---

१. जगु- म । जग्मु- ख. । जनु- क. । जगु ज. पुस्तके संशोधितपाठः । २. दुग्धम् ।

परमं चापलं धत्ते निसर्गेण प्लवंगमः । किमङ्ग पुनरारूढ चपलं यन्त्रपञ्जरम् ॥४२॥
तरुण्यो रूपसंपन्नाः पुंसामल्पबलात्मनाम् । ह्रियते बलिभिः छिद्रे पापचित्त प्रसह्य च ॥४३॥
प्राप्तदुःखां प्रियां साध्वीं विरहात्यन्तदु.खितः । कश्चित् सहायमासाद्य पुनरानयते गृहम् ॥४४॥
प्रक्षीनधर्मसर्यादा यावन्नश्यति नावनिः । उपायश्चिन्त्यतां तावत्प्रजानां हितकाम्यया ॥४५॥
राजा मनुष्यलोकेऽस्मिन्नधुना त्वं यदा प्रजा । न पासि विधिना नाशमिमा यान्ति तदा ध्रुवम् ॥४६॥
नद्युद्यानसभाग्रामप्रपाध्वपुरवेश्मसु । अवर्णवादमेकं ते मुक्त्वा नान्यास्ति संकथा ॥४७॥
स तु दाशरथी र मः सर्वशास्त्रविशारदः । हृतां विद्याधरेशेन जानकीं पुनरानयत् ॥४८॥
तत्र नूनं न दोषोऽस्ति कश्चिदप्येवमाश्रिते । व्यवहारेऽपि विद्वांस. प्रमाणं जगत. परम् ॥४९॥
किं च यादृशमुर्वीश. कर्मयोग निषेवते । स एव सहतेऽस्माकमपि नाथानुवर्तिनाम् ॥५०॥
एवं प्रदुष्टचित्तस्य वदमानस्य भूतले । निरङ्कुशस्य लोकस्य काकुत्स्थ कुरु निग्रहम् ॥५१॥
एक एव हि दोषोऽयमभविष्यन्न चेत्ततः । व्यलम्बयिष्यदेतत्ते राज्यमाखण्डलेशताम् ॥५२॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य क्षणमेकमभून्नृपः । विषादमुद्गराघातविचलद्धृदयो भृशम् ॥५३॥
अचिन्तयच्च हा कष्टमिदमन्यत्समागतम् । यशोम्बुजखण्डं मे दग्धुं लग्नोऽयशोऽनलः ॥५४॥
यत्कृतं दुःसहं सोढं विरहव्यसनं मया । सा क्रिया कुलचन्द्रं मे प्रकरोति मलीमसम् ॥५५॥
[1]विनीतां या समुद्दिश्य प्रवीरा कपिकेतवः । करोति मलिनां सीता सा मे गोत्रकुमुद्वतीम् ॥५६॥

स्वभावसे ही महाकुटिलचित्त है फिर यदि कोई दृष्टान्त प्रकट मिल जाता है तो फिर उसे कुछ भी कठिन नही रहता ॥४१॥ वानर स्वभावसे ही परम चंचलता धारण करता है फिर यदि चंचल यन्त्ररूपी पंजर पर आरूढ हो जावे तो कहना ही क्या है ॥४२॥ जिनके चित्तमे पाप समाया हुआ है ऐसे बलवान् मनुष्य अवसर पाकर निर्बल मनुष्योकी तरुण स्त्रियोको बलात् हरने लगे है ॥४३॥ कोई मनुष्य अपनी साध्वी प्रियाको पहले तो परित्यक्त कर अत्यन्त दुःखी करता है फिर उसके विरहसे स्वय अत्यन्त दुःखी हो किसी सहायतासे उसे घर बुलवा लेता है ॥४४॥ इसलिए हे नाथ! धर्मकी मर्यादा छूट जानेसे जबतक पृथ्वी नष्ट नही हो जाती है तब तक प्रजाके हितकी इच्छासे कुछ उपाय सोचा जाय ॥४५॥ आप इस समय मनुष्य लोकके राजा होकर भी यदि विधिपूर्वक प्रजाकी रक्षा नही करते है तो वह अवश्य ही नाशको प्राप्त हो जायेगी ॥४६॥ नदी, उपवन, सभा, ग्राम, प्याऊ, मार्ग, नगर तथा घरोमे इस समय आपके इस एक अवर्णवादको छोडकर और दूसरी चर्चा ही नही है कि राजा दशरथके पुत्र राम समस्त शास्त्रोमें निपुण होकर भी विद्याधरोके अधिपति रावणके द्वारा हृत सीताको पुनः वापिस ले आये ॥४७-४८॥ यदि हम लोग भी ऐसे व्यवहारका आश्रय ले तो उसमे कुछ भी दोष नही है क्योकि जगत्के लिए तो विद्वान् ही परम प्रमाण हैं। दूसरी बात यह है कि राजा जैसा काम करता है वैसा ही काम उसका अनुकरण करनेवाले हम लोगोमे भी बलात् होने लगता है ॥४९-५०॥ इस प्रकार दुष्ट हृदय मनुष्य स्वच्छन्द होकर पृथिवी पर अपवाद कर रहे है सो हे काकुत्स्थ! उनका निग्रह करो ॥५१॥ यदि आपके राज्यमे एक यही दोष नही होता तो यह राज्य इन्द्रके भी साम्राज्यको विलम्बित कर देता ॥५२॥ इस प्रकार उक्त निवेदनको सुनकर एक क्षणके लिए राम, विषादरूपी मुद्गरकी चोटसे जिनका हृदय अत्यन्त विचलित हो रहा था ऐसे हो गये ॥५३॥ वे विचार करने लगे कि हाय-हाय, यह बडा कष्ट आ पड़ा। जो मेरे यशरूपी कमलवनको जलानेके लिए अपयशरूपी अग्नि लग गयी ॥५४॥ जिसके द्वारा किया हुआ विरहका दु.सह दु.ख मैने सहन किया है वही क्रिया मेरे कुलरूपी चन्द्रमाको अत्यन्त मलिन कर रही है ॥५५॥ जिस विनयवती सीताको लक्ष्यकर वानरोने वीरता दिखायी वही सीता मेरे गोत्ररूपी कुमुदिनीको मलिन कर

१ विनीताया ज.।

यदर्थमब्धिमुत्तीर्णं रिपुध्वंसि रणं कृतम् । करोति कलुषं सा मे जानकी कुलदर्पणम् ॥५७॥
युक्तं जनपदो वक्ति दुष्टपुंसि परालये । अवस्थिता कथं सीता लोकनिन्द्या मयाहृता ॥५८॥
अपश्यन् क्षणमात्रं यां भवामि विरहाकुलः । अनुरक्तां त्यजाम्येतां दयितामधुना कथम् ॥५९॥
चक्षुर्मानसयोर्वासं कृत्वा याऽवस्थिता मम । गुणधानीमदोषां तां कथं मुञ्चामि जानकीम् ॥६०॥
अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् । दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ॥६१॥
धिक्स्त्रियं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम् । विशुद्धकुलजातानां पुंसां पङ्कं सुदुस्त्यजम् ॥६२॥
अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम् । स्मृतीनां परमं भ्रंशं सत्यस्खलनखातिकाम् ॥६३॥
विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम् । भस्मच्छन्नाग्निसंकाशां दर्भसूचीसमानिकाम् ॥६४॥
दृष्टमात्ररमणीयां तां निर्मुक्तमिव पन्नगः । तस्मात्त्यजामि वैदेहीं महादुःखजिहासया ॥६५॥
अशून्यं सर्वदा तीव्रस्नेहबन्धवशीकृतम् । यया मे हृदयं [1]मुख्यां विरहामि कथं तकाम् ॥६६॥
यद्यप्यहं स्थिरस्वान्तस्तथाप्यासन्नवर्तिनी । अर्चिर्वन्मम वैदेही मनोविलयनक्षमा ॥६७॥
मन्ये दूरस्थिताऽप्येषा चन्द्ररेखा कुमुद्वतीम् । यथा चालयितुं शक्ता धृतिं मम मनोहरा ॥६८॥
इतो जनपरीवादश्चेतः स्नेहः सुदुस्त्यजः । [2]अहोऽस्मि भयरागाभ्यां प्रक्षिप्तो गहनान्तरे ॥६९॥
श्रेष्ठा सर्वप्रकारेण दिवौकोयोषितामपि[3] । कथं त्यजामि तां साध्वीं प्रीत्या यातामिवैकताम् ॥७०॥
एतां यदि न मुञ्चामि साक्षाद्दुःकीर्तिमुद्गताम् । कृपणो मत्समो मह्यां तदेतस्यां न विद्यते ॥७१॥

कर रही है ॥५६॥ जिसके लिए मैने समुद्र उतर कर शत्रुओंका संहार करनेवाला युद्ध किया था वही जानकी मेरे कुलरूपी दर्पणको मलिन कर रही है ॥५७॥ देशके लोग ठीक ही तो कहते है कि जिस घरका पुरुष दुष्ट है, ऐसे पराये घरमे स्थित लोक निन्द्य सीताको मै क्यो ले आया ? ॥५८॥ जिसे मै क्षणमात्र भी नही देखता तो विरहाकुल हो जाता हूँ इस अनुरागसे भरी प्रिय दयिताको इस समय कैसे छोड़ दूँ ? ॥५९॥ जो मेरे चक्षु और मनमे निवास कर अवस्थित है उस गुणोकी भाण्डार एवं निर्दोष सीताका परित्याग कैसे कर दूँ ? ॥६०॥ अथवा उन स्त्रियोके चित्तकी चेष्टाको कौन जानता है जिनमे दोषोका कारण काम साक्षात् निवास करता है ॥६१॥ जो समस्त दोषोकी खान है। सन्तापका कारण है तथा निर्मलकुलमे उत्पन्न हुए मनुष्योके लिए कठिनाईसे छोड़ने योग्य पंक स्वरूप है उस स्त्रीके लिए धिक्कार है ॥६२॥ यह स्त्री समस्त बलोंको नष्ट करनेवाली है, रागका आश्रय है, स्मृतियोके नाशका परम कारण है, सत्यव्रतके स्खलित होनेके लिए खाई रूप है, मोक्ष सुखके लिए विघ्न स्वरूप है, ज्ञानकी उत्पत्तिको नष्ट करनेवाली है, भस्मसे आच्छादित अग्निके समान है, डाभकी अनीके तुल्य है अथवा देखने मात्रमे रमणीय है। इसलिए जिस प्रकार सांप कांचुलीको छोड़ देता है उसी प्रकार मै महादुःखको छोड़नेकी इच्छासे सीताको छोडता हूँ ॥६३–६५॥ उत्कट स्नेहरूपी बन्धनसे वशीभूत हुआ मेरा हृदय सदा जिससे अशून्य रहता है उस मुख्य सीताको कैसे छोड़ दूँ ? ॥६६॥ यद्यपि मै दृढ चित्त हूँ तथापि समीपमे रहने-वाली सीता ज्वालाके समान मेरे मनको विलीन करनेमे समर्थ है ॥६७॥ मै मानता हूँ कि जिस प्रकार चन्द्रमाकी रेखा दूरवर्तिनी होकर भी कुमुदिनीको विचलित करनेमे समर्थ है उसी प्रकार यह सुन्दरी सीता भी मेरे धैर्यको विचलित करनेमे समर्थ है ॥६८॥ इस ओर लोकनिन्दा है और दूसरी ओर कठिनाईसे छूटने योग्य स्नेह है। अहो ! मुझे भय और रागने सघन वनके बीचमे ला पटका है ॥६९॥ जो देवागनाओमे भी सब प्रकारसे श्रेष्ठ है तथा जो प्रीतिके कारण मानो एकताको प्राप्त है उस साध्वी सीताको कैसे छोड दूँ ॥७०॥ अथवा उठी हुई साक्षात् अपकीर्तिके समान इसे यदि नही छोडता हूँ तो पृथिवी पर इसके विषयमे मेरे समान दूसरा

१ मुग्धं म., मुख्यं ज । २ आहोऽस्मि म. । ३ देवाङ्गनानामपि ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

स्नेहापवादभयसगतमानसस्य व्यामिश्रतीव्ररसवेगवशीकृतस्य ।
रामस्य गाढपरितापसमाकुलस्य कालस्तदा निरुपमः स बभूव कृच्छ्रः ॥७२॥

वंशस्थवृत्तम्

विरुद्धपूर्वोत्तरमाकुलं परं [1]विसन्धिसातेतरवेदनान्वितम् ।
अभूदिदं केसरिकेतुचिन्तनं निदाघमध्याह्नरवेः सुदुःसहम् ॥७३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे जनपरीवादचिन्ताभिधानं नाम षण्णवतितम पर्व ॥९६॥



कृपण नही होगा ॥७१॥ गौतम स्वामी कहते है कि जिनका मन स्नेह अपवाद और भयसे संगत था, जो मिश्रित तीव्र रसके वेगसे वशीभूत थे, तथा जो अत्यधिक सन्तापसे व्याकुल थे ऐसे रामका वह समय उन्हे अनुपम दु.खस्वरूप हुआ था ॥७२॥ जिसमे पूर्वापर विरोध पड़ता था, जो अत्यन्त आकुलता रूप था, जो स्थिर अभिप्रायसे रहित था और दुःखके अनुभवसे सहित था ऐसा यह रामका चिन्तन उन्हे ग्रीष्मऋतु सम्बन्धी मध्याह्नके सूर्यसे भी अधिक अत्यन्त दुःसह था ॥७३॥

इस प्रकार आर्प नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लोकनिन्दाकी
चिन्ताका उल्लेख करनेवाला छियानवेवॉ पर्व समाप्त हुआ ॥९६॥



१. विसन्ति- ज. (?)

सप्तनवतितमं पर्व

ततः कथमपि न्यस्य चिन्तामेकत्र वस्तुनि । आज्ञापयत् प्रतीहारं लक्ष्मणाकारणं प्रति ॥१॥
प्रतीहारवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः संभ्रमान्वितः । तुरङ्गं चञ्चलारुह्य कृत्येक्षणगतमानसः ॥२॥
रामस्यासन्नतां प्राप्य प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । आसीनो भूतले रम्ये तत्पादनिहितेक्षणः ॥३॥
स्वयमुत्थाप्य तं पद्मो विनयानतविग्रहम् । [1]परमाश्रवताभाजं चक्रेऽर्धासनसंगतम् ॥४॥
शत्रुघ्नाग्रेसरा भूपाश्चन्द्रोदर[2]सुतादयः । तथाविशन् कृतानुज्ञा आसीनाश्च यथोचितम् ॥५॥
पुरोहितः पुरःश्रेष्ठी मन्त्रिणोऽन्ये च सज्जनाः । यथायोग्यं समासीनाः कुतूहलसमन्विताः ॥६॥
ततः क्षणमिव स्थित्वा बलदेवो यथाक्रमम् । लक्ष्मणाय परीवादसमुत्पत्तिं न्यवेदयत् ॥७॥
तदाकर्ण्य सुमित्राजो रोषलोहितलोचनः । सन्नद्धुमादिशत् योधानिदं च पुनरभ्यधात् ॥८॥
अद्य गच्छाम्यहं शीघ्रमन्तं दुर्जन[3]वारिधेः । करोमि धरणीं मिथ्यावाक्यजिह्वा[4]तिरोहिताम् ॥९॥
उपमानविनिर्मुक्तशीलसंभारधारिणीम् । द्विषन्ति गुणगम्भीरां सीतां ये तान्नये क्षयम् ॥१०॥
ततो दुरीक्ष्यतां प्राप्तं हरिं क्रोधवशीकृतम् । सक्षुब्धसंसदं वाक्यैरिमैरशमयन्नृपः ॥११॥
सौम्यर्षभकृतौपम्यैः सदृक्षैर्भरतस्य च । महीसागरपर्यन्ता पालितेयं नरोत्तमैः ॥१२॥
इक्ष्वाकुवंशतिलका आदित्ययशआदयः । आसंस्तेषां रणे पृष्ठं दृष्टं नेन्द्रोरिवारिभिः ॥१३॥
तेषां यशःप्रतानेन कौमुदीपटशोभिना । अलंकृतमिदं लोकत्रितयं रहितान्तरम् ॥१४॥

अथानन्तर किसी तरह एक वस्तुमें चिन्ताको स्थिर कर श्रीरामने लक्ष्मणको बुलानेके लिए द्वारपालको आज्ञा दी ॥१॥ कार्योंके देखनेमें जिनका मन लग रहा था ऐसे लक्ष्मण, द्वारपालके वचन सुन हड़बड़ाहटके साथ चंचल घोड़ेपर सवार हो श्रीरामके निकट पहुँचे और हाथ जोड़ नमस्कार कर उनके चरणोंमें दृष्टि लगाये हुए मनोहर पृथिवीपर बैठ गये ॥२–३॥ जिनका शरीर विनयसे नम्रीभूत था तथा जो परम आज्ञाकारी थे ऐसे लक्ष्मणको स्वयं उठाकर रामने अर्धासनपर बैठाया ॥४॥ जिनमें शत्रुघ्न प्रधान था ऐसे विराधित आदि राजा भी आज्ञा लेकर भीतर प्रविष्ट हुए और सब यथायोग्य स्थानोंपर बैठ गये ॥५॥ पुरोहित, नगरसेठ, मन्त्री तथा अन्य सज्जन कुतूहलसे युक्त हो यथायोग्य स्थानोंपर आसीन हुए ॥६॥

तदनन्तर क्षण-भर ठहरकर रामने यथाक्रमसे लक्ष्मणके लिए अपवाद उत्पन्न होनेका समाचार सुनाया ॥७॥ सो उसे सुनकर लक्ष्मणके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने उसी समय योद्धाओंको तैयार होनेका आदेश दिया तथा स्वयं कहा कि मैं आज दुर्जनरूपी समुद्रके अन्तको प्राप्त होता हूँ और मिथ्यावादी लोगोंकी जिह्वाओंसे पृथिवीको आच्छादित करता हूँ ॥८–९॥ अनुपम शीलके समूहको धारण करनेवाली एवं गुणोंसे गम्भीर सीताके प्रति जो द्वेष करते हैं मैं उन्हें आज क्षयको प्राप्त कराता हूँ ॥१०॥ तदनन्तर जो क्रोधके वशीभूत हो दुर्दर्शनीय अवस्थाको प्राप्त हुए थे तथा जिन्होंने सभाको क्षोभयुक्त कर दिया था ऐसे लक्ष्मणको रामने इन वचनोंसे शान्त किया कि हे सौम्य! यह समुद्रान्त पृथिवी भगवान् ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती-जैसे उत्तमोत्तम पुरुषोंके द्वारा चिरकालसे पालित है ॥११–१२॥ अर्ककीर्ति आदि राजा इक्ष्वाकुवंशके तिलक थे। जिस प्रकार कोई चन्द्रमाकी पीठ नहीं देख सकता उसी प्रकार इनकी पीठ भी युद्धमें शत्रु नहीं देख सके थे ॥१३॥ चाँदनीरूपी पटके समान सुशोभित उनके यशके समूहसे ये तीनों

---

१ परमाश्रयता-म । २ चन्द्रोदय म । ३ -मन्तर्दुर्जन -म । ४ जिह्व तिरोहिताम् म. ।

कथं तद्रागमात्रस्य कृते पापस्य भङ्गिनः । वहन्निरर्थकं प्राणान् विदधामि मलीमसम् ॥१५॥
अकीर्तिः परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता । कीर्तिरल्पापि देवानामपि गाथैः प्रयुज्यते ॥१६॥
भोगैः किं परमोदारैरपि प्रक्षयवत्सलैः । कीर्त्युद्यानं प्ररूढं यद्दह्यतेऽकीर्तिवह्निना ॥१७॥
तच्चैतच्छस्त्रशास्त्राणां शक्यं नावर्णनाशितम् । देव्यामस्मद्गृहस्थायां सत्यामपि सुचेतसि ॥१८॥
पश्याम्भोजवनानन्दकारिणस्तिग्मतेजसः । अस्तं[1] यातस्य को रात्रौ शक्तोऽस्ति निवर्त्तकः ॥१९॥
अपवादरजोभिर्मे महाविस्तारगामिभिः । छायायाः क्रियते हानं मा[2] भूदेतदवारणम् ॥२०॥
शशाङ्कविमलं गोत्रमकीर्तिघनलेखया । मा रुधत्प्राप्य मां भ्रातरित्यहं यत्नतत्परः ॥२१॥
शुष्केन्धनमहाकूटे सलिलाप्लाववर्जितः । मावर्द्धिष्ट यथा वह्निरयशो भुवने कृतम् ॥२२॥
कुलं महार्हमेतन्मे प्रकाशममलोज्ज्वलम् । यावत्कलङ्क्यते नाशु तावदौपायिकं कुरु ॥२३॥
अपि त्यजामि वैदेहीं निर्दोषां शीलशालिनीम् । प्रमादयामि नो कीर्तिं लोकसौख्यहृतात्मकः ॥२४॥
ततो जगाद सौमित्रिर्भ्रातृस्नेहपरायणः । राजन्न खलु वैदेह्यां विधातुं शोकमर्हसि ॥२५॥
लोकापवादमात्रेण कथं त्यजसि जानकीम् । स्थितां सर्वसतीमूर्ध्नि सर्वाकारमनिन्दिताम् ॥२६॥
असत्त्वं[3] वक्तु दुर्लोकः प्राणिनां शीलधारिणाम् । न हि तद्वचनात्तेषां परमार्थत्वमश्नुते ॥२७॥
गृह्यमाणोऽतिकृष्णोऽपि विषदूषितलोचनैः । सितत्वं परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमाः ॥२८॥
आत्मा शीलसमृद्धस्य जन्तोर्व्रजति साक्षिताम् । परमार्थाय पर्याप्तं वस्तुतत्त्वं[4] न बाह्यतः ॥२९॥

लोक निरन्तर सुशोभित है ॥१४॥ निष्प्रयोजन प्राणोको धारण करता हुआ मै, पापी एव भगुर स्नेहके लिए उस कुलको मलिन कैसे कर दूँ ? ॥१५॥ अल्प भी अकीर्ति उपेक्षा करनेपर वृद्धिको प्राप्त हो जाती है और थोडी भी कीर्ति इन्द्रोके द्वारा भी प्रयोगमे लायी जाती है—गायी जाती है ॥१६॥ जब कि अकीर्तिरूपी अग्निके द्वारा हरा-भरा कीर्तिरूपी उद्यान जल रहा है तब इन नश्वर विशाल भोगोसे क्या प्रयोजन सिद्ध होनेवाला है ? ॥१७॥ मै जानता हूँ कि देवी सीता, सती और शुद्ध हृदयवाली नारी है पर जबतक वह हमारे घरमे स्थित रहती है तबतक यह अवर्णवाद शस्त्र और शास्त्रोके द्वारा दूर नही किया जा सकता ॥१८॥ देखो, कमल वनको आनन्दित करनेवाला सूर्य रात्रि होते ही अस्त हो जाता है सो उसे रोकनेवाला कौन है ? ॥१९॥ महाविस्तारको प्राप्त होनेवाली अपवादरूपी रजसे मेरी कान्तिका ह्रास किया जा रहा है सो यह अनिवारित न रहे—इसकी रुकावट होना चाहिए ॥२०॥ हे भाई ! चन्द्रमाके समान निर्मल कुल मुझे पाकर अकीर्तिरूपी मेघकी रेखासे आवृत न हो जाये इसीलिए मै यत्न कर रहा हूँ ॥२१॥ जिस प्रकार सूखे ईन्धनके समूहमे जलके प्रवाहसे रहित अग्नि बढती जाती है उस प्रकार उत्पन्न हुआ यह अपयश ससारमे बढ़ता न रहे ॥२२॥ मेरा यह महायोग्य, प्रकाशमान, अत्यन्त निर्मल एवं उज्ज्वल कुल जबतक कलकित नही होता है तबतक शीघ्र ही इसका उपाय करो ॥२३॥ जो जनताके सुखके लिए अपने आपको अर्पित कर सकता है ऐसा मै निर्दोष एव शीलसे सुशोभित सीताको छोड़ सकता हूँ परन्तु कीर्तिको नष्ट नही होने दूँगा ॥२४॥

तदनन्तर भाईके स्नेहमे तत्पर लक्ष्मणने कहा कि हे राजन् ! सीताके विषयमे शोक नही करना चाहिए ॥२५॥ समस्त सतियोके मस्तकपर स्थित एवं सर्व प्रकारसे अनिन्दित सीताको आप मात्र लोकापवादके भयसे क्यो छोड़ रहे है ? ॥२६॥ दुष्ट मनुष्य शीलवान् मनुष्योकी बुराई कहे पर उनके कहनेसे उनकी परमार्थता नष्ट नही हो जाती ॥२७॥ जिनके नेत्र विषसे दूषित हो रहे है ऐसे मनुष्य यद्यपि चन्द्रमाको अत्यन्त काला देखते है पर यथार्थमे चन्द्रमा शुक्लता नही छोड़ देता है ॥२८॥ शीलसम्पन्न प्राणीकी आत्मा साक्षिताको प्राप्त होती है अर्थात् वह स्वयं ही

---

१ यानस्य म. । २. भूदातपवारणम् म । ३ वक्ति म । ४. वस्तुत्वं म ।

नो पृथग्जनवादेन संक्षोभं यान्ति कोविदाः । न शुनो [1]भषणाद्दन्ती वैलक्ष्यं प्रतिपद्यते ॥३०॥
विचित्रस्यास्य लोकस्य तरङ्गसमचेष्टिनः । परदोषकथासक्तेर्निग्रहं [2]स्वो विधास्यति[3] ॥३१॥
शिलामुत्पाट्य शीतांशुं जिघांसुर्मोहवत्सलः । स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्धं प्रपद्यते ॥३२॥
अभ्याख्यानपरो दुष्टस्तथा परगुणासहः । नियतिं दुर्गतिं जन्तुर्दुःकर्मा प्रतिपद्यते ॥३३॥
बलदेवस्ततोऽवोचद्यथा वदसि लक्ष्मण । सत्यमेवमिदं बुद्धिर्मध्यस्था तव शोभना ॥३४॥
किं तु लोकविरुद्धानि त्यजतः शुद्धिशालिनः । न दोषो दृश्यते कश्चिद्गुणश्चैकान्तसंभवः ॥३५॥
सौख्यं जगति किं तस्य का वाशा जीवितं प्रति । दिशो यस्यायशोदावज्वालालीढाः समन्ततः ॥३६॥
किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम् । किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीगताः ॥३७॥
चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्मा हितोद्भवः । ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचरः ॥३८॥
प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्तिवधूं वराम् । बली हरति दुर्वादस्ततस्तु मरणं वरम् ॥३९॥
आस्तां जनपरीवादो दोषोऽप्यतिमहान्मम । परपुंसा हृता सीता यत्पुनर्गृहमाहृता ॥४०॥
रक्षसो भवनोद्याने चकार वसतिं चिरम् । अभ्यर्थिता च दूतीभिर्वदमानाभिरीप्सितम्[4] ॥४१॥
दृष्टा च दुष्टया दृष्ट्या समीपावनिवर्त्तिना । असकृद्राक्षसेन्द्रेण भाषिता[5] च यथेप्सितम् ॥४२॥
एवंविधां तकां सीतां गृहमानयता मया । कथं न लज्जितं किंवा दुष्करं मूढचेतसाम् ॥४३॥

अपनी वास्तविकताको कहती है। यथार्थमें वस्तुका वास्तविक भाव ही उसकी यथार्थताके लिए पर्याप्त है बाह्यरूप नहीं ॥२९॥ साधारण मनुष्यके कहनेसे विद्वज्जन क्षोभको प्राप्त नहीं होते क्योंकि कुत्ताके भोंकनेसे हाथी लज्जाको प्राप्त नहीं होता ॥३०॥ तरंगके समान चेष्टाको धारण करनेवाला यह विचित्र लोक दूसरेके दोष कहनेमें आसक्त है सो इसका निग्रह स्वयं इनकी आत्मा करेगी ॥३१॥ जो मूर्ख मनुष्य शिला उखाड़कर चन्द्रमाको नष्ट करना चाहता है वह निःसन्देह स्वयं ही नाशको प्राप्त होता है ॥३२॥ चुगली करनेमें तत्पर एवं दूसरेके गुणोंको सहन नहीं करनेवाला दुष्कर्मा दुष्ट मनुष्य निश्चित ही दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥३३॥

तदनन्तर बलदेवने कहा कि लक्ष्मण ! तुम जैसा कह रहे हो सत्य वैसा ही है और तुम्हारी मध्यस्थ बुद्धि भी शोभाका स्थान है ॥३४॥ परन्तु लोकविरुद्ध कार्यका परित्याग करनेवाले शुद्धिशाली मनुष्यका कोई दोष दिखाई नहीं देता अपितु उसके विरुद्ध गुण ही एकान्त रूपसे सम्भव मालूम होता है ॥३५॥ उस मनुष्यको संसारमें क्या सुख हो सकता है ? अथवा जीवनके प्रति उसे क्या आशा हो सकती है जिसकी दिशाएँ सब ओरसे निन्दारूपी दावानलकी ज्वालाओंसे व्याप्त हैं ॥३६॥ अनर्थको उत्पन्न करनेवाले अर्थसे क्या प्रयोजन है ? विष सहित औषधिसे क्या लाभ है ? और उस पराक्रमसे भी क्या मतलब है जिससे भयमें पड़े प्राणियोंकी रक्षा नहीं होती ? ॥३७॥ उस चारित्रसे प्रयोजन नहीं है जिससे आत्मा अपना हित करनेमें उद्यत नहीं होता और उस ज्ञानसे क्या लाभ जिससे अध्यात्मका ज्ञान नहीं होता ॥३८॥ उस मनुष्यका जन्म अच्छा नहीं कहा जा सकता जिसकी कीर्तिरूपी उत्तम वधूको अपयशरूपी बलवान् हर ले जाता है। अरे ! इसकी अपेक्षा तो उसका मरना ही अच्छा है ॥३९॥ लोकापवाद जाने दो, मेरा भी तो यह बड़ा भारी दोष है जो मैं परपुरुषके द्वारा हरी हुई सीताको फिरसे घर ले आया ॥४०॥ सीताने राक्षसके गृहोद्यानमें चिरकाल तक निवास किया, कुत्सित वचन बोलनेवाली दूतियोंने उससे अभिलषित पदार्थकी याचना की, समीपकी भूमिमें वर्तमान रावणने उसे कई बार दुष्ट दृष्टिसे देखा तथा इच्छानुसार उससे वार्तालाप किया। ऐसी उस सीताको घर लाते हुए मैंने

---

१. भाषणाद्दन्ती म, ज, ख. भषणं स्वरव. । २. स्वो म., ख. । ३. विधास्यते ख । ४ -रिक्षितम् म. । ५ भर्त्सिता म. ।

कृतान्तवक्त्रसेनानीः शब्द्यतामविलम्बितम् । सीता गर्भद्वितीया मे गृहादद्यैव नीयताम् ॥४४॥
एवमुक्तेऽञ्जलिं[1] बद्ध्वा सौमित्रिः प्रणतात्मकः । जगाद देव नो युक्तं त्यक्तुं जनकसंभवाम् ॥४५॥
सुमार्दवाङ्घ्रिकमला तन्वी मुग्धा सुखैधिता । एकाकिनी यथा[2] यातु क्व वैदेही खिलेन[3] वा ॥४६॥
गर्भभारसमाक्रान्ता परमं खेदमाश्रिता । राजपुत्री त्वया त्यक्ता संश्रयं कं प्रपद्यते ॥४७॥
वलिपुष्पादिकं दृष्टं लोकेन तु जिनाय किम् । कल्प्यते भक्तियुक्तेन को दोषः परदर्शने ॥४८॥
प्रसीद नाथ निर्दोषामसूर्यम्पश्यकोमलाम् । मात्याक्षीर्मैथिलीं वीर भवदर्पितमानसाम् ॥४९॥
ततोऽत्यन्तदृढीभूतविरागः क्रोधभारभाक् । काकुत्स्थ. प्रवरोऽवोचदप्रसन्नमुखोऽनुजम् ॥५०॥
लक्ष्मीधर न वक्तव्यं त्वया किंचिदतः परम् । मयैतन्निश्चितं कृत्यमवश्यं साध्वसाधु वा ॥५१॥
निर्मानुष्ये वने त्यक्ता सहायपरिवर्जिता । जीवतु म्रियतां वापि सीतात्मीयेन कर्मणा ॥५२॥
क्षणमप्यत्र मे देशे मा शिष्टनगरेऽपि वा । कुल एव गृहे सीता मलवर्द्धनकारिणी ॥५३॥
चतुरश्वमयारूढ़ रथ सैन्यसमावृतः । जय नन्देति शब्देन वन्दिभिः परिपूजित ॥५४॥
समुच्छ्रितसितच्छत्रश्चापी कवचकुण्डली । कृतान्तवक्त्रसेनानीरीशितु प्रस्थितोऽन्तिकम् ॥५५॥
तं तथाविधमायान्तं दृष्ट्वा नगरयोषिताम् । कथा बहुविकल्पासीद् वितर्कागतचेतसाम् ॥५६॥

लज्जाका अनुभव क्यो नही किया ? अथवा मूर्ख मनुष्योके लिए क्या कठिन है ? ॥४१-४३॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिको शीघ्र ही बुलाया जाये और अकेली गर्भिणी सीता आज ही मेरे घरसे ले जायी जाये ॥४४॥

इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मणने हाथ जोडकर विनम्र भावसे कहा कि हे देव ! सीताको छोड़ना उचित नही है ॥४५॥ जिसके चरण कमल अत्यन्त कोमल है, जो कृशागी है, भोली है और सुखपूर्वक जिसका लालन-पालन हुआ है ऐसी अकेली सीता उपद्रवपूर्ण मार्गसे कहाँ जायेगी ? ॥४६॥ जो गर्भके भारसे आक्रान्त है ऐसी सीता तुम्हारे द्वारा त्यक्त होनेपर अत्यधिक खेदको प्राप्त होती हुई किसकी शरणमे जायेगी ? ॥४७॥ रावणने सीताको देखा यह कोई अपराध नही है क्योकि दूसरेके द्वारा देखे हुए बलि पुष्प आदिकको क्या भक्तजन जिनेन्द्रदेवके लिए अर्पित नही करते ? अर्थात् करते हैं अतः दूसरेके देखनेमे क्या दोष है ? ॥४८॥ हे नाथ ! हे वीर ! प्रसन्न होओ कि जो निर्दोष है, जिसने कभी सूर्य भी नही देखा है, जो अत्यन्त कोमल है, तथा आपके लिए जिसने अपना हृदय अर्पित कर दिया है ऐसी सीताको मत छोड़ो ॥४९॥

तदनन्तर जिनका विद्वेष अत्यन्त दृढ हो गया था, जो क्रोधके भारको प्राप्त थे, और जिनका मुख अप्रसन्न था ऐसे रामने छोटे भाई—लक्ष्मणसे कहा कि हे लक्ष्मीधर ! अब तुम्हे इसके आगे कुछ भी नही कहना चाहिए । मैने जो निश्चय कर लिया है वह अवश्य किया जायेगा चाहे उचित हो चाहे अनुचित ॥५०-५१॥ निर्जन वनमे सीता अकेली छोड़ी जायेगी । वहाँ वह अपने कर्मसे जीवित रहे अथवा मरे ॥५२॥ दोषकी वृद्धि करनेवाली सीता भी मेरे इस देशमे अथवा किसी उत्तम सम्बन्धीके नगरमे अथवा किसी घरमे क्षण-भरके लिए निवास न करे ॥५३॥

अथानन्तर जो चार घोड़ोवाले रथपर सवार होकर जा रहा था, सेनासे घिरा था, वन्दीजन 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोके द्वारा जिसकी पूजा कर रहे थे, जिसके शिरपर सफेद छत्र लगा हुआ था, जो धनुषको धारण कर रहा था तथा कवच और कुण्डलोसे युक्त था ऐसा कृतान्तवक्त्र सेनापति स्वामीके समीप चला ॥५४-५५॥ उसे उस प्रकार आता देख, जिनके चित्त तर्क-वितर्कमे लग रहे थे ऐसी नगरकी स्त्रियोमे अनेक प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥५६॥

---

१. मुक्त्वाञ्जलिं म । २ यथा जातु म । ३. वनेऽखिले ब. ।

किमिदं हेतुना केन त्वरावानेष लक्ष्यते । कं प्रत्येष सुसंरम्भः किन्नु कस्य भविष्यति ॥५७॥
शस्त्रान्धकारमध्यस्थो निदाघार्कसमद्युतिः । मातः कृतान्तवक्त्रोऽयं कृतान्त इव भीषणः ॥५८॥
एवमादिकथासक्तनगरीयोषिदीक्षितः । अन्तिकं रामदेवस्य सेनानीः समुपागमत् ॥५९॥
प्रणिपत्य ततो नाथं शिरसा धरणीस्पृशा । जगाद देव देह्याज्ञामिति संगतपाणिकः ॥६०॥
पद्मनाभो जगौ गच्छ सीतामपनय द्रुतम् । मार्गे जिनेन्द्रसद्मानि दर्शयन् कृतदोहदाम् ॥६१॥
सम्मेदगिरिजैनेन्द्रनिर्वाणावनिकल्पितान् । प्रदर्श्य चैत्यसंघातानाशापूरणपण्डितान् ॥६२॥
अटवीं सिंहनादाख्यां[1] नीत्वा जनविवर्जिताम् । अवस्थाप्यैनिमां सौम्य त्वरितं पुनराव्रज ॥६३॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा[2] वितर्कपरिवर्जितः । जानकीं समुपागम्य सेनानीरित्यभाषत ॥६४॥
उत्तिष्ठ रथमारोह देवि कुर्वभिवाञ्छितम् । प्रपश्य चैत्यगेहानि भजाशंसाफलोदयम् ॥६५॥
इति प्रसाद्यमाना सा सेनान्या मधुरस्वनम् । प्रमोदमानहृदया रथमूलमुपागता ॥६६॥
जगाद च चतुर्भेदः संघो जयतु संततम् । जैनो जयतु पद्माभः साधुवृत्तैकतत्परः ॥६७॥
[3]प्रसादापतितं किंचिदसुन्दरविचेष्टितम् । मृष्यन्तु सकलं देवा जिनालयनिवासिनः ॥६८॥
मनसा कान्तसक्तेन सकलं च सखीजनम् । न्यवर्तयत्त्रिगद्यैवमत्यन्तोत्सुकमानसा ॥६९॥
सुखं तिष्ठत मत्सख्यो नमस्कृत्य जिनालयान् । एषाहमाव्रजाम्येव कृत्या नोत्सुकता परा ॥७०॥

यह क्या है ? यह किस कारण उतावला दिखाई देता है ? किसके प्रति यह कुपित है ? आज किसका क्या होनेवाला है ? हे मात. ! जो शस्त्रोंके अन्धकारके मध्यमे स्थित है तथा जो ग्रीष्म ऋतुके सूर्यके समान तेजसे युक्त है ऐसा यह कृतान्तवक्त्र यमराजके समान भयंकर है ॥५७–५८॥ इत्यादि कथामे आसक्त नगरकी स्त्रियाँ जिसे देख रही थीं ऐसा सेनापति श्रीरामके समीप आया ॥५९॥

तदनन्तर उसने पृथिवीका स्पर्श करनेवाले शिरसे स्वामीको प्रणाम कर हाथ जोड़ते हुए यह कहा कि हे देव ! मुझे आज्ञा दीजिए ॥६०॥ रामने कहा कि जाओ, सीताको शीघ्र ही छोड़ आओ। उसने जिनमन्दिरोंके दर्शन करनेका दोहला प्रकट किया था इसलिए मार्गमे जो जिन-मन्दिर मिले उनके दर्शन कराते जाना। तीर्थंकरोंकी निर्वाणभूमि सम्मेदाचलपर निर्मित, एव आशाओंके पूर्ण करनेमे निपुण जो प्रतिमाओंके समूह है उनके भी उसे दर्शन कराते जाना। इस प्रकार दर्शन करानेके बाद इसे सिंहनाद नामकी निर्जन अटवीमे ले जाकर तथा वहाँ ठहराकर हे सौम्य ! तुम शीघ्र ही वापस आ जाओ ॥६१–६३॥

तदनन्तर बिना किसी तर्क-वितर्कके 'जो आज्ञा' यह कहकर सेनापति सीताके पास गया और इस प्रकार बोला कि हे देवि ! उठो, रथपर सवार होओ, इच्छित कार्य कर, जिनमन्दिरोंके दर्शन करो और इच्छानुकूल फलका अभ्युदय प्राप्त करो ॥६४–६५॥ इस प्रकार सेनापति जिसे मधुर शब्दों द्वारा प्रसन्न कर रहा था तथा जिसका हृदय अत्यन्त हर्षित हो रहा था ऐसी सीता रथके समीप आयी ॥६६॥ रथके समीप आकर उसने कहा कि सदा चतुर्विध संघकी जय हो तथा उत्तम आचारके पालन करनेमे एकनिष्ठ जिनभक्त रामचन्द्र भी सदा जयवन्त रहे ॥६७॥ यदि हमसे प्रमादवश कोई असुन्दर चेष्टा हो गयी है तो जिनालयमे निवास करनेवाले देव मेरे उस समस्त अपराधको क्षमा करे ॥६८॥ अत्यन्त उत्सुक हृदयको धारण करनेवाली सीताने पतिमे लगे हुए हृदयसे समस्त सखीजनोंको यह कहकर लौटा दिया कि हे उत्तम सखियो ! तुम लोग सुखसे रहो। मै जिनालयोंको नमस्कार कर अभी आती हूँ, अधिक उत्कण्ठा

---

१. नादास्यां स । २ -त्युक्ता म । ३ प्रमादात्पतितं म. ।

एवं तदुक्तितः पत्युरनादेशाच्च योषितः । शेषा विहरणे बुद्धिं न चक्रुश्चारुभाषिताः ॥७१॥
ततः सिद्धान्नमस्कृत्य प्रमोदं परमं श्रिता । प्रसन्नवदना सीता रथमारोहदुज्ज्वलम् ॥७२॥
सा तं रथं समारूढा रत्नकाञ्चनकल्पितम् । रेजे सुरवधूर्यद्वद्विमानं रत्नमालिनी ॥७३॥
रथः कृतान्तवक्त्रेण चोदितो वरवाजियुक् । ययौ भरतनिर्मुक्तो नाराच इव वेगवान् ॥७४॥
शुष्कद्रुमसमासक्तो वायसोऽत्यन्तमाकुलः । ररास विरसं धुन्वन्नसकृत्पक्षमस्तकम् ॥७५॥
सुमहाशोकसन्तप्ता [1]धूतमुक्तशिरोरुहा । रुरोदाभिमुखं नारी कुर्वती परिदेवनम् ॥७६॥
पश्यन्त्यप्येवमादीनि दुर्निमित्तानि जानकी । व्रजत्येव जिनासक्तमानसा स्थिरनिश्चया ॥७७॥
महीभृच्छिखरश्वभ्रकन्दरवनगह्वरम् । निमेषेण समुल्लङ्घ्य योजनं यात्यसौ रथः ॥७८॥
तार्क्ष्यवेगाश्वसंयुक्तः सितकेतुविराजितः । आदित्यरथसंकाशो रथो यात्यनिवारितः ॥७९॥
रामशक्रप्रियारूढो मनोरथजवो रथः । कृतान्तमातलिक्षिप्रनुन्नाश्वः शोभतेतराम् ॥८०॥
तत्रोपाश्रयसंयुक्ततनु सुपरमासना । याति सीता सुखं क्षोणीं पश्यन्ती विविधामिति ॥८१॥
क्वचिद्ग्रामे पुरेऽरण्ये सरांसि कमलादिभिः । कुसुमैरतिरम्याणि तथादृश्यन्त सोत्सुकम् ॥८२॥
क्वचिद्घनपटच्छन्ननभोरात्रिसमं समम् । दुरालक्ष्यपृथग्भाव विशालं वृक्षगह्वरम् ॥८३॥
च्युतपुष्पफला तन्वी विपत्रा [2]विरलांह्रिपा । अटवी क्वचिदच्छाया विधवा कुलजा यथा ॥८४॥

करना योग्य है ॥६९-७०॥ इस प्रकार सीताके कहनेसे तथा पतिका आदेश नही होनेसे सुन्दर भाषण करनेवाली अन्य स्त्रियोने उसके साथ जानेकी इच्छा नही की थी ॥७१॥

तदनन्तर परम प्रमोदको प्राप्त, प्रसन्नमुखी सीता, सिद्धोको नमस्कार कर उज्ज्वल रथ-पर आरूढ हो गयी ॥७२॥ रत्न तथा सुवर्णनिर्मित रथपर आरूढ हुई सीता उस समय इस तरह सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि विमानपर आरूढ हुई रत्नमालासे अलंकृत देवागना सुशोभित होती है ॥७३॥ कृतान्तवक्त्र सेनापतिके द्वारा प्रेरित, उत्तम घोडोसे जुता हुआ वह रथ भरत चक्रवर्तीके द्वारा छोडे हुए बाणके समान बडे वेगसे जा रहा था ॥७४॥ उस समय सूखे वृक्षपर अत्यन्त व्याकुल कौआ, पख तथा मस्तकको बार-बार कँपाता हुआ विरस शब्द कर रहा था ॥७५॥ जो महाशोकसे सन्तप्त थी, जिसने अपने बाल कम्पित कर छोड दिये थे, तथा जो विलाप कर रही थी ऐसी एक स्त्री सामने आकर रोने लगी ॥७६॥ यद्यपि सीता इन सब अशकुनोको देख रही थी तथापि जिनेन्द्र भगवान्मे आसक्त चित्त होनेके कारण वह दृढ निश्चयके साथ आगे चली जा रही थी ॥७७॥ पर्वतोके शिखर, गड्ढे, गुफाएँ और वन इन सबसे ऊँची-नीची भूमिको उल्लघन कर वह रथ निमेष मात्रमे एक योजन आगे बढ जाता था ॥७८॥ जिसमे गरुडके समान वेगशाली घोडे जुते थे, जो सफेद पताकाओसे सुशोभित तथा जो कान्तिमे सूर्यके रथके समान था ऐसा वह रथ बिना किसी रोक-टोकके आगे बढता जाता था ॥७९॥ जिसपर रामरूपी इन्द्रकी प्रिया—इन्द्राणी आरूढ थी, जिसका वेग मनोरथके समान तीव्र था, और जिसके घोडे कृतान्तवक्त्ररूपी मातलिके द्वारा प्रेरित थे ऐसा वह रथ अत्यधिक शोभित हो रहा था ॥८०॥ वहाँ जो तकियाके सहारे उत्तम आसनसे बैठी थी ऐसी सीता नाना प्रकारकी भूमिको इस प्रकार देखती हुई जा रही थी ॥८१॥ वह कही गाँवमे, कही नगरमे और कही जंगलमे कमल आदिके फूलोसे अत्यन्त मनोहर तालाबोको बडी उत्सुकतासे देखती जाती थी ॥८२॥ वह कही वृक्षोकी उस विशाल झुरमुटको देखती जाती थी जहाँ मेघरूपी पटसे आच्छादित आकाशवाली रात्रिके समान सघन अन्धकार था और जिसका पृथक्पना बडी कठिनाईसे दिखाई पड़ता था॥८३॥ कही जिसके फल-फूल और पत्ते गिर गये थे, जो कृश थी, जिसकी जडे विरली-विरली थीं, तथा

---

१ धूतमुक्ता शिरोरुहा म । २ विरला ह्रिया म ।

सहकारसमासक्ता क्वचित् सुन्दरमाधवी । वेश्येव चपलासक्तमशोकमभिकाङ्क्षति ॥८५॥
रुहापादपसंघातः क्वचिद्दावविनाशितः । न भाति हृदयं साधोः खलवाक्याहतं यथा ॥८६॥
सुपल्लवलताजालैः क्वचिन् मन्दानिलेरितैः । नृत्यं वसन्तपत्नीव वनराजी निषेवते ॥८७॥
क्वचिन् पुलिन्दसंघातमहाकलकलारवैः । उद्भ्रान्तविहगा दूरं गता सारङ्गसंहतिः ॥८८॥
क्वचिदुन्नतशैलाग्रं पश्यन्ती चोर्ध्वमस्तका । विचित्रधातुनिर्माणैर्नयनैः कौतुकान्वितैः ॥८९॥
क्वचिदच्छाल्पनीरासिः सरिद्भिः प्रोषितप्रिया । नारीवाश्रुप्रपूर्णाक्षा भाति संतापशोभिता ॥९०॥
नानाशकुन्तनादेन जल्पतीव मनोहरम् । करोतीव क्वचिद्धोध्रनिर्झराट्टहसं मुदा ॥९१॥
मकरन्दातिलुब्धाभिर्भृङ्गीभिर्मदमन्थरम् । क्वचित् संस्तूयमानेव शोभते नमिता फलैः ॥९२॥
सत्पल्लवमहाशाखैर्वृक्षैर्वायुविघूर्णितैः । उपचारप्रसक्तेव पुष्पवृष्टिं विमुञ्चते ॥९३॥
एवमादिक्रियासक्तामटवीं श्वापदाकुलाम् । पश्यन्ती याति वैदेही पद्मापेक्षिमानसा ॥९४॥
तावच्च मधुरं श्रुत्वा स्वनमत्यन्तमांसलम् । दध्यौ किन्त्वेष रामस्य दुन्दुभिध्वनिरायतः ॥९५॥
इति प्रतर्कमापन्ना दृष्ट्वा भागीरथीमसौ । एतद्घोषप्रतिस्वानं जानात्यन्यदिशि श्रुतम् ॥९६॥
अन्तर्नक्रझषग्राहमकरादिविघट्टिताम् । उद्धतोर्मिसमासंगात् क्वचित्कम्पितपङ्कजाम् ॥९७॥
समूलोन्मूलितोत्तुङ्गरोधोगतमहीरुहाम् । विदारितमहाशैलग्रावसंघातरंहसम् ॥९८॥

जो छाया (पक्षमे कान्ति) से रहित थी ऐसी कुलीन विधवाके समान अटवीको देखती जाती थी ॥८४॥ उसने देखा कि कही आम्रवृक्षसे लिपटी सुन्दर माधवी लता, चपल वेश्याके समान निकटवर्ती अशोक वृक्षकी अभिलाषा कर रही है ॥८५॥ उसने देखा कि कही दावानलसे नाशको प्राप्त हुए बड़े-बड़े वृक्षोका समूह दुर्जनके वाक्योंसे ताड़ित साधुके समान सुशोभित नही हो रहा है ॥८६॥ कही उसने देखा कि मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए उत्तम पल्लवोंवाली लताओंके समूहसे वनराजी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो वसन्तकी पत्नी नृत्य ही कर रही हो ॥८७॥ कही उसने देखा कि भीलोके समूहकी तीव्र कल-कल ध्वनिसे जिसने पक्षियोको उड़ा दिया है ऐसी हरिणोकी श्रेणी बहुत दूर आगे निकल गयी है ॥८८॥ वह कही विचित्र धातुओसे निर्मित, कौतुकपूर्ण नेत्रोसे, मस्तक ऊपर उठा पर्वतकी ऊँची चोटीको देख रही थी ॥८९॥ कही उसने देखा कि स्वच्छ तथा अल्प जलवाली नदियोसे यह अटवी उस सन्तापवती विरहिणी स्त्रीके समान जान पड़ती है कि जिसका पति परदेश गया है और जिसके नेत्र आँसुओसे परिपूर्ण हैं ॥९०॥ यह अटवी कही तो ऐसी जान पड़ती है मानो नाना पक्षियोके शब्दके बहाने मनोहर वार्तालाप ही कर रही हो और कही उज्ज्वल निर्झरोसे युक्त होनेके कारण ऐसी विदित होती है मानो हर्षसे अट्टहास ही कर रही हो ॥९१॥ कही मकरन्दकी लोभी भ्रमरियोसे ऐसी जान पड़ती है मानो मनसे मन्थर ध्वनिमे भ्रमरियाँ उसकी स्तुति ही कर रही हो और फलोके भारसे वह संकोचवश नम्र हुई जा रही हों ॥९२॥ कही उसने देखा कि वायुसे हिलते हुए उत्तमोत्तम पल्लवों और महाशाखाओसे युक्त वृक्षोके द्वारा यह अटवी विनय प्रदर्शित करनेमे संलग्नकी तरह पुष्पवृष्टि छोड़ रही है ॥९३॥ जिसका मन रामकी अपेक्षा कर रहा था ऐसी सीता उपर्युक्त क्रियाओमे आसक्त एवं वन्य पशुओसे युक्त अटवीको देखती हुई आगे जा रही थी ॥९४॥

तदनन्तर उसी समय अत्यन्त पुष्ट मधुर शब्द सुनकर वह विचार करने लगी कि क्या यह रामके दुन्दुभिका विशाल शब्द है ? ॥९५॥ इस प्रकारका तर्क कर तथा आगे गंगा नदीको देखकर उसने जान लिया कि यह अन्य दिशामे सुनाई देनेवाला इसीका शब्द है ॥९६॥ उसने देखा कि यह गंगा नदी कहीं तो भीतर क्रीड़ा करनेवाले नाके, मच्छ तथा मगर आदिसे विघट्टित है, कही उठती हुई बड़ी-बड़ी तरंगोंके संसर्गसे इसमे कमल कम्पित हो रहे हैं ॥९७॥ कही इसने

समुद्रक्रोडपर्यन्तां सगरात्मजनिर्मिताम् । आरसातलगम्भीरां पुलिनैः शोभितां सितैः ॥९९॥
फेनमालासमासक्तविशालावर्त्तभैरवाम् । प्रान्तावस्थितसत्त्वानशकुन्तगणराजिताम् ॥१००॥
अश्वास्ते तां समुत्तीर्णा. पवनोपमरहस' । [1]सम्यक्त्वसारयोगेन संसृतिं साधवो यथा ॥१०१॥
ततो मेरुवदक्षोभ्यचित्तोऽपि सततं भवन् । सेनानीः परमं प्राप विषादं सदयस्तदा ॥१०२॥
किंचिद्वक्तुमशक्तात्मा महादुःखसमाहत. । नियन्तुमक्षमः स्थातुं प्रवलायातवाष्पकः ॥१०३॥
विधृत्य स्यन्दनं लग्नः कर्त्तुं क्रन्दनमुत्कटम् । निधाय मस्तके हस्तौ स्रस्ताङ्गो विगतद्युतिः ॥१०४॥
ततो जगाद वैदेही प्रभ्रष्टहृदया सती । कृतान्तवक्त्र कस्मात्त्वं विरौपीदं सुदुःखिवत् ॥१०५॥
प्रस्तावेऽत्यन्तहर्षस्य विषादयसि मामपि । विजनेऽस्मिन् महारण्ये कस्मादाश्रितरोदनः ॥१०६॥
स्वाम्यादेशस्य कृत्यत्वाद्वक्तव्यत्वान्नियोगतः । कथंचिद्रोदनं कृत्वा यथावत्स न्यवेदयत ॥१०७॥
विषाग्निशस्त्रसदृशं शुभे दुर्जनभाषितम् । श्रुत्वा देवेन दुष्कीर्तेः[2] परमं भयमीयुषा ॥१०८॥
संत्यज्य दुस्त्यजं स्नेहं दोहदानां नियोगतः । त्यक्तासि [3]देवि रामेण श्रमणेन रतिर्यथा ॥१०९॥
स्वामिन्यस्ति प्रकारोऽसौ नैव येन स विष्णुना । अनुनीतस्तवार्थेन न तथाप्यत्यजद् ग्रहम् ॥११०॥
तस्मिन् स्वामिनि नीरागे शरणं तेऽस्ति न क्वचित् । धर्मसंबन्धमुक्ताया जीवे सौख्यस्थितेरिव ॥१११॥

किनारे पर स्थित ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको जडसे उखाड़ डाला है, कही इसके वेगने बडे-बड़े पर्वतोंकी चट्टानोंके समूहको विदारित कर दिया है ॥९८॥ यह समुद्रकी गोदमे फैली है, राजा सगरके पुत्रों द्वारा निर्मित है, रसातल तक गहरी है, सफेद पुलिनोसे शोभित है ॥९९॥ फेनके समूहसे सहित बड़ी-बड़ी भँवरोसे भयंकर है, और समीपमे स्थित पक्षियोके समूहसे सुशोभित है ॥१००॥ पवनके समान वेगशाली वे घोडे उस गंगानदीको उस तरह पार कर गये जिस तरह कि साधु सम्यग्दर्शनके सार पूर्ण योगसे संसारको पार कर जाते हैं ॥१०१॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्र सेनापति यद्यपि मेरुके समान सदा निश्चल चित्त रहता था तथापि उस समय वह दया सहित होता हुआ परम विषादको प्राप्त हो गया ॥१०२॥ कुछ भी कहनेके लिए जिसकी आत्मा अशक्त थी, जो महादुःखसे ताड़ित हो रहा था, तथा जिसके बलात् आँसू निकल रहे थे ऐसा कृतान्तवक्त्र अपने आप पर नियन्त्रण करने तथा खडे होनेके लिए असमर्थ हो गया ॥१०३॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर ढीला पड़ गया था और जिसकी कान्ति नष्ट हो गयी थी ऐसा सेनापति रथ खडा कर और मस्तक पर दोनो हाथ रखकर जोर-जोरसे रुदन करने लगा ॥१०४॥ तत्पश्चात् जिसका हृदय टूट रहा था ऐसी सती सीताने कहा कि हे कृतान्तवक्त्र ! तू अत्यन्त दुःखी मनुष्यके समान इस तरह क्यों रो रहा है ? ॥१०५॥ तू इस अत्यधिक हर्षके अवसरमे मुझे भी विषाद युक्त कर रहा है। बता तो सही कि तू इस निर्जन महावनमे क्यो रो रहा है ॥१०६॥ स्वामीका आदेश पालन करना चाहिए अथवा अपने नियोगके अनुसार यथार्थ बात अवश्य कहना चाहिए इन दो कारणोसे जिस किसी तरह रोना रोककर उसने यथार्थ बातका निरूपण किया ॥१०७॥ उसने कहा कि हे शुभे ! विष अग्नि अथवा शस्त्रके समान दुर्जनोका कथन सुनकर जो अपकीर्तिसे अत्यधिक भयभीत हो गये थे ऐसे श्रीरामने दुःखसे छूटने योग्य स्नेह छोड़कर दोहलोके बहाने हे देवि ! तुम्हें उस तरह छोड़ दिया है जिस तरह कि मुनि रतिको छोड़ देते है ॥१०८-१०९॥ हे स्वामिनि ! यद्यपि ऐसा कोई प्रकार नही रहा जिससे कि लक्ष्मणने आपके विषयमे उन्हे समझाया नही हो तथापि उन्होने अपनी हठ नही छोड़ी ॥११०॥ जिस प्रकार धर्मके सम्बन्धसे रहित जीवकी सुखस्थितिको कही शरण नही प्राप्त होता उसी प्रकार

---

१. सम्यक् ससारयोगेन (?) म । २ दुःकीर्तिः म. । ३ देव म. ।

न सवित्री न च भ्राता न च बान्धवसंहतिः । आश्रयस्तेऽधुना देवि मृगाकुलमिदं वनम् ॥११२॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा वज्रेणेवाभिताडिता । हृदये दुःखसंभारव्याप्ता मोहमुपागता ॥११३॥
संज्ञां प्राप्य च कृच्छ्रेण स्खलितोद्गतवर्णगीः । जगादापृच्छनं कर्तुं सकृन्मे नाथमीक्षय ॥११४॥
सोऽवोचद्देवि दूरं सा नगरी रहिताधुना । कुतः पश्यसि पद्माभं परमं चण्डशासनम् ॥११५॥
ततोऽश्रुजलधाराभिः क्षालयन्त्यास्यपङ्कजम् । तथापि निर्भरस्नेहरसाक्रान्ता जगाविदम् ॥११६॥
सेनापते त्वया वाच्यो रामो मद्वचनादिदम् । यथा मत्त्यागजः कार्यो न विषादस्त्वया प्रभो ॥११७॥
अवलम्ब्य परं धैर्यं महापुरुष सर्वथा । सदा रक्ष प्रजां सम्यक्पितेव न्यायवत्सलः ॥११८॥
परिप्राप्तकलापारं नृपमाह्लादकारणम् । शरच्चन्द्रमसं यद्वदिच्छन्ति सततं प्रजाः ॥११९॥
संसाराद् दुःखनिर्घोरान्मुच्यन्ते येन देहिनः । भव्यास्तद्दर्शनं सम्यगाराधयितुमर्हसि ॥१२०॥
साम्राज्यादपि पद्माभ तदेव बहु मन्यते । नश्यत्येव पुना राज्यं दर्शनं स्थिरसौख्यदम् ॥१२१॥
तदभव्यजुगुप्सातो भीतेन पुरुषोत्तम । न कथंचित्त्वया त्याज्यं नितान्तं तद्धि दुर्लभम् ॥१२२॥
रत्नं पाणितलं प्राप्तं परिभ्रष्टं महोदधौ । उपायेन पुनः केन संगतिं प्रतिपद्यते ॥१२३॥
क्षिप्त्वामृतफलं कूपे महापत्तिभयंकरे । परं प्रपद्यते दुःखं पश्चात्तापहतः शिशुः ॥१२४॥
यस्य यत्सदृशं तस्य प्रवदत्यनिवारितः । को ह्यस्य जगतः कर्तुं शक्नोति मुखबन्धनम् ॥१२५॥

उन स्वामीके निःस्नेह होनेपर आपके लिए कही कोई शरण नही जान पड़ता ॥१११॥ हे देवि ! तेरे लिए न माता शरण है, न भाई शरण है, और न कुटुम्बीजनोंका समूह ही शरण है। इस समय तो तेरे लिए मृगोसे व्याप्त यह वन ही शरण है ॥११२॥

तदनन्तर सीता उसके वचन सुन हृदयमे वज्रसे ताड़ितके समान अत्यधिक दुःखसे व्याप्त होती हुई मोहको प्राप्त हो गयी ॥११३॥ बड़ी कठिनाईसे चेतना प्राप्त कर उसने लडखड़ाते अक्षरों-वाली वाणीमे कहा कि कुछ पूछनेके लिए मुझे एक वार स्वामीके दर्शन करा दो ॥११४॥ इसके उत्तरमे कृतान्तवक्त्रने कहा कि हे देवि ! इस समय तो वह नगरी बहुत दूर रह गयी है अतः अत्यधिक कठोर आज्ञा देनेवाले स्वामी—रामको किस प्रकार देख सकती हो ? ॥११५॥ तदनन्तर सीता यद्यपि अश्रुजलकी धारामे मुखकमलका प्रक्षालन कर रही थी तथापि अत्यधिक स्नेहरूपी रसमे आक्रान्त हो उसने यह कहा कि ॥११६॥ हे सेनापते ! तुम मेरी ओरसे रामसे यह कहना कि हे प्रभो ! आपको मेरे त्यागसे उत्पन्न हुआ विषाद नही करना चाहिए ॥११७॥ हे महापुरुष ! परम धैर्यका अवलम्बन कर सदा पिताके समान न्यायवत्सल हो प्रजाकी अच्छी तरह रक्षा करना ॥११८॥ क्योकि जिस प्रकार प्रजा पूर्ण कलाओंको प्राप्त करनेवाले शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी सदा इच्छा करती है—उसे चाहती है उसी प्रकार कलाओके पारको प्राप्त करनेवाले एवं आह्लाद-के कारणभूत राजाकी प्रजा सदा इच्छा करती है—उसे चाहती है ॥११९॥ जिस सम्यग्दर्शनके द्वारा भव्य जीव दुःखोंसे भयंकर संसारसे छूट जाते है उस सम्यग्दर्शनकी अच्छी तरह आराधना करनेके योग्य हो ॥१२०॥

हे राम ! साम्राज्यकी अपेक्षा वह सम्यग्दर्शन ही अधिक माना जाता है क्योकि साम्राज्य तो नष्ट हो जाता है परन्तु सम्यग्दर्शन स्थिर सुखको देनेवाला है ॥१२१॥ हे पुरुषोत्तम ! अभव्योके द्वारा की हुई जुगुप्सासे भयभीत होकर तुम्हे वह सम्यग्दर्शन किसी भी तरह नही छोड़ना चाहिए क्योकि वह अत्यन्त दुर्लभ है ॥१२२॥ हथेलीमे आया रत्न यदि महासागरमे गिर जाता है तो फिर वह किस उपायसे प्राप्त हो सकता है ? ॥१२३॥ अमृतफलको महा आपत्तिसे भयंकर कुएँमे फेंककर पश्चात्तापसे पीडित बालक परम दुःखको प्राप्त होता है ॥१२४॥ जिसके अनुरूप जो होता है वह उसे विना किसी प्रतिबन्धके कहता ही है क्योकि

शृण्वतापि त्वया तत्तत्स्वार्थनाशनकारणम् । [1]पडेनेव न कर्त्तव्यं हृदये गुणभूषण ॥१२६॥
तीव्राज्ञोऽपि यथाभूतो जगदर्थावभासनात् । विकारमनु[2] न प्राप्तो भवादित्य इव प्रियः ॥१२७॥
भजस्व प्रस्खल[3] दानै. प्रीतियोगैर्निजं जनम् । परं च शीलयोगेन मित्रं सद्भावसेवनै. ॥१२८॥
यथोपपन्नसज्जेन समेतमतिथिं गृहम् । साधून् समस्तभावेन प्रणामाभ्यर्चनादिभिः ॥१२९॥
क्षान्त्या क्रोधं मृदुत्वेन मानं निर्विपर्यस्थितम्[4] । मायामार्जवयोगेन धृत्या लोभं तनूकुरु ॥१३०॥
सर्वशास्त्रप्रवीणस्य नोपदेशस्तव क्षम. । चापलं हृदयस्येदं त्वत्प्रेमग्रहयोगिन. ॥१३१॥
कृतं दश्यतया किंचित् परिहासेन वा पुनः । मयाविनयमीश त्वं समस्त क्षन्तुमर्हसि ॥१३२॥
एतावद्दर्शनं नूनं भवता सह मे प्रभो । पुनः पुनरतो वच्मि क्षन्तव्यं साध्वसाधु वा ॥१३३॥
इत्युक्त्वा पूर्वमेवासाववतीर्णा रथोदरात् । पपात धरणीपृष्ठे तृणोपलसमाकुले ॥१३४॥
धरण्यां पतिता तस्यां मूर्च्छानिश्चेतनीकृता । रराज जानकी यद्वत् पर्यस्ता रत्नसंहतिः ॥१३५॥
नष्टचेष्टां तकां दृष्ट्वा सेनानीरतिदुःखित. । अचिन्तयदियं प्राणान् दुष्करं धारयिष्यति ॥१३६॥
अरण्येऽत्र महाभीष्मे व्यालसंघातसंकुले । विदधाति न धीरोऽपि त्वत्याशां जीवितं प्रति ॥१३७॥
मृगाक्षीमेतिकां त्यक्त्वा विपिनेऽस्मिन्ननुत्तमे । स्थानं न तत् प्रपश्यामि यत्र मां शान्तिरेष्यति ॥१३८॥
इतो निर्दयतात्युग्रा स्वाम्याज्ञा निश्चितान्यत. । अहो दु समहावर्त्तमध्यं प्राप्तोऽस्मि पापक ॥१३९॥

इस ससारका मुखबन्धन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१२५॥ हे गुणभूषण ! यद्यपि आत्महितको नष्ट करनेवाली अनेक बाते आप श्रवण करेगे तथापि ग्रहिल (पागल) के समान उन्हे हृदयमे नही धारण करना—विचारपूर्वक ही कार्य करना ॥१२६॥ जिस प्रकार सूर्य यद्यपि अत्यन्त तेजस्वी रहता है तथापि संसारके समस्त पदार्थोको प्रकाशित करनेमे यथाभूत है एवं कभी विकारको प्राप्त नही होता इसलिए लोगोको प्रिय है उसी प्रकार यद्यपि आप तीव्र शासनसे युक्त हो तथापि जगत्के समस्त पदार्थोको ठीक-ठीक जाननेके कारण यथाभूत यथार्थ रूप रहना एवं कभी विकारको प्राप्त नही होनेसे सूर्यके समान सबको प्रिय रहना ॥१२७॥ दुष्ट मनुष्यको कुछ देकर वश करना, आत्मीय जनोको प्रेम दिखाकर अनुकूल रखना, शत्रुको उत्तमशील अर्थात् निर्दोष आचरणसे वश करना और मित्रको सद्भावपूर्वक की गयी सेवाओसे अनुकूल रखना ॥१२८॥ क्षमासे क्रोधको, मार्दवसे चाहे जहाँ होनेवाले मानको, आर्जवसे मायाको और धैर्यसे लोभको कृश करना ॥१२९-१३०॥ हे नाथ ! आप तो समस्त शास्त्रोमे प्रवीण हो अत. आपको उपदेश देना योग्य नही है, यह जो मैने कहा है वह आपके प्रेमरूपी ग्रहसे संयोग रखनेवाले मेरे हृदयकी चपलता है ॥१३१॥ हे स्वामिन् ! आपके वशीभूत होनेसे अथवा परिहासके कारण यदि मैंने कुछ अविनय किया हो तो उस सबको क्षमा कीजिए ॥१३२॥ हे प्रभो ! जान पड़ता है कि आपके साथ मेरा दर्शन इतना ही था इसलिए बार-बार कह रही हूँ कि मेरी प्रवृत्ति उचित हो अथवा अनुचित सब क्षमा करने योग्य है ॥१३३॥ जो रथके मध्यसे पहले ही उतर चुकी थी ऐसी सीता इस प्रकार कहकर तृण तथा पत्थरोसे व्याप्त पृथिवीपर गिर पडी ॥१३४॥ उस पृथिवीपर पड़ी, मूर्च्छासे निश्चल सीता ऐसी जान पड़ती थी मानो रत्नोका समूह बिखर गया हो ॥१३५॥ चेष्टाहीन सीताको देखकर सेनापतिने अत्यन्त दुःखी हो इस प्रकार विचार किया कि यह प्राणोको बड़ी कठिनाईसे धारण कर सकेगी ॥१३६॥ हिंसक जीवोके समूहसे भरे हुए इस महाभयकर वनमे धीर-वीर मनुष्य भी जीवित रहनेकी आशा नही रख सकता ॥१३७॥ इस विकट वनमे इस मृगनयनीको छोड़कर मै वह स्थान नही देखता जहाँ मुझे शान्ति प्राप्त हो सकेगी ॥१३८॥ इस ओर अत्यन्त भयकर निर्दयता है और उस ओर स्वामीकी सुदृढ आज्ञा है । अहो ! मैं पापी

१ 'पडेनेव ग्रहिलेनेव । पड. ग्रहिल इति श्री हि. । एडेनेव म । २ -मतनु म., ग, ख । ३. 'प्रस्खल म. । ४ निर्विषया स्थितम् म ।

धिग् भृत्यतां जगन्निन्द्यां यत्र किंचनविधायिनीम् । परायत्तीकृतात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम् ॥१४०॥
यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य दुःखैकनिहितात्मनः । भृत्यस्य जीविताद् दूरं वरं कुक्कुरजीवितम् ॥१४१॥
[1]नरेन्द्रशक्तिवश्यः स निन्द्यनामा पिशाचवत् । किं करोति न किं भृत्यः किं वा न परिभाषते ॥१४२॥
चित्रचापसमानस्य निःकृत्यगुणधारिणः । नित्यनम्रशरीरस्य निन्द्यं भृत्यस्य जीवितम् ॥१४३॥
[2]संकारकूटवत्त्येव पश्चान्निर्वृत्तचेतसः । निर्माल्यवाहिनो धिग्धिग्भृत्यनाम्नोऽसुधारणम् ॥१४४॥
पश्चात् कृतगुरुत्वस्य तोयार्थमपि नामिनः । तुलायन्त्रसमानस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४५॥
उन्नत्या त्रपया दीप्त्या वर्जितस्य निजेच्छया । मा स्म भूज्जीवितं भृत्यस्य पुस्तसंस्थानधारिणः ॥१४६॥
विमानस्यापि तुच्छस्य गत्या गुरुतया समम् । अधस्ताद्गच्छतो नित्यं धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४७॥
निःसत्त्वस्य महामांसविक्रयं कुर्वतः सदा । निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ॥१४८॥
भृत्यताकरणीयेन कर्मणास्मि वशीकृतः । एतां [3]यन्न विमुञ्चामि प्रस्तावेऽप्यत्र दारुणे ॥१४९॥
इति विमृश्य संत्यज्य सीतां धर्मधियं यथा । अयोध्याभिमुखोऽयासीत् सेनानीः सत्रपान्तरः ॥१५०॥
इतरापि परिप्राप्तसंज्ञा परमदुःखिता । यूथभ्रष्टेव सारङ्गी महाक्रन्दं समाश्रिता ॥१५१॥

दुःखरूपी महाआवर्तके बीच आ पड़ा हूँ ॥१३९॥ जिसमें इच्छाके विरुद्ध चाहे जो करना पड़ता है, आत्मा परतन्त्र हो जाती है, और क्षुद्र मनुष्य ही जिसकी सेवा करते हैं ऐसी लोकनिन्द्य दास-वृत्तिको धिक्कार है ॥१४०॥ जो यन्त्रकी चेष्टाओंके समान है तथा जिसकी आत्मा निरन्तर दुःख ही उठाती है ऐसे सेवकके जीवनकी अपेक्षा कुक्कुरका जीवन बहुत अच्छा है ॥१४१॥ जो नरेन्द्र अर्थात् राजा (पक्षमें मान्त्रिक) की शक्तिके अधीन है तथा निन्द्य नामका धारक है ऐसा सेवक पिशाचके समान क्या नहीं करता है ? और क्या नहीं बोलता है ? ॥१४२॥ जो चित्रलिखित धनुषके समान है, जो कार्यरहित गुण अर्थात् डोरी (पक्षमें ज्ञानादि) से सहित है तथा जिसका शरीर निरन्तर नम्र रहता है ऐसे भृत्यका जीवन निन्द्य जीवन है ॥१४३॥ सेवक कचड़ाघरके समान है। जिस प्रकार लोग कचड़ाघरमें कचड़ा डालकर पीछे उससे अपना चित्त दूर हटा लेते हैं उसी प्रकार लोग सेवकसे काम लेकर पीछे उससे चित्त हटा लेते हैं—उसके गौरवको भूल जाते हैं, जिस प्रकार कचड़ाघर निर्माल्य अर्थात् उपभुक्त वस्तुओंको धारण करता है उसी प्रकार सेवक भी स्वामीकी उपभुक्त वस्तुओंको धारण करता है। इस प्रकार सेवक नामको धारण करनेवाले मनुष्यके जीवित रहनेको बार-बार धिक्कार है ॥१४४॥ जो अपने गौरवको पीछे कर देता है तथा पानी प्राप्त करनेके लिए भी जिसे झुकना पड़ता है इस प्रकार तुलायन्त्रकी तुल्यताको धारण करनेवाले भृत्यका जीवित रहना धिक्कारपूर्ण है ॥१४५॥ जो उन्नति, लज्जा, दीप्ति और स्वयं निजकी इच्छासे रहित है तथा जिसका स्वरूप मिट्टीके पुतलेके समान क्रियाहीन है ऐसे सेवकका जीवन किसीको प्राप्त न हो ॥१४६॥ जो विमान अर्थात् व्योमयान (पक्षमें मान रहित) होकर भी गतिसे रहित है तथा जो गुरुताके साथ-साथ निरन्तर नीचे जाता है ऐसे भृत्यके जीवनको धिक्कार है ॥१४७॥ जो स्वयं शक्तिसे रहित है, अपना मांस भी बेचता है, सदा मदसे शून्य है और परतन्त्र है ऐसे भृत्यके जीवनको धिक्कार है ॥१४८॥ जिसके उदयमें भृत्यता करनी पड़ती है ऐसे कर्मसे मैं विवश हो रहा हूँ इसलिए तो इस दारुण अवसरके समय भी इस भृत्यताको नहीं छोड़ रहा हूँ ॥१४९॥ इस प्रकार विचार कर धर्मबुद्धिके समान सीताको छोड़-कर सेनापति लज्जित होता हुआ अयोध्याके सम्मुख चला गया ॥१५०॥

तदनन्तर इधर जिसे चेतना प्राप्त हुई थी ऐसी सीता अत्यन्त दुःखी होती हुई यूथसे

१. राजा मन्त्रवादी च । २. सत्कार म । ससार ब. । संकार. कचारा इति श्रीदत्त टि. । ३. येन म., क, ख, ज. ।

रुदत्याः करुणं तस्याः पुष्पमोक्षापदेशतः । वनस्पतिसमूहेन नूनं रुदितमेव तत् ॥१५२॥
निसर्गरमणीयेन स्वरेण परिदेवनम् । ततोऽसौ कर्तुमारब्धा महाशोकवशीकृता ॥१५३॥
हा पद्मेक्षण हा पद्म हा नरोत्तम हा प्रभो । यच्छ प्रतिवचो देव कुरु साधारणं मम ॥१५४॥
सततं साधुचेष्टस्य सद्गुणस्य सचेतसः । न तेऽस्ति दोषगन्धोऽपि महापुरुषतायुजः ॥१५५॥
पुरा स्वयंकृतस्येद प्राप्तं मे कर्मणः फलम् । अवश्यं परिभोक्तव्यं व्यसनं परमोत्कटम् ॥१५६॥
किं करोतु प्रियोऽपत्यं जनकः पुरुषोत्तमः । किं वा बान्धवलोको मे स्वकर्मण्युदयस्थिते ॥१५७॥
नूनं जन्मनि पूर्वस्मिन्नसत्पुण्यमुपार्जितम् । मन्दभाग्याजनेऽरण्ये दुःखं प्राप्तास्मि यत्परम् ॥१५८॥
अवर्णवचनं नूनं मया गोष्ठीष्वनुष्ठितम् । यस्योदयेन सम्प्राप्तमिदं व्यसनमीदृशम् ॥१५९॥
गुरो. समक्षमादाय नूनमन्यत्र जन्मनि । व्रतं मया पुनर्भग्नं यस्येदं फलमीदृशम् ॥१६०॥
अथवा परुषैर्वाक्यैः कश्चित् विषफलोपमैः[1] । निर्भर्त्सितो भवेऽन्यस्मिन् जात यद्दुःखमीदृशम् ॥१६१॥
अन्यत्र जनने मन्ये पद्मखण्डस्थितं मया । चक्राह्वयुगलं भिन्नं स्वामिना रहितास्मि यत् ॥१६२॥
किं वा सरसि पद्मादिभूषिते रचितालयम् । पुरुषाणामुदाराणां गतिलीलाविलम्बकम् ॥१६३॥
जल्पितेन वरस्त्रीणां सौन्दर्येण कृतोपमम् । सौमित्रिसौधसच्छाय पद्मारुणमुखक्रमम् ॥१६४॥
वियोजितं भवेऽन्यस्मिन्हंसयुग्म कुचेष्टया । प्राप्तास्मि वासनं घोरं येनेदृक्षं हताशिका ॥१६५॥
गुञ्जाफलार्द्धवर्णाक्षमन्योन्यार्पितमानसम् । कृष्णागुरुभवात्यन्तघनोद्यद्धूमधूसरम् ॥१६६॥

बिछुडी हरिणीके समान रोदन करने लगी ॥१५१॥ करुण रोदन करनेवाली सीताके दु.खसे दुःखी होकर वृक्षोके समूहने भी मानो पुष्प छोड़नेके बहाने ही रोदन किया था ॥१५२॥ तदनन्तर महामहाशोकसे वशीभूत सीता स्वभाव सुन्दर स्वरसे विलाप करने लगी ॥१५३॥ वह कहने लगी कि हे कमललोचन ! हा पद्म ! हा नरोत्तम ! हा प्रभो ! हा देव ! उत्तर देओ मुझे सान्त्वना करो ॥१५४॥ आप निरन्तर उत्तम चेष्टाके धारक हैं, सद्गुणोसे सहित है, सहृदय है और महा-पुरुषतासे युक्त हैं । मेरे त्यागमे आपका लेश मात्र भी दोष नही है ॥१५५॥ मैने पूर्व भवमे जो स्वयं कर्म किया था उसीका यह फल प्राप्त हुआ है अतः यह बहुत भारी दुःख मुझे अवश्य भोगना चाहिए ॥१५६॥ जब मेरा अपना किया कर्म उदयमे आ रहा है तब पति, पुत्र, पिता, नारायण अथवा अन्य परिवारके लोग क्या कर सकते है ॥१५७॥ निश्चित ही मैने पूर्व भवमे पापका उपार्जन किया होगा इसीलिए तो मै अभागिनी निर्जन वनमे परम दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१५८॥ निश्चित ही मैने गोष्ठियोमे किसीका मिथ्या दोष कहा होगा जिसके उदयसे मुझे यह ऐसा सकट प्राप्त हुआ है ॥१५९॥ निश्चित ही मैने अन्य जन्ममे गुरुके समक्ष व्रत लेकर भग्न किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥१६०॥ अथवा अन्य भवमे मैने विष फलके समान कठोर वचनोसे किसीका तिरस्कार किया होगा इसीलिए मुझे ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है ॥१६१॥ जान पड़ता है कि मैने अन्य जन्ममे कमलवनमे स्थित चकवा-चकवीके युगलको अलग किया होगा इसीलिए तो मै भर्तासे रहित हुई हूँ ॥१६२॥ अथवा जो कमल आदिसे विभूषित सरोवरमे निवास करता था, जो उत्तम पुरुषोकी गमन सम्बन्धी लीलामे विलम्ब उत्पन्न करनेवाला था, जो अपने कल-कूजन और सौन्दर्यमे स्त्रियोकी उपमा प्राप्त करता था, जो लक्ष्मणके महलके समान उत्तम कान्ति-से युक्त था, और जिसके मुख तथा चरण कमलके समान लाल थे ऐसे हंस-हसियोके युगलको मैंने पूर्वभवमे अपनी कुचेष्टासे पृथक्-पृथक् किया होगा इसीलिए तो मै अभागिनी इस घोर निष्का-सनको प्राप्त हुई हूँ—घरसे अलग की गयी हूँ ॥१६३–१६५॥ अथवा गुंजाफलके अर्ध भागके समान जिसके नेत्र थे, परस्पर एक दूसरेके लिए जिसने अपना हृदय सौप रखा था, जो काला-

---

[1] फलविषोपमैः म. ।

समारब्धनुसक्रीडं कण्ठस्थकलनिःस्वनम् । पारापतयुगं पापचेतसा स्यात्पृथक्कृतम् ॥१६७॥
अस्थाने स्थापितं किं वा बद्धं मारितमेव वा । संभावनादिनिर्युक्तं दुःखमीदृग्गतास्मि यत् ॥१६८॥
वसन्तसमये रम्ये किं वा कुसुमिताङ्घ्रिपे । परपुष्टयुगं[1] भिन्नं यस्येदं फलमीदृशम् ॥१६९॥
अथवा श्रमणाः क्षान्ताः सद्वृत्ता निर्जितेन्द्रियाः । निन्दिता विदुषां वन्द्या दुःखप्राप्तास्मि यन्महत् १७०॥
सद्भृत्यपरिवारेण शासनानन्दकारिणा । कृतसेवा सदा याहं स्थिता स्वर्गसमे गृहे ॥१७१॥
साधुना क्षीणपुण्यौघा निर्वन्धुर्गहने[2] वने । दुःखसागरनिर्मग्ना कथं तिष्ठामि पापिका ॥१७२॥
नानारत्नकरोद्योते सत्प्रच्छदपटावृते । शयनीये महारम्ये सर्वोपकरणान्विते ॥१७३॥
वंशत्रिसरिकावीणासंगीतमधुरस्वनैः । असेविषि सुखं निद्रां प्रत्यबुध्यि तथा च या ॥१७४॥
अयशोदावनिर्दग्धा साहं संप्रति दुःखिनी । प्रधाना रामदेवस्य महिषी परिकीर्तिता ॥१७५॥
तिष्ठाम्येकाकिनी कष्टे कान्तारे दुःखदायिनि । कीटककर्कशदर्भोग्रग्रावौघाढ्ये महीतले ॥१७६॥
म्रियन्ते यद्यवाप्येमामवस्थामीदृशीं मयि । ततो वज्रविनिर्माणाः प्राणा नूनमिमे मके[3] ॥१७७॥
अवस्थां च परां प्राप्य शतधा यन्न दीर्यसे । अहो हृदय नास्त्यन्यः सदृशस्तव साहसी ॥१७८॥
किं करोमि क्व गच्छामि कं ब्रवीमि कमाश्रये । कथं तिष्ठामि किं जातमिदं हा मातरीदृशम् ॥१७९॥
हा पद्म सद्गुणाम्भोधे हा नारायण मत्कक । हा तात किं न मां वेत्सि हा मातः किं न रक्षसि ॥१८०॥
अहो विद्याधराधीश भ्रातः कुण्डलमण्डित । दुःखावर्तकृतभ्रान्तिरियं तिष्ठाम्यलक्षणा ॥१८१॥

गुरु चन्दनसे उत्पन्न हुए सघन धूमके समान धूसर वर्ण था, जो सुखसे क्रीड़ा कर रहा था, और जिसके कण्ठमें मनोहर अव्यक्त शब्द विद्यमान था ऐसे कबूतर-कबूतरियोंके युगलको मैंने पापपूर्ण चित्तसे पृथक्-पृथक् किया होगा। अथवा अनुचित स्थानमें उसे रखा होगा अथवा बाँधा होगा अथवा मारा होगा, अथवा सम्मान—लालन-पालन आदिसे रहित किया होगा इसीलिए मैं ऐसे दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१६६–१६८॥ अथवा जब सब वृक्ष फूलोंसे युक्त हो जाते हैं ऐसे रमणीय वसन्तके समय कोकिल और कोकिलाओंके युगलको मैंने पृथक्-पृथक् किया होगा जिसका यह ऐसा फल प्राप्त हुआ है ॥१६९॥ अथवा मैंने क्षमाके धारक, सदाचारके पालक, इन्द्रियोंको जीतनेवाले तथा विद्वानोंके द्वारा वन्दनीय मुनियोंकी निन्दा की होगी जिसके फलस्वरूप इस महादुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥१७०॥ आज्ञा मिलते ही हर्षित होनेवाले उत्तम भृत्योंके समूह जिसकी सदा सेवा करते थे ऐसी जो मैं पहले स्वर्गतुल्य घरमें रहती थी वह मैं इस समय बन्धुजनसे रहित इस सघन वनमें कैसे रहूँगी? मेरे पुण्यका समूह क्षय हो गया है, मैं दुःखोंके सागरमें डूब रही हूँ तथा मैं अत्यन्त पापिनी हूँ ॥१७१॥ जिसपर नाना रत्नोंकी किरणोंका प्रकाश फैल रहा था, जो उत्तर चादरसे आच्छादित था, महारमणीय था तथा सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित था ऐसे उत्तम शयनपर सुखसे निद्राका सेवन करती थी तथा प्रातःकालके समय बाँसुरी, त्रिसरिका और वीणाके संगीतमय मधुर स्वरसे जागा करती थी ॥१७२–१७४॥ वही मैं अपयशरूपी दावानलसे जली दुःखिनी, श्रीरामदेवकी प्रधान रानी पापिनी अकेली इस दुःखदायी वनके बीच कीड़े, कठोर डाभ और तीक्ष्ण पत्थरोंके समूहसे युक्त पृथिवीतलमें कैसे रहूँगी? ॥१७५–१७६॥ यदि ऐसी अवस्था पाकर भी ये प्राण मुझमें स्थित हैं तब तो कहना चाहिए कि मेरे प्राण वज्रसे निर्मित हैं ॥१७७॥ अहो हृदय! ऐसी अवस्थाको पाकर भी जो तुम सौ टुकड़े नहीं हो जाते हो उससे जान पड़ता है कि तुम्हारे समान दूसरा साहसी नहीं है ॥१७८॥ क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ! किसका आश्रय लूँ? कैसे ठहरूँ? हाय मातः! यह ऐसा क्यों हुआ? ॥१७९॥ हे सद्गुणोंके सागर राम! हा भक्त लक्ष्मण! हा पिता! क्या तुम मुझे नहीं जानते हो? हा मातः! तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करती हो? ॥१८०॥ अहो विद्याधरोंके अधीश भाई कुण्डल-

[1] कोकिलयुगलम्। [2] निर्वन्धुग्रहणे। [3] मे मम।

अपुण्यया मया सार्द्धं पत्या परमसंपदा । कष्टं मह्यां[1] जिनेन्द्राणां कृता सद्मसु नार्चना ॥१८२॥
एवं तस्यां समाक्रन्दं कुर्वन्त्यां विह्वलात्मनि । राजा कुलिशजङ्घाख्यस्तं वनान्तरमागतः ॥१८३॥
पौण्डरीकपुरः स्वामी गजबन्धार्थमागतः । प्रत्यागच्छन् महाभूतिर्गृहीतवरवारणः ॥१८४॥
तस्य सैन्यशिरोजाता प्लवमानाः पदातयः । नानाशस्त्रकराः कान्ताः शूरा बद्धासिधेनवः ॥१८५॥
श्रुत्वा तद्रुदितस्वानं तथाप्यतिमनोहरम् । संशयाना. परित्रस्ताः पदं न परतो ददुः ॥१८६॥
अश्वीयमपि संरुद्ध पुरोभागमवस्थितम् । साशङ्कैरकृतप्रेरं सादिभि. श्रुतनिःस्वनैः ॥१८७॥

उपजातिवृत्तम्

कुतोऽत्र भीमेऽतितरामरण्ये परासुताकारणभूरिसत्त्वे ।
अयं निनादो रुदितस्य रम्यः स्त्रैणो नु चित्रं परम किमेतत् ॥१८८॥

मालिनीवृत्तम्

मृगमहिषतरक्षुद्वीपिशार्दूललोले सृमरशरभसिंहे कोलदंष्ट्राकराले[3] ।
सुविमलशशिरेखाहारिणी केयमस्मिन् हृदयहरणदक्षं कक्षमध्ये विरौति ॥१८९॥
सुरवरवनितेयं किंनु सौधर्मकल्पादवनितलमुपेता पातिता वासवेन ।
उत जनसुखगीतासा नु देवी विधात्री भुवननिधनहेतोरागता स्यात् कुतोऽपि ॥१९०॥
इति जनितवितर्कं वर्जितात्मीयचेष्टं[4] प्रजवसरणयुक्तैर्मूलगैः पूर्यमाणम् ।
प्रहतबहलतूर[5] तन्महावर्त्तरूप स्थितमचलमुदारं सैनिकं विस्मयाढ्यम् ॥१९१॥

मण्डित ! यह मै कुलक्षणा दु खरूपी आवर्तमे भ्रमण करती यहाँ पडी हूँ ॥१८१॥ खेद है कि मै पापिनी पतिके साथ बडे वैभवसे, पृथिवीपर जो जिनमन्दिर है उनमे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा नही कर सकी ॥१८२॥

अथानन्तर जब विह्वल चित्त सीता विलाप कर रही थी तब एक वज्रजंघ नामक राजा उस वनके मध्य आया ॥१८३॥ वज्रजघ पुण्डरीकपुरका स्वामी था, हाथी पकडनेके लिए उस वनमे आया था और हाथी पकडकर बडे वैभवसे लौटकर वापस आ रहा था ॥१८४॥ उसकी सेनाके अग्रभागमे जो सैनिक उछलते हुए जा रहे थे वे यद्यपि अपने हाथोमे नाना प्रकारके शस्त्र लिये थे, सुन्दर थे, शूरवीर थे और छुरियाँ बाँधे हुए थे तथापि सीताका वह अतिशय मनोहर रोदनका शब्द सुनकर वे सशयमे पड गये तथा इतने भयभीत हो गये कि एक डग भी आगे नही दे सके ॥१८५-१८६॥ सेनाके आगे चलनेवाला जो घोड़ोका समूह था वह भी रुक गया तथा उस रोदनका शब्द सुन आशकासे युक्त घुडसवार भी उसे प्रेरित नही कर सके ॥१८७॥ वे विचार करने लगे कि जहाँ मृत्युके कारणभूत अनेक प्राणी विद्यमान है ऐसे इस अत्यन्त भयंकर वनमे यह स्त्रीके रोनेका मनोहर शब्द हो रहा है सो यह बड़ी विचित्र क्या बात है ? ॥१८८॥ जो मृग, भैंसा, भेडिया, चीता और तिन्दुआसे चंचल है, जहाँ अष्टापद और सिंह घूम रहे है, तथा जो सुअरोकी दाँढोसे भयकर है ऐसे इस वनके मध्यमे अत्यन्त निर्मल चन्द्रमाकी रेखाके समान यह कौन हृदयके हरनेमे निपुण रो रही है ? ॥१८९॥ क्या यह सौधर्म स्वर्गसे इन्द्रके द्वारा छोड़ी और पृथिवीतलपर आयी हुई कोई इन्द्राणी है अथवा मनुष्योके सुख सगीतको नष्ट करनेवाली एवं प्रलयके कारणको उत्पन्न करनेवाली कोई देवी कहींसे आ पहुँची है ? ॥१९०॥ इस प्रकार जिसे तर्क उत्पन्न हो रहा था, जिसने अपनी चेष्टा छोड़ दी थी, वेगसे चलनेवाले मूल पुरुष जिसमे आकर इकट्ठे हो रहे थे, जिसमे अत्यधिक बाजे बज रहे थे, जो किसी बडी भँवरके समान जान पड़ती थी और जो आश्चर्यसे युक्त थी ऐसी वह विशाल सेना निश्चल खड़ी हो गयी ॥१९१॥

१ मह्यां म , ज । २ वज्रजङ्घनामा । ३ दंष्ट्रान्तराले म । ४ देशं म. । ५. तूलं ल. ।

[१]तुरगमकरवृन्दं प्रौढपादातमीनं विधृतवरकरेणुग्राहजालं सशब्दम् ।
रविकिरणविपक्तप्रस्फुरत्खड्गवीचिप्रतिभयमभवत्तत्सैन्यमम्भोधिकल्पम् ॥१९२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतानिर्वासनविप्रलापवज्रजङ्घगमनाभिधान नाम सप्तनवतितमं पर्व ॥९७॥



घोड़ोंके समूह ही जिसमे मगर थे, तेजस्वी पैदल सैनिक ही जिसमे मीन थे, हाथियोके समूह ही जिसमे ग्राह थे, जो प्रचण्ड शब्दसे युक्त था और सूर्यकी किरणोके पड़नेसे चमकती हुई तलवाररूपी तरगोंसे जो भय उत्पन्न करनेवाली थी ऐसी वह सेना समुद्रके समान जान पड़ती थी ॥१९२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा विरचित पद्मपुराणमें सीताके निर्वासन, विलाप और वज्रजघके आगमनका वर्णन करनेवाला सत्तानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९७॥



१ अयं श्लोक. क. पुस्तके नास्ति ।

अष्टनवतितमं पर्व

ततः पुरो महाविद्यानिरुद्धामिव जाह्नवीम् । चक्रीभूतां चमूं दृष्ट्वा वज्रजङ्घः करेणुगः ॥१॥
पप्रच्छासन्नपुरुषान् यूयमेवं कुत स्थिताः । कुतः केन प्रतीघातो गमनस्य किमाकुलाः ॥२॥
पारम्पर्येण ते यावत् पृच्छन्ति स्थितिकारणम् । तावत्किंचित्समासीदन्[1] राजा शुश्राव रोदनम् ॥३॥
जगाद च समस्तेषु लक्षणेषु कृतश्रमः । यस्या रुदितशब्दोऽयं श्रूयते सुमनोहरः ॥४॥
विद्युद्गर्भरुचा तस्या गर्भिण्याप्रनिरूपया । ध्रुवं पुरुषपद्मस्य भवितव्यं स्त्रियानया ॥५॥
एवमेतत्कुतो देव संदेहोऽत्र त्वयोदिते । अनेकमद्भुतं कर्म भवता हि पुरेक्षितम् ॥६॥
एवं तस्य सभृत्यस्य कथा यावत्प्रवर्तते । तावदग्रेसरा सीतासमीपं सत्त्विनो गताः ॥७॥
पप्रच्छुः पुरुषा देवि का त्वं निर्मनुषे वने । विरौषि करुणं शोकमसंभाव्यमिदं श्रिता ॥८॥
न दृश्यन्ते भवादृश्यो लोकेऽत्राकृतयः शुभाः । दिव्या किमसि किं वान्या काचित् सृष्टिरनुत्तमा ॥९॥
यदीदृशीदृशं धत्से वपुरक्लिष्टमुत्तमम् । ततोऽत्यन्त न वालक्ष्यैः[2] कोऽयं शोकस्तवापरः ॥१०॥
वद कल्याणि कथ्यं चेदिदं नः कौतुकं परम् । दुःखान्तोऽपि च सत्येवं कदाचिदुपजायते ॥११॥
ततस्तान् सुमहाशोकध्वान्तीकृतसमस्तदिक् । पुरुषान् सहसा दृष्ट्वा नानाशस्त्रकरोज्ज्वलान् ॥१२॥
सीता त्राससमुत्पन्नपृथुवेपथुसंकुला । दातुमाभरणान्येषां लोलनेत्रा समुद्यता ॥१३॥
तत्त्वमूढास्ततो सीता जगदुः पुरुषाः पुनः । संत्रासं देवि शोकं च त्यज संश्रय धीरताम् ॥१४॥

अथानन्तर आगे महाविद्यासे रुकी गंगानदीके समान चक्राकार परिणत सेनाको देख, हाथीपर चढे हुए वज्रजघने निकटवर्ती पुरुषोसे पूछा कि तुम लोग इस तरह क्यो खड़े हो गये ? गमनमे किसने किस कारण रुकावट डाली ? और तुमलोग व्याकुल क्यों हो रहे हो ? ॥१–२॥ निकटवर्ती पुरुष जवतक परम्परासे सेनाके रुकनेका कारण पूछते है तवतक कुछ निकट बढकर राजाने स्वयं रोनेका शब्द सुना ॥३॥ समस्त लक्षणोमे जिसने श्रम किया था ऐसा राजा वज्रजंघ वोला कि जिस स्त्रीका यह अत्यन्त मनोहर रोनेका शब्द सुनाई पड़ रहा है वह विजलीके मध्यभागके समान कान्तिवाली, पतिव्रता तथा अनुपम गर्भिणी है। यही नही उसे निश्चय ही किसी श्रेष्ठ पुरुषकी स्त्री होना चाहिए ॥४–५॥ हे देव ! ऐसा ही है—आपके इस कथनमे सन्देह कैसे हो सकता है ? क्योकि आपने पहले अनेक आश्चर्यजनक कार्य देखे है ॥६॥ इस प्रकार सेवको और राजा वज्रजंघके वीच जवतक यह वार्ता होती है तबतक आगे चलनेवाले कुछ साहसी पुरुष सीताके समीप जा पहुँचे ॥७॥ उन्होने पूछा कि हे देवि ! इस निर्जन वनमे तुम कौन हो ? तथा असम्भाव्य शोकको प्राप्त हो यह करुण विलाप क्यो कर रही हो ? ॥८॥ इस ससारमे आपके समान शुभ आकृतियाँ दिखाई नही देती। क्या तुम देवी हो ? अथवा कोई अन्य उत्तम सृष्टि हो ? ॥९॥ जब कि तुम इस प्रकारके क्लेश रहित उत्तम शरीरको धारण कर रही हो तब यह विलकुल ही नही जान पड़ता कि तुम्हे यह दूसरा दुःख क्या है ? ॥१०॥ हे कल्याणि ! यदि यह वात कहने योग्य है तो कहो, हम लोगोको बड़ा कौतुक है। ऐसा होनेपर कदाचित् दुःखका अन्त भी हो सकता है ॥११॥

तदनन्तर महाशोकके कारण जिसे समस्त दिशाएँ अन्धकाररूप हो गयी थी ऐसी सीता अचानक नाना शस्त्रोकी किरणोसे देदीप्यमान उन पुरुषोको देखकर भयसे एकदम काँप उठी, उसके नेत्र चंचल हो गये और वह इन्हें आभूषण देनेके लिए उद्यत हो गयी ॥१२–१३॥ तदनन्तर

---

१. निकटीभवन् । २ वालक्ष्य म. ।

किं वा विभूषणैरेभिस्तिष्ठन्तु त्वयि दक्षिणे । [1]भावयोगं प्रपद्यस्व किमर्थमसि विह्वला ॥१५॥
श्रीमानयं परिप्राप्तो वज्रजङ्घ इति क्षितौ । प्रसिद्धः सकलैर्युक्तो राजधर्मैर्नरोत्तमः ॥१६॥
सम्यग्दर्शनरत्नं यः सादृश्यपरिवर्जितम् । अविनाशमनाधेयमहार्यं सारसौख्यदम् ॥१७॥
शङ्कादिमलनिर्मुक्तं हेमपर्वतनिश्चलम् । हृदयेन समाधत्ते सचेता भूषणं परम् ॥१८॥
सम्यग्दर्शनमीदृक्षं यस्य साध्वि विराजते । गुणास्तस्य कथं श्लाघ्ये वर्ण्यन्तामस्मदादिभिः ॥१९॥
जिनशासनतत्त्वज्ञः शरणागतवत्सलः । परोपकारसंसक्तः करुणार्द्रितमानसः ॥२०॥
लब्धवर्णो विशुद्धात्मा निन्द्यकृत्यनिवृत्तधीः । पितेव रक्षिता लोके दाता भूतहिते रतः ॥२१॥
दीनादीनां विशेषेण [2]मातुरप्यनुपालकः । शुद्धकर्मकर. शत्रुमहीधरमहाशनिः ॥२२॥
शस्त्रशास्त्रकृतश्रान्तिरश्रान्तिः शान्तिकर्मणि । जानात्यन्यकलत्रं च कूपं साजगरं यथा ॥२३॥
धर्मे परमसासक्तो भवपातभयात्सदा । सत्यस्थापितसद्वाक्यो वाढं नियमितेन्द्रियः ॥२४॥
अस्य देवि गुणान् वक्तुं योऽखिलानभिवाञ्छति । तरितुं स भुवं वष्टि [3] गात्रमात्रेण सागरम् ॥२५॥
यावदेषा कथा तेषां वर्तते चित्तबन्धिनी । तावन्नृप· परिप्राप्तः किंचिदद्भुतसंगत ॥२६॥
अवतीर्य करेणोश्च योग्यं विनयमुद्वहन् । निसर्गशुद्धया दृष्ट्या पश्यन्नेवमभाषत ॥२७॥
अहो वज्रमयो नूनं पुरुषः [4]स विचेतनः । यस्त्यजन्निहारण्ये त्वां न दीर्णः सहस्रधा ॥२८॥
ब्रूहि कारणमेतस्या अवस्थाया शुभाशये । विश्वस्ता भव मा भैषीर्गर्भायासं हि मा कृथाः ॥२९॥

यथार्थ वातके समझनेमे मूढ पुरुषोने भयभीत होकर पुनः कहा कि हे देवि ! भय तथा शोक छोड़ो, धीरताका आश्रय लेओ ॥१४॥ हे सरले ! इन आभूषणोसे हमे क्या प्रयोजन है ? ये तुम्हारे ही पास रहे। भाव योगको प्राप्त होओ अर्थात् हृदयको स्थिर करो और बताओ कि विह्वल क्यों हो ?—दु.खी क्यों हो रही हो ? ॥१५॥ जो समस्त राजधर्मसे सहित है तथा पृथिवीपर वज्रजंघ नामसे प्रसिद्ध है ऐसा यह श्रीमान् उत्तम पुरुष यहाँ आया है ॥१६॥ सावधान चित्तसे सहित यह वज्रजघ सदा उस सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको हृदयसे धारण करता है जो सादृश्यसे रहित है, अविनाशी है, अनाधेय है, अहार्य है, श्रेष्ठ सुखको देनेवाला है, शंकादि दोषोंसे रहित है, सुमेरुके समान निश्चल है और उत्कृष्ट आभूषणस्वरूप है ॥१७–१८॥ हे साध्वि ! हे प्रशंसनीये ! जिसके ऐसा सम्यग्दर्शन सुशोभित है उसके गुणोंका हमारे-जैसे पुरुष कैसे वर्णन कर सकते हैं ? ॥१९॥ वह जिनशासनके रहस्यको जाननेवाला है, शरणमे आये हुए लोगोसे स्नेह करनेवाला है, परोपकारमे तत्पर है, दयासे आर्द्रचित्त है, विद्वान् है, विशुद्ध हृदय है, निन्द्य कार्योंसे निवृत्त वुद्धि है, पिताके समान रक्षक है, प्राणिहितमे तत्पर है, दीन-हीन आदिका तथा खासकर मातृ-जातिका रक्षक है, शुद्ध कार्यको करनेवाला है, शत्रुरूपी पर्वतको नष्ट करनेके लिए महावज्र है। शस्त्र और शास्त्रका अभ्यासी है, शान्ति कार्यमे थकावटसे रहित है, परस्त्रीको अजगर सहित कूपके समान जानता है, संसार-पातके भयसे धर्ममे सदा अत्यन्त आसक्त रहता है, सत्यवादी है और अच्छी तरह इन्द्रियोंको वश करनेवाला है ॥२०–२४॥ हे देवि ! जो इसके समस्त गुणोंको कहना चाहता है वह मानो मात्र शरीरसे समुद्रको तैरना चाहता है ॥२५॥ जबतक उन सबके बीच मनको बाँधनेवाली यह कथा चलती है तबतक कुछ आश्चर्यसे युक्त राजा वज्रजंघ भी वहाँ आ पहुँचा ॥२६॥ हस्तिनीसे उतरकर योग्य विनय धारण करते हुए राजा वज्रजंघने स्वभाव शुद्ध दृष्टिसे देखकर इस प्रकार कहा कि ॥२७॥ अहो ! जान पड़ता है कि वह पुरुष वज्रमय तथा चेतनाहीन है इसलिए इस वनमे तुम्हे छोड़ता हुआ वह हजार टूक नही हुआ है ॥२८॥ हे शुभाशये ! अपनी इस अवस्थाका कारण कहो, निश्चिन्त होओ, डरो मत तथा गर्भको कष्ट मत पहुँचाओ ॥२९॥

१ भावं योग म. । २. मातुष्या अनुपालकः म । ३. कामयते । ४. सुविचेतनः म. ।

तत. कथयितुं कृच्छ्राद्विरतापि सती क्षणम् । पुना रुरोद शोकोरुचक्रपीडितमानसा ॥३०॥
मुहुस्ततोऽनुयुक्ता सा राज्ञा मधुरभाषिणा । धृत्वा मन्युं जगौ क्लिष्टहंसगद्गदनिःस्वना ॥३१॥
विज्ञातुं यदि ते वाञ्छा राजन् यच्छ ततो मनः । कथा मे मन्दभाग्याया इयमत्यन्तदीर्घिका ॥३२॥
सुता जनकराजस्य प्रभामण्डलसोदरा । स्नुषा दशरथस्याहं सीता पद्माभपत्निका ॥३३॥
केकयावरदानेन भरताय निजं पदम् । दत्त्वानरण्यपुत्रो[1]ऽसौ तपस्विपदमाश्रयत् ॥३४॥
रामलक्ष्मणयो. सार्कं मया प्रस्थितमायतम् । जातं श्रुतं त्वया नूनं पुण्यचेष्टितसंगतम् ॥३५॥
हृताऽस्मि राक्षसेन्द्रेण पत्युः सुग्रीवसंगमे । जाते भुक्तवती वार्त्तां संप्राप्यैकादशेऽहनि ॥३६॥
आकाशगामिभिर्यानैस्तीर्य मकरालयम् । जित्वा दशमुखं युद्धे पत्यास्मि पुनराहृता ॥३७॥
राज्यपङ्कं परित्यज्य भरतो भरतोपमः । श्रामण्यं परमाश्रित्य सिद्धिं धूतरजा ययौ ॥३८॥
अपत्यशोकनिर्दग्धा प्रव्रज्यासौ च केकया । देवी कृत्वा तप. सम्यग्देवलोकमुपागता ॥३९॥
महीतले विमर्यादो जनोऽयं दुष्टमानसः । ब्रवीति परिवादं मे शङ्कया परिवर्जित. ॥४०॥
रावणः परम. प्राज्ञो भूत्वान्यस्त्रियमग्रहीत् । तामानीय पुना राम. सेवते धर्मशास्त्रवित् ॥४१॥
यया ह्यवस्थया राजा वर्त्तते दृढनिश्चय. । सैवास्माकमपि [2]क्षेमा नूनं दोषो न विद्यते ॥४२॥
साहं गर्भान्विता जाता कृशाङ्गा वसुधातले । चिन्तयन्ती जिनेन्द्राणां करोम्यभ्यर्चनामिति ॥४३॥
ततो भर्त्ता मया सार्द्धमुद्युक्तश्चैत्यवन्दने । जिनेन्द्रातिशयस्थानेष्वत्यन्तविभवान्वितः ॥४४॥
अगदीत् प्रथमं सीते गत्वाष्टापदपर्वतम् । ऋषभं भुवनानन्दं प्रणस्यावः कृतार्चनौ ॥४५॥

तदनन्तर सती सीता यद्यपि कुछ कहनेके लिए क्षण-भरको दु.खसे विरत हुई थी तथापि शोकरूपी विशाल चक्रसे हृदयके अत्यन्त पीडित होनेके कारण वह पुनः रोने लगी ॥३०॥ तत्पश्चात् मधुर भाषण करनेवाले राजाने जब बार-बार पूछा तब वह जिस किसी तरह शोकको रोककर दुःखी हंसके समान गद्गद वाणीसे बोली ॥३१॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यदि तुम्हे जाननेकी इच्छा है तो इस ओर मन लगाओ क्योंकि मुझ अभागिनीकी यह कथा अत्यन्त लम्बी है ॥३२॥ मै राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहन, दशरथकी पुत्रवधू और रामकी पत्नी सीता हूँ ॥३३॥ राजा दशरथ, केकयाके वरदानसे भरतके लिए अपना पद देकर तपस्वीके पदको प्राप्त हो गये ॥३४॥ फलस्वरूप राम-लक्ष्मणको मेरे साथ वनको जाना पडा सो हे पुण्यचेष्टित ! जो कुछ हुआ वह सब तुमने सुना होगा ॥३५॥ राक्षसोके अधिपति रावणने मेरा हरण किया, स्वामी रामका सुग्रीवके साथ समागम हुआ और ग्यारहवें दिन समाचार पाकर मैने भोजन किया ॥३६॥ आकाशगामी वाहनोसे समुद्र तैरकर तथा युद्धमे रावणको जीतकर मेरे पति मुझे पुनः वापस ले आये ॥३७॥ भरत चक्रवर्तीके समान भरतने राज्यरूपी पंकका परित्याग कर परम दिगम्बर अवस्था धारण कर ली और कर्मरूपी धूलिको उडाकर निर्वाणपद प्राप्त किया ॥३८॥ पुत्रके शोकसे दुखी केकया रानी दीक्षा लेकर तथा अच्छी तरह तपश्चरण कर स्वर्ग गयी ॥३९॥ पृथिवीतलपर मर्यादाहीन दुष्ट हृदय मनुष्य निःशंक होकर मेरा अपवाद कहने लगे कि रावणने परम विद्वान् होकर परस्त्री ग्रहण की और धर्मशास्त्रके ज्ञाता राम उसे वापस लाकर पुनः सेवन करने लगे ॥४०-४१॥ दृढ़ निश्चयको धारण करनेवाला राजा जिस दशामे प्रवृत्ति करता है वही दशा हम लोगोके लिए भी हितकारी है इसमे दोष नही है ॥४२॥ कृश शरीरको धारण करनेवाली वह मै जब गर्भवती हुई तब मैंने ऐसा विचार किया कि पृथिवीतलपर जितने जिनबिम्ब है उन सबकी मै पूजा करूँ ॥४३॥ तदनन्तर अत्यधिक वैभवसे सहित स्वामी राम, जिनेन्द्र भगवान्‌के अतिशय स्थानोमे जो जिनबिम्ब थे उनकी वन्दना करनेके लिए मेरे साथ उद्यत हुए ॥४४॥ उन्होने कहा कि हे सीते ! सर्वप्रथम कैलास पर्वतपर जाकर जगत्‌को आनन्दित करनेवाले

---

१. दशरथ. । २ क्षेमी म. ।

अस्यां ततो विनीतायां जन्मभूमिप्रतिष्ठिताः । प्रतिमा ऋषभादीनां नमस्याव: सुसंपदा ॥४६॥
काम्पिल्ये विमलं नन्तुं यास्यावो भावतस्ततः । धर्मं रत्नपुरे चैव धर्मसद्भावदेशिनम् ॥४७॥
श्रावस्त्यां शम्भवं शुभ्रं चम्पायां वासुपूज्यकम् । पुष्पदन्तं च काकन्द्यां कौशाम्ब्यां पद्मतेजसम् ॥४८॥
चन्द्राभं चन्द्रपुर्यां च शीतलं भद्रिकावनौ । मिथिलायां ततो मल्लिं नमस्कृत्य जिनेश्वरम् ॥४९॥
वाराणस्यां सुपार्श्वं च श्रेयांसं सिंहनि:स्वने । शान्ति कुन्थुमरं चैव पुरे हास्तिनि नामनि ॥५०॥
कुशाग्रनगरे देवि सर्वज्ञं मुनिसुव्रतम् । धर्मचक्रमिदं यस्य ज्वलत्यद्यापि सूज्ज्वलम् ॥५१॥
ततोऽन्यान्यपि वैदेहि जिनातिशययोगतः । स्थानान्यतिपवित्राणि प्रथितान्यखिलेनस:[1] ॥५२॥
त्रिदशासुरगन्धर्वैः स्तुतानि प्रणतानि च । वन्दावहे नमस्तानि तत्परायणमानसौ ॥५३॥
पुष्पकाग्रं समारुह्य विलङ्घ्य गगनं द्रुतम् । मया सह जिनानर्च सुमेरुशिखरेष्वपि ॥५४॥
भद्रशालवनोद्भूतैस्तथा नन्दनसंभवैः । पुष्पैः सौमनसीयैश्च जिनेन्द्रानर्चय प्रिये ॥५५॥
कृत्रिमाकृत्रिमान्यस्मिंश्चैत्यानभ्यर्च्य विष्टपे । प्रवन्द्य चागमिष्यावः साकेतां दयिते पुनः ॥५६॥
एकोऽपि हि नमस्कारो भावेन विहितोऽर्हतः । मोचयत्येनसो जन्तुं जन्मान्तरकृतादपि ॥५७॥
ममापि परमा कान्ते तुष्टिर्मनसि वर्त्तते । चैत्यालयान् महापुण्यान् पश्यामीति त्वदाशया ॥५८॥
काले पूर्णतमश्छन्ने भूते निःकिञ्चने जने । जगत्ताराधिपेनेव येनेशेन[2] विराजितम् ॥५९॥
प्रजानां पतिरेको यो ज्येष्ठस्त्रैलोक्यवन्दितः । भव्यानां भवभीरूणां मोक्षमार्गोपदेशकः ॥६०॥

श्री ऋषभ जिनेन्द्रकी पूजा कर उन्हे नमस्कार करेंगे ॥४५॥ फिर इस अयोध्या नगरीमे जन्मभूमिमे प्रतिष्ठित जो ऋषभ आदि तीर्थंकरोकी प्रतिमाएँ है उन्हे उत्तम वैभवके साथ नमस्कार करेंगे ॥४६॥ फिर काम्पिल्य नगरमे श्री विमलनाथको भावपूर्वक नमस्कार करनेके लिए जावेंगे और उसके बाद रत्नपुर नगरमे धर्मके सद्भावका उपदेश देनेवाले श्री धर्मनाथको नमस्कार करनेके लिए चलेंगे ॥४७॥ श्रावस्ती नगरीमे शम्भवनाथको, चम्पापुरीमे वासुपूज्यको, काकन्दीमे पुष्पदन्तको, कौशाम्बीमे पद्मप्रभको, चन्द्रपुरीमे चन्द्रप्रभको, भद्रिकावनिमें शीतलनाथको, मिथिलामे मल्लि जिनेश्वरको, वाराणसीमे सुपार्श्वको, सिंहपुरीमे श्रेयान्सको, हस्तिनापुरीमे शान्ति, कुन्थु और अरनाथको और हे देवि ! उसके बाद कुशाग्रनगर-राजगृहीमें उन सर्वज्ञ मुनि सुव्रतनाथकी वन्दना करनेके लिए चलेंगे जिनका कि आज भी यह अत्यन्त उज्ज्वल धर्मचक्र देदीप्यमान हो रहा है ॥४८–५१॥ तदनन्तर हे वैदेहि ! जिनेन्द्र भगवान्के अतिशयोंके योगसे अत्यन्त पवित्र, सर्वत्र प्रसिद्ध देव असुर और गन्धर्वोंसे द्वारा स्तुत एवं प्रणत जो अन्य स्थान हैं तत्परचित्त होकर उन सबकी वन्दना करेंगे ॥५२–५३॥ तदनन्तर पुष्पक विमानपर आरूढ हो शीघ्र ही आकाशको उल्लंघ कर मेरे साथ सुमेरुके शिखरोंपर विद्यमान जिन-प्रतिमाओंकी पूजा करना ॥५४॥ हे प्रिये ! भद्रशाल वन, नन्दन वन और सौमनस वनमे उत्पन्न पुष्पोसे जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करना ॥५५॥ फिर हे दयिते ! इस लोकमे जो कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाएँ है उन सबकी वन्दना कर अयोध्या वापस आवेंगे ॥५६॥ अर्हन्त भगवान्के लिए भाव-पूर्वक किया हुआ एक ही नमस्कार इस प्राणीको जन्मान्तरमे किये हुए पापसे छुड़ा देता है ॥५७॥ हे कान्ते ! तुम्हारी इच्छासे महापवित्र चैत्यालयोंके दर्शन कर लूँगा इस बातका मेरे मनमे भी परम सन्तोष है ॥५८॥ पहले जब यह काल अज्ञानान्धकारसे आच्छादित था तथा कल्पवृक्षोके नष्ट हो जानेसे मनुष्य एकदम अकिंचन हो गये थे तब जिन आदिनाथ भगवान्के द्वारा यह जगत् उस तरह सुशोभित था जिस तरहकी चन्द्रमासे सुशोभित होता है ॥५९॥ जो प्रजाके अद्वितीय स्वामी थे, ज्येष्ठ थे, तीन लोकके द्वारा वन्दित थे, संसारसे डरनेवाले भव्यजीवोके

---

१. "अखिलेनस" सर्वपुस्तकेष्वित्थमेव पाठोऽस्ति किंतु तस्यार्थः स्पष्टो न भवति । २. येन सेना विराजितम् ज. ।

यस्याष्टगुणमैश्वर्यं नानातिशयशोभितम् । अजस्रपरमाश्चर्यं सुरासुरमनोहरम् ॥६१॥
जीवप्रभृतितत्त्वानि विशुद्धानि प्रदर्श्य यः । भव्यानां कृतकर्तव्यो निर्वाणं परमं गतः ॥६२॥
सर्वरत्नमयं दिव्यमालयं चक्रवर्तिना । निर्माप्य यस्य कैलासे प्रतिमा स्थापिता प्रभोः ॥६३॥
सा भास्करप्रतीकाशा पञ्चचापशतोच्छ्रिता । प्रतिमाप्रतिरूपस्य दिव्या यस्य विराजते ॥६४॥
यस्याद्यापि महापूजा गन्धर्वामरकिन्नरैः । अप्सरोनागदैत्याद्यैः क्रियते यत्नतः सदा ॥६५॥
अनन्तः परमः सिद्धः शिवः सर्वगतोऽमलः । अर्हस्त्रैलोक्यपूजार्हः यः स्वयम्भूः स्वयंप्रभुः ॥६६॥
तं कदा नु प्रभुं गत्वा कैलासे परमाचले । ऋषभं देवमभ्यर्च्य स्तोष्यामि सहितस्त्वया ॥६७॥
प्रस्थितस्य मया साकमेवं धृत्यातितुङ्गया । प्राप्ता जनपरीवादवार्ता दावाग्निदुःसहा ॥६८॥
चिन्तितं मे ततो भर्त्रा प्रेक्षापूर्वविधायिना । लोकः स्वभाववक्रोऽय नान्यथा याति वश्यताम् ॥६९॥
वरं प्रियजने त्यक्ते मृत्युरप्यनुसेवितः । यशसो नोपघातोऽयं कल्पान्तमवस्थितः ॥७०॥
साहं जनपरीवादाद्विदुषा तेन बिभ्यता । संत्यक्ता परमेऽरण्ये दोषेण परिवर्जिता ॥७१॥
विशुद्धकुलजातस्य क्षत्रियस्य सुचेतसः । विज्ञातसर्वशास्त्रस्य भवत्येवेदमीहितम् ॥७२॥
एवं निर्वाससंबन्धं वृत्तान्तं स्वं निवेद्य सा । दीना रोदितुमारब्धा शोकज्वलनतापिता ॥७३॥
तामश्रुजलपूर्णास्यां क्षितिरेणुसमुच्छ्रिताम् । दृष्ट्वा कुलिशजङ्घोऽपि चुक्षोभोत्तमसत्त्वभृत् ॥७४॥
ततो जनकराजस्य तनयामधिगम्य ताम् । समीपीभूय राजासौ समाश्वासयदादृतः ॥७५॥

लिए मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले थे ॥६०॥ जिनका अष्ट प्रातिहार्यरूपी ऐश्वर्य नाना प्रकारके अतिशयोसे सुशोभित था, निरन्तर परम आश्चर्यसे युक्त था और सुरासुरोके मनको हरनेवाला था ॥६१॥ जो भव्य जीवोंके लिए जीवादि निर्दोष तत्त्वोका स्वरूप दिखाकर अन्तमे कृतकृत्य हो निर्वाण पदको प्राप्त हुए थे ॥६२॥ चक्रवर्ती भरतने कैलास पर्वतपर सर्वरत्नमय दिव्य मन्दिर बनवाकर उन भगवान्की जो प्रतिमा विराजमान करायी थी वह सूर्यके समान देदीप्यमान है, पाँच सौ धनुष ऊँची है, दिव्य है, तथा आज भी उसकी महापूजा गन्धर्व, देव, किन्नर, अप्सरा, नाग तथा दैत्य आदि सदा यत्नपूर्वक करते है ॥६३–६५॥ जो ऋषभदेव भगवान् अनन्त है—परम पारिणामिक भावकी अपेक्षा अन्त रहित है, परम है—अनन्तचतुष्टयरूप उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, सिद्ध है—कृतकृत्य हैं, शिव हैं—आनन्दरूप है, ज्ञानकी अपेक्षा सर्वगत है, कर्ममलसे रहित होनेके कारण अमल हैं, प्रशस्तरूप होनेसे अर्हन्त है, त्रैलोक्यकी पूजाके योग्य है, स्वयम्भू है और स्वय प्रभु है। मै उन भगवान् ऋषभदेवकी कैलास नामक उत्तम पर्वतपर जाकर तुम्हारे साथ कब पूजा करूँगा और कब स्तुति करूँगा ? ॥६६–६७॥ इस प्रकार निश्चय कर बहुत भारी धैर्यसे उन्होने मेरे साथ प्रस्थान कर दिया था परन्तु बीचमे ही दावानलके समान दुःसह लोकापवादकी वार्ता आ गयी ॥६८॥ तदनन्तर विचारपूर्वक कार्य करनेवाले मेरे स्वामीने विचार किया कि यह स्वभावसे कुटिल लोक अन्य प्रकारसे वश नही हो सकते ॥६९॥ इसलिए प्रियजनका परित्याग करनेपर यदि मृत्युका भी सेवन करना पड़े तो अच्छा है परन्तु कल्पान्त काल तक स्थिर रहनेवाला यह यशका उपघात श्रेष्ठ नही है ॥७०॥ इस तरह यद्यपि मै निर्दोष हूँ तथापि लोकापवादसे डरनेवाले उन बुद्धिमान् स्वामीने मुझे इस बीहड़ वनमे छुडवा दिया है ॥७१॥ सो जो विशुद्ध कुलमे उत्पन्न है, उत्तम हृदयका धारक है और सर्वशास्त्रोका ज्ञाता है ऐसे क्षत्रियकी यह चेष्टा होती ही है ॥७२॥ इस तरह वह दीन सीता अपने निर्वाससे सम्बन्ध रखनेवाला अपना सब समाचार कहकर शोकाग्निसे सन्तप्त होती हुई पुनः रोने लगी ॥७३॥

तदनन्तर जिसका मुख आँसुओके जलसे पूर्ण था तथा जो पृथिवीकी धूलिसे सेवित थी ऐसी उस सीताको देखकर उत्तम सत्त्वगुणका धारक राजा वज्रजघ भी क्षोभको प्राप्त हो गया ॥७४॥ तत्पश्चात् उसे राजा जनककी पुत्री जान राजा वज्रजंघने पास जाकर बडे आदरसे उसे सान्त्वना

[illegible] मा [illegible] । किमार्तं कुरुषे ध्यानं देवि दुःखस्य वर्द्धनम् ॥७६॥
[illegible] स्थितिरीदृशी । अनित्याशरणैकत्वान्यत्वादिपरिभाविनी ॥७७॥
[illegible] मुहुर्मुहुः । श्रुतार्थवासि साधुभ्यः सततं चारुभावने ॥७८॥
[illegible] दुःखं न प्राप्तं मूढचेतसा । सम्यग्दर्शनमार्गमजानता ॥७९॥
[illegible] । चक्रेनावर्त्तनिमग्नेन प्राप्ता जीवेन भूरिशः ॥८०॥
[illegible] तिर्यग्योनिषु दुःखनम् । दुःखं जीवेन संप्राप्तं वर्षाशीतातपादिजम् ॥८१॥
[illegible] । मनुष्यत्वेऽपि किं नाम दुःखं जीवेन नार्जितम् ॥८२॥
[illegible] । चतुर्भिर्जं च महादुःखं संप्राप्तं त्रिदशेष्वपि ॥८३॥
[illegible] कथं कथ्यतां शुभे । शीतोष्णवातशस्त्रादि [illegible] ॥८४॥
[illegible] व्याधयो दुःखनुत्सवः । शोकाश्चानन्तशः प्राप्ता भवे जीवेन मैथिलि ॥८५॥
[illegible] स्थानं तन्नास्ति विष्टपे । जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादयः ॥८६॥
[illegible] । मनुष्यत्वेऽपि जीवेन प्राप्ता स्त्रीतनुरीदृशी ॥८७॥
[illegible] शुभाशुभैः । अभिरामो गुणैः रामः पतिर्जातः शुभोदय. ॥८८॥
[illegible] सुखोदयम् । अपुण्योदयतो दुःखं पुन. प्राप्तासि दुःसहम् ॥८९॥
[illegible] प्राप्ता [illegible] । एकादशदिने भुक्ति पुष्पमाल्यानुलेपना ॥९०॥

[illegible] ॥७५॥ [illegible] रहा कि हे देवि ! शोक छोड़, रो मत, तू जिनशासनकी महिमासे [illegible] । दुःखको बढ़ानेवाला जो आर्तध्यान है उसे क्यों करती है ? ॥७६॥ हे वैदेहि ! क्या [illegible] कि संसारकी स्थिति ऐसी ही अनित्य, अशरण, एकत्व और अन्यत्व आदि रूप है ॥७७॥ [illegible] तू मिथ्यादृष्टि स्त्रीके समान बार-बार शोक कर रही है । हे सुन्दर भावनावाली ! [illegible] यथार्थ बातको सुना है ॥७८॥ निश्चयसे सम्यग्दर्शनको न जानकर [illegible] मूढ़ हृदय प्राणीने क्या-क्या दुःख नहीं प्राप्त किया है ? ॥७९॥ [illegible] वर्तमान [illegible] निमग्न हुए इस जीवने अनेकों बार संयोग [illegible] प्राप्त किये हैं ॥८०॥ तिर्यंच योनियोंमें इस जीवने थलचर, जलचर और नभचर [illegible] आदिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख सहा है ॥८१॥ मनुष्यपर्यायमें भी [illegible] आदिसे उत्पन्न होनेवाला कौन-सा महादुःख इस जीवने नहीं [illegible] ॥८२॥ [illegible] उत्पन्न, [illegible] देवगतिमें [illegible] उत्पन्न महादुःख प्राप्त हुआ है ॥८३॥ और हे शुभे ! [illegible] तथा परस्परके मारण, ताड़न आदिसे [illegible] प्राप्त किया है [illegible] ? ॥८४॥ हे मैथिलि ! [illegible] और [illegible] नाम [illegible] ॥८५॥ [illegible]

[illegible]

प्रतिपक्षे हते तस्मिन् प्रत्यानीता ततः सती । सम्प्राप्तासि पुनः सौख्यं बलदेवप्रसादतः ॥९१॥
अशुभोदयतो भूयो गर्भाधानसमन्विता । विना दोषेण मुक्तासि परिवादोरगक्षता ॥९२॥
य. साधुकुसुमागार प्रदीपयति दुर्गिरा । अत्यन्तदारुणः पापो वह्निना दह्यतामसौ ॥९३॥
परमा देवि धन्या त्वमहो सुश्लाघ्यचेष्टिता । चैत्यालयनमस्कारदोहदं यदसि श्रिता ॥९४॥
अद्यापि पुण्यमस्त्येव तव सच्छीलशालिनि । दृष्टासि यन्मयारण्ये प्राप्तेन द्विपकारणम् ॥९५॥
इन्द्रवंशप्रसूतस्य शुभैकचरितात्मनः । राज्ञो द्विरदवाहस्य सुबन्धुमहिषीभवः ॥९६॥
सुतोऽहं वज्रजङ्घाख्य. पुण्डरीकपुराधिपः । त्वं मे धर्मविधानेन ज्यायसी गुणिनि स्वसा ॥९७॥
एह्युत्तिष्ठोत्तमे याव पुरं तामसमुत्सृज । राजपुत्रि कृतेऽप्यस्मिन् कार्यं किंचिन्न सिद्ध्यति ॥९८॥
स्थितायास्तत्र ते पद्मः पश्चात्तापसमाकुलः । पुनरन्वेषणं साध्वि करिष्यति न संशयः ॥९९॥
परिभ्रष्ट प्रमादेन महार्घंगुणमुज्ज्वलम् । रत्नं को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादरः ॥१००॥
सान्त्व्यमाना ततस्तेन धर्मसारकृतात्मना । धृतिं जगाम वैदेही पर प्राप्येव बान्धवम् ॥१०१॥
प्रशशंस च तं न त्वं भ्राता मे परमः शुभः । यशस्वी सुमतिः सत्त्वी शूरः सज्जनवत्सलः ॥१०२॥

आर्या

अधिगतसम्यग्दृष्टिर्गृहीतपरमार्थबोधिपूतात्मा ।
साधुरिव भावितात्मा व्रतगुणशीलार्थमुद्युक्त. ॥१०३॥
चरित सत्पुरुषस्य व्यपगतदोषं परोपकारनियुक्तम् ।
क्षपयति कस्य न शोकं जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्कस्य ॥१०४॥

किया। फिर शत्रु रावणके मारे जानेपर वहाँसे पुन. वापस लायी गयी और बलदेव—श्रीरामके प्रसादसे पुनः सुखको प्राप्त हुई अब फिर गर्भवती हो पापोदयसे निन्दारूपी साँपके द्वारा डँसी गयी है और बिना दोपके ही यहाँ छोडी गयी है ॥९०–९२॥ जो साधुरूपी फूलोके महलको दुर्वचनके द्वारा जला देता है वह अत्यन्त कठिन पाप अग्निके द्वारा भस्मीभूत हो अर्थात् तेरा पापकर्म शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो ॥९३॥ अहो देवि ! तू परम धन्य है, और अत्यन्त प्रशंसनीय चेष्टाकी धारक है जो तू चैत्यालयोकी वन्दनाके दोहलाको प्राप्त हुई है ॥९४॥ हे उत्तमशील-शोभिते ! आज भी तेरा पुण्य है ही जो हाथीके निमित्त वनमे आये हुए मैने तुझे देख लिया ॥९५॥ मै इन्द्रवंशमे उत्पन्न, एक शुभ आचारका ही पालन करनेवाले राजा द्विरदवाहकी सुबन्धु नामक रानीसे उत्पन्न हुआ वज्रजंघ नामका पुत्र हूँ, मै पुण्डरीक नगरका स्वामी हूँ। हे गुणवति ! तू धर्म विधिसे मेरी बड़ी बहन है ॥९६–९७॥ हे उत्तमे, चलो उठो नगर चले, शोक छोड़ो क्योकि हे राजपुत्रि ! इस शोकके करनेपर भी कोई कार्यं सिद्ध नही होता है ॥९८॥ हे पतिव्रते ! तुम वहाँ रहोगी तो पश्चात्तापसे आकुल होते हुए राम फिरसे तुम्हारी खोज करेगे इसमे सशय नही है ॥९९॥ प्रमादसे गिरे, महामूल्य गुणोके धारक उज्ज्वल रत्नको कौन विद्वान् बड़े आदरके फिर नही चाहता है ? अर्थात् सभी चाहते हैं ॥१००॥

तदनन्तर धर्मके रहस्यसे कुशल अर्थात् धर्मके मर्मको जाननेवाले उस वज्रजंघके द्वारा समझायी गयी सीता इस प्रकार धैर्यको प्राप्त हुई मानो उसे भाई ही मिल गया हो ॥१०१॥ उसने वज्रजंघकी इस तरह प्रशसा की कि हाँ तू मेरा वही भाई है, तू अत्यन्त शुभ है, यशस्वी है, बुद्धिमान् है, धैर्यशाली है, शूरवीर है, साधु-वत्सल है, सम्यग्दृष्टि है, परमार्थको समझनेवाला है, रत्नत्रयसे पवित्रात्मा है, साधुकी भाँति आत्मचिन्तन करनेवाला है तथा व्रत, गुण और शीलकी प्राप्तिके लिए निरन्तर तत्पर रहता है ॥१०२–१०३॥ निर्दोष एवं परोपकारमे तत्पर सत्पुरुषका चरित, किस जिनमतके प्रगाढ़ श्रद्धानीका शोक नही नष्ट करता ? अर्थात् सभीका

नूनं पूर्वत्र भवे सगोदरस्त्वं च बन्धुर्वा[illegible] ।
[illegible] मे [illegible] शुद्धात्मा ॥१०५॥

[illegible] रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतासमाश्वासनं नामाष्टनवतितमं पर्व ॥९८॥



[illegible] ॥१०४॥ निश्चित है कि तू पूर्वभवमें मेरा यथार्थ प्रेम करनेवाला भाई रहा होगा इसीलिए [illegible] तू सूर्यके समान निर्मल आत्माका धारक होता हुआ मेरे विस्तृत शोकरूपी अन्धकारको हरण कर रहा है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें सीताको सान्त्वना देनेका वर्णन करनेवाला अन्ठानवेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९८॥



नवनवतितमं पर्व

अथ क्षणादुपानीतां सुस्तम्भां भक्तिभासुराम् । विमानसदृशीं रम्यां सत्प्रमाणप्रतिष्ठिताम् ॥१॥
वरदर्पणकम्बूपचन्द्रचामरहारिणीम् । हारबुद्बुदसंयुक्तां विचित्रांशुकशालिनीम् ॥२॥
प्रसारितमहामाल्यां चित्रकर्मविराजिताम् । सुगवाक्षां समारूढा शिबिकां जनकात्मजा ॥३॥
ऋद्ध्या परमया युक्ता महासैनिकमध्यगा । प्रतस्थे कर्मवैचित्र्यं चिन्तयन्ती सविस्मया ॥४॥
दिनैस्त्रिभिरतिक्रम्य तदरण्यं सुभीषणम् । पुण्डरीकसुराष्ट्रं सा प्रविष्टा साधुचेष्टिता ॥५॥
सर्वसस्यसंपद्भिरितरोहितमहीतलम् । ग्रामैः कुक्कुटसंपात्यैः पुराकारैर्विराजितम्[1] ॥६॥
पुरैर्नाकपुरच्छायैरासेचनकदर्शनम् । पश्यन्ती विषयं श्रीमदुद्यानादिविभूषितम् ॥७॥
मान्ये भगवति श्लाघ्ये दर्शनेन वयं तव । विधूतकिल्बिषा जाता कृतार्था भवसंगिनः ॥८॥
एवं महत्तरप्रष्ठैः स्तूयमाना कुटुम्बिभिः । सोपायनैर्नृपच्छायैर्वन्द्यमाना च भूरिशः ॥९॥
रचितार्घादिसन्मानैः पार्थिवैश्च सुरोत्तमैः । कृतप्रणाममत्युच्चं शस्यमाना पदे पदे ॥१०॥
अनुक्रमेण सम्प्राप पौण्डरीकपुरान्तिकम् । मनोभिराममत्यन्तं पौरलोकनिषेवितम् ॥११॥
वैदेह्यागमनं श्रुत्वा स्वाम्यादेशेन सत्वरम् । उपशोभा पुरे चक्रे परमाधिकृतैर्जनैः ॥१२॥
[2]परितो हितसंस्काराः रथ्याः सत्रिकचत्वराः । सुगन्धिभिर्जलैः सिक्ताः कृताः पुष्पतिरोहिताः ॥१३॥
इन्द्रचापसमानानि तोरणान्युच्छ्रितानि च । कलशाः स्थापिता द्वारे सपूर्णाः पल्लवानना[3] ॥१४॥

अथानन्तर राजा वज्रजंघने क्षण-भरमे एक ऐसी पालकी बुलायी जिसमे उत्तम खम्भे लगे हुए थे, जो नाना प्रकारके वेल-बूटोसे सुशोभित थी, विमानके समान थी, रमणीय थी, योग्य प्रमाणसे बनायी गयी थी, उत्तम दर्पण, फानूस, तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल चमरोसे मनोहर थी, हारके बुदबुदोसे सहित थी, रंग-बिरंगे वस्त्रोसे सुशोभित थी, जिसपर बड़ी-बडी मालाएँ फैलाकर लगायी गयी थी, जो चित्र रचनासे सुन्दर थी, और उत्तमोत्तम झरोखोसे युक्त थी। ऐसी पालकीपर सवार हो सीताने प्रस्थान किया। उस समय सीता उत्कृष्ट सम्पदासे सहित थी, महासैनिकोके मध्य चल रही थी, कर्मोकी विचित्रताका चिन्तन कर रही थी तथा आश्चर्यसे चकित थी ॥१-४॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली सीता, तीन दिनमे उस भयंकर अटवीको पार कर पुण्डरीक देशमे प्रविष्ट हुई ॥५॥ समस्त प्रकारकी धान्य सम्पदाओसे जिसकी भूमि आच्छादित थी, तथा कुक्कुटसम्पात्य अर्थात् निकट-निकट बसे हुए तथा नगरोके आकारवाले ग्रामोसे जो सुशोभित था ॥६॥ स्वर्गपुरके समान कान्तिवाले नगरोसे जो इतना अधिक सुन्दर था कि देखते-देखते तृप्ति ही नही होती थी, तथा जो बाग-बगीचे आदिसे विभूषित था ऐसे पुण्डरीक देशको देखती हुई वह आगे जा रही थी ॥७॥ हे मान्ये भगवति ! हे श्लाघ्ये ! तुम्हारे दर्शनसे हम ससारके प्राणी निष्पाप एव कृतकृत्य हो गये ॥८॥ इस प्रकार राजाकी कान्तिको धारण करनेवाले गाँवके बडे-बूढे लोग भेट ले-लेकर उसकी बार-बार वन्दना करते थे ॥९॥ अर्घ आदिके द्वारा सम्मान करनेवाले देवतुल्य राजा उसे प्रणाम कर पद-पदपर उसकी अत्यधिक प्रशंसा करते जाते थे ॥१०॥ अनुक्रमसे वह अत्यन्त मनोहर तथा पुरवासी लोगोसे सेवित पुण्डरीकपुरके समीप पहुँची ॥११॥ सीताका आगमन सुन स्वामीके आदेशसे अधिकारी लोगोने शीघ्र ही नगरमे बहुत भारी सजावट की ॥१२॥ तिराहो और चौराहोसे सहित बडे-बडे मार्ग सब ओरसे सजाये गये, सुगन्धित जलसे सीचे गये तथा फूलोसे आच्छादित किये गये ॥१३॥ इन्द्रधनुषके समान रंग-बिरगे

१. पुराकरैर्विराजित म । २ परितो धृत-ख । परितः कृतसत्कारा म । ३. पल्लवानने म. ।

विलसद्ध्वजमालाढ्यं समुद्गतशुभस्वनम् । कर्त्तुं नृत्तमिवासक्तं नगरं तत्प्रमोदवत् ॥१५॥
गोपुरेण समं शालः समारूढमहाजनः । हर्षादिव परां वृद्धिं प्राप कोलाहलान्वितः ॥१६॥
अन्तर्बहिश्च तत्स्थानं सीतादर्शनकाङ्क्षिभिः । जङ्गमत्वमिव प्राप्तं जनौघैः प्रचलात्मकैः ॥१७॥
ततो विविधवादित्रनादेनाशाभिपूरिणा । शङ्खस्वनविमिश्रेण वन्दिनिःस्वानयोगिना ॥१८॥
विस्मयव्याप्तचित्तेन पौरेण कृतवीक्षणा । विवेश नगरं सीता लक्ष्मीरिव सुरालयम् ॥१९॥
उद्यानेन परिक्षिप्तं दीर्घिकाकृतमण्डनम् । मेरुकूटसमाकारं बलदेवसमच्छविम् ॥२०॥
वज्रजङ्घगृहान्तस्थं प्रासादमतिसुन्दरम् । पूज्यमाना नृपस्त्रीभिः प्रविष्टा जनकात्मजा ॥२१॥
बिभ्रता परमं तोषं वज्रजङ्घेन सूरिणा । भ्रात्रा भामण्डलेनेव पूज्यमाना सुचेतसा ॥२२॥
जय जीवाभिनन्देति वर्द्धस्वाऽऽज्ञापयेति च । ईशाने देवते पूज्ये स्वामिनीति च शब्दिता ॥२३॥
आज्ञां प्रतीच्छता मूर्ध्ना संभ्रमं दधता परम् । प्रबद्धाञ्जलिना सार्द्धं परिवर्गेण चारुणा ॥२४॥
अवसत्तत्र वैदेही समुद्भूतमनीषिता । कथाभिर्धर्मसंसक्ताभिः पद्मभूमिश्च संततम् ॥२५॥
प्राभृतं यावदायाति सामन्तेभ्यो महीपतेः । दत्तेन तेन वैदेही धर्मकार्यमसेवत ॥२६॥
असावपि[1] कृतान्तास्यस्तप्यमानमना भृशम् । स्थूरीपृष्ठान् परिश्रान्तान् खेदवाननुपालयन् ॥२७॥

तोरण खडे किये गये, द्वारोंपर जलसे भरे तथा मुखोंपर पल्लवोंसे सुशोभित कलश रखे गये ॥१४॥ जो फहराती हुई ध्वजाओं और मालाओंसे सहित था, तथा जहाँ शुभ शब्द हो रहा था ऐसा वह नगर आनन्द-विभोर हो मानो नृत्य करनेके लिए ही तत्पर था ॥१५॥ गोपुरके साथ-साथ जिसपर बहुत भारी लोग चढकर बैठे हुए थे ऐसा नगरका कोट इस प्रकार जान पड़ता था मानो हर्षके कारण कोलाहल करता हुआ परम वृद्धिको ही प्राप्त हो गया हो ॥१६॥ भीतर-बाहर सब जगह सीताके दर्शनकी इच्छा करनेवाले चलते-फिरते जन-समूहसे उस नगरका प्रत्येक स्थान ऐसा जान पड़ता था मानो जंगमपनाको ही प्राप्त हो गया हो अर्थात् चलने-फिरने लगा हो ॥१७॥

तदनन्तर शंखोंके शब्दसे मिश्रित, एवं वन्दीजनोंके विरदगानसे युक्त नाना प्रकारके वादित्रोंका शब्द जब दिग्दिगन्तको व्याप्त कर रहा था तब सीताने नगरमें उस तरह प्रवेश किया जिस तरह कि लक्ष्मी स्वर्गमें प्रवेश करती है। उस समय आश्चर्यसे जिनका चित्त व्याप्त हो रहा था ऐसे नगरवासी लोग सीताका बार-बार दर्शन कर रहे थे ॥१८-१९॥ तत्पश्चात् जो उद्यानसे घिरा हुआ था, वापिकाओंसे अलंकृत था, मेरुके शिखरके समान ऊँचा था और बलदेवकी कान्तिके समान सफेद था ऐसे वज्रजंघके घरके समीप स्थित अत्यन्त सुन्दर महलमें राजाकी स्त्रियोंसे पूजित होती हुई सीताने प्रवेश किया ॥२०-२१॥ वहाँ परम सन्तोषको धारण करनेवाला, बुद्धिमान् एवं उत्तम हृदयका धारक राजा वज्रजंघ, भाई भामण्डलके समान जिसकी पूजा करता था ॥२२॥ 'हे ईशाने ! हे देवते ! हे पूज्ये ! हे स्वामिनि ! तुम्हारी जय हो, जीवित रहो, आनन्दित होओ, बढ़ती रहो और आज्ञा देओ' इस प्रकार जिसका निरन्तर विरदगान होता रहता था ॥२३॥ परम सम्भ्रमके धारक, हाथ जोड़, मस्तक झुका आज्ञा प्राप्त करनेके इच्छुक सुन्दर परिजन सदा जिसके साथ रहते थे, तथा इच्छा करते ही जिसके मनोरथ पूर्ण होते थे ऐसी सीता वहाँ निरन्तर धर्म सम्बन्धी तथा राम सम्बन्धी कथाएँ करती हुई निवास करती थी ॥२४-२५॥ राजा वज्रजंघके पास सामन्तोंकी ओरसे जितनी भेंट आती थी वह सब सीताके लिए दे देता था और उसीसे वह धर्मकार्यका सेवन करती थी ॥२६॥

अथानन्तर जिसका मन अत्यन्त सन्तप्त हो रहा था, जो अत्यधिक खेदसे युक्त था, जो

1 कृतान्तवक्त्रसेनापतिः ।

समन्तान्नृपलोकेन पूर्यमाणस्वरावता। जगाम रामदेवस्य समीपं विनताननः ॥२८॥
अब्रवीच्च प्रभो! सीता गर्भमात्रसहायिका[1]। मया त्वद्वचनाद्भीमे कान्तारे स्थापिता नृप ॥२९॥
नानातिघोरनिःस्वानश्वापदौघनिषेविते। वेतालाकारदुःप्रेक्षद्रुमजालान्धकारिते ॥३०॥
निसर्गद्वेषसंसक्तयुद्धव्याघ्रमहिषाधिके। नित्यद्धदुन्दुभिध्वाने मरुता कोटरश्रिता ॥३१॥
कन्दरोदरसंमूर्च्छासिंहनादप्रतिध्वनौ। दारुक्रकचजस्वान[2]भीमसुप्तशयुस्वने[3] ॥३२॥
[4]तृष्यत्तरक्षुविध्वस्तसारङ्गास्रस्तपुस्तिके[5]। धातकीस्तवकालेहिशोणिताशङ्किसिंहके ॥३३॥
कृतान्तस्यापि भीभारसमुद्भवनपण्डिते। अरण्ये देव त्वद्वाक्याद्वैदेही रहिता मया ॥३४॥
अश्रुदुर्दिनवक्त्राया दीपिताया महाशुचा। संदेशं देव सीताया निबोध कथयाम्यहम् ॥३५॥
त्वामाह मैथिली देवी यदीच्छस्यात्मने हितम्। जिनेन्द्रे मा मुचो भक्तिं यथा त्यक्ताहमीदृशी ॥३६॥
स्नेहानुरागसंसक्तो मानी यो मां विमुञ्चति। नूनं जिनेऽप्यसौ भक्तिं परित्यजति पार्थिवः ॥३७॥
वाग्बली यस्य यत् किंचित् परिवादं जनः खलः। अविचार्य वदत्येव तद्विचार्यं मनीषिणा ॥३८॥
निर्दोषाया जनो दोषं न तथा मम भाषते। यथा सद्धर्मरत्नस्य सम्यग्बोधबहिःकृतः ॥३९॥
को दोषो यदहं त्यक्ता भीषणे विजने वने। सम्यग्दर्शनसंशुद्धिं राम न त्यक्तुमर्हसि ॥४०॥

थके हुए घोड़ोको विश्राम देनेवाला था और जिसे शीघ्रता करनेवाले राजाओने सब ओरसे घेर लिया था ऐसा कृतान्तवक्त्र सेनापति, मुखको नीचा किये हुए श्रीरामदेवके समीप गया ॥२७-२८॥ और बोला कि हे प्रभो! हे राजन्! आपके कहनेसे मै एक गर्भ ही जिसका सहायक था ऐसी सीताको भयंकर वनमे ठहरा आया हूँ ॥२९॥ हे देव! आपके कहनेसे मै सीताको उस वनमे छोड़ आया हूँ जो नाना प्रकारके अत्यन्त भयंकर शब्द करनेवाले वन्य पशुओके समूहसे सेवित है, वेतालोका आकार धारण करनेवाले दुर्दृश्य वृक्षोके समूहसे जहाँ घोर अन्धकार व्याप्त है, जहाँ स्वाभाविक द्वेषसे निरन्तर युद्ध करनेवाले व्याघ्र और जंगली भैंसा अधिक है, जहाँ कोटरमे टकरानेवाली वायुसे निरन्तर दुन्दुभिका शब्द होता रहता है, जहाँ गुफाओके भीतर सिंहोके शब्दकी प्रतिध्वनि बढती रहती है, जहाँ सोये हुए अजगरोका शब्द लकड़ीपर चलनेवाली करोतसे उत्पन्न शब्दके समान भयंकर है, जहाँ प्यासे भेड़ियोके द्वारा हरिणोके लटकते हुए पोते नष्ट कर डाले गये है। जहाँ रुधिरकी आशंका करनेवाले सिंह धातकी वृक्षके गुच्छोको चाटते रहते है और जो यमराजके लिए भी भयका समूह उत्पन्न करनेमे निपुण है ॥३०-३४॥ हे देव! जिसका मुख अश्रुओकी वर्षासे दुर्दिनके समान हो रहा था तथा जो महाशोकसे अत्यन्त प्रज्वलित थी ऐसी सीताका सन्देश मै कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ सीता देवीने आपसे कहा है कि यदि अपना हित चाहते हो तो जिस प्रकार मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार जिनेन्द्रदेवमे भक्तिको नही छोड़ना ॥३६॥ स्नेह तथा अनुरागसे युक्त जो मानी राजा मुझे छोड़ सकता है निश्चय ही वह जिनेन्द्रदेवमे भक्ति भी छोड़ सकता है ॥३७॥ वचन बलको धारण करनेवाला दुष्ट मनुष्य बिना विचारे चाहे जिसके विषयमे चाहे जो निन्दाकी बात कह देता है परन्तु बुद्धिमान् मनुष्यको उसका विचार करना चाहिए ॥३८॥ साधारण मनुष्य मुझ निर्दोषके दोष उस प्रकार नही कहते जिस प्रकार कि सम्यग्ज्ञानसे रहित मनुष्य सद्धर्मरूपी रत्नके दोष कहते फिरते है। भावार्थ—दूसरेके कहनेसे जिस प्रकार आपने मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार सद्धर्मरूपी रत्नको नही छोड़ देना क्योकि मेरी अपेक्षा सद्धर्मरूपी रत्नकी निन्दा करनेवाले अधिक है ॥३९॥ हे राम! आपने मुझे भयकर निर्जन वनमे छोड दिया है सो इसमे क्या दोष है? परन्तु इस तरह आप सम्यग्दर्शन-

१. गर्भमात्र सहायो यस्याः सा। २ दारुकीचकनिस्वान व। ३ शयुरजगरः। ४ नृत्यत्तरिक्षु म.। ५. पुत्रिके म., ख।

एतदेकभवे दुःखं वियुक्तस्य मया सह । सम्यग्दर्शनहानौ तु दुःखं जन्मनि जन्मनि ॥४१॥
नरस्य सुलभं लोके निधिस्त्रीवाहनादिकम् । सम्यग्दर्शनरत्नं तु साम्राज्यादपि दुर्लभम् ॥४२॥
राज्ये विधाय पापानि पतनं नरके ध्रुवम् । ऊर्ध्वं गमनमेतेन सम्यग्दर्शनतेजसा ॥४३॥
सम्यग्दर्शनरत्नेन यस्यात्मा कृतभूषणः । लोकद्वितयमप्यस्य कृतार्थत्वमुपाश्नुते ॥४४॥
सन्दिष्टमिति जानक्या स्नेहनिर्भरचित्तया । श्रुत्वा कस्य न वीरस्य जायते मतिरुत्तमा ॥४५॥
स्वभावाद्भीरुका भीरुर्भीष्यमाणा सुभीरुभिः । बिभीषिकाभिरुग्राभिर्भीमाभिः पौंस्निकोऽप्यलम् ॥४६॥
भासुरोग्रमहाव्यालजालकालभयङ्करे । भासिशुष्कसरोमग्नच्छूर्बृंहितवारणे ॥४७॥
कर्कन्धुकण्टकाश्लिष्टपुच्छार्तचमरावले । अलीकसलिलश्रद्धाढौकमानाकुलैणके ॥४८॥
कपिकच्छूरजःसङ्गनितान्तचलमर्कटे । प्रलम्बकेशसञ्छन्नवक्त्रविक्रन्द्[1]दृक्षके ॥४९॥
तृष्णातुरवृकग्रामलसद्रसनपल्लवे । गुञ्जाकोशीस्फुटाच्छोटनाटनक्रुद्धभोगिनि ॥५०॥
परुषानिलसंचारक्रूरक्रन्दद्भिनाद्[2]द्रिपे । क्षणसंभूतवातूलसमुद्धूतरजोदले ॥५१॥
महाजगरसंचारचूर्णितानेकपादपे । उद्वृत्तमत्तनागेन्द्रध्वस्तभीमासुधारिणि ॥५२॥
वराहवाहिनीखातसरःक्रोडसुकर्कशे । कण्टकावटवल्मीककूटसंकटभूतले ॥५३॥
शुष्कपुष्पद्रवोत्ताम्यद्भ्राम्यद्दूरार्त्तगर्मुति[3] । [4]कुप्यच्छलिलनिर्मुक्तसूचीशतकरालिते ॥५४॥

की शुद्धताको छोड़नेके योग्य नही है ॥४०॥ क्योंकि मेरे साथ वियोगको प्राप्त हुए आपको इसी एक भवमे दुःख होगा परन्तु सम्यग्दर्शनके छूट जानेपर तो भव-भवमे दुःख होगा ॥४१॥ संसारमें मनुष्यको खजाना, स्त्री तथा वाहन आदिका मिलना सुलभ है परन्तु सम्यग्दर्शनरूपी रत्न साम्राज्यसे भी कही अधिक दुर्लभ है ॥४२॥ राज्यमे पाप करनेसे मनुष्यका नियमसे नरकमें पतन होता है परन्तु उसी राज्यमे यदि सम्यग्दर्शन साथ रहता है तो एक उसीके तेजसे ऊर्ध्व-गमन होता है—स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥४३॥ जिसकी आत्मा सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे अलंकृत है उसके दोनो लोक कृतकृत्यताको प्राप्त होते हैं ॥४४॥ इस प्रकार स्नेहपूर्ण चित्तको धारण करनेवाली सीताने जो सन्देश दिया है उसे सुनकर किस वीरके उत्तम बुद्धि उत्पन्न नही होती ? ॥४५॥ जो स्वभावसे ही भीरु है यदि उसे दूसरे भय उत्पन्न कराते है तो उसके भीरु होनेमे क्या आश्चर्य ? परन्तु उग्र एवं भयंकर विभीषिकाओसे तो पुरुष भी भयभीत हो जाते है। भावार्थ—जो भयकर विभीषिकाएँ स्वभाव-भीरु सीताको प्राप्त हैं वे पुरुषको भी प्राप्त न हो ॥४६॥ हे देव ! जो अत्यन्त देदीप्यमान—दुष्ट हिंसक जन्तुओके समूहसे यमराजको भी भय उत्पन्न करनेवाला है, जहाँ अर्धशुष्क तालावकी दलदलमे फँसे हाथी गूत्कार कर रहे है, जहाँ बेरीके काँटोमे पूँछके उलझ जानेसे सुरा गायोंका समूह दुःखी हो रहा है, जहाँ मृगमरीचिमे जलकी श्रद्धासे दौडनेवाले हरिणोके समूह व्याकुल हो रहे हैं, जहाँ करेचकी रजके संगसे वानर अत्यन्त चंचल हो उठे है, जहाँ लम्बी-लम्बी जटाओसे मुख ढँक जानेके कारण रीछ चिल्ला रहे है, जहाँ प्याससे पीड़ित भेड़ियोके समूह अपनी जिह्वारूपी पल्लवोको बाहर निकाल रहे है, जहाँ गुमची-की फलियोके चटकने तथा उनके दाने ऊपर पड़नेसे साँप कुपित हो रहे है, जहाँ वृक्षोका आश्रय लेनेवाले जन्तु, तीव्र वायुके संचारसे कही वृक्ष टूटकर ऊपर न गिर पड़े, इस भयसे क्रूर क्रन्दन कर रहे हैं, जहाँ क्षण एकमें उत्पन्न बवण्डरमे धूलि और पत्तोके समूह एकदम उड़ने लगते है, जहाँ बड़े-बड़े अजगरोके संचारसे अनेक वृक्ष चूर-चूर हो गये हैं, जहाँ उद्दण्ड मदोन्मत्त हाथियोके द्वारा भयकर प्राणी नष्ट कर दिये गये है, जो सूकरोके समूहसे खोदे गये तालाबोके मध्य भागसे कठोर है, जहाँका भूतल काँटे, गड्ढे, बमीठे और मिट्टीके टीलोसे व्याप्त है, जहाँ फूलोंका रस

१ क्रन्दवृक्षके म । २ ध्वनि -म. । ३. गर्मुत् भ्रमर. श्री टि. । ४. कुप्या सलिल -म ।

एवंविधे महारण्ये रहिता देव जानकी । मन्ये न क्षणमप्येकं प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥५५॥
ततः सेनापतेर्वाक्यं श्रुत्वा रौद्रमरेरपि । विषादमगमद्रामस्तेनैव विदितात्मकम् ॥५६॥
संचिन्तयच्च किं न्वेतत्खलवाक्यवशात्मना । मयका मूढचित्तेन कृतमत्यन्तनिन्दितम् ॥५७॥
तादृशी राजपुत्री क्व क्व चेदं दुःखमीदृशम् । इति संचिन्त्य यातोऽसौ मूर्च्छां मुकुलितेक्षणः ॥५८॥
चिराच्च प्रतिकारेण प्राप्य संज्ञां सुदुःखितः । विप्रलापं परं चक्रे दयितागतमानसः ॥५९॥
हा त्रिवर्णसरोजाक्षि हा विशुद्धगुणाम्बुधे[1] । हा वक्त्रजिततारेशे हा पद्मान्तरकोमले ॥६०॥
अयि वैदेहि वैदेहि देहि देहि वचो द्रुतम् । जानास्येव हि मे चित्तं त्वदृतेऽत्यन्तकातरम् ॥६१॥
उपमानविनिर्मुक्तशीलधारिणि हारिणि । हितप्रियसमालापे पापवर्जितमानसे ॥६२॥
अपराधविनिर्मुक्ता निर्घृणेन मयोज्झिता । प्रतिपन्नासि कामाशां मम मानसवासिनि ॥६३॥
महाप्रतिभयेऽरण्ये क्रूरश्वापदसंकटे । कथं तिष्ठसि मत्त्यक्ता देवि भोगविवर्जिता ॥६४॥
मदालसचकोराक्षि लावण्यजलदीर्घिके । त्रपाविनयसंपन्ने हा देवि क्व गतासि मे ॥६५॥
निःश्वासामोदजालेन बद्धान् झङ्कारसंगतान् । [2]वारयन्ती कराब्जेन भ्रमरान् खेदमाप्स्यति ॥६६॥
क्व यास्यसि विचेतस्का यूथभ्रष्टा मृगी यथा । एकाकिनी वने भीमे चिन्तितेऽपि सुदुःसहे ॥६७॥
अब्जगर्भमृदू कान्तौ [3]पादुकौ चारुलक्षणौ । कथं तव सहिष्येते लग्नं कर्कशया भुवा ॥६८॥

सूख जानेसे घामसे पीड़ित भौंरे छटपटाते हुए इधर-उधर उड़ रहे हैं और जो कुपित सेहियोके द्वारा छोडे हुए काँटोसे भयंकर है ऐसे महावनमे छोडी हुई सीता क्षणभर भी प्राण धारण करनेके लिए समर्थ नही है ऐसा मै समझता हूँ ॥४७–५५॥

तदनन्तर जो शत्रुसे भी अधिक कठोर थे ऐसे सेनापतिके वचन सुनकर राम विषादको प्राप्त हुए और उतनेसे ही उन्हे अपने आपका बोध हो गया—अपनी त्रुटि अनुभवमे आ गयी ॥५६॥ वे विचार करने लगे कि मुझ मूर्ख हृदयने दुर्जनोके वचनोके वशीभूत हो यह अत्यन्त निन्दित कार्य क्यो कर डाला ? ॥५७॥ कहाँ वह वैसी राजपुत्री ? और कहाँ यह ऐसा दुःख ? इस प्रकार विचार कर राम नेत्र बन्द कर मूर्च्छित हो गये ॥५८॥ तदनन्तर जिनका हृदय स्त्रीमें लग रहा था ऐसे राम उपाय करनेसे चिरकाल बाद सचेत हो अत्यन्त दुखी होते हुए परम विलाप करने लगे ॥५९॥ वे कहने लगे कि हाय सीते ! तेरे नेत्र तीन रगके कमलके समान हैं, तू निर्मल गुणोका सागर है, तूने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया है, तू कमलके भीतरी भागके समान कोमल है ॥६०॥ हे वैदेहि ! हे वैदेहि ! शीघ्र ही वचन देओ। यह तो तू जानती ही है कि मेरा हृदय तेरे विना अत्यन्त कातर है ॥६१॥ तू अनुपम शीलको धारण करनेवाली है, सुन्दरी है, तेरा वार्तालाप हितकारी तथा प्रिय है। तेरा मन पापसे रहित है ॥६२॥ तू अपराधसे रहित थी फिर भी निर्दय होकर मैने तुझे छोड़ दिया। हे मेरे हृदयमे वास करनेवाली ! तू किस दशाको प्राप्त हुई होगी ? ॥६३॥ हे देवि ! महाभयदायक एवं दुष्ट वन्य पशुओसे भरे हुए वनमे छोड़ी गयी तू भोगोसे रहित हो किस प्रकार रहेगी ? ॥६४॥ तेरे नेत्र मदोन्मत्त चकोरके समान है, तू सौन्दर्यरूपी जलकी वापिका है, लज्जा और विनयसे सम्पन्न है। हाय मेरी देवि ! तू कहाँ गयी ? ॥६५॥ हाय देवि ! श्वासोच्छ्वासकी सुगन्धिसे भ्रमर तेरे मुखके समीप इकट्ठे होकर झंकार करते होगे उन्हे कर कमलसे दूर हटाती हुई तू अवश्य ही खेदको प्राप्त होगी ॥६६॥ जो विचार करनेपर भी अत्यन्त दु सह है ऐसे भयंकर वनमे झुण्डसे बिछुड़ी मृगीके समान तू अकेली शून्य हृदय हो कहाँ जायेगी ? ॥६७॥ कमलके भीतरी भागके समान कोमल एव सुन्दर लक्षणोसे युक्त तेरे

---

१. गुणेषुवे ख, ज, म । २ वादयन्ती म. । ३ पादुकौ म. ।

[illegible] सुर्नां कामनास्। [illegible] शिकाभ्रं [illegible] पदौ नीता सुर्सवपाम् ॥६९॥
[illegible] । [illegible] सार्जिन [illegible] दारुणेन मनोन्द्रिया ॥७०॥
[illegible] । [illegible] हरिणा ॥७१॥
[illegible] । [illegible] त्रिवने तु [illegible] ॥७२॥
[illegible] । [illegible] ॥७३॥
[illegible] । [illegible] योषितोद्गमः ॥७४॥
[illegible] । [illegible] ॥७५॥
[illegible] । [illegible] ॥७६॥
[illegible] । [illegible] किंनु [illegible] धर्मसमाश्रिता ॥७७॥
[illegible] । [illegible] ॥७८॥
[illegible] । [illegible] न वेद्मि किम् ॥७९॥
[illegible] । [illegible] वदिष्यसि ॥८०॥
[illegible] । [illegible] ॥८१॥
[illegible] । [illegible] ॥८२॥

[illegible] ॥६८॥ अथवा जिनका मन, [illegible] [illegible] भयंकर [illegible] तुझसे मुझे मनमें पीड़ा है, अतः अपनी बात [illegible] ॥७०॥ अथवा तू [illegible] एवं उनकी [illegible] [illegible] दबा दिया होगा ॥७२॥ जो [illegible] नहीं होगा [illegible] ॥७३॥ अथवा हे [illegible]! [illegible] [illegible] ॥७५॥ [illegible] ॥७८॥ [illegible]

स्थिते निर्वचने तस्मिन् ध्यात्वा सीतां सुदुःखिनाम्। पुनर्मूर्च्छां गतो रामः कृच्छ्रात्संज्ञां च लम्भितः ॥८३॥
लक्ष्मणोऽत्रान्तरे प्राप्तो जगादान्तःशुचं स्पृशन्। आकुलोऽसि किमित्येवं देव धैर्यं समाश्रय ॥८४॥
फलं पूर्वार्जितस्येदं कर्मणः समुपागतम्। सकलस्यापि लोकस्य राजपुत्र्या न केवलम् ॥८५॥
प्राप्तव्यं येन यल्लोके दुःखं कल्याणमेव वा। स तं स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्व्यपदेशतः[1] ॥८६॥
आकाशमपि नीतः सन् वनं वा श्वापदाकुलम्। मूर्धानं वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रक्ष्यते ॥८७॥
देव सीतापरित्यागश्रवणाद्भरतावनौ। अकरोदास्पदं दुःखं प्राकृतीयमनःस्वपि ॥८८॥
प्रजानां दुःखतप्तानां विलीनानां समन्ततः। अश्रुधारापदेशेन हृदयं न्यगलन्निव ॥८९॥
परिदेवनमेवं च चक्रेऽत्यन्तसमाकुलः। हिमाहतप्रभाम्भोजखण्डसम्मितवक्त्रकः ॥९०॥
हा दुष्टजनवाक्याग्निप्रदीपितशरीरिके। गुणसस्यसमुद्भूतिभूमिभूतसुभावने ॥९१॥
राजपुत्रि क्व यातासि सुकुमाराङ्घ्रिपल्लवे। शीलाद्रिधरणक्षोणि सीते सौम्ये मनस्विनि ॥९२॥
खलवाक्यतुषारेण मातः पश्य समन्ततः। गुणराट् बिसिनी दग्धा राजहंसनिषेविता ॥९३॥
सुभद्रासदृशी भद्रा सर्वाचारविचक्षणा। सुखासिकेव लोकस्य मूर्ता क्वासि वरे गता ॥९४॥
भास्करेण विना का द्यौः का निशा शशिना विना। स्त्रीरत्नेन विना तेन साकेता वापि कीदृशी ॥९५॥

सेनापति व्याकुल हो गया ॥८२॥ जब कृतान्तवक्त्र चुप खड़ा रहा तब अत्यन्त दुःखसे युक्त सीताका ध्यान कर राम पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये और बड़ी कठिनाईसे सचेत किये गये ॥८३॥

इसी बीचमे लक्ष्मणने आकर हृदयमे शोक धारण करनेवाले रामका स्पर्श करते हुए कहा कि हे देव! इस तरह व्याकुल क्यो होते हो? धैर्य धारण करो ॥८४॥ यह पूर्वोपार्जित कर्मका फल समस्त लोकको प्राप्त हुआ है न केवल राजपुत्रीको ही ॥८५॥ संसारमे जिसे जो दुःख अथवा सुख प्राप्त करना है वह उसे किसी निमित्तसे स्वयमेव प्राप्त करता है ॥८६॥ यह प्राणी चाहे आकाशमे ले जाया जाये, चाहे वन्य पशुओसे व्याप्त वनमे ले जाया जाये और चाहे पर्वतकी चोटीपर ले जाया जाये सर्वत्र अपने पुण्यसे ही रक्षित होता है ॥८७॥ हे देव! सीताके परित्यागका समाचार सुनकर इस भरतक्षेत्रकी समस्त वसुधामे साधारणसे साधारण मनुष्योके भी मनमे दुःखने अपना स्थान कर लिया है ॥८८॥ दुःखसे सन्तप्त एवं सब ओरसे द्रवीभूत प्रजाजनोके हृदय अश्रुधाराके बहाने मानो गल-गलकर बह रहे है ॥८९॥ रामसे इतना कहकर अत्यन्त व्याकुल हो लक्ष्मण स्वयं विलाप करने लगे और उनका मुख हिमसे ताडित कमल-वनके समान निष्प्रभ हो गया ॥९०॥ वे कहने लगे कि हाय सीते! तेरा शरीर दुष्टजनोके वचनरूपी अग्निसे प्रज्वलित हो रहा है, तू गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए भूमिस्वरूप है तथा उत्तम भावनासे युक्त है ॥९१॥ हे राजपुत्रि! तू कहाँ गयी? तेरे चरण-किसलय अत्यन्त सुकुमार थे? तू शीलरूपी पर्वतको धारण करनेके लिए पृथिवीरूप थी, हे सीते! तू बड़ी ही सौम्य और मनस्विनी थी ॥९२॥ हे मातः! देख, दुष्ट मनुष्योके वचनरूपी तुषारसे गुणोसे सुशोभित तथा राजहंसोसे निषेवित यह कमलिनी सब ओरसे दग्ध हो गयी है। भावार्थ—यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा बिसिनी शब्दसे सीताका उल्लेख किया गया है। जिस प्रकार कमलिनी गुण अर्थात् तन्तुओसे सुशोभित होती है उसी प्रकार सीता भी गुण अर्थात् दया-दाक्षिण्य आदि गुणोसे सुशोभित थी और जिस प्रकार कमलिनी राजहंस पक्षियोसे सेवित होती है उसी प्रकार सीता भी राजहंस अर्थात् राजशिरोमणि रामचन्द्रसे सेवित थी ॥९३॥ हे उत्तमे! तू सुभद्राके समान भद्र और सर्व आचारके पालन करनेमे निपुण थी तथा समस्त लोककी मूर्तिधारिणी सुख स्थिति स्वरूप थी। तू कहाँ गयी? ॥९४॥ सूर्यके विना आकाश क्या? और चन्द्रमाके बिना रात्रि क्या? उसी प्रकार स्त्रीरत्नके विना अयोध्या कैसी? भावार्थ—जिस प्रकार सूर्यके बिना आकाशकी और चन्द्रमाके

---

1 कुतश्चिद्वापदेशत म ।

वेणुवीणामृदङ्गादिनि:स्वानपरिवर्जिता । नगरी देव संजाता करुणाक्रन्दपूरिता ॥९६॥
रथ्योद्यानप्रदेशेषु कान्तारेषु सरित्सु च । त्रिकचत्वरमार्गेषु भवनेष्वापणेषु च ॥९७॥
सन्ततामिपतन्तीभिरश्रुधाराभिरुद्गतः । पङ्कः समस्तलोकस्य घनकालभवोपमः ॥९८॥
बाष्पगद्गदया वाचा कृच्छ्रेण समुदाहरन् । गुणप्रसूनवर्षेण परोक्षामपि जानकीम् ॥९९॥
पूजयत्यखिलो लोकस्तदेकगतमानसः । सा हि सर्वसतीमूर्ध्नि पदं चक्रे गुणोज्ज्वला ॥१००॥
समुत्कण्ठापरार्धीनैः स्वयं देव्यानुपालितैः । छेकैरपि परं दीनं रुदितं धृतविग्रहैः ॥१०१॥
सहैव गुणसंबन्धरागस्तज्जनचेतसः । कृते कस्य न जानक्या वर्तते शुगदुत्तरा ॥१०२॥
किंतु कोविद नोपायः पश्चात्तापो मनीषिते । इति संचिन्त्य धीरत्वमवलम्बितुमर्हसि ॥१०३॥
इति लक्ष्मणवाक्येन पद्मनाभः प्रसादितः । शोकं किंचित्परित्यज्य कर्तव्ये निदधे मनः ॥१०४॥
प्रेतकर्मणि जानक्याः सादरं जनमादिशत् । द्राग् भद्रकलशं चैव समाहूय जगाविति ॥१०५॥
समादिष्टोऽसि वैदेह्या पूर्वं भद्र यथाविधम् । तेनैव विधिना दानं तामुद्दिश्य प्रदीयताम् ॥१०६॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा कोषाध्यक्षः सुमानसः । अर्थिनामीप्सितं द्रव्यं नवमासानशिश्रणत् ॥१०७॥
सहस्रैरष्टभिः स्त्रीणां सेव्यमानोऽपि संततम् । वैदेहीं मनसा रामो निमेषमपि नात्यजत् ॥१०८॥
सीताशब्दमयस्तस्य समालापः सदाभवत् । सर्वं ददर्श वैदेहीं तद्गुणाकृष्टमानसः ॥१०९॥
क्षितिरेणुपरीताङ्गीं गिरिगह्वरवर्तिनीम् । अपश्यज्जानकीं स्वप्ने नेत्राम्बुकृतदुर्दिनाम् ॥११०

बिना रात्रिकी शोभा नहीं है उसी प्रकार सीताके बिना अयोध्याकी शोभा नहीं है ॥९५॥ हे देव! समस्त नगरी बाँसुरी, वीणा तथा मृदंग आदिके शब्दसे रहित तथा करुण क्रन्दनसे पूर्ण हो रही है ॥९६॥ गलियोंमें, बाग-बगीचोंके प्रदेशोंमें, वनोंमें, नदियोंमें, तिराहों-चौराहोंमें, महलोंमें और बाजारोंमें निरन्तर निकलनेवाली समस्त लोगोंकी अश्रुधाराओंसे वर्षा ऋतुके समान कीचड़ उत्पन्न हो गया है ॥९७–९८॥ यद्यपि जानकी परोक्ष हो गयी है तथापि उसी एकमें जिसका मन लग रहा है ऐसा समस्त संसार अश्रुसे गद्गद वाणीके द्वारा बड़ी कठिनाईसे उच्चारण करता हुआ गुणरूप फूलोंकी वर्षासे उसकी पूजा करता है सो ठीक ही है क्योंकि गुणोंसे उज्ज्वल रहनेवाली उस जानकीने समस्त सती स्त्रियोंके मस्तकपर स्थान किया था अर्थात् समस्त सतियोंमें शिरोमणि थी ॥९९–१००॥ स्वयं सीतादेवीने जिनका पालन किया था तथा जो उसके अभावमें उत्कण्ठासे विवश हैं ऐसे शुक आदि चतुर पक्षी भी शरीरको कँपाते हुए अत्यन्त दीन रुदन करते रहते हैं ॥१०१॥ इस प्रकार समस्त मनुष्योंके चित्तके साथ जिसके गुणोंका सम्बन्ध था ऐसी जानकीके लिए किस मनुष्यको भारी शोक नहीं है? ॥१०२॥ किन्तु हे विद्वान्! पश्चात्ताप करना इच्छित वस्तुके प्राप्त करनेका उपाय नहीं है ऐसा विचारकर धैर्य धारण करना योग्य है ॥१०३॥ इस प्रकार लक्ष्मणके वचनसे प्रसन्न रामने कुछ शोक छोड़कर कर्तव्य—करने योग्य कार्यमें मन लगाया ॥१०४॥ उन्होंने जानकीके मरणोत्तर कार्यके विषयमें आदर सहित लोगोंको आदेश दिया तथा भद्रकलश नामक खजानचीको शीघ्र ही बुलाकर यह आदेश दिया कि हे भद्र! सीताने तुझे पहले जिस विधिसे दान देनेका आदेश दिया था उसी विधिसे उसे लक्ष्य कर अब भी दान दिया जाये ॥१०५–१०६॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर शुद्ध हृदयको धारण करनेवाला कोषाध्यक्ष नौ मास तक याचकोंके लिए इच्छित दान देता रहा ॥१०७॥ यद्यपि आठ हजार स्त्रियाँ निरन्तर रामकी सेवा करती थीं तथापि राम पल-भरके लिए भी मनसे सीताको नहीं छोड़ते थे ॥१०८॥ उनका सदा सीता शब्दरूप ही समालाप होता था अर्थात् वे सदा 'सीता-सीता' कहते रहते थे और उसके गुणोंसे आकृष्ट चित्त हो सबको सीतारूप ही देखते थे अर्थात् उन्हें सर्वत्र सीता-सीता ही दिखाई देती थी ॥१०९॥ पृथिवीकी धूलिसे जिसका शरीर व्याप्त है, जो पर्वतकी गुफामें वास कर रही है तथा अश्रुओंकी जो लगातार वर्षा कर रही

मनसा च सशल्येन गाढशोको विबुद्धवान् । अचिन्तयत्ससूत्कारो वाष्पाच्छादितलोचनः ॥१११॥
कष्टं लोकान्तरस्थापि सीता सुन्दरचेष्टिता । न विमुञ्चति मां साध्वी सानुबन्धा हितोद्यता ॥११२॥
स्वैरं स्वैरं ततः सीताशोके विरलतामिते । परिशिष्टवरस्त्रीभिः पद्मो धृतिमुपागमत् ॥११३॥
तौ शीरचक्रदिव्यास्त्रौ परमन्यायसंगतौ । प्रीत्यानन्तरया युक्तौ प्रशस्तगुणसागरौ ॥११४॥
पालयन्तौ महीं सम्यङ्निम्नगापतिमेखलाम् । सौधर्मैशानदेवेन्द्राविव रेजतुरुत्कटम् ॥११५

आर्यागीतिच्छन्दः

तौ तत्र कोशलायां सुरलोकसमानमानवायां राजन् ।
परमान् प्राप्तौ भोगान् [1]सुप्रभपुरुषोत्तमौ यथा पुरुपेन्द्रौ ॥११६॥
[2]स्वकृतसुकर्मोदयतः सकलजनानन्ददानकोविदचरितौ ।
सुखसागरे निमग्नौ रविभा[3]वज्ञातकालमवतस्थाते ॥११७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामशोकाभिधानं नाम नवनवतितमं पर्व ॥९९॥



है ऐसी सीताको वे स्वप्नमें देखते थे ॥११०॥ अत्यधिक शोकको धारण करनेवाले राम जब जागते थे तब सशल्य मनसे आँसुओंसे नेत्रोंको आच्छादित करते हुए सू-सू शब्दके साथ चिन्ता करने लगते थे कि अहो ! बड़े कष्टकी बात है कि सुन्दर चेष्टाको धारण करनेवाली सीता लोकान्तरमें स्थित होनेपर भी मुझे नहीं छोड़ रही है । वह साध्वी पूर्व संस्कारसे सहित होनेके कारण अब भी मेरा हित करनेमें उद्यत है ॥१११-११२॥ तदनन्तर धीरे-धीरे सीताका शोक विरल होनेपर राम अवशिष्ट स्त्रियोंसे धैर्यको प्राप्त हुए ॥११३॥ जो परम न्यायसे सहित थे, अविरल प्रीतिसे युक्त थे, प्रशस्त गुणोंके सागर थे, और समुद्रान्त पृथिवीका अच्छी तरह पालन करते थे ऐसे हल और चक्र नामक दिव्य अस्त्रको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण सौधर्मेन्द्रके समान अत्यधिक सुशोभित होते थे ॥११४-११५॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जहाँ देवोंके समान मनुष्य थे ऐसी उस अयोध्या नगरीमें उत्तम कान्तिको धारण करनेवाले दोनों पुरुषोत्तम, इन्द्रोंके समान परम भोगोंको प्राप्त हुए थे ॥११६॥ अपने द्वारा किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे जिनका चरित समस्त मनुष्योंके लिए आनन्द देनेवाला था, तथा जो सूर्यके समान कान्तिवाले थे ऐसे राम-लक्ष्मण अज्ञात काल तक सुखसागरमें निमग्न रहे ॥११७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रामके शोकका वर्णन करनेवाला निन्यानबेवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥९९॥



१. सुप्रभौ म । २ सुकृत -म । ३ रविभौ + अज्ञातकालम्, इतिच्छेद ।

शतं पर्व

एवं तावदिदं जातमिदमन्यन्नरेश्वर । शृणु वक्ष्यामि तं वृत्तं लवणाङ्कुशगोचरम् ॥१॥
अथ सर्वप्रजापुण्यैर्गृहीताया इवामलैः । अधत्त पाण्डुतामङ्गयष्टिर्जनकजन्मनः[1] ॥२॥
[2]श्यामतासमवष्टब्धचारुचूचुकचूलिकैः । पयोधरघटौ पुत्रपानार्थमिव मुद्रितौ ॥३॥
स्तन्यार्थमानने न्यस्ता दुग्धसिन्धुरिवायता । सुस्निग्धधवला दृष्टिर्माधुर्यमदधात्परम् ॥४॥
सर्वमङ्गलसंघातैर्गात्रयष्टिरधिष्ठिता । अमन्दायतकल्याणगौरवोद्भवनादिव ॥५॥
मन्दं मन्दं प्रयच्छन्त्याः क्रमं निर्मलकुट्टिमे । प्रतिबिम्बाम्बुजेन क्ष्मा पूर्वसेवामिवाकरोत् ॥६॥
सूतिकालकृताकाङ्क्षा कपोलप्रतिबिम्बिता । समलक्ष्यत लक्ष्मीर्वा शय्यापाश्रयपुत्रिका ॥७॥
रात्रौ सौधोपयाताया व्यंशुके स्तनमण्डले । श्वेतच्छत्रमिवाधारि संक्रान्तं शशिमण्डलम् ॥८॥
वासवेश्मनि सुप्ताया अपि प्रचलबाहुकाः । चित्रचामरधारिण्यश्चामराणि व्यधूनयन् ॥९॥
स्वप्ने पयोजिनीपत्रपुटवारिभिरादरात्[2] । अभिषेको महानागैरकारि परिमण्डितैः ॥१०॥
असकृज्जयनिःस्वानं व्रजन्त्या प्रतिबुद्धताम् । सचन्द्रशालिकाशालभञ्जिका अपि चक्रिरे ॥११॥
परिवारजनाह्वानेष्वादिशेति ससंभ्रमाः । अशरीरा विनिश्चेरुर्वाचः परमकोमलाः ॥१२॥

अथानन्तर श्री गौतम स्वामी कहते है कि हे नरेश्वर ! इस प्रकार यह वृत्तान्त तो रहा अब दूसरा लवणांकुशसे सम्बन्ध रखनेवाला वृत्तान्त कहता हूँ सो सुन ॥१॥ तदनन्तर जनकनन्दिनीके कृश शरीरने धवलता धारण की, सो ऐसा जान पड़ता था मानो समस्त प्रजाजनोके निर्मल पुण्यने उसे ग्रहण किया था, इसलिए उसकी धवलतासे ही उसने धवलता धारण की हो ॥२॥ स्तनोके सुन्दर चूचुक सम्बन्धी अग्रभाग श्यामवर्णसे युक्त हो गये, सो ऐसे जान पड़ते थे मानो पुत्रके पीनेके लिए स्तनरूपी घट मुहरबन्द करके ही रख दिये हो ॥३॥ उसकी स्नेहपूर्ण धवल दृष्टि उस प्रकार परम माधुर्यको धारण कर रही थी मानो दूधके लिए उसके मुखपर लम्बी-चौड़ी दूधकी नदी ही लाकर रख दी हो ॥४॥ उसकी शरीरयष्टि सब प्रकारके मंगलोके समूहसे युक्त थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो अपरिमित एवं विशाल कल्याणोका गौरव प्रकट करनेके लिए ही युक्त थी ॥५॥ जब सीता मणिमयी निर्मल फर्शपर धीरे-धीरे पैर रखती थी तब उनका प्रतिबिम्ब नीचे पड़ता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो पृथिवी प्रतिरूपी कमलके द्वारा उसकी पहलेसे ही सेवा कर रही हो ॥६॥ प्रसूति कालमे जिसकी आकांक्षा की जाती है ऐसी जो पुत्तलिका सीताकी शय्याके समीप रखी गयी थी उसका प्रतिबिम्ब सीताके कपोलमे पड़ता था उससे वह पुत्तलिका लक्ष्मीके समान दिखाई देती थी ॥७॥ रात्रिके समय सीता महलकी छतपर चली जाती थी, उस समय उसके वस्त्र रहित स्तनमण्डल पर जो चन्द्रबिम्बका प्रतिबिम्ब पड़ता था वह ऐसा जान पड़ता था मानो गर्भके ऊपर सफेद छत्र ही धारण किया गया हो ॥८॥ जिस समय वह निवास-गृहमे सोती थी उस समय भी चंचल भुजाओसे युक्त एवं नाना प्रकारके चमर धारण करनेवाली स्त्रियाँ उसपर चमर ढोरती रहती थी ॥९॥ स्वप्नमे अलंकारोसे अलंकृत बड़े-बडे हाथी, कमलिनीके पत्रपुटमे रखे हुए जलके द्वारा उसका आदरपूर्वक अभिषेक करते थे ॥१०॥ जब वह जागती थी तब बार-बार जय-जय शब्द होता था, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो महलके ऊर्ध्व भागमे सुशोभित पुत्तलियाँ ही जय-जय शब्द कर रही हो ॥११॥ जब वह परिवारके लोगोको बुलाती थी तब 'आज्ञा देओ' इस प्रकारके सम्भ्रम सहित शरीर रहित परम कोमल

---

१. सीतायाः । २ पुटं वारिभि -म. ।

क्रीडयापि कृतं सेहे नाज्ञाभङ्गं मनस्विनी । सुक्षिप्रेष्वपि कार्येषु भ्रूभ्राम्यत्सविभ्रमम् ॥१३॥
यथेच्छं विद्यमानेऽपि मणिदर्पणसन्निधौ । मुखमुत्खातखड्गाग्रे जातं व्यसनमीक्षितुम् ॥१४॥
समुत्सारितवीणाद्या नारीजनविरोधिनः । श्रोत्रयोरसुखायन्त कार्मुकध्वनयः परम् ॥१५॥
चक्षुः पञ्जरसिंहेषु जगाम परमां रतिम् । ननाम कथमप्यङ्गमुत्तमं स्तम्भितं यथा ॥१६॥
पूर्णेऽथ नवमे मासि चन्द्रे श्रवणसगते । श्रावणस्य दिने देवी पौर्णमास्यां सुमङ्गला ॥१७॥
सर्वलक्षणसंपूर्णा पूर्णचन्द्रनिमानना । सुखं सुखकरात्मानमसूत सुतयुग्मकम् ॥१८॥
नृत्तमय्य इवाभूवंस्तयोरुद्गतयोः प्रजाः । भेरीपटहनिःस्वाना जाताः शङ्खस्वनान्विताः ॥१९॥
उन्मत्तमर्त्यलोकाभश्चारुसपत्समन्वितः । स्वसृप्रीत्या नरेन्द्रेण जनितः परमोत्सवः ॥२०॥
अनङ्गलवणाभिख्यामेकोऽमण्डयदेतयोः । मदनाङ्कुशनामान्यः सद्भूतार्थनियोगतः ॥२१॥
ततः क्रमेण तौ वृद्धिं बालकौ व्रजतस्तदा । जननीहृदयानन्दौ प्रवीरपुरुषाङ्कुरौ ॥२२॥
रक्षार्थं सर्षपकणा विन्यस्ता मस्तके तयोः । समुन्मिषत्प्रतापाग्निस्फुलिङ्गा इव रेजिरे ॥२३॥
वपुर्गोरोचनापङ्कपिञ्जरं परिवारितम् । समभिव्यज्यमानेन सहजेनेव तेजसा ॥२४॥
विकटा हाटकाबद्धवैयाघ्रनखपङ्क्तिका । रेजे दर्पाङ्कुरालीव समुद्भेदमिता हृदि ॥२५॥
आद्यं जल्पितमव्यक्तं सर्वलोकमनोहरम् । बभूव जन्मपुण्याहः[1] सत्यग्रहणसन्निभम्[2] ॥२६॥
मुग्धस्मितानि रम्याणि कुसुमानीव सर्वतः । हृदयानि समाकर्षन् कुलानीव मधुव्रतान्[3] ॥२७॥

वचन अपने-आप उच्चरित होने लगते थे ॥१२॥ वह मनस्विनी क्रीड़ामे भी किये गये आज्ञा भगको नही सहन करती थी तथा अत्यधिक शीघ्रताके साथ किये हुए कार्योमे भी विभ्रमपूर्वक भौहे घुमाती थी ॥१३॥ यद्यपि समीपमे इच्छानुकूल मणियोके दर्पण विद्यमान रहते थे तथापि उसे उभारी हुई तलवारके अग्रभागमे मुख देखनेका व्यसन पड़ गया था ॥१४॥ वीणा आदिको दूर कर स्त्रीजनोको नही रुचनेवाली धनुषकी टंकारका शब्द ही उसके कानोमे सुख उत्पन्न करता था ॥१५॥ उसके नेत्र पिजड़ोमे वन्द सिंहोके ऊपर परम प्रीतिको प्राप्त होते थे और मस्तक तो वड़ी कठिनाईसे नम्रीभूत होता मानो खड़ा ही हो गया हो ॥१६॥

तदनन्तर नवम महीना पूर्ण होनेपर जब चन्द्रमा श्रवण नक्षत्रपर था, तब श्रावण मासकी पूर्णिमाके दिन, उत्तम मंगलाचारसे युक्त समस्त लक्षणोसे परिपूर्ण एव पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली सीताने सुखपूर्वक सुखदायक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥१७–१८॥ उन दोनोके उत्पन्न होनेपर प्रजा नृत्यमयीके समान हो गयी और शखोके शब्दोके साथ भेरियो एवं नगाडोके शब्द होने लगे ॥१९॥ वहनकी प्रीतिसे राजाने ऐसा महान् उत्सव किया जो उन्मत्त मनुष्य लोकके समान था और सुन्दर सम्पत्तिसे सहित था ॥२०॥ उनमे-से एकने अनंगलवण नामको अलंकृत किया और दूसरेने सार्थक भावसे मदनाकुश नामको सुशोभित किया ॥२१॥

तदनन्तर माताके हृदयको आनन्द देनेवाले, प्रवीर पुरुषके अंकुरस्वरूप वे दोनो बालक क्रम-क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होने लगे ॥२२॥ रक्षाके लिए उनके मस्तकपर जो सरसोके दाने डाले गये थे वे देदीप्यमान प्रतापरूपी अग्निके तिलगोके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२३॥ गोरोचनाकी पंकसे पीला-पीला दिखनेवाला उनका शरीर ऐसा जान पड़ता था मानो अच्छी तरहसे प्रकट होनेवाले स्वाभाविक तेजसे ही घिरा हो ॥२४॥ सुवर्णमालामे खचित व्याघ्र सम्बन्धी नखोकी वड़ी-वड़ी पक्ति उनके हृदयपर ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो दर्पके अंकुरोका समूह ही हो ॥२५॥ सव लोगोके मनको हरण करनेवाला जो उनका अव्यक्त प्रथम शब्द था वह उनके जन्म दिनकी पवित्रताके सत्यंकारके समान जान पड़ता था अर्थात् उनका जन्म दिन पवित्र दिन है, यह सूचित कर रहा था ॥२६॥ जिस प्रकार पुष्प भ्रमरोके समूहको आकर्षित करते है,

१ पुण्याह -म । २. सत्यग्रहणं सत्यंकार श्री. टी । ३ मधुभृताम् म.।

जननीक्षीरसेकोत्थविलासहसितैरिव । जातं दशनकैर्वक्त्रपद्मकं लब्धमण्डनम् ॥२८॥
धात्रीकराङ्गुलीलग्नौ पञ्चषाणि पदानि तौ । एवंभूतौ प्रयच्छन्तौ मनः कस्य न जह्रतुः ॥२९॥
पुत्रकौ तादृशौ[1] वीक्ष्य चारुक्रीडनकारिणौ । शोकहेतुं विसस्मार समस्तं जनकात्मजा ॥३०॥
वर्द्धमानौ च तौ कान्तौ निसर्गोदात्तविभ्रमौ । देहावस्थां परिप्राप्तौ विद्यासंग्रहणोचिताम् ॥३१॥
ततस्तत्पुण्ययोगेन सिद्धार्थो नाम विश्रुतः । शुद्धात्मा क्षुल्लकः प्राप वज्रजङ्घस्य मन्दिरम् ॥३२॥
संध्यात्रयमवन्ध्यं यो महाविद्यापराक्रमः । मन्दरोरसि वन्दित्वा जिनानेति पदं क्षणात् ॥३३॥
प्रशान्तवदनो धीरो लुञ्चरञ्जितमस्तकः । साधुभावनचेतस्को वस्त्रमात्रपरिग्रहः ॥३४॥
उत्तमाणुव्रतो नानागुणशोभनभूषितः । जिनशासनतत्त्वज्ञः कलाजलधिपारगः ॥३५॥
अंशुकेनोपवीतेन सितेन प्रचलात्मना । मृणालकाण्डजालेन नागेन्द्र इव मन्थरः ॥३६॥
करञ्जालिकां कक्षे कृत्वा प्रियसखीमिव । मनोज्ञममृतास्वादं धर्मवृद्धिरिति ब्रुवन् ॥३७॥
गृहे गृहे शनैर्भिक्षां पर्यटन् विधिसंगतः । गृहोत्तमं समासीदद्यत्र तिष्ठति जानकी ॥३८॥
जिनशासनदेवीव सा मनोहरभावना । दृष्ट्वा क्षुल्लकमुत्तीर्य संभ्रान्ता नवमालिकाम्[2] ॥३९॥
उपगत्य समाधाय करवारिरुहद्वयम् । इच्छाकारादिना सम्यक् संपूज्य विधिकोविदा ॥४०॥
विशिष्टेनान्नपानेन समतर्पयदादरात् । जिनेन्द्रशासनासक्तान् सा हि पश्यति बान्धवान् ॥४१॥
निर्वर्तितान्यकर्त्तव्यः सविश्रब्धः सुखं स्थितः । पृष्टो जगाद सीतायै स्ववार्तां भ्रमणादिकम् ॥४२॥

उसी प्रकार उनकी भोली-भाली मनोहर मुसकानें सब ओरसे हृदयोंको आकर्षित करती थी ॥२७॥ माताके क्षीरके सिंचनसे उत्पन्न विलास हास्यके समान जो छोटे-छोटे दाँत थे उनसे उनका मुख-रूपी कमल अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥२८॥ धायके हाथकी अँगुली पकड़कर पाँच-छह डग देनेवाले उन दोनो बालकोने किसका मन हरण नही किया था ॥२९॥ इस प्रकार सुन्दर क्रीड़ा करनेवाले उन पुत्रोको देखकर माता सीता शोकके समस्त कारण भूल गयी ॥३०॥ इस तरह क्रम-क्रमसे बढ़ते तथा स्वभावसे उदार विभ्रमको धारण करते हुए वे दोनो सुन्दर बालक विद्या ग्रहण-के योग्य शरीरकी अवस्थाको प्राप्त हुए ॥३१॥

तदनन्तर उनके पुण्य योगसे सिद्धार्थ नामक एक प्रसिद्ध शुद्ध हृदय क्षुल्लक, राजा वज्रजंघके घर आया ॥३२॥ वह क्षुल्लक महाविद्याओंके द्वारा इतना पराक्रमी था कि तीनो सन्ध्याओमे प्रतिदिन मेरुपर्वतपर विद्यमान जिन-प्रतिमाओकी वन्दना कर क्षण-भरमे अपने स्थानपर आ जाता था ॥३३॥ वह प्रशान्त मुख था, धीर-वीर था, केशलुंच करनेसे उसका मस्तक सुशोभित था, उसका चित्त शुद्ध भावनाओसे युक्त था, वह वस्त्र मात्र परिग्रहका धारक था, उत्तम अणुव्रती था, नाना गुणरूपी अलंकारोसे अलंकृत था, जिनशासनके रहस्यको जाननेवाला था, कलारूपी समुद्रका पारगामी था, धारण किये हुए सफेद चंचल वस्त्रसे ऐसा जान पड़ता था, मानो मृणालोके समूहसे वेष्टित मन्द-मन्द चलनेवाला गजराज ही हो, जो पीछीको प्रिय सखीके समान बगलमें धारण कर अमृतके स्वादके समान मनोहर 'धर्मवृद्धि' शब्दका उच्चारण कर रहा था, और घर-घरमें भिक्षा लेता हुआ धीरे-धीरे चल रहा था, इस तरह भ्रमण करता हुआ संयोगवश उस उत्तम घरमे पहुँचा, जहाँ सीता बैठी थी ॥३४–३८॥ जिन-शासनदेवीके समान मनोहर भावनाको धारण करनेवाली सीताने ज्योंही क्षुल्लकको देखा, त्योंही वह सम्भ्रमके साथ नौखण्डा महलसे उतरकर नीचे आ गयी ॥३९॥ तथा पास जाकर और दोनो हाथ जोड़कर उसने इच्छाकार आदिके द्वारा उसकी अच्छी तरह पूजा की। तदनन्तर विधिके जाननेमे निपुण सीताने उसे आदरपूर्वक विशिष्ट अन्न-पान देकर सन्तुष्ट किया, सो ठीक ही है क्योकि वह जिन-शासनमे आसक्त पुरुषोको अपना बन्धु समझती है ॥४०–४१॥ भोजनके बाद अन्य कार्य

१. तादृशं -म. । २. नवमालिका म ।

महोपचारविनयप्रयोगहृतमानसः। क्षुल्लकः परितुष्टात्मा ददर्श लवणाङ्कुशौ ॥४३॥
महानिमित्तमष्टाङ्गं ज्ञाता[1] सुश्राविकामसौ। संभाषयितुमप्राक्षीद् वार्तां पुत्रकसंगताम् ॥४४॥
तयावेदितवृत्तान्तो वाष्पदुर्दिननेत्रया। क्षणं शोकसमाक्रान्तः क्षुल्लको दुःखितोऽभवत् ॥४५॥
उवाच च न देवि त्वं विधातुं शोकमर्हसि। यस्या देवकुमाराभौ प्रशस्तौ बालकाविमौ ॥४६॥
अथ तेन घनप्रेमप्र[2]वणीकृतचेतसा। अचिराच्छस्त्रशास्त्राणि ग्राहितौ लवणाङ्कुशौ ॥४७॥
ज्ञानविज्ञानसंपन्नौ कलागुणविशारदौ। दिव्यास्त्रक्षेपसंहारविषयातिविचक्षणौ ॥४८॥
बिभ्रतुस्तौ परां लक्ष्मीं महापुण्यानुभावतः। ध्वस्तावरणसंबन्धौ निधानकलशाविव ॥४९॥
न हि कश्चिद्गुरोः खेदः शिष्ये शक्तिसमन्विते। सुखेनैव प्रदर्श्यन्ते भावाः सूर्येण नेत्रिणे ॥५०॥
भजतां संस्तवं पूर्वं गुणानामागमं सुखम्। खेदोऽवतरतां कोऽसौ हंसानां मानसं ह्रदम् ॥५१॥
उपदेशं ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम्। अनर्थकः समुद्योतो रवेः कौशिकगोचरः ॥५२॥
स्फुरद्यशःप्रतापाभ्यामाक्रान्तभुवनावथ। अभिरामदुरालोकौ शीततिग्मकराविव ॥५३॥
व्यक्ततेजोबलावग्निमारुताविव संगतौ। शिलादृढवपुःस्कन्धौ हिमविन्ध्याचलाविव ॥५४॥
महावृषौ यथा कान्तयुगसंयोजनोचितौ। धर्माश्रमाविवात्यन्तरमणीयौ सुखावहौ ॥५५॥

छोड़ वह क्षुल्लक निश्चिन्त हो सुखसे बैठ गया। तदनन्तर पूछनेपर उसने सीताके लिए अपने भ्रमण आदिकी वार्ता सुनायी ॥४२॥ अत्यधिक उपचार और विनयके प्रयोगसे जिसका मन हरा गया था, ऐसे क्षुल्लकने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर लवणांकुशको देखा ॥४३॥ अष्टांग महानिमित्तके ज्ञाता उस क्षुल्लकने वार्तालाप बढानेके लिए श्राविकाके व्रत धारण करनेवाली सीतासे उसके पुत्रोसे सम्बन्ध रखनेवाली वार्ता पूछी ॥४४॥ तब नेत्रोसे अश्रुकी वर्षा करती हुई सीताने क्षुल्लक-के लिए सब समाचार सुनाया, जिसे सुनकर क्षुल्लक भी शोकाक्रान्त हो दुखी हो गया ॥४५॥ उसने कहा भी कि हे देवि! जिसके देवकुमारोके समान ये दो बालक विद्यमान है ऐसी तुम्हे शोक नही करना चाहिए ॥४६॥ अथानन्तर अत्यधिक प्रेमसे जिसका हृदय वशीभूत था ऐसे उस क्षुल्लकने थोडे ही समयमे लवणांकुशको शस्त्र और शास्त्र विद्या ग्रहण करा दी ॥४७॥ वे पुत्र थोडे ही समयमे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न, कलाओ और गुणोमे विशारद तथा दिव्य शस्त्रोके आह्वान एव छोड़नेके विषयमे अत्यन्त निपुण हो गये ॥४८॥ महापुण्यके प्रभावसे वे दोनो, जिनके आवरणका सम्बन्ध नष्ट हो गया था, ऐसे खजानेके कळशोके समान परम लक्ष्मीको धारण कर रहे थे ॥४९॥ यदि शिष्य शक्तिसे सहित है, तो उससे गुरुको कुछ भी खेद नही होता, क्योकि सूर्यके द्वारा नेत्रवान् पुरुषके लिए समस्त पदार्थ सुखसे दिखा दिये जाते है ॥५०॥ पूर्व परिचयको धारण करनेवाले मनुष्योको गुणोकी प्राप्ति सुखसे हो जाती है सो ठीक ही है क्योकि मानस-सरोवरमे उतरनेवाले हंसोको क्या खेद होता है? अर्थात् कुछ भी नही ॥५१॥ पात्रके लिए उपदेश देनेवाला गुरु कृतकृत्यताको प्राप्त होता है। क्योकि जिस प्रकार उल्लूके लिए किया हुआ सूर्यका प्रकाश व्यर्थ होता है, उसी प्रकार अपात्रके लिए दिया हुआ गुरुका उपदेश व्यर्थ होता है ॥५२॥

अथानन्तर बढते हुए यश और प्रतापसे जिन्होने लोकको व्याप्त कर रखा था ऐसे वे दोनो पुत्र चन्द्र और सूर्यके समान सुन्दर तथा दुरालोक हो गये अर्थात् वे चन्द्रमाके समान सुन्दर थे और सूर्यके समान उनकी ओर देखना भी कठिन था ॥५३॥ प्रकट तेज और बळके धारण करने-वाले वे दोनों पुत्र परस्पर मिले हुए अग्नि और पवनके समान जान पडते थे अथवा जिनके शरीरके कन्धे शिलाके समान दृढ थे ऐसे वे दोनो भाई हिमाचल और विन्ध्याचलके समान दिखाई देते थे ॥५४॥ अथवा वे कान्त युग संयोजन अर्थात् सुन्दर जुवा धारण करनेके योग्य

---

१. ज्ञात्वा म.। २. प्रवीण म.।

पूर्वापरककुब्भागाविव लोकालिलक्षितौ[1] । उदयास्तमयाधाने सर्वतेजस्विनां क्षमौ ॥५६॥
अभ्यर्णार्णवसरोधसंकटे कुकुटीरके । तेजसः परिनिन्दन्तौ छायामपि पराङ्मुखीम् ॥५७॥
अपि पादनखस्थेन प्रतिबिम्बेन लज्जितौ । केशानामपि भङ्गेन प्राप्नुवन्तावशं परम् ॥५८॥
चूडामणिगतेनापि छत्रेणानेन सत्रपौ । अपि दर्पणदृष्टेन प्रतिपुंसोपतापिनौ ॥५९॥
अम्भोधरधृतेनापि धनुषा कृतकोपनौ । अनानमद्भिरालेख्यपार्थिवैरपि खेदितौ ॥६०॥
स्वल्पमण्डलसंतोषसंगतस्य रवेरपि । अनादरेण पश्यन्तौ तेजस प्रतिघातकम् ॥६१॥
भिन्दन्तौ बलिनं वायुमप्यवीक्षितविग्रहम् । हिमवत्यपि सामर्षौ चमरीवालवीजिते ॥६२॥
शङ्खैः सलिलनाथानामपि खेदितमानसौ । प्रचेतसमपीशानमसृष्यन्तावुदन्वताम् ॥६३॥
सच्छत्रानपि निश्छायान् कुर्वाणौ धरणीक्षितः[2] । मुखेन मधु मुञ्चन्तौ प्रसन्नौ सत्पुंसेवितौ ॥६४॥
दुष्टभूपालवंशानामप्यनासन्नवर्त्तिनाम् । कुर्वाणावूष्मणा ग्लानिं संप्राप्तसहजन्मना ॥६५॥
शस्त्रसंस्तवनश्याममुद्वहन्तौ करोदरम् । शेषराजप्रतापाग्निपरिनिर्वापणादिव ॥६६॥
धीरैः कार्मुकनिःस्वानैर्योग्याकाले[3] समुद्गतैः । आलपन्ताविवासन्नाभोगाः सकलदिग्वधूः ॥६७॥
ईदृशो लवणस्तादृगीदृशस्तादृशोऽङ्कुशः । इत्यलं विकसच्छब्दप्रादुर्भावौ शुभोदयौ ॥६८॥

(पक्षमे युगकी उत्तम व्यवस्था करनेमे निपुण) महावृषभोंके समान थे अथवा धर्माश्रमोके समान रमणीय और सुखको धारण करनेवाले थे ॥५५॥ अथवा वे समस्त तेजस्वी मनुष्योंके उदय तथा अस्त करनेमे समर्थ थे, इसलिए लोग उन्हे पूर्व और पश्चिम दिशाओंके समान देखते थे ॥५६॥ यह विशाल पृथिवी, निकटवर्ती समुद्रसे घिरी होनेके कारण उन्हे छोटी-सी कुटियाके समान जान पड़ती थी और इस पृथिवीरूपी कुटियामे यदि उनकी छाया भी तेजसे विमुख जाती थी तो उसकी भी वे निन्दा करते थे ॥५७॥ पैरके नखोमे पड़नेवाले प्रतिविम्वसे ही वे लज्जित हो उठते थे और वालोके भंगसे भी अत्यधिक दुःख प्राप्त करते थे ॥५८॥ चूडामणिमे प्रतिविम्वित छत्रसे भी वे लज्जित हो जाते थे और दर्पणमे दिखनेवाले पुरुषके प्रतिविम्वसे भी खीझ उठते थे ॥५९॥ मेघके द्वारा धारण किये हुए धनुपसे भी उन्हे क्रोध उत्पन्न हो जाता था और नमस्कार नही करनेवाले चित्रलिखित राजाओसे भी वे खेदखिन्न हो उठते थे ॥६०॥ अपने विशाल तेज की वात दूर रहे—अत्यन्त अल्प मण्डलमे सन्तोपको प्राप्त हुए सूर्यके भी तेजमे यदि कोई रुकावट डालता था तो वे उसे अनादरकी दृष्टिसे देखते थे ॥६१॥ जिसका शरीर दिखाई नही देता था ऐसी वलिष्ठ वायुको भी वे खण्डित कर देते थे तथा चमरी गायके वालोसे वीजित हिमालयके ऊपर भी उनका क्रोध भड़क उठता था ॥६२॥ समुद्रोंमे भी जो शंख पड़ रहे थे उन्हींसे उनके चित्त खिन्न हो जाते थे तथा समुद्रोके अधिपति वरुणको भी वे सहन नही करते थे ॥६३॥ छत्रोसे सहित राजाओको भी वे निश्छाय अर्थात् छायासे रहित (पक्षमे कान्तिसे रहित) कर देते थे और सत्पुरुपोके द्वारा सेवित होनेपर प्रसन्न हो मुखसे मधु छोड़ते थे अर्थात् उनसे मधुर वचन वोलते थे ॥६४॥ वे साथ-साथ उत्पन्न हुए प्रतापसे दूरवर्ती दुष्ट राजाओके वंशको भी ग्लानि उत्पन्न कर रहे थे अर्थात् दूरवर्त्ती दुष्ट राजाओको भी अपने प्रतापसे हानि पहुँचाते थे फिर निकटवर्ती दुष्ट राजाओंका तो कहना ही क्या है? ॥६५॥ निरन्तर शस्त्र धारण करनेसे उनके हस्ततल काले पड़ गये थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो शेष अन्य राजाओके प्रतापरूप अग्निको वुझानेसे ही काले पड़ गये थे ॥६६॥ अभ्यासके समय उत्पन्न धनुपके गम्भीर शब्दोसे ऐसा जान पड़ता था मानो निकटवर्ती समस्त दिशारूपी स्त्रियोसे वार्तालाप ही कर रहे हो ॥६७॥ 'जैसा लवण है वैसा ही अंकुश है' इस प्रकार उन दोनोंके विषयमे

---

१. लाक्षितौ म । २. नृपान् । ३ अभ्यासकाले 'योग्या गुणनिकाभ्यासः' इति कोप. । योग्यकाले म. ।

नवयौवनसंपन्नौ महासुन्दरचेष्टितौ । प्रकाशतां परिप्राप्तौ धरण्यां लवणाङ्कुशौ ॥६९॥
अभिनन्द्यौ समस्तस्य लोकस्योत्सुकताकरौ । पुण्येन घटितात्मानौ सुखकारणदर्शनौ ॥७०॥
युवत्यास्य[1] कुमुद्वत्याः शरत्पूर्णेन्दुतां गतौ । वैदेहीहृदयानन्दमयजङ्गममन्दरौ ॥७१॥
कुमारादित्यसंकाशौ पुण्डरीकनिभेक्षणौ । द्वीपदेवकुमाराभौ श्रीवत्साङ्कितवक्षसौ ॥७२॥
अनन्तविक्रमाधारौ भवाम्भोधितटस्थितौ[2] । परस्परमहाप्रेमबन्धनप्रवणीकृतौ ॥७३॥
मनोहरणसंसक्तौ धर्ममार्गस्थितावपि । वक्रतापरिनिर्मुक्तौ कोटिस्थितगुणावपि ॥७४॥
विजित्य तेजसा भानुं स्थितौ कान्त्या निशाकरम् । ओजसा त्रिदशाधीशं गाम्भीर्येण महोदधिम् ॥७५॥
मेरुं स्थिरत्वयोगेन क्षमाधर्मेण मेदिनीम् । शौर्येण मेघनिःस्वानं गत्या मारुतनन्दनम् ॥७६॥
गृह्णीयातामिषुं मुक्तमपि वेगाददूरतः । मकरग्राहनक्राद्यैः कृतक्रीडौ महाजले ॥७७॥
श्रमसौख्यमसंप्राप्तौ मत्तैरपि महाद्विपैः । भयादिव तनुच्छायात्[3] स्खलितार्ककरोत्करौ ॥७८॥
धर्मतः संमितौ साधोरर्ककीर्तेश्च[4] सत्त्वतः । सम्यग्दर्शनतोऽद्रेस्य दानाच्छ्रीविजयस्य च ॥७९॥
अयोध्यावभिमानेन साहसान्मधुकैटभौ । महाहवसमुद्योगादिन्द्रजिन्मेघवाहनौ ॥८०॥
गुरुशुश्रूषणोद्युक्तौ जिनेश्वरकथारतौ । शत्रूणां जनितत्रासौ नाममात्रश्रुतेरपि ॥८१॥

लोगोंके मुखसे शब्द प्रकट होते थे तथा दोनो ही शुभ अभ्युदयसे सहित थे ॥६८॥ जो नवयौवनसे सम्पन्न थे और महासुन्दर चेष्टाओके धारक थे, ऐसे लवण और अंकुश पृथिवीमे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥६९॥ वे दोनो समस्त लोगोके द्वारा अभिनन्दन करनेके योग्य थे और सभी लोगोकी उत्सुकताको बढानेवाले थे । पुण्यसे उनके स्वरूपकी रचना हुई थी तथा उनका दर्शन सबके लिए सुखका कारण था ॥७०॥ युवती स्त्रियोके मुखरूपी कुमुदिनीके विकासके लिए वे दोनो शरद् ऋतु-के पूर्ण चन्द्रमा थे और सीताके हृदय सम्बन्धी आनन्दके लिए मानो चलते-फिरते सुमेरु ही हो ॥७१॥ वे दोनों अन्य कुमारोमे सूर्यके समान थे, सफेद कमलोके समान उनके नेत्र थे । वे द्वीप-कुमार नामक देवोके समान थे तथा उनके वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्नसे अलंकृत थे ॥७२॥ अनन्त पराक्रमके आधार थे, संसार-समुद्रके तटपर स्थित थे, परस्पर महाप्रेमरूपी बन्धनसे बँधे थे ॥७३॥ वे धर्मके मार्गमे स्थित होकर भी मनके हरण करनेमे लीन थे—मनोहारी थे और कोटिस्थित गुणो अर्थात् धनुषके दोनो छोरोपर डोरीके स्थित होनेपर भी वक्रता अर्थात् कुटिलतासे रहित थे (परिहार पक्षमे उनके गुण करोड़ोकी सख्यामें स्थित थे तथा वे मायाचाररूपी कुटिलतासे रहित थे) ॥७४॥ वे तेजसे सूर्यको, कान्तिसे चन्द्रमाको, ओजसे इन्द्रको, गाम्भीर्यसे समुद्रको, स्थिरताके योगसे सुमेरुको, क्षमाधर्मसे पृथिवीको, शूर-वीरतासे जयकुमारको और गतिसे हनुमान्को, जीत-कर स्थित थे ॥७५–७६॥ वे छोडे हुए बाणको भी अपने वेगसे पास हीमे पकड सकते थे तथा विशाल जलमे मगरमच्छ तथा नाके आदि जल-जन्तुओके साथ क्रीड़ा करते थे ॥७७॥ मदमाते महागजोके साथ युद्ध कर भी वे श्रमसम्बन्धी सुखको प्राप्त नही होते थे तथा उनके शरीरकी प्रभा-से भयभीत होकर ही मानो सूर्यकी किरणोंका समूह स्खलित हो गया था ॥७८॥ वे धर्मकी अपेक्षा साधुके समान, सत्त्व अर्थात् धैर्यकी अपेक्षा अर्ककीर्तिके समान, सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा पर्वतके समान और दानकी अपेक्षा श्री विजय बलभद्रके समान थे ॥७९॥ अभिमानसे अयोध्या थे अर्थात् उनके साथ कोई युद्ध नही कर सकता था, साहससे मधुकैटभ थे और महायुद्ध सम्बन्धी उद्योगसे इन्द्रजित् तथा मेघवाहन थे ॥८०॥ वे गुरुओकी सेवा करनेमे तत्पर रहते थे, जिनेन्द्रदेवकी कथा अर्थात् गुणगान करनेमे लीन रहते थे तथा नामके सुनने मात्रसे शत्रुओको भय उत्पन्न

---

१ युवत्यास्या म । २ तटस्थितौ म. । ३ तनुच्छाया स्खलिता -ज. । ४ अर्ककीर्तिश्च म. ।

शार्दूलविक्रीडितम्

एवं तौ गुणरत्नपर्वतवरौ विज्ञानपातालिनौ
लक्ष्मीश्रीद्युतिकीर्तिकान्तिनिलयौ चित्तद्विपेन्द्राङ्कुशौ ।
सौराज्यालयभारधारणदृढस्तम्भौ महीभास्करौ
संवृत्तौ लवणाङ्कुशौ नरवरौ चित्रैककर्माकरौ ॥८२॥

आर्यागीतिवृत्तम्

धीरौ प्रपौण्डनगरे रेमाते तौ यथेप्सितं नरनागौ ।
लज्जितरवितेजस्कौ हलधरनारायणौ यथायोग्यम् ॥८३॥

इत्यार्षे श्री रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लवणाङ्कुशोद्भवाभिधानं नाम शतसंख्यं पर्व ॥१००॥



करनेवाले थे ॥८१॥ इस प्रकार वे दोनों भाई लवण और अंकुश गुणरूपी रत्नोके उत्तम पर्वत थे, विज्ञानके सागर थे, लक्ष्मी-श्री-द्युति-कीर्ति और कान्तिके घर थे, मनरूपी गजराजके लिए अंकुश थे, सौराज्यरूपी घरका भार धारण करनेके लिए मजबूत खम्भे थे, पृथिवीके सूर्य थे, मनुष्योमे श्रेष्ठ थे, आश्चर्यपूर्ण कार्योकी खान थे ॥८२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह मनुष्योंसे श्रेष्ठ तथा सूर्यके तेजको लज्जित करनेवाले वे दोनो कुमार प्रपौण्ड नगरमे बलभद्र और नारायणके समान इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥८३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लवणांकुशकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला सौवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१००॥



एकाधिकशतं पर्व

ततो दारक्रियायोग्यौ दृष्ट्वा तावतिसुन्दरौ । वज्रजङ्घो मतिं चक्रे कन्यान्वेषणतत्पराम् ॥१॥
लक्ष्मीदेव्याः समुत्पन्नां शशिचूलाभिधानिकाम् । द्वात्रिंशत्कन्यकायुक्तामाद्यस्याकल्पयत्सुताम् ॥२॥
विवाहमङ्गलं द्रष्टुमुभयोर्युगपन्नृपः । अभिलष्यन् द्वितीयस्य कन्यां योग्यां समन्ततः ॥३॥
अपश्यन्मनसा खेदं परिप्राप्त इवोत्तमाम् । सस्मार सहसा सद्यः कृतार्थत्वमिवाव्रजन् ॥४॥
पृथिवीनगरेशस्य राज्ञोऽस्ति प्रवराङ्गजा । शुद्धा कनकमालाख्यामृतवत्यङ्गसंभवा ॥५॥
रजनीपतिलेखेव सर्वलोकमलिम्लुचा । श्रियं जयति या पद्मावती पद्मविवर्जिता ॥६॥
या साम्यं शशिचूलायाः समाश्रितवती शुभा । इति संचिन्त्य तद्धेतोर्दूतं प्रेषितवान्नृपः ॥७॥
पृथिवीपुरमासाद्य स क्रमेण विचक्षणः । जगाद कृतसंमानो राजानं पृथुसंज्ञकम्[1] ॥८॥
तावदेवेक्षितो दृष्ट्या दूतो राज्ञा विशुद्धया । कन्यायाचनसंबन्धं यावद् गृह्णाति नो वचः ॥९॥
उवाच च न ते[2] दूत काचिदस्त्यत्र दूषिता । यतो भवान् पराधीनः परवाक्यानुवादकृत् ॥१०॥
निरूष्माणश्चलात्मानो बहुभङ्गसमाकुलाः । जलौघा इव नीयन्ते यथेष्टं हि भवद्विधाः ॥११॥
कर्तुं तथापि ते युक्तो निग्रहः पापभाषिणः । परेण प्रेरितं किन्नु[3] यन्त्रं हन्तृ विहन्यते ॥१२॥
किंचित्कर्तुमशक्तस्य रजःपातसमात्मनः । अपाकरणमात्रेण मया ते दूत सत्कृतम् ॥१३॥

अथानन्तर उन सुन्दर कुमारोको विवाहके योग्य देख, राजा वज्रजंघने कन्याओके खोजनेमे तत्पर बुद्धि की ॥१॥ सो प्रथम ही अपनी लक्ष्मी रानीसे उत्पन्न शशिचूला नामकी पुत्रीको अन्य बत्तीस कन्याओके साथ लवणको देना निश्चित किया ॥२॥ राजा वज्रजघ दोनो भाइयोका विवाह मंगल एक साथ देखना चाहता था। इसलिए वह द्वितीय पुत्रके योग्य कन्याओकी सब ओर खोज करता रहा ॥३॥ उत्तम कन्याको न देख एक दिन वह मनमें खेदको प्राप्त हुएके समान बैठा था कि अकस्मात् उसे शीघ्र ही स्मरण आया और उससे वह मानो कृतकृत्यताको ही प्राप्त हो गया ॥४॥ उसने स्मरण किया कि 'पृथिवीनगरके राजाकी अमृतवती रानीके गर्भसे उत्पन्न कनकमाला नामकी एक शुद्ध तथा श्रेष्ठ पुत्री है ॥५॥ वह चन्द्रमाकी रेखाके समान सब लोगोको हरण करनेवाली है, लक्ष्मीको जीतती है और कमलसे पृथक् रहनेवाली मानो लक्ष्मी है ? ॥६॥ वह शशिचूलाकी समानताको प्राप्त है तथा शुभ है'। इस प्रकार विचार कर उसके निमित्तसे राजा वज्रजंघने दूत भेजा ॥७॥ बुद्धिमान् दूतने क्रम-क्रमसे पृथिवीपुर पहुँचकर तथा सन्मान कर वहांके राजा पृथुसे वार्तालाप किया ॥८॥ उसी समय राजा पृथुने विशुद्ध दृष्टिसे दूतकी ओर देखा और दूत जबतक कन्याकी याचनासे सम्बन्ध रखनेवाला वचन ग्रहण नही कर पाता है कि उसके पहले ही राजा पृथु बोल उठे कि रे दूत! इसमे तेरा कुछ भी दोष नही है क्योकि तू पराधीन है और परके वचनोका अनुवाद करनेवाला है ॥९-१०॥ जो स्वयं ऊष्मा—आत्मगौरव (पक्षमें गरमी) से रहित है, जिनकी आत्मा चंचल है तथा जो बहुभगो—अनेक अपमानो (पक्षमे अनेक तरंगोसे) व्याप्त है इस तरह जलके प्रवाहके समान जो आप-जैसे लोग है, वे इच्छानुसार चाहे जहाँ ले जाये जाते है ॥११॥ यद्यपि यह सब है तथापि तूने पापपूर्ण वचनोका उच्चारण किया है, अत तेरा निग्रह करना योग्य है क्योकि दूसरेके द्वारा चलाया हुआ विघातक यन्त्र क्या नष्ट नही किया जाता? ॥१२॥ हे दूत! मै जानता हूँ कि तू धूलिपातके समान है, और कुछ भी करनेमे समर्थ नही है इसलिए यहांसे हटा देना मात्र ही तेरा सत्कार (?) अर्थात्

---

१ पृथुसंज्ञगम् म. । २. वचन दूत म. । ३ केन म ।

कुलं शीलं धनं रूपं समानत्वं बलं वयः । देशो विद्यागमश्चेति यद्यप्युक्ता वरे गुणाः ॥१४॥
तथापि तेषु सर्वेषु सन्तोऽभिजनमेककम् । वरिष्ठमनुरुध्यन्ते शेषेषु तु मनःसमम् ॥१५॥
स च न ज्ञायते यस्य वरस्य प्रथमो गुणः । कथं प्रदीयते तस्मै कन्या मान्या समन्ततः ॥१६॥
निस्त्रपं भाषमाणाय तस्मै सुप्रतिकूलनम् । दातुं युक्तं [1]कुमारीं न [2]कुमारीं तु ददाम्यहम् ॥१७॥
इत्येकान्तपरिध्वस्तवचनो निरुपायकः । दूतः श्रीवज्रजङ्घाय गत्वावस्थां न्यवेदयत् ॥१८॥
ततो गत्वार्धमध्वानं स्वयमेव प्रपन्नवान् । अयाचत महादूतवदनेन पृथुं पुनः ॥१९॥
अलब्ध्वासौ ततः कन्यां तथापि जनितादरः । पृथोर्ध्वंसयितुं देशं क्रोधनुन्नः समुद्यतः ॥२०॥
पृथुदेशावधेः पाता नाम्ना व्याघ्ररथो नृपः । वज्रजङ्घेन संग्रामे जित्वा बन्धनमाहृतः ॥२१॥
ज्ञात्वा व्याघ्ररथं बद्धं सामन्तं सुमहाबलम् । देशं विनाशयन्तं च वज्रजङ्घं समुद्यतम् ॥२२॥
पृथुः सहायताहेतोः पोदनाधिपतिं नृपम् । मित्रमाह्वाययामास यावत्परमसैनिकम् ॥२३॥
तावत्कुलिशजङ्घेन पौण्डरीकपुरं द्रुतम् । समाह्वाययितुं पुत्रान् प्रहितो लेखवान्नरः ॥२४॥
पितुराज्ञां समाकर्ण्य राजपुत्रास्त्वरान्विताः । भेरीशङ्खादिनिःस्वानं संनाहार्थमदापयन् ॥२५॥
ततः कोलाहलस्तुङ्गो महान् सक्षोभकारणः । पौण्डरीकपुरे जातो घूर्णमानार्णवोपमः ॥२६॥
तावदश्रुतपूर्वं तं श्रुत्वा संनाहनिःस्वनम् । किमेतदिति पार्श्वस्थानप्राष्टां लवणाङ्कुशौ ॥२७॥
स्वनिमित्तं ततः श्रुत्वा वृत्तान्तं तत्समन्ततः । वैदेहीनन्दनौ गन्तुमुद्यतौ समरार्थिनौ ॥२८॥

निग्रह है ॥१३॥ यद्यपि कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्यागम ये नौ वरके गुण कहे गये हैं तथापि उत्तम पुरुष उन सबमे एक कुलको ही श्रेष्ठ गुण मानते हैं—इसका होना आवश्यक समझते है, शेष गुणोमे इच्छानुसार प्रवृत्ति है अर्थात् हो तो ठीक न हों तो ठीक ॥१४–१५॥ परन्तु वही कुल नामका प्रथम गुण जिस वरमे न हो उसे सब ओरसे माननीय कन्या कैसे दी जा सकती है ? ॥१६॥ सो इस तरह निर्लज्जतापूर्वक विरुद्ध वचन कहनेवाले उसके लिए कुमारी अर्थात् पुत्रीका देना तो युक्त नही है परन्तु कुमारी अर्थात् खोटा मरण मैं अवश्य देता हूँ ॥१७॥ इस प्रकार जिसके वचन सर्वथा उपेक्षित कर दिये गये थे ऐसे दूतने निरुपाय हो वापस जाकर वज्रजंघके लिए सब समाचार कह सुनाया ॥१८॥

तदनन्तर यद्यपि राजा वज्रजंघने स्वयं आधे मार्ग तक जाकर किसी महादूतके द्वारा पृथुसे कन्याकी याचना की ॥१९॥ और उसके प्रति आदर व्यक्त किया तथापि वह कन्याको प्राप्त नही कर सका। फलस्वरूप वह क्रोधसे प्रेरित हो पृथुका देश उजाड़नेके लिए तत्पर हो गया ॥२०॥ राजा पृथुके देशकी सीमाका रक्षक एक व्याघ्ररथ नामका राजा था उसे वज्रजंघने संग्राममे जीतकर बन्धनमे डाल दिया ॥२१॥ महाबलवान् अथवा बड़ी भारी सेनासे सहित व्याघ्ररथ सामन्तको युद्धमे बद्ध तथा वज्रजंघको देश उजाड़नेके लिए उद्यत जानकर राजा पृथुने सहायताके निमित्त पोदनदेशके अधिपति अपने मित्र राजाको जो कि उत्कृष्ट सेनासे युक्त था जबतक बुलवाया तबतक वज्रजंघने भी अपने पुत्रोको बुलानेके लिए शीघ्र ही एक पत्र सहित आदमी पौण्डरीकपुरको भेज दिया ॥२२–२४॥ पिताकी आज्ञा सुनकर राजपुत्रोने शीघ्र ही युद्धके लिए भेरी तथा शंख आदिके शब्द दिलवाये ॥२५॥

तदनन्तर पौण्डरीकपुरमे लहराते हुए समुद्रके समान क्षोभ उत्पन्न करनेवाला बहुत बड़ा कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥२६॥ वह अश्रुतपूर्व युद्धकी तैयारीका शब्द सुन लवण और अंकुशने निकटवर्ती पुरुषोसे पूछा कि यह क्या है ? ॥२७॥ तदनन्तर यह सब वृत्तान्त हमारे ही निमित्तसे हो रहा है, यह सब ओरसे सुन युद्धकी इच्छा रखनेवाले सीताके दोनों पुत्र जानेके लिए उद्यत

---

१. कन्यां । २ कुमृत्युम् ।

अतित्वरापरीतौ तौ पराभूत्युद्भवासहौ । अपि नासहतां यानमभिव्यक्तमहाद्युती ॥२९॥
तौ वारयितुमुद्युक्ता वज्रजङ्घस्य सूनवः । सर्वमन्तःपुरं चैव परिवर्गश्च यत्नतः ॥३०॥
अपकर्णिततद्वाक्यौ जानकी वीक्ष्य पुत्रकौ । जगाद तनयस्नेहपरिद्रवितमानसा ॥३१॥
बालकौ नैष युद्धस्य भवतः समयः सम[1] । न हि वत्सौ नियुज्येते महारथधुरामुखे ॥३२॥
ऊचतुस्तौ त्वया मातः किमेतदिति भाषितम् । किमत्र वृद्धकैः कार्यं वीरभोग्या[2] वसुन्धरा ॥३३॥
क्रियता देहभारेण ज्वलनस्य प्रयोजनम् । दिधक्षतो महाकक्षं स्वभावेनेह कारणम् ॥३४॥
एवमुद्गतवाक्यौ तौ तनयौ वीक्ष्य जानकी । बाष्पं मिश्ररसोत्पन्नं नेत्रयोः किंचिदाश्रयत् ॥३५॥
सुस्नातौ तौ कृताहारौ ततोऽलंकृतविग्रहौ । प्रणम्य प्रयतौ सिद्धान् वपुषा मनसा गिरा ॥३६॥
प्रणिपत्य सवित्रीं च समस्तविधिपण्डितौ । उपयातावगारस्य बहिः सत्तममङ्गलैः ॥३७॥
रथौ ततः समारुह्य परमौ जविवाजिनौ । सपूर्णौ विविधैरस्त्रैरुपरि प्रस्थितौ पृथोः ॥३८॥
तौ महासैन्यसपन्नौ चापन्यस्तसहायकौ । मूर्त्येव संगतिं प्राप्तौ समुद्योगपराक्रमौ ॥३९॥
परमोदारचेतस्कौ पुरुसंग्रामकौतुकौ । पञ्चभिर्दिवसैः प्राप्तौ वज्रजङ्घं महोदयौ ॥४०॥
ततः शत्रुबलं श्रुत्वा परमोद्योगसन्निकम् । निरैन्महाबलान्तस्थः पृथिवीनगरात्पृथुः ॥४१॥
भ्रातरः सुहृद पुत्रा मातुला मातुलाङ्गजा । एकपात्रभुजोऽन्ये च परमप्रीतिसंगताः ॥४२॥

हो गये ॥२८॥ जो अत्यन्त उतावलीसे सहित थे, जो पराभवकी उत्पत्तिको रचमात्र भी सहन नही कर सकते थे और जिनका विशाल तेज प्रकट हो रहा था ऐसे उन दोनो वीरोने वाहनका विलम्ब भी सहन नही किया था ॥२९॥ वज्रजघके पुत्र, समस्त अन्तःपुर तथा परिकरके समस्त लोग उन्हे यत्नपूर्वक रोकनेके लिए उद्यत हुए परन्तु उन्होने उनके वचन अनसुने कर दिये। तदनन्तर पुत्रस्नेहसे जिसका हृदय द्रवीभूत हो रहा था ऐसी सीताने उन्हे युद्धके लिए उद्यत देख कहा कि हे बालको! यह तुम्हारा युद्धके योग्य समय नही है क्योकि महारथकी धुराके आगे बछड़े नही जोते जाते ॥३०-३२॥ इसके उत्तरमे दोनो पुत्रोने कहा कि हे मातः! तुमने ऐसा क्यो कहा? इसमे वृद्धजनोकी क्या आवश्यकता है? पृथिवी तो वीरभोग्या है ॥३३॥ महावनको जलानेवाली अग्निके लिए कितने बड़े शरीरसे प्रयोजन है? अर्थात् अग्निका बडा शरीर होना अपेक्षित नही है, इस विषयमे तो उसे स्वभावसे ही प्रयोजन है ॥३४॥ इस प्रकारके वचनोका उच्चारण करनेवाले पुत्रोको देखकर सीताके नेत्रोमे मिश्ररससे उत्पन्न आँसुओने कुछ आश्रय लिया अर्थात् उसके नेत्रोसे हर्ष और शोकके कारण कुछ-कुछ आँसू निकल आये ॥३५॥

तदनन्तर जिन्होंने अच्छी तरह स्नान कर आहार किया, शरीरको अलंकारोसे अलकृत किया और मन, वचन, कायसे सिद्ध परमेष्ठीको बड़ी सावधानीसे नमस्कार किया, ऐसे समस्त विधि-विधानके जाननेमे निपुण दोनो कुमार माताको नमस्कार कर उत्तम मंगलाचारपूर्वक घरसे बाहर निकले ॥३६-३७॥ तदनन्तर जिनमे वेगशाली घोडे जुते थे और जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोसे परिपूर्ण थे ऐसे उत्तम रथोपर सवार होकर दोनो भाइयोने राजा पृथुके ऊपर प्रस्थान किया ॥३८॥ बडी भारी सेनासे सहित एव धनुषमात्रको सहायक समझनेवाले दोनो कुमार ऐसे जान पडते थे मानो शरीरधारी उद्योग और पराक्रम ही हो ॥३९॥ जिनका हृदय अत्यन्त उदार था तथा जो सग्रामके बहुत भारी कौतुकसे युक्त थे ऐसे महाभ्युदयके धारक दोनो भाई छह दिनमे वज्रजंघके पास पहुँच गये ॥४०॥

तदनन्तर परमोद्योगी शत्रुकी सेनाको निकटवर्ती सुनकर बड़ी भारी सेनाके मध्यमे स्थित राजा पृथु अपने पृथिवीपुरसे बाहर निकला ॥४१॥ उसके भाई, मित्र, पुत्र, मामा, मामाके

---

१ समे म । २. वीरभोज्या म ।

सुह्याङ्गा वङ्गमगधप्रभृतिक्षितिगोचराः । समं तेन महीपालाः प्रस्थिता सुमहाबलाः ॥४३॥
रथाश्वनागपादाताः कटकेन समावृताः । वज्रजङ्घं प्रति क्रुद्धाः प्रययुस्ते सुतेजसः ॥४४॥
रथेभतुरगस्थानं श्रुत्वा तूर्यस्वनान्वितम् । सामन्ता वज्रजङ्घीयाः संनद्धा योद्धुमुद्यताः ॥४५॥
प्रत्यासन्नं समायाते सेनास्यद्वितये ततः । परानीकं महोत्साहौ प्रविष्टौ लवणाङ्कुशौ ॥४६॥
अतिक्षिप्रपरावर्त्तौ तावुदाररुषाविव । आरेभाते परिक्रीडां परसैन्यमहाह्रदे[1] ॥४७॥
इतस्ततश्च तौ दृष्टादृष्टौ विद्युल्लतोपमौ । दुरालक्ष्यत्वमापन्नौ परासोढपराक्रमौ ॥४८॥
गृह्णन्तौ संदधानौ वा मुञ्चन्तौ वा शिलीमुखान् । नादृश्येतामदृश्यन्त केवलं निहताः परे ॥४९॥
विसिक्तैः विशिखैः क्रूरैः पतितैः सह वाहनैः । महीतलं समाक्रान्तं कृतमत्यन्तदुर्गमम् ॥५०॥
निमेषेण पराभग्नं सैन्यमुन्मत्तसंनिभम् । द्विपयूथं परिभ्रान्तं[2] सिंहवित्रासितं यथा ॥५१॥
ततोऽसौ क्षणमात्रेण पृथुराजस्य वाहिनी । लवणाङ्कुशसूर्येषुमयूखैः परिशोषिता ॥५२॥
कुमारयोस्तयोरिच्छामन्तरेण भयार्दिताः । अर्कतूलसमूहाभा नष्टा शेषा यथाककुप् ॥५३॥
असहायो विषण्णात्मा पृथुर्भङ्गपथे स्थितः । अनुधाव्य कुमाराभ्यां सचापाभ्यामितीरितः ॥५४॥
नरखेट पृथो व्यर्थं क्वापि प्रपलाय्यते । एतौ तावागतावावामज्ञातकुलशीलकौ ॥५५॥
अज्ञातकुलशीलाभ्यामावाभ्यां त्वं ततोऽन्यथा । पलायनमिदं कुर्वन् कथं न त्रपसेऽधुना ॥५६॥
ज्ञापयावोऽधुनात्मीये कुलशीले शिलीमुखैः । अवधानपरस्तिष्ठ बलाद्वा स्थाप्यसेऽथवा ॥५७॥

लड़के तथा एक बरतनमे खानेवाले परमप्रीतिसे युक्त अन्य लोग एवं सुह्य, अंग, वंग, मगध आदिके महाबलवान् राजा उसके साथ चले ॥४२-४३॥ कटक-सेनासे घिरे हुए परम प्रतापी रथ, घोड़े, हाथी तथा पैदल सैनिक क्रुद्ध होकर वज्रजंघकी ओर बढे चले आ रहे थे ॥४४॥ रथ, हाथी और घोड़ोंके स्थानको तुरहीके शब्दसे युक्त सुनकर वज्रजंघके सामन्त भी युद्ध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४५॥ तदनन्तर जब दोनो सेनाओंके अग्रभाग अत्यन्त निकट आ पहुँचे तब अत्यधिक उत्साहको धारण करनेवाले लवण और अंकुश शत्रुकी सेनामे प्रविष्ट हुए ॥४६॥ अत्यधिक शीघ्रतासे घूमनेवाले वे दोनो कुमार, महाक्रोधको धारण करते हुएके समान शत्रुदलरूपी महासरोवरमें सब ओर क्रीड़ा करने लगे ॥४७॥ बिजलीरूपी लताकी उपमाको धारण करनेवाले वे कुमार कभी यहाँ और कभी वहाँ दिखाई देते थे और फिर अदृश्य हो जाते थे। शत्रु जिनका पराक्रम नही सह सका था ऐसे वे दोनो वीर बड़ी कठिनाईसे दिखाई देते थे अर्थात् उनकी ओर आँख उठाकर देखना भी कठिन था ॥४८॥ बाणोंको ग्रहण करते, डोरीपर चढ़ाते और छोड़ते हुए वे दोनों कुमार दिखाई नही देते थे, केवल मारे हुए शत्रु ही दिखाई देते थे ॥४९॥ तीक्ष्ण बाणों द्वारा घायल होकर गिरे हुए वाहनोसे व्याप्त हुआ पृथिवीतल अत्यन्त दुर्गम हो गया था ॥५०॥ शत्रुकी सेना पागलके समान निमेषमात्रमे पराभूत हो गयी—तितर-बितर हो गयी और हाथियोंका समूह सिंहसे डराये हुएके समान इधर-उधर दौड़ने लगा ॥५१॥ तदनन्तर पृथु राजाकी सेनारूपी नदी, लवणांकुशरूपी सूर्यकी बाणरूपी किरणोसे क्षणमात्रमे सुखा दी गयी ॥५२॥ जो योद्धा शेष बचे थे वे भयसे पीड़ित हो अर्कतूलके समूहके समान उन कुमारोकी इच्छाके बिना ही दिशाओमे भाग गये ॥५३॥ असहाय एवं खेदखिन्न पृथु पराजयके मार्गमे स्थित हुआ अर्थात् भागने लगा तब धनुर्धारी कुमारोने उसका पीछा कर उससे इस प्रकार कहा कि अरे नीच नरपृथु! अब व्यर्थ कहाँ भागता है? जिनके कुल और शीलका पता नही ऐसे ये हम दोनो आ गये ॥५४-५५॥ जिनका कुल और शील अज्ञात है ऐसे हम लोगोसे भागता हुआ तू इस समय लज्जित क्यो नही होता है? ॥५६॥ अब हम बाणोके द्वारा अपने कुल और शीलका पता

१. परसैन्यं म्हाह्लदे म.। २. परिभ्रान्तं म.।

इत्युक्ते विनिवृत्यासौ पृथुराह कृताञ्जलिः । अज्ञानजनितं दोषं वीरौ मे क्षन्तुमर्हथ ॥५८॥
माहात्म्यं भवदीयं मे नायातं मतिगोचरम् । भास्करीयं यथा तेजः कुमुदप्रचयोदरम् ॥५९॥
ईदृगेव हि धीराणां कुलशीलनिवेदनम् । गस्यते न तु भारत्या तद्धि सदेहसंगतम् ॥६०॥
अरण्यदाहशक्तस्य पावकस्य न को जनः । ज्वलनादेव संभूतिं मूढोऽपि प्रतिपद्यते ॥६१॥
भवन्तौ परमौ धीरौ महाकुलसमुद्भवौ । अस्माकं स्वामिनौ प्राप्तौ यथेष्टसुखदायिनौ ॥६२॥
एवं प्रशस्यमानौ तौ कुमारौ नतमस्तकौ । जातौ निर्वासिताशेषकोपौ शान्तमनोमुखौ ॥६३॥
वज्रजङ्घप्रधानेषु ततः प्राप्तेषु राजसु । ससाक्षिकाभवत्प्रीतिः पृथुना सह वीरयोः ॥६४॥
प्रणाममात्रतः प्रीता जायन्ते मानशालिनः । नोन्मूलयन्ति सद्योघा वेतसान् प्रणतात्मकान् ॥६५॥
ततस्तौ सुमहाभूत्या पृथुना पृथिवीपुरम् । प्रवेशितौ समस्तस्य जनस्यानन्दकारिणौ ॥६६॥
मदनाङ्कुशवीरस्य पृथुना परिकल्पिता । कन्या कनकमालासौ महाविभवसंगता ॥६७॥
अत्र नीत्वा निशामेकां करणीयविचक्षणौ । निर्गतौ [1]नगराज्जेतुं समस्तां पृथिवीमिमाम् ॥६८॥
सुह्माङ्गमगधैर्वङ्गैः पोदनेशादिभिस्तथा । [2]वृतौ लोकाक्षनगरं गन्तुमेतौ[3] समुद्यतौ ॥६९॥
आक्रामन्तौ सुखं तस्य संबद्धान् विषयान् बहून् । अभ्यर्णत्वं परिप्राप्तौ तौ महासाधनान्वितौ ॥७०॥
कुबेरकान्तनामानं राजानं तत्र मानिनम् । समक्षोभयतां[4] नागं पक्षाविव गरुत्मतः ॥७१॥

देते हैं, सावधान होकर खड़े हो जाओ अथवा बलात् खडे किये जाते हो ॥५७॥ इस प्रकार कहने-पर पृथुने लौटकर तथा हाथ जोड़कर कहा कि हे वीरो ! मेरा अज्ञानजनित दोष क्षमा करनेके योग्य हो ॥५८॥ जिस प्रकार सूर्यका तेज कुमुद समूहके मध्य नही आता उसी प्रकार आप लोगो-का माहात्म्य मेरी बुद्धिमे नही आया ॥५९॥ धीर, वीर मनुष्योका अपने कुल, शीलका परिचय देना ऐसा ही होता है। वचनो द्वारा जो परिचय दिया जाता है वह ठीक नही है क्योकि उसमे सन्देह हो सकता है ॥६०॥ ऐसा कौन मूढ़ मनुष्य है जो जलने मात्रसे, वनके जलानेमे समर्थ अग्निकी उत्पत्तिको नही जान लेता है ? भावार्थ—अग्नि प्रज्वलित होती है इतने मात्रसे ही उसकी वनदाहक शक्तिका अस्तित्व मूर्खसे मूर्ख व्यक्ति भी स्वीकृत कर लेता है ॥६१॥ आप दोनो परम धीर, महाकुलमे उत्पन्न एव यथेष्ट सुख देनेवाले हमारे स्वामी हो ॥६२॥ इस प्रकार जिनकी प्रशंसा की जा रही थी ऐसे दोनो कुमार नतमस्तक, शान्तचित्त तथा शान्तमुख हो गये और उनका सब क्रोध दूर हो गया ॥६३॥ तदनन्तर जब वज्रजघ आदि प्रधान राजा आ गये तब उनकी साक्षीपूर्वक दोनो वीरोकी पृथुके साथ मित्रता हो गयी ॥६४॥ आचार्य कहते है कि मान-शाली मनुष्य प्रणाममात्रसे प्रसन्न हो जाते है, सो ठीक ही है क्योकि नदियोके प्रवाह नम्रीभूत वेतसके पौधोको नही उखाड़ते ॥६५॥

तदनन्तर राजा पृथुने, सब लोगोको आनन्द उत्पन्न करनेवाले दोनो वीरोको बड़े वैभवके साथ नगरमे प्रविष्ट कराया ॥६६॥ वहाँ पृथुने महाविभवसे सहित अपनी कनकमाला कन्या वीर मदनांकुशके लिए देना निश्चित किया ॥६७॥ तदनन्तर कार्य करनेमे निपुण दोनो वीर वहाँ एक रात्रि व्यतीत कर इस समस्त पृथिवीको जीतनेके लिए नगरसे बाहर निकल पड़े ॥६८॥ सुह्म, अग, मगध, वंग तथा पोदनपुर आदिके राजाओसे घिरे हुए दोनो कुमार कोकाक्ष नगरको जानेके लिए उद्यत हुए ॥६९॥ बहुत बड़ी सेनासे सहित दोनो वीर उससे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक देशोपर सुखसे आक्रमण करते हुए लोकाक्ष नगरके समीप पहुँचे ॥७०॥ वहाँ जिस प्रकार गरुड़के पंख नागको क्षोभित करते है उसी प्रकार उन दोनोने वहांके कुबेरकान्त नामक अभिमानी राजाको

---

१. नगरी जेतु म. । २. कृतौ म. । ३ मेतै ज. । ४. समवक्षोभता म ।

चतुरङ्गाकुले भीमे परमे समराङ्गणे । जित्वा कुबेरकान्तं तौ पूर्यमाणबलौ भृशम् ॥७२॥
सहस्रैर्नरनाथानामावृतौ वश्यतां गतैः । कृच्छ्राभिगमने यानैर्लम्पाकविषयं गतौ ॥७३॥
एककर्णं विनिर्जित्य राजानं तत्र पुष्कलम् । गतौ मार्गानुकूलत्वान्नरेन्द्रौ विजयस्थलीम् ॥७४॥
तत्र भ्रातृशतं जित्वा समालोकनमात्रतः । गतौ गङ्गां समुत्तीर्य कैलासमस्योत्तरां दिशम् ॥७५॥
तत्र नन्दनचारुणा देशानां कृतसंगमौ । पूज्यमानौ नरश्रेष्ठैर्नानोपायनपाणिभिः ॥७६॥
भापकुन्तलकालाम्बुनन्दिनन्दनसिंहलान् । शलभाननलांश्चौलान्भीमान् भूतरवादिकान् ॥७७॥
नृपान् वश्यत्वमानीय सिन्धोः कूलं परं गतौ । परार्णवतटान्तस्थान् चक्रतुः प्रणतान्नृपान् ॥७८॥
पुरखेटमटम्बेन्द्रा विषयाद्रीश्वराश्च ये । वशत्वे स्थापितास्ताभ्यां कांश्चित्तान् कीर्तयामि ते ॥७९॥
एते जनपदाः केचिदार्या म्लेच्छास्तथा परे । विद्यमानद्वया केचिद् विविधाचारसंमताः ॥८०॥
भीरवो यवनाः कक्षाश्चारवस्त्रिजटा नटाः । शककेरलनेपाला मालवारुलशर्वराः ॥८१॥
वृषाणवैद्यकाश्मीरा हिडिम्बावष्टबर्बराः । त्रिशिराः पारशैलाश्च गौशीलोशीनरात्मकाः ॥८२॥
सूर्पारकाः सनर्ताश्च खशा विन्ध्याः शिखापदाः । मेखलाः शूरसेनाश्च वाह्लीकोलूककोसलाः ॥८३॥
दरीगान्धारसौवीराः पुरीकौवेरकोहराः । अन्ध्रकालकलिङ्गाद्या नानाभाषा पृथग्गुणाः ॥८४॥
विचित्ररत्नवस्त्राद्या बहुपादपजातयः । नानाकरसमायुक्ता हेमादिवसुशालिनः ॥८५॥
देशानामेवमादीनां स्वामिनः समराजिरे । जिताः केचिद्गताः केचित्प्रतापादेव वश्यताम् ॥८६॥
ते महाविभवैर्युक्ता देशभाजोऽनुरागिणः । लवणाङ्कुशयोरिच्छां कुर्वाणा बभ्रमुर्महीम् ॥८७॥

क्षोभयुक्त किया ॥७१॥ तदनन्तर चतुरंग सेनासे युक्त अत्यन्त भयंकर रणागणमे कुवेरकान्तको जीतकर वे आगे बढे, उस समय उनकी सेना अत्यधिक बढती जाती थी ॥७२॥ वहाँसे चलकर आधीनताको प्राप्त हुए हजारों राजाओंसे घिरे हुए लम्पाक देशको गये वहाँ स्थलमार्गसे जाना कठिन था इसलिए नौकाओंके द्वारा जाना पड़ा ॥७३॥ वहाँ एककर्ण नामक राजाको अच्छी तरह जीतकर मार्गकी अनुकूलता होनेसे दोनो ही कुमार विजयस्थली गये ॥७४॥ वहाँ देखने मात्रसे ही सौ भाइयोको जीतकर तथा गंगा नदी उतरकर दोनों कैलासकी ओर उत्तर दिशामे गये ॥७५॥ वहाँ उन्होने नन्दनवनके समान सुन्दर-सुन्दर देशोमे अच्छी तरह गमन किया तथा नाना प्रकार-की भेंट हाथमे लिये हुए उत्तम मनुष्योने उनकी पूजा की ॥७६॥ तदनन्तर भापकुन्तल, कालाम्बु, नन्दी, नन्दन, सिंहल, शलभ, अनल, चौल, भीम तथा भूतरव आदि देशोके राजाओको वश कर वे सिन्धुके दूसरे तटपर गये तथा वहाँ पश्चिम समुद्रके दूसरे तटपर स्थित राजाओको नम्रीभूत किया ॥७७-७८॥

पुरखेट तथा मटम्ब आदिके स्वामी एवं अन्य जिन देशोके अधिपतियोको उन दोनों कुमारोने वश किया था हे श्रेणिक! मैं यहाँ तेरे लिए उनका कुछ वर्णन करता हूँ ॥७९॥ ये देश कुछ तो आर्य देश थे, कुछ म्लेच्छ देश थे, और कुछ नाना प्रकारके आचारसे युक्त दोनों प्रकारके थे ॥८०॥ भीरु, यवन, कक्ष, चारु, त्रिजट, नट, शक, केरल, नेपाल, मालव, आरुल, शर्वर, वृषाण, वैद्य, काश्मीर, हिडिम्ब, अवष्ट, बर्बर, त्रिशिर, पारशैल, गौशील, उशीनर, सूर्पारक, सनर्त, खश, विन्ध्य, शिखापद, मेखल, शूरसेन, वाह्लीक, उलूक, कोसल, दरी, गान्धार, सौवीर, पुरी, कौवेर, कोहर, अन्ध्र, काल और कलिंग इत्यादि अनेक देशोंके स्वामी रणागणमे जीते गये थे और कितने ही प्रतापसे ही अधीनताको प्राप्त हो गये थे। इन सब देशोमे अलग-अलग नाना प्रकारकी भाषाएँ थी, पृथक्-पृथक् गुण थे, नाना प्रकार रत्न तथा वस्त्रादिका पहिनाव था, वृक्षोकी नाना जातियाँ थी, अनेक प्रकारकी खाने थी और सुवर्णादि धनसे सब सुशोभित थे ॥८१-८६॥ महावैभवसे युक्त तथा अनुरागसे सहित नाना देशोके मनुष्य लवणाकुश-

प्रसाद्य पृथिवीमेतामथ तौ पुरुषोत्तमौ । नानाराजसहस्राणां महतामुपरि स्थितौ ॥८८॥
रक्षन्तौ विषयान् सम्यङ्नानाचारुकथारतौ । पौण्डरीकपुरं तेन [तौ हि] प्रस्थितौ पुरुसंमदौ ॥८९॥
राष्ट्राद्यधिकृतैः पूजां प्राप्यमाणौ च भूयसीम् । समीपीभावतां प्राप्तौ पुण्डरीकस्य पार्थिवौ ॥९०॥
ततः सप्तमभूपृष्ठे प्रासादस्य समाश्रिता । वृता परमनारीभिः सुखासनपरिग्रहा ॥९१॥
तरलच्छातजीमूतपरिधूसरमुत्थितम् । रजःपटकमद्राक्षीदप्राक्षीच्च सखीजनम् ॥९२॥
किमिदं दृश्यते सख्यो दिगाक्रमणचञ्चलम् । ऊचुस्ता देवि सैन्यस्य रजश्चक्रमिदं भवेत् ॥९३॥
तथा हि पश्य मध्येऽस्य ज्ञायते स्वच्छवारिणः । अश्वीयं मकराणां वा प्लवमानकदम्बकम् ॥९४॥
नूनं स्वामिनि सिद्धार्थौ कुमारावागताविमौ । तथा ह्येतौ प्रदृश्येते तावेव भुवनोत्तमौ ॥९५॥
आसीदेवं कथा यावत्सीतादेव्या मनोहरा । तावदग्रेसराः प्राप्ता नरा इष्टनिवेदिनः ॥९६॥
उपशोभा ततः पृथ्वी समस्ता नगरे[1] कृता । लोकेनादरयुक्तेन बिभ्रता तोषमुत्तमम् ॥९७॥
प्राकारशिखरावल्यामुच्छ्रिता विमलध्वजाः । मार्गदेशाः कृता दिव्यतोरणासङ्गसुन्दराः ॥९८॥
आगुल्फं पूरितो राजमार्गः पुष्पैः सुगन्धिभिः । चारुवन्दनमालाभिः शोभमानः पदे पदे ॥९९॥
स्थापिता द्वारदेशेषु कलशाः पल्लवाननाः । पट्टवस्त्रादिभिः[2] शोभा कृता चापणवर्त्मनि ॥१००॥
विद्याधरैः कृतं देवैरहोस्वित्पद्मया स्वयम् । पौण्डरीकपुरं जातमयोध्यासमदर्शनम् ॥१०१॥
दृष्ट्वा संप्रविशन्तौ तौ महाविभवसंगतौ । आसीन्नगरनारीणां लोको दुःशक्यवर्णनः ॥१०२॥

की इच्छानुसार कार्य करते हुए पृथिवीमे भ्रमण करते थे ॥८७॥ इस प्रकार इस पृथिवीको प्रसन्न कर वे दोनो पुरुषोत्तम, अनेक हजार बडे-बडे राजाओके ऊपर स्थित थे ॥८८॥ नाना प्रकारकी सुन्दर कथाओमे तत्पर तथा अत्यधिक हर्षको धारण करनेवाले वे दोनो कुमार देशोकी अच्छी तरह रक्षा करते हुए पौण्डरीकपुरकी ओर चले ॥८९॥ राष्ट्रोके प्रथम अधिकारी राजाओके द्वारा अत्यधिक सम्मानको प्राप्त कराये गये दोनो भाई क्रम-क्रमसे पौण्डरीकपुरकी समीपताको प्राप्त हुए ॥९०॥

तदनन्तर महलकी सातवी भूमिपर सुखसे बैठी एवं उत्तम स्त्रियोसे घिरी सीताने चंचल पतले मेघके समान धूसर वर्ण धूलिपटलको उठते देखा तथा सखीजनोसे पूछा कि हे सखियो! दिशाओपर आक्रमण करनेमे चचल अर्थात् सब ओर फैलनेवाली यह क्या वस्तु दिखाई देती है? इसके उत्तरमे उन्होने कहा कि यह सेनाका धूलिपटल होना चाहिए ॥९१–९३॥ इसीलिए तो देखो स्वच्छ जलके समान इस धूलिपटलके बीचमे मगरमच्छोके तैरते हुए समूहके समान घोड़ोका समूह दिखाई दे रहा है ॥९४॥ हे स्वामिनि! जान पडता है कि ये दोनो कुमार कृतकृत्य होकर आये है, हाँ देखो, वे ही लोकोत्तम कुमार दिखाई दे रहे है ॥९५॥ इस तरह जबतक सीता देवीकी मनोहर कथा चल रही थी कि तबतक इष्ट समाचारकी सूचना देनेवाले अग्रगामी पुरुष आ पहुँचे ॥९६॥ तदनन्तर उत्तम सन्तोषको धारण करनेवाले आदरयुक्त मनुष्योने नगरमे सब प्रकारकी विशाल शोभा की ॥९७॥ कोटके शिखरोके ऊपर निर्मल ध्वजाएँ फहरायी गयी, मार्ग दिव्यतोरणोसे सुन्दर किये गये ॥९८॥ राजमार्ग घुटनो तक सुगन्धित फूलोसे भरा गया एवं पद-पदपर सुन्दर वन्दनमालाओसे युक्त किया गया ॥९९॥ द्वारोपर पल्लवोसे युक्त कलश रखे गये और बाजारकी गलियोमे रेशमी वस्त्रादिसे शोभा की गयी ॥१००॥ उस समय पौण्डरीकपुर अयोध्याके समान दिखाई देता था, सो ऐसा जान पड़ता था मानो विद्याधरोने, देवोने अथवा लक्ष्मीने ही स्वयं उसकी वैसी रचना की हो ॥१०१॥ महावैभवके साथ प्रवेश करते हुए उन दोनो कुमारोको देखकर नगरकी स्त्रियोमे जो चेष्टा हुई उसका वर्णन करना

---

१ समस्ता नगरे म. । २ पदवस्त्रादिभि. म. ।

आरात्पुत्रौ समालोक्य कृतकृत्यावुपागतौ । निममज्जेव वैदेही [1]सिन्धावमृतवारिणि ॥१०३॥

आर्याच्छन्दः

विरचितकरपुटकमलौ जननीमुपगम्य सादरौ परमम् ।
नेमतुरवनतशिरसौ सैन्यरजोधूसरौ वीरौ ॥१०४॥
तनयस्नेहप्रवणा पद्मप्रमदा सुतौ परिष्वज्य ।
करतलकृतपरस्पर्शा शिरसि [2]निनिक्षोत्तमानन्दा ॥१०५॥
जननीजनितं[3] तौ पुनरभिनन्द्य परं प्रसादमानत्या[4] ।
रविचन्द्राविव लोकव्यवहारपरौ स्थितौ योग्यम् ॥१०६॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे लवणाङ्कुशदिग्विजयकीर्तनं नामैकाधिकशतं पर्व ॥१०१॥



अशक्य है ॥१०२॥ कृतकृत्य होकर पास आये हुए पुत्रोंको देखकर सीता तो मानो अमृतके समुद्रमे ही डूब गयी ॥१०३॥ तदनन्तर जिन्होने कमलके समान अंजलि बाँध रखी थी, जो अत्यधिक आदरसे सहित थे जिनके शिर झुके हुए थे तथा जो सेनाकी धूलिसे धूसर थे ऐसे दोनो वीरोने पास आकर माताको नमस्कार किया ॥१०४॥ जो पुत्रोंके प्रति स्नेह प्रकट करनेमें निपुण थी, हस्ततलसे जो उनका स्पर्श कर रही थी तथा जो उत्तम आनन्दसे युक्त थी ऐसी रामकी पत्नी सीताने उनका मस्तक चूमा ॥१०५॥ तदनन्तर वे माताके द्वारा किये हुए परम प्रसादको पुनः-पुनः नमस्कार द्वारा स्वीकृत कर सूर्य-चन्द्रमाके समान लोक व्यवहारको सम्पन्न करते हुए यथा-योग्य सुखसे रहने लगे ॥१०६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लवणांकुशकी दिग्विजयका वर्णन करनेवाला एक सौ एकवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०१॥



१ सिद्धा–म. । २ चुचुम्ब । ३. जननी जनितौ । ४. प्रसादमानयत्या म. ।

द्व्युत्तरशतं पर्व

एवं तौ परमैश्वर्यं प्राप्तावुत्तममानवौ । स्थितावाज्ञां प्रयच्छन्तावुन्नतानां महीभृताम् ॥१॥
तदा कृतान्तवक्त्रं तु नारदः परिपृष्टवान् । जानकीत्यजनोद्देशं दुःखी भ्राम्यन् गवेषकः ॥२॥
दर्शनेऽवस्थितौ वीरौ प्राप ताभ्यां च पूजितः । आसनादिप्रदानेन गृहस्थमुनिवेषभृत् ॥३॥
ततः सुखं समासीनः परमं तोषमुद्वहन् । अवोचत्तावदद्वारः कृतस्निग्धनिरीक्षणः ॥४॥
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीर्यादृशी नरनाथयोः । तादृशी सर्वथा भूयादचिराद्भवतोरपि ॥५॥
ततस्तावूचतुः कौ तौ भगवन् रामलक्ष्मणौ । कीदृग्गुणसमाचारौ कस्य वा कुलसंभवौ ॥६॥
ततो जगाद भट्टारः कृत्वा [1]विस्मितमाननम् । स्थिरमूर्तिः क्षणं स्थित्वा [2]भ्रमयन् करपल्लवम् ॥७॥
भुजाभ्यामुत्क्षिपेन्मेरुं प्रतरन्निम्नगापतिम् । नरो न तद्गुणान् वक्तुं समर्थः कश्चिदेतयोः ॥८॥
अनन्तेनापि कालेन वदनैरन्तवर्जितैः । सकलोऽपि न लोकोऽयं तयोर्वक्तुं गुणान् क्षमः ॥९॥
इदं तद्गुणसंप्रश्नप्रतीकारसमाकुलम् । हृदयं कम्पमानं मे पश्यतां जातकौतुकौ ॥१०॥
तथापि भवतोर्वाक्यात् स्थूलन्यायसमाश्रयात् । वदामि तद्गुणं किंचिच्छृणुतं पुण्यवर्द्धनम् ॥११॥
अस्तीक्ष्वाकुकुलव्योमसकलामलचन्द्रमाः । नाम्ना दशरथो राजा दुर्वृत्तेन्धनपावकः ॥१२॥
अधितिष्ठन् महातेजोमूर्तिरुत्तरकोशलम् । सवितेव प्रकाशत्वं धत्ते यः सर्वविष्टपे ॥१३॥
पुरुषाद्रीन्द्रतो यस्मान्निःसृताः कीर्तिसिन्धवः । उदन्वत्संगता वीध्रा ह्लादयन्त्यखिलं जगत् ॥१४॥
तस्य राज्यमहाभारवहनक्षमचेष्टिताः । चत्वारो गुणसंपन्नास्तनया सुनया इव ॥१५॥

अथानन्तर परम ऐश्वर्यको प्राप्त हुए वे दोनो पुरुषोत्तम बड़े-बड़े राजाओको आज्ञा प्रदान करते हुए स्थित थे ॥१॥ उसी समय कृतान्तवक्त्र सेनापतिसे सीताके छोड़नेका स्थान पूछकर उसकी खोज करनेवाले दुःखी नारद भ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचे। सो दोनो ही वीर उनकी दृष्टिमे पड़े। गृहस्थमुनि अर्थात् क्षुल्लकका वेष धारण करनेवाले उन नारदजीका दोनो ही कुमारोने आसनादि देकर सम्मान किया ॥२-३॥ तदनन्तर सुखसे बैठे परम सन्तोषको धारण करते एवं स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए नारदने उन कुमारोसे कहा कि राजा राम-लक्ष्मणकी जैसी विभूति है सर्वथा वैसी ही विभूति शीघ्र ही आप दोनोकी भी हो ॥४-५॥ इसके उत्तरमे उन्होने कहा कि हे भगवन्! वे राम-लक्ष्मण कौन है? कैसे उनके गुण और समाचार हैं तथा किस कुलमे उत्पन्न हुए हैं? ॥६॥ तदनन्तर क्षण-भरके लिए निश्चल शरीर बैठकर मुखको आश्चर्यसे चकित करते एवं करपल्लवको हिलाते हुए नारद बोले ॥७॥ कि मनुष्य भुजाओसे मेरुको उठा सकता है और समुद्रको तैर सकता है परन्तु इन दोनोके गुण कहनेके लिए कोई समर्थ नही है ॥८॥ यह सबका सब संसार, अनन्तकाल तक और अनन्त जिह्वाओके द्वारा भी उनके गुण कहनेके लिए समर्थ नही है ॥९॥ आपने उनके गुणोका प्रश्न किया सो इनके उत्तरस्वरूप प्रतिकारसे आकुल हुआ हमारा हृदय काँपने लगा है। आप कौतुकके साथ देखिए ॥१०॥ फिर भी आप लोगोके कहनेसे स्थूलरूपमे उनके कुछ पुण्यवर्धक गुण कहता हूँ सो सुनो ॥११॥

इक्ष्वाकुवंशरूपी आकाशके पूर्णचन्द्रमा तथा दुराचाररूपी ईन्धनके लिए अग्निस्वरूप एक दशरथ नामके राजा थे ॥१२॥ जो महातेजस्वरूप थे। उत्तर कोसल देशपर शासन करते थे तथा सूर्यके समान समस्त ससारमे प्रकाश करते थे ॥१३॥ जिस पुरुषरूपी पर्वतराजसे निकली और समुद्रमे गिरी हुई कीर्तिरूपी उज्ज्वल नदियाँ समस्त संसारको आनन्दित करती है ॥१४॥ राज्यका

१ विस्मितमानसम् म । २ भ्रामयन् म ।

राम इत्यादितस्तेषामभिरामः समन्ततः । आद्यः सर्वश्रुतज्ञोऽपि विश्रुतः सर्वविष्टपे ॥१६॥
लक्ष्मणेनानुजेनासौ सीतया च द्वितीयया । जनकस्य नरेन्द्रस्य सुतयात्यन्तभक्तया ॥१७॥
[1]जानकं पालयन् सत्यं कृत्वायोध्यां वितानिकाम् । छद्मस्थ पर्यटन् क्षोणीं प्राविशद्दण्डकं वनम् ॥१८॥
स्थानं तत्र परं दुर्गं महाविद्याभृतामपि । सोऽध्यास्त स्त्रैणवृत्तान्तं जातं चन्द्रनखाभवम् ॥१९॥
संग्रामे वेदितुं वार्ता पद्मोऽगादनुजस्य च । दशग्रीवेण वैदेही हृता च छद्मवर्तिना ॥२०॥
ततो महेन्द्रकिष्किन्धश्रीशैलमलयेश्वराः । नृपा विराधिताद्याश्च प्रधानाः कपिकेतवः ॥२१॥
महासाधनसंपन्ना महाविद्यापराक्रमाः । रामगुणानुरागेण पुण्येन च समाश्रिताः ॥२२॥
लङ्केश्वरं रणे जित्वा वैदेही पुनराहृता । देवलोकपुरीतुल्या विनीता च कृता खगैः ॥२३॥
तत्र तौ परमैश्वर्यसेवितौ पुरुषोत्तमौ । नागेन्द्राविव मोदेते [2]संमुखं रामलक्ष्मणौ ॥२४॥
रामो वां न कथं ज्ञातो यस्य लक्ष्मीधरोऽनुजः । चक्रं सुदर्शनं यस्य मोघतापरिवर्जितम् ॥२५॥
एकैकं रक्ष्यते यस्य तदेकाग्रचेतसा । रत्नं देवसहस्रेण राजराजत्व कारणम् ॥२६॥
संत्यक्ता जानकी येन प्रजानां हितकाम्यया । तस्य रामस्य लोकेऽस्मिन्नास्ति कश्चिदवेदकः ॥२७॥
आस्तां तावदयं लोकः स्वर्गेऽप्यस्य गुणैः कृताः । मुखरा देवसंघातास्तत्परायणचेतसः ॥२८॥
ततोऽङ्कुशो जगादास्मां मुने रामेण जानकी । कस्य हेतोः परित्यक्ता वद वाञ्छामि वेदितुम् ॥२९॥
ततः कथितनिःशेषवृत्तान्तमिदमभ्यधात् । तद्गुणाकृष्टचेतस्को देवर्षिः सास्रवीक्षणः ॥३०॥

महाभार उठानेमें जिनकी चेष्टाएँ समर्थ हैं तथा जो गुणोंसे सम्पन्न हैं ऐसे उनके मुनयके समान चार पुत्र हैं ॥१५॥ उन सब पुत्रोंमें राम प्रथम पुत्र हैं जो सब ओरसे सुन्दर हैं तथा सर्वशास्त्रोंके ज्ञाता होनेपर भी जो समस्त संसारमें विश्रुत अर्थात् शास्त्रसे रहित (पक्षमें—प्रसिद्ध) हैं ॥१६॥ अपने छोटे भाई लक्ष्मण और स्त्री सीताके साथ जो कि राजा जनककी पुत्री थी तथा अत्यन्त भक्त थी, पिताके सत्यकी रक्षा कराते हुए अयोध्याको सूनी कर छद्मस्थवेषमें पृथिवीपर भ्रमण करने लगे तथा भ्रमण करते हुए दण्डकवनमें प्रविष्ट हुए ॥१७–१८॥ वहाँ महाविद्याधरोंके लिए भी अत्यन्त दुर्गम स्थानमें वे रहते थे और वहीं चन्द्रनखा सम्बन्धी स्त्रीका वृत्तान्त हुआ अर्थात् चन्द्रनखाने अपना त्रियाचरित्र दिखाया ॥१९॥ उधर राम, छोटे भाईकी वार्ता जाननेके लिए युद्धमें गये उधर कपटवृत्ति रावणने सीताका हरण कर लिया ॥२०॥ तदनन्तर महेन्द्र, किष्किन्ध, श्रीशैल और मलयके अधिपति तथा विराधित आदि प्रधान-प्रधान वानरवंशी राजा जो कि महासाधनसे सम्पन्न और विद्यारूप महापराक्रमके धारक थे, रामके गुणोंके अनुरागसे अथवा अपने पुण्योदयसे इनके समीप आये और युद्धमें रावणको जीतकर सीताको वापस ले आये। विद्याधरोंने अयोध्याको स्वर्गपुरीके समान कर दिया ॥२१–२३॥ परम ऐश्वर्यसे सेवित, पुरुषोंमें उत्तम श्रीराम-लक्ष्मण वहाँ नागेन्द्रोंके समान एक दूसरेके सम्मुख आनन्दसे समय विताते थे ॥२४॥ अथवा अभी तक आप दोनोंको उन रामका ज्ञान क्यों नहीं हुआ जिनका कि वह लक्ष्मण अनुज हैं, जिनके पास कभी व्यर्थ नहीं जानेवाला सुदर्शन चक्र विराजमान है ॥२५॥ इसके सिवाय जिसके पास ऐसे और भी रत्न हैं जिनकी एकाग्रचित्त होकर प्रत्येककी हजार-हजार देव रक्षा करते हैं तथा जो उसके राजाधिराजत्वके कारण हैं ॥२६॥ जिन्होंने प्रजाके हितकी इच्छासे सीताका परित्याग कर दिया, इस संसारमें ऐसा कौन है जो रामको नहीं जानता हो ॥२७॥ अथवा इस लोककी बात जाने दो इसके गुणोंसे स्वर्गमें भी देवोंके समूह शब्दायमान तथा तत्परचित्त हो रहे हैं ॥२८॥

तदनन्तर अंकुशने कहा कि हे मुने ! रामने सीता किस कारण छोड़ी सो कहो मैं जानना चाहता हूँ ॥२९॥ तत्पश्चात् सीताके गुणोंसे जिनका चित्त आकृष्ट हो रहा था तथा जिनके नेत्रोंमें

१. जनकस्येदं जानकं पितृसबन्धि इत्यर्थः । २. सत्सुखं म. ।

विशुद्धगोत्रचारित्रहृदया गुणशालिनी । अष्टयोषित्सहस्राणामग्रणीः सुविचक्षणा ॥३१॥
सावित्रीं सह गायत्रीं श्रियं कीर्त्तिं धृतिं ह्रियम् । पवित्रत्वेन निर्जित्य स्थिता जैनश्रुतेः समा ॥३२॥
नूनं जन्मान्तरोपात्तपापकर्मानुभावतः । जनापवादमात्रेण त्यक्तासौ विजने वने ॥३३॥
दुर्लोकघर्मसंभानूक्तिदीधितिप्रतितापिता । प्रायेण विलयं प्राप्ता सती सा सुखवर्द्धिता ॥३४॥
सुकुमाराः प्रपद्यन्ते दुःखमप्यणुकारणात्[1] । म्लायन्ति मालतीमाला प्रदीपालोकमात्रतः ॥३५॥
अरण्ये किं पुनर्भीमे व्यालजालसमाकुले । वैदेही धारयेत् प्राणानसूर्यंपश्यलोचना ॥३६॥
जिह्वा दुष्टभुजङ्गीव संदूष्यानागसं जनम् । कथं न पापलोकस्य व्रजत्येव[2] निवर्त्तनम् ॥३७॥
आर्जवादिगुणश्लाघ्यामत्यन्तविमलां सतीम् । अपोद्य तादृशीं लोको दुःखं प्रेत्येह चाश्नुते ॥३८॥
अथवा स्वोचिते नित्यं कर्मण्याश्रितजागरे । किमत्र भाष्यतां कस्य संसारोऽत्र जुगुप्सितः ॥३९॥
इत्युक्त्वा शोकभारेण समाक्रान्तमना मुनिः । न किंचिच्छक्नुवन्वक्तुं मौनयोगमुपाश्रितः ॥४०॥
अथाङ्कुशो विहस्योचे ब्रह्मन्न कुलशोभनम् । कृतं रामेण वैदेहीं मुञ्चता भीषणे वने ॥४१॥
बहवो जनवादस्य निराकरणहेतवः । सन्ति तत्र किमित्येवं विद्धा किल चकार सः ॥४२॥
अनङ्गलवणोऽवोचद्विनीता नगरी मुने । कियद्दूरं ततोऽवोचदवद्वारो गतिप्रियः ॥४३॥
योजनानामयोध्या स्यादितः षष्ट्यधिकं शतम् । यस्यां स वर्तते रामः शशाङ्कविमलप्रियः ॥४४॥
कुमारावूचतुर्यावत्तं निर्जेतुं किमास्यते । महीकुटीरके ह्यस्मिन् कस्यान्यस्य प्रधानता ॥४५॥

आँसू छलक आये थे ऐसे नारदने कथा पूरी करते हुए कहा ॥३०॥ कि उसका गोत्र, चारित्र तथा हृदय अत्यन्त शुद्ध है, वह गुणोसे सुशोभित है, आठ हजार स्त्रियोकी अग्रणी है, अतिशय पण्डिता हैं, अपनी पवित्रतासे सावित्री, गायत्री, श्री, कीर्ति, धृति और ह्री देवीको पराजित कर विद्यमान है तथा जिनवाणीके समान है ॥३१–३२॥ निश्चित ही जन्मान्तरमे उपार्जित पाप कर्मके प्रभावसे केवल लोकापवादके कारण उन्होने उसे निर्जन वनमें छोड़ा है ॥३३॥ सुखसे वृद्धिको प्राप्त हुई वह सती दुर्जनरूपी सूर्यकी कटूक्तिरूपी किरणोसे सन्तप्त होकर प्रायः नष्ट हो गयी होगी ॥३४॥ क्योकि सुकुमार प्राणी थोड़े ही कारणसे दुःखको प्राप्त हो जाते हैं जैसे कि मालतीकी माला दीपकके प्रकाशमात्रसे मुरझा जाती है ॥३५॥ जिसने अपने नेत्रोसे कभी सूर्य नही देखा ऐसी सीता हिंसक जन्तुओसे भरे हुए भयंकर वनमे क्या जीवित रह सकती है ? ॥३६॥ पापी मनुष्यकी जिह्वा दुष्ट भुजंगीके समान निरपराध लोगोको दूषित कर निवृत्त क्यो नही होती है ? ॥३७॥ आर्जवादि गुणोसे प्रशसनीय और अत्यन्त निर्मल सीता जैसी सतीका जो अपवाद करता है वह इस लोक तथा परलोक दोनो ही जगह दु.खको प्राप्त होता है ॥३८॥ अथवा अपने द्वारा बंचित कर्म आश्रित प्राणीके नष्ट करनेके लिए जहाँ सदा जागरूक रहते है वहाँ किससे क्या कहा जाय ? इस विषयमे तो यह संसार ही निन्दाका पात्र है ॥३९॥ इतना कहकर जिनका मन शोकके भारसे आक्रान्त हो गया था ऐसे नारदमुनि आगे कुछ भी नही कह सके अत. चुप बैठ गये ॥४०॥

अथानन्तर अंकुशने हँसकर कहा कि हे ब्रह्मन् ! भयकर वनमे सीताको छोड़ते हुए रामने कुलकी शोभाके अनुरूप कार्य नही किया ॥४१॥ लोकापवादके निराकरण करनेके अनेक उपाय हैं फिर उनके रहते हुए क्यो उन्होने इस तरह सीताको विद्ध किया—घायल किया ॥४२॥ अनग-लवण नामक दूसरे कुमारने भी कहा कि हे मुने ! यहाँसे अयोध्या नगरी कितनी दूर है ? इसके उत्तरमे भ्रमणके प्रेमी नारदने कहा कि वह अयोध्या यहाँसे एक सौ साठ योजन दूर है जिसमे चन्द्रमाके समान निर्मल प्रियाके स्वामी राम रहते है ॥४३–४४॥ यह सुन दोनो कुमारोने कहा कि हम उन्हे जीतनेके लिए चलते हैं। इस पृथिवीरूपी कुटियामे किसी दूसरेकी प्रधानता कैसे रह

---

१ -मप्यनुकारणात् म. । २. व्रजत्यवनिवर्तनम् म. ।

ऊचतुर्वज्रजङ्घं च मामास्मिन्वसुधातले । सुह्मसिन्धुकलिङ्गाद्या राजानः सर्वसाधनाः ॥४६॥
आज्ञाप्यन्तां यथा क्षिप्रमयोध्यागमनं प्रति । सज्जीभवत सर्वेण रणयोग्येन वस्तुना ॥४७॥
संलक्ष्यन्तां महानागा विमदा मदशालिनः । समुद्भूतमहाशब्दा वाजिनो वायुरंहसः ॥४८॥
योधाः कटकविख्याताः समरादपलायिनः । निरीक्ष्यन्तां सुशस्त्राणि मार्ज्यन्तां कण्टकादिकम् ॥४९॥
तूर्यनादा प्रदाप्यन्ता शङ्खनिःस्वानसंगताः । महाहवसमारम्भसम्भापणविचक्षणाः ॥५०॥
एवमाज्ञाप्य संग्रामससानन्दसमागतम् । आधाय मानसे धीरौ महासम्मदसंगतौ ॥५१॥
शक्राविव विनिश्चिन्त्य त्रिदशान् धरणीपतीन् । महाविभवसंपन्नौ यथास्वं तस्थतुः सुखम् ॥५२॥
ततस्तयोः समाकर्ण्य पद्मनामाभिषेणनम् । उत्कण्ठां बिभ्रती तुङ्गां रुरोद जनकात्मजा ॥५३॥
ततः सीतासमीपस्थं सिद्धार्थो नारदं जगौ । इदमीदृक्त्वयारब्धं कथं कार्यमशोभनम् ॥५४॥
संप्रोत्साहनशीलेन रणकौतुकिना परम् । त्वयेदं रचितं पश्य कुटुम्बस्य विभेदनम् ॥५५॥
स जगाद न जानामि वृत्तान्तमहमीदृशम् । यतः संकथनं न्यस्तं पद्मलक्ष्मणगोचरम् ॥५६॥
एवं गतेऽपि मा भैषीर्नेह किंचिदसुन्दरम् । भविष्यतीति जानामि स्वस्थतां नीयतां मनः ॥५७॥
ततः समीपतां गत्वा तां कुमाराववोचताम् । अम्बेदं रुद्यते कस्माद्द्राक्षेपविवर्जितम् ॥५८॥
प्रतिकूलं कृत केन केन वा परिभाषितम् । दुर्मानसस्य कस्याद्य करोम्यसुवियोजनम् ॥५९॥
अनौषधकरः कोऽसौ क्रीडनं कुरुतेऽहिना । कोऽसौ ते मानवः शोकं करोति त्रिदशोऽपि वा ॥६०॥
कस्यासि कुपिता मातर्जनस्य गलितायुषः । प्रसादः क्रियतामम्ब शोकहेतुनिवेदने ॥६१॥

सकती है ? ॥४५॥ उन्होने वज्रजंघसे भी कहा कि हे माम ! इस वसुधा तलपर जो सुह्म, सिन्धु तथा कलिंग आदि सर्वसाधनसम्पन्न राजा हैं उन्हे आज्ञा दी जाय कि आप लोग अयोध्याके प्रति चलनेके लिए रणके योग्य सब वस्तुएँ लेकर शीघ्र ही तैयार हो जावे ॥४६–४७॥ मद रहित तथा मद सहित बडे-बड़े हाथी, महाशब्द करनेवाले तथा वायुके समान शीघ्रगामी घोड़े । सेनामे प्रसिद्ध तथा युद्धसे नही भागनेवाले योद्धा देखे जावे, उत्तम शस्त्रोंका निरीक्षण किया जाय, कवच आदि साफ किये जावे और महायुद्धके प्रारम्भकी खवर देनेमें निपुण तथा शखके शब्दोसे मिश्रित तुरहीके शब्द दिलाये जावें ॥४८–५०॥ इस प्रकार राजाओको आज्ञा दे जो प्राप्त हुए युद्ध सम्बन्धी आनन्दको हृदयमे धारण कर अत्यधिक हर्षसे युक्त थे ऐसे धीर-वीर तथा महावैभवसे सम्पन्न दोनो कुमार उन इन्द्रोंके समान जो देवोंको आज्ञा देकर निश्चिन्त हो जाते हैं निश्चिन्त हो यथा योग्य सुखसे विद्यमान हुए ॥५१–५२॥

तदनन्तर उनकी रामके प्रति चढ़ाई सुन अत्यधिक उत्कण्ठाको धारण करती हुई सीता रोने लगी ॥५३॥ तत्पश्चात् सीताके समीप खड़े नारदसे सिद्धार्थने कहा कि तुमने यह ऐसा अशोभन कार्य क्यों प्रारम्भ किया ? ॥५४॥ रणके कौतुकी एवं रणका प्रोत्साहन देनेवाले तुमने देखो यह कुटुम्वका बड़ा भेद कर दिया है—घरमें बड़ी फूट डाल दी है ॥५५॥ नारदने कहा कि मै इस वृत्तान्तको ऐसा थोड़े ही जानता था । मैने तो केवल उनके सामने राम-लक्ष्मण सम्बन्धी चर्चा ही रक्खी थी ॥५६॥ किन्तु ऐसा होनेपर भी डरो मत कुछ भी अशोभन कार्य नही होगा यह मै जानता हूँ अतः मनको स्वस्थ करो ॥५७॥ तदनन्तर दोनों कुमार समीप जाकर सीतासे वोले कि हे अम्ब ! क्यो रो रही हो ? विना किसी विलम्वके शीघ्र ही कहो ॥५८॥ किसने तुम्हारे विरुद्ध काम किया हे अथवा किसने तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहा है ? आज किस दुष्ट हृदयके प्राणोका वियोग करूँ ? ॥५९॥ ओषधि जिसके हाथमे नही ऐसा वह कौन मनुष्य साँपके साथ क्रीड़ा करता है ? वह कौन मनुष्य अथवा देव है जो तुम्हे शोक उत्पन्न करता है ? ॥६०॥ हे मातः ! आज किस क्षीणायुष्क पर कुपित हुई हो ? हे अम्ब ! शोक-

एवमुक्ता सती देवी जगाद विद्रुतास्रका । न कस्यचिदहं पुत्रौ कुपिता कमलेक्षणौ ॥६२॥
भवत्पितुर्मया ध्यातमद्य तेनास्मि दुःखिता । रोदिमि प्रबलायातनयनोदकसंततिः ॥६३॥
उक्तवत्यामिदं तस्यां तदा श्रेणिक वीरयोः । सिद्धार्थो न पितास्माकमिति बुद्धिः समुद्गता ॥६४॥
ततस्तावूचतुर्मातः कोऽस्माकं जनकः क्व वा । इति पृष्टागदत्सीता स्ववृत्तान्तमशेषतः ॥६५॥
स्वस्य संभवमाचख्यौ रामसंभवमेव च । अरण्यागमनं चैव हृतिमागमनं तथा ॥६६॥
यथा देवर्षिणा ख्यातं तच्च सर्वं सविस्तरम् । वर्त्ततेऽद्यापि कः कालो वृत्तान्तस्य निगूहने ॥६७॥
एतदुक्त्वा जगौ पुत्रौ भवतोर्गर्भजातयोः । किवदन्तीभयेनाहं युष्मत्पित्रोज्झिता वने ॥६८॥
तत्र सिंहरवाख्यायामटव्यां कृतरोदना । वारणार्थं गतेनाहं वज्रजङ्घेन वीक्षिता ॥६९॥
अनेन प्राप्तनागेन विनिवर्त्तनकारिणा । विशुद्धशीलरत्नेन श्रावकेण महात्मना ॥७०॥
अहं स्वसेति सम्भाष्य करुणासक्तचेतसा । आनीतेदं निजं स्थानं पूजया चानुपालिता ॥७१॥
तस्यास्य जनकस्येव भवने विभवान्विते । भवन्तौ संप्रसूताऽहं पद्मनाभशरीरजौ ॥७२॥
तेनेयं पृथिवी वत्सौ हिमवत्सागरावधिः । लक्ष्मणानुजयुक्तेन निहिता परिचारिका ॥७३॥
महाहवेऽधुना जाते श्रोष्यामि किमशोभनम् । नाथस्य भवतोः किंवा किं वा देवरगोचरम् ॥७४॥
अनेन ध्यानभारेण परिपीडितमानसा । अहं रोदिमि सत्पुत्रौ कुतोऽन्यदिह कारणम् ॥७५॥
तच्छ्रुत्वा परमं प्राप्तौ सम्मदं स्मितकारिणौ । विकासिवदनाम्भोजावूचतुर्लवणाङ्कुशौ ॥७६॥

का कारण बतलानेकी प्रसन्नता करो ॥६१॥ इस प्रकार कहने पर सीतादेवीने अश्रु धारण करते हुए कहा कि हे कमललोचन पुत्रो ! मै किसी पर कुपित नही हूँ ॥६२॥ आज मुझे तुम्हारे पिताका स्मरण हो आया है इसीलिए दुःखी हो गयी हूँ और इसीलिए बलात् अश्रु डालती हुई रो रही हूँ ॥६३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! सीताके इस प्रकार कहने पर उन दोनो वीरोकी यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि सिद्धार्थ हमारा पिता नही है ॥६४॥ तत्पश्चात् उन दोनोंने पूछा कि हे मातः ! हमारा पिता कौन है ? कहाँ है ? इस प्रकार पूछने पर सीताने अपना सब वृत्तान्त कह दिया ॥६५॥ अपना जन्म, रामका जन्म, वनमे जाना, वहाँ हरण होना तथा पुनः वापिस आना आदि जैसा वृत्तान्त नारदने कहा था वैसा सब विस्तारसे कह सुनाया क्योकि वृत्तान्तके छिपानेका अब कौन-सा अवसर है ? ॥६६–६७॥

यह कहकर सीताने कहा कि जब तुम दोनो गर्भमे थे तब लोकापवादके भयसे तुम्हारे पिताने मुझे वनमे छोड़ दिया था ॥६८॥ मै उस सिंहरवा नामकी अटवीमे रो रही थी कि हाथी पकड़नेके लिए गये हुए वज्रजंघने मुझे देखा ॥६९॥ जो हाथी प्राप्त कर अटवीसे लौट रहा था, जो विशुद्ध शक्तिरूपी रत्नका धारक था, महात्मा था एवं दयालुचित्त था, ऐसा यह श्रावक वज्रजघ मुझे बहन कह इस स्थान पर ले आया और बढे सन्मानके साथ उसने हमारा पालन किया ॥७०–७१॥ जो तुम्हारे पिताके ही समान है ऐसे इस वज्रजंघके वैभवशाली घरमे मैने तुम दोनोको जन्म दिया है। तुम दोनो श्रीरामके शरीरसे उत्पन्न हो ॥७२॥ हे वत्सो ! लक्ष्मण नामक छोटे भाईसे सहित उन श्रीरामने हिमालयसे लेकर समुद्रपर्यन्तकी इस समस्त पृथिवीको अपनी दासी बनाया है ॥७३॥ अब आज उनके साथ तुम्हारा महायुद्ध होनेवाला है सो मै क्या पतिकी अमांगलिक वार्ता सुनूँगी ? या तुम्हारी ? अथवा देवर की ? ॥७४॥ इसी ध्यानके कारण खिन्न चित्त होनेसे मै रो रही हूँ। हे भले पुत्रो ! यहाँ और दूसरा कारण क्या हो सकता है ? ॥७५॥

यह सुनकर लवणांकुश परम हर्षको प्राप्त हो आश्चर्य करने लगे, और उनके मुखकमल खिल उठे। उन्होने कहा कि अहो ! वह सुधन्वा, लोकश्रेष्ठ, श्रीमान्, विशाल एव उज्ज्वल कीर्तिके

अहो सोऽस्मौ पितास्माकं [1]सुधन्वा लोकपुङ्गवः। श्रीमान् विशालसत्कीर्तिः कृतानेकमहाद्भुतः ॥७७॥
विषादं मा गम मातर्वने [2]त्यक्ताहमित्यतः। भग्नां मानोन्नतिं पश्य रामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् ॥७८॥
सीताब्रवीदलमलं विरोद्धुं गुरुणा सुतौ। न वर्तते इदं कर्तुं व्रजतां सौम्यचित्तताम् ॥७९॥
महाविनययोगेन समागत्य कृतानतौ। पितरं [3]पश्यतं वत्सौ मार्गोऽयं नयसंगतः ॥८०॥
ऊचतुस्तौ रिपुस्थानप्राप्तं मातः कथं नु तम्। ब्रूवो गत्वा वचः क्लीबमावां ते तनयाविति ॥८१॥
वरं मरणमावाभ्यां प्राप्तं संग्राममूर्द्धनि। न तु चावितमीदृक्षं प्रवीरजननिन्दितम् ॥८२॥
स्थितायामथ वैदेह्यां जोषं चिन्तार्तचेतसि। अभिषेकादिकं कृत्यं भेजाते लवणाङ्कुशौ ॥८३॥
श्रितमङ्गलसर्वौ च कृतसिद्धनमस्कृती। [4]प्रसान्त्व्य मातरं किंचित् प्रणम्य च सुमङ्गलौ ॥८४॥
आरूढौ द्विरदौ चन्द्रसूर्यौ वा नगमस्तकम्। प्रस्थितावभिसाकेतं लङ्कां वा रामलक्ष्मणौ ॥८५॥
ततः सन्नाहशब्देन ज्ञात्वा निर्गमनं तयोः। क्षिप्रं योधसहस्राणि निर्जग्मुः पौण्डरीकतः ॥८६॥
परस्परप्रतिस्पर्द्धासमुत्कर्षितचेतसाम्। सैन्य दर्शयतां राज्ञां संघट्टः परमोऽभवत् ॥८७॥
स्वैरं योजनमात्रं तौ महाकटकसंगतौ। पालयन्तौ महीं सम्यङ्[5]नाशस्योपशोभिताम् ॥८८॥
अग्रतः प्रसृतोदारप्रतापौ परमेश्वरौ। प्रयातौ विषयन्यस्तैः पूज्यमानौ नरेश्वरैः ॥८९॥
महाकुठारहस्तानां तथा कुद्दालधारिणाम्। पुंसां दशसहस्राणि सम्प्रयान्ति तदग्रतः ॥९०॥
छिन्दन्तः पादपादींस्ते जनयन्ति समन्ततः। उच्चावचविनिर्मुक्तां महीं दर्पणसन्निभाम् ॥९१॥

धारक तथा अनेक महान् आश्चर्यके करनेवाले श्रीराम हमारे पिता है ॥७६–७७॥ हे मातः! 'मै वनमे छोड़ी गयी हूँ' इस बातका विषाद मत करो। तुम शीघ्र ही राम-लक्ष्मणका अहंकार खण्डित देखो ॥७८॥ तब सीताने कहा कि हे पुत्रो! पिताके साथ विरोध करना रहने दो। यह करना उचित नही है। तुम लोग शान्तचित्तताको प्राप्त करो ॥७९॥ हे वत्सो! बड़ी विनयके साथ जाओ और नमस्कार कर पिताके दर्शन करो यही मार्ग न्यायसंगत है ॥८०॥

यह सुन लवणांकुशने कहा कि वे हमारे शत्रुके स्थानको प्राप्त है अतः हे मातः! हम लोग जाकर यह दीन वचन उनसे किस प्रकार कहे कि हम तुम्हारे लड़के हैं ॥८१॥ संग्रामके अग्रभागमे यदि हम लोगोको मरण प्राप्त होता है तो अच्छा है परन्तु वीर मनुष्योके द्वारा निन्दित ऐसा विचार रखना अच्छा नही है ॥८२॥ अथानन्तर जिसका चित्त चिन्तासे दुःखी हो रहा था ऐसी सीता चुप हो रही और लवणांकुशने स्नान आदि कार्य सम्पन्न किये ॥८३॥ तत्पश्चात् जिन्होने मंगलमय मुनिसंघकी सेवा की थी, सिद्ध भगवान्को नमस्कार किया था तथा माताको सान्त्वना देकर प्रणाम किया था ऐसे मंगलमय वेषको धारण करनेवाले दोनो कुमार दो हाथियो पर उस प्रकार आरूढ़ हुए जिस प्रकार कि चन्द्रमा और सूर्य पर्वतके शिखर पर आरूढ होते हैं। तदनन्तर दोनोने अयोध्याकी ओर उस तरह प्रयाण किया जिस तरह कि राम-लक्ष्मणने लंकाकी ओर किया था ॥८४–८५॥ तत्पश्चात् तैयारीके शब्दसे उन दोनोका निर्गमन जानकर हजारो योधा शीघ्र ही पौण्डरीकपुरसे बाहर निकल पडे ॥८६॥ परस्परकी प्रतिस्पर्धासे जिनका चित्त बढ़ रहा था ऐसे अपनी-अपनी सेनाएँ दिखलानेवाले राजाओमे बड़ी धक्कम-धक्का हो रही थी ॥८७॥ तदनन्तर जो एक योजन तक फैली हुई बड़ी भारी सेनासे सहित थे जो नाना प्रकारके धान्यसे सुशोभित पृथिवीका अच्छी तरह पालन करते थे, जिनका उत्कृष्ट प्रताप आगे-आगे चल रहा था और जो उन-उन देशोमे स्थापित राजाओके द्वारा पूजा प्राप्त कर रहे थे, ऐसे दोनो भाई प्रजाकी रक्षा करते हुए चले जा रहे थे ॥८८–८९॥ बडे-बडे कुल्हाड़े और कुदाले धारण करनेवाले दश हजार पुरुष उनके आगे-आगे चलते थे ॥९०॥ वे वृक्षो आदिको काटते हुए

---

१. सुधन्वी म.। २ त्यक्त्वाह-म। ३ पश्यत म.। ४ प्रशान्त्य म। ५ नाशस्योप -म।

महिपोष्ट्रमहोक्षाद्या कोशसंभारवाहिनः । प्रयान्ति प्रथमं [1]गन्त्रीपत्तयश्च मृदुस्वनाः ॥९२॥
ततः पदातिसंघाता युवसारङ्गविभ्रमाः । पश्चात्तुरङ्गवृन्दानि कुर्वन्त्युत्तमवल्गितम् ॥९३॥
अथ काञ्चनकक्षाभिर्नितान्तकृतराजनाः । महाघण्टाकृतस्वानाः शङ्खचामरधारिणः ॥९४॥
बुद्बुदादर्शलम्बूपचारुवेषा महोद्धताः । अयस्ताम्रसुवर्णादिबद्धशुभ्रमहारदाः ॥९५॥
रत्नचामीकराद्यात्मकण्ठमालाविभूषिताः । चलत्पर्वतसंकाशा नानावर्णकस्रगिणः ॥९६॥
केचिन्निर्झरनिश्च्योतद्गण्डा सु कुलितेक्षणा. । हृष्टा दानोद्गमाः केचिद्वेगचण्डा घनोपमाः ॥९७॥
अधिष्ठिताः सुसन्नाहैर्नानाशास्त्रविशारदैः । समुद्भूतमहाशब्दैः पुरुषैः पुरुदीप्तिभिः ॥९८॥
स्वान्यसैन्यसमुद्भूतनिनादज्ञानकोविदा. । सर्वशिक्षासुसम्पन्ना दन्तिनश्चारुविभ्रमाः ॥९९॥
बिभ्राणा कवचं चारु पश्चाद्विन्यस्तखेटकाः । सादिनस्तत्र राजन्ते परमं कुन्तपाणयः ॥१००॥
अश्ववृन्दखुराघातसमुद्भूतेन रेणुना । नभ. पाण्डुरजीमूतचयैरिव [2]समन्ततम् ॥१०१॥
शस्त्रान्धकारपिहिता नानाविभ्रमकारिणः । [3]अहयव. समुद्वृत्ताः प्रवर्त्तन्ते पदातयः ॥१०२॥
शयनासनताम्बूलगन्धमाल्यैर्मनोहरैः । न कश्चिद् दु.स्थितस्तत्र वस्त्राहारविलेपनैः ॥१०३॥
नियुक्ता राजवाक्येन संततः पथि मानवा । दिने दिने महादक्षा बद्धकक्षाः सुचेतसः ॥१०४॥
मधु शीधु घृत वारि नानान्नं रसवत्परम् । परमादरसंपन्नं प्रयच्छन्ति समन्तत· ॥१०५॥

ऊँची-नीची भूमिको सब ओरसे दर्पणके समान करते जाते थे ॥९१॥ सबसे पहले खजानेके भारको धारण करनेवाले भैंसे ऊँट तथा बडे-बडे बैल जा रहे थे। फिर कोमल शब्द करते हुए गाड़ियोके सेवक चल रहे थे। तदनन्तर तरुण हरिणके समान उछलनेवाले पैदल सैनिकोके समूह और उनके बाद उत्तम चेष्टाएँ करनेवाले घोड़ोके समूह जा रहे थे ॥९२–९३॥ उनके पश्चात् जो सुवर्णकी मालाओसे अत्यधिक सुशोभित थे, जिनके गलेमे बँधे हुए बडे-बडे घण्टा शब्द कर रहे थे, जो शंखो और चामरोको धारण कर रहे थे, काँचके छोटे-छोटे गोले तथा दर्पण तथा फन्नूसों आदिसे जिनका वेष बहुत सुन्दर जान पड़ता था, जो महाउद्दण्ड थे, जिनकी सफेद रंगकी बडी-बडी खीसे लोहा तामा तथा सुवर्णादिसे जडी हुई थी, जो रत्न तथा सुवर्णादिसे निर्मित कण्ठ-मालाओसे विभूषित थे, चलते-फिरते पर्वतोके समान जान पड़ते थे, नाना रंगके चित्रामसे सहित थे, जिनमेसे किन्हीके गण्डस्थलोंसे अत्यधिक मद झर रहा था, कोई नेत्र बन्द कर रहे थे, कोई हर्षसे परिपूर्ण थे, किन्हीके मदकी उत्पत्ति होनेवाली थी, कोई वेगसे तीक्ष्ण थे और कोई मेघोके समान थे, जो कवच आदिसे युक्त, नाना शास्त्रोमे निपुण, महाशब्द करनेवाले और अत्यन्त तेजस्वी पुरुषोसे अधिष्ठित थे, जो अपनी तथा परायी सेनामे उत्पन्न हुए शब्दके जाननेमे निपुण थे, सर्वप्रकारकी शिक्षासे सम्पन्न थे और सुन्दर चेष्टाको धारण करनेवाले थे ऐसे हाथी जा रहे थे ॥९४–९९॥ उनके पश्चात् जो सुन्दर कवच धारण कर रहे थे, जिन्होने पीछेकी ओर ढाल टाँग रक्खी थी तथा भाले जिनके हाथोमे थे ऐसे घुड़सवार सुशोभित हो रहे थे ॥१००॥ अश्व-समूहके खुराघातसे उठी धूलिसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो सफेद मेघोके समूहसे ही व्याप्त हो गया हो ॥१०१॥ उनके पश्चात् जो शस्त्रोके अन्धकारसे आच्छादित थे, नाना प्रकारकी चेष्टाओको करनेवाले थे, अहंकारी थे तथा उदात्त आचारसे युक्त थे ऐसे पदाति चल रहे थे॥१०२॥ उस विशाल सेनामे शयन, आसन, पान, गन्ध, माला तथा मनोहर वस्त्र, आहार और विलेपन आदिसे कोई दु.खी नही था अर्थात् सबके लिए उक्त पदार्थ सुलभ थे ॥१०३॥ राजाकी आज्ञानुसार नियुक्त होकर जो मार्गमे सब जगह व्याप्त थे, अत्यन्त चतुर थे, कार्य करनेके लिए जो सदा कमर कसे रखते थे और उत्तम हृदयसे युक्त थे ऐसे मनुष्य प्रतिदिन बडे आदरके साथ

---

१. मन्त्री म । २. समन्तत म । ३. अहंकारयुक्ताः 'अहशुभमोर्युस्' इति युस्प्रत्यय. ।

नादर्शि मलिनस्तत्र न दीनो न बुभुक्षितः । तृषितो न कुवस्त्रो वा जनो न च विचिन्तकः ॥१०६॥
नानाभरणसंपन्नाश्चारुवेषाः सुकान्तयः । पुरुषास्तत्र नार्यश्च रेजु सैन्यमहार्णवे ॥१०७॥
विभूत्या परया युक्तावेवं जनकजात्मजौ । साकेतविषयं प्राप्ताविन्द्राविव सुरास्पदम् ॥१०८॥
यवपुण्ड्रेक्षुगोधूमप्रभृत्युत्तमसम्पदा । सस्येन शोभिना यत्र वसुधान्तरवर्जिता ॥१०९॥
सरितो राजहंसौघैः सरांसि कमलोत्पलैः । पर्वता विविधैः पुष्पैर्गीतैरुद्यानभूमयः ॥११०॥
नैचिकीमहिषीव्रातैर्महोक्षरुरहारिभिः । गोपीभिर्मञ्चसक्ताभिर्यत्र भान्ति वनानि च ॥१११॥
सीमान्तावस्थिता यत्र ग्रामा नगरसंनिभाः । त्रिविष्टपपुराभानि राजन्ते नगराणि च ॥११२॥
स्वैरं तमुपभुञ्जानौ विषयं विष्यप्रियम् । परेण तेजसा युक्तौ गच्छन्तौ लवणाङ्कुशौ ॥११३॥
दन्तिनां रणचण्डानां गण्डनिर्गतवारिणा[2] । कर्दमत्वं समानीता सकलाः पथि पांसवः ॥११४॥
भृशं पटुखुराघातैर्वाजिनां चञ्चलात्मनाम् । जर्जरत्वमिवानीता कोसलाविषयावनिः ॥११५॥
ततः सन्ध्याभ्रसासक्तघनौघेनेव संगतम् । दूरे नभः समालक्ष्य जगदुर्लवणाङ्कुशौ ॥११६॥
किमेतद्दृश्यते माम तुङ्गशोणमहाद्युति[3] । वज्रजङ्घस्ततोऽवोचत्परिज्ञाय चिरादिव ॥११७॥
देवावेषा विनीताख्या दृश्यते नगरी परा । हेमप्राकारसंजाता यस्याश्छायेयमुन्नता ॥११८॥
अस्यां हलधरः श्रीमानास्तेऽसौ [4]भवतोः पिता । यस्य नारायणो भ्राता शत्रुघ्नश्च महागुणः ॥११९॥
शौर्यमानसमेताभिः कथाभिरितिसक्तयोः[5] । सुखेन गच्छतोरासीदन्तराले तयोर्नदी ॥१२०॥

सबके लिए मधु, स्वादिष्ट पेय, घी, पानी और नाना प्रकारके रसीले भोजन सब ओर प्रदान करते रहते थे ॥१०४–१०५॥ उस सेनामे न तो कोई मनुष्य मलिन दिखाई देता था, न दीन, न भूखा, न प्यासा, न कुत्सित वस्त्र धारण करनेवाला और न चिन्तातुर ही दिखाई पड़ता था ॥१०६॥ उस सेनारूपी महासागरमे नाना आभरणोसे युक्त, उत्तम वेशसे सुसज्जित एव उत्तम कान्तिसे युक्त पुरुप और स्त्रियाँ सुशोभित थी ॥१०७॥ इस प्रकार परमविभूतिसे युक्त सीताके दोनो पुत्र उस तरह अयोध्याके उस देशमे पहुँचे जिस तरह कि इन्द्र देवोके स्थानमे पहुँचते है ॥१०८॥ जौ, पौंडे, ईख तथा गेहूँ आदि उत्तमोत्तम धान्योसे जहाँकी भूमि निरन्तर सुशोभित है ॥१०९॥ वहाँकी नदियाँ राजहंसोके समूहोसे, तालाव कमलो और कुवलयोसे, पर्वत नाना प्रकारके पुष्पोंसे और बाग-बगीचोकी भूमियाँ सुन्दर संगीतोंसे सुशोभित हैं ॥११०॥ जहाँके वन बड़े-बड़े बैलोके शब्दोसे, सुन्दर गायो और भैसोके समूहसे तथा मचानपर बैठी गोपालिकाओसे सुशोभित हैं ॥१११॥ जहाँकी सीमाओपर स्थित गाँव नगरोके समान और नगर स्वर्गपुरीके समान सुशोभित हैं ॥११२॥ इस तरह पंचेन्द्रियके विषयोसे प्रिय उस देशका इच्छानुसार उपभोग करते हुए, परमतेजके धारक लवणांकुश आनन्दसे चले जाते थे ॥११३॥ रणके कारण तीव्र क्रोधको प्राप्त हुए हाथियोके गण्डस्थलसे झरनेवाले जलसे मार्गकी समस्त धूलि कीचड़पनेको प्राप्त हो गयी थी ॥११४॥ चचल घोड़ोंके तीक्ष्ण खुराघातसे उस कोमल देशकी भूमि मानो अत्यन्त जर्जर अवस्थाको प्राप्त हो गयी थी ॥११५॥

तदनन्तर लवणांकुश, दूरसे ही आकाशको सन्ध्याकालीन मेघोके समूह सहित जैसा देखकर बोले कि हे माम ! जिसकी लाल-लाल विशाल कान्ति बहुत ऊँची उठ रही है ऐसा यह क्या दिखाई दे रहा है ? यह सुन वज्रजघने बहुत देरतक पहिचाननेके बाद कहा कि हे देवो ! यह वह उत्कृष्ट अयोध्या नगरी दिखाई दे रही है जिसके सुवर्णमय कोटकी यह कान्ति इतनी ऊँची उठ रही है ॥११६—११८॥ इस नगरीमे वह श्रीमान् बलभद्र रहते हैं जो कि तुम दोनोके पिता हैं तथा नारायण और महागुणवान् शत्रुघ्न जिनके भाई हैं ॥११९॥ इस तरह शूर-वीरता

१. नैत्रिकी—म , नैचिकी = धेनु. । २. वारिणा म । ३ द्युतिः म. । ४ भवत. म. । ५. रात्तसक्तयो. म. ।

[1]प्रवृत्तवेगमात्रेण नगरी ग्रहणैषिणोः। जातासावन्तरे तृष्णा सिद्धिप्रस्थितयोरिव ॥१२१॥
सैन्यमावासितं तत्र परिश्रममुपागतम्। सुरसैन्यमिवोदारमुपनन्दननिम्नगाम् ॥१२२॥
अथ श्रुत्वा परानीकं स्थितमासन्नगोचरे। किंचिद्विस्मयमापन्नावूचतुः पद्मलक्ष्मणौ ॥१२३॥
त्वरितं क. पुनर्मर्तुमय वाञ्छति मानवः। युद्धापदेशमाश्रित्य यदेत्यन्तिकमावयोः ॥१२४॥
ददौ नारायणश्चाज्ञां विराधितमहीभृते। क्रियतां साधनं सज्जं युद्धाय क्षेपवर्जितम् ॥१२५॥
वृषनागप्लवङ्गादिकेतनाः खेचराधिपाः। क्रियन्तामुदितज्ञाना संप्राप्ते रणकर्मणि ॥१२६॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा विराधितखगेश्वरः। नृपान् किष्किन्धनाथाद्यान् समाहूय समुद्यतः ॥१२७॥
दूतदर्शनमात्रेण सर्वे ते खेचरेश्वराः। अयोध्यानगरी प्राप्ता महासाधनसंगताः ॥१२८॥
अथात्यन्ताकुलात्मानौ तदा सिद्धार्थनारदौ। प्रभामण्डलराजाय गत्वा ज्ञापयतां द्रुतम् ॥१२९॥
श्रुत्वा स्वसुर्यथा वृत्तं वात्सल्यगुणयोगतः। बभूव परमं दुःखी प्रभामण्डलमण्डितः ॥१३०॥
विषादं विस्मयं हर्षं बिभ्राणश्च त्वरान्वितः। आरुह्य मनसा तुल्यं विमानं पितृसंगतः ॥१३१॥
समेतः सर्वसैन्येन किंकर्तव्यत्वविह्वलः। पौण्डरीकपुरं चैव प्रस्थितः स्नेहनिर्भरः ॥१३२॥
प्रभामण्डलमायातं जनकं मातरं तथा। दृष्ट्वा सीता नवीभूतशोकोत्थाय त्वरान्विता ॥१३३॥
विप्रलापं परिष्वज्य चक्रेऽस्त्रकृतदुर्दिना। निर्वासनादिकं दुःखं वेदयन्ती सुविह्वला ॥१३४॥
सान्त्वयित्वातिकृच्छ्रेण तां प्रभामण्डलो जगौ। देवि संशयमापन्नौ पुत्रौ ते साधु नो कृतम् ॥१३५॥

और गौरवसे सहित कथाओंसे जो अत्यन्त प्रसन्न थे ऐसे सुखसे जाते हुए उन दोनोंके बीच नदी आ पड़ी ॥१२०॥ जो अपने चालू वेगसे ही उस नगरीको ग्रहण करनेकी इच्छा रखते थे ऐसे उन दोनों वीरोंके बीच वह नदी उस प्रकार आ पड़ी जिस प्रकार कि मोक्षके लिए प्रस्थान करनेवालेके बीच तृष्णा आ पड़ती है ॥१२१॥ जिस प्रकार नन्दन वनकी नदीके समीप देवोंकी विशाल सेना ठहरायी जाती है उसी प्रकार उस नदीके समीप थकी मांदी सेना ठहरा दी गयी ॥१२२॥

अथानन्तर शत्रुकी सेनाकी निकटवर्ती स्थानमें स्थिति सुन परम आश्चर्यको प्राप्त होते हुए राम लक्ष्मणने कहा कि ॥१२३॥ यह कौन मनुष्य शीघ्र ही मरना चाहता है जो युद्धका बहाना लेकर हम दोनोंके पास चला आ रहा है ॥१२४॥ लक्ष्मणने उसी समय राजा विराधितको आज्ञा दी कि विना किसी विलम्बके युद्धके लिए सेना तैयार की जाय ॥१२५॥ रणका कार्य उपस्थित हुआ है इसलिए वृष, नाग तथा वानर आदिकी पताकाओंको धारण करनेवाले विद्याधर राजाओं-को सब समाचारका ज्ञान कराओ अर्थात् उनके पास सब समाचार भेजे जाँय ॥१२६॥ 'जैसी आप आज्ञा करते हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कहकर राजा विराधित सुग्रीव आदि राजाओंको बुला-कर युद्धके लिए उद्यत हो गया ॥१२७॥ दूतके देखते ही वे सब विद्याधर राजा बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर अयोध्या आ पहुँचे ॥१२८॥

अथानन्तर जिनकी आत्मा अत्यन्त आकुल हो रही थी ऐसे सिद्धार्थ और नारदने शीघ्र ही जाकर भामण्डलके लिए सब खबर दी ॥१२९॥ बहन सीताका जो हाल हुआ था उसे सुनकर वात्सल्य गुणके कारण भामण्डल बहुत दुखी हुआ ॥१३०॥ तदनन्तर विषाद, विस्मय और हर्षको धारण करनेवाला, शीघ्रतासे सहित एवं स्नेहसे भरा भामण्डल, किंकर्तव्यविमूढ हो पिता सहित मनके समान शीघ्रगामी विमान पर आरूढ़ हो सब सेनाके साथ पौण्डरीकपुरकी ओर चला ॥१३१–१३२॥ भामण्डल, पिता और माताको आया देख जिसका शोक नया हो गया था ऐसी सीता शीघ्रतासे उठ सबका आलिंगन कर आँसुओंकी लगातार वर्षा करती हुई विलाप करने लगी। वह उस समय अपने परित्याग आदिके दुःखको बतलाती हुई विह्वल हो उठती थी ॥१३३–१३४॥ भामण्डलने उसे बड़ी कठिनाईसे सान्त्वना देकर कहा कि हे देवि! तेरे पुत्र

१ प्रवृत्ते ज।

हलचक्रधरौ ताभ्यामुपेत्य क्षोभितौ यतः। सुराणामपि यौ वीरौ न जय्यौ पुरुषोत्तमौ ॥१३६॥
कुमारयोस्तयोर्यावत्प्रमादो नोपजायते। व्रजामस्तावदेह्याशु चिन्तयामोऽभिरक्षणम् ॥१३७॥
ततः स्नुषासमेतासौ भामण्डलविमानगा। प्रवृत्ता तनयौ तेन वज्रजङ्घबलान्वितौ ॥१३८॥
रामलक्ष्मणयोर्लक्ष्मीं कोऽसौ वर्णयितुं क्षमः। इति श्रेणिक संक्षेपात्कीर्त्यमानमिदं शृणु ॥१३९॥
रथाश्वगजपादातमहार्णवसमावृतौ। वहन्ताविव संरम्भं निर्गतौ रामलक्ष्मणौ ॥१४०॥
अश्वयुक्तरथारूढः शत्रुघ्नश्च प्रतापवान्। हारराजितवक्षस्को निर्ययौ युद्धमानसः ॥१४१॥
ततोऽभवत्कृतान्तास्य. सर्वसैन्यपुरःसरः। मानी हरिणकेशीव नाकौकःसैनिकाग्रणीः ॥१४२॥
शरासनकृतच्छायं चतुरङ्गं महाद्युति। अप्रमेयं बलं तस्य प्रतापपरिवारणम् ॥१४३॥
सुरप्रासादसंकाशो मध्यस्तम्भोऽन्तकध्वजः। शात्रवानीकदुःप्रेक्षो रेजे तस्य महारथः ॥१४४॥
अनुमार्गं त्रिमूर्धोऽस्य ततो वह्निशिखो नृपः। सिंहविक्रमनामा च तथा दीर्घभुजश्रुतिः ॥१४५॥
सिंहोदरः सुमेरुश्च वालिखिल्यो महाबलः। प्रचण्डो रौद्रभूतिश्च शरभः स्यन्दनः पृथुः ॥१४६॥
कुलिशश्रवणश्चण्डो मारिदत्तो रणप्रियः। मृगेन्द्रवाहनाद्याश्च सामन्ता मत्तमानसाः ॥१४७॥
सहस्रपञ्चकेयत्ता नानाशस्त्रान्धकारिणः। निर्जग्मुर्वन्दिनां वृन्दैरुद्गीतगुणकोटयः ॥१४८॥
एवं कुमारकोव्योऽपि कुटिलानीकसंगताः। दृष्टप्रत्ययशस्त्राङ्गे क्षणविन्यस्तचक्षुषः ॥१४९॥
युद्धानन्दकृतोत्साहा नाथभक्तिपरायणाः। महाबलास्त्वरावन्तो निरीयुः कम्पितक्षमाः ॥१५०॥
रथैः केचिन्नगैस्तुङ्गैर्द्विपैः केचिद्घनोपमैः। महार्णवतरङ्गाभैस्तुरङ्गैरपरैः परे ॥१५१॥

संशयको प्राप्त हुए हैं। उन्होंने यह अच्छा नही किया ॥१३५॥ उन्होने जाकर उन बलभद्र और नारायणको क्षोभित किया है जो पुरुषोत्तम वीर देवोंके भी अजेय हैं ॥१३६॥ जबतक उन कुमारो-का प्रमाद नही होता है तबतक आओ शीघ्र ही चले और रक्षाका उपाय सोचें ॥१३७॥ तदनन्तर पुत्र-वधुओं सहित सीता भामण्डलके विमानमे बैठ उस ओर चली जिस ओर कि वज्रजंघ और सेनासे सहित दोनों पुत्र गये थे ॥१३८॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते है कि श्रेणिक! राम लक्ष्मणकी पूर्ण लक्ष्मीका वर्णनके लिए कौन समर्थ है? इसलिए संक्षेपसे ही यहाँ कहते है सो सुन ॥१३९॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक रूप महासागरसे घिरे हुए राम लक्ष्मण क्रोधको धारण करते हुएके समान निकले ॥१४०॥ जो घोड़े जुते हुए रथपर सवार था, जिसका वक्षःस्थल हारसे सुशोभित था तथा जिसका मन युद्धमे लग रहा था ऐसा प्रतापी शत्रुघ्न भी निकल कर बाहर आया ॥१४१॥ जिस प्रकार हरिणकेशी देव सैनिकोंका अग्रणी होता है उसी प्रकार मानी कृतान्तवक्त्र सब सेनाका अग्रसर हुआ ॥१४२॥ जिसमे धनुषोकी छाया हो रही थी तथा जो महाकान्तिसे युक्त थी ऐसी उसकी अपरिमित चतुरंगिणी सेना उसके प्रतापको बढ़ा रही थी ॥१४३॥ जिसमे बीचके खम्भाके ऊपर ध्वजा फहरा रही थी, तथा जो शत्रुओंकी सेनाके द्वारा दुर्निरीक्ष्य था ऐसा उसका बड़ा भारी रथ देवोके महलके समान सुशोभित हो रहा था ॥१४४॥ कृतान्तवक्त्रके पीछे त्रिमूर्ध, फिर अग्नि-शिख, फिर सिंहविक्रम, फिर दीर्घबाहु, फिर सिंहोदर, सुमेरु, महाबलवान् वालिखिल्य, अत्यन्त क्रोधी रौद्रभूति, शरभ, स्यन्दन, क्रोधी वज्रकर्ण, युद्धका प्रेमी मारिदत्त, और मदोन्मत्त मनके धारक मृगेन्द्रवाहन आदि पांच हजार सामन्त बाहर निकले। ये सभी सामन्त नाना शस्त्ररूपी अन्धकारको धारण करनेवाले थे तथा चारणोके समूह उनके करोड़ो गुणोका उद्गान कर रहे थे ॥१४५–१४८॥ इसी प्रकार जो कुटिल सेनाओसे सहित थी, जिन्होने विश्वासप्रद शस्त्रके ऊपर क्षण भरके लिए अपनी दृष्टि डाली थी, युद्ध सम्बन्धी हर्षसे जिनका उत्साह बढ़ रहा था, जो स्वामीकी भक्तिमे तत्पर थी, महाबलवान् थी, शीघ्रतासे सहित थी और जिन्होने पृथिवीको कम्पित कर दिया था ऐसी कुमारोकी अनेक श्रेणियां भी बाहर निकली ॥१४९–१५०॥ नाना प्रकारके

शिविकाशिखरैः केचिद्युग्यैर्योग्यतरैः परे । निर्ययुर्बहुवादित्रबधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥१५२॥
सकङ्कटशिरस्त्राणाः क्रोधालिङ्गितचेतसः । पुरादृष्टसुविक्रान्तप्रसादपरसेवकाः ॥१५३॥
ततः श्रुत्वा परानीकनिःस्वनं संभ्रमान्वितः । संनह्यतेति सैन्यं स्वं वज्रजङ्घः समादिशत् ॥१५४॥
ततस्ते परसैन्यस्य श्रुत्वा निःस्वनमावृताः । स्वयमेव सुसंनद्धास्तस्यान्तिकमुपागमन् ॥१५५॥
कालानल[1]प्रचण्डाङ्गवङ्गा नेपालवर्वराः । पौण्ड्रा मागधसौस्नाश्च पारशैलाः ससिंहलाः ॥१५६॥
कालिङ्गकाश्च राजानो रत्नाङ्काद्या महाबलाः । एकादशसहस्राणि युक्ता ह्युत्तमतेजसा[2] ॥१५७॥
एवं तत्परमं सैन्यं परसैन्यकृताननम् । संघट्टमुत्तमं प्राप्तं चलितं प्रचलायुधम् ॥१५८॥
तयोः समागमो रौद्रो देवासुरकृताद्भुतः । [3]बभूव सुमहाशब्दः क्षुब्धाकूपारयोरिव ॥१५९॥
प्रहर प्रथमं क्षुद्र मुञ्चास्त्रं किमुपेक्षसे । प्रहन्तुं प्रथमं शस्त्रं न मे जातु प्रवर्तते ॥१६०॥
प्रहृतं लघुना तेन विशदोऽभूद्भुजो मम । प्रहरस्व वपुर्गाढं दृढपीडितमुष्टिकः ॥१६१॥
किंचिद् व्रज पुरोमार्गं संचारो नास्ति संगरे । सायकस्यैनमुज्झित्वा छुरिकां वा समाश्रय ॥१६२॥
किं वेपसे न हन्मि त्वां मुञ्च मार्गमयं परः । भटो युद्धमहाकण्डूचपलोऽग्रेऽवतिष्ठताम् ॥१६३॥
किं वृथा गर्जसि क्षुद्र न वीर्यं वाचि तिष्ठति । अयं ते चेष्टितेनैव करोमि रणपूजनम् ॥१६४॥
एवमाद्या महारावा भटानां शौर्यशालिनाम् । निश्चेरुरतिगम्भीरा वदनेभ्यः समन्ततः ॥१६५॥

वादित्रोसे जिन्होने दिशाओंको वहरा कर दिया था, जो कवच और टोपसे सहित थे, जिनके चित्त क्रोधसे व्याप्त थे, तथा जिनके सेवक पूर्व दृष्ट, परम पराक्रमी और प्रसन्नता प्राप्त करनेमें तत्पर थे ऐसे कितने ही लोग पर्वतोके समान ऊँचे रथोसे, कितने ही मेघोके समान हाथियोसे, कितने ही महासागरकी तरगोके समान घोड़ोसे, कितने ही पालकीके शिखरोसे और कितने ही अत्यन्त योग्य वृषभोसे अर्थात् इनपर आरूढ हो बाहर निकले ॥१५१–१५३॥

तदनन्तर परकीय सेनाका शब्द सुनकर सम्भ्रमसे सहित वज्रजंघने अपनी सेनाको आदेश दिया कि तैयार होओ ॥१५४॥ तदनन्तर पर-सेनाका शब्द सुनकर कवच आदिसे आवृत सब सैनिक तैयार हो वज्रजंघके पास स्वयं आ गये ॥१५५॥ प्रलय कालकी अग्निके समान प्रचण्ड अंग, वंग, नेपाल, वर्वर, पौण्ड्र, मागध, सौस्न, पारशैल, सिंहक, कालिंगक तथा रत्नांक आदि महाबलवान् एवं उत्तम तेजयुक्त ग्यारह हजार राजा युद्धके लिए तैयार हुए ॥१५६–१५७॥ इस प्रकार जिसने शत्रुसेनाकी ओर मुख किया था, तथा जिसमे शस्त्र चल रहे थे ऐसी वह चंचल उत्कृष्ट सेना उत्तम संघट्टको प्राप्त हुई अर्थात् दोनो सेनाओमे तीव्र मुठभेड हुई ॥१५८॥ उन दोनो सेनाओमे ऐसा भयंकर समागम हुआ जो पहले हुए देव और असुरोके समागमसे भी कही आश्चर्यकारी था तथा क्षोभको प्राप्त हुए दो समुद्रोके समागमके समान महाशब्द कर रहा था ॥१५९॥ 'अरे क्षुद्र ! पहले प्रहार कर, शस्त्र छोड़, क्यो उपेक्षा कर रहा है ? मेरा शस्त्र पहले प्रहार करनेके लिए कभी प्रवृत्त नही होता ॥१६०॥ अरे, उसने हलका प्रहार किये इससे मेरी भुजा स्वस्थ रही आयी अर्थात् उसमे कुछ हुआ ही नही, जरा दृढ मुट्ठी कसकर शरीरपर जोरदार प्रहार कर ॥१६१॥ कुछ सामने आ, युद्धमे बाणका संचार ठीक नही हो रहा है, अथवा फिर बाणको छोड़ छुरी उठा ॥१६२॥ क्यो काँप रहा है ? मै तुझे नही मारता, मार्ग छोड़, युद्धकी महाखाजसे चपल यह दूसरा प्रबल योद्धा सामने खडा हो ॥१६३॥ अरे क्षुद्र ! व्यर्थ क्यो गरज रहा है ? वचनमे शक्ति नही रहती, यह मै तेरी चेष्टासे ही रणकी पूजा करता हूँ' ॥१६४॥ इन्हे आदि लेकर, पराक्रमसे सुशोभित योद्धाओके मुखोसे सब ओर अत्यन्त गम्भीर महाशब्द निकल रहे

---

१ कालानला. प्रचूडाङ्ग -म, ज. । २. तेजस. म । ३ वर्तते म ।

भूगोचरनरेन्द्राणां यथायातः समन्ततः । नभश्चरनरेन्द्राणां तथैवात्यन्तसंकुलः[1] ॥१६६॥
लवणाङ्कुशयोः पक्षे स्थितो जनकनन्दनः । वीरः पवनवेगश्च मृगाङ्को विद्युदुज्ज्वलः ॥१६७॥
महासैन्यसमायुक्ता सुरच्छन्दादयस्तथा । महाविद्याधरेशानां महारणविशारदाः ॥१६८॥
लवणाङ्कुशसंभूतिं श्रुतवानथ तत्त्वतः । उदूर्ध्वखेचरसामन्तसंघट्टश्लथतां नयन् ॥१६९॥
यथा कर्तव्यविज्ञानप्रयोगात्यन्तकोविदः । वैदेहीसुतयोः पक्षं वायुपुत्रोऽप्यशिश्रियत् ॥१७०॥
लाङ्गूलपाणिना तेन निर्यता[2] रामसैन्यतः । प्रभामण्डलवीरस्य चित्तमानन्दवत्कृतम् ॥१७१॥
विमानशिखरारूढां ततः संदृश्य जानकीम् । औदासीन्यं ययुः सर्वे विहायश्चरपार्थिवाः ॥१७२॥
कृताञ्जलिपुटाश्चैनां प्रणम्य परमादराः । तस्थुरावृत्य बिभ्राणा विस्मयं परमोन्नतम् ॥१७३॥
वित्रस्तहरिणीनेत्रा समुद्भूतप्रततनूरुहा । वैदेही बलयोः संगमालुलोके सवेपथुः ॥१७४॥
क्षोभयन्तावथोदारं तत्सैन्यं प्रचलद्ध्वजम्[3] । पद्मलक्ष्मीधरौ तेन प्रवृत्तौ लवणाङ्कुशौ ॥१७५॥
मृगनागारिसंलक्ष्यध्वजयोरनयोः पुरः । स्थितौ कुमारवीरौ तौ प्रतिपक्षमुखं श्रितौ ॥१७६॥
आपातमात्रकेणैव रामदेवस्य सद्ध्वजम् । अनङ्गलवणश्चापं निचकर्त्त कृतायुधः ॥१७७॥
विहस्य कार्मुकं यावत्सोऽन्यदादातुमुद्यतः । तावल्लवणवीरेण तरसा विरथीकृतः ॥१७८॥
अथान्यं रथमारुह्य काकुत्स्थोऽलघुविक्रमः । अनङ्गलवणं क्रोधात्ससर्प भ्रकुटीं वहन् ॥१७९॥
घर्मार्कदुर्निरीक्ष्याक्षः समुत्क्षिप्तशरासनः । चमरासुरनाथस्य वज्रीवासौ गतोऽन्तिकम् ॥१८०॥

थे ॥१६५॥ जिस प्रकार भूमिगोचरी राजाओंकी ओरसे भयंकर शब्द आ रहा था उसी तरह विद्याधर राजाओंकी ओरसे भी अत्यन्त महान् शब्द आ रहा था ॥१६६॥ भामण्डल, वीर पवनवेग, बिजलीके समान उज्ज्वल मृगांक तथा महाविद्याधर राजाओंके प्रतिनिधि देवच्छन्द आदि जो कि बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त तथा महायुद्धमें निपुण थे, लवणांकुशके पक्षमें खड़े हुए ॥१६७–१६८॥

अथानन्तर जब कर्तव्यके ज्ञान और प्रयोगमें अत्यन्त निपुण हनूमान्‌ने लवणांकुशकी वास्तविक उत्पत्ति सुनी तब वह विद्याधर राजाओंके संघट्टको शिथिल करता हुआ लवणांकुशके पक्षमें आ गया ॥१६९–१७०॥ लांगूल नामक शस्त्रको हाथमें धारण कर रामकी सेनासे निकलते हुए हनूमान्‌ने भामण्डलका चित्त हर्षित कर दिया ॥१७१॥ तदनन्तर विमानके शिखरपर आरूढ़ जानकीको देखकर सब विद्याधर राजा उदासीनताको प्राप्त हो गये ॥१७२॥ और हाथ जोड़ बड़े आदरसे उसे प्रणाम कर अत्यधिक आश्चर्यको धारण करते हुए उसे घेरकर खड़े हो गये ॥१७३॥ सीताने जब दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ देखी तब उसके नेत्र भयभीत हरिणीके समान चंचल हो गये, उसके शरीरमें रोमांच निकल आये और कँपकँपी छूटने लगी ॥१७४॥

अथानन्तर चंचल ध्वजाओंसे युक्त उस विशाल सेनाको क्षोभित करते हुए लवणांकुश जिस ओर राम-लक्ष्मण थे उसी ओर बढ़े ॥१७५॥ इस तरह प्रतिपक्ष भावको प्राप्त हुए दोनों कुमार सिंह और गरुड़की ध्वजा धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणके सामने आ डटे ॥१७६॥ आते ही के साथ अनंगलवणने शस्त्र चलाकर रामदेवकी ध्वजा काट डाली और धनुष छेद दिया ॥१७७॥ हँसकर राम जबतक दूसरा धनुष लेनेके लिए उद्यत हुए तबतक वीर लवणने वेगसे उन्हें रथ रहित कर दिया ॥१७८॥ अथानन्तर प्रबल पराक्रमी राम, भौंह तानते हुए, दूसरे रथपर सवार हो क्रोधवश अनंगलवणकी ओर चले ॥१७९॥ ग्रीष्म कालके सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य नेत्रोंसे युक्त एवं धनुष उठाये हुए राम अनंगलवणके समीप उस प्रकार पहुँचे जिस प्रकार कि असुर कुमारोंके इन्द्र चमरेन्द्रके पास इन्द्र पहुँचता

१. संकुलं ज. । २. निर्जिता म. । ३. प्रचलद्ध्वजे म. ।

स चापि जानकीसूनुरुद्धृत्य सशरं धनुः । रणप्राघूर्णकं दातुं पद्मनाभमुपागमत् ॥१८१॥
ततः परमभूद्युद्धं पद्मस्य लवणस्य च । परस्परं समुत्कृत्तशस्त्रसंघातकर्कशम् ॥१८२॥
महाहवो यथा जातः पद्मस्य लवणस्य च । अनुक्रमेण तेनैव लक्ष्मणस्याङ्कुशस्य च ॥१८३॥
एवं द्वन्द्वमभूद्युद्धं स्वामिरागमुपेयुषाम् । सामन्तानामपि स्वस्ववीरशोभाभिलाषिणाम् ॥१८४॥
अश्ववृन्दं क्वचित्तुङ्गं तरङ्गकृतरङ्गणम् । निरुद्धं परचक्रेण घनं चक्रे रणाङ्गणम् ॥१८५॥
क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं प्रतिपक्षं पुरःस्थितम् । निरीक्ष्य रणकण्डूलो निदधे मुखमन्यत ॥१८६॥
केचिन्नाथं समुत्सृज्य प्रविष्टाः परवाहिनीम् । स्वामिनाम समुच्चार्य निजघ्नुरभिलक्षितम् ॥१८७॥
अनादृतनराः केचिद्गर्वशौण्डा महाभटाः । प्रक्षरद्दानधाराणां करिणामरितासिताः ॥१८८॥
दन्तशय्यां समाश्रित्य कश्चित्समदन्तिनः । रणनिद्रासुखं[1] लेभे परमं भटसत्तमः ॥१८९॥
कश्चिदभ्यायतोऽश्वस्य भग्नशस्त्रो महाभटः । अदत्त्वा पदवीं प्राणान् ददौ स करताडनम् ॥१९०॥
प्रच्युतं प्रथमाघातान्नटं कश्चित्त्रपान्वितः । भणन्तमपि नो भूयः प्रजहार महामनाः ॥१९१॥
च्युतशस्त्रं क्वचिद्वीक्ष्य भटमच्युतमानसः । शस्त्रं दूरं परित्यज्य बाहुभ्यां योद्धुमुद्यतः ॥१९२॥
दातारोऽपि प्रविख्याता सदा समरवर्त्तिनः । प्राणानपि ददुर्वीरा न पुनः पृष्ठदर्शनम् ॥१९३॥
असृक्कर्दमनिर्मग्नचक्रकृच्छ्रचलद्रथम् । तोत्रप्रतोदनोद्युक्त त्वरितश्च न सारथिः ॥१९४॥
क्वणद्ध्वमसमुत्कृष्टस्यन्दनोन्मुक्तचीत्कृतम् । तुरङ्गजवविक्षिप्तभटसीमन्तिताविलम् ॥१९५॥

हैं ॥१८०॥ इधर सीतासुत अनंगलवण भी बाण सहित धनुष उठाकर रणकी भेंट देनेके लिए रामके समीप गये ॥१८१॥ तदनन्तर राम और लवणके बीच परस्पर कटे हुए शस्त्रोंके समूहसे कठिन परम युद्ध हुआ ॥१८२॥ इधर जिस प्रकार राम और लवणका महायुद्ध हो रहा था उधर उसी प्रकार लक्ष्मण और अंकुशका भी महायुद्ध हो रहा था ॥१८३॥ इसी प्रकार स्वामीके रागको प्राप्त तथा अपने-अपने वीरोंकी शोभा चाहनेवाले सामन्तोंमें भी द्वन्द्व-युद्ध हो रहा था ॥१८४॥ कहीं परचक्रसे रुका और तरंगोंके समान चचल ऊँचे घोडोंका समूह रणांगणको सघन कर रहा था—वहाँकी भीड़ बढा रहा था ॥१८५॥ कवच टूट गया था ऐसे सामने खड़े शत्रुको देख रणकी खाजसे युक्त योद्धा दूसरी ओर मुख कर रहा था ॥१८६॥ कितने ही योद्धा स्वामीको छोड़ शत्रुकी सेनामें घुस पड़े और अपने स्वामीका नाम लेकर जो भी दिखे उसे मारने लगे ॥१८७॥ तीव्र अहंकारसे भरे कितने ही महायोद्धा, मनुष्योंकी उपेक्षा कर मदस्रावी हाथियों-की शत्रुताको प्राप्त हुए ॥१८८॥ कोई एक उत्तम योद्धा मदोन्मत्त हाथीकी दन्तरूपी शय्याका आश्रय ले रणनिद्राके उत्तम सुखको प्राप्त हुआ अर्थात् हाथीके दाँतोंसे घायल होकर कोई योद्धा मरणको प्राप्त हुआ ॥१८९॥ जिसका शस्त्र टूट गया था ऐसे किसी योद्धाने सामने आते हुए घोड़ेके लिए मार्ग तो नहीं दिया किन्तु हाथ ठोककर प्राण दे दिये ॥१९०॥ कोई एक योद्धा प्रथम प्रहारमें ही गिर गया था इसलिए उसके बकने पर भी उदारचेता किसी महायोद्धाने लज्जित हो उसपर पुनः प्रहार नहीं किया ॥१९१॥ जिसका हृदय नहीं टूटा था ऐसा कोई योद्धा, सामनेके वीरको शस्त्र रहित देख, अपना भी शस्त्र फेंककर मात्र भुजाओंसे ही युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ था ॥१९२॥ कितने ही वीरोंने सदाके सुप्रसिद्ध दानी होकर भी युद्ध क्षेत्रमें आकर अपने प्राण तो दे दिये थे पर पीठके दर्शन किसीको नहीं दिये ॥१९३॥ किसी सारथिका रथ रुधिरकी कीचड़में फँस जानेके कारण बड़ी कठिनाईसे चल रहा था इसलिए वह चाबुकसे ताड़ना देनेमें तत्पर होनेपर भी शीघ्रताको प्राप्त नहीं हो रहा था ॥१९४॥ इस प्रकार उन दोनों सेनाओंमें वह महायुद्ध हुआ जिसमें कि शब्द करनेवाले घोड़ोंके द्वारा खींचे गये रथ ची-ची शब्द कर रहे थे,

१. रणनिद्रा सुख म., ज., फ.।

निःक्रामद्रुधिरोद्गारसहितोरुभटस्वनम् । वेगवच्छस्त्रसंपातजातवह्निकणोत्करम् ॥१९६॥
करिशूत्कृतसंभूतसीत्करासारजालकम् । करिदारितवक्षस्कभटसंकटभूतलम् ॥१९७॥
पर्यस्तकरिसंरुद्धरणमार्गाकुलायतम् । नागमेघपरिश्च्योतन्मुक्ताफलमहोपलम् ॥१९८॥
मुक्तासारसमाघातविकटं कर्मरङ्गकम् । नागोच्छालितपुन्नागकृतखेचरसंगमम् ॥१९९॥
शिरःक्रीतयशोरत्नं मूर्छाजनितविश्रमम् । मरणप्राप्तनिर्वाणं बभूव रणमाकुलम् ॥२००॥

आर्याच्छन्दः

जीवितवृष्णारहितं साधुस्वनजलधिलुब्धयोधेयम् ।
समरं समरसमासीन्महति लघिष्ठे च वीराणाम् ॥२०१॥
भक्तिः स्वामिनि परमा निष्क्रयदानं प्रचण्डरणकण्डूः ।
रवितेजसां भटानां जग्मुः संग्रामहेतुत्वम् ॥२०२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे लवणाङ्कुशसमेतयुद्धाभिधानं द्व्युत्तरशतं पर्व ॥१०२॥

□

जो घोडोके वेगसे उड़े हुए सामन्त भटोसे व्याप्त था ॥१९५॥ जिसमे महायोद्धाओंके शब्द निकलते हुए खूनके उद्‌गारसे सहित थे, जहाँ वेगशाली शस्त्रोंके पड़नेसे अग्निकणोका समूह उत्पन्न हो रहा था ॥१९६॥ जहाँ हाथियोके सूसू शब्दके साथ जलके छीटोका समूह निकल रहा था, जहाँ हाथियोके द्वारा विदीर्ण वक्षःस्थल वाले योद्धाओंसे भूतल व्याप्त था ॥१९७॥ जहाँ इधर-उधर पड़े हुए हाथियोसे युद्धका मार्ग रुक जानेके कारण यातायातमे गडवड़ी हो रही थी। जहाँ हाथी-रूपी मेघोसे मुक्ताफल रूपी महोपलो—बड़े-बड़े ओलोकी वर्षा हो रही थी ॥१९८॥ जो मोतियोकी वर्षाके समाघातसे विकट था, नाना प्रकारके कर्मोकी रगभूमि था, जहाँ हाथियोके द्वारा उखाड़ कर ऊपर उछाले हुए पुंनागके वृक्ष, विद्याधरोका संगम कर रहे थे ॥१९९॥ जहाँ शिरोके द्वारा यशरूपी रत्न खरीदा गया था, जहाँ मूर्च्छासे विश्राम प्राप्त होता था, और मरणसे जहाँ निर्वाण मिलता था ॥२००॥ इस प्रकार वीरोकी चाहे बड़ी टुकड़ी हो चाहे छोटी, सबमे वह युद्ध हुआ कि जो जीवनकी तृष्णासे रहित था, जिसमे योधाओके समूह धन्य-धन्य शब्दरूपी समुद्रके लोभी थे तथा जो समरससे सहित था—किसी भी पक्षकी जय-पराजयसे रहित था ॥२०१॥ स्वामीमे अटूट भक्ति, जीविका प्राप्तिका वदला चुकाना और रणकी तेज खाज यही सब सूर्यके समान तेजस्वी योद्धाओंके सग्रामके कारणपनेको प्राप्त हुए थे ॥२०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लवणांकुशके युद्धका वर्णन करनेवाला एक सौ दोवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०२॥

□

त्र्युत्तरशतं पर्व

अतो मगधराजेन्द्र भवावहितमानसः । निवेदयामि युद्धं ते विशेषकृतवर्त्तनम् ॥१॥
[1]सव्येष्टा वज्रजङ्घोऽभूदनङ्गलवणाम्बुधेः । मदनाङ्कुशनाथस्य पृथुः प्रथितविक्रमः ॥२॥
सुमित्रातनुजातस्य चन्द्रोदरनृपात्मजः । कृतान्तवक्त्रतिग्मांशुः पद्मनाभमरुत्वतः ॥३॥
वज्रावर्त्तं समुद्धृत्य धनुरत्युद्धुरध्वनिः । पद्मनाभः कृतान्तास्यं जगौ गम्भीरभारतिः ॥४॥
कृतान्तवक्त्र वेगेन रथं प्रत्यरि वाहय । मोघीभवत्तनूभारः किमेवमलसायसे ॥५॥
सोऽवोचद्देव वीक्षस्व वाजिनो जर्जरीकृतान् । अमुना नरवीरेण सुनिशातैः शिलीमुखैः ॥६॥
अमी निद्रामिव प्राप्ता देहविद्राणकारिणीम् । दूरं[2] विकारनिर्मुक्ता जाता गलितरंहसः ॥७॥
नैते चाटुशतान्युक्त्वा[3] न हस्ततलताडिताः । वहन्त्यायतमङ्गं तु [4]क्वणन्तः कुर्वते परम् ॥८॥
शोणं शोणितधाराभिः कुर्वाणा धरणीतलम् । अनुरागमिवोदारं भवते दर्शयन्त्यमी ॥९॥
इमौ च पश्य मे बाहू शरैः कङ्कटभेदिभिः । समुत्फुल्लकदम्बस्रग्गुणसाम्यमुपागतौ ॥१०॥
पद्मोऽवदन्ममाप्येवं कार्मुकं शिथिलायते । ज्ञायते कर्मनिर्मुक्तं चित्रार्पितशरासनम् ॥११॥
एतन्मुशलरत्नं च कार्येण परिवर्जितम् । सूर्यावर्त्तगुरूभूतं दोर्दण्डमुपविध्यति ॥१२॥
दुर्वाररिपुनागेन्द्रसृणितां यच्च भूरिशः । गत[5] लाङ्गलरत्नं मे तदिदं विफलं स्थितम् ॥१३॥
परपक्षपरिक्षोददक्षाणां पक्षरक्षिणाम्[6] । अमोघानां महास्त्राणामीदृशी वर्त्तते गतिः[7] ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते है कि हे मगधराजेन्द्र ! सावधान चित्त होओ अब मै तेरे लिए युद्धका विशेष वर्णन करता हूँ ॥१॥ अनंगलवणरूपी सागरका सारथि वज्रजंघ था, मदनांकुशका प्रसिद्ध पराक्रमी राजा पृथु, लक्ष्मणका चन्द्रोदरका पुत्र विराधित और रामरूपी इन्द्रका सारथि कृतान्तवक्त्र रूपी सूर्य था ॥२-३॥ विशाल गर्जना करनेवाले रामने गम्भीर वाणी द्वारा वज्रावर्त नामक धनुष उठाकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिसे कहा ॥४॥ कि हे कृतान्तवक्त्र ! शत्रुकी ओर शीघ्र ही रथ बढाओ। इस तरह शरीरके भारको शिथिल करते हुए क्यों अलसा रहे हो ? ॥५॥ यह सुन कृतान्तवक्त्रने कहा कि हे देव ! इस नरवीरके द्वारा अत्यन्त तीक्ष्ण वाणोसे जर्जर हुए इन घोडोको देखो ॥६॥ वे शरीरको दूर करनेवाली निद्राको ही मानो प्राप्त हो रहे है अथवा विकारसे निर्मुक्त हो वेग रहित हो रहे है ? ॥७॥ अब ये न तो सैकडों मीठे शब्द कहनेपर और न हथेलियोसे ताड़ित होनेपर शरीरको लम्बा करते है—शीघ्रतासे चलते है किन्तु अत्यधिक शब्द करते हुए स्वयं ही लम्बा शरीर धारण कर रहे हैं ॥८॥ ये रुधिर-की धारासे पृथिवीतलको लाल-लाल कर रहे है सो मानो आपके लिए अपना महान् अनुराग ही दिखला रहे हो ॥९॥ और इधर देखो, ये मेरी भुजाएँ कवचको भेदन करनेवाले बाणोसे फूले हुए कदम्ब पुष्पोकी मालाके सादृश्यको प्राप्त हो रही है ॥१०॥ यह सुन रामने भी कहा कि इसी तरह मेरा भी धनुष शिथिल हो रहा है और चित्रलिखित धनुषकी तरह क्रियाशून्य हो रहा है ॥११॥ यह मुशल रत्न कार्यसे रहित हो गया है और सूर्यावर्त धनुषके कारण भारी हुए भुज-दण्डको पीडा पहुँचा रहा है ॥१२॥ जो दुर्वार शत्रुरूपी हाथियोको वश करनेके लिए अनेको बार अंकुशपनेको प्राप्त हुआ था ऐसा यह मेरा हलरत्न निष्फल हो गया है ॥१३॥ शत्रुपक्षको नष्ट करनेमे समर्थ एवं अपने पक्षकी रक्षा करनेवाले अमोघ महाशस्त्रोकी भी ऐसी दशा हो रही

---

१ सारथि । २ द्वार म । ३ -न्युक्त्वा क । ४. क्वणताम् म । ५. भङ्गं म । ६ दक्षिणा म । ७ मतिः म ।

यथापराजितास्[1]जस्य वर्ततेऽनर्थकास्त्रता । तथा लक्ष्मीधरस्यापि मदनाङ्कुशगोचरे ॥१५॥
विज्ञातजातिसंबन्धौ सापेक्षौ लवणाङ्कुशौ । युयुधातेऽनपेक्षौ तु निर्ज्ञातौ रामलक्ष्मणौ ॥१६॥
तथाप्यलं सदिव्यास्त्रो विषादपरिवर्जितः । प्रासचक्रशरासारं मुमुचे लक्ष्मणोऽङ्कुशे ॥१७॥
वज्रदण्डैः शरैर्वृष्टिं तामपाकिरदङ्कुशः[2] । पद्मनाभविनिर्मुक्तामनङ्गलवणो यथा ॥१८॥
उपवक्षस्ततः पद्मं प्रासेन लवणोऽक्षिणोत् । मदनाङ्कुशवीरश्च लक्ष्मणं नैपुणान्वितः ॥१९॥
लक्ष्मणं घूर्णमानाक्षिहृदयं वीक्ष्य संभ्रमी । विराधितो रथं चक्रे प्रत्यापं कोशलां प्रति ॥२०॥
ततः संज्ञां परिप्राप्य रथं दृष्ट्वान्यतः स्थितम् । जगाद लक्ष्मणः कोपकपिलीकृतलोचनः ॥२१॥
भो विराधित सद्बुद्धे किमिदं भवता कृतम् । रथं निवर्तय क्षिप्रं रणे पृष्ठं न दीयते ॥२२॥
पुङ्खिपूरितदेहस्य स्थितस्याभिमुखं रिपोः । शूरस्य मरणं श्लाघ्यं नेदं कर्म जुगुप्सितम् ॥२३॥
सुरमानुषमध्येऽस्मिन् परमप्यापदं श्रिताः । कथं भजन्ति कातर्यं स्थिताः पुरुषमूर्धनि ॥२४॥
पुत्रो दशरथस्याहं भ्राता लाङ्गललक्ष्मणः । नारायणः क्षितौ ख्यातस्तस्येदं सदृशं कथम् ॥२५॥
त्वरितं गदितेनैवं रथस्तेन निवर्तितः । पुनर्युद्धमभूद्घोरं प्रत्यागतसैनिकम् ॥२६॥
लक्ष्मणेन ततः कोपात्संग्रामान्तचिकीर्षया । अमोघमुद्धृतं चक्रं देवासुरभयंकरम् ॥२७॥

है ॥१४॥ इधर लवणांकुशके विषयमे जिस प्रकार रामके शस्त्र निरर्थक हो रहे थे उधर उसी प्रकार मदनांकुशके विषयमे लक्ष्मणके शस्त्र भी निरर्थक हो रहे थे ॥१५॥

गौतम स्वामी कहते है कि इधर लवणांकुशको तो राम-लक्ष्मणके साथ अपने जाति सम्बन्धका ज्ञान था अतः वे उनकी अपेक्षा रखते हुए युद्ध करते थे—अर्थात् उन्हे घातक चोट न लग जावे इसलिए बचा-बचाकर युद्ध करते थे पर उधर राम-लक्ष्मणको कुछ ज्ञान नही था इसलिए वे निरपेक्ष होकर युद्ध कर रहे थे ॥१६॥ यद्यपि इस तरह लक्ष्मणके शस्त्र निरर्थक हो रहे थे तथापि वे दिव्यास्त्रसे सहित होनेके कारण विषादसे रहित थे। अबकी बार उन्होने अंकुशके ऊपर भाले, सामान्य चक्र तथा बाणोकी जोरदार वर्षा की सो उसने वज्रदण्ड तथा बाणोके द्वारा उस वर्षाको दूर कर दिया। इसी तरह अनंगलवणने भी रामके द्वारा छोड़ी अस्त्र-वृष्टिको दूर कर दिया था ॥१७–१८॥

तदनन्तर इधर लवणने वक्षःस्थलके समीप रामको प्रास नामा शस्त्रसे घायल किया और उधर चातुर्यसे युक्त वीर मदनांकुशने भी लक्ष्मणके ऊपर प्रहार किया ॥१९॥ उसकी चोटसे जिसके नेत्र और हृदय घूमने लगे थे ऐसे लक्ष्मणको देख विराधितने घबड़ाकर रथ उलटा अयोध्याकी ओर फेर दिया ॥२०॥ तदनन्तर चेतना प्राप्त होनेपर जब लक्ष्मणने रथको दूसरी ओर देखा तब लक्ष्मणने क्रोधसे लाल नेत्र करते हुए कहा कि हे बुद्धिमन्! विराधित! तुमने यह क्या किया? शीघ्र ही रथ लौटाओ। क्या तुम नही जानते कि युद्धमे पीठ नहीं दी जाती है? ॥२१–२२॥ बाणोसे जिसका शरीर व्याप्त है ऐसे शूरवीरका शत्रुके सन्मुख खड़े-खड़े मर जाना अच्छा है पर यह घृणित कार्य अच्छा नहीं है ॥२३॥ जो मनुष्य, पुरुषोके मस्तकपर स्थित हैं अर्थात् उनमे प्रधान है वे देवो और मनुष्योंके बीच परम आपत्तिको प्राप्त होकर भी कातरताको कैसे प्राप्त हो सकते है? ॥२४॥ मै दशरथका पुत्र, रामका भाई और पृथिवीपर नारायण नामसे प्रसिद्ध हूँ उसके लिए यह काम कैसे योग्य हो सकता है? ॥२५॥ इस प्रकार कहकर लक्ष्मणने शीघ्र ही पुनः रथ लौटा दिया और पुनः जिसमे सैनिक लौटकर आये थे ऐसा भयंकर युद्ध हुआ ॥२६॥

तदनन्तर कोपवश लक्ष्मणने संग्रामका अन्त करनेकी इच्छासे देवों और असुरोको भी

---

१ अपराजितास्[1]जस्य कौशल्यापुत्रस्य । यथा पराजिता यस्य ज.। २ तामपाकरदंगुक. म ।

ज्वालावलीपरीतं तद्दुःप्रेक्ष्यं [1]पूषसंनिभम् । नारायणेन दीप्तेन प्रहितं हन्तुमङ्कुशम् ॥२८॥
अङ्कुशस्यान्तिकं गत्वा चक्रं विगलितप्रभम् । निवृत्य लक्ष्मणस्यैव पुनः पाणितलं गतम् ॥२९॥
क्षिप्तं क्षिप्तं सुकोपेन लक्ष्मणेन त्वरावता । चक्रमन्तिकमस्यैव प्रवियाति पुनः पुनः ॥३०॥
अथाङ्कुशकुमारेण बिभ्रता विभ्रमं परम् । धनुर्दण्डः सुधीरेण भ्रामितो रणशालिना ॥३१॥
तथाभूतं समालोक्य सर्वेषां रणमीयुषाम् । विस्मयव्याप्तचित्तानां शेमुषीयमजायत ॥३२॥
अयं परमसत्त्वोऽसौ जातश्चक्रधरोऽधुना । भ्रमता यस्य चक्रेण संशये सर्वमाहितम् ॥३३॥
किमिदं स्थिरमाहोस्विद् भ्रमणं समुपाश्रितम् । ननु न स्थिरमेतद्धि श्रूयतेऽस्यातिगर्जितम् ॥३४॥
अलीकं लक्षणैः ख्यातं नूनं कोटिशिलादिभिः । यतस्तदिहमुत्पन्नं चक्रमन्यस्य सांप्रतम् ॥३५॥
कथं वा मुनिवाक्यानामन्यथात्वं प्रजायते । किं भवन्ति वृथोक्तानि जिनेन्द्रस्यापि शासने ॥३६॥
भ्रमितश्चापदण्डोऽयं चक्रमेतदिति स्वनः । समाकुलः समुत्तस्थौ वक्त्रेभ्योऽस्तमनीषिणाम् ॥३७॥
तावल्लक्ष्मणवीरोऽपि परमं सत्त्वमुद्वहन् । जगाद नूनमेतौ तावुदितौ बलचक्रिणौ ॥३८॥
इति व्रीडापरिष्वक्तं निष्क्रियं वीक्ष्य लक्ष्मणम् । समीपं तस्य सिद्धार्थो गत्वा नारदसम्मतः ॥३९॥
जगौ नारायणो देव त्वमेवात्र कुतोऽन्यथा । जिनेन्द्रशासनोक्तं हि निष्कम्पं मन्दरादपि ॥४०॥
जानक्यास्तनयावेतौ कुमारौ लवणाङ्कुशौ । ययोर्गर्भस्थयोरासीदसौ [2] विरहिता वने ॥४१॥
परिज्ञातमितः पश्चादापप्तद् दुःखसागरे । भवानिति न रत्नानामत्र जाता कृतार्थता ॥४२॥

भय उत्पन्न करनेवाला अमोघ चक्ररत्न उठाया ॥२७॥ और ज्वालावलीसे व्याप्त, दुष्प्रेक्ष्य एवं सूर्यके सदृश वह चक्ररत्न क्रोधसे देदीप्यमान लक्ष्मणने अंकुशको मारनेके लिए चला दिया ॥२८॥ परन्तु वह चक्र अंकुशके समीप जाकर निष्प्रभ हो गया और लौटकर पुनः लक्ष्मणके ही हस्ततलमें आ गया ॥२९॥ तीव्र क्रोधके कारण वेगसे युक्त लक्ष्मणने कई बार वह चक्र अंकुशके समीप फेंका परन्तु वह बार-बार लक्ष्मणके ही समीप लौट जाता था ॥३०॥

अथानन्तर परम विभ्रमको धारण करनेवाले रणशाली, सुधीर अंकुश कुमारने अपने धनुपदण्डको उस तरह घुमाया कि उसे वैसा देख रणमे जितने लोग उपस्थित थे उन सबका चित्त आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा सबके यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि अब यह परम शक्तिशाली दूसरा चक्रधर नारायण उत्पन्न हुआ है जिसके कि घूमते हुए चक्रने सबको संशयमे डाल दिया है ॥३१-३३॥ क्या यह चक्र स्थिर है अथवा भ्रमणको प्राप्त है ? अत्यधिक गर्जना सुनाई पड रही है ॥३४॥ चक्ररत्न कोटिशिला आदि लक्षणोसे प्रसिद्ध है सो यह मिथ्या जान पड़ता है क्योकि इस समय यह चक्र यहाँ दूसरेको ही उत्पन्न हो गया है ॥३५॥ अथवा मुनियोके वचनोमे अन्यथापन कैसे हो सकता है ? क्या जिनेन्द्र भगवान्‌के भी शासनमे कही हुई बाते व्यर्थ होती हैं ? ॥३६॥ यद्यपि वह धनुपदण्ड घुमाया गया था तथापि जिनकी बुद्धि मारी गयी थी ऐसे लोगों-के मुखसे व्याकुलतासे भरा हुआ यही शब्द निकल रहा था कि यह चक्ररत्न है ॥३७॥ उसी समय परम शक्तिको धारण करनेवाले लक्ष्मणने भी कहा कि जान पड़ता है ये दोनो बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुए ॥३८॥

अथानन्तर लक्ष्मणको लज्जित और निश्चेष्ट देख नारदकी सम्मतिसे सिद्धार्थ लक्ष्मणके पास जाकर बोला कि हे देव ! नारायण तो तुम्ही हो, जिनशासनमे कही बात अन्यथा कैसे हो सकती है ? वह तो मेरु पर्वतसे भी कही अधिक निष्कम्प है ॥३९-४०॥ ये दोनो कुमार जानकीके लवणांकुश नामक वे पुत्र है जिनके कि गर्भमे रहते हुए वह वनमे छोड़ दी गयी थी ॥४१॥ मुझे यह ज्ञात है कि आप सीता-परित्यागके पश्चात् दुःखरूपी सागरमे गिर गये थे अर्थात् आपने

---

१. सूर्यसदृशम् । २ जानकी ।

लवणाङ्कुशमाहात्म्यं ततो ज्ञात्वा समन्ततः । मुमोच कवचं शस्त्रं लक्ष्मण' शोककर्षितः ॥४३॥
श्रुत्वा तमथ वृत्तान्तं विषादभरपीडितः । परित्यक्तधनुर्वर्मा घूर्णमाननिरीक्षण. ॥४४॥
स्यन्दनात्तरसोत्तीर्णो दुःखस्मरणसंगतः । पर्यस्तक्ष्मातले पद्मो मूर्च्छामीलितलोचनः ॥४५॥
चन्दनोदकसिक्तश्च स्पष्टां संप्राप्य चेतनाम् । स्नेहाकुलमना यातः पुत्रयोरन्तिकं द्रुतम् ॥४६॥
ततो रथात्समुत्तीर्य तौ युक्तकरकुड्मलौ । तातस्यानमतां पादौ शिरसा स्नेहसंगतौ ॥४७॥
ततः पुत्रौ परिष्वज्य स्नेहद्रवितमानसः । विलापमकरोत्पद्मो वाष्पदुर्दिनिताननः ॥४८॥
हा मया तनयौ कष्टं गर्भस्थौ मन्दबुद्धिना । निर्दोषौ भीषणेऽरण्ये विमुक्तौ सह सीतया ॥४९॥
हा वत्सौ विपुलैः पुण्यैर्मयापि कृतसंभवौ । उदरस्थौ कथं प्राप्तौ व्यसनं परमं वने ॥५०॥
हा सुतौ वज्रजङ्घोऽयं वने चेत्तत्र नो भवेत् । पश्येयं वा तदा वक्त्रपूर्णचन्द्रमिमं कुतः ॥५१॥
हा शावकाविमैरस्त्रैरमोघैर्निहतौ न यत् । तत्सुरै' पालितौ यद्वा सुकृतैं' परमोदयैः ॥५२॥
हा वत्सौ विशिखैर्विद्धौ[1] पतितौ संयुगक्षितौ । भवन्तौ जानकी वीक्ष्य किं कुर्यादिति वेद्मि न[2] ॥५३॥
निर्वासनकृतं दुःखमितरैरपि दुःसहम् । भवद्भ्यां सा सुपुत्राभ्यां त्याजिता गुणशालिनी ॥५४॥
भवतोरन्यथाभावं प्रतिपद्य सुजातयोः । वेद्मि जीवेद् ध्रुवं नेति जानकी शोकविह्वला ॥५५॥
लक्ष्मणोऽपि सबाष्पाक्षः संभ्रान्तः शोकविह्वलः । स्नेहनिर्भरमालिङ्गद् विनयप्रणताविमौ ॥५६॥

सीता परित्यागका बहुत दुःख अनुभव किया था और आपके दुखी रहते रत्नोंकी सार्थकता नहीं थी ॥४२॥

तदनन्तर सिद्धार्थसे लवणांकुशका माहात्म्य जानकर शोकसे कृश लक्ष्मणने कवच और शस्त्र छोड दिये ॥४३॥ अथानन्तर इस वृत्तान्तको सुन जो विषादके भारसे पीड़ित थे, जिन्होने धनुष और कवच छोड़ दिये थे, जिनके नेत्र घूम रहे थे, जिन्हे पिछले दुःखका स्मरण हो आया था, जो बड़े वेगसे रथसे उतर पड़े थे तथा मूर्च्छाके कारण जिनके नेत्र निमीलित हो गये थे ऐसे राम पृथिवीतल पर गिर पडे ॥४४–४५॥ तदनन्तर चन्दन मिश्रित जलके सींचनेसे जब सचेत हुए तब स्नेहसे आकुल हृदय होते हुए शीघ्र ही पुत्रोंके समीप चले ॥४६॥

तदनन्तर स्नेहसे भरे हुए दोनो पुत्रोने रथसे उतरकर हाथ जोड़ शिरसे पिताके चरणोंको नमस्कार किया ॥४७॥ तत्पश्चात् जिनका हृदय स्नेहसे द्रवीभूत हो गया था और जिनका मुख आँसुओसे दुर्दिनके समान जान पड़ता था ऐसे राम दोनो पुत्रोका आलिंगन कर विलाप करने लगे ॥४८॥ वे कहने लगे कि हाय पुत्रो ! जब तुम गर्भमे स्थित थे तभी मुझ मन्दबुद्धिने तुम दोनो निर्दोष बालकोको सीताके साथ भीषण वनमे छोड़ दिया था ॥४९॥ हाय पुत्रो ! बड़े पुण्यके कारण मुझसे जन्म लेकर भी तुम दोनोने उदरस्थ अवस्थामे वनमे परम दु.ख कैसे प्राप्त किया ? ॥५०॥ हाय पुत्रो ! यदि उस समय उस वनमे यह वज्रजंघ नही होता तो तुम्हारा यह मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमा किस प्रकार देख पाता ? ॥५१॥ हाय पुत्रो ! जो तुम इन अमोघ शस्त्रोसे नही हते गये हो सो जान पड़ता है कि देवोने अथवा परम अभ्युदयसे युक्त पुण्यने तुम्हारी रक्षा की है ॥५२॥ हाय पुत्रो ! बाणोसे बिंधे और युद्धभूमिमे पड़े तुम दोनोको देखकर जानकी क्या करती यह मैं नही जानता ॥५३॥ निर्वासन—परित्यागका दु.ख तो अन्य मनुष्योको भी दुःसह होता है फिर आप-जैसे सुपुत्रोंके द्वारा छोड़ी गुणशालिनी सीताकी क्या दशा होती ? ॥५४॥ आप दोनो पुत्रोका मरण जान शोकसे विह्वल सीता निश्चित ही जीवित नही रहती ॥५५॥

जिनके नेत्र अश्रुओंसे पूर्ण थे, तथा जो सम्भ्रान्त हो शोकसे विह्वल हो रहे थे ऐसे लक्ष्मणने

---

१. बद्धौ म । २ न. म ।

शत्रुघ्नाद्या महीपालाः श्रुत्वा वृत्तान्तमीदृशम् । तमुद्देशं गताः सर्वे प्राप्ताः प्रीतिमनुत्तमाम् ॥५७॥
ततः समागमो जातः सेनयोरुभयोरपि । स्वामिनोः संगमे जाते सुखविस्मयपूर्णयोः ॥५८॥
सीतापि पुत्रमाहात्म्यं दृष्ट्वा संगममेव च । पौण्डरीकं विमानेन प्रतीतहृदयागमत् ॥५९॥
अवतीर्य ततो व्योम्नः संभ्रमी जनकात्मजः । स्वस्त्रीयौ निर्व्रणौ पश्यन्नालिलिङ्ग सबाष्पदृक् ॥६०॥
लाङ्गूलपाणिरप्येवं प्राप्तः प्रीतिपरायणः । आलिङ्गति स्म तौ साधु जातमित्युच्चरन्मुहुः ॥६१॥
श्रीविराधितसुग्रीवावेवं प्राप्तौ सुसंगमम् । नृपा विभीषणाद्याश्च सुसंभाषणतत्पराः ॥६२॥
अथ भूव्योमचाराणां [1]सुराणामिव संकुलः । जातः समागमोऽत्यन्तमहानन्दसमुद्भवः ॥६३॥
परिप्राप्य परं कान्तं पद्मः पुत्रसमागमम् । बभार परमां लक्ष्मीं धृतिनिर्भरमानसः ॥६४॥
मेने सुपुत्रलम्भं च भुवनत्रयराज्यतः । सुदूरमधिकं रम्यं भावं कमपि संश्रितः ॥६५॥
विद्याधर्यः समानन्दं ननृतुर्गगनाङ्गणे । भूगोचरस्त्रियो भूमौ समुन्मत्तजगद्विधम् ॥६६॥
परं कृतार्थमात्मानं मेने नारायणस्तथा । जितं च भुवनं कृत्स्नं प्रमोदोत्फुल्ललोचनः ॥६७॥
सगरोऽहमिमौ तौ मे वीरभीमभगीरथौ । इति बुद्ध्या [2]कृतौपम्यो दधार परमद्युतिम् ॥६८॥
पद्मः प्रीतिं परां बिभ्रद्वज्रजङ्घमपूजयत् । भामण्डलसमस्त्वं मे सुचेता इति चावदत् ॥६९॥
ततः पुरैव रम्यासौ पुनः स्वर्गसमा कृता । साकेता नगरी भूय कृता परमसुन्दरी ॥७०॥
रम्या या स्त्रीस्वभावेन कलाज्ञानविशेषतः । आचारमात्रतस्तस्या क्रियते भूषणादरः ॥७१॥

भी विनयसे नम्रीभूत दोनो पुत्रोका बड़े स्नेहके साथ आलिगन किया ॥५६॥ शत्रुघ्न आदि राजा भी इस वृत्तान्तको सुन उस स्थानपर गये और सभी उत्तम आनन्दको प्राप्त हुए ॥५७॥ तदनन्तर जब दोनो सेनाओके स्वामी समागम होनेपर सुख और आश्चर्यसे पूर्ण हो गये तब दोनो सेनाओका परस्पर समागम हुआ ॥५८॥ सीता भी पुत्रोका माहात्म्य तथा समागम देख निश्चित हृदय हो विमान द्वारा पौण्डरीकपुर वापस लौट गयी ॥५९॥ तदनन्तर सम्भ्रमसे भरे भामण्डलने आकाशसे उतरकर घाव रहित दोनो भानेजोको साश्रुदृष्टिसे देखते हुए उनका आलिगन किया ॥६०॥ प्रीति प्रकट करनेमे तत्पर हनूमान्ने भी 'बहुत अच्छा हुआ' इस शब्दका बार-बार उच्चारण कर उन दोनोका आलिगन किया ॥६१॥ विराधित तथा सुग्रीव भी इसी तरह सत्समागमको प्राप्त हुए और विभीषण आदि राजा भी कुमारोसे वार्तालाप करनेमे तत्पर हुए ॥६२॥

अथानन्तर देवोके समान भूमिगोचरियो तथा विद्याधरोका वह समागम अत्यधिक महान् आनन्दका कारण हुआ ॥६३॥ अत्यन्त सुन्दर पुत्रोका समागम पाकर जिनका हृदय धैर्यसे भर गया था ऐसे रामने उत्कृष्ट लक्ष्मी धारण की ॥६४॥ किसी अनिर्वचनीय भावको प्राप्त हुए श्रीरामने उन सुपुत्रोके लाभको तीन लोकके राज्यसे भी कही अधिक सुन्दर माना ॥६५॥ विद्याधरोकी स्त्रियाँ बड़े हर्षके साथ आकाशरूपी आँगनमे और भूमिगोचरियोकी स्त्रियाँ उन्मत्त संसारकी नाँई पृथ्वीपर नृत्य कर रही थी ॥६६॥ हर्षसे जिनके नेत्र फूल रहे थे ऐसे नारायणने अपने आपको कृतकृत्य माना और समस्त संसारको जीता हुआ समझा ॥६७॥ मै सगर हूँ और ये दोनो वीर भीम तथा भगीरथ है इस प्रकार बुद्धिसे उपमाको करते हुए लक्ष्मण परम दीप्तिको धारण कर रहे थे ॥६८॥ परमप्रीतिको धारण करते हुए रामने वज्रजंघका खूब सम्मान किया और कहा कि सुन्दर हृदयसे युक्त तुम मेरे लिए भामण्डलके समान हो ॥६९॥

तदनन्तर वह अयोध्या नगरी स्वर्गके समान तो पहले ही की जा चुकी थी उस समय और भी अधिक सुन्दर की गयी थी ॥७०॥ जो स्त्री कला और ज्ञानकी विशेषतासे स्वभावतः सुन्दर है उसका आभूषण सम्बन्धी आदर पद्धति मात्रसे किया जाता है अर्थात् वह पद्धति मात्रसे

---

१. सुराणामेव म । २. कृतौपम्यौ म., ज. ।

ततो गजघटापृष्ठे स्थितं सूर्यसमप्रभम् । आरूढः पुष्पकं रामः सपुत्रो भास्करो यथा ॥७२॥
नारायणोऽपि तत्रैव स्थितो रेजे स्वलंकृतः । विद्युत्वांश्च महामेघः सुमेरोः शिखरे यथा ॥७३॥
बाह्योद्यानानि चैत्यानि प्राकारं च ध्वजाकुलम् । पश्यन्तो विविधैर्यानैः प्रतिष्ठन्ते शनैः शनैः ॥७४॥
[1]त्रिप्रस्रुतद्विपाश्वीयरथपादातसंकुलाः । अभवन्निचिताश्चापध्वजच्छत्रान्धमार्गकाः ॥७५॥
वरसीमन्तिनीवृन्दैर्गवाक्षाः परिपूरिताः । महाकुतूहलाकीर्णैर्लवणाङ्कुशदर्शने ॥७६॥
नयनाञ्जलिभिः पातुं सुन्दर्यो लवणाङ्कुशौ । प्रवृत्ता न पुनः प्रापुस्तृप्तिमुदारमानसाः ॥७७॥
तदेकगतचित्तानां पश्यन्तीनां सुयोषिताम् । महासंघट्टतो भ्रष्टं न ज्ञातं हारकुण्डलम् ॥७८॥
मातर्मनागितो वक्त्रं कुरु मे [2]किन्न कौतुकम् । अखण्डस्वार्थनिरतं कियदीदृक्कौतुके ॥७९॥
विनतं कुरु मूर्धानं सखि किंचित्प्रसादतः । उन्नद्धासि किमित्येवं धम्मिल्लमितो नय ॥८०॥
किमेवं परमप्राणे [3]नुदसि क्षिप्तमानसे । पुरः पश्यसि किं नेमां पीडितां मन्ददारिकाम् ॥८१॥
मनागपसृता तिष्ठ पतितास्मि गतासि किम् । निश्चेतनत्वमेवं त्वं किं कुमारं न पश्यसि ॥८२॥
हा मातः कीदृशी योषिद्यदि पश्यामि तेऽत्र किम् । इमां मे प्रेरिकां कस्माद्वारयसि दुर्बले ॥८३॥
एतौ तावर्धचन्द्राभललाटौ लवणाङ्कुशौ । यावेतौ रामदेवस्य कुमारौ पार्श्वयोः स्थितौ ॥८४॥
अनङ्गलवणः कोऽत्र कतरो मदनाङ्कुशः । अहो परमसंतौ हि तुल्याकाराविमावपि ॥८५॥
महारजतरागाक्तं [4]वारबाणं दधाति यः । लवणोऽयं शुकच्छायवस्त्रोऽसावङ्कुशो भवेत् ॥८६॥

आभूषण धारण करती है ॥७१॥ तदनन्तर जो गजघटाके पृष्ठपर स्थित सूर्यके समान कान्ति-सम्पन्न था ऐसे पुष्पक विमानपर राम अपने पुत्रों सहित आरूढ हो सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥७२॥ जिस प्रकार बिजलीसे सहित महामेघ, सुमेरुके शिखरपर आरूढ होता है उसी प्रकार उत्तम अलंकारोंसे सहित लक्ष्मण भी उसी पुष्पक विमानपर आरूढ हुए ॥७३॥ इस प्रकार वे सब नगरीके बाहरके उद्यान, मन्दिर और ध्वजाओंसे व्याप्त कोटको देखते हुए नानाप्रकारके वाहनोंसे धीरे-धीरे चले ॥७४॥ जिनके तीन स्थानोंसे मद झर रहा था ऐसे हाथी, घोड़ोंके समूह, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे व्याप्त नगरके मार्ग, धनुष, ध्वजा और छत्रोंके द्वारा अन्धकार युक्त हो रहे थे ॥७५॥ महलोंके झरोखे, लवणांकुशको देखनेके लिए महाकौतूहलसे युक्त उत्तम स्त्रियोंके समूहसे परिपूर्ण थे ॥७६॥ नयनरूपी अंजलियोंके द्वारा लवणांकुशका पान करनेके लिए प्रवृत्त उदारहृदया स्त्रियाँ सन्तोषको प्राप्त नहीं हो रही थीं ॥७७॥ उन्हीं एकमें जिनका चित्त लग रहा था ऐसी देखनेवाली स्त्रियोंकी पारस्परिक धक्का-धूमीके कारण हार और कुण्डल टूट-कर गिर गये थे पर उन्हें पता भी नहीं चल सका था ॥७८॥ हे मातः! जरा मुख यहाँसे दूर हटा, क्या मुझे कौतुक नहीं है? हे अखण्डकौतुके! तेरी यह स्वार्थपरता कितनी है? ॥७९॥ हे सखि! प्रसन्न होकर मस्तक कुछ नीचा कर लो, इतनी तनी क्यों खड़ी हो। यहाँसे चोटीको हटा लो ॥८०॥ हे प्राणहीने! हे क्षिप्तहृदये! इस तरह दूसरेको क्यों पीड़ित कर रही है? क्या आगे इस पीड़ित लड़कीको नहीं देख रही है? ॥८१॥ जरा हटकर खड़ी होओ, मैं गिर पड़ी हूँ, इस तरह तू क्या निश्चेतनताको प्राप्त हो रही है? अरे कुमारको क्यों नहीं देखती है? ॥८२॥ हाय मात.! कैसी स्त्री है? यदि मैं देखती हूँ तो तुझे इससे क्या प्रयोजन? हे दुर्बले! मेरी इस प्रेरणा देनेवालीको क्यों मना करती है? ॥८३॥ जो ये दो कुमार श्रीरामके दोनों ओर बैठे हैं ये ही अर्धचन्द्रमाके समान ललाटको धारण करनेवाले लवण और अंकुश हैं ॥८४॥ इनमें अनंगलवण कौन है और मदनांकुश कौन है? अहो! ये दोनों ही कुमार अत्यन्त सदृश आकारके धारक हैं ॥८५॥ जो यह महारजतके रंगसे रँगे—लाल रंगके कवचको धारण करता है वह लवण है और जो तोताके पंखके समान हरे रंगके वस्त्र पहने है वह अंकुश

१. त्रिप्रस्रुतद्विपाश्वीयं रथपादात- म.। २. किन्तु म.। ३. तुदसि ज.। ४. वरं बाण म.।

अहो पुण्यवती सीता यस्याः सुतनयाविमौ । अहो धन्यतमा सा स्त्री यानयो रमणी भवेत् ॥८७॥
एवमाद्याः कथास्तत्र मनःश्रोत्रमलिम्लुचाः । प्रवृत्ताः परमस्त्रीणां तदेकगतचक्षुषाम् ॥८८॥
कपोलमतिसंघट्टात्[1]कुण्डलोरगदंष्ट्रया । न विवेद तदा काचिद् विक्षतं तद्गतात्मिका[2] ॥८९॥
अन्यनारीभुजोत्पीडात्कस्याश्चित्सकवाटके । कञ्चुकेऽभ्युन्नतो रेजे स्तनांशः सघनेन्दुवत् ॥९०॥
न विवेद च्युता काञ्ची काचिन्निक्वणिनीमपि । प्रत्यागमनकाले तु संदिता स्खलिताभवत् ॥९१॥
धम्मिल्लमकरीदंष्ट्राकोटिस्फाटितमंशुकम् । महत्तरिकया काचिद्दृष्ट्वैषत्परिभाषिता ॥९२॥
विस्रंशिमनसोऽन्यस्य वपुषि श्लथतां गते[3] । विस्रस्तबाहुलतिकावदनात्कटकोऽपतत् ॥९३॥
कस्याश्चिदन्यवनिताकर्णाभरणसंगत. । विच्छिन्नपतितो हारः कुसुमाञ्जलितां गतः ॥९४॥
बभूवुर्दृष्टयस्तासां निमेषपरिवर्जिताः । गतयोरपि कासाञ्चित्तयोर्दूरं तथा स्थिताः ॥९५॥

मालिनीवृत्तम्

इति वरभवनाद्रिस्त्रीलतामुक्तपुष्पप्रकरगलितधूलीधूसराकाशदेशाः ।
परमविभवभाजो भूभुजो राघवाद्याः प्रविविशुरतिरम्याः मन्दिरं मङ्गलाढ्यम्[4] ॥९६॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

अनभिसंहितमीदृशमुत्तम दयितजन्तुसमागमनोत्सवम् ।
भजति पुण्यरविप्रतिबोधितप्रवरमानसवारिरुहो जन॰ ॥९७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामलवणाङ्कुशसमागमाभिधान नाम त्र्युत्तरशतं पर्व ॥१०१॥

है ॥८६॥ अहो ! सीता बड़ी पुण्यवती है जिसके कि ये दोनो उत्तम पुत्र हैं। अहो ! वह स्त्री अत्यन्त धन्य है जो कि इनकी स्त्री होगी ॥८७॥ इस प्रकार उन्ही एकमे जिनके नेत्र लग रहे थे ऐसी उत्तमोत्तम स्त्रियोके बीच मन और कानोको हरण करनेवाली अनेक कथाएँ चल रही थी ॥८८॥ उनमे जिसका चित्त लग रहा था ऐसी कोई स्त्री उस समय अत्यधिक धक्काधूमीके कारण कुण्डलरूपी साँपकी दाँढ़से विक्षत–घायल हुए अपने कपोलको नही जानती थी ॥८९॥ अन्य स्त्रीकी भुजाके उत्पीड़नसे बन्द चोलीके भीतर उठा हुआ किसीका स्तन मेघ सहित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥९०॥ किसी एक स्त्रीकी मेखला शब्द करती हुई नीचे गिर गयी फिर भी उसे पता नही चला किन्तु लौटते समय उसी करधनीसे पैर फँस जानेके कारण वह गिर पड़ी ॥९१॥ किसी स्त्रीकी चोटीमे लगी मकरीकी डाँढ़से फटे हुए वस्त्रको देखकर कोई बड़ी बूढी स्त्री किसीसे कुछ कह रही थी ॥९२॥ जिसका मन ढीला हो रहा था ऐसे किसी दूसरे मनुष्यके शरीरके शिथिलताको प्राप्त करनेपर उसकी नीचेकी ओर लटकती हुई बाहुरूपी लताके अग्रभागसे कड़ा नीचे गिर गया ॥९३॥ किसी एक स्त्रीके कर्णाभरणमे उलझा हुआ हार टूटकर गिर गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो फूलोकी अंजलि ही बिखेर दी गयी हो ॥९४॥ उन दोनो कुमारोंको देखकर किन्ही स्त्रियोके नेत्र निर्निमेष हो गये और उनके दूर चले जानेपर भी वैसे ही निर्निमेष रहे आये ॥९५॥ इस प्रकार उत्तमोत्तम भवनरूपी पर्वतोपर विद्यमान स्त्रीरूपी लताओके द्वारा छोड़े हुए फूलोके समूहसे निकली धूलीसे जिन्होने आकाशके प्रदेशोको धूसरवर्ण कर दिया था तथा जो परम वैभवको प्राप्त थे ऐसे श्रीराम आदि अत्यन्त सुन्दर राजाओने मंगलसे परिपूर्ण महलमे प्रवेश किया ॥९६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि पुण्यरूपी सूर्यके द्वारा जिसका उत्तम मनरूपी कमल विकसित हुआ है ऐसा मनुष्य इस प्रकारके अचिन्तित तथा उत्तम प्रियजनोके समागमसे उत्पन्न आनन्दको प्राप्त होता है ॥९७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे राम तथा लवणांकुशके समागमका वर्णन करनेवाला एक सौ तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥१०३॥

---

१. सघट्टा म. । २. तद्गतात्मिका. म. । ३. गता क. । ४. मङ्गल म. ।

चतुरुत्तरशतं पर्व

अथ विज्ञापितोऽन्यस्मिन्दिने हलधरो नृपः । मरुन्नन्दनसुग्रीवबिभीषणपुरःसरैः ॥१॥
नाथ प्रसीद विषयेऽन्यस्मिञ्जनकदेहजा । दुःखमास्ते समानेतुं तामादेशो विधीयताम् ॥२॥
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च क्षणं किंचिद्विचिन्त्य च । ततो जगाद पद्माभो बाष्पश्यामितदिङ्मुखः ॥३॥
अनघं वेद्मि सीतायाः शीलमुत्तमचेतसः । प्राप्तायाः परिवादं तु पश्यामि वदनं कथम् ॥४॥
समस्तं भूतले लोकं प्रत्याययतु जानकी । ततस्तया समं वासो भवेदेव कुतोऽन्यथा ॥५॥
एतस्मिन्भुवने तस्मान्नृपाः जनपदैः समम् । निमन्त्र्यन्तां परं प्रीत्या सकलाश्च नभश्चराः ॥६॥
समक्षं शपथं तेषां कृत्वा सम्यग्विधानतः । निरवद्यभवं सीता शचीव प्रतिपद्यताम् ॥७॥
एवमस्त्विति तैरेवं कृतं क्षेपविवर्जितम् । राजानः सर्वदेशेभ्यः सर्वदिग्भ्यः समाहृताः ॥८॥
नानाजनपदा बालवृद्धयोषित्समन्विताः । अयोध्यानगरीं प्राप्ता महाकौतुकसंगताः ॥९॥
असूर्यंपश्यनार्योऽपि यत्राजग्मुः ससंभ्रमाः । ततः किं प्रकृतिस्थस्य जनस्यान्यस्य भण्यताम् ॥१०॥
वर्षीयांसोऽतिमात्रं ये बहुवृत्तान्तकोविदाः । राष्ट्रप्राग्रहराः ख्यातास्ते चान्ये च समागताः ॥११॥
तदा दिक्षु समस्तासु मार्गत्वं सर्वमेदिनीम् । नीता जनसमूहेन परसंबाधमीयुषा ॥१२॥
तुरंगैः स्यन्दनैर्युग्यैः शिबिकाभिर्मतङ्गजैः । अन्यैश्च विविधैर्यानैर्लोकस्संप्रसमागताः ॥१३॥
आगच्छद्भिः खगैरूर्ध्वमधश्च क्षितिगोचरैः । जगज्जङ्गममेवेति तदा समुपलक्ष्यते ॥१४॥

अथानन्तर किसी दिन हनूमान्, सुग्रीव तथा विभीषण आदि प्रमुख राजाओंने श्रीरामसे प्रार्थना की कि हे देव ! प्रसन्न होओ, सीता अन्य देशमे दुःखसे स्थित है इसलिए लानेकी आज्ञा की जाये ॥१–२॥ तब लम्बी और गरम श्वास ले तथा क्षण-भर कुछ विचार कर भापोंसे दिशाओं-को मलिन करते हुए श्रीरामने कहा कि यद्यपि मैं उत्तम हृदयको धारण करनेवाली सीताके शील-को निर्दोष जानता हूँ तथापि वह यतश्च लोकापवादको प्राप्त है अत. उसका मुख किस प्रकार देखूँ ॥३–४॥

पहले सीता पृथिवीतलपर समस्त लोगोको विश्वास उत्पन्न करावे उसके बाद ही उसके साथ हमारा निवास हो सकता है अन्य प्रकार नही ॥५॥ इसलिए इस संसारमें देशवासी लोगोके साथ समस्त राजा तथा समस्त विद्याधर बड़े प्रेमसे निमन्त्रित किये जावें ॥६॥ उन सबके समक्ष अच्छी तरह शपथ कर सीता इन्द्राणीके समान निष्कलंक जन्मको प्राप्त हो ॥७॥ 'एवमस्तु'–'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर उन्होंने विना किसी विलम्बके उक्त बात स्वीकृत की, फल-स्वरूप नाना देशो और समस्त दिशाओंसे राजा लोग आ गये ॥८॥ बालक, वृद्ध तथा स्त्रियोंसे सहित नाना देशोके लोग महाकौतुकसे युक्त होते हुए अयोध्या नगरीको प्राप्त हुए ॥९॥ सूर्यको नही देखनेवाली स्त्रियाँ भी जब सम्भ्रमसे सहित हो वहाँ आयी थीं तब साधारण अन्य मनुष्यके विषयमे तो कहा ही क्या जावे ? ॥१०॥ अत्यन्त वृद्ध अनेक लोगोका हाल जाननेमे निपुण जो राष्ट्रके श्रेष्ठ प्रसिद्ध पुरुष थे वे तथा अन्य सब लोग वहाँ एकत्रित हुए ॥११॥ उस समय परम भीड़को प्राप्त हुए जनसमूहने समस्त दिशाओमे समस्त पृथिवीको मार्गरूपमे परिणत कर दिया था ॥१२॥ लोगोके समूह घोड़े, रथ, बैल, पालकी तथा नाना प्रकारके अन्य वाहनोके द्वारा वहाँ आये थे ॥१३॥ ऊपर विद्याधर आ रहे थे और नीचे भूमिगोचरी, इसलिए उन सबसे उस समय यह जगत् ऐसा जान पड़ता था मानो जंगम ही हो अर्थात् चलने-फिरनेवाला ही हो ॥१४॥

सुप्रपञ्चाः कृता मञ्चाः क्रीडापर्वतसुन्दराः । विशाला. परमाः शाला मण्डिता [1]दूष्यमण्डपाः ॥१५॥
अनेकपुरसंपन्ना. प्रासादा. स्तम्भधारिताः । उदारजालकोपेता रचितोदारमण्डपाः ॥१६॥
तेषु स्त्रियः समं स्त्रीभि पुरुषा. पुरुषैः समम् । यथायोग्यं स्थिता सर्वे शपथेक्षणकाङ्क्षिणः ॥१७॥
शयनासनताम्बूलभक्तमाल्यादिनाखिलम् । कृतमागन्तुलोकस्य सौस्थित्यं राजमानवैः ॥१८॥
ततो रामसमादेशाद्भामण्डलसुन्दरः । लङ्केशो वायुपुत्रश्च किष्किन्धाधिपतिस्तथा ॥१९॥
चन्द्रोदरसुतो रत्नजटी चेति महानृपा. । पौण्डरीक पुरं याता बलिनो नभसा क्षणात् ॥२०॥
ते विन्यस्य वहिः सैन्यमन्तरङ्गजनान्विता. । विविशुर्जानकीस्थानं ज्ञापिताः सानुमोदनाः ॥२१॥
विधाय जयशब्द च प्रकीर्य कुसुमाञ्जलिम् । पादयोः पाणियुग्माङ्कमस्तकेन प्रणम्य च ॥२२॥
उपविष्टा महीपृष्ठे चारुकुट्टिमभासुरे । क्रमेण संकथां चक्रुः पौरस्त्या विनयानताः ॥२३॥
सम्भाषिता सुगम्भीरा सीतास्रविहितेक्षणा । [2]आत्माभिनिन्दनाप्राय जगाद परिमन्थरम् ॥२४॥
असज्जनवचोदावदग्धान्यङ्गानि साम्प्रतम् । क्षीरोदधिजलेनापि न मे [3]गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥२५॥
ततस्ते जगदुर्देवि भगवत्यधुनोत्तमे । शोकं सौम्ये च मुञ्चस्व प्रकृतौ कुरु मानसम् ॥२६॥
असुमान्विष्टपे कोऽसौ त्वयि य परिवादकः । कोऽसौ चालयति क्षोणी वह्नेः पिबति कः शिखाम् ॥२७॥
सुमेरोर्मूर्तिमुत्क्षेप्तुं साहसं कस्य विद्यते । जिह्वया लेढि मूढात्मा कोऽसौ चन्द्रार्कयोस्तनुम् ॥२८॥
गुणरत्नमहीध्रं ते कोऽसौ चालयितुं क्षम । न स्फुटत्यपवादेन कस्य जिह्वा सहस्रधा ॥२९॥
अस्माभिः किङ्करगणा नियुक्ता भरतावनौ । परिवादरतो देव्या दुष्टात्मा बध्यतामिति ॥३०॥

क्रीड़ा-पर्वतोके समान लम्बे-चौड़े मंच तैयार किये गये, उत्तमोत्तम विशाल शालाएँ, कपड़ेके उत्तम तम्बू, तथा जिनमे अनेक गाँव समा जावे ऐसे खम्भोपर खड़े किये गये, बड़े-बड़े झरोखोसे युक्त तथा विशाल मण्डपोसे सुशोभित महल बनवाये गये ॥१५–१६॥ उन सब स्थानोमे स्त्रियाँ स्त्रियोके साथ और पुरुष पुरुषोके साथ, इस प्रकार शपथ देखनेके इच्छुक सब लोग यथायोग्य ठहर गये ॥१७॥ राजाधिकारी पुरुषोने आगन्तुक मनुष्योके लिए शयन आसन ताम्बूल भोजन तथा माला आदिके द्वारा सब प्रकारकी सुविधा पहुँचायी थी ॥१८॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे भामण्डल, विभीषण, हनूमान्, सुग्रीव, विराधित और रत्नजटी आदि बड़े-बड़े बलवान् राजा क्षणभरमे आकाश मार्गसे पौण्डरीकपुर गये ॥१९–२०॥ वे सब, सेनाको बाहर ठहरा कर अन्तरग लोगोके साथ सूचना देकर तथा अनुमति प्राप्तकर सीताके स्थानमे प्रविष्ट हुए ॥२१॥ प्रवेश करते ही उन्होने सीतादेवीका जय-जयकार किया, पुष्पांजलि बिखेरी, हाथ जोड मस्तकसे लगा चरणोमे प्रणाम किया, सुन्दर मणिमय फर्शसे सुशोभित पृथिवी पर बैठे और सामने बैठ विनयसे नम्रीभूत हो क्रमपूर्वक वार्तालाप किया ॥२२–२३॥ तदनन्तर सम्भाषण करनेके बाद अत्यन्त गम्भीर सीता, आँसुओंसे नेत्रोंको आच्छादित करती हुई अधिकाश आत्मनिन्दा रूप वचन धीरे-धीरे बोली ॥२४॥ उसने कहा कि दुर्जनोके वचन रूपी दावानलसे जले हुए मेरे अंग इस समय क्षीरसागरके जलसे भी शान्तिको प्राप्त नही हो रहे हैं ॥२५॥ तब उन्होने कहा कि हे देवि ! हे भगवति ! हे उत्तमे ! हे सौम्ये ! इस समय शोक छोड़ो और मनको प्रकृतिस्थ करो ॥२६॥ संसारमे ऐसा कौन प्राणी है जो तुम्हारे विषयमे अपवाद करनेवाला हो। वह कौन है जो पृथिवी चला सके और अग्निशिखाका पान कर सके ? ॥२७॥ सुमेरु पर्वतको उठानेका किसमे साहस है ? चन्द्रमा और सूर्यके शरीरको कौन मूर्ख जिह्वासे चाटता है ? ॥२८॥ तुम्हारे गुणरूपी पर्वतको चलानेके लिए कौन समर्थ है ? अपवादसे किसकी जिह्वाके हजार टुकड़े नही होते ? ॥२९॥ हम लोगोने भरत क्षेत्रकी भूमिमे किंकरोके समूह यह कहकर

---

१ वस्त्रनिर्मितमण्डपा । २ आत्माभिनन्दनप्राय म. । ३ गच्छति स. ।

पृथिव्यां योऽतिनीचोऽपि सीतागुणकथारतः। विनीतस्य गृहे तस्य रत्नवृष्टिर्निपात्यताम् ॥३१॥
अनुरागेण ते धान्यराशिषु क्षेत्रमानवाः। कुर्वन्ति [1]स्थापनां [2]सस्यसम्पत्प्रार्थनतत्पराः ॥३२॥
एतत्ते पुष्पकं देवि प्रेषितं रघुभानुना। प्रसीदारुह्यतामेतद्गम्यतां कोशलां पुरीम् ॥३३॥
पद्मः पुरं च देशश्च न शोभन्ते त्वया विना। यथा तरुगृहाकाशं लतादीपेन्दुमूर्त्तिभिः ॥३४॥
मुखं मैथिलि पश्याद्य सद्यः पूर्णेन्दुसन्निभम्। ननु पत्युर्वचः कार्यमवश्यं कोविदे त्वया ॥३५॥
एवमुक्ता प्रधानस्त्रीशतोत्तमपरिच्छदा। महर्द्ध्या पुष्पकारूढा तरसा नभसा ययौ ॥३६॥
अथायोध्यां पुरीं दृष्ट्वा भास्करं [3]चास्तसंगतम्। सा महेन्द्रोदयोद्याने निन्ये चिन्तातुरा निशाम् ॥३७॥
यदुद्यानं सपद्मायास्तदासीत्सुमनोहरम्। तदेतत्स्मृतपूर्वायास्तस्या जातमसाम्प्रतम् ॥३८॥
सीताशुद्ध्यनुरागाद्वा पद्मबन्धावथोदिते। प्रसाधितेऽखिले लोके किरणैः किङ्करैरिव ॥३९॥
शपथादिव दुर्वादे सीते ध्वान्ते क्षयं गते। समीपं पद्मनाभस्य प्रस्थिता जनकात्मजा ॥४०॥
सा करेणुसमारूढा दौर्मनस्याहतप्रभा। भास्करालोकदृष्टेव सानुगासीन्महौषधिः ॥४१॥
तथाप्युत्तमनारीभिरावृता भद्रभावना। रेजे सा नितरां तन्वी ताराभिर्वा विधोः कला ॥४२॥
ततः परिषदं पृथ्वीं गम्भीरां विनयस्थिताम्। [4]वन्द्यमानेड्यमाना च धीरा रामाङ्गनाविशत् ॥४३॥
विषादी विस्मयी हर्षी संक्षोभी जनसागरः। वर्द्धस्व जय नन्देति चकाराम्रेडितं स्वनम् ॥४४॥

नियुक्त कर रखे हैं कि जो भी देवीकी निन्दा करनेमे तत्पर हो उसे मार डाला जाय ॥३०॥ और जो पृथिवीमें अत्यन्त नीच होनेपर भी सीताकी गुण कथामे तत्पर हो उस विनीतके घरमे रत्नवर्षा की जाय ॥३१॥ हे देवि ! धान्यरूपी सम्पत्तिकी इच्छा करनेवाले खेतके पुरुष अर्थात् कृषक लोग अनुराग वश धान्यकी राशियोमे तुम्हारी स्थापना करते हैं। भावार्थ—लोगोंका विश्वास है कि धान्य राशिमे सीताकी स्थापना करनेसे अधिक धान्य उत्पन्न होता है ॥३२॥ हे देवि ! रामचन्द्रजीने तुम्हारे लिए यह पुष्पक विमान भेजा है सो प्रसन्न होकर इस पर चढ़ा जाये और अयोध्याकी ओर चला जाये ॥३३॥ जिस प्रकार लताके विना वृक्ष, दीपके विना घर और चन्द्रमाके विना आकाश सुशोभित नही होते उसी प्रकार तुम्हारे विना राम, अयोध्या नगरी और देश सुशोभित नहीं होते ॥३४॥ हे मैथिलि ! आज शीघ्र ही स्वामीका पूर्णचन्द्रके समान मुख देखो। हे कोविदे ! तुम्हे पति वचन अवश्य स्वीकृत करना चाहिए ॥३५॥ इस प्रकार कहने पर सैकड़ों उत्तम स्त्रियोके परिकरके साथ सीता पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो गयी और बड़े वैभवके साथ वेगसे आकाशमार्गसे चली ॥३६॥ अथानन्तर जब उसे अयोध्यानगरी दिखी उसी समय सूर्य अस्त हो गया अतः उसने चिन्तातुर हो महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें रात्रि व्यतीत की ॥३७॥ रामके साथ होनेपर जो उद्यान पहले उसके लिए अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था वही उद्यान पिछली घटना स्मृत होनेपर उसके लिए अयोग्य जान पड़ता था ॥३८॥ अथानन्तर सीताकी शुद्धिके अनुरागसे ही मानो जब सूर्य उदित हो चुका, किंकरोके समान किरणोसे जब समस्त संसार अलंकृत हो गया और शपथसे दुर्वादके समान जब अन्धकार भयभीत हो क्षयको प्राप्त हो गया तब सीता रामके समीप चली ॥३९-४०॥ मनकी अशान्तिसे जिसकी प्रभा नष्ट हो गयी थी ऐसी हस्तिनीपर चढ़ी सीता, सूर्यके प्रकाशसे आलोकित, पर्वतके शिखर पर स्थित महौषधिके समान यद्यपि निष्प्रभ थी तथापि उत्तम स्त्रियोसे घिरी, उच्च भावनावाली दुबली पतली सीता, ताराओसे घिरी चन्द्रमाकी कलाके समान अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४१-४२॥

तदनन्तर जिसे सब लोग वन्दना कर रहे थे तथा जिसकी सब स्तुति कर रहे थे ऐसी धीर वीरा सीताने विशाल, गम्भीर एवं विनयसे स्थित सभामे प्रवेश किया ॥४३॥ विषाद, विस्मय,

---

१. प्रार्थना म.। २. शस्य म.। ३. चारुसङ्गत म.। ४. वन्द्यमानेड्यमाना च म।

अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः । अहो महानुभावत्वमहो गाम्भीर्यमुत्तमम् ॥४५॥
अहोऽस्या वीतपङ्कत्वं समागमनसूचितम् । श्रीमज्जनकराजस्य सुतायाः सितकर्मण. ॥४६॥
एवमुद्धृष्टपिताङ्गानां नराणां सहयोषिताम् । वदनेभ्यो विनिश्चेरुर्वाचो व्याप्तदिगन्तराः ॥४७॥
गगने खेचरो लोको धरण्यां धरणीचरः । उदात्तकौतुकस्तस्थौ निमेषरहितेक्षणः ॥४८॥
प्रजातपरमंमदा· केचित्पुरुषा. प्रमदास्तथा । अमीक्षांचक्रिरे रामं संक्रन्दनमिवामराः ॥४९॥
पार्श्वस्थौ वीक्ष्य रामस्य केचिच्च लवणाङ्कुशौ । जगदुः सदृशावस्य सुकुमाराविमाविति ॥५०॥
लक्ष्मण केचिदैक्षन्त प्रतिपक्षक्षयक्षमम् । शत्रुघ्नसुन्दरं केचिदेके जनकनन्दनम् ॥५१॥
ख्यातं केचिद्धनूमन्तं त्रिकूटाधिपतिं परे । अन्ये विराधितं केचित्किष्किन्धनगरेश्वरम् ॥५२॥
केचिज्जनकराजस्य सुता विस्मितचेतसः । वसतिः सा हि नेत्राणां क्षणमात्रान्यचारिणाम् ॥५३॥
उपसृत्य ततो रामं दृष्ट्वा व्याकुलमानसा । वियोगसागरस्यान्तं प्राप्त जानक्यमन्यत ॥५४॥
प्राप्तायाः पद्मभार्यायाः लक्ष्मणोऽर्घं ददौ ततः । प्रणामं चक्रिरे भूपा. संभ्रान्ता रामपार्श्वगाः ॥५५॥
ततोऽभिमुखमायान्तीं वीक्ष्य तां रभसान्विताम् । राघवोऽक्षोभ्यसत्त्वोऽपि सकम्पहृदयोऽभवत् ॥५६॥
अचिन्तयच्च मुक्तापि वने व्यालसमाकुले । मम लोचनचौरीयं कथं भूयः समागता ॥५७॥
अहो विगतलज्जेयं महामत्त्वसमन्विता । यैवं निर्वास्यमानापि विरागं न प्रपद्यते ॥५८॥
ततस्तदिङ्गितं ज्ञात्वा वितानीभूतमानसा । विरहो न मयोत्तीर्ण इति साभूद्विषादिनी ॥५९॥

हर्ष और क्षोभसे सहित मनुष्योंका अपार सागर बार-बार यह शब्द कह रहा था कि वृद्धिको प्राप्त होओ, जयवन्त होओ और समृद्धिसे सम्पन्न होओ ॥४४॥ अहो ! उज्ज्वल कार्य करनेवाली श्रीमान् राजा जनककी पुत्री सीताका रूप धन्य है ? धैर्य धन्य है, पराक्रम धन्य है, उसकी कान्ति धन्य है, महानुभावता धन्य है, और समागमसे सूचित होनेवाली इसकी निष्कलकता धन्य है ॥ ४५–४६॥ इस प्रकार उल्लसित शरीरोको धारण करनेवाले मनुष्यो और स्त्रियोके मुखोसे दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेवाले शब्द निकल रहे थे ॥४७॥ आकाशमे विद्याधर और पृथिवी-मे भूमिगोचरी मनुष्य, अत्यधिक कौतुक और टिमकार रहित नेत्रोसे युक्त थे ॥४८॥ अत्यधिक हर्षसे सम्पन्न कितनी ही स्त्रियाँ तथा कितने ही मनुष्य रामको टकटकी लगाये हुए उस प्रकार देख रहे थे जिस प्रकार कि देव इन्द्रको देखते है ॥४९॥ कितने ही लोग रामके समीपमे स्थित लवण और अंकुशको देखकर यह कह रहे थे कि अहो ! ये दोनो सुकुमार कुमार इनके ही सदृश है ॥५०॥ कितने ही लोग शत्रुका क्षय करनेमे समर्थ लक्ष्मणको, कितने ही शत्रुघ्नको, कितने ही भामण्डलको, कितने ही हनूमान्को, कितने ही विभीषणको, कितने ही विराधितको और कितने ही सुग्रीवको देख रहे थे ॥५१–५२॥ कितने ही आश्चर्यसे चकित होते हुए जनक-सुताको देख रहे थे सो ठीक ही है क्योकि वह क्षण-मात्रके लिये अन्यत्र विचरण करनेवाले नेत्रोकी मानो वसति ही थी । ५३॥ तदनन्तर जिसका चित्त अत्यन्त आकुल हो रहा था ऐसी सीताने पास जाकर तथा रामको देखकर माना था कि अब वियोगरूपी सागरका अन्त आ गया है ॥५४॥ आयी हुई सीताके लिए लक्ष्मणने अर्घ दिया तथा रामके समीप बैठे हुए राजाओंने हड़बड़ा कर उसे प्रणाम किया ॥५५॥

तदनन्तर वेगसे सामने आती हुई सीताको देखकर यद्यपि राम अक्षोभ्य पराक्रमके धारक थे तथापि उनका हृदय काँपने लगा ॥५६॥ वे विचार करने लगे कि मैने तो इसे हिंसक जन्तुओसे भरे वनमे छोड़ दिया था फिर मेरे नेत्रोको चुरानेवाली यह यहाँ कैसे आ गयी ? ॥५७॥ अहो ! यह बड़ी निर्लज्ज है तथा महाशक्तिसे सम्पन्न है जो इस तरह निकाली जानेपर भी विरागको प्राप्त नही होती ॥५८॥ तदनन्तर रामकी चेष्टा देख, शून्यहृदया सीता यह सोचकर विषाद करने

विरहोदन्वतः कूलं मे मनःपात्रमनागतम् । नूनमेष्यति विध्वंसमिति चिन्ताकुलाभवत् ॥६०॥
किङ्कर्तव्यविमूढा सा पादाङ्गुष्ठेन गंगवा । विलिखन्ती क्षितिं तस्थौ बलदेवसमीपगा ॥६१॥
अग्रतोऽवस्थिता तस्य विरेजे जनकात्मजा । पुरन्दरपुरे[1] जाता लक्ष्मीरिव शरीरिणी ॥६२॥
ततोऽभ्यधायि रामेण सीते तिष्ठसि किं पुर. । अपसर्प न शक्तोऽस्मि भवतीमभिवीक्षितुम् ॥६३॥
मध्याह्ने दीधितिं सौरीमाशीविषमणेः शिखाम् । वरमुत्सहते चक्षुरीक्षितुं भवतीं तु नो ॥६४॥
दशास्यभवने मासान् बहूनन्तःपुरावृता । स्थिता यदाहृता भूयः समस्तं किं ममोचितम् ॥६५॥
ततो जगाद वैदेही निष्ठुरो नास्ति त्वत्समः[2] । तिरस्करोषि मां येन सुविद्यां प्राकृतो यथा[3] ॥६६॥
दोहलच्छद्मना नीत्वा वनं कुटिलमानसः[4] । गर्भाधानसमेतां मे त्यक्तुं किं सदृशं तव ॥६७॥
असमाधिमृतिं प्राप्ता तत्र स्यामहकं यदि । ततः किं ते भवेत् सिद्धं मम दुर्गतिदायिनः ॥६८॥
अतिस्वल्पोऽपि सद्भावो मय्यस्ति यदि वा कृपा । क्षान्त्यार्याणां ततः किं न नीत्वा वसतिमुज्झिता ॥६९॥
अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् । जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम् ॥७०॥
एवं गतेऽपि पद्माभ प्रसीद किमिहोरुणा । कथितेन प्रयच्छाज्ञामित्युक्त्वा दुःखिता रुदत् ॥७१॥
रामो जगाद जानामि देवि शीलं तवानघम् । मदनव्रततां चोच्चैर्भावस्य च विशुद्धताम् ॥७२॥
परिवादमिमं किन्तु प्राप्तासि प्रकटं परम् । स्वभावकुटिलस्वान्तामेतां प्रत्यायय प्रजाम् ॥७३॥

लगी कि मैने विरहरूपी सागर अभी पार नही कर पाया है ॥५९॥ विरहरूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मेरा मनरूपी जहाज निश्चित ही विध्वंसको प्राप्त हो जायेगा—नष्ट हो जायेगा ऐसी चिन्तासे वह व्याकुल हो उठी ॥६०॥ 'क्या करना चाहिए' इस विषयका विचार करनेमें मूढ सीता, पैरके अँगूठेसे भूमिको कुरेदती हुई रामके समीप खड़ी थी ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय रामके आगे खड़ी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो शरीरधारिणी स्वर्गकी लक्ष्मी ही हो अथवा इन्द्रके आगे मूर्तिमती लक्ष्मी ही खड़ी हो ॥६२॥

तदनन्तर रामने कहा कि सीते ! सामने क्यों खड़ी है ? दूर हट, मै तुम्हे देखनेके लिए समर्थ नही हूँ ॥६३॥ मेरे नेत्र मध्याह्नके समय सूर्यकी किरणको अथवा आशीविष-सर्पके मणिकी शिखाको देखनेके लिए अच्छी तरह उत्साहित हैं परन्तु तुझे देखनेके लिए नही ॥६४॥ तू रावणके भवनमे कई मास तक उसके अन्तःपुरसे आवृत होकर रही फिर भी मैं तुम्हे ले आया सो यह सब क्या मेरे लिए उचित था ? ॥६५॥

तदनन्तर सीताने कहा कि तुम्हारे समान निष्ठुर कोई दूसरा नही है। जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य उत्तम विद्याका तिरस्कार करता है उसी प्रकार तुम मेरा तिरस्कार कर रहे हो ॥६६॥ हे वक्रहृदय ! दोहलाके बहाने वनमे ले जाकर मुझ गर्भिणीको छोड़ना क्या तुम्हें उचित था ? ॥६७॥ यदि मैं वहाँ कुमरणको प्राप्त होती तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होता ? केवल मेरी ही दुर्गति होती ॥६८॥ यदि मेरे ऊपर आपका थोड़ा भी सद्भाव होता अथवा थोड़ी भी कृपा होती तो मुझे शान्तिपूर्वक आर्यिकाओंकी वसतिके पास ले जाकर क्यों नहीं छोड़ा ॥६९॥ यथार्थमे अनाथ, अबन्धु, दरिद्र तथा अत्यन्त दुःखी मनुष्योंका यह जिनशासन ही परम शरण है ॥७०॥ हे राम ! यहाँ अधिक कहनेसे क्या ? इस दशामे भी आप प्रसन्न हो और मुझे आज्ञा दे। इस प्रकार कहकर वह अत्यन्त दुःखी हो रोने लगी ॥७१॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे देवि ! मैं तुम्हारे निर्दोष शील, पातिव्रत्यधर्म एवं अभिप्रायकी उत्कृष्ट विशुद्धताको जानता हूँ किन्तु यतश्च तुम लोगोके द्वारा इस प्रकट भारी अपवादको प्राप्त हुई हो अतः स्वभावसे ही कुटिलचित्तको धारण करनेवाली इस प्रजाको विश्वास दिलाओ। इसकी

१. पुरो-म । २ ते सम व । ३. साधारणो जन. । ४. कुटिलमानस. म., ज. ।

एवमस्त्विति वैदेही जगौ संमदिनी ततः। दिव्यैः पञ्चभिरप्येषा लोकं प्रत्याययाम्यहम् ॥७४॥
विषाणां विषमं नाथ कालकूटं पिबाम्यहम्। आशीविषोऽपि य घ्रात्वा सद्यो गच्छति भस्मताम् ॥७५॥
आरोहामि तुलां वह्निज्वालां रौद्रां विशामि वा। यो वा भवदभिप्रेतः समयस्तं करोम्यहम् ॥७६॥
क्षणं विचिन्त्य पद्माभो जगौ वह्निं विशेत्यतः। जगौ सीता विशामीति महासंमदधारिणी ॥७७॥
प्रतिपन्नोऽनया मृत्युरित्यदीर्यत[1] नारदः। शोकोत्पीडैरपीड्यन्त श्रीशैलाद्या नरेश्वराः ॥७८॥
पावकं प्रविविक्षन्तीं परिनिश्चित्य मातरम्। चक्रतुस्तद्गतिं बुद्धावात्मनोर्लवणाङ्कुशौ ॥७९॥
महाप्रभावसंपन्न प्रहर्षं धारयंस्ततः। सिद्धार्थक्षुल्लकोऽवोचदुद्धृत्य भुजमुन्नतम् ॥८०॥
न सुरैरपि वैदेह्याः शीलव्रतमशेषतः। शक्यं कीर्तयितुं कैव कथा क्षुद्रशरीरिणाम् ॥८१॥
पातालं प्रविशेन्मेरुः शुष्येयुर्मकरालयाः। न पद्म चलनं किंचित्सीताशीलव्रतस्य तु ॥८२॥
इन्दुरर्कत्वमागच्छेदर्कः शीतांशुतां व्रजेत्। न तु सीतापरीवादः कथंचित्सत्यतां व्रजेत् ॥८३॥
विद्याबलसमृद्धेन मया पञ्चसु मेरुषु। वन्दना जिनचन्द्राणां कृता शाश्वतधामसु ॥८४॥
मा मे विफलतां[2] यायात्पद्मनाथ सुदुर्लभा। विपत्तिर्यदि सीतायाः शीलस्यास्ति मनागपि ॥८५॥
भूरिवर्षसहस्राणि सचेलेन मया कृतम्। तपस्तेन[3] शपे नाहं यथेमौ तव पुत्रकौ ॥८६॥
भीमज्वालावलीभङ्गं[4] सर्वभङ्गं सुनिष्ठुरम्। मा विक्षदनलं सीता तस्मात्पद्म विचक्षण ॥८७॥

शका दूर करो ॥७२-७३॥ तब सीताने हर्षयुक्त हो 'एवमस्तु' कहते हुए कहा कि मै पाँचो ही दिव्य शपथोसे लोगोको विश्वास दिलाती हूँ ॥७४॥ उसने कहा कि हे नाथ! मै उस कालकूटको पी सकती हूँ जो विषोमे सबसे अधिक विषम है तथा जिसे सूँघकर आशीविष सर्प भी तत्काल भस्मपनेको प्राप्त हो जाता है ॥७५॥ मै तुलापर चढ़ सकती हूँ अथवा भयंकर अग्निकी ज्वालामे प्रवेश कर सकती हूँ अथवा जो भी शपथ आपको अभीष्ट हो उसे कर सकती हूँ ॥७६॥ क्षणभर विचारकर रामने कहा कि अच्छा अग्निमे प्रवेश करो। इसके उत्तरमे सीताने बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि हाँ, प्रवेश करती हूँ ॥७७॥ 'इसने मृत्यु स्वीकृत कर ली' यह विचारकर नारद विदीर्ण हो गया और हनूमान् आदि राजा शोकके भारसे पीडित हो उठे ॥७८॥ 'माता अग्निमे प्रवेश करना चाहती है' यह निश्चयकर लवण और अकुशने बुद्धिमे अपनी भी उसी गतिका विचार कर लिया अर्थात् हम दोनो भी अग्निमे प्रवेश करेगे ऐसा उन्होने मनमे निश्चय कर लिया ॥७९॥ तदनन्तर महाप्रभावसे सम्पन्न एवं बहुत भारी हर्षको धारण करनेवाले सिद्धार्थ क्षुल्लकने भुजा ऊपर उठाकर कहा कि सीताके शीलव्रतका देव भी पूर्णरूपसे वर्णन नही कर सकते फिर क्षुद्र प्राणियोकी तो कथा ही क्या है? ॥८०-८१॥ हे राम! मेरु पातालमे प्रवेश कर सकता है और समुद्र सूख सकते है परन्तु सीताके शीलव्रतमे कुछ चंचलता उत्पन्न नही की जा सकती ॥८१॥ चन्द्रमा सूर्यपनेको प्राप्त हो सकता है और सूर्य चन्द्रपनेको प्राप्त कर सकता है परन्तु सीताका अपवाद किसी भी तरह सत्यताको प्राप्त नही हो सकता ॥८२-८३॥ मै विद्याबलसे समृद्ध हूँ और और मैने पाँचो मेरु पर्वतोपर स्थित शाश्वत-अकृत्रिम चैत्यालयोमे जो जिन-प्रतिमाएँ है उनकी वन्दना की है। हे राम! मै जोर देकर कहता हूँ कि यदि सीताके शीलमे थोड़ी भी कमी है तो मेरी वह दुर्लभ वन्दना निष्फलताको प्राप्त हो जाये ॥८४-८५॥ मैने वस्त्रखण्ड धारण कर कई हजार वर्ष तक तप किया सो यदि ये तुम्हारे पुत्र न हो तो मैं उस तपकी शपथ करता हूँ अर्थात् तपकी शपथपूर्वक कहता हूँ कि ये तुम्हारे ही पुत्र है ॥८६॥ इसलिए हे बुद्धिमन् राम! जिसमे भयकर ज्वालावली रूप लहरे उठ रही हैं तथा जो सबका सहार करनेवाली है ऐसी अग्निमे

---

१ रित्युदीर्यत म। २. विपुलता म। ३. ततस्तेन म.। ४. ज्वालावती- म.।

व्योम्नि वैद्याधरो लोको धरण्यां धरणीचरः । जगाद साधु साधूक्तमिति सुक्तमहास्वनः ॥८८॥
प्रसीद देव पद्माभ प्रसीद व्रज सौम्यताम् । नाथ मा राम मा राम कार्षीः पावकमानसम् ॥८९॥
सती सीता सती सीता न संभाव्यमिहान्यथा । महापुरुषपत्नीनां जायते न विकारिता ॥९०॥
इति वाष्पभराद्वाचो [1]गद्गदा जनसागरात् । संक्षुभ्यादभिनिश्चेरुर्व्याप्तसर्वदिगन्तराः ॥९१॥
महाकोलाहलस्वानैः समं सर्वासुधारिणाम् । अत्यन्तशोकिनां स्थूला निपेतुर्वाष्पबिन्दवः ॥९२॥
पद्मो जगाद यद्येवं भवन्तः करुणापराः । तत्पुरा परिवादममाषिध्वं कुतो जनाः ॥९३॥
एवमाज्ञापयत्तीव्रमनपेक्षश्च किङ्करान् । आलम्ब्य परमं सत्त्वं विशुद्धिन्यस्तमानसः ॥९४॥
पुरुषौ द्वावधस्तादद्राक् खन्यतामत्र मेदिनी । शतानि त्रीणि हस्तानां चतुष्कोणा प्रमाणतः ॥९५॥
[2]विधायैवविधां वापीं सुशुष्कैः परिपूर्यताम् । इन्धनैः परमस्थूलैः कृष्णागरुकचन्दनैः ॥९६॥
प्रचण्डबहलज्वालो ज्वाल्यतामाशुशुक्षणिः । साक्षान्मृत्युरिवोपात्तविग्रहो निर्विलम्बितम् ॥९७॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा महाकुद्दालपाणिभिः । किङ्करैस्तत्कृतं सर्वं कृतान्तपुरुषोत्तमैः ॥९८॥
यस्यामेवाथ वेलायां संवादः पद्मसीतयोः । क्रियते किङ्करैर्भीममनुष्ठानं च दाहनम् ॥९९॥
तदनन्तरशर्वर्यां ध्यानमुत्तममीयुषः । महेन्द्रोदयमेदिन्यां सर्वभूषणयोगिनः ॥१००॥
उपसर्गो महानासीज्जनितः पूर्ववैरतः । अत्यन्तरौद्रराक्षस्या विद्युद्वक्त्राभिधानया ॥१०१॥
अपृच्छदथ सबन्धं श्रेणिको मुनिपुङ्गवम् । ततो गणधरोऽवोचन्नरेन्द्र श्रूयतामिति ॥१०२॥

सीता प्रवेश नहीं करे ॥८७॥ क्षुल्लककी बात सुन आकाशमें विद्याधर और पृथ्वीपर भूमिगोचरी लोग 'अच्छा कहा-अच्छा कहा' इस प्रकारकी जोरदार आवाज लगाते हुए बोले कि 'हे देव प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, सौम्यताको प्राप्त होओ, हे नाथ! हे राम! हे राम! मनमें अग्निका विचार मत करो ॥८८–८९॥ सीता सती है, सीता सती है, इस विषयमें अन्यथा सम्भावना नहीं हो सकती। महापुरुषोंकी पत्नियोंमें विकार नहीं होता ॥९०॥ इस प्रकार समस्त दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करनेवाले, तथा अश्रुओंके भारसे गद्गद अवस्थाको प्राप्त हुए शब्द, संक्षुभित जनसागरसे निकलकर सब ओर फैल रहे थे ॥९१॥ तीव्र शोकसे युक्त समस्त प्राणियोंके आँसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदें महान् कलकल शब्दोंके साथ-साथ निकलकर नीचे पड़ रही थीं ॥९२॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे मानवो! यदि इस समय आप लोग इस तरह दया प्रकट करनेमें तत्पर हैं तो पहले आप लोगोंने अपवाद क्यों कहा था? ॥९३॥ इस प्रकार लोगोंके कथनकी अपेक्षा न कर जिन्होंने मात्र विशुद्धतामें मन लगाया था ऐसे रामने परम दृढ़ताका आलम्बन कर किंकरोंको आज्ञा दी कि ॥९४॥ यहाँ शीघ्र ही दो पुरुष गहरी और तीन सौ हाथ चौड़ी चौकोन पृथ्वी प्रमाणके अनुसार खोदो और ऐसी वापी बनाकर उसे कालागुरु तथा चन्दनके सूखे और बड़े मोटे ईन्धनसे परिपूर्ण करो। तदनन्तर उसमें विना किसी विलम्बके ऐसी अग्नि प्रज्वलित करो कि जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण ज्वालाएँ निकल रही हों तथा जो शरीरधारी साक्षात् मृत्युके समान जान पड़ती हों ॥९५–९७॥ तदनन्तर बड़े-बड़े कुदाले जिनके हाथमें थे तथा जो यमराजके सेवकोंसे भी कहीं अधिक थे ऐसे सेवकोंने 'जो आज्ञा' कहकर रामकी आज्ञानुसार सब काम कर दिया ॥९८॥

अथानन्तर जिस समय राम और सीताका पूर्वोक्त संवाद हुआ था तथा किंकर लोग जिस समय अग्नि प्रज्वालनका भयंकर कार्य कर रहे थे उसी समयसे लगी हुई रात्रिमें सर्वभूषण मुनिराज महेन्द्रोदय उद्यानकी भूमिमें उत्तम ध्यान कर रहे थे सो पूर्व वैरके कारण विद्युद्वक्त्रा नामकी राक्षसीने उनपर महान् उपसर्ग किया ॥९९–१०१॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे

१ गद्गदाज्जन- म.। २ एष श्लोकः म. पुस्तके नास्ति।

विजयार्द्धोत्तरे वास्ये [1]सर्वपूर्वत्र शोभिते । गुञ्जाभिधाननगरे राजाभूत् सिंहविक्रमः ॥१०३॥
तस्य श्रीरित्यभूद्भार्या पुत्रः सकलभूषणः । अष्टौ शतानि तत्कान्ता अग्रा किरणमण्डला ॥१०४॥
कदाचित्सा सपत्नीभिरुच्यमाना सुमानसा । चित्रे मैथुनिकं चक्रे देवी हेमशिखाभिधम् ॥१०५॥
तं राजा सहसा वीक्ष्य परमं कोपमागत. । पत्नीभिश्चोच्यमानश्च प्रसादं पुनरागमत् ॥१०६॥
समदेनान्यदा सुप्ता साध्वी किरणमण्डला । मुहुर्हेमशिखाभिख्यां प्रमादात्समुपाददे ॥१०७॥
श्रुत्वा तां सुतरां क्रुद्धो राजा वैराग्यमागतः । प्राव्राजीत्सापि मृत्वाभूद्विद्युदास्येति राक्षसी ॥१०८॥
तस्य सा भ्रमतो भिक्षां कृत्वा त्रुटितबन्धनम् । मतङ्गजं परिक्रुद्धा प्रत्यूहनिरताभवत् ॥१०९॥
गृहदाहं रजोवर्षमश्वोक्षाभिमुखागमम् । कण्टकावृतमार्गत्वं तथा चक्रे दुरीहिता ॥११०॥
छित्वान्यदा गृहे सन्धिमेतं प्रतिमया स्थितम् । स्थापयत्यानने तस्य स चौर इति गृह्यते ॥१११॥
मुच्यते च परामूय परमार्थपराङ्मुखैः । महता जनवृन्देन स्वनता बद्धमण्डलः ॥११२॥
कृतभिक्षस्य निर्यातः कदाचिद्भिक्षदा स्त्रियः । हारं गलेऽस्य बध्नाति स चौर इति कथ्यते ॥११३॥
अतिक्रूरमनाः पापा एवमादीनुपद्रवान् । चक्रे सा तस्य निर्वेदरहिता सततं परान् ॥११४॥
ततोऽस्य प्रतिमास्थस्य महेन्द्रोद्यानगोचरे । उपसर्गं परं चक्रे पूर्ववैरानुबन्धतः ॥११५॥
वेतालैः करिभिः सिंहैर्व्याघ्रैरुग्रैर्महोरगैः । नानारूपैर्गुणैर्दिव्यनारीदर्शनलोचनैः ॥११६॥

इनके पूर्व वैरका सम्बन्ध पूछा सो गणधर भगवान् बोले कि हे नरेन्द्र ! सुनो ॥१०२॥ विजयार्ध-पर्वतकी उत्तर श्रेणीमे सर्वत्र सुशोभित गुंजा नामक नगरमे एक सिंहविक्रम नामक राजा रहता था । उसकी रानीका नाम श्री था और उन दोनोका सकलभूषण नामका पुत्र था । सकलभूषणकी आठ सौ स्त्रियां थी उनमे किरणमण्डला प्रधान स्त्री थी ॥१०३–१०४॥ शुद्ध हृदयको धारण करनेवाली किरणमण्डलाने किसी समय सपत्नियोके कहनेपर चित्रपटमे अपने मामाके पुत्र हेमशिखका रूप लिखा उसे देख राजा सहसा परम कोपको प्राप्त हुआ परन्तु अन्य पत्नियोके कहनेपर वह पुनः प्रसन्नताको प्राप्त हो गया ॥१०५–१०६॥ पतिव्रता किरणमण्डला किसी समय हर्ष सहित अपने पतिके साथ सोयी हुई थी सो सोते समय प्रमादके कारण उसने बार-बार हेमरथका नाम उच्चारण किया जिसे सुनकर राजा अत्यन्त कुपित हुआ और कुपित होकर उसने वैराग्य धारण कर लिया । उधर किरणमण्डला भी साध्वी हो गयी और मरकर विद्युद्वक्त्रा नामकी राक्षसी हुई ॥१०७–१०८॥ जब सकलभूषणमुनि भिक्षाके लिए भ्रमण करते थे तब वह दुष्ट राक्षसी कुपित हो अन्तराय करनेमे तत्पर हो जाती थी । कभी वह मत्त हाथीका बन्धन तोड देती थी, कभी घरमे आग लगा देती थी, कभी रजकी वर्षा करने लगती थी, कभी घोड़ा अथवा बैल बनकर उनके सामने आ जाती थी और कभी मार्गको कण्टकोसे आवृत कर देती थी ॥१०९–११०॥ कभी प्रतिमा योगसे विराजमान मुनिराजको, घरमे सन्धि फोड़कर उसके आगे लाकर रख देती थी और यह कहकर पकड़ लेती थी कि यही चोर है तब हल्ला करते हुए लोगोकी भीड उन्हे घेर लेती थी, कुछ परमार्थसे विमुख लोग उनका अनादर कर उसके बाद उन्हे छोड़ देते थे ॥१११–११२॥ कभी आहार कर जब बाहर निकलने लगते तब आहार देनेवाली स्त्रीका हार इनके गलेमे बाँध देती और कहने लगती कि यह चोर है ॥११३॥ इस प्रकार अत्यन्त क्रूर हृदय-को धारण करनेवाली वह पापिनी राक्षसी निर्वेदसे रहित हो सदा एकसे एक बढ़कर उपसर्ग करती रहती थी ॥११४॥ तदनन्तर यही मुनिराज महेन्द्रोदयनामा उद्यानमे प्रतिमा योगसे विराज-मान थे सो उस राक्षसीने पूर्व वैरके संस्कारसे उनपर परम उपसर्ग किया ॥११५॥ वह कभी वेताल बनकर, कभी हाथी सिंह व्याघ्र तथा भयंकर सर्प होकर और कभी नानाप्रकारके गुणोसे

---

१ सर्वत्र भी टि ।

उपद्रवैर्यदामीभिः स्खलितं नास्य मानसम् । तदा तस्य मुनीन्द्रस्य ज्ञानं केवलमुद्गतम् ॥११७॥
ततः केवलसंभूतिमहिमाहितमानसाः । सुरासुराः समायाताः सुनासीरपुरःसराः ॥११८॥
स्तम्बेरमैर्मृगाधीशैः स्थूरीपृष्ठैः क्रमेलकैः । वालेयैरुग्रमिच्यांघ्रैः शरभैः सृमरैः खगैः ॥११९॥
विमानैः स्यन्दनैर्युग्यैर्यानैरन्यैश्च चारुभिः । ज्योतिःपथं समासाद्य महासम्पत्समन्विताः ॥१२०॥
पवनोद्धूतसत्केशवस्त्रकेतनपङ्क्तयः । मौलिकुण्डलहारांशुसमुद्योतितपुष्कराः ॥१२१॥
अप्सरोगणसंकीर्णाः साकेताभिमुखाः सुराः । अवतेरुरलं हृष्टाः पश्यन्तो धरणीतलम् ॥१२२॥
अवलोक्य ततः सीतावृत्तान्तं मेषकेतनः । शक्रं जगाद देवेन्द्र पश्येदमपि दुष्करम् ॥१२३॥
सुराणामपि दुःस्पर्शो महाभयसमुद्भवः । सीताया उपसर्गोऽयं कथं नाथ प्रवर्तते ॥१२४॥
श्राविकायाः सुशीलायाः परमस्वच्छचेतसः । दुरीक्ष्यः कथमेतस्या जायतेऽयमुपप्लवः ॥१२५॥
आखण्डलस्ततोऽवोचदहं सकलभूषणम् । त्वरितं वन्दितुं यामि कर्तव्यं त्वमिहाश्रय ॥१२६॥
अभिधायेति देवेन्द्रो महेन्द्रोदयसंमुखम् । ययावेषोऽपि मेषाङ्कः सीतास्थानमुपागमत् ॥१२७॥
तत्र व्योमतलस्थोऽसौ विमानशिखरे स्थितः । सुमेरुशिखरच्छाये [1]समुद्योतयते दिशम् ॥१२८॥

आर्यागीतिच्छन्दः

.... ।
रविरिव विराजमानः सर्वजनमनोहरं स पश्यति रामम् ॥१२९॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सकलभूषणदेवागमनाभिधानं नाम चतुरुत्तरशतं पर्व ॥१०४॥

दिव्य स्त्रियोका रूप दिखाकर उपसर्ग किया ॥११६॥ परन्तु जब इन उपसर्गोसे इनका मन विचलित नही हुआ तब इन मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥११७॥

तदनन्तर केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी महिमामे जिनका मन लग रहा था ऐसे इन्द्र आदि समस्त सुर असुर वहाँ आये ॥११८॥ हाथी, सिंह, घोडे, ऊँट, गधे, बड़े-बड़े व्याघ्र, अष्टापद, सामर, पक्षी, विमान, रथ, बैल, तथा अन्य अन्य सुन्दर वाहनोसे आकाशको आच्छादित कर सब लोग अयोध्याकी ओर आये। जिनके केश, वस्त्र तथा पताकाओकी पंक्तियाँ वायुसे हिल रही थी तथा जिनके मुकुट, कुण्डल और हारकी किरणोसे आकाश प्रकाशमान हो रहा था ॥११९-१२१॥ जो अप्सराओंके समूहसे व्याप्त थे तथा जो अत्यन्त हर्षित हो पृथिवीतलको अच्छी तरह देख रहे थे ऐसे देव लोग नीचे उतरे ॥१२२॥ तदनन्तर सीताका वृत्तान्त देख मेषकेतु नामक देवने अपने इन्द्रसे कहा कि हे देवेन्द्र ! जरा इस अत्यन्त कठिन कार्यको भी देखो ॥१२३॥ हे नाथ ! देवोंको भी जिसका स्पर्श करना कठिन है तथा जो महाभयका कारण है ऐसा यह सीताका उपसर्ग क्यो हो रहा है ? सुशील एवं अत्यन्त स्वच्छ हृदयको धारण करनेवाली इस श्राविकाके ऊपर यह दुरीक्ष्य उपद्रव क्यों हो रहा है ? ॥१२४-१२५॥ तदनन्तर इन्द्रने कहा कि मैं सकलभूषण केवलीकी वन्दना करनेके लिए शीघ्रतासे जा रहा हूँ इसलिए यहाँ जो कुछ करना योग्य हो वह तुम करो ॥१२६॥ इतना कहकर इन्द्र महेन्द्रोदय उद्यानके सन्मुख चला और यह मेषकेतु देव सीताके स्थान पर पहुँचा ॥१२७॥ वहाँ यह आकाशतलमें सुमेरुके शिखरके समान कान्तिसे युक्त दिशाओको प्रकाशित करने लगा। विमानके शिखरपर स्थित हुआ ॥१२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस विमानके शिखरपर सूर्यके समान सुशोभित होनेवाले उस मेषकेतु देवने वहीसे सर्वजन मनोहारी रामको देखा ॥१२९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें सकलभूषणके केवलज्ञानोत्सवमें देवोंके आगमनका वर्णन करनेवाला एक सौ चौथा पर्व समाप्त हुआ ॥१०४॥

---

१. 'समुद्योतयते दिशम्' इति पाठ ञ पुस्तके एव विद्यते। अन्येषु पुस्तकेषु पाठो नास्त्येव। २. १२९ तमश्लोकस्य पूर्वार्धं पुस्तकचतुष्टयेऽपि नास्ति।

पञ्चोत्तरशतं पर्व

तां निरीक्ष्य ततो वापीं तृणकाष्ठप्रपूरिताम् । समाकुलमना दध्याविति काकुत्स्थचन्द्रमाः ॥१॥
कुतः पुनरिमां कान्तां पश्येयं गुणतूणिकाम् । महालावण्यसंपन्नां द्युतिशीलपरावृताम् ॥२॥
विकासिमालतीमालासुकुमारशरीरिका । नूनं यास्यति विध्वंसं स्पृष्टमात्रैव वह्निना ॥३॥
असविष्यदियं नो चेत्कुले जनकभूभृतः । परिवादमिमं नाप्स्यन्मरणं च हुताशने ॥४॥
उपलप्स्ये कुतः सौख्यं क्षणमप्यनया विना । वरं वासोऽनयारण्ये न विना दिवि राजते ॥५॥
महानिश्चिन्तचित्तेयमपि मर्तुं व्यवस्थिता । प्रविशन्ती कृतास्थाग्निं रोद्धुं लोकस्य लज्यते ॥६॥
उन्मुक्तसुमहाशब्दः सिद्धार्थः क्षुल्लकोऽप्ययम् । तूष्णीं स्थित. किमु व्याज करोम्येतन्निवर्त्तते ॥७॥
अथ वा येन यादृक्षं मरणं समुपार्जितम् । नियमं स तदाप्नोति कस्तद्वारयितुं क्षमः ॥८॥
तदापह्रियमाणाया ऊर्ध्वं क्षारमहोदधेः । मदनुव्रतचित्ताया नेच्छत्येषेति कोपिना[1] ॥९॥
लङ्काधिपतिना किं नालूनमस्याः शिरोऽसिना । येनायमपरः प्राप्तः संशयोऽत्यन्तदुस्तरः ॥१०॥
वरं हि मरणं श्लाघ्य न वियोगः सुदु.सहः । श्रुतिस्मृतिहरोऽसौ हि परमः कोऽपि निन्दित. ॥११॥
यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतस । मृतेति छिद्यते स्वैरं कथाकाङ्क्षा च तद्गता ॥१२॥
इति चिन्तातुरे तस्मिन् वाप्यां प्रज्वालयतेऽनलः । समुत्पन्नोरुकारुण्या रुरुदुर्नरयोषितः ॥१३॥

अथानन्तर तृण और काष्ठसे भरी उस वापीको देख श्रीराम व्याकुल चित्त होते हुए इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१॥ गुणोकी पुंज, महा सौन्दर्यसे सम्पन्न एवं कान्ति और शीलसे युक्त इस कान्तको अव पुनः कैसे देख सकूँगा ॥२॥ खिली हुई मालतीकी मालाके समान सुकुमार शरीरको धारण करनेवाली यह कान्ता निश्चित ही अग्निके द्वारा स्पृष्ट होते ही नाशको प्राप्त हो जायेगी ॥३॥ यदि यह राजा जनकके कुलमे उत्पन्न नही हुई होती तो इस लोकापवादको तथा अग्निमे मरणको प्राप्त नही होती ॥४॥ इसके बिना मै क्षण भरके लिए भी और किससे सुख प्राप्त कर सकूँगा ? इसके साथ वनमे निवास करना भी अच्छा है पर इसके बिना स्वर्गमे रहना भी शोभा नही देता ॥५॥ यह भी महानिश्चिन्तहृदया है कि मरनेके लिए उद्यत हो गयी। अव दृढताके साथ अग्निमे प्रवेश करनेवाली है सो इसे कैसे रोका जाय ? लोगोके समक्ष रोकनेमे लज्जा उत्पन्न हो रही है ॥६॥ उस समय वडे जोरसे हल्ला करनेवाला यह सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक भी चूप बैठा है, अत. इसे रोकनेमे क्या वहाना करूँ ? ॥७॥ अथवा जिसने जिस प्रकारके मरणका अर्जन किया है नियमसे वह उसी मरणको प्राप्त होता है उसे रोकनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥८॥ उस समय जव कि यह पतिव्रता लवण समुद्रके ऊपर हरकर ले जायी जा रही थी तब 'यह मुझे नही चाहती है' इस भावसे कुपित हो रावणने खड्गसे इसका शिर क्यो नही काट डाला ? जिससे कि यह इस अत्यन्त दुस्तर सशयको प्राप्त हुई है ॥९-१०॥ मर जाना अच्छा है परन्तु दु.सह वियोग अच्छा नही है क्योकि श्रुति तथा स्मृतिको हरण करनेवाला वियोग कोई अत्यन्त निन्दित पदार्थ है ॥११॥ विरह तो जीवन-पर्यन्तके लिए चित्तको सन्ताप प्रदान करता रहता है और 'मर गयी' यह सुन उस सम्बन्धी कथा और इच्छा तत्काल छूट जाती है ॥१२॥ इस प्रकार रामके चिन्तातुर होनेपर वापीमे अग्नि जलायी जाने लगी। दयावती स्त्रियाँ रो उठी ॥१३॥

१. कोपिता म ।

ततोऽन्धकारितं व्योम धूमेन घनमुद्यता । अभूदकालसंप्राप्तप्रावृण्मेघैरिवावृतम् ॥१४॥
भृङ्गात्मकमिवोद्भूतं जगदन्यदिदं तदा । कोकिलात्मकमाहोस्विदाहो पारापतात्मकम् ॥१५॥
अशक्नुवन्निव द्रष्टुमुपसर्गं तथाविधम् । दयार्द्रहृदयः शीघ्रं भानुः क्वापि तिरोदधे ॥१६॥
[1]जज्वाल ज्वलनश्चोग्रः सर्वाशासु महाजवः । गव्यूतिपरिमाणाभिर्ज्वालाभिर्विकरालितः ॥१७॥
किं निरन्तरतीव्रांशुसहस्रैश्छादितं नभः । [2]पातालकिंशुकागौघाः सहसा किं समुत्थिताः ॥१८॥
आहोस्विद्गगनं प्राप्तमुत्पातमयसन्ध्यया । हाटकात्मकमेकं तु प्रारब्धं भवितुं जगत् ॥१९॥
सौदामिनीमयं किन्नु[3] सञ्जातं भुवनं तदा । जिगीषया परो जातः किमु जङ्गममन्दरः ॥२०॥
ततः सीता समुत्थाय नितान्तस्थिरमानसा । [4]कायोत्सर्गं क्षणं कृत्वा स्तुत्वा भावार्पितान् जिनान् ॥२१॥
ऋषभादीन्नमस्कृत्य धर्मतीर्थस्य देशकान् । सिद्धान् समस्तसाधूंश्च सुव्रतं च जिनेश्वरम् ॥२२॥
यस्य संसेव्यते तीर्थं तदा संमदधारिभिः । परमैश्वर्यसंयुक्तैस्त्रिदशासुरमानवैः ॥२३॥
सर्वप्राणिहिताचार्यचरणौ च मनःस्थितौ । प्रणम्योदारगम्भीरा विनीता जानकी जगौ ॥२४॥
कर्मणा मनसा वाचा रामं मुक्त्वा परं नरम् । समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम ॥२५॥
यद्येतदनृतं वच्मि तदा मामेष पावकः । भस्मसाद्भावमप्राप्तामपि प्रापयतु क्षणात् ॥२६॥
अथ पद्मान्नरं नान्यं मनसापि वहाम्यहम् । ततोऽयं ज्वलनो धाक्षीन्मा मां शुद्धिसमन्विताम् ॥२७॥

तदनन्तर अत्यधिक उठते हुए धूमसे आकाश अन्धकारयुक्त हो गया और ऐसा जान पड़ने लगा मानो असमयमे प्राप्त हुए वर्षाकालीन मेघोसे ही व्याप्त हो गया हो ॥१४॥ उस समय जगत् ऐसा जान पड़ने लगा मानो भ्रमरोसे युक्त, कोकिलाओसे युक्त अथवा कबूतरोसे युक्त दूसरा ही जगत् उत्पन्न हुआ है ॥१५॥ सूर्य आच्छादित हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो दयासे आर्द्रहृदय होनेके कारण उस प्रकारके उपसर्गको देखनेके लिए असमर्थ होता हुआ शीघ्र ही कही जा छिपा हो ॥१६॥ उस वापीमे ऐसी भयंकर अग्नि प्रज्वलित हुई कि समस्त दिशाओंमे जिसका महावेग फैल रहा था और जो कोशो प्रमाण लम्बी-लम्बी ज्वालाओंसे विकराल थी ॥१७॥ उस समय उस अग्निको देख इस प्रकार संशय उत्पन्न होता था कि क्या एक साथ उदित हुए हजारो सूर्योसे आकाश आच्छादित हो रहा है? अथवा पाताल लोकके पलाश वृक्षोंका समूह क्या सहसा ऊपर उठ आया है? अथवा आकाशको क्या प्रलयकालीन सन्ध्याने घेर लिया है? अथवा यह समस्त जगत् एक सुवर्णरूप होनेकी तैयारी कर रहा है अथवा समस्त संसार बिजलीमय हो रहा है अथवा जीतनेकी इच्छासे क्या दूसरा चलता-फिरता मेरु ही उत्पन्न हुआ है? ॥१८–२०॥

तदनन्तर जिसका मन अत्यन्त दृढ था ऐसी सीताने उठकर क्षणभरके लिए कायोत्सर्ग किया, भावनासे प्राप्त जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति की, ऋषभादि तीर्थंकरोको नमस्कार किया, सिद्ध परमेष्ठी, समस्त साधु और मुनिसुव्रत जिनके कि तीर्थकी उस समय हर्षके धारक एवं परम ऐश्वर्यसे युक्त देव असुर और मनुष्य सदा सेवा करते हैं और मनमे स्थित सर्वप्राणिहितैषी आचार्यके चरणयुगल इन सबको नमस्कार कर उदात्त गाम्भीर्य और अत्यधिक विनयसे युक्त सीताने कहा ॥२१–२४॥ कि मैंने रामको छोड़कर किसी अन्य मनुष्यको स्वप्नमे भी मन-वचन और कायसे धारण नही किया है यह मेरा सत्य है ॥२५॥ यदि मै यह मिथ्या कह रही हूँ तो यह अग्नि दूर रहने पर भी मुझे क्षण भरमे भस्मभावको प्राप्त करा दे—राखका ढेर बना दे ॥२६॥ और यदि मैंने रामके सिवाय किसी अन्य मनुष्यको मनसे भी धारण नही किया है तो विशुद्धिसे

---

१ प्रज्वाल-म । २. पातालं किंशुकां गोघा. म. । ३. किन्तु म । ४ कार्योत्सर्गं म. ।

[1]मिथ्यादर्शनिनीं पापां क्षुद्रिकां व्यभिचारिणीम् । ज्वलनो मां दहत्येष सतीं व्रतस्थितां तु मा ॥२८॥
अभिधायेति सा देवि प्रविवेशानलं च तम् । जातं च [2]स्फटिकस्वच्छं सलिलं सुखशीतलम् ॥२९॥
भित्त्वेव सहसा क्षोणी तरसा पयसोद्यता । परमं पूरिता वापी रङ्गद्भृङ्गकुलाभवत् ॥३०॥
[3]नोल्मुकानि न काष्ठानि नाङ्गारा[4] न तृणादिकम् । आलोक्यते तदा तत्र [5]वृत्तपावकसूचनम् ॥३१॥
पर्यन्तयद्वफेनौघवलया वेगशालिनः । आवर्तास्तत्र सवृद्धा गम्भीरा भीमदर्शनाः ॥३२॥
भवन्मृदङ्गनिस्वानात् क्वचिद् गुलुगुलायते । भुंभुंद्भुम्भायतेऽन्यत्र क्वचित् पटपटायते ॥३३॥
क्वचिन्मुञ्चति हुङ्कारान्घूङ्कारान्क्वचिदायतान् । क्वचिद्दिमिदिमिस्वानान् जुगुधुद्भूदिति क्वचित् ॥३४॥
क्वचित्कलकलारावांच्छसद्भसदिति क्वचित् । टुटु[6] घण्टासमुद्घुष्टमिति क्वचिदितीति च ॥३५॥
एवमादिपरिक्षुब्धसागराकारनिःस्वना । क्षणाद्रोध.स्थित वापी लग्ना प्लावयितुं जनम् ॥३६॥
जानुमात्रं क्षणादम्भः श्रोणिदघ्नमभूत्क्षणात् । पुनर्निमेषमात्रेण स्तनद्वयसतां गतम् ॥३७॥
नैति पौरुषतां यावत्तावत्त्रस्ता महीचराः । किंकर्त्तव्यातुरा जाताः खेचरा वियदाश्रिताः ॥३८॥
कण्ठस्पर्शि ततो जाते वारिण्युरुजवान्विते । विह्वलाः संगता मञ्चास्तेऽपि चञ्चलतां गताः ॥३९॥
केचित् [7]प्लवितुमारब्धा जातेऽम्भसि शिरोतिगे । वस्त्रडिंभकसंबन्धसंदिग्धोर्ध्वैकबाहुगाः[8] ॥४०॥
त्रायस्व देवि त्रायस्व मान्ये लक्ष्मि सरस्वति । महाकल्याणि धर्माढ्ये सर्वप्राणिहितैषिणि ॥४१॥

सहित मुझे यह अग्नि नही जलावे ॥२७॥ यदि मै मिथ्यादृष्टि, पापिनी, क्षुद्रा और व्यभिचारिणी होऊँगी तो यह अग्नि मुझे जला देगी और यदि सदाचारमे स्थित सती होऊँगी तो नही जला सकेगी ॥२८॥ इतना कहकर उस देवीने उस अग्निमे प्रवेश किया परन्तु आश्चर्यकी बात कि वह अग्नि स्फटिकके समान स्वच्छ, सुखदायी तथा शीतल जल हो गयी ॥२९॥ मानो सहसा पृथिवीको फोडकर वेगसे उठते हुए जलसे वह वापिका लबालब भर गयी तथा चचल तरगोसे व्याप्त हो गयी ॥३०॥ वहाँ अग्नि थी इस बातकी सूचना देनेवाले न लूगर, न काष्ठ, न अंगार और न तृणादिक कुछ भी दिखाई देते थे ॥३१॥ उस वापिकामे ऐसी भयंकर भँवरे उठने लगी जिनके कि चारों ओर फेनोके समूह चक्कर लगा रहे थे जो अत्यधिक वेगसे सुशोभित थी तथा अत्यन्त गम्भीर थी ॥३२॥ कही मृदंग जैसा शब्द होनेसे 'गुलु गुल' शब्द होने लगा, कही 'भुं भुंद्भुंभ'की ध्वनि उठने लगी और कही 'पट पट'की आवाज आने लगी ॥३३॥ उस वापीमे कही हुंकार, कही लम्बी-चौडी घूंकार, कही दिमिदिमि, कही जुगुद जुगुद, कही कलकल ध्वनि, कही शमद-भसद, और कही चाँदीके घण्टा जैसी आवाज आ रही थी ॥३४-३५॥ इस प्रकार जिसमे क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान शब्द उठ रहा था ऐसी वह वापी क्षण-भरमे तटपर स्थित मनुष्योको डुबाने लगी ॥३६॥ वह जल क्षण-भरमे घुटनोके बराबर, फिर नितम्बके बराबर, फिर निमेष मात्रमे स्तनोके बराबर हो गया ॥३७॥ वह जल पुरुष प्रमाण नही हो पाया कि उसके पूर्व ही पृथिवीपर चलनेवाले लोग भयभीत हो उठे तथा क्या करना चाहिए इस विचारसे दुखी विद्याधर आकाशमे जा पहुँचे ॥३८॥ तदनन्तर तीव्र वेगसे युक्त जल जब कण्ठका स्पर्श करने लगा तब लोग व्याकुल होकर मंचोपर चढ गये किन्तु थोड़ी देर बाद वे मच भी डूब गये ॥३९॥ तदनन्तर जब वह जल शिरको उल्लंघन कर गया तब कितने ही लोग तैरने लगे। उस समय उनकी एक भुजा वस्त्र तथा बच्चोंको सँभालनेके लिए ऊपरकी ओर उठ रही थी ॥४०॥ "हे देवि !

१. अत्रायमुपयुक्त श्लोको महानाटकस्य—'मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे, मम यदि प्रतिभावो राघवादन्यपुंसि । तदिह दह शरीरं पावके मामकीनं, मम सुकृतदुरितकार्ये देव साक्षी त्वमेव' इति । २. स्फटिकं स्वच्छं म. । ३ नोत्सुकानि म । ४. नागारा म । ५ वृद्ध म । ६ टुटु घण्टा समुत्तस्था -म. । ७. स्तवितु -म. । ८. वाहनाः म. ।

दयां कुरु महासाध्वि मुनिमानसनिर्मले । इति वाचो विनिश्चेरुर्वारिविह्वललोकतः ॥४२॥
ततः सरसिरुड्गर्भकोमलं नखभान्वितम् । स्पृष्ट्वा वापीवधूरूर्मिहस्तैः पद्मक्रमद्वयम् ॥४३॥
प्रशान्तकलुषावर्त्ता त्यक्तभीषणनिस्वना । क्षणेन सौम्यतां प्राप्ता ततो लोकोऽभवत्सुखी ॥४४॥
उत्पलैः कुमुदैः [1]पद्मैः सञ्छन्ना साभवत्क्षणात् । सौरभ्यक्षीवभृङ्गौघसंगीतकमनोहरा ॥४५॥
क्रौञ्चानां चक्रवाकानां हंसानां च कदम्बकैः । तथा कादम्बकादीनां सुस्वनानां विराजिता ॥४६॥
मणिकाञ्चनसोपानैर्वीचीसंतानसंगिभिः । पुष्पैर्मरकतच्छायाकोमलैश्चातिसत्तटा ॥४७॥
उत्तस्थावथ मध्येऽस्या विपुलं विमलं शुभम् । सहस्रच्छदनं पद्मविकचं विकटं मृदु ॥४८॥
नानाभक्तिपरीताङ्गं रत्नोद्योतांशुकावृतम् । आसीत्सिंहासनं तस्य मध्ये तुल्येन्दुमण्डलम् ॥४९॥
तत्रामरवरस्त्रीभिर्मा भैषीरिति सान्त्विता । सीतावस्थापिता रेजे श्रीरिवात्यद्भुतोदया ॥५०॥
कुसुमाञ्जलिभिः सार्द्धं साधु साध्विति निःस्वनः । गगनस्थैः समुत्सृष्टस्तुष्टैर्देवकदम्बकैः ॥५१॥
गुगुञ्जुर्मञ्जवो गुञ्जा विनेदुः पटहाः पटु । नान्द्यो ननन्दुरायान्[2] चक्रणुः काहलाः कलम् ॥५२॥
अराव्द्यन्त शङ्खौघा धीरं तूर्याणि दध्वनुः । ववणुर्विशदं वंशाः कांसतालानि चक्वणुः ॥५३॥
[3]वल्गिता क्ष्वेडितोद्घुष्टकुष्टादिकरणोद्यताः । तुष्टा ननृतुरन्योन्यश्लिष्टा वैद्याधरा गणाः ॥५४॥
श्रीसज्जनकराजस्य तनया परमोदया । श्रीमतो बलदेवस्य पत्नी विजयतेतराम् ॥५५॥

रक्षा करो, हे मान्ये ! हे लक्ष्मि ! हे सरस्वति ! हे महाकल्याणि ! हे धर्मसहिते ! हे सर्वप्राणि-हितैषिणि ! रक्षा करो ॥४१॥ हे महापतिव्रते ! हे मुनिमानसनिर्मले ! दया करो । इस प्रकार जल-से भयभीत मनुष्योंके मुखसे शब्द निकल रहे थे ॥४२॥

तदनन्तर वापीरूपी वधू, तरंगरूपी हाथोंके द्वारा कमलके मध्यभागके समान कोमल एवं नखोंसे सुशोभित रामके चरणयुगलका स्पर्श कर क्षण-भरमें सौम्यदशाको प्राप्त हो गयी । उसकी मलिन भँवरें शान्त हो गयी और उसका भयंकर शब्द छूट गया । इससे लोग भी सुखी हुए ॥४३–४४॥ वह वापी क्षण-भरमें नील कमल, सफेद कमल तथा सामान्य कमलोंसे व्याप्त हो गयी और सुगन्धिसे मदोन्मत्त भ्रमर समूहके संगीतसे मनोहर दिखने लगी ॥४५॥ सुन्दर शब्द करनेवाले क्रौंच, चक्रवाक, हंस तथा बदक आदि पक्षियोंके समूहसे सुशोभित हो गयी ॥४६॥ मणि तथा स्वर्ण निर्मित सीढ़ियों और लहरोंके बीचमें स्थित मरकतमणिकी कान्तिके समान कोमल पुष्पोंसे उसके किनारे अत्यन्त सुन्दर दिखने लगे ॥४७॥

तदनन्तर उस वापीके मध्यमें एक विशाल, विमल, शुभ, खिला हुआ तथा अत्यन्त कोमल सहस्र दल कमल प्रकट हुआ और उस कमलके मध्यमें एक ऐसा सिंहासन स्थित हुआ कि जिसका आकार नाना प्रकारके बेल-बूटोंसे व्याप्त था, जो रत्नोंके प्रकाशरूपी वस्त्रसे वेष्टित था, और कान्तिसे चन्द्रमण्डलके समान था ॥४८–४९॥ तदनन्तर 'डरो मत' इस प्रकार उत्तम देवियाँ जिसे सान्त्वना दे रही थीं ऐसी सीता सिंहासनपर बैठायी गयी । उस समय आश्चर्यकारी अभ्युदयको धारण करनेवाली सीता लक्ष्मीके समान सुशोभित हो रही थी ॥५०॥ आकाशमें स्थित देवोंके समूहने सन्तुष्ट होकर पुष्पांजलियोंके साथ-साथ 'बहुत अच्छा' बहुत अच्छा' यह शब्द छोड़े ॥५१॥ गुंजा नामके मनोहर वादित्र गूँजने लगे, नगाड़े जोरदार शब्द करने लगे, नान्दी लोग अत्यधिक हर्षित हो उठे, काहल मधुर शब्द करने लगे, शंखोंके समूह बज उठे, तूर्य गम्भीर शब्द करने लगे, बाँसुरी स्पष्ट शब्द कर उठी तथा काँसेकी झाँझें मधुर शब्द करने लगीं ॥५२–५३॥ वल्गित, क्ष्वेडित, उद्घुष्ट तथा क्रुष्ट आदिके करनेमें तत्पर, सन्तोषसे युक्त विद्याधरोंके समूह परस्पर एक दूसरेसे मिलकर नृत्य करने लगे ॥५४॥ सब ओरसे यही ध्वनि आकाश और पृथिवीके अन्त-

१. पद्मैः म । २. -रायत्त म । ३. वल्गितान् म. ।

अहो चित्रमहो चित्रमहो शीलं सुनिर्मलम् । एवं स्वनः समुत्तस्थौ रोदसी व्याप्य सर्वतः ॥५६॥
ततोऽकृत्रिमसावित्रीस्नेहसंमग्नमानसौ । तीर्त्वा ससंभ्रमौ प्राप्तौ जानकीं लवणाङ्कुशौ ॥५७॥
स्थितौ च पार्श्वयोः पुत्रप्रीतिप्रवृद्धया[1] । समाश्वास्य समाघ्रातौ मस्तके प्रणताङ्गकौ ॥५८॥
जाम्बूनदमयीं यष्टिमिव शुद्धां हुताशने । अत्युत्तमप्रभाचक्रपरिवारितविग्रहाम् ॥५९॥
मैथिलीं राघवो वीक्ष्य कमलालयवासिनीम् । महानुरागरक्तात्मा तदन्तिकमुपागमत् ॥६०॥
जगौ च देवि कल्याणि प्रसीदोत्तमपूजिते । शरत्सम्पूर्णचन्द्रास्ये महाद्भुतविचेष्टिते ॥६१॥
कदाचिदपि नो भूयः करिष्याम्यागं[2] ईदृशम् । दुःखं वा ते ततोऽतीतं दोषं मे साध्वि मर्षय ॥६२॥
योषिदष्टसहस्राणामपि त्वं परमेश्वरी । स्थिता मूर्ध्नि ददस्वाज्ञां मय्यपि प्रभुतां कुरु ॥६३॥
अज्ञानप्रवणीभूतचेतसा मयकेदृशम् । किंवदन्तीभयात्सृष्टं कष्टं प्राप्तासि यत्सति ॥६४॥
सकाननवनामेनां सखेचरजनां महीम् । समुद्रान्तां मया साकं यथेष्टं विचर प्रिये ॥६५॥
पूज्यमाना समस्तेन जगता परमादरम् । त्रिविष्टपसमान् भोगान् भावय स्वमहीतले ॥६६॥
उद्यद्भास्करसंकाशं पुष्पकं कामगत्वरम् । आरूढा मेरुसानूनि पश्य देवि समं मया ॥६७॥
तेषु तेषु प्रदेशेषु भवतीचित्तहारिषु । क्रियतां रमणं कान्ते मया वचनकारिणा ॥६८॥
विद्याधरवरस्त्रीभिः सुरस्त्रीभिरिवावृता । मनस्विनि भजैश्वर्यं सद्यः सिद्धमनीषिता ॥६९॥

रालको व्याप्त कर उठ रही थी कि श्रीमान् राजा जनककी पुत्री और श्रीमान् बलभद्र श्रीरामकी परम अभ्युदयवती पत्नीकी जय हो ॥५५॥ अहो बड़ा आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है इसका शील अत्यन्त निर्मल है ॥५६॥

तदनन्तर माताके अकृत्रिम स्नेहमे जिनके हृदय डूब रहे थे ऐसे लवण और अंकुश शीघ्रता-से जलको तैरकर सीताके पास पहुँच गये ॥५७॥ पुत्रोकी प्रीतिसे बढी हुई सीताने आश्वासन देकर जिनके मस्तकपर सूँघा था तथा जिनका शरीर विनयसे नम्रीभूत था ऐसे दोनो पुत्र उसके दोनो ओर खड़े हो गये ॥५८॥ अग्निमे शुद्ध हुई स्वर्णमय यष्टिके समान जिसका शरीर अत्यधिक प्रभाके समूहसे व्याप्त था तथा जो कमलरूपी गृहमे निवास कर रही थी ऐसी सीताको देख बहुत भारी अनुरागसे अनुरक्त चित्त होते हुए राम उसके पास गये ॥५९–६०॥ और बोले कि हे देवि ! प्रसन्न होओ, तुम कल्याणवती हो, उत्तम मनुष्योके द्वारा पूजित हो, तुम्हारा मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान है, तथा तुम अत्यन्त अद्भुत चेष्टाकी करनेवाली हो ॥६१॥ अब ऐसा अपराध फिर कभी नही करूँगा अथवा अब तुम्हारा दुःख बीत चुका है। हे साध्वी ! मेरा दोष क्षमा करो ॥६२॥ तुम आठ हजार स्त्रियोकी परमेश्वरी हो। उनके मस्तकपर विद्यमान हो, आज्ञा देओ और मेरे ऊपर भी अपनी प्रभुता करो ॥६३॥ हे सति ! जिसका चित्त अज्ञानके अधीन था ऐसे मेरे द्वारा लोकापवादके भयसे दिया दुःख तुमने प्राप्त किया है ॥६४॥ हे प्रिये ! अब वन–अटवी सहित तथा विद्याधरोसे युक्त इस समुद्रान्त पृथिवीमे मेरे साथ इच्छानुसार विच-रण करो ॥६५॥ समस्त जगत्के द्वारा परम आदरपूर्वक पूजी गयी तुम, अपने पृथिवी तलपर देवोके समान भोगोको भोगो ॥६६॥ हे देवि ! उदित होते हुए सूर्यके समान तथा इच्छानुसार गमन करनेवाले पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो तुम मेरे साथ सुमेरुके शिखरोको देखो अर्थात् मेरे साथ सर्वत्र भ्रमण करो ॥६७॥ हे कान्ते ! जो-जो स्थान तुम्हारे चित्तको हरण करनेवाले है उन-उन स्थानोमे मुझ आज्ञाकारीके साथ यथेच्छ क्रीड़ा की जाये ॥६८॥ हे मनस्विनि ! देवागनाओके समान विद्याधरोकी उत्कृष्ट स्त्रियोसे घिरी रहकर तुम शीघ्र ही ऐश्वर्यका उपभोग करो। तुम्हारे

---

१. प्रबुद्धया म.। २. अपराधम् म ।

दोषाब्धिमग्नकस्यापि विवेकरहितस्य मे । उपसन्नस्य सुश्लाघ्ये प्रसीद क्रोधमुत्सृज ॥७०॥
ततो जगाद वैदेही राजन्नैवास्मि कस्यचित् । कुपिता किं विषादं त्वमीदृशं समुपागतः ॥७१॥
न कश्चिदत्र ते दोषस्तवो वो जानपदो न च । स्वकर्मणा फलं दत्तमिदं मे परिपाकिना ॥७२॥
बलदेव प्रसादात्ते भोगा भुक्ताः सुरोपमाः । अधुना तदहं कुर्वे जाये स्त्री न यतः पुनः ॥७३॥
एतैर्विनाशिभिः क्षुद्रैरवसन्नैः सुदारुणैः । किं वा प्रयोजनं भोगैर्मूढमानवसेवितैः ॥७४॥
योनिलक्षाध्वसंक्रान्त्या खेदं प्राप्तास्म्यनुत्तमम् । साहं दुःखक्षयाकाङ्क्षा दीक्षां जैनेश्वरीं भजे ॥७५॥
इत्युक्त्वाभिनवाशोकपल्लवोपमपाणिना । मूर्द्धजान् स्वयमुद्धृत्य पद्मायार्पयदस्पृहा ॥७६॥
इन्द्रनीलद्युतिच्छायान् सुकुमारान् मनोहरान् । केशान्वीक्ष्य ययौ मोहं रामोऽपतच्च भूतले ॥७७॥
यावदाश्वासनं तस्य प्रारब्धं चन्दनादिना । पृथ्वीमत्यार्यया[1] तावद्दीक्षिता जनकात्मजा ॥७८॥
ततो दिव्यानुभावेन सा विघ्नपरिवर्जिता । संवृत्ता श्रमणा साध्वी वस्त्रमात्रपरिग्रहा ॥७९॥
महाव्रतपवित्राङ्गा महासंवेगसंगता । देवासुरसमायोगं ययौ चोद्यानमुत्तमम् ॥८०॥
पद्मो मौक्तिकगोशीर्षतालवृन्तानिलादिभिः । संप्राप्तस्पष्टचैतन्यस्तद्दिङ्न्यस्तनिरीक्षणः ॥८१॥
अदृष्ट्वा राघवः सीतां शून्यीभूतदशाशकः[2] । शोककोपकषायात्मा समारुह्य महागजम् ॥८२॥
समुच्छ्रितसितच्छत्रश्चामरोत्करवीजितः । नरेन्द्रैरिन्द्रवद्देवैर्वृतो हस्तितलाङ्गलः[3] ॥८३॥
प्रौटकोकनदच्छायः क्षणसंवृतलोचनः । उदात्तनिनदोऽवोचद्वचोऽपि निजमीतिदम् ॥८४॥

सब मनोरथ सिद्ध हुए हैं ॥६९॥ हे प्रशंसनीये ! मैं दोषरूपी सागरमे निमग्न हूँ तथा विवेकसे रहित हूँ। अब तुम्हारे समीप आया हूँ सो प्रसन्न होओ और क्रोधका परित्याग करो ॥७०॥

तदनन्तर सीताने कहा कि हे राजन् ! मैं किसीपर कुपित नहीं हूँ, तुम इस तरह विषादको क्यों प्राप्त हो रहे हो ? ॥७१॥ इसमे न तुम्हारा दोष है न देशके अन्य लोगोका। यह तो परिपाकमे आनेवाले अपने कर्मके द्वारा दिया हुआ फल है ॥७२॥ हे बलदेव ! मैंने तुम्हारे प्रसादसे देवोके समान भोग भोगे हैं इसलिए उसकी इच्छा नही। अब तो वह काम करूँगी जिससे फिर स्त्री न होना पड़े ॥७३॥ इन विनाशी, क्षुद्र प्राप्त हुए आकुलतामय अत्यन्त कठोर एवं मूर्ख मनुष्योंके द्वारा सेवित इन भोगोसे मुझे क्या प्रयोजन है ? ॥७४॥ लाखो योनियोके मार्गमे भ्रमण करती-करती इस भारी दुःखको प्राप्त हुई हूँ। अब मैं दुखोंका क्षय करनेकी इच्छासे जैनेश्वरी दीक्षा धारण करती हूँ ॥७५॥ यह कह उसने निःस्पृह हो अशोकके नवीन पल्लवतुल्य हाथसे स्वयं केश उखाड़कर रामके लिए दे दिये ॥७६॥ इन्द्रनील मणिके समान कान्तिवाले अत्यन्त कोमल मनोहर केशोको देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो पृथिवीपर गिर पड़े ॥७७॥ इधर जबतक चन्दन आदिके द्वारा रामको सचेत किया जाता है तबतक सीता पृथ्वीमति आर्यिकासे दीक्षित हो गयी ॥७८॥

तदनन्तर देवकृत प्रभावसे जिसके सब विघ्न दूर हो गये थे ऐसी पतिव्रता सीता वस्त्रमात्र परिग्रहको धारण करनेवाली आर्यिका हो गयी ॥७९॥ महाव्रतोके द्वारा जिसका शरीर पवित्र हो चुका था तथा जो महासंवेगको प्राप्त थी ऐसी सीता देव और असुरोके समागमसे सहित उत्तम उद्यानमे चली गयी ॥८०॥ इधर मोतियोंकी माला, गोशीर्ष चन्दन तथा व्यंजन आदिकी वायुसे जब रामकी मूर्च्छा दूर हुई तब वे उसी दिशाकी ओर देखने लगे परन्तु वहाँ सीताको न देख उन्हे दशो दिशाएँ शून्य दिखने लगी। अन्तमे शोक और क्रोधके कारण कलुषित चित्त होते हुए महागजपर सवार हो चले ॥८१-८२॥ उस समय उनके शिरपर सफेद छत्र फहरा रहा था, चमरोंके समूह ढोरे जा रहे थे, तथा वे स्वयं अनेक राजाओसे घिरे हुए थे। इसलिए देवोसे

---

१. तावद्दीक्षिता म. । २. दशाशक. म. । ३. हस्तितलायत. म. ।

प्रियस्य प्राणिनो मृत्युर्वरिष्ठो विरहस्तु न । इति पूर्वं प्रतिज्ञातं मया निश्चितचेतसा ॥८५॥
यदि तत् किं वृथा देवैः प्रातिहार्यमिदं शठैः । वैदेह्या विहितं येन यथेदं समनुष्ठितम् ॥८६॥
लुप्तकेशीमपीमां मे यदि नार्पयत द्रुतम् । अद्य देवानदेवान्वः करोमि च जगद्वियत् ॥८७॥
कथं मे ह्रियते पत्नी सुरैर्न्यायव्यवस्थितैः । पुरस्तिष्ठन्तु मे शस्त्रं गृह्णन्तु क्व नु ते गताः ॥८८॥
एवमादिकृताचेष्टो लक्ष्मणेन विनीतिना । सान्त्व्यमानो बहूपायं प्राप्तः सुरसमागमम् ॥८९॥
[1]सर्वभूषणमैक्षिष्ट ततः श्रमणपुङ्गवम् । गाम्भीर्यधैर्यसंपन्नं वरासनकृतस्थितिम् ॥९०॥
ज्वलज्ज्वलनतो दीप्तिं बिभ्राणं परमर्द्धिकम् । वहन्तं दहनं देहं कलुषस्योपसेदुषाम्[2] ॥९१॥
[3]विबुधेष्वपि राजन्तं केवलज्ञानतेजसा । वीतजीमूतसघातं भानुबिम्बमिवोदितम् ॥९२॥
चक्षुःकुमुद्वतीकान्तं चन्द्रं वा वीतलान्छनम् । परेण परिवेषेण [4]प्रवृत्तं देहतेजसा ॥९३॥
तमालोक्य मुनिश्रेष्ठं सद्योगाद् भ्रष्टमानतम् । अवतीर्य च नागेन्द्राज्जगामास्य समीपताम् ॥९४॥
विधाय चाञ्जलिं भक्त्या कृत्वा शान्तः प्रदक्षिणाम् । त्रिविधं गृहिणां नाथोऽनंसीन्नाथं[5]मवेश्मनाम् ॥९५॥
मुनीन्द्रदेहजच्छायास्तमितांशुकिरीटकाः । वैलक्ष्यादिव चञ्चद्भिः कुण्डलैः श्लिष्टगण्डकाः ॥९६॥

आवृत इन्द्रके समान जान पड़ते थे, उन्होने लागल नामक शस्त्र हाथमे ले रखा था, तरुण कोकनद-रक्त कमलके समान उनकी कान्ति थी और वे क्षण-क्षणमे लोचन बन्द कर लेते थे। तदनन्तर उच्चस्वरके धारक रामने ऐसे वचन कहे जो आत्मीयजनोको भी भय देनेवाले थे ॥८३-८४॥ उन्होने कहा कि प्रिय प्राणीकी मृत्यु हो जाना श्रेष्ठ है परन्तु विरह नही; इसलिए मैंने पहले दृढ़चित्त होकर अग्नि-प्रवेशकी अनुमति दी थी ॥८५॥ जब यह बात थी तब फिर क्यो अविवेकी देवोने सीताका यह अतिशय किया जिससे कि उसने यह दीक्षाका उपक्रम किया ॥८६॥ हे देवो ! यद्यपि उसने केश उखाड़ लिये हैं तथापि तुम लोग यदि उस दशामे भी उसे मेरे लिए शीघ्र नही सौप देते हो तो मै आजसे तुम्हे अदेव कर दूँगा—देव नही रहने दूँगा और जगत्को आकाश बना दूँगा ॥८७॥ न्यायकी व्यवस्था करनेवाले देवो द्वारा मेरी पत्नी कैसे हरी जा सकती है ? वे मेरे सामने खड़े हो तथा शस्त्र ग्रहण करे, कहाँ गये वे सब ? ॥८८॥ इस प्रकार जो अनेक चेष्टाएँ कर रहे थे तथा विविध नीतिको जाननेवाले लक्ष्मण जिन्हे अनेक उपायोसे सान्त्वना दे रहे थे ऐसे राम, जहाँ देवोका समागम था ऐसे उद्यानमे पहुँचे ॥८९॥

तदनन्तर उन्होने मुनियोमे श्रेष्ठ उन सर्वभूषण केवलीको देखा कि जो गाम्भीर्य और धैर्यसे सम्पन्न थे, उत्तम सिंहासनपर विराजमान थे ॥९०॥ जलती हुई अग्निसे कही अधिक कान्तिको धारण कर रहे थे, परम ऋद्धियोसे युक्त थे, शरणागत मनुष्योके पापको जलानेवाले शरीरको धारण कर रहे थे ॥९१॥ जो केवलज्ञानरूपी तेजके द्वारा देवोंमे भी सुशोभित हो रहे थे, मेघोके आवरणसे रहित उदित हुए सूर्यमण्डलके समान जान पड़ते थे, ॥९२॥ जो चक्षुरूपी कुमुदिनियोके लिए प्रिय थे, अथवा कलक रहित चन्द्रमाके समान थे, और मण्डलाकार परिणत अपने शरीरके उत्तम तेजसे आवृत थे ॥९३॥

तदनन्तर जो अभी-अभी ध्यानसे उन्मुक्त हुए थे तथा सर्व सुरासुर जिन्हे नमस्कार करते थे ऐसे उन मुनिश्रेष्ठको देखकर राम हाथीसे नीचे उतरकर उनके समीप गये ॥९४॥ तत्पश्चात् गृहस्थोके स्वामी श्रीरामने शान्त हो भक्तिपूर्वक अजलि जोड प्रदक्षिणा देकर उन मुनिराजको मन-वचन-कायसे नमस्कार किया ॥९५॥ अथानन्तर उन मुनिराजकी शरीर सम्बन्धी कान्तिके कारण जिनके मुकुट निष्प्रभ हो गये थे तथा लज्जाके कारण ही मानो चमकते हुए कुण्डलो द्वारा

---

१ एष श्लोक. म. पुस्तके नास्त्येव । २ सेदुपम् म. । ३. विबुद्धेष्वपि म । ४. वृत्तं देहस्य तेजसा म ।
५. मुनीना नाथम् ।

सावार्पितनमस्काराः करकुड्मलमस्तकाः । मानवेन्द्रैः समं योग्यमुपविष्टाः सुरेश्वराः ॥९७॥
चतुर्भेदजुषो देवा नानालंकारधारिणः । अलक्ष्यन्त मुनीन्द्रस्य रवेरिव मरीचयः ॥९८॥
रराज राजराजोऽपि रामो नात्यन्तदूरगाः[1] । मुनेः सुमेरुकूटस्य पार्श्वे कल्पतरुर्यथा ॥९९॥
लक्ष्मीधरनरेन्द्रोऽपि मौलिकुण्डलराजितः । विद्युत्वानिव जीमूतः शुशुभेऽन्तिकपर्वतः ॥१००॥
शत्रुघ्नोऽपि महाशत्रुभयदानविचक्षणः । द्वितीय इव भाति स्म कुबेरश्चारुदर्शनः ॥१०१॥
गुणसौभाग्यतूणीरौ वीरौ तौ च सुलक्षणौ । सूर्याचन्द्रमसौ यद्वद्रेजतुर्लवणाङ्कुशौ ॥१०२॥
बाह्यालंकारमुक्तापि वस्त्रमात्रपरिग्रहा । आर्या रराज वैदेही रविमूर्त्येव संगता ॥१०३॥
मनुष्यनाकवासेषु धर्मश्रवणकाङ्क्षिषु । धरण्यामुपविष्टेषु ततो विनयशालिषु ॥१०४॥
धीरेऽभयनिनादाख्यो मुनिः शिष्यगणाग्रणीः । संदेहतापशान्त्यर्थं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥१०५॥
विपुलं निपुणं शुद्धं तत्त्वार्थं मुनिबोधनम् । ततो जगाद योगीशः कर्मक्षयकरं वचः ॥१०६॥
रहस्यं यत्तदा तेन विबुधानां महात्मनाम् । कथितं तत्समुद्रस्य कणमेकं वदाम्यहम् ॥१०७॥
प्रशस्तदर्शनज्ञाननन्दनं भव्यसंमतम् । वस्तुतत्त्वमिदं तेन प्रोक्तं परमयोगिना ॥१०८॥
अनन्तालोकखान्तस्थो मृदङ्गद्वयसन्निभः । लोको व्यवस्थितोऽधस्तात्तिर्यगूर्ध्वं व्यवस्थितः ॥१०९॥
त्रैविध्येनामुना तस्य ख्याता त्रिभुवनाभिधा । अधस्तान् मन्दरस्याद्रेर्विज्ञेयाः सप्तभूमयः ॥११०॥

जिनके कपोल आलिंगित थे, जिन्होने भावपूर्वक नमस्कार किया था, और जो हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुए थे ऐसे देवेन्द्र वहाँ नरेन्द्रके समान यथायोग्य बैठे थे ॥९६–९७॥ नाना अलंकारोंको धारण करनेवाले चारों प्रकारके देव, मुनिराजके समीप ऐसे दिखाई देते थे मानो सूर्यके समीप उसकी किरणें ही हों ॥९८॥ मुनिराजके निकट स्थित राजाधिराज राम भी ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो सुमेरुके शिखरके समीप कल्प वृक्ष ही हो ॥९९॥ मुकुट और कुण्डलोसे सुशोभित लक्ष्मण भी, किसी पर्वतके समीप स्थित बिजलीसे सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१००॥ महाशत्रुओंको भय देनेमे निपुण सुन्दर शत्रुघ्न भी द्वितीय कुबेरके समान सुशोभित हो रहा था ॥१०१॥ गुण और सौभाग्यके तरकस तथा उत्तम लक्षणोसे युक्त वे दोनो वीर लवण और अंकुश सूर्य और चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१०२॥ वस्त्रमात्र परिग्रहको धारण करनेवाली आर्या सीता यद्यपि बाह्य अलंकारोंसे रहित थी तथापि वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो सूर्यकी मूर्तिसे ही सम्बद्ध हो ॥१०३॥

तदनन्तर धर्मश्रवणके इच्छुक तथा विनयसे सुशोभित समस्त मनुष्य और देव जब यथायोग्य पृथिवीपर बैठ गये तब शिष्य समूहमें प्रधान, अभयनिनाद नामक, धीर-वीर मुनिने सन्देहरूपी सन्तापको शान्त करनेके लिए सर्वभूषण मुनिराजसे पूछा ॥१०४–१०५॥ तदनन्तर मुनिराजने वह वचन कहे कि जो अत्यन्त विस्तृत थे, चातुर्यपूर्ण थे, शुद्ध थे, तत्त्वार्थके प्रतिपादक थे, मुनियोके प्रबोधक थे और कर्मोंका क्षय करनेवाले थे ॥१०६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय उन योगिराजने विद्वानो तथा महात्माओके लिए जो रहस्य कहा था वह समुद्रके समान भारी था। हे श्रेणिक ! मै तो यहाँ उसका एक कण ही कहता हूँ ॥१०७॥ उन परम योगीने जो वस्तुतत्त्वका निरूपण किया था वह प्रशस्त दर्शन और ज्ञानके धारक पुरुषोंके लिए आनन्द देनेवाला था तथा भव्य जीवोको इष्ट था ॥१०८॥

उन्होंने कहा कि यह लोक अनन्त अलोकाकाशके मध्यमे स्थित दो मृदंगोके समान है, नीचे, बीचमें तथा ऊपरकी ओर स्थित है ॥१०९॥ इस तरह तीन प्रकारसे स्थित होनेके कारण इस लोकको त्रिलोक अथवा त्रिविध कहते है। मेरु पर्वतके नीचे सात भूमियाँ हैं ॥११०॥

---

१. रामोऽत्यन्तदूरगः ।

रत्नाभा प्रथमा तत्र यस्यां भवनजा सुराः । षडधस्तात्ततः क्षोण्यो महाभयसमावहाः ॥१११॥
शर्कराबालुकापङ्कधूमध्वान्ततमोनिभाः । सुमहादुःखदायिन्यो नित्यान्धध्वान्तसंकुलाः ॥११२॥
तप्तायसतलदुःस्पर्शमहाविषमदुर्गमाः । शीतोग्रवेदनाः काश्चिद्वसारुधिरकर्दमाः ॥११३॥
श्वसर्पमनुजादीनां कुथितानां कलेवरैः । संमिश्रो यो भवेद्गन्धस्तादृशस्तत्र कीर्तितः ॥११४॥
नानाप्रकारदुःखौघकारणानि समाहरन् । वाति तत्र महाशब्दः प्रचण्डोद्दण्डमारुतः ॥११५॥
रसनस्पर्शनासक्ता जीवास्तत् कर्म कुर्वते । गरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥११६॥
हिंसावितथचौर्यान्यस्त्रीसङ्गादनिवर्तनाः । नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरूकृताः ॥११७॥
मनुष्यजन्म संप्राप्य सततं भोगसंगताः । जनाः प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥११८॥
विधाय कारयित्वा च पापं समनुमोद्य च । रौद्रार्त्तप्रवणा जीवा यान्ति नारकबीजताम् ॥११९॥
वज्रोपमेषु कुड्येषु नि सन्धिकृतपूरणा.[1] । नारकेनाग्निना पापा दह्यन्ते कृतविस्वराः ॥१२०॥
ज्वलद्वह्निचयाद्भीता यान्ति वैतरणीं नदीम् । शीतलाम्बुकृताकाङ्क्षास्तस्यां मुञ्चन्ति देहकम् ॥१२१॥
ततो महोत्कटक्षारदग्धदेहोरवेदनाः । मृगा इव परित्रस्ता असिपत्रवनं स्थिता. ॥१२२॥
छायाप्रत्याशया यत्र सगता दुष्कृतप्रियाः । प्राप्नुवन्त्यसिनाराचचक्रकुन्तादिदारणम्[2] ॥१२३॥
खरमारुतनिर्धूत[3]नरकागमभीरिते. । तीक्ष्णैरस्त्रसमूहैस्ते दार्यन्ते शरणोज्झिता ॥१२४॥

उनमे पहली भूमि रत्नप्रभा है जिसके अब्बहुल भागको छोड़कर ऊपरके दो भागोमे भवनवासी तथा व्यन्तर देव रहते है। उस-रत्नप्रभाके नीचे महाभय उत्पन्न करनेवाली शर्कराप्रभा, बालुका-प्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम:प्रभा और महातम:प्रभा नामकी छह भूमियाँ और है जो अत्यन्त तीव्र दु:खको देनेवाली हैं तथा निरन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त रहती है ॥१११-११२॥ उनमे-से कितनी ही भूमियाँ सन्तप्त लोहेके तलके समान दु:खदायी गरम स्पर्श होनेके कारण अत्यन्त विषम और दुर्गम है तथा कितनी ही शीतकी तीव्र वेदनासे युक्त है। उन भूमियोमे चर्बी और रुधिरकी कीच मची रहती है ॥११३॥ जिनके शरीर सड गये है ऐसे अनेक कुत्ते, सर्प तथा मनुष्यादिकी जैसी मिश्रित गन्ध होती हैं वैसी ही उन भूमियोकी बतलायी गयी है ॥११४॥ वहाँ नाना प्रकारके दु:ख-समूहके कारणोको साथमे ले आनेवाली महाशब्द करती हुई प्रचण्ड वायु चलती है ॥११५॥ स्पर्शन तथा रसना इन्द्रियके वशीभूत जीव उस कर्मका संचय करते है कि जिससे वे लोहेके पिण्डके समान भारी हो उन नरकोंमे पड़ते है ॥११६॥ हिंसा, झूठ, चोरी, परस्त्रीसग तथा परिग्रह-से निवृत्त नही होनेवाले मनुष्य पापके भारसे बोझिल हो नरकोमे उत्पन्न होते हैं ॥११७॥ जो मनुष्य-जन्म पाकर निरन्तर भोगोमे आसक्त रहते हैं ऐसे प्रचण्डकर्मा मनुष्य नरकभूमिमे जाते हैं ॥११८॥ जो जीव स्वयं पाप करते है, दूसरेसे कराते है तथा अनुमोदन करते है, वे रौद्र तथा आर्तध्यानमे तत्पर रहनेवाले जीव नरकायुको प्राप्त होते है ॥११९॥ वज्रोपम दीवालोमे ठूँस-ठूँस-कर भरे हुए पापी जीव नरकोकी अग्निसे जलाये जाते है और तब वे महाभयंकर शब्द करते है ॥१२०॥ जलती हुई अग्निके समूहसे भयभीत हो नारकी, शीतल जलकी इच्छा करते हुए वैतरणी नदीकी ओर जाते है और उसमे अपने शरीरको छोडते हैं अर्थात् गोता लगाते है ॥१२१॥ गोता लगाते ही अत्यन्त तीव्र क्षारके कारण उनके जले हुए शरीरमे भारी वेदना होती है। तदनन्तर मृगोकी तरह भयभीत हो उस असिपत्रवनमे पहुँचते है ॥१२२॥ जहाँ कि पापी जीव छायाकी इच्छासे इकट्ठे होते हैं परन्तु छायाके बदले खड्ग, बाण, चक्र तथा भाले आदि शस्त्रोसे छिन्न-भिन्न दशाको प्राप्त होते हैं ॥१२३॥ तीक्ष्ण वायुसे कम्पित नरकके वृक्षोसे प्रेरित तीक्ष्ण अस्त्रोके

---

१ पारणा' म । २ दारुण म, ज. । ३ नारकाग-ज. ।

छिन्नपादभुजस्कन्धकर्णवक्त्राक्षिनासिकाः । भिन्नतालुशिरःकुक्षिहृदया निपतन्ति ते ॥१२५॥
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते केचिदूर्ध्वीकृताङ्घ्रयः । यन्त्रैः केचिन्निपीड्यन्ते बलिभिः परुषस्वनम् ॥१२६॥
अरिभिः परमक्रोधैः केचिन् मुद्गरपीडिताः । कुर्वते लोठनं भूमौ सुमहावेदनाकुलाः ॥१२७॥
महातृष्णार्दिता दीना याचन्ते वारिविह्वलाः । ततः प्रदीयते तेषां त्रपुताम्रादि विद्रुतम् ॥१२८॥
स्फुलिङ्गोद्गमरौद्रं तं तत्रोद्वीक्ष्य विकम्पिताः । परावर्त्तितचेतस्का बाष्पपूरितकण्ठकाः ॥१२९॥
ब्रुवते नास्ति तृष्णा मे मुञ्च मुञ्च व्रजाम्यहम् । अनिच्छतां ततस्तेषां तद्बलेन प्रदीयते ॥१३०॥
विनिपात्य क्षितावेषां क्रन्दतां लोहदण्डकैः । विदार्यास्यं विषं रक्तं कलिलं च निर्धायते ॥१३१॥
तत्तेषां प्रदहत्कण्ठं हृदयं स्फोटयद् भृशम् । जठरं प्राप्य निर्याति पुरीषराशिना समम् ॥१३२॥
पश्चात्तापहताः पश्चात् पालकैर्नरकावनेः । स्मार्यन्ते दुष्कृतं दीनाः कुशास्त्रपरिभाषितम् ॥१३३॥
गुरुलोकं समुल्लङ्घ्य तदा वाक्पटुना सता । मांसं निर्दोषमित्युक्तं यत्ते तत् क्वाधुना गतम् ॥१३४॥
मांसेन बहुभेदेन मधुना च पुरा कृतम् । श्राद्धं गुणवदित्युक्तं यत्ते तत् क्वाधुना गतम् ॥१३५॥
इत्युक्त्वा वैक्रियैरन्यैराहत्याहत्य निष्ठुरम् । कुर्वाणाः कृपणं चेष्टाः खाद्यन्ते स्वशरीरकम् ॥१३६॥
स्वप्नदर्शननिःसारां स्मारयित्वा च राजताम् । तज्जातैरेव पीड्यन्ते विरुवन्तो विडम्बनैः ॥१३७॥
एवमादीनि दुःखानि जीवाः पापकृतो नृप । निमेषमप्यविश्रान्ता लभन्ते नारकक्षितौ ॥१३८॥

समूहसे वे शरण रहित नारकी छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥१२४॥ जिनके पैर, भुजा, स्कन्ध, कर्ण, मुख, आँख और नाक आदि अवयव कट गये हैं तथा जिनके तालु, शिर, पेट और हृदय विदीर्ण हो गये हैं ऐसे लोग वहाँ गिरते रहते हैं ॥१२५॥ जिनके पैर ऊपरको उठे हुए हैं ऐसे कितने ही नारकी दूसरे बलवान् नारकियोंके द्वारा कुम्भीपाकमें पकाये जाते हैं और कितने ही कठोर शब्द करते हुए घानियोंमें पेल दिये जाते हैं ॥१२६॥ तीव्र क्रोधसे युक्त शत्रुओंने जिन्हें मुद्गरसे पीड़ित किया है ऐसे कितने ही नारकी अत्यन्त तीव्र वेदनासे व्याकुल हो पृथिवीपर लोट जाते हैं ॥१२७॥ तीव्र प्याससे पीड़ित दीन-हीन नारकी विह्वल हो पानी माँगते हैं पर पानीके बदले उन्हें पिघला हुआ राँगा और ताँबा दिया जाता है ॥१२८॥ निकलते हुए तिलगोंसे भयंकर उस राँगा आदिके द्रवको देखकर वे प्यासे नारकी काँप उठते हैं, उनके चित्त फिर जाते हैं तथा कण्ठ आँसुओंसे भर जाते हैं ॥१२९॥ वे कहते हैं कि मुझे प्यास नहीं है, छोड़ो-छोड़ो मैं जाता हूँ पर नहीं चाहनेपर भी उन्हें बलात् वह द्रव पिलाया जाता है ॥१३०॥ चिल्लाते हुए उन नारकियोंको पृथिवीपर गिराकर तथा लोहेके डण्डेसे उनका मुख फाड़कर उसमें बलात् विष, रक्त तथा ताँबा आदिका द्रव डाला जाता है ॥१३१॥ वह द्रव उनके कण्ठको जलाता और हृदयको फोड़ता हुआ पेटमें पहुँचता है और मलकी राशिके साथ-साथ बाहर निकल जाता है ॥१३२॥ तदनन्तर जब वे पश्चात्तापसे दुःखी होते हैं तब उन दीन-हीन नारकियोंको नरक भूमिके रक्षक मिथ्याशास्त्रों द्वारा कथित पापका स्मरण दिलाते हैं ॥१३३॥ वे कहते हैं कि उस समय तुमने बोलनेमें चतुर होनेके कारण गुरुजनोंका उल्लंघन कर 'मांस निर्दोष है' यह कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥१३४॥ 'नाना प्रकारके मांस और मदिराके द्वारा किया हुआ श्राद्ध अधिक फलदायी होता है' ऐसा जो तुमने पहले कहा था सो अब तुम्हारा वह कहना कहाँ गया ? ॥१३५॥ यह कहकर उन्हें विक्रियायुक्त नारकी बड़ी निर्दयतासे मार-मारकर उन्हींका शरीर खिलाते हैं तथा वे अत्यन्त दीन चेष्टाएँ करते हैं ॥१३६॥ 'राज्य-अवस्था स्वप्न-दर्शनके समान निःसार है' यह स्मरण दिलाकर उन्हींसे उत्पन्न हुए विडम्बनाकारी उन्हें पीडित करते हैं और वे करुणक्रन्दन करते हैं ॥१३७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! पाप करनेवाले जीव नारकियोंकी भूमिमें

---

१. वर्ण -म. ।

तस्मात्फलमधर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदुःसहम् । प्रशान्तहृदयाः सन्तः सेवध्वं जिनशासनम् ॥१३९॥
अनन्तरमधोवासा ज्ञात्वा भवनवासिनाम् । देवारण्यार्णवद्वीपास्तथा योग्याश्च भूमयः ॥१४०॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च मातरिश्वा वनस्पतिः । शेषास्त्रसाश्च जीवानां निकाया' षट् प्रकीर्त्तिता' ॥१४१
धर्माधर्मवियत्कालजीवपुद्गलभेदतः । षोढा द्रव्यं समुद्दिष्टं सरहस्यं जिनेश्वरैः ॥१४२॥
सप्तभङ्गीवचोमार्गः सम्यक्प्रतिपदं मतः । प्रमाणं सकलादेशो नयोऽवयवसाधनम् ॥१४३॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चहृषीकेष्वविरोधतः । सत्त्वं जीवेषु विज्ञेयं प्रतिपक्षसमन्वितम् ॥१४४॥
सूक्ष्मबादरभेदेन ज्ञेयास्ते च शरीरतः । पर्याप्ता इतरे चैव पुनस्ते परिकीर्त्तिताः ॥१४५॥
भव्याभव्यादिभेदं च जीवद्रव्यमुदाहृतम् । संसारे तद्द्वयोन्मुक्ता' सिद्धास्तु परिकीर्त्तिताः ॥१४६॥
ज्ञेयदृश्यस्वभावेषु परिणामः स्वशक्तितः । उपयोगश्च तद्रूपं ज्ञानदर्शनतो द्विधा ॥१४७॥
ज्ञानमष्टविधं ज्ञेयं चतुर्धा दर्शनं मतम् । संसारिणो विमुक्ताश्च ते सचित्तविचेतसः ॥१४८॥
वनस्पतिपृथिव्याद्याः स्थावराः शेषकास्त्रसाः । पञ्चेन्द्रियाः श्रुतिघ्राणचक्षुस्त्वग्रसनान्विताः ॥१४९॥
पोताण्डजजरायूनामुदितो[1] गर्भसंभवः । देवानामुपपादस्तु नारकाणां च कीर्तितः ॥१५०॥
संमूर्च्छनं समस्तानां शेषाणां जन्मकारणम् । योन्यस्तु विविधाः प्रोक्ताः महादुःखसमन्विताः ॥१५१॥

क्षणभरके लिए विश्राम लिये विना पूर्वोक्त प्रकारके दुःख पाते रहते हैं ॥१३८॥ इसलिए हे शान्त हृदयके धारक सत्पुरुषो! 'यह अधर्मका फल अत्यन्त दुःसह है' ऐसा जानकर जिनशासनकी सेवा करो ॥१३९॥ अनन्तरवर्ती रत्नप्रभाभूमि भवनवासी देवोकी निवास भूमि है यह पहले ज्ञात कर चुके हैं। इसके सिवाय देवारण्य वन, सागर तथा द्वीप आदि भी उनके निवासके योग्य स्थान है॥१४०॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर और एक त्रस ये जीवोके छह निकाय कहे गये हैं ॥१४१॥ धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गलके भेदसे द्रव्य छह प्रकारके है ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने रहस्य सहित कहा है ॥१४२॥ प्रत्येक पदार्थका सप्तभंगो द्वारा निरूपण करनेका जो मार्ग है वह प्रशस्त मार्ग माना गया है। प्रमाण और नयके द्वारा पदार्थोका कथन होता है। पदार्थके समस्त विरोधी धर्मोका एक साथ वर्णन करना प्रमाण है और किसी एक धर्मका सिद्ध करना नय है ॥१४३॥ एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय जीवोमे विना किसी विरोधके सत्त्व—सत्ता-नामका गुण रहता है और यह अपने प्रतिपक्ष-विरोधी तत्त्वसे सहित होता है ॥१४४॥ वे जीव शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म और बादरके भेदसे दो प्रकारके जानना चाहिए। उन्ही जीवोके फिर पर्याप्तक और अपर्याप्तककी अपेक्षा दो भेद और भी कहे गये हैं ॥१४५॥ जीवद्रव्यके भव्य अभव्य आदि भेद भी कहे गये है परन्तु यह सब भेद संसार अवस्थामे ही होते है, सिद्ध जीव इन सब भेदो रहित कहे गये है ॥१४६॥ ज्ञेय और दृश्य स्वभावोमे जीवका जो अपनी शक्तिसे परिणमन होता है वह उपयोग कहलाता है, उपयोग ही जीवका स्वरूप है, यह उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदसे दो प्रकारका है ॥१४७॥ ज्ञानोपयोग मतिज्ञानादिके भेदसे आठ प्रकारका है, और दर्शनोपयोग चक्षुर्दर्शन आदिके भेदसे चार प्रकारका है। जीवके संसारी और मुक्तकी अपेक्षा दो भेद हैं तथा संसारी जीव सञ्ज्ञी और असंज्ञी भेदसे दो प्रकारके हैं ॥१४८॥ वनस्पतिकायिक तथा पृथिवीकायिक आदि स्थावर कहलाते हैं, शेष त्रस कहे जाते हैं। जो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पाँचो इन्द्रियोसे सहित हैं वे पंचेन्द्रिय कहलाते है ॥१४९॥ पोतज, अण्डज तथा जरायुज जीवोके गर्भजन्म कहा गया है तथा देवो और नारकियोके उपपाद जन्म बतलाया गया है ॥१५०॥ शेष जीवोकी उत्पत्तिका कारण सम्मूर्च्छन जन्म है। इस तरह गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छनकी अपेक्षा जन्मके

१ -मादितो म ।

औदारिकं शरीरं तु वैक्रियाऽऽहारके तथा । तैजसं कार्मणं चैव विद्धि सूक्ष्मं परं परम् ॥१५२॥
असंख्येयं प्रदेशेन गुणतोऽनन्तके परे । [1]आदिसंबन्धमुक्ते च चतुर्णामेककालता ॥१५३॥
जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागराः । प्रकीर्तिताः शुभा नाम संख्यानपरिवर्जिताः ॥१५४॥
पूर्वाद् द्विगुणविष्कम्भाः पूर्वविक्षेपवर्तिनः । वलयाकृतयो मध्ये जम्बूद्वीपः प्रकीर्तितः ॥१५५॥
मेरुनाभिरसौ वृत्तो लक्षयोजनमानभृत् । त्रिगुणं तत्परिक्षेपादधिकं परिकीर्तितम् ॥१५६॥
पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेयाः कुलपर्वताः । हिमवांश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च ॥१५७॥
रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसंगताः । वास्यान्येभिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च ॥१५८॥
भरताख्यमिदं क्षेत्रं ततो हैमवतं हरिः । विदेहो रम्यकाख्यं च हैरण्यवतमेव च ॥१५९॥
ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगाः । प्रोक्तं द्विर्धातकीखण्डे पुष्करार्द्धे च पूर्वकम् ॥१६०॥
आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतोऽपरे । विज्ञेयास्तत्प्रभेदाश्च संख्यानपरिवर्जिताः ॥१६१॥
विदेहे कर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा । देवोत्तरकुरुर्भोगक्षेत्रं शेषाश्च भूमयः ॥१६२॥
त्रिपल्यान्तर्मुहूर्त्ते तु स्थिती नृणां परावरे । मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमुपेयुषाम् ॥१६३॥
अष्टभेदजुषो देवा व्यन्तराः किन्नरादयः । तेषां क्रीडनतावासा यथायोग्यमुदाहृताः ॥१६४॥

तीन भेद हैं परन्तु तीव्र दुःखोंसे सहित योनियाँ अनेक प्रकारकी कही गयी हैं ॥१५१॥ औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं। ये शरीर आगे-आगे सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं' ऐसा जानना चाहिए ॥१५२॥ औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर प्रदेशोंकी अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित हैं तथा तैजस और कार्मण ये दो शरीर उत्तरोत्तर अनन्त गुणित हैं। तैजस और कार्मण ये दो शरीर आदि सम्बन्धसे युक्त हैं अर्थात् जीवके साथ अनादि कालसे लगे हुए हैं और उपर्युक्त पांच शरीरोंमेंसे एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं ॥१५३॥

मध्यम लोकमें जम्बूद्वीपको आदि लेकर शुभ नामवाले असंख्यात द्वीप और लवण समुद्रको आदि लेकर असंख्यात समुद्र कहे गये हैं ॥१५४॥ ये द्वीप-समुद्र पूर्वके द्वीप-समुद्रसे दूने विस्तारवाले हैं, पूर्व-पूर्वको घेरे हुए हैं तथा वलयके आकार हैं। सबके बीचमें जम्बूद्वीप कहा गया है ॥१५५॥ जम्बूद्वीप मेरु पर्वतरूपी नाभिसे सहित है, गोलाकार है तथा एक लाख योजन विस्तारवाला है, इसकी परिधि तिगुनीसे कुछ अधिक कही गयी है ॥१५६॥ उस जम्बूद्वीपमें पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह कुलाचल हैं। ये सभी समुद्रके जलसे मिले हैं तथा इन्हींके द्वारा जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्रोंका विभाग हुआ है ॥१५७–१५८॥ यह भरत क्षेत्र है इसके आगे हैमवत, उसके आगे हरि, उसके आगे विदेह, उसके आगे रम्यक, उसके आगे हैरण्यवत और उसके आगे ऐरावत—ये सात क्षेत्र जम्बूद्वीपमें हैं। इसी जम्बूद्वीपमें गंगा, सिन्धु आदि चौदह नदियाँ हैं। धातकीखण्ड तथा पुष्करार्धमें जम्बूद्वीपसे दूनी-दूनी रचना है ॥१५९–१६०॥ मनुष्य, मानुषोत्तर पर्वतके इसी ओर रहते हैं, इनके आर्य और म्लेच्छकी अपेक्षा मूलमें दो भेद हैं तथा इनके उत्तर भेद असंख्यात हैं ॥१६१॥ देवकुरु, उत्तरकुरु रहित विदेह क्षेत्र, तथा भरत और ऐरावत इन तीन क्षेत्रोंमें कर्मभूमि है और देवकुरु, उत्तरकुरु तथा अन्य क्षेत्र भोगभूमिके क्षेत्र हैं ॥१६२॥ मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है। तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति मनुष्योंके समान तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्तकी है ॥१६३॥

व्यन्तर देवोंके किन्नर आदि आठ भेद जानना चाहिए। इन सबके क्रीड़ाके स्थान यथा-

---

१. आदिसम्बन्धमुक्तञ्च म, ज.।

ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवानां ज्योतिषां चक्रमुज्ज्वलम् । मेरुप्रदक्षिणं नित्यंगतिश्चन्द्रार्कराजकम् ॥१६५॥
संख्येयानि सहस्राणि योजनानां व्यतीत्य च । तत ऊर्ध्वं महालोको विज्ञेयः कल्पवासिनाम् ॥१६६॥
सौधर्माख्यस्तथैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्त्तित । ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसंज्ञकः ॥१६७॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्त्तितः । कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा ॥१६८॥
शतारोऽथ सहस्रारः कल्पश्चानतशब्दितः । प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणच्युतौ ॥१६९॥
नव ग्रैवेयकास्ताभ्यामुपरिष्टात्प्रकीर्त्तिताः । अहमिन्द्रतया येषु परमास्त्रिदशाः स्थिता. ॥१७०॥
विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽथापराजितः । सर्वार्थसिद्धिनामा च पञ्चैतेऽनुत्तराः स्मृताः ॥१७१॥
अग्रे त्रिभुवनस्यास्य क्षेत्रमुत्तमभासुरम् । कर्मबन्धनमुक्तानां पद ज्ञेय महाद्भुतम् ॥१७२॥
ईषत्प्राग्भारसंज्ञासौ पृथिवी शुभदर्शना । उत्तानधवलच्छत्रप्रतिरूपा शुभावहा ॥१७३॥
सिद्धा यत्रावतिष्ठन्ते पुनर्भवविवर्जिता. । महासुखपरिप्राप्ताः स्वात्मशक्तिव्यवस्थिताः ॥१७४॥
रामो जगाद भगवन् तेषा विगतकर्मणाम् । संसारभावनिर्मुक्तं निर्दुःखं कीदृशं सुखम् ॥१७५॥
उवाच केवली लोकत्रितयस्यास्य यत्सुखम् । व्याबाधभङ्गदु पाकैर्दुःखमेव हि तन्मतम् ॥१७६॥
कर्मणाष्टप्रकारेण परतन्त्रस्य सर्वदा । नास्य ससारिजीवस्य सुखं नाम मनागपि ॥१७७॥
यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् । आत्मीया नश्यति छाया तथा जीवस्य कर्मणा ॥१७८॥
मृत्युजन्मजराव्याधिसहस्रैः सततं जना । मानसैश्च महादुःखै. पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१७९॥
असिधारामधुस्वादसमं विषयज सुखम् । दग्धे[1] चन्दनवद्दिव्यं चक्रिणां सविषान्नवत् ॥१८०॥

योग्य कहे गये है ॥१६४॥ व्यन्तर और ज्योतिषी देवोका निवास ऊपर मध्यलोकमे है। इनमे ज्योतिषी देवोका चक्र देदीप्यमान कान्तिका धारक है, मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देता हुआ निरन्तर चलता रहता है तथा सूर्य और चन्द्रमा उसके राजा है ॥१६५॥ ज्योतिश्चक्रके ऊपर संख्यात हजार योजन व्यतीत कर कल्पवासी देवोंका महालोक शुरू होता है यही ऊर्ध्वलोक कहलाता है ॥१६६॥ ऊर्ध्वलोकमे सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत और आरण, अच्युत ये आठ युगलोमे सोलह स्वर्ग हैं ॥१६७–१६९॥ उनके ऊपर ग्रैवेयक कहे गये है जिनमे अहमिन्द्र रूपसे उत्कृष्ट देव स्थित हैं। (नव ग्रैवेयकके आगे नव अनुदिश हैं और उनके ऊपर) विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि ये पॉच अनुत्तर विमान है ॥१७०–१७१॥ इस लोकत्रयके ऊपर उत्तम देदीप्यमान तथा महा आश्चर्यसे युक्त सिद्धक्षेत्र है जो कर्मबन्धनसे रहित जीवोका स्थान जानना चाहिए ॥१७२॥ ऊपर ईषत्प्राग्भार नामकी वह शुभ पृथ्वी है, जो ऊपरकी ओर किये हुए धवलछत्रके आकार है, शुभरूप है, और जिसके ऊपर पुनर्भवसे रहित, महासुख सम्पन्न तथा स्वात्मशक्तिसे युक्त सिद्ध-परमेष्ठी विराजमान रहते है ॥१७३–१७४॥

तदनन्तर इसी बीचमे रामने कहा कि हे भगवन् ! उन कर्मरहित जीवोके ससार भावसे रहित तथा दु.खसे दूर कैसा सुख होता है ? ॥१७५॥ इसके उत्तरमे केवली भगवान्‌ने कहा कि इस तीन लोकका जो सुख है वह आकुलतारूप, विनाशात्मक तथा दुरन्त होनेके कारण दु.ख-रूप ही माना गया है ॥१७६॥ आठ प्रकारके कर्मसे परतन्त्र इस संसारी जीवको कभी रंचमात्र भी सुख नही होता ॥१७७॥ जिस प्रकार लोहेसे वेष्टित सुवर्णपिण्डकी अपनी निजकी कान्ति नष्ट हो जाती है उसी प्रकार कर्मसे वेष्टित जीवकी अपनी निजकी कान्ति बिलकुल ही नष्ट हो जाती है ॥१७८॥ इस संसारके प्राणी निरन्तर जन्म-जरामरण तथा बीमारी आदिके हजारो एवं मान-सिक महादुखोसे पीडित रहते हैं अतः यहाँ क्या सुख है ? ॥१७९॥ विषय-जन्यसुख खड्गधारा

---

१. दग्धचन्दन -म. ।

ध्रुवं परमनाबाधमुपमानविवर्जितम् । आत्मस्वाभाविकं सौख्यं सिद्धानां परिकीर्त्तितम् ॥१८१॥
सुप्तया किं ध्वस्तनिद्राणां नीरोगाणां किमौषधैः । सर्वज्ञानां कृतार्थानां किं दीपतपनादिना ॥१८२॥
आयुधैः किमभीतानां निर्मुक्तानामरातिभिः । पश्यतां विपुलं सर्वमिद्धार्थानां किमीहया ॥१८३॥
महात्म[1]सुखतृप्तानां किं कृत्यं भोजनादिना । देवेन्द्रा अपि यत्सौख्यं वाञ्छन्ति सततोन्मुखाः ॥१८४॥
नास्ति यद्यपि तत्त्वेन प्रतिमास्य तथापि ते । वदामि प्रतिबोधार्थं सिद्धात्मसुखगोचरे ॥१८५॥
[2]सचक्रवर्त्तिनो सर्वा सेन्द्रा यच्च सुराः सुखम् । कालेनान्तविमुक्तेन सेवन्ते भवहेतुजम् ॥१८६॥
अनन्तपूरणस्यापि भागस्य तदकर्मणाम् । सुखस्य तुल्यतां नैति सिद्धानामीदृशं सुखम् ॥१८७॥
जनेभ्यः सुखिनो भूपाः भूपेभ्यश्चक्रवर्त्तिनः । चक्रिभ्यो व्यन्तरास्तेभ्यः सुखिनो ज्योतिषामराः ॥१८८॥
ज्योतिर्भ्यो भवनावासास्तेभ्यः कल्पभुवः क्रमात् । ततो ग्रैवेयकावासास्ततोऽनुत्तरवासिनः ॥१८९॥
अनन्तानन्तगुणतस्तेभ्यः सिद्धिपदस्थिताः । सुखं नापरमुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसौख्यतः ॥१९०॥
अनन्तं दर्शनं ज्ञानं वीर्यं च सुखमेव च । आत्मनः स्वमिदं रूपं तच्च सिद्धेषु विद्यते ॥१९१॥
संसारिणस्तु तान्येव कर्मोपशमभेदतः । वैचित्र्यवन्ति जायन्ते बाह्यवस्तुनिमित्ततः ॥१९२॥
शब्दादिप्रभवं सौख्यं शल्यितं व्याधिकीलकैः । व्रणमात्रे तत्र सुखाशा मोहहेतुका ॥१९३॥
गत्यागतिविमुक्तानां प्रक्षीणक्लेशसंपदाम् । लोकशेखरभूतानां सिद्धानाममम सुखम् ॥१९४॥

पर लगे हुए मधुके स्वादके समान है, स्वर्गका सुख जले हुए घावपर चन्दनके लेपके समान है और चक्रवर्तीका सुख विषमिश्रित अन्नके समान है ॥१८०॥ किन्तु सिद्ध भगवान्‌का जो सुख है वह नित्य है, उत्कृष्ट है, आबाधासे रहित है, अनुपम है, और आत्मस्वभावसे उत्पन्न है ॥१८१॥ जिनकी निद्रा नष्ट हो चुकी है उन्हे शयनसे क्या? नीरोग मनुष्योंको औषधिसे क्या? सर्वज्ञ तथा कृतकृत्य मनुष्योको दीपक तथा सूर्य आदिसे क्या? शत्रुओसे रहित निर्भीक मनुष्योके लिए आयुधोसे क्या? देखते-देखते जिनके पूर्ण रूपमे सब मनोरथ सिद्ध हो गये हैं ऐसे मनुष्योंको चेष्टासे क्या? और आत्मसम्बन्धी महा सुखसे सन्तुष्ट मनुष्योको भोजनादिसे क्या प्रयोजन है? इन्द्र लोग भी सिद्धोके जिस सुखकी सदा उन्मुख रहकर इच्छा करते रहते हैं, यद्यपि यथार्थमें उस सुखकी उपमा नही है तथापि तुम्हे समझानेके लिए सिद्धोके उस आत्मसुखके विषयमे कुछ कहता हूँ ॥१८२–१८५॥ चक्रवर्ती सहित समस्त मनुष्य और इन्द्र सहित समस्त देव अनन्त कालमे जिस सांसारिक सुखका उपभोग करते है वह कर्मरहित सिद्ध भगवान्‌के अनन्तवे सुखकी भी सदृशताको प्राप्त नही होता। ऐसा सिद्धोका सुख है ॥१८६–१८७॥ साधारण मनुष्योकी अपेक्षा राजा सुखी हैं, राजाओकी अपेक्षा चक्रवर्ती सुखी हैं, चक्रवर्तियोंकी अपेक्षा व्यन्तर देव सुखी हैं, व्यन्तर देवोकी अपेक्षा ज्योतिष देव सुखी हैं ॥१८८॥ ज्योतिष देवोकी अपेक्षा भवनवासी देव सुखी हैं, भवनवासियोकी अपेक्षा कल्पवासी देव सुखी है, कल्पवासी देवोकी अपेक्षा ग्रैवेयकवासी सुखी है, ग्रैवेयकवासियोकी अपेक्षा अनुत्तरवासी सुखी है ॥१८९॥ और अनुत्तरवासियोसे अनन्तानन्त गुणित सुखी सिद्ध जीव हैं। सिद्ध जीवोके सुखसे उत्कृष्ट दूसरा सुख नही है ॥१९०॥ अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुख यह चतुष्टय आत्माका निज स्वरूप है और वह सिद्धोमे विद्यमान है ॥१९१॥ परन्तु संसारी जीवोके वे ही ज्ञान दर्शन आदि कर्मोके उपशममे भेद होनेसे तथा बाह्य वस्तुओके निमित्तसे अनेक प्रकारके होते हैं ॥१९२॥ शब्द आदि इन्द्रियोके विषयोसे होनेवाला सुख व्याधिरूपी कीलोके द्वारा शल्य युक्त है इसलिए शरीरसे होनेवाले सुखमे सुखकी आशा करना मोहजनित आशा है ॥१९३॥ जो गमनागमनसे विमुक्त है, जिनके समस्त क्लेश नष्ट हो चुके है एवं जो लोकके मुकुट स्वरूप हैं अर्थात् लोकाग्रमे विद्यमान हैं उन

---

१. माहात्म्य- म.। २. सुचक्र—म, ज.।

यदीयं दर्शनं ज्ञानं लोकालोकप्रकाशकम् । क्षुद्रद्रव्यप्रकाशेन नैव ते भानुना समाः ॥१९५॥
करस्थामलकज्ञानसर्वभागेऽप्यपुष्कलम् । छद्मस्थपुरुषोत्पन्नं सिद्धज्ञानस्य नो समम् ॥१९६॥
समं त्रिकालभेदेषु सर्वभावेषु केवली । ज्ञानदर्शनयुक्तात्मा नेतरः सोऽपि सर्वथा ॥१९७॥
ज्ञानदर्शनभेदोऽयं यथा सिद्धेतरात्मनाम् । सुखेऽपि दृश्यतां तद्वत्तथा वीर्येऽपि दृश्यताम् ॥१९८॥
दर्शनज्ञानसौख्यानि सकलत्वेन तत्त्वतः । सिद्धानां केवली वेत्ति शेषेष्वौपमिकं वचः ॥१९९॥
अभव्यात्ममिरप्राप्यमिदं जैनेन्द्रमास्पदम् । अत्यन्तमपि यत्ना[1]ढ्यैः कायसंक्लेशकारिभिः ॥२००॥
अनादिकालसंबद्धां विरहेण विवर्जिताम् । अविद्यागेहिनी ते हि शश्वदाश्लिष्य शेरते ॥२०१॥
विमुक्तिवनिताश्लेषसमुत्कण्ठापरायणाः । भव्यास्तु दिवसान् कृच्छ्रं प्रेरयन्ति तपःस्थिताः ॥२०२॥
सिद्धिशक्तिविनिर्मुक्ता अभव्याः परिकीर्त्तिताः । भविष्यत्सिद्धयो जीवा भव्यशब्दमुपाश्रिताः ॥२०३॥
जिनेन्द्रशासनादन्यशासने रघुनन्दन । न [2]सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणां क्षयः ॥२०४॥
यत्कर्म क्षपयत्यज्ञो भूरिभिर्भवकोटिभिः । ज्ञानी मुहूर्तयोगेन त्रिगुप्तस्तदपोहयेत् ॥२०५॥
प्रतीतो जगतोऽप्येतत्परमात्मा निरंजनः । दृश्यते परमार्थेन यथा प्रक्षीणकर्मभिः ॥२०६॥
गृहीतं बहुभिर्विद्धि लोकमार्गमसारकम् । परमार्थपरिप्राप्त्यै गृहाण जिनशासनम् ॥२०७॥
एवं रघूत्तमः श्रुत्वा वचः सकलभूषणम् । प्रणिपत्य जगौ नाथ तारयास्माद्भवादिति ॥२०८॥

सिद्धोंका सुख अपनी समानता नही रखता ॥१९४॥ जिनका दर्शन और ज्ञान लोकालोकको प्रकाशित करनेवाला है, वे क्षुद्र द्रव्योको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके समान नही कहे जा सकते ॥१९५॥ जो हाथ पर स्थित आँवलेके सर्वभागोके जाननेमे असमर्थ है ऐसा छद्मस्थ पुरुषोका ज्ञान सिद्धोके समान नही है ॥१९६॥ त्रिकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थोके विषयमे एक केवली ही ज्ञान दर्शनसे सम्पन्न होता है, अन्य नही ॥१९७॥ सिद्ध और ससारी जीवोंमे जिस प्रकार यह ज्ञान दर्शनका भेद है उसी प्रकार उनके सुख और वीर्यमे भी यह भेद समझना चाहिए ॥१९८॥ यथार्थमे सिद्धोके दर्शन, ज्ञान और सुखको सम्पूर्ण रूपसे केवली ही जानते है अन्य लोगोके वचन तो उपमा रूप ही होते है ॥१९९॥ यह जिनेन्द्र भगवान्का स्थान—सिद्धपद, अभव्य जीवोको अप्राप्य है भले ही वे अनेक यत्नोसे सहित हो तथा अत्यधिक काय-क्लेश करनेवाले हों ॥२००॥ इसका कारण भी यह है कि वे अनादि कालसे सम्बद्ध तथा विरहसे रहित अविद्यारूपी गृहिणीका निरन्तर आलिगन कर शयन करते रहते है ॥२०१॥ इनके विपरीत मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिगन करनेमे जिनकी उत्कण्ठा बढ रही है ऐसे भव्य जीव तपश्चरणमे स्थित होकर बड़ी कठिनाईसे दिन व्यतीत करते है अर्थात् वे जिस किसी तरह ससारका समय बिताकर मुक्ति प्राप्त करना चाहते है ॥२०२॥ जो मुक्ति प्राप्त करनेकी शक्तिसे रहित है वे अभव्य कहलाते हैं और जिन्हे मुक्ति प्राप्त होगी वे भव्य कहे जाते है ॥२०३॥ सर्वभूषण केवली कहते हैं कि हे रघुनन्दन ! जिनेन्द्रशासनको छोड़कर अन्यत्र सर्व प्रकारका यत्न होनेपर भी कर्मोका क्षय नही होता है ॥२०४॥ अज्ञानी जीव जिस कर्मको अनेक करोड़ो भवोमे क्षीण कर पाता है उसे तीन गुप्तियोका धारक ज्ञानी मनुष्य एक मुहूर्तमे ही क्षीण कर देता है ॥२०५॥ यह बात संसारमे भी प्रसिद्ध है कि यथार्थमे निरंजन—निष्कलंक परमात्माका दर्शन वही कर पाते हैं जिनके कि कर्म क्षीण हो गये हैं ॥२०६॥ यह सारहीन संसारका मार्ग तो अनेक लोगोने पकड़ रखा है पर इससे परमार्थकी प्राप्ति नही, अतः परमार्थकी प्राप्तिके लिए एक जिनशासनको ही ग्रहण करो ॥२०७॥ इस प्रकार सकलभूषणके वचन सुनकर श्रीरामने प्रणाम कर कहा कि हे नाथ ! इस संसार-सागरसे पार

---

१. यत्नाढ्यैः म. । २ सर्वरत्न-म. ।

भगवन्नधमा मध्या उत्तमाश्चासुधारिणः । भव्याः केन विमुच्यन्ते विधिना भववासतः ॥२०९॥
उवाच भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितम् । मोक्षवर्त्म समुद्दिष्टमिदं जैनेन्द्रशासने ॥२१०॥
तत्त्वश्रद्धानमेतस्मिन् सम्यग्दर्शनमुच्यते । चेतनाचेतनं तत्त्वमनन्तगुणपर्ययम् ॥२११॥
निसर्गाधिगमद्वाराद्भक्त्या तत्त्वमुपाददत् । सम्यग्दृष्टिरिति प्रोक्तो जीवो जिनमते रतः ॥२१२॥
शङ्का काङ्क्षा [1]चिकित्सा च परशासनसंस्तवः । प्रत्यक्षोदारदोषाद्या एते सम्यक्त्वदूषणाः ॥२१३॥
स्थैर्यं जिनवरागारे रमणं भावना पराः । शङ्कादिरहितत्वं च सम्यग्दर्शनशोधनम् ॥२१४॥
सर्वज्ञशासनोक्तेन विधिना ज्ञानपूर्वकम् । क्रियते यदसाध्येन सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१५॥
गोपायितहृषीकत्वं वचोमानसयन्त्रगम् । विद्यते यत्र निष्पापं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१६॥
अहिंसा यत्र भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च । क्रियते न्याययोगेषु सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१७॥
मनःश्रोत्रपरिह्लादं स्निग्धं मधुरमर्थवत् । शिवं यत्र वचः सत्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१८॥
अदत्तग्रहणे यत्र निवृत्तिः क्रियते त्रिधा । दत्तं च गृह्यते न्याय्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२१९॥
सुराणामपि संपूज्यं दुर्धरं महतामपि । ब्रह्मचर्यं शुभं यत्र सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२०॥
शिवमार्गमहाविघ्नमूर्च्छात्यजनपूर्वकः । परिग्रहपरित्यागः सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२१॥
[2]परपीडाविनिर्मुक्तं दानं श्रद्धादिसंगतम् । दीयते यन्निवृत्तेभ्यः सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२२॥

लगाओ ॥२०८॥ उन्होने यह भी पूछा कि हे भगवन् ! जघन्य मध्यम तथा उत्तमके भेदसे भव्य जीव तीन प्रकारके है सो ये संसार-वाससे किस विधिसे छूटते है ? ॥२०९॥

तब सर्वभूषण भगवान्ने कहा कि जैनेन्द्र शासन—जैनधर्ममे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनकी एकता ही को मोक्षका मार्ग बताया है ॥२१०॥ इनमेसे तत्त्वोका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है । अनन्त गुण और अनन्त पर्यायोको धारण करनेवाला तत्त्व चेतन, अचेतनके भेदसे दो प्रकारका है ॥२११॥ स्वभाव अथवा परोपदेशके द्वारा भक्तिपूर्वक जो तत्त्वको ग्रहण करता है वह जिनमतका श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है ॥२१२॥ शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्योंमे दोषादि लगाना—उनकी निन्दा करना ये सम्यग्दर्शनके पाँच अतिचार हैं ॥२१३॥ परिणामोकी स्थिरता रखना, जिनायतन आदि धर्म क्षेत्रोंमे रमण करना—स्वभावसे उनका अच्छा लगना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शंकादि दोषोसे रहित होना ये सब सम्यग्दर्शनको शुद्ध रखनेके उपाय है ॥२१४॥ सर्वज्ञके शासनमें कही हुई विधिके अनुसार सम्यग्ज्ञान पूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्यके द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२१५॥ जिसमे इन्द्रियोंका वशीकरण और वचन तथा मनका नियन्त्रण होता है वही निष्पाप—निर्दोष सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२१६॥ जिसमे न्यायपूर्ण प्रवृत्ति करनेवाले त्रस स्थावर जीवोंपर अहिंसा की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१७॥ जिसमे मन और कानोको आनन्दित करनेवाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्थक और कल्याणकारी वचन कहे जाते हैं उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१८॥ जिसमे अदत्तवस्तुके ग्रहणमें मन, वचन, कायसे निवृत्ति की जाती है तथा न्यायपूर्ण दी हुई वस्तु ग्रहण की जाती है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२१९॥ जहाँ देवोके भी पूज्य और महापुरुषोके भी कठिनतासे धारण करने योग्य शुभ ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥२२०॥ जिसमे मोक्षमार्गमे महाविघ्नकारी मूर्च्छाके त्यागपूर्वक परिग्रहका त्याग किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२१॥ जिसमें मुनियोके लिए परपीडासे रहित तथा श्रद्धा आदि गुणोसे सहित दान दिया जाता है उसे

---

१ च कुत्सा च म. । २. परिपीडा—म. ।

विनयो नियमः शीलं ज्ञानं दानं दया दमः। ध्यानं च यत्र मोक्षार्थं सुचारित्रं तदुच्यते ॥२२३॥
एतद्गुणसमायुक्त जिनेन्द्रवचनोदितम्। श्रेयः सम्प्राप्तये सेव्यं चारित्रं परमोदयम् ॥२२४॥
शक्यं करोत्यशक्ये तु श्रद्धावान् स्वस्य निन्दकः। सम्यक्त्वसहितो जन्तुः शक्तश्चारित्रसगतः ॥२२५॥
यत्र त्वेते न विद्यन्ते समीचीना महागुणाः। तत्र नास्ति सुचारित्रं न च संसारनिर्गमः ॥२२६॥
दयादमक्षमा यत्र न विद्यन्ते न संवरः। न ज्ञानं न परित्यागस्तत्र धर्मो न विद्यते ॥२२७॥
हिंसावितथचौर्यस्त्रीसमारम्भसमाश्रय.। क्रियते यत्र धर्मार्थं तत्र धर्मो न विद्यते ॥२२८॥
दीक्षामुपेत्य यः पापे मूढचेताः प्रवर्त्तते। [2]आरम्भिणोऽस्य चारित्रं विमुक्तिर्वा न विद्यते ॥२२९॥
षण्णां जीवनिकायानां क्रियते यत्र पीडनम्। धर्मव्याजेन सौख्यार्थं न तेन शिवमाप्यते ॥२३०॥
वधताडनबन्धाङ्कदोहनादिविधायिनः। ग्रामक्षेत्रादिसक्तस्य प्रव्रज्या का हतात्मनः ॥२३१॥
क्रयविक्रयसक्तस्य पक्तियाचनकारिणः। सहिरण्यस्य का मुक्तिर्दीक्षितस्य दुरात्मन. ॥२३२॥
मर्दनस्नानसंस्कारमाल्यधूपानुलेपनम्। सेवन्ते दुर्विदग्धा ये दीक्षितास्ते न मोक्षगाः ॥२३३॥
हिंसां दोषविनिर्मुक्तां वदन्तः स्वमनीषया। शास्त्रं वेष च वृत्तं च दूषयन्ति समूढका' ॥२३४॥
एकरात्रं वसन् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम्। नित्यमूर्ध्वभुजस्तिष्ठन् मासे मासे च पारयन् ॥२३५॥
मृगैः समसरण्यान्यां शयानो विचरन्नपि। कुर्वन्नपि भृगो पातं मौनवान्नि परिग्रहः ॥२३६॥
मिथ्यादर्शनदुष्टात्मा कुलिङ्गो बीजवर्जित'। पद्भ्यामगम्यदेशं [3]वा नैवाप्नोति शिवालयम् ॥२३७॥

सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥२२२॥ जिसमे विनय, नियम, शील, ज्ञान, दया, दम और मोक्षके लिए ध्यान धारण किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते है ॥२२३॥ इस प्रकार इन गुणोसे सहित, जिनशासनमें कथित, परम अभ्युदयका कारण जो सम्यक्चारित्र है, कल्याण प्राप्तिके लिए उसका सेवन करना चाहिए ॥२२४॥ सम्यग्दृष्टि जीव शक्य कार्यको करता है और अशक्य कार्यकी श्रद्धा रखता है परन्तु जो शक्त अर्थात् समर्थ होता है वह चारित्र धारण करता है ॥२२५॥ जिसमे पूर्वोक्त समीचीन महागुण नही हैं उसमे सम्यक्चारित्र नही है, और न उसका ससारसे निकलना होता है ॥२२६॥ जिसमे दया, दम, क्षमा नही है, संवर नही है, ज्ञान नही है, और परित्याग नही है उसमे धर्म नही रहता ॥२२७॥ जिसमे धर्मके लिए हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहका आश्रय किया जाता है वहाँ धर्म नहीं है ॥२२८॥ जो मूर्ख हृदय दीक्षा लेकर पापमे प्रवृत्ति करता है उस आरम्भीके न चारित्र है और न उसे मुक्ति प्राप्त होती है ॥२२९॥ जिसमे धर्मके बहाने सुख प्राप्त करनेके लिए छह कायके जीवोंको पीड़ा की जाती है उस धर्मसे कल्याणकी प्राप्ति नही होती ॥२३०॥ जो मारना, ताड़ना, बाँधना, आँकना तथा दोहना आदि कार्य करता है तथा गाँव, खेत आदिमे आसक्त रहता है उस अनात्मज्ञका दीक्षा लेना क्या है? ॥२३१॥ जो वस्तुओके खरीदने और बेचनेमे आसक्त है, स्वयं भोजनादि पकाता है अथवा दूसरेसे याचना करता है, और स्वर्णादि परिग्रह साथ रखता है, ऐसे आत्महीन दीक्षित मनुष्यको क्या मुक्ति प्राप्त होगी? ॥२३२॥ जो अविवेकी मनुष्य दीक्षित होकर मर्दन, स्नान, संस्कार, माला, धूप तथा विलेपन आदिका सेवन करते है वे मोक्षगामी नही है—उन्हे मोक्ष प्राप्त नही होता ॥२३३॥ जो अपनी बुद्धिसे हिंसाको निर्दोष कहते हुए शास्त्र, वेष तथा चारित्रमे दोष लगाते हैं वे मूढतासे सहित है—मिथ्यादृष्टि हैं ॥२३४॥ जो गाँवमे एक रात और नगरमे पाँच रात रहता है, निरन्तर ऊपरकी ओर भुजा उठाये रहता है, महीने-महीनेमे एक बार भोजन करता है, मृगोके साथ अटवीमे शयन करता है, उन्हींके साथ विचरण करता है, भृगुपात भी करता है, मौनसे रहता है, और परिग्रहका त्याग करता है, वह मिथ्या दर्शनसे दूषित होनेके कारण कुलिंगी है तथा मोक्षके कारण जो सम्यग्दर्शनादि उनसे रहित है। ऐसा जीव पैरोसे चलकर किसी अगम्य स्थान-

१. भृक्त—म। २. आरम्भितोऽ -म। ३. च म.।

अग्निवारिप्रवेशादिपापं धर्मधिया श्रयन् । प्रयाति दुर्गतिं जीवो मूढः स्वहितवर्त्मनि ॥२३८॥
रौद्रार्तध्यानसक्तस्य सकामस्य कुकर्मण. । उपायविपरीतस्य जायते निन्दिता गतिः ॥२३९॥
मिथ्यादर्शनयुक्तोऽपि यो दद्यात्साध्वसाधुपु । धर्मबुद्धिरसौ पुण्यं बध्नाति विपुलोदयम् ॥२४०॥
भुञ्जानोऽपि फलं तस्य धर्मस्यासौ त्रिविष्टपे । लक्षभागदलेनापि सम्यग्दृष्टेर्न संमितः ॥२४१॥
सम्यग्दर्शनमुत्तुङ्ग सुश्लाघ्याः संवहन्ति ये । देवलोकप्रधानास्ते भवन्ति नियमप्रियाः ॥२४२॥
क्लेशित्वापि महायत्नं मिथ्यादृष्टिः कुलिङ्गकः । देवकिङ्करभावेन फलं हीनमवाश्नुते ॥२४३॥
सप्ताष्टसु नृदेवत्वभवसंक्रान्तिसौख्यभाक् । श्रमणत्वं समाश्रित्य सम्यग्दृष्टिर्विमुच्यते ॥२४४॥
वीतरागैः समस्तज्ञैरिमं मार्गं प्रदर्शितम् । जन्तुर्विषयमूढात्मा प्रतिपत्तुं न वाञ्छति ॥२४५॥
आशापाशैर्दृढं बद्धा मोहेनाधिष्ठिता भृशम् । तृष्णागारं समानीता. [1]पापहिञ्जीरवाहिनः ॥२४६॥
रसनं स्पर्शनं प्राप्य दुःखसौख्याभिमानिनः । वराका विविधा जीवाः क्लिश्यन्ते शरणोज्झिताः ॥२४७॥
[2]बिभेति मृत्युतो नास्य ततो मोक्षः प्रजायते । काङ्क्षत्यनारतं सौख्यं न च लाभोऽस्य सिद्धयति ॥२४८॥
इत्ययं भीतिकामाभ्यां विफलाभ्यां वशीकृतः । केवलं तापमायाति चेतनो निरुपायकः ॥२४९॥
आशया नित्यमाविष्टो भोगान् भोक्तुं समीहते । न करोति धृतिं धर्मे काञ्चने मशको यथा ॥२५०॥

अथवा मोक्षको प्राप्त नही कर सकता ॥२३५-२३७॥ जो धर्मबुद्धिसे अग्निप्रवेश तथा जलप्रवेश आदि पाप करता है वह आत्महितके मार्गमें मूढ है और दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥२३८॥ जो रौद्र और आर्तध्यानमे आसक्त है, कामपर जिसने विजय प्राप्त नही की है, जो खोटे काम करता है तथा उपायसे विपरीत प्रवृत्ति करता है उसकी निन्दित गति—कुगति होती है ॥२३९॥ जो मनुष्य मिथ्यादर्शनसे युक्त होकर भी धर्मबुद्धिसे साधु और असाधुके लिए दान देता है वह विपुल अभ्युदयको देनेवाले पुण्यकर्मका बन्ध करता है ॥२४०॥ यद्यपि ऐसा जीव स्वर्गमे उस धर्मका फल भोगता है तथापि वह सम्यग्दृष्टिको प्राप्त होनेवाले फलके लाखमेसे एक भागके भी बराबर नही है ॥२४१॥ जो मनुष्य उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन धारण करते है तथा चारित्रसे प्रेम रखते है वे इस लोकमे भी प्रशसनीय होते हैं और मरनेके बाद देवलोकमे प्रधान होते हैं ॥२४२॥ मिथ्यादृष्टि कुलिंगी मनुष्य, बड़े प्रयत्नसे क्लेश उठाकर भी देवोंका किंकर बन तुच्छ फलको प्राप्त होता है। भावार्थ—मिथ्यादृष्टि कुलिंगी मनुष्य यद्यपि तपश्चरणके अनेक क्लेश उठाता है तथापि वह उसके फलस्वरूप स्वर्गमे उत्तम पद प्राप्त नही कर पाता किन्तु देवोंको किंकर होकर हीन फल प्राप्त कर पाता है ॥२४३॥ सम्यग्दृष्टि मनुष्य, सात आठ भवोमे मनुष्य और देव पर्यायमे परिभ्रमणसे उत्पन्न हुए सुखको भोगता हुआ अन्तमे मुनिदीक्षा धारण कर मुक्त हो जाता है ॥२४४॥ वीतराग सर्वज्ञ देवके द्वारा दिखाये हुए इस मार्गको, विषयी मनुष्य प्राप्त नही करना चाहता ॥२४५॥ जो आशारूपी पाशसे मजबूत बँधे हैं, मोहसे अत्यधिक आक्रान्त है, तृष्णारूपी घरमे लाकर डाले गये हैं, पापरूपी जंजीरको धारण कर रहे है तथा स्पर्श और रसको पाकर जो दुःखको ही सुख मान बैठे हैं इस तरह नाना प्रकारके शरण रहित बेचारे दीन प्राणी निरन्तर क्लेश उठाते रहते हैं ॥२४६-२४७॥ यह प्राणी मृत्युसे डरता है पर उससे छुटकारा नही हो पाता। इसी प्रकार निरन्तर सुख चाहता है पर उसकी प्राप्ति नही हो पाती ॥२४८॥ इस प्रकार निष्फल भय और कामसे वश हुआ यह प्राणी निरुपाय हो मात्र सन्तापको प्राप्त होता रहता है ॥२४९॥ निरन्तर आशासे घिरा हुआ यह प्राणी भोग भोगनेकी चेष्टा करता है परन्तु जिस प्रकार मच्छर स्वर्णमे सन्तोष नहीं करता उसी प्रकार यह प्राणी धर्ममे धैर्य धारण

---

१. पापशृङ्खलावाहिन. । २. बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिव वाञ्छति नास्य लाभ. । तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादी. ।—बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रे ।

संक्लेशवह्निसंतप्तो बह्वारम्भक्रियोद्यतः । न कञ्चिदर्थमाप्नोति ह्रियते वास्य संगतम् ॥२५१॥
असौ पुराकृतात्पापादप्राप्यार्थं मनोगतम् । प्रत्युतानर्थमाप्नोति महान्तमतिदुर्जरम् ॥२५२॥
इदं कृतमिदं कुर्वे करिष्येऽह सुनिश्चितम् । मर्ताहि वस्त्वदः पापान्मृत्युं यान्तीति चिन्तकाः ॥२५३॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युरसुमाजां कृताकृतम् । समाक्रामत्यकाण्डेऽसौ मृगकं केशरी यथा ॥२५४॥
अहिते हितमित्याशा सुदुःखे सुखसंमतिः । अनित्ये शाश्वताकूतं शरणाशा भयावहे ॥२५५॥
हिते सुखे परित्राणे ध्रुवे च विपरीतधीः । अहो कुदृष्टिसक्तानामन्यथैव व्यवस्थितिः ॥२५६॥
भार्यावारीप्रविष्टः सन् मनुष्यो वनवारणः । विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बन्धं समश्नुते ॥२५७॥
कुटुम्बसुमहापङ्के विस्तरे मोहसागरे । मग्नोऽवसीदति स्फूर्जन्दुर्बलो गवली यथा ॥२५८॥
मोक्षो निगडबद्धस्य भवेदन्धाच्च कूपतः । निबद्धः स्नेहपाशैस्तु ततः कृच्छ्रेण मुच्यते ॥२५९॥
बोधिं मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्रीं सुष्ठु दुर्लभाम् । प्राप्तुमर्हत्यभव्यस्तु[1] नैव मार्गं जिनोदितम् ॥२६०॥
घनकर्मकलङ्काक्ता अभव्या नित्यमेव हि । संसारचक्रमारूढा भ्राम्यन्ति क्लेशवाहिताः ॥२६१॥
ततः कृत्वाञ्जलिं मूर्ध्नि जगाद रघुनन्दनः । किमस्मि भगवन् भव्यो मुच्ये कस्मादुपायतः ॥२६२॥
शक्नोमि पृथिवीमेतां त्यक्तुं सान्तःपुरामहम् । लक्ष्मीधरस्य सुकृतं न शक्नोम्येकमुज्झितुम् ॥२६३॥
स्नेहोर्मिचन्द्रखण्डेषु तरन्तं लग्नतोज्झितम् । अवलम्बनदानेन मां त्रायस्व मुनीश्वर ॥२६४॥

नही करता ॥२५०॥ संक्लेशरूपी अग्निसे सन्तप्त हुआ यह प्राणी बहुत प्रकारके आरम्भ करनेमें तत्पर रहता है परन्तु किसी भी प्रयोजनको प्राप्त नही अपितु इसके पासका जो सुख है वह भी चला जाता है ॥२५१॥ यह जीव पूर्वकृत पापके कारण मनोभिलषित पदार्थको प्राप्त नही होता किन्तु अत्यन्त दुर्जर बहुत भारी अनर्थको प्राप्त होता है ॥२५२॥ 'मै यह कर चुका, यह करता हूँ और यह आगे करूँगा।' इस प्रकार मनुष्य निश्चय कर लेता है पर कभी मरूँगा भी इस बातका कोई विचार नही करते ॥२५३॥ मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नही करती कि प्राणी, कौन काम कर चुके और कौन काम नही कर पाये। वह तो जिस प्रकार सिंह मृगपर आक्रमण करता है उसी प्रकार असमयमे भी आक्रमण कर बैठती है ॥२५४॥ अहो! मिथ्यादृष्टि मनुष्य, अहितको हित, दुःखको सुख, अनित्यको नित्य, भयदायकको शरणदायक, हितको अहित, सुखको दु.ख, रक्षकको अरक्षक और ध्रुवको अध्रुव समझते है। इस प्रकार कहना पडता है कि मिथ्यादृष्टि मनुष्योकी व्यवस्था अन्य प्रकार ही है ॥२५५–२५६॥ यह मनुष्यरूपी जगली हाथी, भार्यारूपी बन्धनमे पड़कर बन्धको प्राप्त होता है अथवा यह मनुष्यरूपी मत्स्य विषयरूपी मासमे आसक्त हो बन्धका अनुभव करता है ॥२५७॥ कुटुम्बरूपी बहुत कीचड़से युक्त एवं लम्बे-चौड़े मोहरूपी महासागरमे फँसा हुआ यह प्राणी दुबले-पतले भैसेके समान छटपटाता हुआ दुःखी हो रहा है ॥२५८॥ बेड़ियोसे बँधे हुए मनुष्यका अन्धे कुएँसे छुटकारा हो सकता है परन्तु स्नेहरूपी पाशसे बँधा प्राणी उससे बड़ी कठिनाईसे छूट पाता है ॥२५९॥ जिसका पाना मनुष्यलोकमे भी अत्यन्त दुर्लभ है ऐसी जिनेन्द्र प्रतिपादित बोधिको प्राप्त करनेके लिए अभव्य प्राणी योग्य नहीं है। इसी प्रकार जिनेन्द्र कथित रत्नत्रय मार्गको भी प्राप्त करनेके लिए अभव्य समर्थ नही हैं ॥२६०॥ तीव्र कर्म मल कलंकसे युक्त रहनेवाले अभव्य जीव, निरन्तर ससाररूपी चक्रपर आरूढ़ हो क्लेश उठाते हुए घूमते रहते है ॥२६१॥

तदनन्तर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर रामने कहा कि हे भगवन्! क्या मै भव्य हूँ? और किस उपायसे मुक्त होऊँगा? ॥२६२॥ मै अन्तःपुरसे सहित इस पृथिवीको छोड़नेके लिए समर्थ हूँ, परन्तु एक लक्ष्मणका उपकार छोड़नेके लिए समर्थ नही हूँ ॥२६३॥ मैं विना किसी

1. -त्यभव्यास्तु म.।

उवाच भगवान् राम न शोकं कर्तुमर्हसि । ऐश्वर्यं बलदेवस्य भोक्तव्यं भवता ध्रुवम् ॥२६५॥
राज्यलक्ष्मीं परिप्राप्य दिवीव त्रिदशाधिपः । जैनेश्वरं व्रतं प्राप्य कैवल्यमयमेष्यसि ॥२६६॥

आर्याच्छन्दः

श्रुत्वा केवलिभाषितमुत्तमहर्षप्रजातपुलको रामः ।
विकसितनयनः श्रीमान् प्रसन्नवदनो बभूव धृत्या युक्तः ॥२६७॥
विज्ञाय चरमदेहं दाशरथिं विस्मिताः सुरासुरमनुजाः ।
केवलिरविणोद्योतितमत्यन्तप्रीतिमानसाः समशंसन् ॥२६८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रामधर्मश्रवणाभिधानं नाम पञ्चोत्तरशतं पर्व ॥१०५॥

□

आधारके स्नेहरूपी सागरकी तरंगोंमें तैर रहा हूँ, सो हे मुनीन्द्र ! अवलम्बन देकर मेरी रक्षा करो ॥२६४॥ तदनन्तर भगवान् सर्वभूषण केवलीने कहा कि हे राम ! तुम शोक करनेके योग्य नहीं हो । आपको बलदेवका वैभव अवश्य भोगना चाहिए । जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गकी राज्य-लक्ष्मीको प्राप्त होता है उसी प्रकार यहाँकी राज्यलक्ष्मीको पाकर तुम अन्तमें जिनेश्वर दीक्षाको धारण करोगे तथा केवलज्ञानमय मोक्षधामको प्राप्त होओगे ॥२६५-२६६॥ इस प्रकार केवली भगवान्का उपदेश सुनकर जिन्हें हर्षातिरेकसे रोमांच निकल आये थे, जिनके नेत्र विकसित थे, जो श्रीमान् थे एवं प्रसन्नमुख थे ऐसे श्रीराम-धैर्य—सुख-सन्तोषसे युक्त हुए ॥२६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि वहाँ जो भी सुर-असुर और मनुष्य थे वे रामको चरमशरीरी जानकर आश्चर्यसे चकित हो गये तथा अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो केवलीरूपी सूर्यके द्वारा प्रकाशित वस्तुतत्त्वकी प्रशंसा करने लगे ॥२६८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें रामके धर्मश्रवणका वर्णन करनेवाला एक सौ पाँचवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०५॥

□

वृषभः खेचराणां तद्भक्तिभूषो विभीषणः । निर्भीषणमहाभूषं[1] वृषभं व्योमवाससाम् ॥१॥
पाणियुग्समहाम्भोजभूषितोत्तमदेहभृत् । स नमस्कृत्य पप्रच्छ धीमान् सकलभूषणम् ॥२॥
भगवन् पद्मनाभेन किमनेन भवान्तरे । सुकृतं येन माहात्म्यं प्रतिपन्नोऽयमीदृशम् ॥३॥
अस्य पत्नी सती सीता दण्डकारण्यवर्तिनः । केनानुबन्धदोषेण रावणेन तदा हृता ॥४॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु शास्त्राणि सकलं विदन् । कृत्याकृत्यविवेकज्ञो धर्माधर्मविचक्षणः ॥५॥
प्रधानगुणसंपन्नो भूत्वा मोहवशं गतः । पतङ्गत्वमितः कस्मात्परस्त्रीलोभपावके ॥६॥
भ्रातृपक्षातिसक्तेन भूत्वा वनविचारिणा । लक्ष्मीधरेण संग्रामे स कथं भुवि मूर्च्छितः ॥७॥
स तादृग्बलवानासीद्विद्याधरमहेश्वरः । कृतानेकाद्भुतः[2] प्राप्तः कथ मरणमीदृशम् ॥८॥
अथ केवलिनो वाणी जगाद बहुजन्मगम् । [3]ससारे परम वैरमेतेनासीत्सहानयोः ॥९॥
इह जम्बूमति द्वीपे भरते क्षेत्रनामनि । नगरे नयदत्ताख्यो वाणिजोऽभूत्समस्त्रकः ॥१०॥
सुनन्दा गेहिनी तस्य धनदत्त. शरीरजः । द्वितीयो वसुदत्तस्तत्सुहृद्यज्ञवलिर्द्विज ॥११॥
वणिक्सागरदत्ताख्यस्तत्रैव नगरेऽपरः । पत्नी रत्नप्रभा तस्य गुणवत्युर्दितात्मजा ॥१२॥
रूपयौवनलावण्यकान्तिसद्विभ्रमात्मिका । अनुजो गुणवान्नामा तस्या आसीत्सुचेतसः ॥१३॥

अथानन्तर जो विद्याधरोमे प्रधान था, रामकी भक्ति ही जिसका आभूषण थी, और जो हस्तयुगलरूपी महाकमलोसे सुशोभित मस्तकको धारण कर रहा था ऐसे बुद्धिमान् विभीषणने निर्भय तेजरूपी आभूषणसे सहित एवं निर्ग्रन्थ मुनियोमे प्रधान उन सकलभूषण केवलीको नमस्कार कर पूछा कि ॥१-२॥ हे भगवन् ! इन रामने भवान्तरमे ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जिसके फलस्वरूप ये इस प्रकारके माहात्म्यको प्राप्त हुए है ॥३॥ जब ये दण्डकवनमे रह रहे थे तब इनकी पतिव्रता पत्नी सीताको किस संस्कार दोषसे रावणने हरा था ॥४॥ रावण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षविषयक समस्त शास्त्रोका अच्छा जानकार था, कृत्य-अकृत्यके विवेकको जानता था और धर्म-अधर्मके विषयमे पण्डित था। इस प्रकार यद्यपि वह प्रधान गुणोसे सम्पन्न था तथापि मोहके वशीभूत हो वह किस कारण परस्त्रीके लोभरूपी अग्निमे पतगपनेको प्राप्त हुआ था ? ॥५-६॥ भाईके पक्षमे अत्यन्त आसक्त लक्ष्मणने वनचारी होकर संग्राममे उसे कैसे मार दिया ॥७॥ रावण वैसा बलवान्, विद्याधरोका राजा और अनेक अद्‌भुत कार्योका कर्ता होकर भी इस प्रकारके मरणको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥८॥

तदनन्तर केवली भगवान्‌की वाणीने कहा कि इस ससारमे राम-लक्ष्मणका रावणके साथ अनेक जन्मसे उत्कट वैर चला आता था ॥९॥ जो इस प्रकार है—इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे एक क्षेत्र नामका नगर था उसमे नयदत्त नामका एक वणिक् रहता था जो कि साधारण धनका स्वामी था। उसकी सुनन्दा नामकी स्त्रीसे एक धनदत्त नामका पुत्र था जो कि रामका जीव था, दूसरा वसुदत्त नामका पुत्र था जो कि लक्ष्मणका जीव था। एक यज्ञवलिनामका ब्राह्मण वसुदेवका मित्र था सो तुम—विभीषणका जीव था ॥१०-११॥ उसी नगरमे एक सागरदत्त नामका दूसरा वणिक् रहता था, उसकी स्त्रीका नाम रत्नप्रभा था और दोनोके एक गुणवती नामकी पुत्री थी जो कि सीताकी जीव थी ॥१२॥ वह गुणवती रूप, यौवन, लावण्य, कान्ति और उत्तम विभ्रमसे युक्त थी। सुन्दर चित्तको धारण करनेवाली उस गुणवतीका एक गुणवान् नामका छोटा भाई था

१. महाभूषं म. । २. कृतानेकाद्‌भुत म. । ३. संसारो ख. ।

पित्राकूतं परिज्ञाय प्रीतेन कुलकाङ्क्षिणा । दत्ता प्रौढकुमारी सा धनदत्ताय सूरिणा ॥१४॥
श्रीकान्त इति विख्यातो वणिक्पुत्रोऽपरो धनी । स तां संततमाकाङ्क्षद्रूपस्तनितमानसः ॥१५॥
वित्तस्याल्पतयावज्ञां धनदत्ते विधाय च । श्रीकान्तायोद्यता[1] दातुं माता तां क्षुद्रमानसा ॥१६॥
विचेष्टितमिदं ज्ञात्वा वसुदत्तः प्रियाग्रजः । यज्ञवल्युपदेशेन श्रीकान्तं हन्तुमुद्यतः ॥१७॥
मण्डलाग्रं समुद्यम्य रात्रौ तमसि गह्वरे । निःशब्दपदविन्यासो नीलवस्त्रावगुण्ठितः ॥१८॥
श्रीकान्तं भवनोद्याने प्रमादिनमवस्थितम् । गत्वा प्राहरत्सोऽपि श्रीकान्तेनासिना हतः ॥१९॥
एवमन्योन्यघातेन मृत्युं तौ समुपागतौ । विन्ध्यपादमहारण्ये समुद्भूतौ कुरङ्गकौ ॥२०॥
दुर्जनैर्धनदत्ताय कुमारी वारिता ततः । क्रुध्यन्ति ते हि निर्व्याजादुपदेशे तु किं पुनः ॥२१॥
तेन दुर्मृत्युना भ्रातुः कुमार्यपगमेन च । धनदत्तो गृहाद्दुःखी देशानभ्रमदाकुलः ॥२२॥
धनदत्तापरिप्राप्त्या सापि बाला सुदुःखिता । अनिष्टान्यवरा गेहे नियुक्तान्नप्रदायिनी[2] ॥२३॥
मिथ्यादृष्टिस्वभावेन द्वेष्टि दृष्ट्वा निरम्बरम् । सासूयते समाक्रोशत्यपि निर्भर्त्सयत्यपि ॥२४॥
जिनशासनमेकान्तान्न श्रद्धत्तेऽतिदुर्जना । मिथ्यादर्शनसक्तात्मा कर्मबन्धानुरूपतः ॥२५॥
ततः कालावसानेन सार्तध्यानपरायणा । जाता तत्र मृगी यत्र वसतस्तौ कुरङ्गकौ ॥२६॥
पूर्वानुबन्धदोषेण तस्या एव कृते पुनः । मृगावन्योन्यमुद्वृत्तौ हत्वा शूकरतां गतौ ॥२७॥

जो कि भामण्डलका जीव था ॥१३॥ जब गुणवती युवावस्थाको प्राप्त हुई तब पिताका अभिप्राय जानकर कुलकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् गुणवान्‌ने प्रसन्न होकर उसे नयदत्तके पुत्र धनदत्तके लिए देना निश्चित कर दिया ॥१४॥ उसी नगरीमे एक श्रीकान्त नामका दूसरा वणिक्-पुत्र था जो अत्यन्त धनाढ्य था तथा गुणवतीके रूपसे अपहृतचित्त होनेके कारण निरन्तर उसकी इच्छा करता था। यह श्रीकान्त रावणका जीव था ॥१५॥ गुणवतीको माता क्षुद्र हृदयवाली थी, इसलिए वह धनकी अल्पताके कारण धनदत्तके ऊपर अवज्ञाका भाव रख श्रीकान्तको गुणवती देनेके लिए उद्यत हो गयी। तदनन्तर धनदत्तका छोटा भाई वसुदत्त यह चेष्टा जान यज्ञवलिके उपदेशसे श्रीकान्तको मारनेके लिए उद्यत हुआ ॥१६–१७॥ एक दिन वह रात्रिके सघन अन्धकारमें तलवार उठा चुपके-चुपके पद रखता हुआ नीलवस्त्रसे अवगुण्ठित हो श्रीकान्तके घर गया सो वह घरके उद्यानमे प्रमाद सहित बैठा था जिससे वसुदत्तने जाकर उसपर प्रहार किया। बदलेमे श्रीकान्तने भी उसपर तलवारसे प्रहार किया ॥१८–१९॥ इस तरह परस्परके घातसे दोनो मरे और मरकर विन्ध्याचलकी महाअटवीमे मृग हुए ॥२०॥ दुर्जन मनुष्योने धनदत्तके लिए कुमारीका लेना मना कर दिया सो ठीक ही है क्योकि दुर्जन किसी कारणके विना ही क्रोध करते है फिर उपदेश मिलनेपर तो कहना ही क्या है? ॥२१॥ भाईके कुमरण और कुमारीके नही मिलनेसे धनदत्त बहुत दु.खी हुआ जिससे वह घरसे निकलकर आकुल होता हुआ अनेक देशोमे भ्रमण करता रहा ॥२२॥ इधर जिसे दूसरा वर इष्ट नही था ऐसी गुणवती धनदत्तकी प्राप्त नही होनेसे बहुत दुःखी हुई। वह अपने घरमें अन्न देनेके कार्यमें नियुक्त की गयी अर्थात् घरमे सबके लिए भोजन परोसनेका काम उसे सौंपा गया ॥२३॥ वह अपने मिथ्यादृष्टि स्वभावके कारण निर्ग्रन्थ मुनिको देखकर उनसे सदा द्वेष करती थी, उनके प्रति ईर्ष्या रखती थी, उन्हें गाली देती थी तथा उनका तिरस्कार भी करती थी ॥२४॥ कर्मबन्धके अनुरूप जिसकी आत्मा सदा मिथ्यादर्शनमे आसक्त रहती थी ऐसी वह अतिदुष्टा जिनशासनका बिलकुल ही श्रद्धान नही करती थी ॥२५॥

तदनन्तर आयु समाप्त होनेपर आर्त्तध्यानसे मरकर वह उसी अटवीमें मृगी हुई जिसमे कि वे श्रीकान्त और वसुदत्तके जीव हुए थे ॥२६॥ पूर्व संस्कारके दोषसे उसी मृगीके लिए

१. श्रीकान्तायोद्यतो दातु भ्रान्ता ता क्षुद्रमानस. म. । २. नियुक्तान्तप्रदा -म. ।

द्विरदौ महिषौ गावौ प्लवगौ द्वीपिनौ वृकौ । रुरू च तौ समुत्पन्नावन्योन्यं च हतस्तथा ॥२८॥
जले स्थले च भूयोऽपि वैरानुसरणोद्यतौ । अम्यतः पापकर्माणौ म्रियमाणौ तथाविधम् ॥२९॥
परमं दुःखितः सोऽपि धनदत्तोऽध्वखेदितः । अन्यदास्तंगते भानौ श्रमणाश्रममागमत् ॥३०॥
तत्र साधूनभाषिष्ट तृषितोऽप्युदकं मम । प्रयच्छत सुखिन्नस्य यूयं हि सुकृतप्रियाः ॥३१॥
तत्रैकश्रमणोऽवोचन् मधुरं परिसान्त्वयन् । रात्रावप्यमृतं युक्तं न पातुं किं पुनर्जलम् ॥३२॥
चक्षुर्व्यापारनिर्मुक्ते काले पापैकदारुणे । अदृष्टसूक्ष्मजन्त्वाढ्ये माशीर्वत्स [1]विभास्करे ॥३३॥
आतुरेणापि भोक्तव्यं विकाले भद्र न त्वया । मापप्तो व्यसनोदारसलिले भवसागरे ॥३४॥
उपशान्तस्ततः पुण्यकथाभिः सोऽल्पशक्तिकः । अणुव्रतधरो जातो दयालिङ्गितमानसः ॥३५॥
कालधर्मं च संप्राप्य सौधर्मे सत्सुरोऽभवत् । मौलिकुण्डलकेयूरहारमुद्राङ्[2]दोज्ज्वलः ॥३६॥
पूर्वपुण्योदयात्तत्र सुरस्त्रीसुखलालितः । महाप्सरःपरिवारो मोदते वज्रपाणिवत् ॥३७॥
ततश्च्युतः समुत्पन्नः पुरश्रेष्ठमहापुरे । धारिण्यां श्रेष्ठिनो मेरोर्जैनात् पद्मरुचिः सुतः ॥३८॥
तत्रैव च पुरे नाम्ना छत्रच्छायो नरेश्वरः । महिषीगुणमञ्जूषा श्रीदत्ता तस्य भामिनी ॥३९॥
आगच्छन्नन्यदा गोष्ठं गत्वा तुरगपृष्ठतः । अपश्यद् भुवि पर्यस्तं मैरवो[3] जीर्णकं वृषम् ॥४०॥

दोनों फिर लड़े और परस्पर एक दूसरेको मारकर शूकर अवस्थाको प्राप्त हुए ॥२७॥ तदनन्तर वे दोनो हाथी, भैंसा, बैल, वानर, चीता, भेडिया और कृष्ण मृग हुए तथा सभी पर्यायोमे एक दूसरेको मारकर मरे ॥२८॥ पाप कार्यमे तत्पर रहनेवाले वे दोनो जलमे, स्थलमे जहाँ भी उत्पन्न होते थे वहीं वैरका अनुसरण करनेमे तत्पर रहते थे और उसी प्रकार परस्पर एक दूसरेको मारकर मरते थे ॥२९॥

अथानन्तर मार्गके खेदसे थका अत्यन्त दुःखी धनदत्त, एक दिन सूर्यास्त हो जानेपर मुनियोके आश्रममे पहुँचा ॥३०॥ वह प्यासा था इसलिए उसने मुनियोसे कहा कि मै बहुत दुःखी हो रहा हूँ अतः मुझे पानी दीजिए आप लोग पुण्य करना अच्छा समझते है ॥३१॥ उनमे-से एक मुनिने सान्त्वना देते हुए मधुर शब्द कहे कि रात्रिमे अमृत पीना भी उचित नही है फिर पानीकी तो बात ही क्या है ? ॥३२॥ हे वत्स ! जब नेत्र अपना व्यापार छोड़ देते है, जो पापकी प्रवृत्ति होनेसे अत्यन्त दारुण है, जो नही दिखनेवाले सूक्ष्म जन्तुओसे सहित है, तथा जब सूर्यका अभाव हो जाता है ऐसे समय भोजन मत कर ॥३३॥ हे भद्र ! तुझे दुःखी होनेपर भी असमयमे नही खाना चाहिए । तू दुःखरूपी गम्भीर पानीसे भरे हुए संसार-सागरमे मत पड़ ॥३४॥ तदनन्तर मुनिराजकी पुण्य कथासे वह शान्त हो गया, उसका चित्त दयासे आलिंगित हो उठा और इनके फलस्वरूप वह अणुव्रतका धारी हो गया। यतश्च वह अल्पशक्तिका धारक था इसलिए महाव्रती नही बन सका ॥३५॥ तदनन्तर आयुका अन्त आनेपर मरणको प्राप्त हो वह सौधर्म स्वर्गमे मुकुट, कुण्डल, बाजूबन्द, हार, मुद्रा और अनन्तसे सुशोभित उत्तम देव हुआ ॥३६॥ वहाँ वह पूर्व-पुण्योदयके कारण देवांगनाओके सुखसे लालित था, अप्सराओके बड़े भारी परिवारसे सहित था तथा इन्द्रके समान आनन्दसे समय व्यतीत करता था ॥३७॥

तदनन्तर वहांसे च्युत होकर महापुर नामक श्रेष्ठ नगरमे जैनधर्मके श्रद्धालु मेरु नामक सेठकी धारिणी नामक स्त्रीसे पद्मरुचि नामका पुत्र हुआ ॥३८॥ उसी नगरमे एक छत्रच्छाय नामका राजा रहता था। उसकी श्रीदत्ता नामकी स्त्री थी जो कि रानीके गुणोकी मानो पिटारी ही थी ॥३९॥ किसी एक दिन पद्मरुचि घोड़ेपर चढा अपने गोकुलकी ओर आ रहा था, सो मार्गमे

---

१. विभावरे म. । २. तुद्यङ्गदो -ख., ज., क. । ३ मेरुपुत्र.=पद्मरुचिः ।

सुगन्धिवस्त्रमाल्योऽसाववतीर्य तुरङ्गतः । आदरेण तमुक्षाणं दयावानातुरं गतः ॥४१॥
दीयमाने जपे तेन कर्णे पञ्चनमस्कृते । शृण्वन्नुक्षशरीरी स शरीरान्निर्गतस्ततः ॥४२॥
श्रीदत्तायां च संजज्ञे तनुदुःकर्मजालकः । छत्रच्छायोऽभवत्तोषी दुर्लभे पुत्रजन्मनि ॥४३॥
उदारा नगरे शोभा जनिता द्रव्यसंपदा । समुत्सवो महान् जातो वादित्रबधिरीकृतः ॥४४॥
ततः कर्मानुभावेन पूर्वजन्म समस्मरत् । गोदुःखं दारुणं तच्च वाहशीतातपादिजम् ॥४५॥
श्रुतिं पाञ्चनमस्कारीं चेतसा च सदा वहन् । बालक्रीडाप्रसक्तोऽपि महासुभगविभ्रमः ॥४६॥
कदाचिद् विहरन् प्राप्तः स तां वृषमृतक्षितिम् । पर्यज्ञासीत् प्रदेशांश्च पूर्वमाचरितान् स्वयम् ॥४७॥
वृषभध्वजनामासौ कुमारो वृषभूमिकाम् । अवतीर्य गजात् स्वैरमपश्यद् दुःखितात्मकः ॥४८॥
बुधं समाधिरत्नस्य दातारं श्लाघ्यचेष्टितम् । अपश्यन् दर्शने तस्य दध्यौ चोपायिकं ततः ॥४९॥
अथ कैलासशृङ्गाभं कारयित्वा जिनालयम् । चरितानि पुराणानि पट्टकादिष्वलेखयत् ॥५०॥
द्वारदेशे च तस्यैव पटं स्वभवचित्रितम् । पुरुषैः पालने न्यस्तैरधिष्ठितमतिष्ठिपत् ॥५१॥
वन्दारुश्चैत्यभवनं तत् पद्मरुचिरागमत् । अपश्यच्च प्रहृष्टात्मा तच्चित्रं विस्मितस्ततः ॥५२॥

उसने पृथिवीपर पड़ा एक बूढ़ा बैल देखा ॥४०॥ सुगन्धित वस्त्र तथा माला आदिको धारण करनेवाला पद्मरुचि घोड़ेसे उतरकर दयालु होता आदरपूर्वक उस बैलके पास गया ॥४१॥ पद्मरुचिने उसके कानमें पंचनमस्कार मन्त्रका जाप सुनाया। सो जब पद्मरुचि उसके कानमें पंच-नमस्कार मन्त्रका जप दे रहा था तभी उस मन्त्रको सुनती हुई बैलकी आत्मा उस शरीरसे बाहर निकल गयी अर्थात् नमस्कार मन्त्र सुनते-सुनते उसके प्राण निकल गये ॥४२॥ मन्त्रके प्रभावसे जिसके कर्मोंका जाल कुछ कम हो गया था ऐसा वह बैल, उसी नगरके राजा छत्रच्छायकी श्रीदत्ता नामकी रानीके पुत्र हुआ। यतश्च छत्रच्छायके पुत्र नहीं था इसलिए वह उसके उत्पन्न होनेपर बहुत सन्तुष्ट हुआ ॥४३॥ नगरमें बहुत भारी सम्पदा खर्च कर अत्यधिक शोभा की गयी तथा बाजोंसे जो बहरा हो रहा था ऐसा महान् उत्सव किया गया ॥४४॥

तदनन्तर कर्मोंके संस्कारसे उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो गया। बैलपर्यायमें बोझा ढोना, शीत तथा आतप आदिसे उत्पन्न दारुण दुःख उसने भोगे थे तथा जो उसे पञ्चनमस्कार मन्त्र श्रवण करनेका अवसर मिला था वह सब उसकी स्मृतिपटलमें झूलने लगा। महासुन्दर चेष्टाओंको धारण करता हुआ वह, जब बालकालीन क्रीड़ाओंमें आसक्त रहता था तब भी मनमें पंचनमस्कार मन्त्रके श्रवणका सदा ध्यान रखता था ॥४५-४६॥ किसी एक दिन वह विहार करता हुआ उस स्थानपर पहुँचा जहाँ उस बैलका मरण हुआ था। उसने एक-एक कर अपने घूमनेके सब स्थानोंको पहचान लिया ॥४७॥

तदनन्तर वृषभध्वज नामको धारण करनेवाला वह राजकुमार हाथीसे उतरकर दुःखित चित्त होता हुआ इच्छानुसार बहुत देर तक बैलके मरनेकी उस भूमिको देखता रहा ॥४८॥ समाधिमरणरूपी रत्नके दाता तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित उस बुद्धिमान् पद्मरुचिको जब वह नहीं देख सका तब उसने उसके देखनेके लिए योग्य उपायका विचार किया ॥४९॥ अथानन्तर उसने उसी स्थान पर कैलासके शिखरके समान एक जिनमन्दिर बनवाया, उसमें चित्रपट आदि पर महापुरुषोंके चरित तथा पुराण लिखवाये ॥५०॥ उसी मन्दिरके द्वारपर उसने अपने पूर्वभवके चित्रसे चित्रित एक चित्रपट लगवा दिया तथा उसकी परीक्षा करनेके लिए चतुर मनुष्य उसके समीप खड़े कर दिये ॥५१॥

तदनन्तर वन्दनाकी इच्छा करता हुआ पद्मरुचि एक दिन उस मन्दिरमें आया और

---

१. निर्गत.।

तन्निबद्धेक्षणो यावदसौ तच्चित्रमीक्षते । वृषध्वजस्य पुरुषैस्तावत् संवादितं श्रुतम् ॥५३॥
ततो महर्द्धिसंपन्नः समारुह्य द्विपोत्तमम् । इष्टसंगमनाकाङ्क्षी राजपुत्रः समागमत् ॥५४॥
अवतीर्य च नागेन्द्रादविक्षज्जिनमन्दिरम् । पश्यन्तं च तदासक्तं धारणेयं निरैक्षत ॥५५॥
नेत्रास्यहस्तसंचारसूचितोत्तुङ्गविस्मयम् । अनंसीत् पादयोरेनं परिज्ञाय वृषध्वजः ॥५६॥
गोदुःखमरणं तस्मै धारिणीसूनुरब्रवीत् । राजपुत्रोऽगदीत् सोऽहमिति विस्तारिलोचनः ॥५७॥
संभ्रमेण च संपूज्य गुरुं शिष्यवरो यथा । तुष्टः [1]पद्मरुचिं राजतनयः समुदाहरत् ॥५८॥
मृत्युव्यसनसंबद्धे काले तस्मिन् भवान् मम । प्रियबन्धुरिव प्राप्तः समाधेः प्रापकोऽभवत् ॥५९॥
समाध्यमृतपाथेयं त्वया दत्तं दयालुना । स पश्य तृप्तिसंपन्नः सम्प्राप्तोऽहमिमं भवम् ॥६०॥
नैव तत् कुरुते माता न पिता न सहोदरः । न बान्धवा न गीर्वाणाः प्रिय यन्मे त्वया कृतम् ॥६१॥
नेक्षे पञ्चनमस्कारश्रुतिदानविनिष्क्रयम् । तथापि मे परा भक्तिः त्वयि कारयतीरितम् ॥६२॥
आज्ञां प्रयच्छ मे नाथ ब्रूहि किं करवाणि ते । आज्ञादानेन मां भक्तं भजस्व पुरुषोत्तम ॥६३॥
गृहाण सकलं राज्यमहं ते दासरूपकः । नियुज्यतामयं देहः कर्मण्यभिसमीहिते ॥६४॥
एवमादिसुसंलापं तयोः प्रेमाभवत् परम् । सम्यक्त्वं चैव राज्यं च संप्रयोगश्च संततः ॥६५॥
[2]अस्थिमज्जानुरक्तौ तौ [3]सागारव्रतसंगतौ । जिनबिम्बानि चैत्यानि भुव्यतिष्ठिपतां स्थिरौ ॥६६॥

हर्षित चित्त होता हुआ उस चित्रको देखने लगा। तदनन्तर आश्चर्य चकित हो उसी चित्रपर नेत्र खड़ा कर ज्यो ही वह उसे देखता है कि वृषभध्वज राजकुमारके सेवकोने उसे उसका समाचार सुना दिया ॥५२–५३॥ तदनन्तर विशाल सम्पदासे सहित राजपुत्र, इष्टके समागमकी इच्छा करता हुआ उत्तम हाथीपर सवार हो वहाँ आया ॥५४॥ हाथीसे उतरकर उसने जिनमन्दिरमे प्रवेश किया और वहाँ बडी तल्लीनताके साथ उस चित्रपटको देखते हुए धारिणीसुत—पद्मरुचिको देखा ॥५५॥ जिसके नेत्र, मुख तथा हाथोके संचारसे अत्यधिक आश्चर्य सूचित हो रहा था ऐसे उस पद्मरुचिको पहचानकर वृषभध्वजने उसके चरणोमे नमस्कार किया ॥५६॥ पद्मरुचिने उसके लिए बैलके दुःखपूर्ण मरणका समाचार कहा जिसे सुनकर उत्फुल्ल लोचनोको धारण करनेवाला राजपुत्र बोला कि वह बैल मैं ही हूँ ॥५७॥ जिस प्रकार उत्तम शिष्य गुरुकी पूजाकर सन्तुष्ट होता है उसी प्रकार वृषभध्वज राजकुमार भी शीघ्रतासे पद्मरुचिकी पूजा कर सन्तुष्ट हुआ। पूजाके बाद राजपुत्रने पद्मरुचिसे कहा कि मृत्युके संकटसे परिपूर्ण उस कालमे आप मेरे प्रियबन्धुके समान समाधि प्राप्त करानेके लिए आये थे ॥५८–५९॥ उस समय तुमने दयालु होकर जो समाधिरूपी अमृतका सम्बल मेरे लिए दिया था देखो, उसीसे तृप्त होकर मै इस भवको प्राप्त हुआ हूँ ॥६०॥ तुमने जो मेरा भला किया है वह न माता करती है, न पिता करता है, न सगा भाई करता है, न परिवारके अन्य लोग करते है और न देव ही करते है ॥६१॥ तुमने जो मुझे पंचनमस्कार मन्त्र श्रवणका दान दिया था उसका मूल्य यद्यपि मै नही देखता तथापि आपमे जो मेरी परम भक्ति है वही यह चेष्टा करा रही है ॥६२॥ हे नाथ! मुझे आज्ञा दो मै आपका क्या करूँ? हे पुरुषोत्तम! आज्ञा देकर मुझ भक्तको अनुगृहीत करो ॥६३॥ तुम यह समस्त राज्य ले लो, मै तुम्हारा दास रहूँगा। अभिलषित कार्यमे इस शरीरको नियुक्त कीजिए ॥६४॥ इत्यादि उत्तम शब्दोंके साथ-साथ उन दोनोमे परम प्रेम हो गया, दोनोको ही सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई, वह राज्य दोनोंका सम्मिलित राज्य हुआ और दोनोका सयोग चिरसंयोग हो गया ॥६५॥ जिनका अनुराग ऊपर ही ऊपर न रहकर हड्डी तथा मज्जा तक पहुँच गया था ऐसे वे दोनो श्रावकके व्रतसे सहित हुए। स्थिर चित्तके धारण करनेवाले उन दोनोने पृथिवी-

१ धारिण्याः पुत्र पद्मरुचिम् । २ अस्थिमज्जतुरक्तौ म । ३. सागरव्रत भ. ।

स्तूपैश्च धवलाम्भोजमुकुलप्रतिमामितैः । समपादयतां क्षोणीं शतशः कृतभूषणाम् ॥६७॥
ततः समाधिमाराध्य मरणे वृषभध्वजः । त्रिदशोऽभवदीशाने पुण्यकर्मफलानुभूः ॥६८॥
सुरस्त्रीनयनाम्भोजविकासिनयनद्युतिः । तथाक्रीडत् परिध्यातसंपन्नसकलेप्सितः ॥६९॥
काले पद्मरुचिः प्राप्य समाधिमरणं तथा । ईशान एव गीर्वाणः कान्तो वैमानिकोऽभवत् ॥७०॥
च्युत्वापरविदेहे तु विजयाचलमस्तके । नन्द्यावर्तपुरेशस्य राज्ञो नन्दीश्वरश्रुतेः ॥७१॥
उत्पन्नः कनकाभायां नयनानन्दसंज्ञकः । खेचरेन्द्रश्रियं तत्र बुभुजे परमायताम् ॥७२॥
तत. श्रामण्यमास्थाय कृत्वा सुविकटं तपः । कालधर्मं समासाद्य माहेन्द्रं कल्पमाश्रयत् ॥७३॥
मनोज्ञपञ्चविषयद्वारं परमसुन्दरम् । परिप्राप सुखं तत्र पुण्यवल्लीमहाफलम् ॥७४॥
च्युतस्ततो गिरेर्मेरोर्भागे पूर्वदिशि स्थिते । क्षेमायां पुरि संजातः श्रीचन्द्र इति विश्रुतः ॥७५॥
माता पद्मावती तस्य पिता विपुलवाहन. । तत्र स्वर्गोपभुक्तस्य निष्यन्दं कर्मणोऽभजत् ॥७६॥
तस्य पुण्यानुभावेन कोशो विषयसाधनम् । दिने दिने[1] परां वृद्धिमसेवत समन्तत. ॥७७॥
ग्रामस्थानीयसंपन्नां पृथिवीं विविधाकराम् । प्रियामिव महाप्रीत्या श्रीचन्द्रः समपालयत् ॥७८॥
हावभावमनोज्ञाभिर्नारीभिस्तत्र लालितः । पर्यरंसीत् सुरस्त्रीभिः सुरेन्द्र इव संगतः ॥७९॥
संवत्सरसहस्राणि सुभूरीणि क्षणोपमम् । तस्य दोदुन्दुकस्येव महैश्वर्ययुजोऽगमन् ॥८०॥
गुप्तिव्रतसमित्युद्धः सघेन महतावृतः । समाधिगुप्तयोगीन्द्र. पुरं तदन्यदागमत् ॥८१॥

पर अनेक जिनमन्दिर और जिनबिम्ब बनवाये ॥६६॥ सफेद कमलकी बोड़ियोके समान स्तूपोंसे सैकड़ो वार पृथिवीको अलंकृत किया ॥६७॥

तदनन्तर मरणके समय समाधिकी आराधना कर वृषभध्वज ईशान स्वर्गमे पुण्य कर्मका फल भोगनेवाला देव हुआ ॥६८॥ उस देवके नयनोकी कान्ति देवांगनाओके नयनकमलोंको विकसित करनेवाली थी, तथा क्रीड़ा करते समय ध्यान करते ही उसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते थे ॥६९॥ इधर पद्मरुचि भी आयुके अन्तमे समधिमरण प्राप्त कर ईशान स्वर्गमे ही सुन्दर वैमानिक देव हुआ ॥७०॥ तदनन्तर पद्मरुचिका जीव वहांसे चयकर पश्चिम विदेह क्षेत्रके विजयार्ध पर्वतपर नन्द्यावर्त नगरके राजा नन्दीश्वरकी कनकाभा रानीसे नयनानन्द नामका पुत्र हुआ। वहाँ उसने चिरकाल तक विद्याधर राजाकी विशाल लक्ष्मीका उपभोग किया ॥७१–७२॥ तदनन्तर मुनि-दीक्षा ले अत्यन्त विकट तप किया और अन्तमे समाधिमरण प्राप्त कर माहेन्द्र स्वर्ग प्राप्त किया ॥७३॥ वहाँ उसने पुण्यरूपी लताके महाफलके समान पंचेन्द्रियोंके विषय द्वारसे अत्यन्त सुन्दर मनोहर सुख प्राप्त किया ॥७४॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर मेरु पर्वतके पश्चिम दिग्भागमे स्थित क्षेमपुरी नगरीमे श्रीचन्द्र नामका प्रसिद्ध राजपुत्र हुआ ॥७५॥ वहाँ उसकी माताका नाम पद्मावती और पिताका नाम विपुलवाहन था। वह वहाँ स्वर्गमे भोगे हुए कर्मका जो नि.स्यन्द शेष रहा था, उसीका मानो उपभोग करता था ॥७६॥ उसके पुण्य प्रभावसे उसका खजाना, देश तथा सैन्य बल सब ओरसे प्रतिदिन परम वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥७७॥ वह श्रीचन्द्र, एक ग्रामके स्थानापन्न, नानाखानोसे सहित विशाल पृथिवीका प्रियाके समान महाप्रीतिसे पालन करता था ॥७८॥ वहाँ वह हाव-भावसे मनोज्ञ स्त्रियोके द्वारा लालित होता हुआ देवांगनाओसे सहित देवेन्द्रके समान क्रीड़ा करता था ॥७९॥ दोन्दुक देवके समान महान् ऐश्वर्यको प्राप्त हुए उस श्रीचन्द्रके कई हजार वर्ष एक क्षणके समान व्यतीत हो गये ॥८०॥

अथानन्तर किसी समय व्रत, समिति और गुप्तिसे श्रेष्ठ एवं बहुत भारी संघसे आवृत

---

[1] दिनं म. ।

उद्यानेऽवस्थितस्यास्य तत्र ज्ञात्वा जनोऽखिलः । वन्दनामगमत् कर्तुं सम्मदालापतत्परः ॥८२॥
स्तुवतोऽस्य परं भक्त्या नादं घनकुलोपमम् । कर्णमादाय संश्रुत्य श्रीचन्द्रोऽपृच्छदन्तिकान् ॥८३॥
कस्यैष श्रूयते नादो महासागरसंमितः । अजानद्भिः समादिष्टैस्तैरमात्यः कृतोऽन्तिकः ॥८४॥
ज्ञायतां कस्य नादोऽयमिति राज्ञा स भाषितः । गत्वा ज्ञात्वा परावृत्य मुनिं प्राप्तमवेदयत् ॥८५॥
ततो विकचराजीव राजमाननिरीक्षणः । सस्त्रीक संमदोद्भूतपुलकः प्रस्थितो नृपः ॥८६॥
प्रसन्नमुखनारेशं निरीक्ष्य मुनिपुङ्गवम् । सभ्रमी शिरसा नत्वा न्वसीदद्विनयाद्भुवि ॥८७॥
भव्याम्भोजप्रधानस्य मुनिभास्करदर्शने । तस्यासीदात्मसंवेद्य कोऽपि प्रेममहाभरः ॥८८॥
ततः परमगम्भीरः सर्वश्रुतिविशारदः । अदाज्जनमहौघाय मुनिस्तत्त्वोपदेशनम् ॥८९॥
अनगारं सहागारं धर्मं[3] द्विविधमब्रवीत् । अनेकभेदसंयुक्त संसारोत्तारणावहम् ॥९०॥
करणं चरणं द्रव्यं प्रथमं च सभेदकम् । अनुयोगमुखं[4] योगी जगाद वदतां वरः ॥९१॥
आक्षेपणीं पराक्षेपकारिणीमकरोत् कथाम् । ततो निक्षेपणी तत्त्वमतनिक्षेपकोविदाम् ॥९२॥
संवेजनीं च संसारभयप्रचयबोधनीम् । निर्वेदनीं तथा पुण्यां भोगवैराग्यकारिणीम् ॥९३॥
संधावतोऽस्य संसारे कर्मयोगेन देहिनः । कृच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ॥९४॥

समाधिगुप्त नामक मुनिराज उस नगरमे आये ॥८१॥ 'मुनिराज आकर उद्यानमे ठहरे हैं।' यह जानकर मुनिकी वन्दना करनेके लिए नगरके सब लोग हर्षपूर्वक बात-चीत करते हुए उद्यानमे गये ॥८२॥ भक्तिपूर्वक स्तुति करनेवाले जनसमूहका मेघमण्डलके समान जो भारी शब्द हो रहा था उसे कान लगाकर श्रीचन्द्रने सुना और निकटवर्ती लोगोसे पूछा कि यह महासागरके समान किसका शब्द सुनाई दे रहा है ? जिन लोगोसे राजाने पूछा था वे उस शब्दका कारण नही जानते थे इसलिए उन्होने मन्त्रीको राजाके निकट कर दिया ॥८३–८४॥ तब राजाने मन्त्रीसे कहा कि मालूम करो यह किसका शब्द है ? इसके उत्तरमे मन्त्रीने जाकर तथा सब समाचार जानकर वापस आ निवेदन किया कि उद्यानमे मुनिराज आये हैं ॥८५॥

तदनन्तर जिसके नेत्र खिले हुए कमलके समान सुशोभित हो रहे थे तथा जिसके हर्षके रोमांच उठ आये थे ऐसा राजा श्रीचन्द्र अपनी स्त्रीके साथ मुनिवन्दनाके लिए चला ॥८६॥ वहाँ प्रसन्न मुखचन्द्रके धारक मुनिराजके दर्शन कर राजाने शीघ्रतासे शिर झुकाकर उन्हे नमस्कार किया और उसके बाद वह विनयपूर्वक पृथिवीपर बैठ गया ॥८७॥ भव्यरूपी कमलोमे प्रधान राजा श्रीचन्द्रको मुनिरूपी सूर्यके दर्शन होनेपर अपने आप अनुभवमे आने योग्य कोई अद्भुत महाप्रेम उत्पन्न हुआ ॥८८॥ तत्पश्चात् परमगम्भीर और सर्वशास्त्रोके विशारद मुनिराजने उस अपार जनसमूहके लिए तत्त्वोका उपदेश दिया ॥८९॥ उन्होने कहा कि अवान्तर अनेक भेदोसे सहित तथा संसार सागरसे तारनेवाला धर्म, अनगार और सागारके भेदसे दो प्रकारका है ॥९०॥ वक्ताओमे श्रेष्ठ मुनिराजने अनुयोग द्वारसे वर्णन करते हुए कहा कि अनुयोगके १ प्रथमानुयोग २ करणानुयोग ३ चरणानुयोग और ४ द्रव्यानुयोगके भेदसे चार भेद हैं ॥९१॥ तदनन्तर उन्होने अन्य मत-मतान्तरोकी आलोचना करनेवाली आक्षेपणी कथा की । फिर स्वकीय तत्त्वका निरूपण करनेमे निपुण निक्षेपणी कथा की । तदनन्तर संसारसे भय उत्पन्न करनेवाली सवेजनी कथा की और उसके बाद भोगोसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाली पुण्यवर्धक निर्वेदनी कथा की ॥९२–९३॥ उन्होने कहा कि कर्मयोगसे संसारमे दौड़ लगानेवाले इस प्राणीको मोक्षमार्गकी प्राप्ति बड़े कष्टसे

---

१. समद तोपतत्परः म. । २ तैरमा कृत्यतोऽन्तिक. ब , -रमात्यकृतोऽन्तिक. ख , ज । ३. विविध -म ।
४. मुख्य म. ।

संध्याबुद्बुदफेनोर्मिविद्युदिन्द्रधनुःसमः । भङ्गुरत्वेन लोकोऽयं न किंचिदिह सारकम् ॥९५॥
नरके दुःखमेकान्तादेति तिर्यक्षु वासुमान् । मनुष्यत्रिदशानां च सुखैर्नैवैष तृप्यति ॥९६॥
माहेन्द्रभोगसंपद्भिर्यो न तृप्तिमुपागतः । स कथं क्षुद्रकैस्तृप्तिं व्रजेन्मनुजभोगकैः ॥९७॥
कथंचिद् दुर्लभं लब्ध्वा निधानमधनो यथा । नरत्वं मुह्यति व्यर्थं विषयास्वादलोभनः ॥९८॥
कार्ग्नेः शुष्कैरिन्धनैस्तृप्तिः कास्बुधेरापगाजलैः । विषयास्वादसौख्यैः का तृप्तिरस्य शरीरिणः ॥९९॥
मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहितः । दक्षोऽपि मन्दतामेति तमोऽन्धीकृतमानसः ॥१००॥
दिवा तपति तिग्मांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् । समस्ति वारणं भानोर्मदनस्य न विद्यते ॥१०१॥
जन्ममृत्युजरादुःखं संसारे स्मृतिभीतिदम् । अरहट्टघटीयन्त्रसततं कर्मसंभवम् ॥१०२॥
अजङ्गमं यथान्येन यन्त्रं कृतपरिभ्रमम् । शरीरमध्रुवं पूति तथा स्नेहोऽत्र मोहतः[1] ॥१०३॥
जलबुद्बुदनिःसारं ज्ञात्वा मनुजसंभवम् । निर्विण्णाः कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ॥१०४॥
उत्साहकवचच्छन्ना निश्चयाश्वस्थसादिनः । ध्यानखड्गधरा धीराः प्रस्थिताः सुगतिं प्रति ॥१०५॥
अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति संचिन्त्य निश्चिताः । तथा शरीरके स्नेहं धर्मं कुरुत मानवाः ॥१०६॥
सुखदुःखादयस्तुल्याः स्वजनेतरयोः समाः । रागद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः ॥१०७॥
तैरियं परमोदारा धवलध्यानतेजसा । कृत्स्ना कर्माटवी दग्धा दुःखश्वापदसंकुला ॥१०८॥

होती है ॥९४॥ यह संसार विनाशी होनेके कारण सन्ध्या, बबूले, फेन, तरंग, बिजली और इन्द्र धनुषके समान है। इसमे कुछ भी सार नही है ॥९५॥ यह प्राणी नरक अथवा तिर्यंचगतिमे एकान्त रूपसे दुःख ही प्राप्त करता है और मनुष्य तथा देवोंके सुखमें यह तृप्त नही होता है ॥९६॥ जो इन्द्र सम्बन्धी भोग-सम्पदाओंसे तृप्त नही हुआ वह मनुष्योके क्षुद्र भोगोंसे कैसे तृप्त हो सकता है? ॥९७॥ जिस प्रकार निर्धन मनुष्य किसी तरह दुर्लभ खजाना पाकर यदि प्रमाद करता है तो उसका वह खजाना व्यर्थ चला जाता है। इसी प्रकार यह प्राणी किसी तरह दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर विषय स्वादके लोभमे पड़ यदि प्रमाद करता है तो उसकी मनुष्य-पर्याय व्यर्थ चली जाती है ॥९८॥ सूखे ईन्धनसे अग्निकी तृप्ति क्या है? नदियोंके जलसे समुद्रकी तृप्ति क्या है? और विषयोंके आस्वाद-सम्बन्धी सुखसे संसारी प्राणीको तृप्ति क्या है? ॥९९॥ जलमे डूबते हुए खिन्न मनुष्यके समान विषयरूपी आमिषसे मोहित हुआ चतुर मनुष्य भी मोहान्धीकृत चित्त होकर मन्दताको प्राप्त हो जाता है ॥१००॥ सूर्य तो दिनमे ही तपता है पर काम रात दिन तपता रहता है। सूर्यका आवरण तो है पर कामका आवरण नही है ॥१०१॥ संसारमे अरहटकी घटीके समान निरन्तर कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला जो जन्म, जरा और मृत्यु सम्बन्धी दुःख है वह स्मरण आते ही भय देनेवाला है ॥१०२॥ जिस प्रकार अजंगम यन्त्र जंगम प्राणीके द्वारा घुमाया जाता है उसी प्रकार यह अनित्य तथा बीभत्स शरीर भी चेतन द्वारा घुमाया जाता है। इस शरीरमे जो स्नेह है वह मोहके कारण ही है ॥१०३॥ यह मनुष्य जन्म पानीके बबूलेके समान निःसार है ऐसा जानकर कुलीन मनुष्य विरक्त हो जिन-प्रतिपादित मार्गको प्राप्त होते हैं ॥१०४॥ जो उत्साहरूपी कवचसे आच्छादित है, निश्चयरूपी घोड़ेपर सवार हैं और ध्यानरूपी खड्गको धारण करनेवाले है ऐसे धीर-वीर मनुष्य सुगतिके प्रति प्रस्थान करते हैं ॥१०५॥ हे मानवो! शरीर पृथक् है और मैं पृथक् हूँ ऐसा विचारकर निश्चय करो तथा शरीरमे स्नेह छोडकर धर्म करो ॥१०६॥ जिन्हे सुख-दुःखादि समान है, जो स्वजन और परजनोमे समान है तथा राग-द्वेष आदिसे रहित हैं ऐसे मुनि ही पुरुषोत्तम हैं ॥१०७॥ उन्ही

१. अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम् । बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः।' ॥ बृहत्स्वयंभूस्तोत्रे समन्तभद्रस्य ।

निशम्येति मुनेरुक्तं श्रीचन्द्रो बोधिमाश्रितः । पराचीनत्वमागच्छन् विषयास्वादसौख्यतः ॥१०९॥
धृतिकान्ताय पुत्राय दत्त्वा राज्यं महामनाः । समाधिगुप्तनाथस्य पार्श्वे श्रामण्यमग्रहीत् ॥११०॥
सम्यग्भावनया युक्तस्त्रैयोगीं शुद्धिमादधत् । ससमित्यान्वितो गुप्त्या रागद्वेषपराङ्मुखः ॥१११॥
रत्नत्रयमहाभूषः क्षान्त्यादिगुणसंगतः । जिनशासनसंपूर्णः श्रमण. सुसमाहितः ॥११२॥
पञ्चोदारव्रताधारः सत्त्वानामनुपालकः । सप्तमीस्थाननिर्मुक्तो धृत्या परमयान्वितः ॥११३॥
सुविहारपरः सोढा परीषहगणान् मुनिः । षष्ठाष्टमार्द्धमासादिकृतसंशुद्धपारणः ॥११४॥
ध्यानस्वाध्याययुक्तात्मा निर्ममोऽतिजितेन्द्रियः । निर्निदानकृतिः शान्तः परः शासनवत्सलः ॥११५॥
प्रासुकाचारकुशलः संघानुग्रहतत्परः । बालाग्रकोटिमात्रेऽपि स्पृहामुक्तः परिग्रहे ॥११६॥
अस्नानमलसाध्वङ्गो[1] निराबन्धो निरम्बरः । एकरात्रस्थितिर्ग्रामे नगरे पञ्चरात्रभाक् ॥११७॥
कन्दरापुलिनोद्याने प्रशस्तावाससंगमः । व्युत्सृष्टाङ्गः स्थिरो मौनी विद्वान् सम्यक्तपोरतः ॥११८॥
एवमादिगुणः कृत्वा जर्जरं कर्मपञ्जरम् । श्रीचन्द्रः कालमासाद्य ब्रह्मलोकाधिपोऽभवत् ॥११९॥
निवासे परमे तत्र श्रीकीर्तिद्युतिकान्तिभाक् । चूडामणिकृतालोको भुवनत्रयविश्रुत. ॥१२०॥
ऋद्ध्या परमया क्रीडन्समनुध्यानजन्मना । अहमिन्द्रसुरो यद्वदासीद् भरतभूपति. ॥१२१॥
नन्दनादिषु देवेन्द्राः सौधर्माद्याः सुसंपदः । तिष्ठन्त्युदीक्षमाणास्त तद्धुत्कण्ठापरायणाः ॥१२२॥

मुनियोने अपने शुक्लध्यानरूपी नेत्रके द्वारा दुःखरूपी वन्य पशुओसे व्याप्त इस अत्यन्त विशाल समस्त कर्मरूपी अटवीको भस्म किया है ॥१०८॥ इस प्रकार मुनिराजका उपदेश सुनकर श्रीचन्द्र विषयास्वाद-सम्बन्धी सुखसे पराङ्मुख हो रत्नत्रयको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ फलस्वरूप उस उदारचेताने धृतिकान्त नामक पुत्रके लिए राज्य देकर समाधिगुप्त मुनिराजके समीप मुनिदीक्षा धारण कर ली ॥११०॥ अब वे श्रीचन्द्रमुनि समीचीन भावनासे सहित थे, त्रियोग सम्बन्धी शुद्धिको धारण करते थे, समितियो और गुप्तियोसे सहित थे तथा राग-द्वेषसे विमुख थे ॥१११॥ रत्नत्रयरूपी उत्तम अलंकारोसे युक्त थे, क्षमा आदि गुणोसे सहित थे, जिनशासनसे ओत-प्रोत थे, श्रमण थे और उत्तम समाधानसे युक्त थे ॥११२॥ पंच महाव्रतोके धारक थे, प्राणियोकी रक्षा करनेवाले थे, सात भयोसे निर्मुक्त थे तथा उत्तम धैर्यसे सहित थे ॥११३॥ ईर्यासमिति पूर्वक उत्तम विहार करनेमे तत्पर थे, परीषहोके समूहको सहन करनेवाले थे, मुनि थे, तथा वेला, तेला और पक्षोपवासादि करनेके बाद पारणा करते थे ॥११४॥ ध्यान और स्वाध्यायमे निरन्तर लीन रहते थे; ममता रहित थे, इन्द्रियोको तीव्रतासे जीतनेवाले थे, उनके कार्य निदान अर्थात् आगामी भोगाकांक्षासे रहित होते थे, वे परम शान्त थे और जिनशासनके परम स्नेही थे ॥११५॥ अहिंसक आचरण करनेमें कुशल थे, मुनिसंघपर अनुग्रह करनेमे तत्पर थे, और बालकी अनीमात्र परिग्रहमे भी इच्छासे रहित थे ॥११६॥ स्नानके अभावमे उनका शरीर मलसे सुशोभित था, वे आसक्तिसे रहित थे, दिगम्बर थे, गाँवमे एक रात्रि और नगरमे पांच रात्रि तक ही ठहरते थे ॥११७॥ पर्वतकी गुफाओं, नदियोके तट अथवा बाग-बगीचोंमे ही उनका उत्तम निवास होता था, उन्होने शरीरसे ममता छोड़ दी थी, वे स्थिर थे, मौनी थे, विद्वान् थे और सम्यक् तपमे तत्पर थे ॥११८॥ इत्यादि गुणोसे सहित श्रीचन्द्रमुनि कामरूपी पंजरको जर्जर—जीर्ण-शीर्ण कर तथा समाधिमरण प्राप्त कर ब्रह्मस्वर्गके इन्द्र हुए ॥११९॥

वहाँ वे उत्तम विमानमे श्री, कीर्त्ति, द्युति और कान्तिको प्राप्त थे, चूड़ामणिके द्वारा प्रकाश करनेवाले थे, तीनो लोकोमे प्रसिद्ध थे ॥१२०॥ यद्यपि ध्यान करते ही उत्पन्न होनेवाली परम ऋद्धिसे क्रीडा करते थे तथापि अहमिन्द्रदेवके समान अथवा भरत चक्रवर्तीके समान निर्लिप्त ही रहते थे ॥१२१॥ नन्दन वन आदि स्थानोमें उत्तम सम्पदाओसे युक्त सौधर्म आदि इन्द्र जब

१. साध्वङ्गे म. ।

मणिहेमात्मके कान्ते मुक्ताजालविराजिते । रमते स्म विमानेऽसौ दिव्यस्त्रीनयनोत्सवः ॥१२३॥
या [1]श्रीचन्द्रचरस्यास्य न वा वाचस्पतेरपि । संवत्सरशतेनापि शक्या वक्तुं विभीषण ॥१२४॥
अनर्घ्यं परमं रत्नं रहस्यमुपमोज्झितम् । त्रैलोक्यप्रकटं मूढा न विदुर्जिनशासनम् ॥१२५॥
मुनिधर्मजिनेन्द्राणां माहात्म्यमुपलभ्य सत् । मिथ्याभिमानसंमूढा धर्मं प्रति पराङ्मुखाः ॥१२६॥
इहलोकसुखस्यार्थं शिशुर्यः कुमते रतः । तदसौ कुरुते स्वस्य ध्यायन्नपि न यद्द्विषः ॥१२७॥
कर्मबन्धस्य चित्रत्वान्न सर्वो बोधिभाग्जनः । केचिल्लब्ध्वापि मुञ्चन्ति पुनरन्यव्यपेक्षया ॥१२८॥
बहुकुत्सितलोकेन गृहीते बहुदोषके । [2]मारध्वं निन्दिते धर्मे कुरुध्वं [3]चिरस्वबन्धुताम् ॥१२९॥
जिनशासनतोऽन्यत्र दुःखमुक्तिर्न विद्यते । तस्मादनन्यचेतस्का जिनमर्चयतानिशम् ॥१३०॥
त्रिदशत्वान्मनुष्यत्वं सुरत्वं मानुषत्वतः । एवं [4]मनोहरं प्राप्तो धनदत्तो निवेदितः ॥१३१॥
वक्ष्याम्यतः समासेन वसुदत्तादिसंसृतिम् । कर्मणां चित्रतायोगात् विचित्रत्वमनुबिभ्रतीम् ॥१३२॥
पुरं मृणालकुण्डाख्यो[5] प्रतापी यशसोज्ज्वलः । राजा विजयसेनाख्यो रत्नचूलास्य भामिनी ॥१३३॥
वज्रकम्बु सुतस्तस्य हेमवत्यस्य भामिनी । शम्भुनामा तयोः पुत्रः प्रख्यातो धरणीतले ॥१३४॥
पुरोधाः परमस्तस्य श्रीभूतिस्तत्त्वदर्शनः । तस्य पत्नीगुणैर्युक्ता पत्नी नाम्ना सरस्वती ॥१३५॥
आसीद्गुणवती यासौ तिर्यग्योनिषु सा चिरम् । भ्रान्त्वा कर्मानुभावेन सम्यग्धर्मविवर्जिता ॥१३६॥

उनकी ओर देखते थे तब उन जैसा वैभव प्राप्त करनेके लिए उत्कण्ठित हो जाते थे ॥१२२॥ देवांगनाओंके नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले वे अहमिन्द्र, मणि तथा सुवर्णसे निर्मित एवं मोतियोंकी जालीसे सुशोभित सुन्दर विमानमे रमण करते थे ॥१२३॥ श्रीसकलभूषण केवली कहते हैं कि हे विभीषण ! श्रीचन्द्रके जीव अहमिन्द्रकी जो विभूति थी उसे बृहस्पति भी सौ वर्षमें भी नही कह सकता ॥१२४॥ जिनशासन अमूल्य रत्न है, अनुपम रहस्य है तथा तीनो लोकोंमे प्रकट है परन्तु मोही जीव इसे नही जानते ॥१२५॥ मुनिधर्म तथा जिनेन्द्रदेवके उत्तम माहात्म्यको जानकर भी मिथ्या अभिमानमे चूर रहनेवाले मनुष्य धर्मसे विमुख रहते हैं ॥१२६॥ जो बालक अर्थात् अज्ञानी इस लोक सम्बन्धी सुखके लिए मिथ्यामतमें प्रीति करता है वह अपना ध्यान रखता हुआ भी उसका वह अहित करता है जिसे शत्रु भी नही करते ॥१२७॥ कर्मबन्धकी विचित्रता होनेसे सभी लोग रत्नत्रयके धारक नही हो जाते । कितने ही लोग उसे प्राप्त कर भी दूसरेके चक्रमे पड़कर पुनः छोड़ देते हैं ॥१२८॥ हे भव्यजनो ! अनेक खोटे मनुष्योंके द्वारा गृहीत एवं बहुत दोषोसे सहित निन्दित धर्ममे रमण मत करो । अपने चित् स्वरूपके साथ बन्धुताका काम करो ॥१२९॥ जिनशासनको छोड़कर अन्यत्र दुःखसे मुक्ति नही है इसलिए हे भव्यजनो ! अनन्यचित्त हो निरन्तर जिनभगवान्की अर्चा करो ॥१३०॥ इस प्रकार देवसे उत्तम मनुष्य पर्याय और मनुष्यसे उत्तम देवपर्यायको प्राप्त करनेवाले धनदत्तका वर्णन किया ॥१३१॥ अब संक्षेपसे कर्मोंकी विचित्रताके कारण विविधरूपताको धारण करनेवाले, वसुदत्तादिके भ्रमणका वर्णन करता हूँ ॥१३२॥

अथानन्तर मृणालकुण्डल नामक नगरमे प्रतापवान् तथा यशसे उज्ज्वल विजयसेन नामका राजा रहता था । रत्नचूला उसकी स्त्री थी ॥१३३॥ उन दोनोके वज्रकम्बु नामका पुत्र था और हेमवती उसकी स्त्री थी । उन दोनोके पृथिवीतलपर प्रसिद्ध शम्भु नामका पुत्र था ॥१३४॥ उसके श्रीभूति नामका परमतत्त्वदर्शी पुरोहित था और उसकी स्त्रीके योग्य गुणोसे सहित सरस्वती नामकी स्त्री थी ॥१३५॥ पहले जिस गुणवतीका उल्लेख कर आये हैं वह समीचीन धर्मसे रहित

---

१ श्रीचन्द्रचरस्यास्य म. । २ रागं मा कुरुत । मारध्वं म । ३. चेतस्वबन्धुना म, ख, ज. । ४. मनोहरप्राप्तो म. । ५. मृणालकुण्डाख्यो म. ।

मोहेन निन्दनै. स्त्रैणैर्निदानैरभिगूहनैः । स्त्रीत्वमुत्तमदुःखाक्तं भजमाना[1] पुनः पुनः ॥१३७॥
साधुष्ववर्णवादेन दुरवस्थाखलीकृता । परिप्राप्ता करेणुत्वमासीन्मन्दाकिनीतटे ॥१३८॥
सुमहापङ्कनिर्मग्ना परायत्तस्थिराङ्गिका । विमुक्तमन्दसूत्कारा मुकुलीकृतलोचना ॥१३९॥
मुमूर्षन्ती समालोक्य खेचरेण कृपावता । तरङ्गवेगनाम्नासौ कर्णेजपमुपाहृता ॥१४०॥
ततस्तनुकषायत्वात्तत्क्षेत्रगुणतोऽपि च । प्रत्याख्यानाच्च तद्दत्ताच्छ्रीभूतेः सा सुताभवत् ॥१४१॥
भिक्षार्थिनं मुनिं गेहं प्रविष्टमवलोक्य सा । उपहासात्ततः पित्रा शमिता श्राविकाभवत् ॥१४२॥
तस्याः परमरूपायाः सुकन्यायाः कृतेऽवनौ । उत्कण्ठिता महीपालाः शम्भुस्तेषु विशेषत. ॥१४३॥
मिथ्यादृष्टिः कुबेरेण समो भवति यद्यपि । तथापि नास्मै देयेय प्रतिज्ञेति पुरोधसः ॥१४४॥
ततः प्रकुपितेनासौ शम्भुना शयितो निशि । हिंसितः सुरतां प्राप्तो जिनधर्मप्रसादत ॥१४५॥
ततो वेदवतीमेनां प्रत्यक्षां देवतामिव । अनिच्छन्ती प्रभुत्वेन बलादुद्वोढुमुद्यत. ॥१४६॥
मनसा [2]कामतप्तेन तामालिङ्ग्योपचुम्ब्य च । विस्फुरन्तीं रतिं साक्षान्मैथुनेनोपचक्रमे ॥१४७॥
ततः प्रकुपितात्यन्तं चण्डा वह्निशिखेव सा । विरक्तहृदया बाला वेपमानशरीरिका ॥१४८॥
आत्मन. शीलनाशेन वधेन जनकस्य च । बिभ्राणा परमं दुःखं प्राह लोहितलोचना ॥१४९॥
व्यापाद्य पितरं पाप कामितास्मि बलेन यत् । [3]भवद्वधार्थमुत्पत्स्ये ततोऽहं पुरुषाधम ॥१५०॥

हो कर्मोके प्रभावसे तिर्यंच योनिमे चिरकाल तक भ्रमण करती रही ॥१३६॥ वह मोह, निन्दा, स्त्री सम्बन्धी निदान तथा अपवाद आदिके कारण बार-बार तीव्र दुःखसे युक्त स्त्रीपर्यायको प्राप्त करती रही ॥१३७॥ तदनन्तर साधुओका अवर्णवाद करनेके कारण वह दुखमयी अवस्थासे दुःखी होती हुई गगा नदीके तटपर हथिनी हुई ॥१३८॥ वहाँ वह बहुत भारी कीचड़मे फँस गयी जिससे उसका शरीर एकदम पराधीन होकर अचल हो गया। वह धीरे-धीरे सू-सू शब्द छोड़ने लगी तथा नेत्र बन्द कर मरणासन्न अवस्थाको प्राप्त हुई ॥१३९॥ तदनन्तर उसे मरती देख तरगवेग नामक दयालु विद्याधरने उसे कानमे नमस्कार मन्त्रका जाप सुनाया ॥१४०॥ उस मन्त्रके प्रभावसे उसकी कषाय मन्द पड़ गयी, उसने उसी स्थानका क्षेत्र संन्यास धारण किया तथा उक्त विद्याधरने उसे प्रत्याख्यान-सयम दिया। इन सब कारणोके मिलनेसे वह श्रीभूति नामक पुरोहितके वेदवती नामकी पुत्री हुई ॥१४१॥ एक बार भिक्षाके लिए घरमे प्रविष्ट मुनिको देखकर उसने उनकी हँसी की तब पिताने उसे समझाया जिससे वह श्राविका हो गयी ॥१४२॥ वेदवती परम सुन्दरी कन्या थी अतः उसे प्राप्त करनेके लिए पृथिवीतलके राजा अत्यन्त उत्कण्ठित थे और उनमे शम्भु विशेष रूपसे उत्कण्ठित था ॥१४३॥ पुरोहितकी यह प्रतिज्ञा थी कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि पुरुष सम्पत्तिमे कुबेरके समान हो तथापि उसके लिए यह कन्या नही दूँगा ॥१४४॥ इस प्रतिज्ञासे शम्भु बहुत कुपित हुआ और उसने रात्रिमे सोते हुए पुरोहितको मार डाला। पुरोहित मरकर जिनधर्मके प्रसादसे देव हुआ ॥१४५॥

तदनन्तर जो साक्षात् देवताके समान जान पड़ती थी ऐसी इस वेदवतीको उसकी इच्छा न रहनेपर भी शम्भु अपने अधिकारसे बलात् विवाहनेके लिए उद्यत हुआ ॥१४६॥ साक्षात् रतिके समान शोभायमान उस वेदवतीका शम्भुने कामके द्वारा सन्तप्त मनसे आलिंगन किया। चुम्बन किया और उसके साथ बलात् मैथुन किया ॥१४७॥ तदनन्तर जो अत्यन्त कुपित थी, अग्निशिखाके समान तीक्ष्ण थी, जिसका हृदय विरक्त था, शरीर काँप रहा था, जो अपने शीलके नाश और पिताके वधसे तीव्र दुःख धारण कर रही थी—तथा जिसके नेत्र लाल-लाल थे ऐसी उस वेदवतीने शम्भुसे कहा कि अरे पापी! 'नीच पुरुष! तूने पिताको मारकर बलात् मेरे साथ काम

---

१. भजमानाः म. । २. कामतृप्तेन म. । ३ -मुत्पत्स्ये म. ।

परलोकगतस्यापि पितुर्नाहं मनोरथम् । लुम्पामि तेन दुर्दृष्टिकामनान्मरणं वरम् ॥१५१॥
हरिकान्तार्यिकायाश्च पार्श्वं गत्वा ससंभ्रमम् । प्रव्रज्य साकरोद्बाला तपः परमदुष्करम् ॥१५२॥
लुञ्चनोत्थितसंरूक्षमूर्द्धजा मांसवर्जिता । प्रकटास्थिसिराजाला तपसा शुष्कदेहिका ॥१५३॥
कालधर्मं परिप्राप्य ब्रह्मलोकमुपागता । पुण्योदयसमानीतं सुरसौख्यमसेवत ॥१५४॥
तया विरहितः शम्भुर्लघुत्वं भुवने गतः । विबन्धुभृत्यलक्ष्मीको प्रापदुन्मत्ततां कुधीः ॥१५५॥
मिथ्याभिमानसंमूढो जिनवाक्यात्पराङ्मुखः । हसति श्रमणान् दृष्ट्वा दुरुक्ते च प्रवर्त्तते ॥१५६॥
मधुमांससुराहारः पापानुमननोद्यतः । तिर्यङ्नरकवासेषु सुदुःखेष्वभ्रमच्चिरम् ॥१५७॥
अथोपशमनात्किंचित्कर्मणः क्लेशकारिणः । कुशध्वजस्य विप्रस्य सावित्र्यां तनयोऽभवत् ॥१५८॥
प्रभासकुन्दनामासौ प्राप्य बोधिं सुदुर्लभाम् । पार्श्वे विचित्रसेनस्य मुनेर्दीक्षामसेवत ॥१५९॥
विमुक्तरतिकन्दर्पगर्वसंरम्भमत्सर. । निर्विकारस्तपश्चक्रे दयावान्निर्जितेन्द्रियः ॥१६०॥
षष्ठाष्टमार्द्धमासादिनिराहारः स्पृहोज्झितः । यत्रास्तमितनिलयो वसन् शून्यवनादिषु ॥१६१॥
गुणशीलसुसंपन्नः परीषहसह. परः । आतापनरतो ग्रीष्मे पिनद्धमलकञ्चुकः ॥१६२॥
वर्षासु मेघमुक्ताभिरद्भिः क्लिन्नस्तरोरधः । प्रालेयपटसंवीतो हेमन्ते पुलिनस्थितः ॥१६३॥
एवमादिक्रियायुक्तः सोऽन्यदा सिद्धमन्दिरम् । सम्मेदं वन्दितं यातः स्मृतमप्यघनाशनम् ॥१६४॥

सेवन किया है, इसलिए मैं तेरे वधके लिए ही आगामी पर्यायमे उत्पन्न होऊँगी। यद्यपि मेरे पिता परलोक चले गये हैं तथापि मै उनकी इच्छा नष्ट नही करूँगी। मिथ्यादृष्टि पुरुषको चाहनेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है ॥१४८–१५१॥

तदनन्तर उस बालाने शीघ्र ही हरिकान्ता नामक आर्यिकाके पास जाकर दीक्षा ले अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया ॥१५२॥ लोंच करनेके बाद उसके शिरपर रूखे बाल निकल आये थे, तपके कारण उसका शरीर ऐसा सूख गया था मानो मास उसमे है ही नही और हड्डी तथा नसोका समूह स्पष्ट दिखाई देने लगा था ॥१५३॥ आयुके अन्तमे मरण कर वह ब्रह्मस्वर्ग गयी। वहाँ पुण्योदयसे प्राप्त हुए देवोके सुखका उपभोग करने लगी ॥१५४॥ वेदवतीसे रहित शम्भु, संसारमे एकदम हीनताको प्राप्त हो गया, उसके भाई-बन्धु, दासी-दास तथा लक्ष्मी आदि सब छूट गये और वह दुर्बुद्धि उन्मत्त अवस्थाको प्राप्त हो गया ॥१५५॥ वह झूठ-मूठके अभिमानमे चूर हो रहा था तथा जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोसे पराङ्मुख रहता था। वह मुनियोंको देख उनकी हँसी उड़ाता तथा उनके प्रति दुष्ट वचन कहता था ॥१५६॥ इस प्रकार मधु, मांस और मदिरा ही जिसका आहार था तथा जो पापकी अनुमोदना करनेमे उद्यत रहता था ऐसा शम्भु तीव्र दुःख देनेवाले नरक और तिर्यंचगतिमे चिरकाल तक भ्रमण करता रहा ॥१५७॥

अथानन्तर दुःखदायी पापकर्मका कुछ उपशम होनेसे वह कुशध्वज ब्राह्मणकी सावित्री नामक स्त्रीमे पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१५८॥ प्रभासकुन्द उसका नाम था। फिर अत्यन्त दुर्लभ रत्नत्रयको पाकर उसने विचित्रसेन मुनिके समीप दीक्षा धारण कर ली ॥१५९॥ जिसने रति, काम, गर्व, क्रोध तथा मत्सरको छोड़ दिया था, जो दयालु था तथा इन्द्रियोंको जीतनेवाला था ऐसे उस प्रभासकुन्दने निर्विकार होकर तपश्चरण किया ॥१६०॥ वह दो दिन, तीन दिन तथा एक पक्ष आदिके उपवास करता था, उसकी सब प्रकारकी इच्छाएँ छूट गयी थी, जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वही वह शून्य वन आदिमे ठहर जाता था ॥१६१॥ गुण और शीलसे सम्पन्न था, परीषहोको सहन करनेवाला था, ग्रीष्मऋतुमे आतापनयोग धारण करनेमे तत्पर रहता था, मलरूपी कंचुकसे सहित था, वर्षाऋतुमे वृक्षके नीचे मेघोके द्वारा छोड़े हुए जलसे भीगता रहता था और हेमन्तऋतुमे बर्फरूपी वस्त्रसे आवृत होकर नदियोके तटपर स्थित रहता था, इत्यादि क्रियाओंसे युक्त हुआ वह प्रभासकुन्द किसी समय उस सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरकी वन्दना करनेके लिए गया

कनकप्रभसंज्ञस्य तत्र विद्याभृतां विभो । विभूतिं गगने वीक्ष्य [1]प्रशान्तोऽपि न्यदानयत् ॥१६५॥
अलं विभवमुक्तेन तावन्मुक्तिपदेन मे । ईदृगैश्वर्यमाप्नोमि तपोमाहात्म्यमस्ति चेत् ॥१६६॥
अहो पश्यत मूढत्वं जनितं पापकर्मभि. । रत्नं त्रैलोक्यमूल्यं यद्विक्रीतं शाकमुष्टिना ॥१६७॥
भवन्त्युद्भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये । धियः कर्मानुभावेन केन किं क्रियतामिह ॥१६८॥
निदानदूषितात्मासौ कृत्वातिविकटं तपः । सनत्कुमारमारुक्षत्तत्र भोगानसेवत ॥१६९॥
च्युतः पुण्यावशेषेण भोगस्मरणमानसः । रत्नश्रव.सुतो जातो कैकस्यां रावणाभिधः ॥१७०॥
लङ्कायां च महैश्वर्यं प्राप्तो दुर्लडिवक्रियम् । कृतानेकमहाश्चर्यं प्रतापाक्रान्तविष्टपम् ॥१७१॥
असौ तु ब्रह्मलोकेशो दशसागरसम्मितम् । स्थित्वा कालं च्युतो जातो रामो दशरथात्मजः ॥१७२॥
तस्यापराजितासूनोः पूर्वपुण्यावशेषतः । भूत्या रूपेण वीर्येण समो जगति दुर्लभः ॥१७३॥
धनदत्तोऽभवद्योऽसौ सोऽय पद्मो मनोहरः । यशसा चन्द्रकान्तेन समाविष्टजविष्टपः ॥१७४॥
वसुदत्तोऽभवद्यश्च श्रीभूतिश्च द्विज. क्रमात् । जातो नारायण. सोऽयं सौमित्रिः श्रीलतातरुः ॥१७५॥
श्रीकान्तः क्रमयोगेन योऽसौ शम्भुत्वमागत । अभूत्प्रभासकुन्दश्च संजातः स दशाननः ॥१७६॥
येनेह भरतक्षेत्रे खण्डत्रयमखण्डितम् । अङ्गुलान्तरविन्यस्तमिव वश्यत्वमाहृतम् ॥१७७॥
आसीद् गुणवती या तु श्रीभूतेश्च सुता क्रमात् । सेयं जनकराजस्य सीतेति तनयाजनि ॥१७८॥

जो कि स्मृतिमे आते ही पापका नाश करनेवाला था ॥१६२-१६४॥ यद्यपि वह शान्त था तथापि उसने वहाँ आकाशमे कनकप्रभ नामक विद्याधरकी विभूति देख निदान किया कि मुझे वैभवसे रहित मुक्तिपदकी आवश्यकता नही है। यदि मेरे तपमे कुछ माहात्म्य है तो मै ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करूँ ॥१६५-१६६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो ! पापकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मूर्खता तो देखो कि उसने त्रिलोकी मूल्य रत्नको शाककी एक मुट्ठीमे बेच दिया ॥१६७॥ अथवा ठीक है क्योकि कर्मोके प्रभावसे अभ्युदयके समय मनुष्यके सद्बुद्धि उत्पन्न होती है और विपरीत समयमे सद्बुद्धि नष्ट हो जाती है। इस संसारमे कौन क्या कर सकता है ? ॥१६८॥

तदनन्तर जिसकी आत्मा निदानसे दूषित हो चुकी थी ऐसा प्रभासकुन्द, अत्यन्त विकट तप कर सनत्कुमार स्वर्गमे आरूढ हुआ और वहाँ भोगोका उपभोग करने लगा ॥१६९॥ तत्पश्चात् भोगोके स्मरण करनेमे जिसका मन लग रहा था ऐसा वह देव अवशिष्ट पुण्यके प्रभाववश वहाँसे च्युत हो लका नगरीमे राजा रत्नश्रवा और उनकी रानी कैकसीके रावण नामका पुत्र हुआ। वहाँ वह निदानके अनुसार उस महान् ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ जिसकी क्रियाएँ अत्यन्त विलासपूर्ण थी, जिसमे बड़े-बडे आश्चर्यके काम किये गये थे तथा जिसने प्रतापसे समस्त लोकको व्याप्त कर रखा था ॥१७०-१७१॥

तदनन्तर श्रीचन्द्रका जीव, जो ब्रह्मलोकमे इन्द्र हुआ था वहाँ दश सागर प्रमाण काल तक रहकर च्युत हो दशरथका पुत्र राम हुआ। उसकी माताका नाम अपराजिता था। पूर्व पुण्यके अवशिष्ट रहनेसे इस संसारमे विभूति, रूप और पराक्रमसे रामकी तुलना करनेवाला पुरुष दुर्लभ था ॥१७२-१७३॥ पहले जो धनदत्त था वही चन्द्रमाके समान यशसे संसारको व्याप्त करने-वाला मनोहर राम हुआ है ॥१७४॥ पहले जो वसुदत्त था फिर श्रीभूति ब्राह्मण हुआ वही क्रमसे लक्ष्मीरूपी लताके आधारके लिए वृक्षस्वरूप नारायण पदका धारी यह लक्ष्मण हुआ है ॥१७५॥ पहले जो श्रीकान्त था वही क्रम-क्रमसे शम्भु हुआ फिर प्रभासकुन्द हुआ और अब रावण हुआ था ॥१७६॥ वह रावण कि जिसने भरतक्षेत्रके सम्पूर्ण तीन खण्ड अगुलियोके बीचमे दबे हुएके समान अपने वश कर लिये थे ॥१७७॥ जो पहले गुणवती थी फिर क्रमसे श्रीभूति पुरोहितकी

---

१. निदान चक्रेऽप्यन्यदा नयन् म ।

जाता च बलदेवस्य पत्नी विनयशालिनी । शीलकोशी सुरेशस्य शचीव सुविचेष्टिता ॥१७९॥
योऽसौ गुणवतीभ्राता गुणवानभवत्तदा । सोऽयं भामण्डलो जातः सुहृल्लाङ्गललक्ष्मणः ॥१८०॥
यत्रामृतवतीदेवी ब्रह्मलोकनिवासिनी । च्यवतेऽथैति तत्रैव काले कुण्डलमण्डितः ॥१८१॥
विदेहायास्तयोर्गर्भे समुत्पन्नः समागमः । तद्भ्रातृयुगलं जातमनर्घं सुमनोहरम् ॥१८२॥
योऽसौ यज्ञवलिर्विप्रः स त्वं जातो विभीषणः । असौ वृषभकेतुस्तु सुग्रीवोऽयं कपिध्वजः ॥१८३॥
त एते पूर्वया प्रीत्या तथा पुण्यानुभावतः । यूयं रक्तात्मका जाता रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥१८४॥
पूर्वभाजननं वालेर्यदपृच्छद् विभीषणः । केवली च समाचख्यौ शृणु ते श्रेणिकाधुना ॥१८५॥
रत्यरत्यादिदुःखौघे संसारे चतुरन्तके । वृन्दारण्यस्थले जन्तुरेक कृष्णमृगोऽभवत् ॥१८६॥
साधुस्वाध्यायनिःस्वानं श्रुत्वायुर्विलये मृग । ऐरावते दितिस्थाने प्राप नृत्वमनिन्दितम् ॥१८७॥
सम्यग्दृष्टिः पितास्यासीद् विहीताख्यः सुचेष्टितः । माता शिवमतिः पुत्रो मेघदत्तस्तयोरयम् ॥१८८॥
अणुव्रतधरः सोऽयं जिनपूजासमुद्यतः । वन्दारुः कृतसत्कालः कल्पमैशानमाश्रयत् ॥१८९॥
च्युत्वा जम्बूमति द्वीपे विदेहे पूर्वभूमिके । पुरोऽस्ति विजयावत्याः समीपे सततोत्सव. ॥१९०॥
सुग्रामः पत्तनाकारो नामतो मत्तकोकिलः । कान्तशोकः प्रभुस्तत्र तस्य रत्नाकिनी प्रिया ॥१९१॥
तयोः सुप्रभनामाभूत्तनयश्चारुदर्शनः । बहुबन्धुजनाकीर्णः शुभैश्चरितप्रिय. ॥१९२॥
संसारे दुर्लभां प्राप्य बोधिं जिनमतानुगाम् । अग्रहीत् संयमं पार्श्वे संयतस्य महामुनेः ॥१९३॥

वेदवती पुत्री हुई थी वही अब क्रमसे राजा जनककी सीता नामकी पुत्री हुई है ॥१७८॥ यह सीता बलदेव—रामकी विनयवती पत्नी है, शीलका खजाना है तथा इन्द्रकी इन्द्राणीके समान सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाली है ॥१७९॥ उस समय जो गुणवतीका भाई गुणवान् था वही यह रामका परममित्र भामण्डल हुआ है ॥१८०॥ ब्रह्मलोकमे निवास करनेवाली गुणवतीका जीव अमृतमती देवी जिस समय च्युत हुई थी उसी समय कुण्डल-मण्डित भी च्युत हुआ था सो इन दोनोंका जनककी रानी विदेहाके गर्भमे समागम हुआ। यह बहन-भाईका जोड़ा अत्यन्त मनोहर तथा निर्दोष था ॥१८१–१८२॥ जो पहले यज्ञवलि ब्राह्मण था वह तू विभीषण हुआ है और जो वृषभकेतु था वह यह वानरकी ध्वजासे युक्त सुग्रीव हुआ है ॥१८३॥ इस प्रकार तुम सभी पूर्व प्रीतिसे तथा पुण्यके प्रभावसे पुण्यकर्मा रामके साथ प्रीति रखनेवाले हुए हो ॥१८४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक! इसके बाद विभीषणने सकल-भूषण केवलीसे वालिके पूर्वभव पूछे, केवलीने जो निरूपण किया उसे मैं कहता हूँ सो सुन ॥१८५॥

राग, द्वेष आदि दुःखोंके समूहसे भरे हुए इस चतुर्गतिरूप संसारमे वृन्दावनके बीच एक कृष्णमृग रहता था ॥१८६॥ आयु अन्तके समय वह मृग मुनियोंके स्वाध्यायका शब्द सुन ऐरावत क्षेत्रके दितिनामा नगरमे उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुआ ॥१८७॥ वहाँ सम्यग्दृष्टि तथा उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला विहीत नामका पुरुष इसका पिता था और शिवमति इसकी माता थी। उन दोनोंके यह मेघदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥१८८॥ मेघदत्त अणुव्रतका धारी था, जिनेन्द्रदेवकी पूजा करनेमे सदा उद्यत रहता था और जिन-चैत्यालयोंकी वन्दना करनेवाला था। आयुके अन्तमें समाधिमरण कर वह ऐशान स्वर्गमे उत्पन्न हुआ ॥१८९॥ जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमे विजयावती नगरीके समीप एक मत्तकोकिल नामका उत्तम ग्राम है जिसमे निरन्तर उत्सव होता रहता है तथा जो नगरके समान सुन्दर है। उस ग्रामका स्वामी कान्तशोक था तथा रत्नाकिनी उसकी स्त्री थी। मेघदत्तका जीव ऐशान स्वर्गसे च्युत होकर उन्हीं दोनोके सुप्रभ नामका सुन्दर पुत्र हुआ। यह सुप्रभ अनेक बन्धुजनोंसे सहित था तथा शुभ आचार ही उसे प्रिय था ॥१९०–१९२॥ उसने संसारमे दुर्लभ जिनमतानुगामी रत्नत्रयको पाकर संयतनामा महामुनिके

अतपच्च तपस्तीव्रं यथाविधि महाशयः । संवत्सरसहस्राणि बहूनि सुमहामनाः ॥१९४॥
नानालब्धिसमेतोऽपि यो न गर्वमुपागत. । संयोगजेषु भावेषु तत्याज ममतां च यः ॥१९५॥
विकषायसितध्यानसिद्धः स्यात्स महामुनि. । पर्याप्तं केवलं नायुरतः सर्वार्थसिद्धिमैत् ॥१९६॥
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रां[ ]स्तत्र भुक्त्वा महासुखम् । वालिनाम्नाजनिष्टासौ प्रतापी खेचराधिपः ॥१९७॥
द्रव्यदर्शनराज्यं यः प्राप किष्किन्धभूधरे । भ्राता यस्यैव सुग्रीवो महागुणसमन्वितः ॥१९८॥
विरोधमतिरूढोऽपि लङ्काधिपतिना समम् । विन्यस्यात्र श्रियं जीवदयार्थं दीक्षितोऽभवत् ॥१९९॥
दशाननेन गर्वेण सामर्थ्येन समुद्धृत. । पादाङ्गुष्ठेन कैलासस्त्याजितो येन साधुना ॥२००॥
निर्दह्य स भवारण्यं परमध्यानतेजसा । [1]त्रिलोकाग्रं समारूढः प्राप्तो जीवनिजस्थितिम् ॥२०१॥
परस्परमनेकत्र भवेऽन्योन्यवधः कृतः । श्रीकान्तवसुदत्ताभ्यां महावैरानुबन्धतः ॥२०२॥
पूर्वं वेदवतीकाले संबन्धप्रीतिना परम् । रावणेन हृता सीता तथा कर्मानुभावतः ॥२०३॥
श्रीभूतिर्वेदविद्विप्रः सम्यग्दृष्टिरनुत्तम. । हिंसितो वेदवत्यर्थं शम्भुना कामिना यतः ॥२०४॥
श्रीभूतिः स्वर्गमारुह्य प्रतिष्ठनगरे च्युतः । भूत्वा पुनर्वसुः शोकात्सनिदानतपोऽन्वित. ॥२०५॥
सनत्कुमारमारुह्य च्युत्वा दशरथात्मजः । भूत्वा रामानुजस्तीव्रस्नेहो लक्ष्मणचक्रभृत् ॥२०६॥
शम्भुपूर्वं ततः शत्रुमवधीत्पूर्ववैरतः । [2]दशाननमयं वीरः सुमित्राजो निकाचितात् ॥२०७॥
भ्रातुर्वियोगजं दुःखं यदासीत्सह सीतया । निमित्तमात्रमासीत्तद्दशवक्त्रस्य संक्षये ॥२०८॥

पास जिन-दीक्षा धारण कर ली ॥१९३॥ इस प्रकार उदार अभिप्राय और विशाल हृदयको धारण करनेवाले सुप्रभ मुनिने कई हजार वर्ष तक विधिपूर्वक कठिन तपश्चरण किया ॥१९४॥ वे सुप्रभ मुनि नानाऋद्धियोंसे सहित होनेपर भी गर्वको प्राप्त नही हुए थे तथा संयोगजन्य भावोमे उन्होने सव ममता छोड़ दी थी ॥१९५॥ तदनन्तर जिन्हे कषायकी उपशम अवस्थामे होनेवाला शुक्ल-ध्यानका प्रथम भेद प्रकट हुआ था ऐसे वे महामुनि सिद्ध अवस्थाको अवश्य प्राप्त होते परन्तु आयु अधिक नही थी इसलिए उसी उपशान्त दशामे मरण कर सर्वार्थसिद्धि गये ॥१९६॥ वहाँ तैतीस सागर तक महासुख भोगकर वे वालि नामके प्रतापी विद्याधरके राजा हुए ॥१९७॥ जिन्होने किष्किन्ध पर्वतपर विविध सामग्रीसे युक्त राज्य प्राप्त किया था, महागुणवान् सुग्रीव जिनका भाई है। लंकाधिपति रावणके साथ विरोध होनेपर जो इस सुग्रीवके ऊपर राज्यलक्ष्मी छोड़ जीवदयाके अर्थं दीक्षित हो गये थे, तथा गर्ववश रावणके द्वारा उठाये हुए कैलासको जिन्होने साधु अवस्थामे अपनी सामर्थ्यसे केवल पैरका अँगूठा दबाकर छुड़वा दिया था। वही वालि मुनि उत्कृष्ट ध्यानके तेजमे संसाररूपी वनको भस्म कर तीन लोकके अग्रभागपर आरूढ़ हो आत्माके निजस्वरूपमे स्थितिको प्राप्त हुए है ॥१९८–२०१॥

श्रीकान्त और वसुदत्तने महावैरके कारण अनेक भवोमें परस्पर एक दूसरेका वध किया है ॥२०२॥ पहले वेदवतीकी पर्यायमें रावणका जीव सीताके साथ सम्बन्ध करना चाहता था उसी संस्कारसे उसने रावणकी पर्यायमे सीताका हरण किया ॥२०३॥ जब रावण शम्भु था तब उसने कामी होकर वेदवतीकी प्राप्तिके लिए वेदोके जाननेवाले, उत्तम सम्यग्दृष्टि श्रीभूति ब्राह्मणकी हत्या की थी ॥२०४॥ वह श्रीभूति स्वर्ग गया वहाँसे च्युत होकर प्रतिष्ठ नगरमे पुनर्वसु विद्याधर हुआ सो शोकवश निदान सहित तपकर सानत्कुमार स्वर्गमे उत्पन्न हुआ। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो दशरथका पुत्र तथा रामका छोटा भाई परम स्नेही लक्ष्मण नामका चक्रधर हुआ ॥२०५–२०६॥ इस वीर लक्ष्मणने, नही छूटनेवाले पूर्व वैरके कारण ही शम्भुका जीव जो दशानन हुआ था उसे मारा है ॥२०७॥ यतश्च पूर्वभवमे सीताके जीवको रावणके जीवके द्वारा भाईके वियोगका दु.ख उठाना पड़ा था इसलिए सीता रावणके क्षयमे निमित्त हुई है ॥२०८॥

---

१. त्रिलोकाग्रं म.। २ दशाननभयं म.।

अकूपारं समुत्तीर्य धरणीचारिणा सता । हिंसितो हिंसकः पूर्वं लक्ष्मणेन दशाननः ॥२०९॥
राक्षसश्रीक्षपाचन्द्रं तं निहत्य दशाननम् । सौमित्रिणा समाक्रान्ता पृथिवीयं ससागरा ॥२१०॥
क्वासौ तथाविधः शूरः क्व चेयं गतिरीदृशी । माहात्म्यं कर्मणामेतदसंभाव्यमवाप्यते ॥२११॥
वध्यघातकयोरेवं जायते व्यत्ययः पुनः । संसारभावसक्तानां जन्तूनां स्थितिरीदृशी ॥२१२॥
क्व नाके परमा भोगाः क्व दुःखं नरके पुनः । विपरीतमहोऽत्यन्तं कर्मणां दुर्विचेष्टितम् ॥२१३॥
परमान्नमहाकूटं यादृशं विषदूषितम् । तपस्तादृशमेवोग्रनिदानकृतनन्दनम् ॥२१४॥
इयं शाक्रं द्रुमं छित्वा कोद्रवाणां वृतिः कृता । अमृतद्रवसेकेन पोषितो विषपादपः ॥२१५॥
सूत्रार्थं चूर्णिता सेयं परमा रत्नसंहतिः । गोशीर्षं चन्दनं दग्धमङ्गारहितचेतसा ॥२१६॥
जीवलोकेऽबला नाम सर्वदोषमहाखनिः । किं नाम न कृते तस्याः क्रियते कर्म कुत्सितम् ॥२१७॥
प्रत्यावृत्य कृतं कर्म फलमर्पयति ध्रुवम् । तत्कर्तुमन्यथा केन शक्यते भुवनत्रये ॥२१८॥
कृत्वापि संगतिं धर्मे यद्व्रजन्तीदृशीं गतिम् । उच्यतामितरेषां किं तत्र निर्धर्मचेतसाम् ॥२१९॥
श्रामण्यमंगतस्यापि साध्यमत्सरसेविनः । कृत्वाप्युग्रतपो नास्ति शिवं संज्वलनस्पृशः ॥२२०॥
न शमो[1] न तपो यस्य मिथ्यादृष्टेर्न संयमः । संसारोत्तरणे तस्य क उपायो दुरात्मनः ॥२२१॥
ह्रियन्ते वायुना यत्र गजेन्द्रा मदशालिनः । पूर्वमेव हृतास्तत्र शशकाः स्थलवर्तिनः ॥२२२॥
एवं परमदुःखानां ज्ञात्वा कारणमीदृशम् । मा कार्ष्ट वैरसंबन्धं जनाः स्वहितकाङ्क्षिणः ॥२२३॥

लक्ष्मणने भूमिगोचरी होनेपर भी समुद्रको पार कर पूर्व पर्यायमे अपना घात करनेवाले रावणको मारा है ॥२०९॥ राक्षसोंकी लक्ष्मीरूपी रात्रिको सुशोभित करनेके लिए चन्द्रमास्वरूप रावणको मारकर लक्ष्मणने इस सागर सहित समस्त पृथिवीपर अपना अधिकार किया है ॥२१०॥ सकलभूषण केवली कहते हैं कि कहाँ तो वैसा शूरवीर और कहाँ ऐसी गति ? यह कर्मोंका ही माहात्म्य है कि असम्भव वस्तु भी प्राप्त हो जाती है ॥२११॥ इस प्रकार वध्य और घातक जीवोंमे पुनः-पुनः बदली होती रहती है अर्थात् पहली पर्यायमे जो वध्य होता है वह आगामी पर्यायमे उसका घातक होता है और पहली पर्यायमे जो घातक होता है वह आगामी पर्यायमे वध्य होता है। संसारी जीवोकी ऐसी ही स्थिति है ॥२१२॥ कहाँ तो स्वर्गमे उत्तम भोग और कहाँ नरकमे तीव्र दुःख ? अहो ! कर्मोकी बड़ी विपरीत चेष्टा है ॥२१३॥ जिस प्रकार परम स्वादिष्ट अन्नकी महाराशि विषसे दूषित हो जाती है, उसी प्रकार परम उत्कृष्ट तप भी निदानसे दूषित हो जाता है ॥२१४॥ निदान अर्थात् भोगाकांक्षाके लिए तपको दूषित करना ऐसा है जैसा कि कल्पवृक्ष काटकर कोदोके खेतकी बाड़ी लगाना अथवा अमृत सीचकर विषवृक्षको बढ़ाना अथवा सूतके लिए उत्तम मणियोकी मालाका चूर्ण करना अथवा अंगारके लिए गोशीर्ष चन्दनका जलाना ॥२१५-२१६॥ संसारमे स्त्री समस्त दोषोकी महाखान है। ऐसा कौन निन्दित कार्य है जो उसके लिए नही किया जाता हो ? ॥२१७॥ किया हुआ कर्म लौटकर अवश्य फल देता है उसे भुवनत्रयमे अन्यथा करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२१८॥ जब धर्म धारण करनेवाले मनुष्य भी इस गतिको प्राप्त होते हैं तब धर्महीन मनुष्यकी बात ही क्या है ? ॥२१९॥ जो मुनिपद धारण करके भी साध्यपदार्थोके विषयमे मत्सर भाव रखते हैं ऐसे संज्वलन कषायके धारक मुनियोको उग्र तपश्चरण करनेपर भी शिव अर्थात् मोक्ष अथवा वास्तविक कल्याणकी प्राप्ति नही होती ॥२२०॥ जिस मिथ्यादृष्टिके न शम अर्थात् शान्ति है, न तप है और न संयम है उस दुरात्माके पास संसार-सागरसे उतरनेका उपाय क्या है ? ॥२२१॥ जहाँ वायुके द्वारा मदोन्मत्त हाथी हरण किये जाते हैं वहाँ स्थलमे रहनेवाले खरगोश तो पहले ही हरे जाते है ॥२२२॥ इस प्रकार

---

१ समो म. ।

भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी । सीतायाः पश्यत [1]प्राप्तो दुर्वादः शब्दमात्रतः ॥२२४॥
ग्रामो मण्डलिको नाम तमायातः सुदर्शनः । मुनिसुद्यानमायातं[2] वन्दित्वा तं गता जनाः ॥२२५॥
सुदर्शनां स्थितां तत्र स्वसारं सद्वचो ब्रुवन् । ईक्षितो वेदवत्यासौ सत्या[3]श्रमणया तथा ॥२२६॥
ततो ग्रामीणलोकाय सम्यग्दर्शनतत्परा । जगाद पश्यतेदृक्षं[4] श्रमणं ब्रूथ सुन्दरम् ॥२२७॥
मया सुयोषिता सार्कं स्थितो रहसि वीक्षितः । ततः कैश्चित् प्रतीतं तन्न तु कैश्चिद्विचक्षणैः ॥२२८॥
अनादरो मुनेर्लोकैः कृतश्चावग्रहोऽमुना । वेदवत्या मुखं [5]शूनं देवताया नियोगतः ॥२२९॥
[6]अपुण्यया मयालीकं चोदितं भवतामिति[7] । तया प्रत्यायितो लोक इत्याद्यत्र कथा स्मृता ॥२३०॥
एवं सद्भ्रातृयुगलं निन्दितं यत्तदानया । अवर्णवादमीदृक्षं प्राप्तेयं वितथं ततः ॥२३१॥
दृष्टः सत्योऽपि दोषो न वाच्यो जिनमतश्रिता । उच्यमानोऽपि चान्येन वार्यः सर्वप्रयत्नतः ॥२३२॥
ब्रुवाणो लोकविद्वेषकरणं शासनाश्रितम् । प्रतिपद्य चिरं दुःखं संसारमवगाहते ॥२३३॥
सम्यग्दर्शनरत्नस्य गुणोऽत्यन्तमयं महान् । यद्दोषस्य कृतस्यापि प्रयत्नादुपगूहनम् ॥२३४॥
अज्ञानान्मत्सराद्वापि दोषं वितथमेव तु । प्रकाशयञ्जनोऽत्यन्तं जिनमार्गाद्बहिः स्थितः ॥२३५॥
इति श्रुत्वा मुनीन्द्रस्य भाषितं परमाद्भुतम् । सुरासुरमनुष्यास्ते विस्मयं परमं गताः ॥२३६॥

परम दुःखोका ऐसा कारण जानकर हे आत्महितके इच्छुक भव्य जनो ! किसीके साथ वैरका सम्बन्ध मत रखो ॥२२३॥

जिससे पापबन्ध हो ऐसा एक शब्द भी नही बोलना चाहिए। देखो, शब्द मात्रसे सीताको कैसा अपवाद प्राप्त हुआ ? ॥२२४॥ इसकी कथा इस प्रकार है कि जब सीता वेदवतीकी पर्यायमे थी तब एक मण्डलिक नामका ग्राम था। उस ग्राममे एक सुदर्शन नामक मुनि आये। मुनिको उद्यानमे आया देख लोग उनकी वन्दनाके लिए गये। वन्दना कर जब सब लोग चले गये तब उनके पास एक सुदर्शना नामकी आर्यिका जो कि मुनिकी बहन थी बैठी रही और मुनि उसे सद्वचन कहते रहे। वेदवतीने उस उत्तम साध्वी—आर्यिकाके साथ मुनिको देखा। तदनन्तर अपने आपको सम्यग्दृष्टि बतानेमे तत्पर वेदवतीने गाँवके लोगोसे कहा कि हाँ, आप लोग ऐसे साधुके अवश्य दर्शन करो और उन्हें अच्छा बतलाओ। मैने उन साधुको एकान्तमे एक सुन्दर स्त्रीके साथ बैठा देखा है। वेदवतीकी यह बात किन्हीने मानी और जो विवेकी थे ऐसे किन्ही लोगोने नही मानी ॥२२५-२२८॥ इस प्रकरणसे लोगोने मुनिका अनादर किया। तथा मुनिने यह प्रतिज्ञा ली कि जबतक यह अपवाद दूर न होगा तबतक आहारके लिए नही निकलूँगा। इस अपवादसे वेदवतीका मुख फूल गया तब उसने नगरदेवताकी प्रेरणा पा मुनिसे कहा कि मुझ पापिनीने आपके विषयमे झूठ कहा है। इस तरह मुनिसे क्षमा कराकर उसने अन्य लोगोको भी विश्वास दिलाया। इस प्रकार वेदवतीकी पर्यायमे सीताने उन बहन-भाईके युगलकी झूठी निन्दा की थी इसलिए इस पर्यायमे यह इस प्रकारके मिथ्या अपवादको प्राप्त हुई है ॥२२९-२३१॥ यदि यथार्थ दोष भी देखा हो तो जिनमतके अवलम्बीको नही कहना चाहिए और कोई दूसरा कहता भी हो तो उसे सब प्रकारसे रोकना चाहिए ॥२३२॥ फिर लोकमे विद्वेष फैलानेवाले शासन सम्बन्धी दोषको जो कहता है वह दुख पाकर चिरकाल तक ससारमे भटकता रहता है ॥२३३॥ किये हुए दोषको भी प्रयत्नपूर्वक छिपाना यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्नका बड़ा भारी गुण है ॥२३४॥ अज्ञान अथवा मत्सर भावसे भी जो किसीके मिथ्या दोषको प्रकाशित करता है वह मनुष्य जिनमार्गसे बिलकुल ही बाहर स्थित है ॥२३५॥ इस प्रकार सकलभूषण केवलीका

---

१ प्राप्ता म । २. -मायान्तं म । ३. श्रवणया म. । ४ -तेदृशं म । ५ सूनं म । ६ अपुण्यामा म. । ७. भगवानिति म. ।

ज्ञात्वा सुदुर्जरं वैरं सौमित्रेः रावणस्य च । महादुःखभयोपेतं निर्मत्सरमभूत्सदः ॥२३७॥
मुनयः शङ्किता जाता देवाश्चिन्तां[1] परां गताः । राजानः प्रापुरुद्वेगं प्रतिबुद्धाश्च केचन ॥२३८॥
विमुक्तगर्वसंसाराः परिशान्ताः प्रवादिनः । अपि सम्यक्त्वमायाता आसन्ये कर्मकर्कशाः ॥२३९॥
कर्मदौरात्म्य[2]संभारक्षणमात्रकमूर्छिता । समाश्वसत्सभा हा ही धिक् चित्रमिति वादिनी ॥२४०॥
कृत्वा करपुटं मूर्ध्नि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । [3]मनुष्यासुरगीर्वाणाः प्रशशंसुर्विभीषणम् ॥२४१॥
भवत्समाश्रयाद्भद्र श्रुतमस्माभिरुत्तमम् । चरितं बोधनं पुण्यं मुनिपादप्रसादतः ॥२४२॥
ततो नरेन्द्रदेवेन्द्रमुनीन्द्राः संमदोत्कटाः । सर्वज्ञं तुष्टुवुः सर्वे परिवर्गसमन्विताः ॥२४३॥
त्रैलोक्यं भगवन्नेतत्त्वया सकलभूषण । भूषितं तेन नामेदं तव युक्तं सहार्थकम् ॥२४४॥
तिरस्कृत्य श्रियं सर्वां ज्ञानदर्शनवर्तिनी । केवलश्रीरियं भाति तव दूरीकृतोपमा ॥२४५॥
अनाथमध्रुवं दीनं जन्ममृत्युवशीकृतम् । क्लिश्यतेऽदो जगत्प्राप्तं त्वं पदं जैनमुत्तमम् ॥२४६॥

शार्दूलविक्रीडितम्

नानाव्याधिजरावियोगमरणप्रोद्भूतिदुःखं परं ।
प्राप्तानां मृगयुप्रवेजितमृगव्रातोपमावर्त्तिनाम् ।
कृच्छ्रोत्सर्जनदारुणाशुभमहाकर्मावरुद्धात्मना-
मस्माकं कृतकार्य यच्छ निकटं कर्मक्षयं केवलिन् ॥२४७॥

अत्यधिक आश्चर्यसे भरा हुआ उपदेश सुनकर समस्त सुर-असुर और मनुष्य परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥२३६॥ लक्ष्मण और रावणके सुदृढ वैरको जानकर समस्त सभा महादुःख और भयसे सिहर उठी तथा निर्वैर हो गयी। अर्थात् सभाके सब लोगोंने वैरभाव छोड़ दिया ॥२३७॥ मुनि ससारसे भयभीत हो गये, देव लोग परम चिन्ताको प्राप्त हुए, राजा उद्वेगको प्राप्त हुए और कितने ही लोग प्रतिबुद्ध हो गये ॥२३८॥ अपनी वक्तृत्व-शक्तिका अभिमान रखनेवाले कितने ही लोग अहंकारका भार छोड़ शान्त हो गये। जो कर्मोदयसे कठिन थे अर्थात् चारित्रमोहके तीव्रोदयसे जो चारित्र धारण करनेके लिए असमर्थ थे उन्होने केवल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया ॥२३९॥ कर्मोकी दुष्टताके भारसे जो क्षण-भरके लिए मूर्च्छित हो गयी थी ऐसी सभा 'हा हा, धिक् चित्रम्' आदि शब्द कहती हुई साँसें भरने लगी ॥२४०॥ मनुष्य, असुर और देव हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मुनिराजको प्रणाम कर विभीषणकी प्रशंसा करने लगे कि हे भद्र ! आपके आश्रयसे ही मुनिराजके चरणोंका प्रसाद प्राप्त हुआ है और उससे हम लोग इस उत्तम ज्ञानवर्धक पुण्य चरितको सुन सके हैं ॥२४१-२४२॥

तदनन्तर हर्षसे भरे एवं अपने-अपने परिकरसे सहित समस्त नरेन्द्र, सुरेन्द्र और मुनीन्द्र सर्वज्ञदेवकी स्तुति करने लगे ॥२४३॥ कि हे सकलभूषण ! भगवन् ! आपके द्वारा ये तीनो लोक भूषित हुए हैं इसलिए आपका यह 'सकलभूषण' नाम सार्थक है ॥२४४॥ ज्ञान और दर्शनमे वर्तमान तथा उपमासे रहित आपकी यह केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी संसारकी अन्य समस्त लक्ष्मियो-का तिरस्कार कर अत्यधिक सुशोभित हो रही है ॥२४५॥ अनाथ, अध्रुव, दीन तथा जन्म-जरा-मृत्युके वशीभूत हुआ यह संसार अनादि कालसे क्लेश उठा रहा है पर आज आपके प्रसादसे जिनप्रदर्शित उत्तम आत्मपदको प्राप्त हुआ है ॥२४६॥ हे केवलिन् ! हे कृतकृत्य ! जो नाना प्रकारके रोग, बुढ़ापा, वियोग तथा मरणसे उत्पन्न होनेवाले परम दुःखको प्राप्त है, जो शिकारीके द्वारा डराये हुए मृगसमूहकी उपमाको प्राप्त है तथा कठिनाईसे छूटने योग्य दारुण एवं अशुभ महाकर्मोसे जिनकी आत्मा अवरुद्ध है—घिरी हुई है ऐसे हम लोगोंके लिए शीघ्र ही कर्मोका क्षय

---

१. चिन्तान्तरं ज. । २ दूरात्म म. । दूरात्म्य ज. । ३. मनुष्यसुरगीर्वाणाः म. ।

नष्टानां विषयान्धकारगहने संसारवासे भव
त्वं दीपः शिवलब्धिकाङ्क्षणमहातृड्खेदितानां सरः।
वह्निः कर्मसमूहकक्षदहने व्यग्रीभवच्चेतसां
नानादुःखमहातुषारपतनव्याकम्पितानां रविः ॥२४८॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सपरिवर्गरामदेवपूर्वभवाभिधानं नाम षडुत्तरशतं पर्व ॥१०६॥



प्रदान कीजिए ॥२४७॥ हे नाथ! विषयरूपी अन्धकारसे व्याप्त संसार-वासमे भूले हुए प्राणियोंके आप दीपक हो, मोक्षप्राप्तिकी इच्छारूप तीव्र प्याससे पीडित मनुष्योके लिए सरोवर हो, कर्म-समूहरूपी वनको जलानेके लिए अग्नि हो, तथा व्याकुलचित्त एवं नाना दुःखरूपी महातुषारके पड़नेसे कम्पित पुरुषोंके लिए सूर्य हो ॥२४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें परिवर्ग सहित रामदेवके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला एक सौ छठा पर्व समाप्त हुआ ॥१०६॥



सप्तोत्तरशतं पर्व

ततः श्रुत्वा महादुःखं भवसंसृतिसंभवम् । कृतान्तवदनो[1]ऽवोचत्पद्मं दीक्षाभिकाङ्क्षया ॥१॥
मिथ्यापथपरिभ्रान्त्या संसारेऽस्मिन्ननादिके । खिन्नोऽहमधुनेच्छामि श्रामण्यं समुपासितुम् ॥२॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचद्दुस्त्यज्य स्नेहमुत्तमम् । अत्यन्तदुर्धरां चर्यां कथं धारयसीदृशी[2] ॥३॥
कथं सहिष्यसे तीव्रान् शीतोष्णादीन् परीषहान् । महाकण्टकतुल्यानि वाक्यानि च दुरात्मनाम् ॥४॥
अज्ञातक्लेशसंपर्कः समलक्रोडकोमलः । कथं भूमितलेऽरण्ये निशां [3]व्यालिनि नेष्यसि ॥५॥
प्रकटास्थिसिराजालः पक्षमासाद्युपोषितः । कथं परगृहे भिक्षां भोक्ष्यसे पाणिभाजने ॥६॥
नामहिष्ट द्विषां सैन्यं यो मातङ्गघटाकुलम् । नीचात्परिभवं स त्वं कथं वा विसहिष्यसे ॥७॥
कृतान्तास्यस्ततोऽवोचद् यस्त्वत्स्नेहरसायनम् । परित्यक्तुमहं सोढस्तस्यान्यत्किमसह्यकम् ॥८॥
यावन्न मृत्युवज्रेण देहस्तम्भो निपात्यते । तावदिच्छामि निर्गन्तुं दुःखान्धाद्भवसंकटात् ॥९॥
धारयन्ति न निर्यातं वह्निज्वालाकुलालयात् । दयावन्तो यथा तद्वद्दुःखतप्ताद्भवादपि ॥१०॥
वियोगः सुचिरेणापि जायते यद्भवद्विधैः । ततो निन्दितसंसारः को न वेत्त्यात्मनो हितम् ॥११॥
अवश्यं त्वद्वियोगेन दुःखं भावि सुदुःसहम् । मा भूत्पुनरपीदृक्षमिति मे मतिरुद्यता ॥१२॥

अथानन्तर भव-भ्रमणसे उत्पन्न महादुःखको सुनकर कृतान्तवक्त्र सेनापतिने दीक्षा लेनेकी इच्छासे रामसे कहा कि मिथ्यामार्गमें भटक जानेके कारण मै इस अनादि ससारमे खेद-खिन्न हो रहा हूँ अतः अब मुनिपद धारण करनेकी इच्छा करता हूँ ॥१–२॥ तब रामने कहा कि उत्तम स्नेह छोड़कर इस अत्यन्त दुर्धरचर्याको किस प्रकार धारण करोगे ? ॥३॥ शीत, उष्ण आदिके तीव्र परीषह तथा महाकण्टकोंके समान दुर्जन मनुष्योके वचन किस प्रकार सहोगे ? ॥४॥ जिसने कभी क्लेशका सम्पर्क जाना नही तथा जो कमलके मध्यभागके समान कोमल है ऐसे तुम हिंसक जन्तुओसे भरे हुए वनमें पृथिवी तलपर रात्रि किस तरह बिताओगे ? ॥५॥ जिसकी हड्डियो तथा नसोका जाल स्पष्ट दिख रहा है तथा जिसने एक पक्ष, एक मास आदिका उपवास किया है ऐसे तुम परगृहमे हस्तरूपी पात्रमे भिक्षा-भोजन कैसे ग्रहण करोगे ? ॥६॥ जिसने हाथियोके समूहसे व्याप्त शत्रुओकी सेना कभी सहन नहीं की है ऐसे तुम नीच जनोसे प्राप्त पराभवको किस प्रकार सहन करोगे ? ॥७॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्रने कहा कि जो आपके स्नेहरूपी रसायनको छोड़नेके लिए समर्थ है उसके लिए अन्य क्या असह्य है ? ॥८॥ जबतक मृत्युरूपी वज्रके द्वारा शरीररूपी स्तम्भ नही गिरा दिया जाता है तबतक मैं दुःखसे अन्धे इस संसाररूपी संकटसे बाहर निकल जाना चाहता हूँ ॥९॥ अग्निकी ज्वालाओसे प्रज्वलित घरसे निकलते हुए मनुष्योंको जिस प्रकार दयालु मनुष्य रोककर उसी घरमे नही रखते हैं उसी प्रकार दुःखसे सन्तप्त संसारसे निकले हुए प्राणीको दयालु मनुष्य उसी संसारमे नही रखते हैं ॥१०॥ जब कि अभी नही तो बहुत समय बाद भी आप जैसे महान् पुरुषोके साथ वियोग होगा ही तब ससारको बुरा समझनेवाला कौन पुरुष आत्माके हितको नही समझेगा ? ॥११॥ यह ठीक है कि आपके वियोगसे होनेवाला दुःख अवश्य ही अत्यन्त असह्य है फिर भी ऐसा दुःख पुनः प्राप्त न हो इसीलिए मेरी यह बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥१२॥

---

१. कृतान्तवक्त्रः सेनापतिः । २ सीदृशम् म. । ३. दुष्टसत्त्वयुक्ते ।

नियम्याश्रूणि कृच्छ्रेण व्याकुलो राघवोऽवदत् । मत्तुल्यां श्रियमुज्झित्वा धन्यस्त्वं सद्व्रतोन्मुखः ॥१३॥
एतेन जन्मना नो चेत्त्वं निर्वाणमुपेष्यसि । ततो बोध्योऽस्मि देवेन त्वया सकटमागतः ॥१४॥
यद्येकमपि किंचिन्मे जानास्युपकृतं ततः । नेदं विस्मरणीयं ते भद्रैवं कुरु संगरम् ॥१५॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य च यथाविधि । उपसृत्योरुसंवेगः सेनानीः सर्वभूषणम् ॥१६॥
प्रणम्य सकलं त्यक्त्वा बाह्यान्तरपरिग्रहम् । सौम्यवक्त्रः सुविक्रान्तो निष्क्रान्तः कान्तचेष्टितः ॥१७॥
एवमाद्या महाराजा वैराग्यं परमं गताः । महासंवेगसपन्ना नैर्ग्रन्थ्यं व्रतमाश्रिताः ॥१८॥
केचिच्छ्रावकतां प्राप्ता सम्यग्दर्शनतां परे । मुदित्वैव सभा सामाद्रत्नत्रयविभूषणा ॥१९॥
प्रयाति नगतो[1] नाथे ततः सकलभूषणे । प्रणम्य भक्तितो याता यथायातं सुरासुराः ॥२०॥
पद्मोपमेक्षण पद्मो नत्वा सकलभूषणम् । अनुक्रमेण साधूंश्च मुक्तिसाधनतत्परान् ॥२१॥
उपागमद्विनीतात्मा सीतां विमलतेजसम्[2] । घृताहुत्या समुद्भूतां स्फीतां वह्निशिखामिव ॥२२॥
क्षान्त्यार्यागणमध्यस्थां स्फुरत्स्वकिरणोत्कराम् । सुभ्रूयुगां ध्रुवामन्यामिव[3] तारां गणावृताम् ॥२३॥
सद्वृत्तात्यन्तनिभृतां त्यक्तस्रग्गन्धभूषणाम् । धृतिकीर्तिरतिश्रीह्रीपरिवारां तथापि ताम् ॥२४॥
मृदुचारुसितश्लक्ष्णप्रलम्बाम्बरधारिणीम् । मन्दानिलचलत्फेनपटां पुण्यनदीमिव ॥२५॥
[4]विकासिकाशसघातविशदां शरदं यथा । कौमुद्वतीमिव ज्योत्स्नां कुमुदाकरहासिनीम् ॥२६॥

तदनन्तर व्यग्र हुए रामने बड़ी कठिनाईसे आँसू रोककर कहा कि मेरे समान लक्ष्मीको छोड़कर जो तुम उत्तम व्रत धारण करनेके लिए उन्मुख हुए हो अतः तुम धन्य हो ॥१३॥ इस जन्ममे यदि तुम निर्वाणको प्राप्त न हो सको और देव होओ तो संकटमे पडा हुआ मै तुम्हारे द्वारा सम्बोधने योग्य हूँ ॥१४॥ हे भद्र ! यदि मेरे द्वारा किया हुआ एक भी उपकार तुम मानते हो तो यह बात भूलना नही । ऐसी प्रतिज्ञा करो ॥१५॥ 'जैसी आप आज्ञा कर रहे हैं वैसा ही होगा' इस प्रकार कहकर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर उत्कट वैराग्यसे भरा सेनापति सर्वभूषण केवलीके पास गया और प्रणाम कर तथा बाह्याभ्यन्तर सर्व प्रकारका परिग्रह छोड़ सौम्यवक्त्र हो गया । अब वह आत्महितके विषयमे तीव्र पराक्रमी हो गया, गृह जंजालसे निकल चुका तथा सुन्दर चेष्टाका धारक हो गया ॥१६-१७॥ इस प्रकार परम वैराग्यको प्राप्त एव महासंवेगसे सम्पन्न कितने ही महाराजाओने निर्ग्रन्थ व्रत धारण किया—जिन-दीक्षा ली ॥१८॥ कितने ही लोग श्रावक हुए और कितने ही लोग सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुए । इस प्रकार हर्षित हो रत्नत्रयरूपी आभूषणोंसे विभूषित वह सभा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥१९॥

अथानन्तर जब सकलभूषण स्वामी उस पर्वतसे विहार कर गये तब भक्तिपूर्वक प्रणाम कर सुर और असुर यथास्थान चले गये ॥२०॥ कमललोचन राम सकलभूषण केवली तथा मुक्तिके सिद्ध करनेमे तत्पर साधुओको यथाक्रमसे प्रणाम कर विनीत भावसे उस सीताके पास गये जो कि निर्मल तेजको धारण कर रही थी तथा घीकी आहुतिसे उत्पन्न अग्निकी शिखाके समान देदीप्यमान थी ॥२१-२२॥ वह क्षान्तिपूर्वक आर्यिकाओके समूहके मध्यमे स्थित थी, उसकी स्वयंकी किरणोका समूह देदीप्यमान हो रहा था, वह उत्तम शान्त भौहोसे युक्त थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो समूहसे आवृत दूसरी ही ध्रुवतारा हो ॥२३॥ जो सम्यक्चारित्रके धारण करनेमे अत्यन्त दृढ थी, जिसने माला, गन्ध तथा आभूषण छोड़ दिये थे, फिर भी जो धृति, कीर्ति, रति, श्री और लज्जारूप परिवारसे युक्त थी । जो कोमल सफेद चिकने एवं लम्बे वस्त्रको धारण कर रही थी, अतएव मन्द-मन्द वायुसे जिसके फेनका समूह मिल रहा था ऐसी पुण्यकी नदीके समान जान पड़ती थी अथवा खिले हुए कासके फूलोके समूहसे विशद शरद् ऋतुके

---

१ नामतो म. । २. विमलतेजसाम् म । ३ तारागणावृताम् म. । ४. विकाशिकाशसकाशा म. ।

महाविरागतः साक्षादिव प्रव्रजितां श्रियम् । वपुष्मतीमिव प्राप्तां जिनशासनदेवताम् ॥२७॥
एवंविधां समालोक्य संभ्रमभ्रष्टमानसः । कल्पद्रुम इवाकम्पो बलदेवः क्षणं स्थितः ॥२८॥
प्रकृतिस्थिरनेत्रभ्रूप्राप्तावेतां विचिन्तयन् । शरत्पयोदमालानां समीप इव पर्वतः ॥२९॥
इयं सा मद्भुजारन्ध्ररतिप्रवरसारिका । विलोचनकुमुद्वत्याश्चन्द्रलेखा स्वभावत ॥३०॥
मद्युक्ताप्यगमत्त्रासं या पयोदरवादपि । अरण्ये सा कथं भीमे न भेष्यति तपस्विनी ॥३१॥
नितम्बगुरुतायोगललितालसगामिनी । तपसा विलयं नूनं प्रयास्यति सुकोमला ॥३२॥
क्वेदं वपुः क्व जैनेन्द्रं तप. परमदुष्करम् । पद्मिन्यां क इवायासो हिमस्य तरुदाहिन. ॥३३॥
अन्नं यथेप्सितं भुक्तं यथा [1]परमनोहरम् । यथालाभं कथं भिक्षां सैषा समधियास्यति ॥३४॥
वीणावेणुमृदङ्गैर्या कृतमङ्गलनि.स्वनाम् । निद्रासेवत सत्तल्पे [2]कल्पकल्पालयस्थिताम् ॥३५॥
दर्भशल्याचिते सेयं वने मृगरवाकुले । कथं भयानकीं भीरुः प्रेरयिष्यति शर्वरीम् ॥३६॥
किं मयोपचितं पश्य मोहसंगतचेतसा । पृथग्जनपरीवादाद्वारिता प्राणवल्लभा ॥३७॥
अनुकूला प्रिया साध्वी सर्वविष्टपसुन्दरी । प्रियंवदा सुखक्षोणी कुतोऽन्या प्रमदेदृशी ॥३८॥
एवं चिन्ताभराक्रान्तचित्तः परमदु.खितः । वेपितात्माभवत्पद्मश्चलत्पद्माकरोपमः ॥३९॥
ततः केवलिनो वाक्यं संस्मृत्य विधृतास्रकः । कृच्छ्रसंस्तम्भितौत्सुक्यो बभूव विगतज्वरः ॥४०॥

समान मालूम होती थी अथवा कुमुदोके समूहको विकसित करनेवाली कार्तिकी पूर्णिमाकी चाँदनीके समान विदित होती थी, अथवा जो महाविरागसे ऐसी जान पड़ती थी मानो दीक्षाको प्राप्त हुई साक्षात् लक्ष्मी ही हो, अथवा शरीरको धारण करनेवाली साक्षात् जिनशासनकी देवी ही हो ॥२४–२७॥ ऐसी उस सीताको देख सम्भ्रमसे जिनका हृदय टूट गया था ऐसे राम क्षण-भर कल्पवृक्षके समान निश्चल खड़े रहे ॥२८॥ स्वभावसे निश्चल नेत्र और भृकुटियोकी प्राप्ति होनेपर इस साध्वी सीताका ध्यान करते हुए राम ऐसे जान पड़ते थे मानो शरद् ऋतुकी मेघमालाके समीप कोई पर्वत ही खड़ा हो ॥२९॥ सीताको देख-देखकर राम विचार कर रहे थे कि यह मेरी भुजाओरूपी पिंजरेके भीतर विद्यमान उत्तम सेना है अथवा मेरे नेत्ररूपी कुमुदिनीके लिए स्वभावतः चन्द्रमाकी कला है ॥३०॥ जो मेरे साथ रहनेपर भी मेघके शब्दसे भी भयको प्राप्त हो जाती थी वह बेचारी तपस्विनी भयकर वनमे किस प्रकार भयभीत नही होगी ? ॥३१॥ विलम्बकी गुरुताके कारण जो सुन्दर एवं अलसायी हुई चाल चलती थी वह सुकोमल सीता तपके द्वारा निश्चित ही नाशको प्राप्त हो जायेगी ॥३२॥ कहाँ यह शरीर और कहाँ जिनेन्द्रका कठोर तप ? जो हिम वृक्षको जला देता है उसे कमलिनीके जलानेमे क्या परिश्रम है ? ॥३३॥ जिसने पहले इच्छानुसार परम मनोहर अन्न खाया है, वह अब जिस किसी तरह प्राप्त हुई भिक्षाको कैसे ग्रहण करेगा ? ॥३४॥ वीणा, बाँसुरी तथा मृदंगके मांगलिक शब्दोंसे युक्त तथा स्वर्गलोकके सदृश उत्तम भवनमे स्थित जिस सीताकी निद्रा, उत्तम शय्यापर सेवा करती थी वही कातर सीता अब डाभकी अनियोसे व्याप्त एवं मृगोके शब्दसे व्याप्त वनमे भयानक रात्रिको किस तरह बितावेगी ? ॥३५–३६॥ देखो, चित्त मोहसे युक्त है ऐसे मैंने क्या किया ? न कुछ साधारण मनुष्योकी निन्दासे प्रेरित हो प्राणवल्लभा छोड़ दी ॥३७॥ जो अनुकूल है, प्रिय है, पतिव्रता है, सर्व संसारकी अद्वितीय सुन्दरी है, प्रिय वचन बोलनेवाली है, और सुखकी भूमि है ऐसी दूसरी स्त्री कहाँ है ?॥३८॥ इस तरह चिन्ताके भारसे जिनका चित्त व्याप्त था, जो अत्यन्त दुखी थे, तथा जिनकी आत्मा काँप रही थी ऐसे राम चंचल कमलाकरके समान हो गये ॥३९॥ तदनन्तर केवलीके वचनोंका स्मरण कर जिन्होने उमड़ते हुए आँसू रोके थे तथा जो बड़ी कठिनाईसे अपनी उत्सुकता

१. परं मनोहरं म । २ स्वर्गतुल्यभवनस्थिताम् ।

अथ स्वाभाविकीं दृष्टिं बिभ्राणः सहसंभ्रमः । अधिगम्य सतीं सीतां भक्तिस्नेहान्वितोऽनमत् ॥४१॥
नारायणोऽपि सौम्यात्मा प्रणम्य रचिताञ्जलिः । अभ्यनन्दयदार्यां तां पद्मनाभमनुब्रुवन् ॥४२॥
धन्या भगवति त्वं नो वन्द्या जाता सुचेष्टिता । शीलाचलेश्वरं या त्वं क्षितिवद्वहसेऽधुना ॥४३॥
जिनवागमृतं लब्धं परमं प्रथमं त्वया । [1]निरुक्तं येन संसारसमुद्रं प्रतरिष्यसि ॥४४॥
अपरासामपि स्त्रीणां सतीनां चारुचेतसाम् । इयमेव गतिर्भूयाल्लोकद्वितयशंसिवा ॥४५॥
आत्मा कुलद्वयं लोकस्त्वया सर्वं प्रसाधितम् । एवंविधं क्रियायोगं भजन्त्या साधुचित्तया ॥४६॥
क्षन्तव्यं यत्कृतं किंचित्सुनये साध्वसाधु वा । संसारभावसक्तानां स्खलितं च पदे पदे ॥४७॥
त्वयैवविधया शान्ते जिनशासनसक्तया । परमानन्दित चित्तं विषाद्यपि मनस्विनि ॥४८॥
अभिनन्द्येति वैदेही प्र[2]हृष्टमनसाविव । प्रयातौ नगरीं कृत्वा पुरस्ताल्लवणाङ्कुशौ ॥४९॥
विद्याधरमहीपालाः प्रमोदं परमं गताः । विस्मयाकम्पिता भूत्या परया ययुरग्रतः ॥५०॥
मध्ये राजसहस्राणां वर्तमानौ मनोहरौ । पुरं विविशतुर्वीराविन्द्राविव सुरावृतौ ॥५१॥
देव्यस्तदग्रतो नानायानारूढा विचेतसः । प्रययु. परिवारेण यथाविधि समाश्रिताः ॥५२॥
प्रविशन्तं [3]बलं वीक्ष्य नार्यः प्रासादमूर्द्धगाः । विचित्ररससंपन्नमभाषन्त परस्परम् ॥५३॥
अयं श्रीबलदेवोऽसौ मानी शुद्धिपरायणः । अनुकूला प्रिया येन हारिता सुविपश्चिता ॥५४॥
जगौ काचित्प्रवीराणां विशुद्धकुलजन्मनाम् । नराणां स्थितिरेषैव कृतमेतेन सुन्दरम् ॥५५॥

को रोक सके थे ऐसे श्रीराम किसी तरह पीड़ा रहित हुए ॥४०॥ अथानन्तर स्वाभाविक दृष्टिको धारण करते हुए रामने सम्भ्रमके साथ सती सीताके पास जाकर भक्ति और स्नेहके साथ उसे नमस्कार किया ॥४१॥ रामके साथ ही साथ सौम्यहृदय लक्ष्मणने भी हाथ जोड़ प्रणाम कर आर्या सीताका अभिनन्दन किया ॥४२॥ और कहा कि हे भगवति ! तुम धन्य हो, उत्तम चेष्टाकी धारक हो और यतश्च इस समय पृथिवीके समान शीलरूपी सुमेरुको धारण कर रही हो अतः हम सबकी वन्दनीय हो ॥४३॥ जिसके द्वारा तुम संसार-समुद्रको चुपचाप पार करोगी वह श्रेष्ठ जिनवचनरूपी अमृत सर्वप्रथम तुमने ही प्राप्त किया है ॥४४॥ हम चाहते हैं कि सुन्दर चित्तकी धारक अन्य पतिव्रता स्त्रियोकी भी दोनों लोकोमे प्रशंसनीय यही गति हो ॥४५॥ इस प्रकारके क्रियायोगको प्राप्त करनेवाली एव उत्तम चित्तकी धारक तुमने अपनी आत्मा दोनो कुल तथा लोक सब कुछ वशमे किया है ॥४६॥ हे सुनये ! हमने जो कुछ साधु अथवा असाधु—अच्छा या बुरा कर्म किया है वह क्षमा करने योग्य है क्योकि संसार दशामे आसक्त मनुष्योसे भूल पद-पदपर होती है ॥४७॥

हे शान्ते ! हे मनस्विनि ! इस तरह जिन-शासनमे आसक्त रहनेवाली तुमने मेरे विषाद-युक्त चित्तको भी अत्यन्त आनन्दित कर दिया है ॥४८॥ इस प्रकार सीताकी प्रशसा कर प्रसन्न चित्तकी तरह राम तथा लक्ष्मण, लवण और अंकुशको आगे कर नगरीकी ओर चले ॥४९॥ परम हर्षको प्राप्त हुए विद्याधर राजा विस्मयाकम्पित होते हुए बडे वैभवसे आगे-आगे जा रहे थे ॥५०॥ हजारो राजाओके मध्यमे वर्तमान दोनो मनोहर वीरोने, देवोसे घिरे हुए इन्द्रोके समान नगरमे प्रवेश किया ॥५१॥ उनके आगे नाना प्रकारके वाहनोपर आरूढ, बेचैन एवं अपने-अपने परिकरसे विधिपूर्वक सेवित रानियाँ जा रही थी ॥५२॥ रामको प्रवेश करते देख महलके शिखरों-पर आरूढ़ स्त्रियाँ, विचित्र रससे युक्त परस्पर वार्तालाप कर रही थी ॥५३॥ कोई कह रही थी कि ये राम बड़े मानी तथा शुद्धिमे तत्पर है कि जिन्होने विद्वान् होकर भी अपनी अनुकूल प्रिया हरा दी है—छोड़ दी है ॥५४॥ कोई कह रही थी कि विशुद्ध कुलमे जन्म लेनेवाले वीर मनुष्योकी

---

१. निसक्तं -म. । २ प्रकृष्टमनसाविव म । ३ रामम् ।

एवं सति विशुद्धात्मा प्रव्रज्यां समुपागता । कस्य नो जानकी जाता मनसः सौख्यकारिणी ॥५६॥
अन्योचे सखि पश्येमं वैदेह्या पद्मसुज्झितम् । ज्योत्स्नया शशिनं मुक्तं दीप्त्या विरहितं रविम् ॥५७॥
अन्योचे किं परायत्तकान्तिरस्य करिष्यति । स्वयमेवातिकान्तस्य बलदेवस्य धीमतः ॥५८॥
काचिदूचे त्वया सीते किं कृतं पुरुषोत्तमम् । ईदृशं नाथमुज्झित्वा वज्रदारुणचित्तया ॥५९॥
जगावन्या परं सीता धन्या चित्तवती सती । यथार्था या गृहानर्थान्निःसृता स्वहितोद्यता ॥६०॥
काचिदूचे कथं धीरौ त्वयेमौ सुकुमारकौ । रहितौ मानसानन्दौ सुभक्तौ सुकुमारकौ ॥६१॥
कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्तं भर्त्तरि योषिताम् । स्वस्तन्यकृतपोषेषु जातेषु न तु जातुचित् ॥६२॥
अन्योचे परमावेतौ पुरुषौ पुण्यपोषणौ । किमत्र कुरुते माता स्वकर्मनिरते जने ॥६३॥
एवमादिकृतालापाः पद्मवीक्षणतत्पराः । न तृप्तियोगमासेदुर्मधुकर्य इव स्त्रियः ॥६४॥
केचिल्लक्ष्मणमैक्षन्त जगदुश्च नरोत्तमाः । सोऽयं नारायणः श्रीमान्प्रभावाक्रान्तविष्टपः ॥६५॥
चक्रपाणिरयं राजा लक्ष्मीपतिरनुत्तमः । साक्षादरातिदाराणां वैधव्यव्रतविग्रहः ॥६६॥

आर्यागीतिच्छन्दः

एवं प्रशस्यमानौ नमस्यमानौ च पौरलोकसमूहैः ।
स्वभवनमनुप्रविष्टौ स्वयंप्रभं वरविमानमिव देवेन्द्रौ ॥६७॥

यही रीति है। इन्होंने जो किया है वह ठीक किया है ॥५५॥ इस प्रकारकी घटनासे निष्कलंक हो दीक्षा धारण करनेवाली जानकी किसके मनके लिए सुख उत्पन्न करनेवाली नही है? ॥५६॥ कोई कह रही थी कि हे सखि! सीतासे रहित इन रामको देखो। ये चाँदनीसे रहित चन्द्रमा और दीप्तिसे रहित सूर्यके समान जान पड़ते है ॥५७॥ कोई कह रही थी कि बुद्धिमान् राम स्वयं ही अत्यन्त सुन्दर हैं, दूसरेके आधीन होनेवाली कान्ति इनका क्या करेगी? ॥५८॥ कोई कह रही थी कि हे सीते! ऐसे पुरुषोत्तम पतिको छोड़कर तूने क्या किया? यथार्थमे तू वज्रके समान कठोर चित्तवाली है ॥५९॥

कोई कह रही थी कि सीता परमधन्य, विवेकवती, पतिव्रता एवं यथार्थ स्त्री है जो कि आत्महितमे तत्पर हो घरके अनर्थसे निकल गयी—दूर हो गयी ॥६०॥ कोई कह रही थी कि हे सीते! तेरे द्वारा ये दोनो सुकुमार, मनको आनन्द देनेवाले तथा अत्यन्त भक्त पुत्र कैसे छोड़े गये? ॥६१॥

कदाचित् भर्तापर स्थित स्त्रियोका प्रेम विचलित हो जाता है परन्तु अपने दूधसे पुष्ट किये हुए पुत्रोपर कभी विचलित नही होता ॥६२॥ कोई कह रही थी कि दोनों कुमार पुण्यसे पोषण प्राप्त करनेवाले परमोत्तम पुरुष हैं। यहाँ माता क्या करती है? जब कि सब लोग अपने-अपने कर्ममे निरत हैं अर्थात् कर्मानुसार फल प्राप्त करते है ॥६३॥

इस प्रकार वार्तालाप करनेवाली तथा पद्म अर्थात् राम (पक्षसे कमल) के देखनेमे तत्पर स्त्रियाँ भ्रमरियोके समान तृप्तिको प्राप्त नही हुईं ॥६४॥ कितने ही उत्तम मनुष्य लक्ष्मणको देखकर कह रहे थे कि यह वह नारायण है कि जो अद्भुत लक्ष्मीसे सहित है, अपने प्रभावसे जिसने संसारको आक्रान्त कर रखा है,जो हाथमें चक्ररत्नको धारण करनेवाला है, देदीप्यमान है, लक्ष्मीपति है, सर्वोत्तम है और शत्रु-स्त्रियोका मानो साक्षात् शरीरधारी वैधव्य व्रत ही है ॥६५-६६॥

इस प्रकार नगरवासी लोगोके समूह प्रशंसा कर जिन्हें नमस्कार कर रहे थे ऐसे राम और लक्ष्मण अपने भवनमे उस तरह प्रविष्ट हुए जिस तरह कि दो इन्द्र स्वय विमानमे प्रविष्ट होते हैं ॥६७॥

अनुष्टुप्

[1]एतत् पद्मस्य चरितं यो निबोधति संततम् ।
अपापो लभते लक्ष्मीं स भाति च परं रवेः ॥६८॥

इत्यार्षे श्रीपद्मचरिते श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते प्रव्रजितसीताभिधानं नाम सप्तोत्तरशतं पर्व ॥१०७॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य रामके इस चरितको निरन्तर जानता है—अच्छी तरह इसका अध्ययन करता है वह निष्पाप हो लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा सूर्यसे भी अधिक शोभायमान होता है ॥६८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सीताकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला एक सौ सातवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०७॥



१. एवं म ।

अष्टोत्तरशतं पर्व

पद्मस्य चरितं राजा श्रुत्वा दुरितदारणम् । निर्मुक्तसंशयात्मानं व्यशोचदिति चेतसा ॥१॥
निरस्तः सीतया दूरं स्नेहबन्धः स तादृशः । सहिष्यते महाचर्यां सुकुमारा कथं नु सा ॥२॥
पश्य धात्रा[1] मृगाक्षौ तौ मात्रा विरहमाहृतौ । सर्वर्द्धिद्युतिसंपन्नौ कुमारौ लवणाङ्कुशौ ॥३॥
तातावशेषतां प्राप्तौ कथं मातृवियोगजम् । दुःखं तौ विसहिष्येते निरन्तरसुखैधितौ ॥४॥
महौजसामुदाराणां विषमं जायते तदा । तत्र शेषेषु कावस्था ध्यात्वेत्यूचे गणाधिपम् ॥५॥
सर्वज्ञेन ततो दृष्टं जगत्प्रत्ययमागतम् । इन्द्रभूतिर्जगौ तस्मै चरितं लवणाङ्कुशम् ॥६॥
अभूच्च पुरि काकन्द्यामधिपो रतिवर्द्धनः । पत्नी सुदर्शना तस्य पुत्रौ प्रियहितंकरौ ॥७॥
अमात्यः सर्वगुप्ताख्यो राज्यलक्ष्मीधुरंधरः । ज्ञेयः प्रभोः प्रतिस्पर्द्धी वधोपायपरायणः ॥८॥
अमात्यवनिता रक्ता राजानं विजयावली । शनैरबोधयद् गत्वा पत्या कार्यं समीहितम् ॥९॥
बहिरप्रत्ययं राजा श्रितः प्रत्ययमान्तरम् । अभिज्ञानं ततोऽवोचदेतस्मै विजयावली ॥१०॥
कलहं सदसि श्वोऽसौ ससुत्कोपयिता तव । परस्त्रीविरतो राजा बुद्ध्यैव पुनरग्रहीत् ॥११॥
अब्रवीच्च कथं मेऽसौ पर भक्तोऽपभाषते । विजयावलि संभाव्यं कदाचिदपि नेदृशम् ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिक रामका पापापहारी चरित सुनकर अपने आपको संशययुक्त मानता हुआ मनमे इस प्रकार विचार करने लगा कि यद्यपि सीताने दूर तक बढ़ा हुआ उस प्रकारका स्नेहबन्धन तोड़ दिया है फिर भी सुकुमार शरीरकी धारक सीता महाचर्याको किस प्रकार कर सकेगी ? ॥१–२॥ देखो, विधाताने मृगके समान नेत्रोको धारण करनेवाले, सर्व-ऋद्धि और कान्तिसे सम्पन्न दोनों लवणांकुश कुमारोको माताका विरह प्राप्त करा दिया। अब पिता ही उनके शेष रह गये सो निरन्तर सुखसे वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों कुमार माताके वियोग-जन्य दुखको किस प्रकार सहन करेगे ? ॥३–४॥ जब महाप्रतापी बड़े-बड़े पुरुषोकी भी ऐसी विषम दशा होती है तब अन्य लोगोकी तो बात ही क्या है ? ऐसा विचार कर श्रेणिक राजाने गौतम गणधरसे कहा कि सर्वज्ञदेवने जगत्का जो स्वरूप देखा है उसका मुझे प्रत्यय है—श्रद्धान है। तदनन्तर इन्द्रभूति गणधर, श्रेणिकके लिए लवणांकुशका चरित कहने लगे ॥५–६॥

उन्होने कहा कि हे राजन् ! काकन्दी नगरीमे राजा रतिवर्धन रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुदर्शन था और उन दोनोके प्रियंकर नामक दो पुत्र थे ॥७॥ राजाका एक सर्वगुप्त नामका मन्त्री था जो यद्यपि राज्यलक्ष्मीका भार धारण करनेवाला था तथापि वह राजाके साथ भीतर ही भीतर स्पर्धा रखता था और उसके मारनेके उपाय जुटानेमे तत्पर रहता था ॥८॥ मन्त्रीकी स्त्री विजयावली राजामे अनुरक्त थी इसलिए उसने धीरेसे जाकर राजाको मन्त्रीकी सब चेष्टा बतला दी ॥९॥ राजाने बाह्यमे तो विजयावलीकी बातका विश्वास नही किया किन्तु अन्तरंगमे उसका विश्वास कर लिया। तदनन्तर विजयावलीने राजाके लिए उसका चिह्न भी बतलाया ॥१०॥ उसने कहा कि मन्त्री कल सभामे आपकी कलहको बढ़ादेगा अर्थात् आपके प्रति बक-झक करेगा। परस्त्रीविरत राजाने इस बातको बुद्धिसे ही पुनः ग्रहण किया अर्थात् अन्तरंगमे तो इसका विश्वास किया बाह्यमे नही ॥११॥ बाह्यमे राजाने कहा कि हे विजयावलि ! वह तो मेरा

---

१. दैवेन ।

ततोऽन्यत्र दिने चिह्नं भावं ज्ञात्वा महीपतिः । क्षमानिवारणेनैव प्रैरयद्दुरितागमम् ॥१३॥
राजा क्रोशति मामेष इत्युक्त्वा प्रतिपत्तित. । सामन्तानभिनत्सर्वानमात्यः पापमानसः ॥१४॥
राजवासगृहं रात्रौ ततोऽमात्यो महेन्धनैः । अदीपयन्महीशस्तु प्रमादरहितः सदा ॥१५॥
प्राकारपुटगुप्तेन प्रदेशेन सुरङ्गया । भार्यां पुत्रौ पुरस्कृत्य निःससार शनै. सुधीः ॥१६॥
यातश्च कशिपुं तेन काशीपुर्यां महीपतिम् । न्यायशीलं स्वसामन्तमुग्रवंशधुरन्धरम् ॥१७॥
राज्यस्थः सर्वगुप्तोऽथ दूतं संप्राहिणोद्यथा । कशिपो मां नमस्येति ततोऽसौ प्रत्यभाषत ॥१८॥
[1]स्वामिघातकृतो हन्ता दुःखदुर्गतिभाक् खलः । एवंविधो न नाम्नापि कीर्त्यते सेव्यते कथम् ॥१९॥
सयोषित्तनयो दग्धो येनेशो रतिवर्द्धनः । स्वामिस्त्रीबालघातं तं न स्मर्त्तुमपि वर्त्तते ॥२०॥
पापस्यास्य शिरश्छित्वा सर्वलोकस्य पश्यतः । नन्वद्यैव करिष्यामि रतिवर्द्धननिष्क्रयम् ॥२१॥
एव तं दूतमत्यस्य दूरं वाक्यमपास्य स । अमूढो दुर्मतं यद्वत्स्थितः कर्त्तव्यवस्तुनि ॥२२॥
स्वामिभक्तिपरस्यास्य कशिपोर्बलशालिन· । अभूदक्षि प्रगन्तव्यममात्यं प्रति सर्वदा ॥२३॥
सर्वगुप्तो महासैन्यसमेतः सह पार्थिवैः । दूतप्रचोदितः प्राप चक्रवर्त्तीव मानवान् ॥२४॥
काशिदेशं तु विस्तीर्णं प्रविष्टः सागरोपमः । संधानं कशिपुर्नैच्छद्योद्धव्यमिति निश्चित. ॥२५॥
रतिवर्द्धनराजेन प्रेषितः कशिपुं प्रति । दण्डपाणिर्युगं प्राप्त प्रविष्टश्च निशागमे ॥२६॥

परम भक्त है वह ऐसा विरुद्ध भाषण कैसे कर सकता है ? तुमने जो कहा है वह तो किसी तरह सम्भव नही है ॥१२॥ तदनन्तर दूसरे दिन राजाने उक्त चिह्न जानकर अर्थात् कलहका अवसर जान क्षमारूप शस्त्रके द्वारा उस अनिष्टको टाल दिया ॥१३॥ 'यह राजा मेरे प्रति क्रोध रखता है—अपशब्द कहता है' ऐसा कहकर पापी मन्त्रीने सब सामन्तोको भीतर ही भीतर फोड़ लिया ॥१४॥ तदनन्तर किसी दिन उसने रात्रिके समय राजाके निवासगृहको बहुत भारी ईंधनसे प्रज्वलित कर दिया परन्तु राजा सदा सावधान रहता था ॥१५॥ इसलिए वह बुद्धिमान्, स्त्री और दोनो पुत्रोको लेकर प्राकार-पुटसे सुगुप्त प्रदेशमे होता हुआ सुरंगसे धीरे-धीरेसे बाहर निकल गया ॥१६॥ उस मार्गसे निकलकर वह काशीपुरीके राजा कशिपुके पास गया। राजा कशिपु न्यायशील, उग्रवंशका प्रधान एवं उसका सामन्त था ॥१७॥ तदनन्तर जब सर्वगुप्त मन्त्री राज्यगद्दीपर बैठा तब उसने दूत द्वारा सन्देश भेजा कि हे कशिपो ! मुझे नमस्कार करो। इसके उत्तरमे कशिपुने कहा ॥१८॥ वह स्वामीका घात करनेवाला दुष्ट दुःखपूर्ण दुर्गतिको प्राप्त होगा। ऐसे दुष्टका तो नाम भी नहीं लिया जाता फिर सेवा कैसे की जावे ॥१९॥ जिसने स्त्री और पुत्रो सहित अपने स्वामी रतिवर्धनको जला दिया उस स्वामी, स्त्री और बालघातीका तो स्मरण करना भी योग्य नही है ॥२०॥ इस पापीका सब लोगोके देखते-देखते शिर काटकर आज ही रतिवर्धनका बदला चुकाऊँगा, यह निश्चय समझो ॥२१॥ इस तरह, जिस प्रकार विवेकी मनुष्य मिथ्यामतको दूर हटा देता है उसी प्रकार उस दूतको दूर हटाकर तथा उसकी बात काटकर वह करने योग्य कार्यमे तत्पर हो गया ॥२२॥ तदनन्तर स्वामि-भक्तिमे तत्पर इस बलशाली कशिपुकी दृष्टि, सदा चढ़ाई करनेके योग्य मन्त्रीके प्रति लगी रहती थी ॥२३॥

तदनन्तर दूतसे प्रेरित, चक्रवर्तीके समान मानी, सर्वगुप्त मन्त्री बड़ी भारी सेना लेकर अनेक राजाओके साथ आ पहुँचा ॥२४॥ यद्यपि समुद्रके समान विशाल सर्वगुप्त, लम्बे-चौड़े काशी देशमे प्रविष्ट हो चुका था तथापि कशिपुने सन्धि करनेकी इच्छा नही की किन्तु युद्ध करना चाहिए इसी निश्चयपर वह दृढ रहा आया ॥२५॥ उसी दिन रात्रिका प्रारम्भ होते ही

१. कृत स्वामिघातो येन स स्वामिघातकृतः 'वाहिताग्न्यादिषु' इति क्तान्तस्य परनिपात. । स्वामिघातकृत हन्ता म , ब , ज. ।

जगौ च वर्द्धसे दिष्ट्या देवेतो रतिवर्द्धनः । क्वासौ क्वासाविति स्फीतः तुष्टः कशिपुरभ्यधात् ॥२७॥
उद्याने स्थित इत्युक्ते सुतरां प्रमदान्वितः । निर्ययावर्घपाद्येन सोऽन्तःपुरपुरःसर. ॥२८॥
जयत्यजेयराजेन्द्रो रतिवर्द्धन इत्यभूत् । उत्सवो दर्शने तस्य कशिपोर्दानमानत. ॥२९॥
संयुगे सर्वगुप्तस्य जीवतो ग्रहणं ततः । रतिवर्द्धनराजस्य काकन्द्यां राज्यसंगमः ॥३०॥
विज्ञाय ते हि जीवन्तं स्वामिनं रतिवर्द्धनम् । सामन्त. संगता [1]मुक्त्वा सर्वगुप्तं रणान्तरे ॥३१॥
पुनर्जन्मोत्सवश्चक्रे रतिवर्द्धनभूभृतः । महद्भिर्दानसंमानैर्दैवतानां च पूजनैः ॥३२॥
नीतः प्रत्यन्तवासित्वं मृततुल्यममात्यकः । दर्शनेनोज्झितः पापः सर्वलोकविगर्हितः ॥३३॥
कशिपुः काशिराजोऽसौ वाराणस्यां महाद्युतिः । रेमे परमया लक्ष्म्या लोकपाल इवापर. ॥३४॥
अथ भोगविनिर्विण्णः कदाचिद्रतिवर्द्धनः । श्रमणत्वं भदन्तस्य सुभानोरन्तिकेऽग्रहीत् ॥३५॥
भामोत्तया कृतो भेदः सर्वगुप्तेन निश्चित. । ततो विद्वेष्यतां प्राप्ता परम तस्य भामिनी ॥३६॥
नाह जाता नरेन्द्रस्य न पत्युरिति शोकिनी । अकामतपसा जाता राक्षसी विजयावली ॥३७॥
उपसर्गे तयोदारे क्रियमाणेऽतिवैरतः । सुध्याने केवलं राज्यं संप्राप्तो रतिवर्द्धनः ॥३८॥
श्रामण्यं विमलं कृत्वा प्रियंकरहितंकरौ । ग्रैवेयकस्थितिं प्राप्तौ चतुर्थभवतः परम् ॥३९॥
शामल्यां दामदेवस्य तत्रैव पुरि नन्दनौ । वसुदेवसुदेवाख्यौ गुण्याचरयामितौ[2] द्विजौ ॥४०॥

रतिवर्धन राजाके द्वारा कशिपुके प्रति भेजा हुआ एक युवा दण्ड हाथमे लिये वहाँ आया और बोला कि हे देव ! आप भाग्यसे बढ रहे हैं क्योंकि राजा रतिवर्द्धन यहाँ विद्यमान है। इसके उत्तरमे हर्षसे फूले हुए कशिपुने सन्तुष्ट होकर कहा कि वे कहाँ हैं ? वे कहाँ है ? ॥२६–२७॥ 'उद्यानमे स्थित है' इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त हर्षसे युक्त कशिपु अन्त.पुरके साथ अर्घ तथा पादोदक साथ ले निकला ॥२८॥ 'जो किसीके द्वारा जीता न जाये ऐसा राजाधिराज रतिवर्धन जयवन्त है' यह सोचकर उसके दर्शन होनेपर कशिपुने दान-सम्मान आदिसे बड़ा उत्सव किया ॥२९॥ तदनन्तर युद्धमे सर्वगुप्त जीवित पकड़ा गया और राजा रतिवर्धनको राज्यकी प्राप्ति हुई ॥३०॥ जो सामन्त पहले सर्वगुप्तसे आ मिले थे वे स्वामी रतिवर्धनको जीवित जानकर रणके बीचमे ही सर्वगुप्तको छोड़ उसके पास आ गये थे ॥३१॥ बड़े-बड़े दान-सम्मान देवताओंका पूजन आदिसे रतिवर्धन राजाका फिरसे जन्मोत्सव किया गया ॥३२॥ और सर्वगुप्त मन्त्री चाण्डालके समान नगरके बाहर बसाया गया, वह मृतकके समान निस्तेज हो गया, उस पापीकी ओर कोई आँख उठाकर भी नही देखता था तथा सर्वलोकमें वह निन्दित हुआ ॥३३॥ महाकान्तिको धारण करनेवाला काशीका राजा कशिपु वाराणसीमे उत्कृष्ट लक्ष्मीसे ऐसी क्रीड़ा करता था मानो दूसरा लोकपाल ही हो ॥३४॥

अथानन्तर किसी समय राजा रतिवर्धनने भोगोंसे विरक्त हो सुभानु नामक मुनिराजके समीप जिनदीक्षा धारण कर ली ॥३५॥ सर्वगुप्तने निश्चय कर लिया कि यह सब भेद उसकी स्त्री विजयावलीका किया हुआ है इससे वह परम विद्वेष्यताको प्राप्त हुई अर्थात् मन्त्रीने अपनी स्त्रीसे अधिक द्वेष किया ॥३६॥ विजयावलीने देखा कि मैं न तो राजाकी हो सकी और न पतिकी ही रही इसीलिए शोकयुक्त हो अकाम तपकर वह राक्षसी हुई ॥३७॥ तीव्र वैरके कारण उसने रतिवर्धन मुनिके ऊपर घोर उपसर्ग किया परन्तु वे उत्तम ध्यानमे लीन हो केवलज्ञानरूपी राज्यको प्राप्त हुए ॥३८॥

राजा रतिवर्धनके पुत्र प्रियंकर और हितंकर निर्मल मुनिपद धारण कर ग्रैवेयकमे उत्पन्न हुए। इस भवसे पूर्व चतुर्थ भवमे वे शामली नामक नगरमें दामदेव नामक ब्राह्मणके वसुदेव

१. मुक्ता. म. । २. -मिमी म. ।

विश्वाप्रियङ्गुनामानौ स्त्रियौ सुवनिते तयोः। आसीद्गृहस्थभावश्च शंसनीयो मनीषिणाम् ॥४१॥
साध्वौ श्रीतिलकाभिख्ये दान दत्त्वा सुभावनौ। त्रिपल्यभोगितां प्राप्तौ सस्त्रीकावुत्तरे कुरौ ॥४२॥
साधुसद्दानवृक्षोत्थमहाफलसमुद्भवम्। भुक्त्वा भोगं परं तत्र प्राप्तावीशानवासिताम् ॥४३॥
भुक्तभोगौ ततश्च्युत्वा बोधिलक्ष्मीसमन्वितौ। क्षीणदुर्गतिकर्माणौ जातौ प्रियहितंकरौ ॥४४॥
चतुष्कर्मस्यारण्यं शुक्लध्यानेन वह्निना। निर्दह्य निर्वृतिं प्राप्तौ मुनीन्द्रो रतिवर्द्धन. ॥४५॥
कथितौ यौ समासेन वीरौ प्रियहितंकरौ। ग्रैवेयाच्च्युतकावेतौ भव्यौ तौ लवणाङ्कुशौ ॥४६॥
राजन् सुदर्शना देवी तनयात्यन्तवत्सला। भर्तृपुत्रवियोगार्त्ता स्त्रीस्वभावानुभावतः ॥४७॥
निदानश्रृङ्खलाबद्धा भ्राम्यन्ती दुःखसंकटम्। कृच्छ्र स्त्रीत्वं विनिर्जित्य भुक्त्वा विविधयोनिषु ॥४८॥
अयं क्रमेण सपन्नो मनुष्य. पुण्यचोदितः। सिद्धार्थो धर्मसक्तात्मा विद्याविधिविशारदः ॥४९॥
तत्पूर्वस्नेहसंसक्तौ बालकौ लवणाङ्कुशौ। अनेन संस्कृतौ जातौ त्रिदशैरपि दुर्जयौ ॥५०॥

उपजातिवृत्तम्

एवं विदित्वा सुलभौ नितान्तं जीवस्य लोके पितरौ सदैव।
कर्त्तव्यमेतद्विदुषां प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदुःखात् ॥५१॥
विमुच्य सर्वं भववृद्धिहेतुं कर्मोरुदु.खप्रभवं जुगुप्सम्।
कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्टं रविं तिरस्कृत्य शिव प्रयात ॥५२॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लवणाङ्कुशपूर्वभवाभिधान नामोऽष्टोत्तरशतं पर्व ॥१०८॥

और सुदेव नामके गुणी पुत्र थे ॥३९-४०॥ विश्वा और प्रियंगु नामकी उनकी स्त्रियाँ थी जिनके कारण उनका गृहस्थ पद विद्वज्जनोके द्वारा प्रशंसनीय था ॥४१॥ श्रीतिलक नामक मुनिराजके लिए उत्तम भावोसे दान देकर वे स्त्री सहित उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमिमे तीन पल्यकी आयुको प्राप्त हुए ॥४२॥ वहाँ साधु-दानरूपी वृक्षसे उत्पन्न महाफलसे प्राप्त हुए उत्तम भोग भोगकर वे ऐशान स्वर्गमे निवासको प्राप्त हुए ॥४३॥ तदनन्तर जो आत्मज्ञानरूपी लक्ष्मीसे सहित थे, तथा जिनके दुर्गतिदायक कर्म क्षीण हो गये थे ऐसे दोनो देव, वहाँसे भोग भोगकर च्युत हुए तथा पूर्वोक्त राजा रतिवर्धनके प्रियंकर और हितंकर नामक पुत्र हुए ॥४४॥

रतिवर्धन मुनिराज शुक्ल ध्यानरूपी अग्निके द्वारा अघातिया कर्मरूपी वनको जलाकर निर्वाणको प्राप्त हुए ॥४५॥ संक्षेपसे जिन प्रियंकर और हितकर वीरोका वर्णन किया गया है वे ही ग्रैवेयकसे च्युत हो भव्य लवण और अंकुश हुए ॥४६॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन्! काकन्दीके राजा रतिवर्धनकी जो पुत्रोसे अत्यन्त स्नेह करनेवाली सुदर्शना नामकी रानी थी वह पति और पुत्रोके वियोगसे पीड़ित हो स्त्रीस्वभावके कारण निदानबन्धरूपी साँकलसे बद्ध होती हुई दुःखरूपी संकटमे घूमती रही और नाना योनियोमे स्त्री पर्यायका उपभोग कर तथा बड़ी कठिनाईसे उसे जीतकर क्रमसे मनुष्य हुई। उसमे भी पुण्यसे प्रेरित धार्मिक तथा विद्याओकी विधिमे निपुण सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक हुई ॥४७-४९॥ उनमे पूर्व स्नेह होनेके कारण इस क्षुल्लकने लवण और अंकुश कुमारोको विद्याओसे इस प्रकार संस्कृत—सुशोभित किया जिससे कि वे देवोके द्वारा भी दुर्जय हो गये ॥५०॥ गौतम स्वामी कहते है कि इस प्रकार 'संसारमे प्राणीको माता-पिता सदा सुलभ है' ऐसा जानकर विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक ऐसा काम करना चाहिए कि जिससे वे शरीर सम्बन्धी दुःखसे छूट जावे ॥५१॥ संसार वृद्धिके कारण, विशाल दुःखोके जनक एवं निन्दित समस्त कर्मको छोड़कर हे भव्यजनो! जैनमतमे कहा हुआ तप कर तथा सूर्यको तिरस्कृत कर मोक्षकी ओर प्रयाण करो ॥५२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे लवणांकुशके पूर्वभवोंका वर्णन करनेवाला एक सौ आठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१०८॥

नवोत्तरशतं पर्व

पतिपुत्रान् परित्यज्य विष्टपख्यातचेष्टिता । निष्क्रान्ता कुरुते सीता यत्तत्कथयामि ते शृणु ॥१॥
तस्मिन् विहरते काले श्रीमान् सकलभूषणः । दिव्यज्ञानेन यो लोकमलोकं चावबुध्यते ॥२॥
अयोध्या सकला येन गृहाश्रमविधौ कृता । सुधृत्या सुस्थितिं प्राप्ता सद्धर्मप्रतिलम्भिना ॥३॥
प्रजा च सकला तस्य वाक्ये भगवतः स्थिता । रेजे साम्राज्ययुक्तेन राज्ञेव कृतपालना ॥४॥
सद्धर्मोत्सवसन्तानस्तत्र काले महोदयः । सुप्रबोधतमो लोकः साधुपूजनतत्परः ॥५॥
मुनिसुव्रतनाथस्य तत्तीर्थं भवनाशनम् । विराजतेतरां यद्वदरमल्लिजिनान्तरम् ॥६॥
अपि या त्रिदशस्त्रीणामतिशेते मनोज्ञताम् । तपसा शोषिता साभूत्सीता दग्धेव माधवी ॥७॥
महासंवेगसंपन्ना दुर्भावपरिवर्जिता । अत्यन्तनिन्दितं स्त्रीत्वं चिन्तयन्ती सती सदा ॥८॥
संसक्तभूरजोवस्त्रबद्धोरस्कशिरोरुहा । अस्नानस्वेदसंजातमलकञ्चुकधारिणी ॥९॥
अष्टमार्द्धर्तुकालादिकृतशास्त्रोक्तपारणा । शीलव्रतगुणासक्ता रत्यरत्यपवर्जिता ॥१०॥
अध्यात्मनियतात्यन्तं शान्ता स्वान्तवशात्मिका । तपोऽधिकुरुतेऽत्युग्रं जनान्तरसुदुःसहम् ॥११॥
मांसवर्जितसर्वाङ्गा व्यक्तास्थिस्नायुपञ्जरा । पार्थिवद्रव्यनिर्मुक्ता [1]पौस्तीव [2]प्रतियानना ॥१२॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते है कि हे श्रेणिक ! जिसकी चेष्टाएँ समस्त संसारमे प्रसिद्धि पा चुकी थी ऐसी सीता पति तथा पुत्रका परित्याग कर तथा दीक्षित हो जो कुछ करती थी वह तेरे लिए कहता हूँ सो सुन ॥१॥ उस समय यहाँ उन श्रीमान् सकलभूषण केवलीका विहार हो रहा था जो कि दिव्यज्ञानके द्वारा लोक-अलोकको जानते थे ॥२॥ जिन्होने समस्त अयोध्याको गृहाश्रमका पालन करनेमे निपुण, सन्तोषसे उत्तम अवस्थाको प्राप्त एवं समीचीन धर्मसे सुशोभित किया था ॥३॥ उन भगवान्के वचनमे स्थित समस्त प्रजा ऐसी सुशोभित होती थी मानो साम्राज्यसे युक्त राजा ही उसका पालन कर रहा हो ॥४॥ उस समयके मनुष्य समीचीन धर्मके उत्सव करनेवाले, महाभ्युदयसे सम्पन्न, सम्यग्ज्ञानसे युक्त एवं साधुओकी पूजा करनेमे तत्पर रहते थे ॥५॥ मुनिसुव्रत भगवान्का वह संसारापहारी तीर्थ उस तरह अत्यधिक सुशोभित हो रहा था जिस तरह कि अरनाथ और मल्लिनाथ जिनेन्द्रका अन्तर काल सुशोभित होता था ॥६॥

तदनन्तर जो सीता देवांगनाओंकी भी सुन्दरताको जीतती थी वह तपसे सूखकर ऐसी हो गयी जैसी जली हुई माधवी लता हो ॥७॥ वह सदा महासंवेगसे सहित तथा खोटे भावोसे दूर रहती थी तथा स्त्री पर्यायको सदा अत्यन्त निन्दनीय समझती रहती थी ॥८॥ पृथिवीकी धूलिसे मलिन वस्त्रसे जिसका वक्ष स्थल तथा शिरके बाल सदा आच्छादित रहते थे, जो स्नानके अभावमें पसीनासे उत्पन्न मैलरूपी कंचुकको धारण कर रही थी, जो ऋतुकालके चार आदि दिनोके बाद अर्थात् ऋतुकालमे उपवास रखकर उसके बाद शास्त्रकी आज्ञानुसार पारणा करती थी, शीलव्रत और मूलगुणोके पालन करनेमे तत्पर रहती थी, राग-द्वेषसे रहित थी, अध्यात्मके चिन्तनमे तत्पर रहती थी, अत्यन्त शान्त थी, जिसने अपने आपको अपने मनके अधीन कर रखा था, जो अन्य मनुष्योके लिए दुःसह, अत्यन्त कठिन तप करती थी, जिसका समस्त शरीर माससे रहित था जिसकी हड्डी और आँतोंका पंजर प्रकट दिख रहा था, जो पार्थिव तत्त्वसे रहित लकड़ी आदिसे

---

१. पुस्तनिर्मिता । २ प्रतिमेव ।

अवलीनकगण्डान्ता संवद्धा केवलं त्वचा । उत्कटभ्रूतटा शुष्का नदीव नितरामभात् ॥१३॥
युगमानमहीपृष्ठन्यस्तसौम्यनिरीक्षणा । तपःकारणदेहार्थं भिक्षां चक्रे यथाविधि ॥१४॥
[1]अन्यथात्वमिवानीता तपसा साधुचेष्टिता । नात्मीयपरकीयेन जनेनाज्ञायि गोचरे ॥१५॥
दृष्ट्वा तामेव कुर्वन्ति तस्या एव सदा कथाम् । न च प्रत्यभिजानन्ति तदा तामार्यिकां जनाः ॥१६॥
एवं द्वाषष्टिवर्षाणि तपः कृत्वा समुन्नतम् । त्रयस्त्रिंशद्दिनं कृत्वा परमाराधनाविधिम् ॥१७॥
उच्छिष्टं संस्तर यद्वत्परित्यज्य शरीरकम् । आरणाच्युतमारुह्य प्रतीन्द्रत्वमुपागमत् ॥१८॥
माहात्म्यं पश्यतेदृक्षं धर्मस्य जिनशासने । जन्तुः स्त्रीत्वं यदुज्झित्वा पुमान् जातः सुरप्रभुः ॥१९॥
तत्र कल्पे मणिच्छायासमुद्योतितपुष्करे । काञ्चनादिमहाद्रव्यविचित्रपरमाद्भुते ॥२०॥
सुमेरुशिखराकारे विमाने परिवारिणि । परमैश्वर्यसंपन्ना सप्राप्ता त्रिदशेन्द्रताम् ॥२१॥
देवीशतसहस्राणां नयनानां समाश्रयः । तारागणपरीवारः शशाङ्क इव राजते ॥२२॥
इत्यन्यानि च साधूनि चरितानि नरेश्वरः । पापघातीनि शुश्राव पुराणानि गणेश्वरात् ॥२३॥
राजोचे कस्तदा नाथो देवानामारणाच्युते । बभौ यस्य प्रतिस्पर्द्धी सीतेन्द्रोऽपि तपोबलात् ॥२४॥
मधुरित्याह भगवान् भ्राता यस्य स कैटभः । येन भुक्तं महैश्वर्यं द्वाविंशत्यब्धिसंमितम् ॥२५॥
चतुःषष्टिसहस्रेषु किंचिदग्रेष्वनुक्रमात् । वर्षाणां समतीतेषु सुकृतस्यावशेषतः ॥२६॥

बनी प्रतिमाके समान जान पड़ती थी, जिसके कपोल भीतर घुस गये थे, जो केवल त्वचासे आच्छादित थी, जिसका भ्रूकुटितल ऊँचा उठा हुआ था तथा उससे जो सूखी नदीके समान जान पड़ती थी। युग प्रमाण पृथिवीपर जो अपनी सौम्यदृष्टि रखकर चलती थी, जो तपके कारण शरीरकी रक्षाके लिए विधिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करती थी, जो उत्तम चेष्टासे युक्त थी, तथा तपके द्वारा उस प्रकार अन्यथाभावको प्राप्त हो गयी थी कि विहारके समय उसे अपने-पराये लोग भी नही पहचान पाते थे ॥९-१५॥ ऐसी उस सीताको देखकर लोग सदा उसीकी कथा करते रहते थे। जो लोग उसे एक बार देखकर पुनः देखते थे वे उसे 'यह वही है' इस प्रकार नही पहचान पाते थे ॥१६॥ इस प्रकार बासठ वर्ष तक उत्कृष्ट तपकर तथा तैंतीस दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर उपभुक्त विस्तरके समान शरीरको छोड़कर वह आरण-अच्युत युगलमे आरूढ हो प्रतीन्द्र पदको प्राप्त हुई ॥१७-१८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो! जिन-शासनमे धर्मका ऐसा माहात्म्य देखो कि यह जीव स्त्री पर्यायको छोड़ देवोका स्वामी पुरुष हो गया ॥१९॥

जहाँ मणियोंकी कान्तिसे आकाश देदीप्यमान हो रहा था तथा जो सुवर्णादि महाद्रव्योंके कारण विचित्र एवं परम आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला था ऐसे उस अच्युत स्वर्गमे वह अपने परिवारसे युक्त सुमेरुके शिखरके समान विमानमे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न प्रतीन्द्र पदको प्राप्त हुई ॥२०-२१॥ वहाँ लाखो देवियोके नेत्रोका आधारभूत वह प्रतीन्द्र, तारागणोके परिवारसे युक्त चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥२२॥ इस प्रकार राजा श्रेणिकने श्री गौतम गणधरके मुखारविन्दसे अन्य उत्तमोत्तम चरित्र तथा पापोको नष्ट करनेवाले अनेक पुराण सुने ॥२३॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने कहा कि उस समय आरणाच्युत कल्पमे देवोका ऐसा कौन अधिपति अर्थात् इन्द्र सुशोभित था कि सीतेन्द्र भी तपोबलसे जिसका प्रतिस्पर्धी था ॥२४॥ इसके उत्तरमे गणधर भगवान्‌ने कहा कि उस समय वह मधुका जीव आरणाच्युत स्वर्गका इन्द्र था, जिसका भाई कैटभ था तथा जिसने बाईस सागर तक इन्द्रके महान् ऐश्वर्यका उपभोग किया था ॥२५॥ अनुक्रमसे कुछ अधिक चौसठ हजार वर्ष बीत जानेपर अवशिष्ट पुण्यके प्रभावसे मधु और कैटभके जीव

१ अन्यथामिवानीता म [अन्यथात्वमिवानीता] इति पाठः सम्यक् प्रतिभाति । अन्यथामिव सा नीता ज. ।

इह प्रद्युम्नशाम्बौ तौ यावेतौ मधुकैटभौ । द्वारिकायां समुत्पन्नौ पुत्रौ कृष्णस्य भारते ॥२७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि चत्वारि च ततः परम् । रामायणस्य विज्ञेयमन्तरं भारतस्य च ॥२८॥
अरिष्टनेमिनाथस्य तीर्थे नाकादिह च्युतः । मधुर्बभूव रुक्मिण्यां वासुदेवस्य नन्दनः ॥२९॥
मगधाधिपतिः प्राह नाथ वागमृतस्य ते । अतृप्तिमुपगच्छामि धनस्येव धनेश्वर. ॥३०॥
तावन्मधो. सुरेन्द्रस्य चरितं विनिगद्यताम् । भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रसादः क्रियतां मम ॥३१॥
कैटभस्य च तद्भ्रातुरवधानपरायण । गणेन्द्र चरितं ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव ॥३२॥
आसीदन्यभवे तेन किं कृतं प्रकृतं भवेत् । कथं वा त्रिजगच्छ्रेष्ठा लब्धा बोधिः सुदुर्लभा ॥३३॥
क्रमवृत्तिरियं वाणी तावकी धीश्च मामिका । उत्सुकं च परं चित्तमहो युक्तमनुक्रमात् ॥३४॥
गण्याह मगधाभिख्ये देशेऽस्मिन्सर्वसस्यके । चातुर्वर्ण्यप्रमुदिते धर्मकामार्थसंयुते ॥३५॥
चारुचैत्यालयाकीर्णे पुरग्रामाकराचिते । नद्युद्यानमहारम्ये साधुसंघसमाकुले ॥३६॥
राजा नित्योदितो नाम तत्र कालेऽभवन्महान् । शालिग्रामोऽस्ति तत्रैव देशे ग्राम. पुरोपमः ॥३७॥
ब्राह्मणः सोमदेवोऽत्र भार्या तस्याग्निलेत्यभूत् । विज्ञेयौ तनयौ तस्या [1]वह्निमारुतभूतिकौ ॥३८॥
षट्कर्मविधिसंपन्नौ वेदशास्त्रविशारदौ । अस्मत्तः कोऽपरोऽस्तीति नित्यं पण्डितमानिनौ ॥३९॥
अभिमानमहादाहसंजातोद्धतविभ्रमौ । भोग एव सदा सेव्य इति धर्मपराङ्मुखौ ॥४०॥

भरतक्षेत्रकी द्वारिका नगरीमे महाराज श्रीकृष्णके प्रद्युम्न तथा शाम्ब नामके पुत्र हुए ॥२६–२७॥ इस तरह रामायण और महाभारतका अन्तर कुछ अधिक चौसठ हजार वर्ष जानना चाहिए ॥२८॥ अरिष्टनेमि तीर्थंकरके तीर्थमे मधुका जीव स्वर्गसे च्युत होकर इसी भरत क्षेत्रमे श्रीकृष्णकी रुक्मिणी नामक स्त्रीसे प्रद्युम्न नामक पुत्र हुआ ॥२९॥ यह सुनकर राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे कहा कि हे नाथ! जिस प्रकार धनवान् मनुष्य धनके विषयमे तृप्तिको प्राप्त नहीं होता है उसी प्रकार मै भी आपके वचनरूपी अमृतके विषयमे तृप्तिको प्राप्त नही हो रहा हूँ ॥३०॥ हे भगवन्! आप मुझे अच्युतेन्द्र मधुका पूरा चरित्र कहिए मैं सुननेकी इच्छा करता हूँ, मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३१॥ इसी प्रकार हे ध्यानमे तत्पर गणराज! मधुके भाई कैटभका भी पूर्ण चरित कहिए क्योकि आपको वह अच्छी तरह विदित है ॥३२॥ उसने पूर्वभवमे कौन-सा उत्तम कार्य किया था तथा तीनो जगत्‌मे श्रेष्ठ अतिशय दुर्लभ रत्नत्रयकी प्राप्ति उसे किस प्रकार हुई थी? ॥३३॥ हे भगवन्! आपकी यह वाणी क्रम-क्रमसे प्रकट होती है, और मेरी बुद्धि भी क्रम-क्रमसे पदार्थको ग्रहण करती है तथा मेरा चित्त भी अनुक्रमसे अत्यन्त उत्सुक हो रहा है इस तरह सब प्रकरण उचित ही जान पड़ता है ॥३४॥

तदनन्तर गौतम गणधर कहने लगे कि जो सर्व प्रकारके धान्यसे सम्पन्न है, जहाँ चारो वर्णके लोग अत्यन्त प्रसन्न है, जो धर्म, अर्थ और कामसे सहित है, सुन्दर-सुन्दर चैत्यालयोसे युक्त है, पुर ग्राम तथा खानो आदिसे व्याप्त है, नदियो और बाग-बगीचोसे अत्यन्त सुन्दर है, मुनियोके संघसे युक्त है ऐसे इस मगध नामक देशमे उस समय नित्योदित नामका बड़ा राजा था। उसी देशमे नगरकी समता करनेवाला एक शालिग्राम नामका गाँव था ॥३५–३७॥ उस ग्राममे एक सोमदेव नामका ब्राह्मण था। अग्निला उसकी स्त्री थी और उन दोनोके अग्निभूति तथा वायुभूति नामके दो पुत्र थे ॥३८॥ वे दोनो ही पुत्र सन्ध्या-वन्दनादि षट्कर्मोकी विधिमे निपुण, वेद-शास्त्रके पारंगत, और 'हमसे बढ़कर दूसरा कौन है' इस प्रकार पाण्डित्यके अभिमानमे चूर थे ॥३९॥ अभिमानरूपी महादाहके कारण जिन्हे अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हुआ था ऐसे वे दोनो भाई 'सदा भोग ही सेवन करने योग्य है' यह सोचकर धर्मसे विमुख रहते थे ॥४०॥

---

१. अग्निभूतिवायुभूतिनामानौ ।

कस्यचित्त्वथ कालस्य विहरन् पृथिवीमिमाम्। बहुभिः साधुभिर्गुप्तः संप्राप्तो नन्दिवर्द्धनः ॥४१॥
मुनिः स चावधिज्ञानात्समस्तं जगदीक्षते। अध्युवास बहिर्ग्रामसुद्यानं साधुसंमतम् ॥४२॥
ततश्चागमनं श्रुत्वा श्रमणानां महात्मनाम्। शालिग्रामजनो भूत्या सर्व एव विनिर्ययौ ॥४३॥
अपृच्छतां ततो वह्निवायुभूती विलोक्य तम्। क्वायं जनपदो याति सुसंकीर्णः परस्परम् ॥४४॥
ताभ्यां कथितमन्येन मुनि' प्राप्तो निरम्बरः। तस्यैष वन्दनां कर्त्तुमखिलः प्रस्थितो जनः ॥४५॥
अग्निभूतिस्ततः क्रुद्धः सह भ्रात्रा विनिर्गतः। विवादे श्रमणान्सर्वान् जयामीति वचोऽवदत् ॥४६॥
उपगम्य च साधूनां मुनीन्द्रं मध्यवर्त्तिनम्। अपश्यद्ग्रहताराणां मध्ये चन्द्रमिवोदितम् ॥४७॥
प्रधानसंयतेनैतौ प्रोक्तौ [1]सात्यकिना ततः। एवमागच्छतां विप्रौ किंचिद्विधिनुत[2] गुरौ ॥४८॥
उवाच प्रहसन्नग्निर्भवद्भिः किं प्रयोजनम्। जगादागतयोरत्र दोषो नास्तीति संयतः ॥४९॥
द्विजेनैकेन च प्रोक्तमेतान् श्रमणपुङ्गवान्। वादे जेतुमुपायातौ दूरे किमधुना स्थितौ ॥५०॥
एवमस्त्विति सामर्षौ मुनीन्द्रस्य पुरः स्थितौ। ऊचतुश्च समुन्नद्धौ किं वेत्सीति पुनः पुनः ॥५१॥
सावधिर्भगवानाह भवन्तावागतौ कुतः। ऊचतुस्तौ न ते ज्ञातौ शालिग्रामात्किमागतौ ॥५२॥
मुनिराहावगच्छामि शालिग्रामादुपागतौ। अनादिजन्मकान्तारे भ्रमन्तावागतौ कुतः ॥५३॥
तौ समूचतुरन्योऽपि को वेत्तीति ततो मुनिः। जगाद श्रृणुतां विप्रावधुना कथयाम्यहम् ॥५४॥

अथानन्तर किसी समय अनेक साधुओके साथ इस पृथ्वी पर विहार करते हुए नन्दिवर्धन नामक मुनिराज उस शालिग्राममे आये ॥४१॥ वे मुनि अवधि-ज्ञानसे समस्त जगत्को देखते थे तथा आकर गांवके बाहर मुनियोके योग्य उद्यानमे ठहर गये ॥४२॥ तदनन्तर उत्कृष्ट आत्माके धारक मुनियोका आगमन सुन शालिग्रामके सब लोग वैभवके साथ बाहर निकले ॥४३॥ तत्पश्चात् अग्निभूति और वायुभूतिने उन नगरवासी लोगोको जाते देख किसीसे पूछा कि ये गांव-के लोग परस्पर एक दूसरेसे मिलकर समुदाय रूपमे कहाँ जा रहे है ? ॥४४॥ तव उसने उन दोनो-से कहा कि एक निर्वस्त्र दिगम्बर मुनि आये हुए है उन्हीको वन्दना करनेके लिए वे सब लोग जा रहे हैं ॥४५॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा अग्निभूति, भाईके साथ निकलकर बाहर आया और कहने लगा कि मै समस्त मुनियोको वादमे अभी जीतता हूँ ॥४६॥ तत्पश्चात् पास जाकर उसने ताराओ-के बीचमे उदित चन्द्रमाके समान मुनियोके बीचमे बैठे हुए उनके स्वामी नन्दिवर्द्धन मुनिको देखा ॥४७॥ तदनन्तर सात्यकि नामक प्रधान मुनिने उनसे कहा कि हे विप्रो ! आओ और गुरुसे कुछ पूछो ! ॥४८॥ तव अग्निभूतिने हँसते हुए कहा कि हमे आप लोगोंसे क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तरमे मुनिने कहा कि यदि आप लोग यहां आ गये है तो इसमे दोष नही है ॥४९॥ उसी समय एक ब्राह्मणने कहा कि ये दोनो इन मुनियोको वादमे जीतनेके लिए आये है इस समय दूर क्यो बैठे है ॥५०॥ तदनन्तर 'अच्छा ऐसा ही सही' इस प्रकार कहते हुए क्रोधसे युक्त दोनो ब्राह्मण, मुनिराजके सामने बैठ गये और बड़े अहकारमे चूर होकर बार-बार कहने लगे कि बोल क्या जानता है ? बोल क्या जानता है ? ॥५१॥ तदनन्तर अवधिज्ञानी मुनिराजने कहा कि आप दोनो कहांसे आ रहे हैं ? इसके उत्तरमे विप्र-पुत्र बोले कि क्या तुझे यह भी ज्ञात नही है कि हम दोनो शालिग्रामसे आये हैं ॥५२॥ तदनन्तर मुनिराजने कहा कि आप शालिग्राम-से आये है यह तो मै जानता हूँ, मेरे पूछनेका अभिप्राय यह है कि इस अनादि संसाररूपी वनमे घूमते हुए आप इस समय किस पर्यायसे आये है ? ॥५३॥ तब उन्होने कहा कि इसे क्या और भी कोई जानता है या मै ही जानूँ। तत्पश्चात् मुनिराजने कहा कि अच्छा विप्रो ! सुनो मै कहता हूँ ॥५४॥

---

१. सत्युकिना ज., ख.। सत्यकिना क । २. विधुनन क.।

ग्रामस्यैतस्य सीमान्ते वनस्थल्याममुौ समम् । अन्योन्यानुरक्तावास्तां शृगालौ विकृताननौ ॥५५॥
आसीदत्रैव च ग्रामे चिरवासः कृषीवलः । ख्यातः प्रामरको नाम गतोऽसौ क्षेत्रमन्यदा ॥५६॥
पुनरेष्यामीति संचिन्त्य भानावस्ताभिलाषिणि । [1]त्यक्त्वोपकरणं क्षेत्रे संगतः क्षुधितो गृहम् ॥५७॥
तावदञ्जनशैलाभाः प्लावयन्तो महीतलम् । अकस्मादुन्नता मेघा ववर्षुर्नक्तवासरम् ॥५८॥
प्रशान्त्वा सप्तरात्रेण रात्रौ तमसि भीषणे । जम्बुकौ तौ विनिष्क्रान्तौ गहनादर्दितौ क्षुधा ॥५९॥
अथोपकरणं क्लिन्नं कर्दमोपलसंगतम् । ताभ्यां भक्षितं सर्वं प्राप्तौ चोदरवेदनाम् ॥६०॥
अकामनिर्जरायुक्तौ वर्षानिलसमाहतौ । ततः कालं गतौ जातौ सोमदेवस्य नन्दनौ ॥६१॥
स च प्रामरकः प्राप्तोऽन्वेषकोऽपश्यदेनकौ । निर्जीवौ जम्बुकौ तेन गृहीत्वा जनितौ दृती ॥६२॥
अचिरेण मृतश्चासौ सुतस्यैवाभवत्सुत. । जातिस्मरत्वमासाद्य मूकीभूय व्यवस्थितः ॥६३॥
पुत्रं[2] पितुरिति ज्ञात्वेत्याहरामि कथं त्वहम् । स्नुषां च मातुरित्यस्माद्धेतोर्मौनमुपाश्रितः ॥६४॥
यदि न प्रत्ययः सम्यक् तत्तिष्ठत्ययमावयम् । मध्ये स्वजनवर्गस्य द्विजो मां द्रष्टुमागतः ॥६५॥
आहूय गुरुणा चोक्तः स त्वं प्रामरकस्तथा । आसीस्त्वमधुना जातस्तोकस्यैव शरीरजः ॥६६॥
संसारस्य स्वभावोऽयं रङ्गमध्ये यथा नटः । राजा भूत्वा भवेद्भृत्यः प्रेष्यश्च प्रभुतां व्रजेत् ॥६७॥
एवं पितापि [3]तोकत्वमेति तोकश्च तातताम् । माता पत्नीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ॥६८॥

इस गांवकी सीमाके पास वनकी भूमिमें दो शृगाल साथ-साथ रहते थे। वे दोनो ही परस्पर एक दूसरेसे अधिक प्रेम रखते थे तथा दोनो ही विकृत मुखके धारक थे ॥५५॥ इसी गाँवमें एक प्रामरक नामका पुराना किसान रहता था। वह एक दिन अपने खेतपर गया। जब सूर्यास्तका समय आया तब वह भूखसे पीड़ित होकर घर गया और अभी वापस आता हूँ यह सोचकर अपने उपकरण खेतमें ही छोड़ आया ॥५६–५७॥ वह घर आया नहीं कि इतनेमें अकस्मात् उठे तथा अंजनगिरिके समान काले बादल पृथिवीतलको डुबाते हुए रात-दिन बरसने लगे। वे मेघ सात दिनमें शान्त हुए अर्थात् सात दिन तक झड़ी लगी रही। ऊपर जिन दो शृगालोंका उल्लेख कर आये हैं वे भूखसे पीड़ित हो रात्रिके घनघोर अन्धकारमें वनसे बाहर निकले ॥५८–५९॥

अथानन्तर वर्षासे भीगे और कीचड़ तथा पत्थरोंमें पड़े वे सब उपकरण जिन्हें कि किसान छोड़ आया था दोनों शृगालोंने खा लिये। खाते हीके साथ उनके उदरमें भारी पीड़ा उठी। अन्तमें वर्षा और वायुसे पीड़ित दोनों शृगाल अकामनिर्जरा कर मरे और सोमदेव ब्राह्मणके पुत्र हुए ॥६०–६१॥ तदनन्तर वह प्रामरक किसान अपने उपकरण ढूँढता हुआ खेतमें पहुँचा तो वहाँ उसने इन मरे हुए दोनों शृगालोंको देखा। किसान उन मृतक शृगालोंको लेकर घर गया और वहाँ उसने उनकी मशकें बनायी ॥६२॥ वह प्रामरक भी जल्दी ही मर गया और मरकर अपने ही पुत्रके पुत्र हुआ। उस पुत्रको जाति-स्मरण हो गया जिससे वह गूँगा बनकर रहने लगा ॥६३॥ 'मैं अपने पूर्वभवके पुत्रको पिताके स्थानमें समझकर कैसे बोलूँ तथा पूर्वभवकी पुत्र-वधूको माताके स्थानमें जानकर कैसे बोलूँ' यह विचारकर ही वह मौनको प्राप्त हुआ है ॥६४॥ यदि तुम्हें इस बातका ठीक-ठीक विश्वास नहीं है तो वह ब्राह्मण मेरे दर्शन करनेके लिए यहाँ आया है तथा अपने परिवारके बीचमें बैठा है ॥६५॥ मुनिराजने उसे बुलाकर कहा कि तू वही प्रामरक किसान है और इस समय अपने पुत्रका ही पुत्र हुआ है ॥६६॥ यह संसारका स्वभाव है। जिस प्रकार रंगभूमिके मध्य नट राजा होकर दास बन जाता है और दास प्रभुताको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार पिता भी पुत्रपनेको प्राप्त हो जाता है, और पुत्र पितृ पर्यायको प्राप्त

---

१. त्यक्तोपकरणं म.। २. पुत्र. म.। ३. पुत्रत्वम्।

उद्घाटनघटीयन्त्रसदृशेऽस्मिन् भवात्मनि । [1]उपर्यधरतां यान्ति जीवाः कर्मवशं गताः ॥६९॥
इति ज्ञात्वा भवावस्थां नितान्तं वत्स निन्दिताम् । अधुना मूकतां मुञ्च कुरु वाचां क्रियां सतीम् ॥७०॥
इत्युक्तः परमं हृष्ट उत्थाय विगतज्वरः । [2]उद्भूतघनरोमाञ्चः प्रोत्फुल्लनयनाननः ॥७१॥
गृहीत इव भूतेन परिभ्रम्य प्रदक्षिणाम् । निपपातोत्तमाङ्गेन छिन्नमूलतरुर्यथा ॥७२॥
उवाच विस्मितश्चोच्चैस्त्वं सर्वज्ञपराक्रमः । इहस्थः सर्वलोकस्य सकलां पश्यसि स्थितिम् ॥७३॥
संसारसागरे घोरे कष्टमेवं निमज्जतः । सत्त्वानुकम्पया बोधिस्त्वया मे नाथ दर्शिता ॥७४॥
मनोगतं मम ज्ञातं भवता दिव्यबुद्धिना । इत्युक्त्वा जगृहे दीक्षां सास्रान् संत्यज्य बान्धवान् ॥७५॥
तस्य प्रामरकस्यैतच्छ्रुत्वोपाख्यानमीदृशम् । संवृत्ता बहवो लोके श्रमणाः श्रावकास्तथा ॥७६॥
गत्वा च ते दृती दृष्टे सर्वलोकेन तद्गृहे । ततः कलकलो जातो विस्मयश्च समन्ततः ॥७७॥
अथोपहसितौ राजंस्तौ जनेन द्विजातिकौ । इमौ तौ पशुमांसादौ जम्बुकौ द्विजतां गतौ ॥७८॥
एताभ्यां [3]ब्रह्मतावादे विमूढाभ्यां सुखार्थिनी । प्रजेयं मुषिता सर्वा सक्ताभ्यां पशुहिंसने ॥७९॥
अमी तपोधनाः शुद्धाः श्रवणा [4]ब्राह्मणाधिकाः । ब्राह्मणा इति विख्याता हिंसामुक्तिव्रतश्रिता ॥८०॥
महाव्रतशिखाटोपाः क्षान्तियज्ञोपवीतिनः । ध्यानाग्निहोत्रिणः शान्ता मुक्तिसाधनतत्पराः ॥८१॥
सर्वारम्भप्रवृत्ता ये नित्यमब्रह्मचारिणः । द्विजाः स्म इति भाषन्ते क्रियया न पुनर्द्विजाः ॥८२॥

हो जाता है। माता पत्नी हो जाती है और पत्नी माता बन जाती है ॥६७–६८॥ यह संसार अरहटके घटीयन्त्रके समान है इसमे जीव कर्मके वशीभूत हो ऊपर-नीची अवस्थाको प्राप्त होता रहता है ॥६९॥ इसलिए हे वत्स ! ससार दशाको अत्यन्त निन्दित जानकर इस समय गूँगापन छोड़ और वचनोकी उत्तम क्रिया कर अर्थात् प्रशस्त वचन बोल ॥७०॥

मुनिराजके इतना कहते ही वह अत्यन्त हर्षित होता हुआ उठा, वह ऐसा प्रसन्न हुआ मानो उसका ज्वर उतर गया हो, उसके शरीरमे सघन रोमांच निकल आये, तथा उसके नेत्र और मुख हर्षसे फूल उठे ॥७१॥ भूतसे आक्रान्त हुएके समान उसने मुनिकी प्रदक्षिणाएँ दी। तदनन्तर कटे वृक्षके समान मस्तकके बल उनके चरणोंमे गिर पड़ा ॥७२॥ उसने आश्चर्य चकित हो जोरसे कहा कि हे भगवन्, आप सर्वज्ञ है। यहाँ बैठे-बैठे ही आप समस्त लोकको सम्पूर्ण स्थितिको देखते रहते है ॥७३॥ मै इस भयकर संसार-सागरमे डूब रहा था सो आपने प्राण्यनुकम्पासे हे नाथ ! मेरे लिए रत्नत्रयरूप बोधिका दर्शन कराया है ॥७४॥ आप दिव्यबुद्धि हैं अतः आपने मेरा मनोगत भाव जान लिया। इस प्रकार कहकर उस प्रामरकके जीव ब्राह्मणने रोते हुए भाई-बान्धवोको छोड़कर दीक्षा धारण कर ली ॥७५॥ प्रामरकका यह ऐसा व्याख्यान सुन बहुत-से लोग मुनि तथा श्रावक हो गये ॥७६॥ सब लोगोने उसके घर जाकर पूर्वोक्त शृगालोके शरीरसे बनी मशके देखी जिससे सब ओर कलकल तथा आश्चर्य छा गया ॥७७॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! लोगोने यह कहकर उन ब्राह्मणोकी बहुत हँसी की कि ये वे ही पशुओका मास खानेवाले शृगाल ब्राह्मण पर्यायको प्राप्त हुए है ॥७८॥ 'सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है' इस प्रकारके ब्रह्माद्वैतवादमे मूढ एवं पशुओकी हिंसामे आसक्त रहनेवाले इन दोनो ब्राह्मणोने सुखकी इच्छुक समस्त प्रजाको लूट डाला है ॥७९॥ तपरूपी धनसे युक्त ये शुद्ध मुनि, ब्राह्मणोसे अधिक श्रेष्ठ हे क्योकि यथार्थमे ब्राह्मण वे ही कहलाते है जो अहिंसा व्रतको धारण करते है ॥८०॥ जो महाव्रतरूपी लम्बी चोटी धारण करते हैं, जो क्षमारूपी यज्ञोपवीतसे सहित है, जो ध्यानरूपी अग्निमे होम करनेवाले हैं, शान्त है तथा मुक्तिके सिद्ध करनेमे तत्पर है वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं ॥८१॥ इसके विपरीत जो सब प्रकारके आरम्भमे

---

१ उपर्युपरिता म । २. उद्भूतघनरोमाञ्च प्रोत्फुल्ल- म । ३. ब्रह्मतावाद—म. । ४. ब्राह्मणोधिपाः म. ।

यथा केचिन्नरा लोके सिंहदेवाग्निनामकाः । तथामी विरतेर्भ्रष्टा ब्राह्मणा नामधारकाः ॥८३॥
अमी सुश्रमणा धन्या ब्राह्मणाः परमार्थतः । ऋषयः संयता धीराः क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥८४॥
भदन्तास्त्यक्तसंदेहा भगवन्तः सतापसाः । मुनयो यतयो वीरा लोकोत्तरगुणस्थिताः ॥८५॥
परिव्रजन्ति ये मुक्तिं भवहेतौ परिग्रहे । ते परिव्राजका ज्ञेया निर्ग्रन्था एव निस्तमाः ॥८६॥
तपसा क्षपयन्ति स्वं क्षीणरागाः क्षमान्विताः । क्षिण्वन्ति च यतः पापं क्षपणास्तेन कीर्तिताः ॥८७॥
यमिनो वीतरागाश्च निर्मुक्ताङ्गा निरम्बराः । योगिनो ध्यानिनो वन्द्या ज्ञानिनो निःस्पृहा बुधाः ॥८८॥
निर्वाणं साधयन्तीति साधवः परिकीर्त्तिताः । आचार्या यत्सदाचारं चरन्त्याचारयन्ति च ॥८९॥
अनगारगुणोपेता भिक्षव. शुद्धभिक्षया । श्रमणाः [1]सितकर्माणः परमश्रमवर्त्तिनः ॥९०॥
इति साधुस्तुतिं श्रुत्वा तथा निन्दनमात्मन. । रह.स्थितौ विलक्षौ च विमानौ विगतप्रभौ ॥९१॥
गते च सवितर्यस्तं [2]प्रकाशनसुदु.खितौ । अन्विष्यन्तौ गतौ स्थानं यत्रासौ भगवान् स्थितः ॥९२॥
नि.संगाः संघमुत्सृज्य वनैकान्तेऽतिगह्वरे । करङ्कैः संकटेऽत्यन्तं विविक्तचितिकाचिते ॥९३॥
[3]क्रव्याच्छ्वापदनादाढ्ये पिशाचभुजगाकुले । सूचीभेद्यतमश्छन्ने महाबीभत्सदर्शने ॥९४॥
एवंविधे श्मशानेऽसौ निर्जन्तुनि शिलातले । पापाभ्यामीक्षितस्ताभ्यां प्रतिमास्थानमास्थितः ॥९५॥

प्रवृत्त हैं तथा जो निरन्तर कुशीलमे लीन रहते हैं वे केवल यह कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं परन्तु क्रियासे ब्राह्मण नही है ॥८२॥ जिस प्रकार कितने ही लोग सिंह, देव अथवा अग्नि नामके धारक हैं उसी प्रकार व्रतसे भ्रष्ट रहनेवाले ये लोग भी ब्राह्मण नामके धारक हैं इनमे वास्तविक ब्राह्मणत्व कुछ भी नही है ॥८३॥ जो ऋषि, संयत, धीर, क्षान्त, दान्त और जितेन्द्रिय हैं ऐसे ये मुनि ही धन्य हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण हैं ॥८४॥ जो भद्रपरिणामी हैं, सन्देहसे रहित है, ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, अनेक तपस्वियोसे सहित हैं, यति है और वीर है ऐसे मुनि ही लोकोत्तर गुणोके धारण करनेवाले हैं ॥८५॥ जो परिग्रहको संसारका कारण समझ उसे छोड़ मुक्तिको प्राप्त करते हैं वे परिव्राजक कहलाते है सो यथार्थमे मोहरहित निर्ग्रन्थ मुनि ही परिव्राजक हैं ऐसा जानना चाहिए ॥८६॥ चूँकि ये मुनि क्षीणराग तथा क्षमासे सहित होकर तपके द्वारा अपने आपको कृश करते हैं, पापको नष्ट करते है इसलिए क्षपण कहे गये हैं ॥८७॥ ये सब यमी, वीतराग, निर्मुक्त शरीर, निरम्बर, योगी, ध्यानी, ज्ञानी, निःस्पृह और बुध है अतः ये ही वन्दना करने योग्य है ॥८८॥ चूँकि ये निर्वाणको सिद्ध करते हैं इसलिए साधु कहलाते हैं, और उत्तम आचारका स्वयं आचरण करते है तथा दूसरोको भी आचरण कराते है इसलिए आचार्य कहे जाते हैं ॥८९॥ ये गृहत्यागीके गुणोसे सहित हैं तथा शुद्ध भिक्षासे भोजन करते हैं इसलिए भिक्षुक कहलाते है और उज्ज्वल कार्य करनेवाले हैं, अथवा कर्मोका नष्ट करनेवाले हैं तथा परम निर्दोष श्रममे वर्तमान है इसलिए श्रमण कहे जाते है ॥९०॥ इस प्रकार साधुओकी स्तुति और अपनी निन्दा सुनकर वे अहकारी विप्र पुत्र लज्जित, अपमानित तथा निष्प्रभ हो एकान्तमें जा बैठे ॥९१॥

अथानन्तर जो अपने शृगालादि पूर्व भवोके उल्लेखसे अत्यन्त दुखी थे ऐसे दोनो पुत्र सूर्यके अस्त होनेपर खोज करते हुए उस स्थानपर पहुँचे जहाँ कि वे भगवान् नन्दिवर्धन मुनीन्द्र विराजमान थे ॥९२॥ वे मुनीन्द्र संघ छोड़, निःस्पृह हो वनके एकान्त भागमें स्थित उस श्मशान प्रदेशमे विद्यमान थे कि जो अत्यधिक गर्तोसे युक्त था, नरकंकालोसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारकी चिताओसे व्याप्त था, मांसभोजी वन्य पशुओके शब्दसे व्याप्त था, पिशाच और सर्पोसे आकीर्ण था, सुईके द्वारा भेदने योग्य—गाढ़ अन्धकारसे आच्छादित था, और जिसका देखना तीव्र घृणा उत्पन्न करनेवाला था । ऐसे श्मशानमे जीव-जन्तु रहित शिलातलपर प्रतिमायोगसे विराज-

---

१. सितं विनाशितं श्री टि. । २ प्रकाशनं शृगालादिकथनं श्री. टि । ३ क्रव्यश्वापद म. ।

आकृष्टखड्गहस्तौ च क्रुद्धौ जगदतुः समम् । जीवं रक्षतु ते लोकः क्व यासि श्रमणाधुना ॥९६॥
पृथिव्यां ब्राह्मणाः श्रेष्ठा वयं प्रत्यक्षदेवताः । निर्लज्जस्त्वं महादोषो जम्बुका इति भाषसे ॥९७॥
ततोऽत्यन्तप्रचण्डौ तौ दुष्टौ रक्तकलोचनौ । जाल्मौ कृपाविनिर्मुक्तौ सुयक्षेण निरीक्षितौ ॥९८॥
सुमनाश्चिन्तयामास पश्य निर्दोषमीदृशम् । हन्तुमभ्युद्यतौ साधुं मुक्ताङ्गं ध्यानतत्परम् ॥९९॥
ततः संस्थानमास्थाय तौ चोदगिरतामसी । यक्षेण च तदग्रेण स्तम्भितौ निश्चलौ स्थितौ ॥१००॥
विकर्म कर्त्तुमिच्छन्तावुपसर्गं महामुने । प्रतीहाराविव क्रूरौ तस्थतुः पार्श्वयोरिमौ ॥१०१॥
ततः सुविमले काले जाते जाताब्जबान्धवे । संहृत्य सम्मुनिर्योगं निःसृत्यैकान्ततः स्थितः ॥१०२॥
संगश्चतुर्विधः सर्वः शालिग्रामजनस्तथा । प्राप्ताः परमयोगीशमिति विस्मयवान् जगौ ॥१०३॥
कावेतावीदृशौ पापौ धिक्कष्टं कर्त्तुमीहितौ । अग्निवायू दुराचारावेतौ तावाततायिनौ ॥१०४॥
तौ चाचिन्तयतामुच्चैः प्रभावोऽयं महामुनेः । आवां येन बलोद्वृत्तौ स्तम्भितौ स्थावरीकृतौ ॥१०५॥
अनयावस्थया मुक्तौ जीविष्यामो वयं यदा । तदा संप्रतिपत्स्यामो दर्शनं [1]मौनिसत्तमम् ॥१०६॥
अत्रान्तरे परिप्राप्तः सोमदेवः ससंभ्रमः । भार्ययाग्निलया साकं प्रसादयति तं मुनिम् ॥१०७॥
भूयो भूयः प्रणामेन बहुमिश्च प्रियोदितैः । दम्पती चक्रतुश्चाटुं पादमर्दनतत्परौ ॥१०८॥

मान उन मुनिराजको उन दोनो पापियोने देखा ॥९३–९५॥ उन्हे देखते ही जिन्होने तलवार खीचकर हाथमे ले ली थी तथा जो अत्यन्त कुपित हो रहे थे ऐसे उन ब्राह्मणोंने एक साथ कहा कि लोग आकर तेरे प्राणोकी रक्षा करे। अरे श्रमण! अब तू कहाँ जायेगा? ॥९६॥ हम ब्राह्मण पृथिवीमे श्रेष्ठ है तथा प्रत्यक्ष देवतास्वरूप हैं और तू महादोषोसे भरा निर्लज्ज है फिर भी हम लोगोको तू 'शृगाल थे' ऐसा कहता है ॥९७॥

तदनन्तर जो अत्यन्त तीव्र क्रोधसे युक्त थे, दुष्ट थे, लाल-लाल नेत्रोके धारक थे, बिना विचारे काम करनेवाले थे और दयासे रहित थे ऐसे उन दोनों ब्राह्मणोको यक्षने देखा ॥९८॥ उन्हे देखकर वह देव विचार करने लगा कि अहो! देखो; ये ऐसे निर्दोष, शरीरसे निस्पृह और ध्यानमे तत्पर मुनिको मारनेके लिए उद्यत हैं ॥९९॥ तदनन्तर तलवार चलानेके आसनसे खड़े होकर उन्होने अपनी-अपनी तलवार ऊपर उठायी नही कि यक्षने उन्हे कील दिया जिससे वे मुनिराजके आगे उसी मुद्रामे निश्चल खड़े रह गये ॥१००॥ महामुनिके विरुद्ध उपसर्ग करनेकी इच्छा रखनेवाले वे दोनो दुष्ट उनकी दोनो ओर इस प्रकार खड़े थे मानो उनके अगरक्षक ही हो ॥१०१॥

तदनन्तर निर्मल प्रातःकालके समय सूर्योदय होनेपर वे मुनिराज योग समाप्त कर एकान्त स्थानसे निकल बाहर मैदानमे बैठे ॥१०२॥ उसी समय चतुर्विध संघ तथा शालिग्रामवासी लोग उन योगिराजके पास आये सो यह दृश्य देख आश्चर्यचकित हो बोले कि अरे! ये कौन पापी है? हाय-हाय, कष्ट पहुँचानेके लिए उद्यत इन पापियोको धिक्कार है। अरे ये उपद्रव करने-वाले तो वे ही आततायी अग्निभूति और वायुभूति हैं ॥१०३–१०४॥ अग्निभूति और वायुभूति भी विचार करने लगे कि अहो! महामुनिका यह कैसा उत्कृष्ट प्रभाव है कि उन्होने बलका दर्प रखनेवाले हम लोगोको कीलकर स्थावर बना दिया ॥१०५॥ इस अवस्थासे छुटकारा होनेपर यदि हम जीवित रहेगे तो इन उत्तम मुनिराजके दर्शन अवश्य करेगे ॥१०६॥ इसी बीचमे घब-ड़ाया हुआ सोमदेव अपनी अग्निला स्त्रीके साथ वहाँ आ पहुँचा और उन मुनिराजको प्रसन्न करने लगा ॥१०७॥ पैर दबानेमे तत्पर दोनों ही स्त्री-पुरुष, बार-बार प्रणाम करके तथा अनेक

---

१ मुनिसत्तमम् म ।

जीवतां देव दुःपुत्रावेतौ नः कोपमुत्सृज । संप्रेष्यबान्धवा नाथ वयमाज्ञाकरास्तव ॥१०९॥
संयतो वक्ति कः कोपः साधूनां यद्ब्रवीष्यदः । वयं सर्वस्य सदयाः सममित्रारिबान्धवाः ॥११०॥
प्राह यक्षोऽतिरक्ताक्षो बृहद्गम्भीरनिस्वनः । माभ्याख्यानं गुरोरस्य जनमध्ये प्रदातकम् ॥१११॥
साधून्वीक्ष्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते । न पश्यन्त्यात्मनो दौष्ट्यं दोषं कुर्वन्ति साधुषु ॥११२॥
यथादर्शतले कश्चिदात्मानमवलोकयन् । यादृशं कुरुते वक्त्रं तादृशं पश्यति ध्रुवम् ॥११३॥
तद्वत्साधुं समालोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यतः । यादृशं कुरुते भावं तादृक्षं लभते फलम् ॥११४॥
प्ररोदन प्रहासेन कलहं परुषोक्तितः । वधेन मरण प्रोक्तं विद्वेषेण च पातकम् ॥११५॥
इति साधोर्नियुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना । फलेन तादृशेनैव कर्त्ता योगमुपाश्नुते ॥११६॥
एतौ स्वोपचितैर्दोषैः प्रेर्यमाणौ स्वकर्मभिः । तव पुत्रौ मया विप्र स्तम्भितौ न हि साधुना ॥११७॥
वेदाभिमाननिर्दग्धावेतौ [1]छद्मवनीपकौ । म्रियेतां धिक्क्रियाचारौ संयतस्यातितायिनौ ॥११८॥
इति जल्पन्तमत्युग्रं यक्ष [2]प्रतिघभीषणम् । प्रसादयति साधुं च विप्रः प्राञ्जलिमस्तकः ॥११९॥
उदूर्ध्वबाहुः परिक्रोशन्निन्दयन्ताडयन्नुरः । सममग्निलया विप्रो [3]विप्रकीर्णात्मकोऽभवत् ॥१२०॥

मीठे वचन कहकर उनकी सेवा करने लगे ॥१०८॥ उन्होने कहा कि हे देव! ये मेरे दुष्ट पुत्र जीवित रहे, क्रोध छोड़िए, हे नाथ! हम सब भाई-बान्धवों सहित आपके आज्ञाकारी है ॥१०९॥

इसके उत्तरमे मुनिराजने कहा कि मुनियोंको क्या क्रोध है? जो तुम यह कह रहे हो, हम तो सबके ऊपर दया सहित है तथा मित्र-शत्रु-भाई-बान्धव आदि सब हमारे लिए समान हैं ॥११०॥ तदनन्तर जिसके नेत्र अत्यन्त लाल थे ऐसा यक्ष अत्यधिक गम्भीर स्वरमे बोला कि यह कार्य इन गुरु महाराजका है ऐसा जनसमूहके बीच नही कहना चाहिए ॥१११॥ क्योकि जो मनुष्य साधुओंको देखकर उनके प्रति घृणा करते हैं वे शीघ्र ही अनर्थको प्राप्त होते हैं। दुष्ट मनुष्य अपनी दुष्टता तो देखते नही और साधुओंपर दोष लगाते है ॥११२॥ जिस प्रकार दर्पणमें अपने आपको देखता हुआ कोई मनुष्य मुखको जैसा करता है उसे अवश्य ही वैसा देखता है ॥११३॥ उसी प्रकार साधुको देखकर सामने जाना, खड़े होना आदि क्रियाओके करनेमे उद्यत मनुष्य जैसा भाव करता है वैसा ही फल पाता है ॥११४॥ जो मुनिकी हँसी करता है वह उसके बदले रोना प्राप्त करता है। जो उनके प्रति कठोर शब्द कहता है वह उसके बदले कलह प्राप्त करता है, जो मुनिको मारता है वह उसके बदले मरणको प्राप्त होता है, जो उनके प्रति विद्वेष करता है वह उसके बदले पाप प्राप्त करता है ॥११५॥ इस प्रकार साधुके विषयमे किये हुए निन्दनीय कार्यसे उसका करनेवाला वैसे ही कार्यके साथ समागम प्राप्त करता है ॥११६॥ हे विप्र! तेरे ये पुत्र अपने ही द्वारा संचित दोष और अपने ही द्वारा कृत कर्मोसे प्रेरित होते हुए मेरे द्वारा कीले गये हैं साधु महाराजके द्वारा नही ॥११७॥ जो वेदके अभिमानसे जल रहे हैं, अत्यन्त कठिन है, निन्दनीय क्रियाका आचरण करनेवाले हैं तथा संयमी साधुकी हिंसा करनेवाले हैं ऐसे तेरे ये पुत्र मृत्युको प्राप्त हों इसमे क्या हानि है? ॥११८॥ हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये हुए ब्राह्मण, इस प्रकार कहते हुए, तीव्र, क्रोधयुक्त तथा शत्रु-भयदायी यक्ष और मुनिराज—दोनोंको प्रसन्न करने लगा ॥११९॥ जिसने अपनी भुजा ऊपर उठाकर रखी थी, जो अत्यधिक चिल्लाता था, अपनी तथा अपने पुत्रोकी निन्दा करता था, और अपनी छाती पीट रहा था ऐसा विप्र अग्निलाके साथ अत्यन्त पीड़ित हो रहा था ॥१२०॥

१. कुटिलौ श्री. टि । २. शत्रुभयंकरम् । ३ विप्रकीर्णः पीडितः श्री. टि ।

गुरुराह ततः कान्त हे यक्ष कमलेक्षण । मृष्यतामनयोर्दोषो मोहप्रजडचित्तयोः ॥१२१॥
जिनशासनवात्सल्यं कृतं सुकृतिना त्वया । नैतं प्राणिवधं [1]भद्र मदर्थं कर्त्तुमर्हसि ॥१२२॥
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा गुह्यकेन विसर्जितौ । आश्वस्योपसृतौ भक्त्या पादमूलं गुरोस्ततः ॥१२३॥
नत्वा प्रदक्षिणां कृत्वा शिरःस्थकरकुड्मलौ । साधवीयां महाचर्यां ग्रहीतुं शक्तिवर्जितौ ॥१२४॥
अणुव्रतानि गृह्णीतां सम्यग्दर्शनभूषितौ । अमूढौ श्रावकौ जातौ गृहधर्मसुखे रतौ ॥१२५॥
पितरावनयोः सम्यक्श्रद्धयापरिकीर्त्तितौ । कालं गतौ विना [2]धर्माद् भ्रमितौ भवसागरे ॥१२६॥
तौ तु संत्यक्तसंदेहौ जिनशासनभावितौ । हिंसाद्यं लौकिकं कार्यं वर्जयन्तौ विषं यथा ॥१२७॥
कालं कृत्वा समुत्पन्नौ सौधर्मे विबुधोत्तमौ । सर्वेन्द्रियमनोह्लादं यत्र दिव्यं महत्सुखम् ॥१२८॥
एत्यायोध्यां समुद्रस्य धारण्याः कुक्षिसंभवौ । नन्दनौ नयनानन्दौ श्रेष्ठिनस्तौ बभूवतुः ॥१२९॥
पूर्णकाञ्चनभद्राख्यौ भ्रातरावेव तौ सुखम् । पुनः श्रावकधर्मेण गतौ सौधर्मदेवताम् ॥१३०॥
अयोध्यानगरीन्द्रस्य हेमनाभस्य भामिनी । नाम्नामरावती तस्यां समुत्पन्नौ दिवश्च्युतौ ॥१३१॥
जगतीह प्रविख्यातौ संज्ञया मधुकैटभौ । अजय्यौ भ्रातरौ चारू कृतान्तसमविभ्रमौ ॥१३२॥
ताभ्यामियं समाक्रान्ता मही सामन्तसंकटा । स्थापिता स्ववशे राजन् प्राज्ञाभ्यां शेमुषी यथा ॥१३३॥
नेच्छत्याज्ञां नरेन्द्रैको भीमो नाम महाबलः । शैलान्तःपुरमाश्रित्य चमरो नन्दनं यथा ॥१३४॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे कमललोचन! सुन्दर! यक्ष! जिनका चित्त मोहसे अत्यन्त जड़ हो रहा है ऐसे इन दोनोंका दोष क्षमा कर दिया जाये ॥१२१॥ तुझ पुण्यात्माने जिन-शासनके साथ वात्सल्य दिखलाया यह ठीक है किन्तु हे भद्र! मेरे निमित्त यह प्राणिवध करना उचित नही है ॥१२२॥ तत्पश्चात् 'जैसी आप आज्ञा करें' यह कहकर यक्षने दोनों विप्र-पुत्रोको छोड़ दिया। तदनन्तर दोनो ही विप्र-पुत्र समाधान होकर भक्तिपूर्वक गुरुके चरण-मूलमे पहुँचे ॥१२३॥ और दोनोने ही हाथ जोड़ मस्तकसे लगा प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया तथा साधु दीक्षा प्रदान करनेकी प्रार्थना की। परन्तु साधु-सम्बन्धी कठिन चर्याको ग्रहण करनेके लिए उन्हे शक्ति रहित देख मुनिराजने कहा कि तुम दोनों सम्यग्दर्शनसे विभूषित होकर अणुव्रत ग्रहण करो। आज्ञानुसार वे गृहस्थ धर्मके सुखमे लीन विवेकी श्रावक हो गये ॥१२४–१२५॥ इनके माता-पिता समीचीन श्रद्धासे रहित थे इसलिए मरकर धर्मके विना संसार सागरमे भ्रमण करते रहे ॥१२६॥ परन्तु अग्निभूति और वायुभूति सन्देह छोड़ जिनशासनकी भावनासे ओत-प्रोत हो गये थे, तथा हिंसादिक लौकिक कार्य उन्होने विषके समान छोड़ दिये थे इसलिए वे मरकर उस सौधर्म स्वर्गमे उत्तम देव हुए जहाँ कि समस्त इन्द्रियो और मनको आह्लादित करनेवाला दिव्य महान् सुख उपलब्ध था ॥१२७–१२८॥

तदनन्तर वे दोनो अयोध्या आकर वहांके समुद्र सेठकी धारिणी नामक स्त्रीके उदरसे नेत्रोंको आनन्द देनेवाले पुत्र हुए ॥१२९॥ पूर्णभद्र और कांचनभद्र उनके नाम थे। ये दोनो भाई सुखसे समय व्यतीत करते थे। तदनन्तर पुनः श्रावक धर्म धारण कर उसके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमे देव हुए ॥१३०॥ अबकी बार वे दोनो, स्वर्गसे च्युत हो अयोध्या नगरीके राजा हेमनाभ और उनकी रानी अमरावतीके इस संसारमे मधु, कैटभ नामसे प्रसिद्ध पुत्र हुए। ये दोनों भाई अजेय, सुन्दर तथा यमराजके समान विभ्रमको धारण करनेवाले थे ॥१३१–१३२॥ गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन्! जिस प्रकार विद्वान् लोग अपनी बुद्धिको अपने आधीन कर लेते हैं उसी प्रकार इन दोनोने सामन्तोसे भरी हुई इस पृथिवीको आक्रमण कर अपने आधीन कर लिया था ॥१३३॥ किन्तु एक भीम नामका महाबलवान् राजा उनकी आज्ञा नही मानता था। जिस

---

१. भद्रं म. । २. धर्माद्भ्रमतः म. ।

वीरसेनेन लेखश्च प्रेषितस्तस्य भूपते. । उद्वासितानि धामानि पृथिव्यां भीमवह्निना ॥१३५॥
ततो मधु क्षणं क्रुद्धो भीमकस्योपरि द्रुतम् । ययौ सर्वबलौघेन युक्तो योधैः समन्ततः ॥१३६॥
क्रमान्मार्गवशात्प्राप्तो न्यग्रोधनगरं च तत् । वीरसेनो नृपो यत्र प्रीतियुक्तो विवेश च ॥१३७॥
चन्द्राभा चन्द्रकान्तास्या वीरसेनस्य भामिनी । देवी निरीक्षिता तेन मधुना जगदिन्दुना ॥१३८॥
अनया सह संवासो वरं विन्ध्यवनान्तरे । चन्द्राभया विना भूतं न राज्यं सार्वभूमिकम् ॥१३९॥
इति संचिन्तयन् राजा भीमं निर्जित्य संयुगे । आस्थापयद्वशे शत्रूनन्यांश्च तत्कृताशयः ॥१४०॥
अयोध्यां पुनरागत्य सपत्नीकान्नराधिपान् । आहूय विपुलैर्दानैर्विसर्जयति मानितान् ॥१४१॥
आहूतो वीरसेनोऽपि सह पत्न्या ययौ द्रुतम् । अयोध्याबहिरुद्याने मध्येऽस्थात्सरयूतटे ॥१४२॥
देव्या सह समाहूतः प्रविष्टो भवनं मधोः । [1]उदारदानसंमानो वीरसेनो विसर्जितः ॥१४३॥
अद्यापि सन्ध्यते नेयमिति रुद्धा मनोहरा । चन्द्राभा नरचन्द्रेण प्रेषितान्तःपुरं ततः ॥१४४॥
महादेव्यभिषेकेण प्रापिता चाभिषेचनम् । आरूढा सर्वदेवीनामुपरिस्थितमास्पदम् ॥१४५॥
श्रियेव स तया साकं निमग्नः सुखसागरे । स्वं सुरेन्द्रसमं मेने भोगान्धीकृतमानसः ॥१४६॥

प्रकार चमरेन्द्र नन्दन वनको पाकर प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार वह पहाड़ी दुर्गका आश्रय कर प्रफुल्लित था ॥१३४॥ राजा मधुके एक भक्त सामन्त वीरसेनने उसके पास इस आशयका पत्र भी भेजा कि हे नाथ ! इधर भीमरूपी अग्निने पृथिवीके समस्त घर उजाड़ कर दिये हैं ॥१३५॥

तदनन्तर उसी क्षण क्रोधको प्राप्त हुआ राजा मधु, अपनी सब सेनाओंके समूह तथा योधाओंसे परिवृत हो राजा भीमके प्रति चल पड़ा ॥१३६॥ क्रम-क्रमसे चलता हुआ वह मार्गवश उस न्यग्रोध नगरमें पहुँचा जहाँ कि उसका भक्त वीरसेन रहता था। राजा मधुने बड़े प्रेमके साथ उसमें प्रवेश किया ॥१३७॥ वहाँ जाकर जगत्के चन्द्रस्वरूप राजा मधुने वीरसेनकी चन्द्राभा नामकी चन्द्रमुखी भार्या देखी। उसे देखकर वह विचार करने लगा कि इसके साथ विन्ध्याचलके वनमें निवास करना अच्छा है। इस चन्द्राभाके बिना मेरा राज्य सार्वभूमिक नहीं है—अपूर्ण है ॥१३८–१३९॥ ऐसा विचार करता हुआ राजा उस समय आगे चला गया और युद्धमें भीमको जीतकर अन्य शत्रुओंको भी उसने वश किया। परन्तु यह सब करते हुए भी उसका मन उसी चन्द्राभामें लगा रहा ॥१४०॥ फलस्वरूप उसने अयोध्या आकर राजाओंको अपनी-अपनी पत्नियोंके सहित बुलाया और उन्हें बहुत भारी भेंट देकर सम्मानके साथ विदा कर दिया ॥१४१॥

राजा वीरसेनको भी बुलाया सो वह अपनी पत्नीके साथ शीघ्र ही गया और अयोध्याके बाहर बगीचेमें सरयू नदीके तटपर ठहर गया ॥१४२॥ तदनन्तर सम्मानके साथ बुलाये जानेपर उसने अपनी रानीके साथ मधुके भवनमें प्रवेश किया। कुछ समय बाद उसने विशेष भेंटके द्वारा सम्मान कर वीरसेनको तो विदा कर दिया और चन्द्राभाको अपने अन्तःपुरमें भेज दिया परन्तु भोला वीरसेन अब भी यह नहीं जान पाया कि हमारी सुन्दरी प्रिया यहाँ रोक ली गयी है ॥१४३–१४४॥

तदनन्तर महादेवीके अभिषेक द्वारा, अभिषेकको प्राप्त हुई चन्द्राभा सब देवियोंके ऊपर स्थानको प्राप्त हुई। भावार्थ—सब देवियोंमें प्रधान देवी बन गयी ॥१४५॥ भोगोंसे जिसका मन अन्धा हो रहा था ऐसा राजा मधु, लक्ष्मीके समान उस चन्द्राभाके साथ सुखरूपी सागरमें निमग्न होता हुआ अपने आपको इन्द्रके समान मानने लगा ॥१४६॥

---

1 उदारदार म.।

वीरसेननृपः सोऽयं विज्ञाय विहृतां प्रियाम् । उन्मत्तत्वं परिप्राप्तो रतिं क्वापि न विन्दते ॥१४७॥
मण्डवस्यामवच्छिष्यस्तापसोऽसौ जडप्रियः । मूढं विस्मापयंल्लोकं तपः पञ्चाग्निकं श्रितः ॥१४८॥
अन्यदा मधुराजेन्द्रो धर्मासनमुपागतः । करोति मन्त्रिभिः सार्द्धं व्यवहारविचारणम् ॥१४९॥
भूपाचारसंपन्नं सत्यं संमदसंगतम् । प्रविष्टोऽन्तःपुरं धीरस्तपनेऽस्ताभिलाषुके ॥१५०॥
खिन्ना तं प्राह चन्द्राभा किमित्यद्य चिरायितम् । वयं क्षुदर्दिता नाथ दुःखं वेलामिमां स्थिताः ॥१५१॥
सोऽवोचद्व्यवहारोऽयमरालः[1] पारदारिकः । छेत्तुं न शक्यते यस्मात्तस्मादद्य चिरायितम् ॥१५२॥
विहस्योवाच चन्द्राभा को दोषोऽन्यप्रियारतौ । परभार्या प्रिया यस्य तं पूजय यथेप्सितम् ॥१५३॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा क्रुद्धो मधुर्निजगौ । ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न संशयः ॥१५४॥
दण्ड्याः पञ्चकदण्डेन निर्वास्याः पुरुषाधमाः । स्पृशन्तोऽप्यबलामन्यां भाषयन्तोऽपि दुर्मताः ॥१५५॥
संमूढाः परदारेषु ये पापादनिवर्त्तिनः । अधः प्रपतनं येषां ते पूज्याः कथमीदृशाः ॥१५६॥
देवी पुनरुवाचेदं सहसा कमलेक्षणा । अहो धर्मपरो जातु भवान् भूपालनोद्यतः ॥१५७॥
महान् यद्येष दोषोऽस्ति परदारैषिणां नृणाम् । एतं निग्रहमुर्वीश न करोषि किमात्मनः ॥१५८॥
प्रथमस्तु भवानेव परदाराभिगामिनाम् । कोऽन्येषां क्रियते दोषो यथा राजा तथा प्रजाः ॥१५९॥
स्वयमेव नृपो यत्र नृशंसः पारदारिकः । तत्र किं व्यवहारेण कारणं स्वस्थतां भज ॥१६०॥

इधर राजा वीरसेनको जब पता चला कि हमारी प्रिया हरी गयी है तो वह पागल हो गया और किसी भी स्थानमे रतिको प्राप्त नही हुआ अर्थात् उसे कहीं भी अच्छा नही लगा ॥१४७॥ अन्तमे मूर्ख मनुष्योको आनन्द देनेवाला राजा वीरसेन किसी मण्डव नामक तापसका शिष्य हो गया और मूर्ख मनुष्योंको आश्चर्यमे डालता हुआ पंचाग्नितप तपने लगा ॥१४८॥

किसी एक दिन राजा मधु धर्मासनपर बैठकर मन्त्रियोके साथ राज्यकार्यका विचार कर रहा था। सो ठीक ही है क्योकि राजाओके आचारसे सम्पन्न सत्य ही हर्षदायक होता है। उस दिन राज्यकार्यमे व्यस्त रहनेके कारण धीरवीर राजा अन्त.पुरमे तब पहुँचा जब कि सूर्य अस्त होनेके सम्मुख था ॥१४९–१५०॥ खेदखिन्न चन्द्राभाने राजासे कहा कि नाथ! आज इतनी देर क्यों की? हम लोग भूखसे अबतक पीड़ित रहे ॥१५१॥ राजाने कहा कि यतश्च यह परस्त्री सम्बन्धी व्यवहार (मुकदमा) टेढा व्यवहार था अतः बीचमे नही छोडा जा सकता था इसीलिए आज देर हुई है ॥१५२॥ तब चन्द्राभाने हँसकर कहा कि परस्त्रीसे प्रेम करनेमे दोष ही क्या है? जिसे परस्त्री प्यारी है उसकी तो इच्छानुसार पूजा करनी चाहिए ॥१५३॥ उसके उक्त वचन सुन राजा मधुने क्रुद्ध होकर कहा कि जो दुष्ट परस्त्री-लम्पट हैं वे अवश्य ही दण्ड देनेके योग्य है इसमे संशय नही है ॥१५४॥ जो परस्त्रीका स्पर्श करते है अथवा उससे वार्तालाप करते है ऐसे दुष्ट नीच पुरुष भी पाँच प्रकारके दण्डसे दण्डित करने योग्य हैं तथा देशसे निकालनेके योग्य है फिर जो पापसे निवृत्त नही होनेवाले परस्त्रियोमे अत्यन्त मोहित है अर्थात् परस्त्रीका सेवन करते हैं उनका तो अधःपात—नरक जाना निश्चित ही है ऐसे लोग पूजा करने योग्य कैसे हो सकते है? ॥१५५–१५६॥ तदनन्तर कमललोचना देवी चन्द्राभाने बीचमे ही बात काटते हुए कहा कि अहो! आप बड़े धर्मात्मा है? तथा पृथिवीका पालन करनेमे उद्यत है ॥१५७॥ यदि परदाराभिलाषी मनुष्योका यह बड़ा भारी दोष माना जाता है तो हे राजन्! अपने आपके लिए भी आप यह दण्ड क्यो नही देते? ॥१५८॥ परस्त्रीगामियोमे प्रथम तो आप ही है फिर दूसरोको दोष क्यो दिया जाता है क्योकि यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है ॥१५९॥ जहाँ राजा स्वयं क्रूर एव परस्त्रीगामी है वहाँ व्यवहार-अभियोग

---

1. वक्रः।

येन बीजाः प्ररोहन्ति जगतो यच्च जीवनम् । जातस्ततो जलाद्वह्निः किमिहापरमुच्यताम् ॥१६१॥
उपलभ्येदृशं वाक्यं प्रतिरुद्धोऽभवन्मधुः । एवमेवेति तां देवीं पुनः पुनरभाषत ॥१६२॥
तथाप्यैश्वर्यपाशेन वेष्टितो दुःसुखोदधेः । भोगसंवर्त्तनो येन कर्मणा नावमुच्यते ॥१६३॥
द्राघीयसि[1] गते काले सुप्रबोधसुखान्विते । सिंहपादाह्वयः साधुः प्राप्तोऽयोध्यां महागुणः ॥१६४॥
सहस्राम्रवने कान्ते मुनीन्द्रं समवस्थितम् । श्रुत्वा मधुः समायासीत्सपत्नीकः सहानुगः ॥१६५॥
गुरुं प्रणम्य विधिना संविश्य धरणीतले । धर्मं संश्रुत्य जैनेन्द्रं भोगेभ्यो विरतोऽभवत् ॥१६६॥
राजपुत्री महागोत्रा रूपेणाप्रतिमा भुवि । अत्याक्षीदधिराज्यं च ज्ञात्वा दुर्गतिवेदनाम् ॥१६७॥
विदित्वैश्वर्यमानाय्यं मुनीभूत. स कैटभः । महाचर्यामभाक्लिष्टो विजहार महीं मधुः ॥१६८॥
ररक्ष माधवीं क्षोणीं राज्यं च कुलवर्द्धनः । सर्वस्य नयनानन्दः स्वजनस्य परस्य च ॥१६९॥

वंशस्थवृत्तम्

मधुः सुघोरं परमं तपश्चरन्महामनाः वर्षशतानि भूरिशः ।
विधाय कालं विधिनारणाच्युते जगाम देवेन्द्रपदं रणच्युतः ॥१७०॥

उपजातिः

अयं प्रभावो जिनशासनस्य यदिन्द्रतापीदृशपूर्ववृत्तैः ।
को विस्मयो वा त्रिदशेश्वरत्वे प्रयान्ति यन्मोक्षपुरं प्रयत्नात् ॥१७१॥

देखनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? सर्वप्रथम आप स्वस्थताको प्राप्त होइए ॥१६०॥ जिससे अंकुरोकी उत्पत्ति होती है तथा जो जगत्का जीवनस्वरूप है उस जलसे भी यदि अग्नि उत्पन्न होती है तब फिर और क्या कहा जाये ? ॥१६१॥ इस प्रकारके वचन सुनकर राजा मधु निरुत्तर हो गया और 'इसी प्रकार है' यह वचन वार-वार चन्द्राभासे कहने लगा ॥१६२॥ इतना सब हुआ फिर भी ऐश्वर्यरूपी पाशसे वेष्टित हुआ वह दुःखरूपी सागरसे निकल नही सका सो ठीक है क्योकि भोगोमे आसक्त मनुष्य कर्मसे छूटता नही है ॥१६३॥

अथानन्तर सम्यक्प्रबोध और सुखसे सहित बहुत भारी समय वीत जानेके वाद एक वार महागुणोके धारक सिंहपाद नामक मुनि अयोध्या आये ॥१६४॥ और वहांके अत्यन्त सुन्दर सहस्राभ्र वनमें ठहर गये । यह सुन अपनी पत्नी तथा अनुचरोंसे सहित राजा मधु उनके पास गया ॥१६५॥

वहाँ विधिपूर्वक गुरुको प्रणाम कर वह पृथिवीतलपर वैठ गया तथा जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म श्रवण कर भोगोसे विरक्त हो गया ॥१६६॥ जो उच्च कुलीन थी तथा सौन्दर्यके कारण जो पृथ्वीपर अपनी सानी नही रखती थी ऐसी राजपुत्री तथा विशाल राज्यको उसने दुर्गतिकी वेदना जान तत्काल छोड़ दिया ॥१६७॥ उधर मधुका भाई कैटभ भी ऐश्वर्यको चंचल जानकर मुनि हो गया । तदनन्तर मुनिव्रतरूपी महाचर्यासे क्लेशका अनुभव करता हुआ मधु पृथ्वीपर विहार करने लगा ॥१६८॥ स्वजन और परजन सभीके नेत्रोको आनन्द देनेवाला कुलवर्धन राजा मधुकी विशाल पृथ्वी और राज्यका पालन करने लगा ॥१६९॥ महामनस्वी मधुमुनि सैकडो वर्षो तक अत्यन्त कठिन एवं उत्कृष्ट तपश्चरण करते रहे । अन्तमे विधिपूर्वक मरणकर रणसे रहित आरणाच्युत स्वर्गमे इन्द्रपदको प्राप्त हुए ॥१७०॥ गौतम स्वामी कहते है कि अहो ! जिनशासनका प्रभाव आश्चर्यकारी है क्योकि जिनका पूर्वजीवन ऐसा निन्दनीय रहा उन लोगोने भी इन्द्रपद प्राप्त कर लिया । अथवा इन्द्रपद प्राप्त कर लेनेमे क्या आश्चर्य है ? क्योकि प्रयत्न

---

१. दीर्घतरे ।

अनुष्टुप्

मधोरिन्द्रस्य सभूतिरेषा ते कथिता मया । सीता यस्य प्रतिस्पर्द्धी संभूतः पाकशासनः ॥१७२॥

वंशस्थवृत्तम्

अव. परं चित्तहरं मनोषिणां कुमारवीराष्टकचेष्टितं परम् ।
वदामि पापस्य विनाशकारणं कुरु श्रुतौ श्रेणिक भूभृतां रवे ॥१७३॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मधूपाख्यानं नाम नवोत्तरशतं पर्व ॥१०९॥



करनेसे तो मोक्षनगर तक पहुँच जाते है ॥१७१॥ हे श्रेणिक ! मैने तेरे लिए उस मधु इन्द्रकी उत्पत्ति कही जिसकी कि प्रतिस्पर्धा करनेवाली सीता प्रतीन्द्र हुई है ॥१७२॥ हे राजाओके सूर्य ! श्रेणिक महाराज ! अव मै इसके आगे विद्वानोंके चित्तको हरनेवाला, आठ वीर कुमारोंका वह चरित्र कहता हूँ कि जो पापका नाश करनेवाला है, उसे तू श्रवण कर ॥१७३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें मधुका वर्णन करनेवाला एक सौ नौवाँ पर्व पूर्ण हुआ ॥१०९॥



दशाधिकशतं पर्व

काञ्चनस्थाननाथस्य तनये रूपगर्विते । द्वे काञ्चनरथस्यास्तां ययोर्माता शतह्रदा ॥१॥
तयोः स्वयंवरार्थेन समस्तान् भूनभश्चरान् । आह्वाययत्पिता प्रीत्या लेखवाहैर्महाजवैः ॥२॥
दूतौ विज्ञापितो लेखो विनीतापत्यये[1] तथा । स्वयंवरविधानं मे दुहितुश्चिन्त्यतामिति ॥३॥
ततस्तौ रामलक्ष्मीशौ समुत्पन्नकुतूहलौ । ऋद्ध्या परमया युक्तान् सर्वान् प्राहिणुतां सुतान् ॥४॥
ततः कुमारवीरास्ते कृत्वाग्रे लवणाङ्कुशौ । प्रययुः काञ्चनस्थानं सुप्रेमाणः परस्परम् ॥५॥
विमानशतमारूढा विद्याधरगणावृताः । श्रिया देवकुमाराभा वियन्मार्गं समागताः ॥६॥
आपूर्यमाणसत्सैन्याः पश्यन्तो दूरगां महीम् । काञ्चनस्यन्दनस्यायुः पुटभेदनमुत्तमम् ॥७॥
यथार्हं द्वे अपि श्रेण्यौ निविष्टे तत्र रेजतुः । सदसीव सुधर्मायां नानालंकारभूषिते ॥८॥
समस्तविभवोपेता नरेन्द्रास्तत्र रेजिरे । विचित्रकृतसंचेष्टास्त्रिदशा इव नन्दने ॥९॥
तत्र कन्ये दिनेऽन्यस्मिन्प्रशस्ते कृतमङ्गले । निर्जग्मतुर्निजावासाद्‌ध्रीलक्ष्म्याविव[2] सद्‌गुणे ॥१०॥
देशतः कुलतो वित्ताच्चेष्टितान्नामधेयतः । ताभ्यामकथयत्सर्वान् कञ्चुकी जगतीपतीन् ॥११॥
प्लवङ्गहरिशार्दूलवृषनागादिकेतनान् । विद्याधरान् सुकन्ये ते आलोकेतां शनैः क्रमात् ॥१२॥
दृष्ट्वा निश्चित्य ते प्राप्ता वैलक्ष्यं विहतत्विषः[3] । दृश्यमानाः समारूढास्तुलां संदेहविग्रहाम् ॥१३॥

अथानन्तर कांचनस्थान नामक नगरके राजा कांचनरथकी दो पुत्रियाँ थीं जो सौन्दर्यके गर्वसे गर्वित थीं तथा जिनकी माताका नाम शतह्रदा था ॥१॥ उन दोनों कन्याओंके स्वयंवरके लिए उनके पिताने महावेगशाली पत्रवाहक दूत भेजकर समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंको बुलवाया ॥२॥ एक पत्र इस आशयका अयोध्याके राजाके पास भी भेजा गया कि मेरी पुत्रीका स्वयंवर है अतः विचारकर कुमारोंको भेजिए ॥३॥ तदनन्तर जिन्हें कुतूहल उत्पन्न हुआ था ऐसे राम और लक्ष्मणने परम सम्पदासे युक्त अपने सब कुमार वहाँ भेजे ॥४॥ तत्पश्चात् परस्पर प्रेमसे भरे हुए, वे सब कुमार, लवण और अंकुशको आगे कर कांचनस्थानकी ओर चले ॥५॥ सैकड़ों विमानोंमें बैठे, विद्याधरोंके समूहसे आवृत एवं लक्ष्मीसे देवकुमारोंके समान दिखनेवाले वे सब कुमार आकाश-मार्गसे जा रहे थे ॥६॥ जिनकी सेना उत्तरोत्तर बढ़ रही थी तथा जो दूर छूटी पृथिवीको देखते जाते थे ऐसे सब कुमार कांचनरथके उत्तम नगरमें पहुँचे ॥७॥ वहाँ देव-सभाके समान सुशोभित सभामें नाना अलंकारोंसे भूषित यथायोग्य स्थापित विद्याधरों और भूमिगोचरियोंकी दोनों श्रेणियाँ सुशोभित हो रही थीं ॥८॥ समस्त वैभवोंसे सहित राजा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करते हुए उन श्रेणियोंमें उस तरह सुशोभित हो रहे थे जिस तरह कि नन्दन वनमें देव सुशोभित होते हैं ॥९॥

वहाँ दूसरे दिन जिनका मंगलाचार किया गया था तथा जो उत्तम गुणोंको धारण करनेवाली थीं ऐसी दोनों कन्याएँ ह्री और लक्ष्मीके समान अपने निवास-स्थानसे बाहर निकलीं ॥१०॥ स्वयंवर-सभामें जो राजा आये थे कंचुकीने उन सबका देश, कुल, धन, चेष्टा तथा नामकी अपेक्षा दोनों कन्याओंके लिए वर्णन किया ॥११॥ ये सब वानर, सिंह, शार्दूल, वृषभ तथा नाग आदिकी पताकाओंसे सहित विद्याधर बैठे हैं। हे उत्तम कन्याओ! इन्हें तुम क्रम-क्रमसे देखो ॥१२॥ उन कन्याओंको देखकर जो लज्जाको प्राप्त हो रहे थे तथा जिनकी कान्ति फीकी पड़ गयी

१. अयोध्यापतये । २. -च्छ्रीलक्ष्म्याविव म. । ३. विहितत्विषः म. ।

द्रक्ष्यन्ते ये तु ते स्वस्य सज्जयन्तो विभूषणम् । नाज्ञासिषुः क्रियाः कृत्यास्तिष्ठाम इति चञ्चलाः ॥१४॥
प्रवरिष्यति कं त्वेषा रूपगर्वज्वराकुला । मन्येऽस्माकमिति प्राप्ताश्चिन्तां ते चलमानसाः ॥१५॥
गृहीते किं विजित्यैते सुरासुरजगद्द्वयम् । पताके कामदेवेन लोकोन्मादनकारणे ॥१६॥
अथोत्तमकुमार्यौ ते निरीक्ष्य लवणाङ्कुशौ । विद्धे मन्मथबाणेन निश्चलत्वमुपागते ॥१७॥
महादृष्ट्यानुरागेण वद्ध्यानिमनोहरः । अनङ्गलवणोऽग्राहि मन्दाकिन्याग्रकन्यया ॥१८॥
शशाङ्कवक्त्रया चारुभाग्यया वरकन्यया । शशाङ्कभाग्यया युक्तो जगृहे मदनाङ्कुशः ॥१९॥
ततो-हलहलारावस्तस्मिन् सैन्ये समुत्थितः । जयोत्कृष्टहरिस्वानसहितः परमाकुलः ॥२०॥
मन्ये व्यपाटयन् व्योम हरितो वा समन्ततः । उड्डीयमानैर्लोकस्य मनोभिः परमत्रपैः ॥२१॥
अहो सदृशसंबन्धो दृष्टोऽस्माभिरयं परः । गृहीतौ यत्सुकन्याभ्यामेतौ[1] पद्मासनन्दनौ ॥२२॥
गम्भीरं भुवनाख्यातमुदारं लवणं गता । मन्दाकिनी यदेतं हि नापूर्णं कृतमेतया ॥२३॥
जेतुं सर्वजगत्कान्तिं चन्द्रभाग्या समुद्यता । अकरोत्साधु यद्योग्यं मदनाङ्कुशमग्रहीत् ॥२४॥
इति तत्र विनिश्चेरुः सज्जनानां गिरः पराः । सतां हि साधुसंबन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥२५॥
विशल्यादिमहादेवीनन्दनाश्चारुचेतसः । अष्टौ कुमारवीरास्ते प्रख्याता [3]वसवो यथा ॥२६॥
शतैरर्द्धतृतीयैर्वा भ्रातृणां प्रीतिमानसैः । युक्तास्ताराणान्तस्था ग्रहा इव विरेजिरे ॥२७॥

थी ऐसे राजकुमार उन कन्याओंके द्वारा देखे जाकर संशयकी तराजूपर आरूढ हो रहे थे ॥१३॥ जो राजकुमार उन कन्याओंके द्वारा देखे जाते थे वे अपने आभूषणोंको सजाते हुए करने योग्य क्रियाओंको भूल जाते थे तथा हम कहाँ बैठे हैं यह भूल चंचल हो उठते थे ॥१४॥ सौन्दर्यरूपी गर्वके ज्वरसे आकुल यह कन्या हम लोगोंमें-से किसे वरेगी इस चिन्ताको प्राप्त हुए राजकुमार चंचलचित्त हो रहे थे ॥१५॥ वे उन कन्याओंको देखकर विचार करने लगते थे कि क्या देव और दानवोंके दोनों जगत्‌को जीतकर कामदेवके द्वारा ग्रहण की हुई, लोगोंके उन्मादकी कारणभूत ये दो पताकाएँ ही हैं ॥१६॥ अथानन्तर वे दोनों कुमारियाँ लवणांकुशको देख कामबाणसे विद्ध हो निश्चल खड़ी हो गयीं ॥१७॥ उन दोनों कन्याओंमें मन्दाकिनी नामकी जो बड़ी कन्या थी उसने अनुरागपूर्ण महादृष्टिसे अनंगलवणको ग्रहण किया ॥१८॥ और चन्द्रमुखी तथा सुन्दर भाग्यसे युक्त चन्द्रभाग्या नामकी दूसरी उत्तम कन्याने अपने योग्य मदनांकुशको ग्रहण किया ॥१९॥ तदनन्तर उस सेनामें जयध्वनिसे उत्कृष्ट सिंहनादसे सहित हलहलका तीव्र शब्द उठा ॥२०॥ ऐसा जान पड़ता था कि तीव्र लज्जासे भरे हुए लोगोंके जो मन सब ओर उड़े जा रहे थे उनसे मानो आकाश अथवा दिशाएँ ही फटी जा रही थीं ॥२१॥ उस कोलाहलके बीच समझदार मनुष्य कह रहे थे कि अहो! हम लोगोंने यह योग्य उत्कृष्ट सम्बन्ध देख लिया जो इन कन्याओंने रामके इन पुत्रोंको ग्रहण किया है ॥२२॥ मन्दाकिनी अर्थात् गंगानदी, गम्भीर तथा संसारप्रसिद्ध, लवणसमुद्रके पास गयी है सो इस लवण अर्थात् अनंग लवणके पास जाती हुई इस मन्दाकिनी नामा कन्याने भी कुछ अपूर्ण अयोग्य काम नहीं किया है ॥२३॥ और सर्व जगत्‌की कान्तिको जीतनेके लिए उद्यत इस चन्द्रभाग्याने जो मदनांकुशको ग्रहण किया है सो अत्यन्त योग्य कार्य किया है ॥२४॥ इस प्रकार उस सभामें सज्जनोंकी उत्तम वाणी सर्वत्र फैल रही थी सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम सम्बन्धसे सज्जनोंका चित्त आनन्दको प्राप्त होता ही है ॥२५॥ लक्ष्मणकी विशल्या आदि आठ महादेवियोंके जो आठ वीर कुमार, सुन्दर चित्तके धारक, आठ वसुओंके समान सर्वत्र प्रसिद्ध थे वे प्रीतिसे भरे हुए अपने अढाई सौ भाइयोंसे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो तारागणोंके मध्यमें स्थित ग्रह ही हों ॥२६-२७॥

१. -मेता म. । २ भुवनं ख्यात म । ३ वासवो म. ।

बलवन्तः समुद्वृत्तास्तेऽन्ये लक्ष्मणनन्दनाः । क्रोधादुत्पतितुं शक्ता वैदेहीनन्दनौ यतः ॥२८॥
ततोऽष्टाभिः[1] सुकन्याभि[2] तद्भ्रातृबलमुद्धतम् । मन्त्रैरिव शमं नीतं भुजङ्गमकुलं[3] चलम् ॥२९॥
प्रशान्तिं भ्रातरो यात तद्भ्रातृभ्यां समं ननु । किमाभ्यां क्रियते कार्यं कन्याभ्यामधुना शुभाः ॥३०॥
स्वभावाद्वनिता जिह्मा विशेषादन्यचेतसः । ततः [4]सुहृदयस्तासामर्थे को विकृतिं भजेत् ॥३१॥
अपि निर्जितदेवीभ्यामेताभ्यां नास्ति कारणम् । अस्माकं चेत्प्रियं कर्तुं [5]निवर्तध्वमितो मनः ॥३२॥
एवमष्टकुमाराणां वचनैः [6]प्रग्रहैरिव । तुरङ्गमबलं[7] वृन्दं भ्रातृणां स्थापितं वशे ॥३३॥
वृत्तौ यत्र[8] सुकन्याभ्यां वैदेहीतनुसंभवौ । प्रदेशे तत्र संवृत्तस्तुमुलस्तूर्यनिस्वनः ॥३४॥
वंशाः सकाहलाः शङ्खा सम्भोभेर्यः सझर्झराः । मनःश्रोत्रहरं नेदुर्व्याप्तदूरदिगन्तराः ॥३५॥
स्वायंवरीं समालोक्य विभूतिं लक्ष्मणात्मजाः । [9]शुशुचुर्वीक्ष्य देवेन्द्रीमिव क्षुद्रर्धयः सुराः ॥३६॥
नारायणस्य पुत्राः स्मो द्युतिकान्तिपरिच्छदाः । नवयौवनसंपन्नाः सुसहाया बलोत्कटाः ॥३७॥
गुणेन केन हीनाः स्म यदेकमपि नो जनम् । परित्यज्य वृतावेतौ कन्याभ्यां जानकीसुतौ ॥३८॥
अथवा विस्मयः कोऽत्र किमपीदं जगद्गतम् । कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्रं यच्चराचरम् ॥३९॥
प्रागेव यदवाप्तव्यं येन यत्र यथा यतः । तत्परिप्राप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तथा ततः ॥४०॥

वहाँ उन आठके सिवाय बलवान् तथा उत्कट चेष्टाके धारक जो लक्ष्मणके अन्य पुत्र थे वे क्रोधवश लवण और अंकुशकी ओर झपटनेके लिए तत्पर हो गये परन्तु उन सुन्दर कन्याओंको लक्ष्य कर उद्धत चेष्टा दिखानेवाली भाइयोंकी उस सेनाको पूर्वोक्त आठ प्रमुख वीरोंने उस प्रकार शान्त कर दिया जिस प्रकारकी मन्त्र चंचल सर्पोंके समूहको शान्त कर देते हैं ॥२८–२९॥ उन आठ भाइयोंने अन्य भाइयोंको समझाते हुए कहा कि 'भाइयो ! तुम सब उन दोनों भाइयोंके साथ शान्तिको प्राप्त होओ । हे भद्र जनो ! अब इन दोनों कन्याओंसे क्या कार्य किया जाना है ? स्त्रियाँ स्वभावसे ही कुटिल हैं फिर जिनका चित्त दूसरे पुरुषमे लग रहा है उनका तो कहना ही क्या है ? इसलिए ऐसा कौन उत्तम हृदयका धारक है जो उनके लिए विकारको प्राप्त हो। भले ही इन कन्याओंने देवियोंको जीत लिया हो फिर भी इनसे हम लोगोको क्या प्रयोजन है ? इसलिए यदि अपना कल्याण करना चाहते हो तो इनकी ओरसे मनको लौटाओ' ॥३०–३२॥ इस तरह उन आठ कुमारोके वचनोसे भाइयोंका वह समूह उस प्रकार वशीभूत हो गया जिस प्रकार कि लगामोंसे घोड़ोका समूह वशीभूत हो जाता है ॥३३॥ जिस स्थानमे उन उत्तम कन्याओके द्वारा सीताके पुत्र वरे गये थे वहाँ बाजोंका तुमुल शब्द होने लगा ॥३४॥ बहुत दूर तक दिग्-दिगन्तको व्याप्त करनेवाले बाँसुरी, काहला, शंख, भंभा, भेरी तथा झर्झर आदि बाजे मन और कानोंको हरण करनेवाले मनोहर शब्द करने लगे ॥३५॥ जिस प्रकार इन्द्रकी विभूति देख क्षुद्र ऋद्धिके धारक देव शोकको प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार स्वयंवरकी विभूति देख लक्ष्मणके पुत्र क्षोभको प्राप्त हो गये ॥३६॥ वे सोचने लगे कि हम नारायणके पुत्र है, दीप्ति और कान्तिसे युक्त है, नवयौवनसे सम्पन्न है, उत्तम सहायकोसे युक्त है तथा बलसे प्रचण्ड है ॥३७॥ हम लोग किस गुणमे हीन है कि जिससे हम लोगोमे-से किसी एकको भी इन कन्याओने नही वरा किन्तु उसके विपरीत हम सबको छोड़ जानकीके पुत्रोंको वरा ॥३८॥ अथवा इसमे आश्चर्य ही क्या है ? जगत्की ऐसी ही विचित्र चेष्टा है, कर्मोकी विचित्रताके योगसे यह चराचर विश्व विचित्र ही जान पड़ता है ॥३९॥ जिसे जहाँ जिस प्रकार जिस कारणसे जो वस्तु पहले ही प्राप्त करने योग्य होती है उसे वहाँ उसी प्रकार उसी कारणसे वही वस्तु अवश्य प्राप्त होती है ॥४०॥

१. ततोऽष्टभिः म. । २. सुकन्याभि म. ज. । ३. भुजङ्गमतुलं वलम् ज. । ४. सहृदयः ब, क । ५ विवर्तध्व- । ६ प्रगहैरपि म । ७. तुरङ्गचञ्चलं म. । ८ यत्तु म. । ९. शुश्रुवु- म ।

एवं लक्ष्मणपुत्राणां वृन्दे प्रारब्धशोचने । ऊचे रूपवतीपुत्रः प्रहस्य गतविस्मयः ॥४१॥
स्त्रीमात्रस्य कृते कस्मादेवं शोचत संनराः । चेष्टितादिति वो हास्यं परमं समजायत ॥४२॥
किमाभ्यां [1]निर्वृतेर्दूती लब्धा जैनेश्वरी द्युतिः । अबुधा इव यद्व्यर्थं संशोचत पुनः पुनः ॥४३॥
रम्भास्तम्भसमानानां निःसाराणां हतात्मनाम् । कामानां वशगाः शोकं हास्यं नो कर्तुमर्हथ ॥४४॥
सर्वे शरीरिणः कर्मवशे वृत्तिमुपाश्रिताः । न तत्कुरुथ किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥४५॥
गहने भवकान्तारे प्रणष्टाः प्राणधारिणः । ईदृंशि [2]यान्ति दुःखानि निरस्यत ततस्तकम् ॥४६॥
भ्रातरः कर्मभूरेषा जनकस्य प्रसादतः । द्यौरिहावधृतास्माभिर्मोहवेष्टितबुद्धिभिः ॥४७॥
अङ्कस्थेन पितुर्बाल्ये वाच्यमान पुरा मया । पुस्तके श्रुतमत्यन्तं सुस्वरं वस्तु सुन्दरम् ॥४८॥
भवानां किल सर्वेषां दुर्लभो मानुषो भवः । प्राप्य तं स्वहितं यो न कुरुते स तु वञ्चितः ॥४९॥
ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम् । ज्ञानेन च शिवं जीवो दुःखदां गतिमंहसा ॥५०॥
पुनर्जन्म ध्रुवं ज्ञात्वा तपः कुर्मो न चेद् वयम् । अवाप्तव्या ततो भूयो दुर्गतिर्दुःखसंकटा ॥५१॥
एवं कुमारवीरास्ते प्रतिबोधमुपागताः । संसारसागरासातावेदनावर्तभीतिगाः ॥५२॥
त्वरितं पितरं गत्वा प्रणम्य विनयस्थिताः । प्राहुर्मधुरमत्यर्थं रचिताञ्जलिकुड्मलाः ॥५३॥
तात नः शृणु विज्ञात न विघ्नं कर्तुमर्हसि । दीक्षामुपेतुमिच्छामो व्रज तत्रानुकूलताम् ॥५४॥
विद्युदाकालिकं ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् । विलोक्यो[3]दीयतेऽस्माकमत्यन्तं परमं [4]भयम् ॥५५॥
कथंचिदधुना प्राप्ता बोधिरस्माभिरुत्तमा । यया नौभूतया पारं प्रयास्यामो भवोदधेः ॥५६॥

इस प्रकार जब लक्ष्मणके पुत्र शोक करने लगे तब जिसका आश्चर्य नष्ट हो गया था ऐसे रूपवती-के पुत्रने हँसकर कहा कि अरे भले पुरुषो ! स्त्री मात्रके लिए इस तरह क्यो शोक कर रहे हो ? तुम लोगोकी इस चेष्टासे परम हास्य उत्पन्न होता है—अधिक हँसी आ रही है ॥४१–४२॥ हमे, इन कन्याओसे क्या प्रयोजन है ? हमे तो मुक्तिकी दूती स्वरूप जिनेन्द्रभगवान्‌की कान्तिकी प्राप्ति हो चुकी है अर्थात् हमारे मनमे जिनेन्द्र मुद्राका स्वरूप झूल रहा है। फिर क्यो मूर्खोके समान तुम व्यर्थं ही बार-बार इसीका शोक कर रहे हो ? ॥४३॥ केलेके स्तम्भके समान निःसार तथा आत्माको नष्ट करनेवाले कामोसे वशीभूत हो तुम लोग शोक और हास्य करनेके योग्य नही हो ॥४४॥ सब प्राणी कर्मके वशमे पड़े हुए है इसलिए वह काम क्यो नही करते कि जिससे वह कर्म नष्ट हो जाता है ॥४५॥ इस संसार रूपी सघन वनमे भूले हुए प्राणी ऐसे दुःखोको प्राप्त हो रहे हैं इसलिए उस ससार वनको नष्ट करो ॥४६॥ हे भाइयो ! यह कर्मभूमि है परन्तु पिताके प्रसादसे मोहाक्रान्त बुद्धि होकर हम लोग इसे स्वर्ग जैसा समझ रहे है ॥४७॥ पहले बाल्यावस्था-मे पिताकी गोदमे स्थित रहनेवाले मैने किसीके द्वारा पुस्तकमे बाँची गयी एक बहुत ही सुन्दर वस्तु सुनी थी कि सब भवोमे मनुष्यभव दुर्लभ भव है उसे पाकर जो अपना हित नही करता है वह वंचित रहता है—ठगाया जाता है ॥४८–४९॥ यह जीव पात्रदानसे ऐश्वर्यको, तपसे स्वर्ग-को, ज्ञानसे मोक्षको, और पापसे दुःखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥५०॥ 'पुनर्जन्म अवश्य होता है' यह जानकर भी यदि हम तप नही करते है तो फिरसे दुःखोसे भरी हुई दुर्गति प्राप्त करनी होगी ॥५१॥ इस प्रकार संसार-सागरके मध्य दुःखानुभवरूपी भँवरसे भयभीत रहनेवाले वे वीर कुमार प्रतिबोधको प्राप्त हो गये ॥५२॥ और शीघ्र ही पिताके पास जाकर तथा प्रणाम कर विनयसे खड़े हो हाथ जोड़ अत्यन्त मधुर स्वरमे कहने लगे कि हे पिताजी ! हमारी प्रार्थना सुनिए। आप विघ्न करनेके योग्य नही हैं। हम लोग दीक्षा ग्रहण करना चाहते है सो इसमे अनुकूलताको प्राप्त हूजिए ॥५३–५४॥ इस संसारको बिजलीके समान क्षणभंगुर तथा साररहित देखकर हम लोगोको अत्यन्त तीव्र भय उत्पन्न हो रहा है ॥५५॥ हम लोग इस समय किसी

---

१ निवृत्ते म । २ यानि म, ज. । ३. विलोक्य दीयते ब, ज । ४. रुषम् म., ज. ।

आशीविषफणा[1] भीमान् कामान् शङ्कासुकानलम्[2] । हेतून् परमदुःखस्य वाञ्छामो दूरमुज्झितुम् ॥५७॥
नास्य माता पिता भ्राता बान्धवाः सुहृदोऽपि वा । सहायाः कर्मतन्त्रस्य परित्राणं शरीरिणः ॥५८॥
तात विद्मस्तवास्मासु[3] वात्सल्यमुपमोज्झितम् । मातॄणां च परं ह्येतद्बन्धनं भववासिनाम् ॥५९॥
किं तर्हि सुचिरं सौख्यं भवद्वात्सल्यसंभवम् । भुक्त्वापि विरहोऽवश्यं प्राप्यः क्रकचदारुणः ॥६०॥
अतृप्त एव भोगेषु जीवो दुर्मित्रविभ्रमः । इमं विमोक्ष्यते देहं किं प्राप्तं जायते तदा ॥६१॥
ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्परमस्नेहविह्वलः । आघ्राय मस्तके पुत्रानमीक्ष्य च पुनः पुनः ॥६२॥
एते कैलासशिखरप्रतिमा हेमरत्नजाः । प्रासादाः कनकस्तम्भसहस्रपरिशोभिताः ॥६३॥
नानाकुट्टिमभूभागाश्चारुनिर्व्यूहसंगताः । सुसेव्या विमलाः कान्ताः सर्वोपकरणान्विताः ॥६४॥
मलयाचलसद्गन्धमारुताकृष्टषट्पदाः । स्नानादिविधिसंपत्तियोग्यनिर्मलभूमयः ॥६५॥
शरच्चन्द्रप्रभा गौराः सुरस्त्रीसमयोषितः । गुणैः समाहिताः सर्वैः[4] कल्पप्रासादसंनिभाः ॥६६॥
वीणावेणुमृदङ्गादिसंगीतकमनोहराः । जिनेन्द्रचरितासक्तकथात्यन्तपवित्रिताः ॥६७॥
[5]उषित्वा सुखमेतेषु रमणीयेषु वत्सकाः । प्रतिपद्य कथं दीक्षां वत्स्यथान्तर्वनाचलम् ॥६८॥
[6]संचक्ष्य[संत्यज्य]स्नेहनिघ्नं मां शोकतप्तां च मातरम् । न युक्तं वत्सका गन्तुं सेव्यतां तावदीशिता[7] ॥६९॥

तरह उस उत्तम बोधिको प्राप्त हुए हैं कि नौका स्वरूप जिस बोधिके द्वारा संसार-सागरके उस पार पहुँचेंगे ॥५६॥ जो आशीविष—सर्पके फनके समान भयंकर हैं, शंका अर्थात् भय जिनके प्राण हैं तथा जो परमदुःखके कारण हैं ऐसे भोगोंको हम दूरसे ही छोड़ना चाहते हैं ॥५७॥ इस कर्माधीन जीवकी रक्षा करनेके लिए न माता सहायक है, न पिता सहायक है, न भाई सहायक है, न कुटुम्बीजन सहायक हैं और न मित्र लोग सहायक हैं ॥५८॥ हे तात ! हम लोगोंपर आपका तथा माताओंका जो उपमारहित परम वात्सल्य है उसे हम जानते हैं और यह भी जानते हैं कि संसारी प्राणियोंके लिए यही बड़ा बन्धन है परन्तु आपके स्नेहसे होनेवाला सुख क्या चिरकाल तक रह सकता है ? भोगनेके बाद भी उसका विरह अवश्य प्राप्त करना होता है और ऐसा विरह कि जो करोतके समान भयंकर होता है ॥५९–६०॥ यह जीव भोगोंमें तृप्त हुए बिना ही कुमित्रकी तरह इस शरीरको छोड़ देगा तब क्या प्राप्त हुआ कहलाया ? ॥६१॥

तदनन्तर परमस्नेहसे विह्वल लक्ष्मण उन पुत्रोंको मस्तकपर सूँघकर तथा पुनः पुनः उनकी ओर देखकर बोले कि ये महल जो कि कैलासके शिखरके समान हैं, सुवर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित हैं, सुवर्णके हजारों खम्भोंसे सुशोभित है, जिनके फर्शोकी भूमियाँ नाना प्रकारकी हैं, जो सुन्दर-सुन्दर छज्जोंसे सहित हैं, अच्छी तरह सेवन करने योग्य हैं, निर्मल हैं, सुन्दर हैं, सब प्रकारके उपकरणोंसे सहित हैं, मलयाचल जैसी सुगन्धित वायुसे जिनमें भ्रमर आकृष्ट होते रहते हैं, जहाँ स्नानादि कार्योंके योग्य जुदी-जुदी उज्ज्वल भूमियाँ हैं, जो शरद्ऋतुके चन्द्रमाके समान आभावाले हैं, शुभ्रवर्ण हैं, जिनमें देवांगनाओंके समान स्त्रियोंका आवास है, जो सब प्रकारके गुणोंसे सहित हैं, स्वर्गके भवनोंके समान हैं, वीणा, वेणु, मृदंग आदिके संगीतसे मनोहर हैं और जिनेन्द्र भगवान्‌के चरित सम्बन्धी कथाओंसे अत्यन्त पवित्र हैं, सामने खड़े हैं सो हे बालको ! इन महलोंमें सुखसे रहकर अब तुम लोग दीक्षा धारणकर वन और पहाड़ोंके बीच कैसे रहोगे ? ॥६२–६८॥ हे पुत्रो ! स्नेहाधीन मुझे तथा शोक सन्तप्त माताको छोड़कर जाना योग्य नहीं है इसलिए ऐश्वर्यका सेवन करो ॥६९॥

---

१. फणान् भीमान् म । २. शङ्कामुखानल -ज. । ३ तथास्मासु म. । ४ सर्वे म । ५. उज्झित्वा म. । ६. त्यक्त्वा, संचक्ष्य ज , ख. । ७. तावदीशतां ज., ख. ।

स्नेहावासनचित्तास्ते संविमृश्य क्षणं धिया। भवभीता हृषीकाप्यसौख्यैकान्तपराङ्मुखाः ॥७०॥
उदारवीरतादत्तमहावष्टम्भशालिनः। ऊचुः कुमारवृषभास्तत्त्वविन्यस्तचेतसः ॥७१॥
मातरः पितरोऽन्ये च संसारेऽनन्तशो गताः। [1]स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारकं गृहम् ॥७२॥
पापस्य परमारम्भं नानादुःखाभिवर्द्धनम्। गृहपञ्जरकं मूढाः सेवन्ते न प्रबोधिनः ॥७३॥
शारीरं मानसं दुःखं मा भूद्भूयोऽपि नो यथा। तथा सुनिश्चिताः कुर्मः किं वयं स्वस्य वैरिणः ॥७४॥
निर्दोषोऽहं न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन्। मलिनत्वं गृही याति शुक्लांशुकमिव स्थितम् ॥७५॥
उत्थायोत्थाय यन्नृणां गृहाश्रमनिवासिनाम्। पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहिधर्मो महात्मभिः ॥७६॥
भुज्यतां तावदैश्वर्यमिति यत्प्रोक्तवानसि। तदन्धकारकूपे नः क्षिपसि ज्ञानवानपि ॥७७॥
पिबन्तं मृगकं यद्वद्व्याधो हन्ति तृषा जलम्। तथैव पुरुषं मृत्युर्हन्ति भोगैरतृप्तकम् ॥७८॥
विषयप्राप्तिसंसक्तमस्वतन्त्रमिदं जगत्। कामैराशीविषैः साकं क्रीडत्यज्ञमनौषधम् ॥७९॥
विषयामिषसंसक्ता मग्ना गृहजलाशये। रुजा बडिशयोगेन नरमीना व्रजन्त्यमुम् ॥८०॥
अत एव नृलोकेशो जगत्त्रितयवन्दितः। जगत्स्वकर्मणां वश्यं जगाद भगवानृषिः ॥८१॥
दुरन्तैस्तदलं तात प्रियसंगमलोभनैः। विचक्षणजनद्विष्टैस्तडिद्दण्डचलाचलैः ॥८२॥

तदनन्तर स्नेहके दूर करनेमे जिनके चित्त लग रहे थे, जो संसारसे भयभीत थे, इन्द्रियोसे प्राप्त होने योग्य सुखोसे एकान्तरूपसे विमुख थे, उदार वीरताके द्वारा दिये हुए आलम्बनसे जो सुशोभित थे तथा तत्त्व विचार करनेमे जिनके चित्त लग रहे थे ऐसे वे सब कुमार बुद्धि द्वारा क्षणभर विचार कर बोले कि इस संसारमे माता-पिता तथा अन्य लोग अनन्तो बार प्राप्त होकर चले गये हैं। यथार्थमे स्नेहरूपी बन्धनको प्राप्त हुए मनुष्योके लिए यह घर एक बन्दी गृहके समान है ॥७०-७२॥ जिसमे पापका परम आरम्भ होता है तथा जो नाना दुःखोको बढ़ानेवाला है ऐसे गृहरूपी पिंजड़ेकी मूर्ख मनुष्य ही सेवा करते हैं बुद्धिमान् नही ॥७३॥ जिस तरह शारीरिक और मानसिक दुःख हमे पुनः प्राप्त न हो उस तरह ही दृढ़ निश्चय कर हम कार्य करना चाहते है। क्या हम अपने आपके वैरी है ॥७४॥ गृहस्थ यद्यपि यह सोचता है कि मै निर्दोष हूँ, मेरे पाप नही हैं, फिर भी वह रखे हुए शुक्लवस्त्रके समान मलिनताको प्राप्त हो ही जाता है ॥७५॥ यतश्च गृहस्थाश्रममे निवास करनेवाले मनुष्योको उठ-उठकर पापमे प्रीति होती है इसीलिए महात्मा पुरुषोने गृहस्थाश्रमका त्याग किया है ॥७६॥ आपने जो कहा है कि अच्छी तरह ऐश्वर्यका उपभोग करो सो आप हमे ज्ञानवान् होकर भी अन्धकूपमे फेक रहे हैं ॥७७॥ जिस प्रकार प्याससे पानी पीते हुए हरिणको शिकारी मार देता है उसी प्रकार भोगोसे अतृप्त मनुष्यको मृत्यु मार देती है ॥७८॥ विषयोकी प्राप्तिमे आसक्त, परतन्त्र, अज्ञानी तथा औषधसे रहित यह संसार कामरूपी सापोके साथ क्रीड़ा कर रहा है।

भावार्थ—जिस प्रकार साँपोंके साथ खेलनेवाले अज्ञानी एवं औषधरहित मनुष्य मरणको प्राप्त होता है उसी प्रकार आस्रव बन्ध और सवर निर्जराके ज्ञानसे रहित यह जीव इन्द्रिय भोगोके साथ क्रीड़ा करता हुआ मृत्युको प्राप्त होता है ॥७९॥ घररूपी जलाशयमे मग्न तथा विषयरूपी मांसमे आसक्त ये मनुष्यरूपी मच्छ रोगरूपी वंशीके योगसे मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥८०॥ इसीलिए मनुष्यलोकके स्वामी, लोकत्रयके द्वारा वन्दित भगवान् जिनेन्द्रने जगत्को अपने कर्मके आधीन कहा है। भावार्थ—भगवान् जिनेन्द्रने बताया है कि संसारके सब प्राणी स्वीकृत कर्मोके आधीन हैं ॥८१॥ इसलिए हे तात! जिनका परिणाम अच्छा नही है, प्रियजनोका समागम जिनका प्रलोभन है, जो विद्वज्जनोके द्वेषपात्र हैं तथा जो बिजलीके समान चंचल है ऐसे इन भोगोसे पूरा

---

१. स्नेहबन्धनमेतद्धि चारक नारकं गृहम् म., ख.।

ध्रुवं यदा समासाद्यो विरहो बन्धुभिः समम् । असमञ्जसरूपेऽस्मिन्संसारे का रतिस्तदा ॥८३॥
अयं मे प्रिय इत्यास्थाव्यामोहोपनिवन्धना[1] । एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदुःखभाक् ॥८४॥
वितथागमकुद्वीपे मोहसंगतपङ्कके । शोकसंतापफेनाढ्ये भवावर्त्तव्रजाकुले ॥८५॥
व्याधिमृत्यूर्मिकल्लोले मोहपातालगह्वरे । क्रोधादिमकरक्रूरनक्रसंघातवट्टिते ॥८६॥
कुहेतुसमयोद्भूतनिर्ह्रादात्यन्तभैरवे । मिथ्यात्वमारुतोद्धूते दुर्गतिक्षारवारिणि ॥८७॥
नितान्तदुःसहोदारवियोगवडवानले । [2]सुचिरं तात खिन्नाः स्मो घोरे संसारसागरे ॥८८॥
नानायोनिषु सम्भ्रम्य कृच्छ्रात्प्राप्ता मनुष्यताम् । कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नात्र सागरे ॥८९॥
ततः परिजनाकीर्णावापृच्छ्य पितरौ क्रमात् । अष्टौ कुमारवीरास्ते निर्जग्मुर्गृहचारकात् ॥९०॥
आसीन्नि कामतां तेषामीश्वरत्वे तथाविधे । बुद्धिर्जीर्णतृणे यद्वत्संसाराचारवेदिनाम् ॥९१॥
ते महेन्द्रोदयोद्यानं गत्वा संवेगकं ततः । महाबलमुनेः पार्श्वे जगृहुर्निरगारताम् ॥९२॥

आर्या

सर्वारम्भविरहिता विहरन्ति नित्यं निरम्बरा विधियुक्तम् ।
क्षान्ता दान्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनो ध्यानरताः ॥९३॥

उपजातिः

सम्यक्तपोभिः प्रविधूय पापमध्यात्मयोगैः परिरुध्य पुण्यम् ।
ते क्षीणनिःशेषभवप्रपञ्चाः प्रापुः पदं जैनमनन्तसौख्यम् ॥९४॥

पड़े अर्थात् इनकी आवश्यकता नही है ॥८२॥ जब कि बन्धुजनोंके साथ विरह अवश्यंभावी है तब इस अटपटे संसारमे क्या प्रीति करना है ? ॥८३॥ 'यह मेरा प्यारा है' ऐसी आस्था केवल व्यामोहके कारण उत्पन्न होती है क्योकि यह जीव अकेला ही गमनागमनके दुःखको प्राप्त होता है ॥८४॥ मिथ्याशास्त्र ही जिसमे खोटे द्वीप है, मोहरूपी कीचड़से जो युक्त है, जो शोक सन्ताप-रूपी फेनसे सहित है, जन्मरूपी भँवरोंके समूहसे व्याप्त है, व्याधि तथा मृत्युरूपी तरंगोसे युक्त है, मोहरूपी गहरे गर्तोसे सहित है, क्रोधादि कषाय रूपी क्रूर मकर और नाकोके समूहसे लहरा रहा है, मिथ्या तर्कशास्त्रसे उत्पन्न शब्दोसे अत्यन्त भयंकर है, मिथ्यात्व रूपी वायुके द्वारा कम्पित है, दुर्गतिरूपी खारे पानीसे सहित है और अत्यन्त दुःसह तथा उत्कट वियोग रूपी वड़वानलसे युक्त है ऐसे भयंकर संसार-सागरमे हे तात ! हम लोग बहुत समयसे खेद-खिन्न हो रहे है ॥८५–८८॥ नाना योनियोमे परिभ्रमण करनेके बाद हम बड़ी कठिनाईसे मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए है इसलिए अब वह काम करना चाहते है कि जिससे पुनः इस संसार-सागरमे न डूबे ॥८९॥

तदनन्तर परिजनके लोगोसे घिरे हुए माता-पितासे पूछकर वे आठो वीर कुमार क्रम-क्रमसे घर रूपी कारागारसे बाहर निकले ॥९०॥ संसार-स्वरूपको जाननेवाले, घरसे निकलते हुए उन वीरोकी उस प्रकारके विशाल साम्राज्यमे ठीक उस तरहकी अनादर बुद्धि हो रही थी जिस प्रकार कि जीर्ण-तृणमें होती है ॥९१॥ तदनन्तर उन्होने महेन्द्रोदय नामा उद्यानमे जाकर संवेगपूर्वक महाबल मुनिके समीप निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली ॥९२॥ जो सब प्रकारके आरम्भसे रहित थे, दिगम्बर थे, क्षमा युक्त थे, दमन शील थे, सब झंझटोसे मुक्त थे, निरपेक्ष थे और ध्यानमे तत्पर थे ऐसे वे परम योगी निरन्तर विहार करते रहते थे ॥९३॥ समीचीन तपके द्वारा पापको नष्ट कर, और अध्यात्मयोगके द्वारा पुण्यको रोककर जिन्होने संसारका

---

१. निवन्धन. म । २. मुचिरे म. ।

एतत् कुमाराष्टकमङ्गलं यः पठेद् विनीतः शृणुयाच्च भक्त्या ।
तस्य क्षयं याति समस्तपापं रविप्रभस्योदयते च चन्द्रः ॥९५॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रणीते कुमाराष्टकनिष्क्रमणाभिधानं नाम दशोत्तरशतं पर्व ॥११०॥



समस्त प्रपंच नष्ट कर दिया था ऐसे वे आठों मुनि अनन्त सुखसे युक्त निर्वाण पदको प्राप्त हुए ॥९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य विनीत हो भक्ति पूर्वक इन आठ कुमारोंके मंगलमय चरितको पढ़ता अथवा सुनता है सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाले उस मनुष्यका सब पाप नष्ट हो जाता है तथा उत्तम चन्द्रमाका उदय होता है ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें आठ कुमारोंकी
दीक्षाका वर्णन करनेवाला एक सौ दसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११०॥



एकादशोत्तरशतं पर्व

गणी वीरजिनेन्द्रस्य प्रथमः[1] प्रथमः[2] सताम् । अवेदयन्मनोयातं प्रभामण्डलचेष्टितम् ॥१॥
[3]विद्याधरमहाकान्तकामिनीवीरुदुद्भवे । सौख्यपुष्पासवे सक्तः प्रभामण्डलषट्पदः ॥२॥
अचिन्तयदहं दीक्षां यद्युपैम्यपवाससाम् । तदैतदङ्गनापद्मखण्डं[4] [5]पद्मत्यसंशयम् ॥३॥
एतासां मत्समासक्तचेतसां विरहे मम । वियोगो भवितावश्यं प्राणैः सुखमपालितैः ॥४॥
दुस्त्यजानि दुरापानि कामसौख्यान्यवारितम् । भुक्त्वा श्रेयस्कर पश्चात् करिष्यामि ततः परम् ॥५॥
भोगैरुपार्जितं पापमत्यन्तमपि पुष्कलम् । सुध्यानवह्निनावश्यं धक्ष्यामि क्षणमात्रतः ॥६॥
अत्र सेनां समावेश्य विमानक्रीडनं भजे । उद्वासयामि शत्रूणां नगराणि समन्ततः ॥७॥
मानशृङ्गोन्नतेर्भङ्गं करोमि रिपुखड्गिनाम् । स्थापयाम्युभयश्रेण्योर्वशे शासनकारिते ॥८॥
मेरोर्मरकतादीनां रत्नानां विमलेष्वलम् । शिलातलेषु रम्येषु क्रीडामि ललनान्वितः ॥९॥
एवमादीनि वस्तूनि ध्यायतस्तस्य [6]जानकेः । समतीयुर्मुहूर्त्तानि संवत्सरशतान्यलम् ॥१०॥
कृतमेतत्करोमीद करिष्यामीदमित्यसौ । चिन्तयन्नात्मनोऽवेदी चायु. संहारमागतम् ॥११॥
अन्यदा सप्तमस्कन्धं प्रासादस्याधितिष्ठतः । अपप्तदशनिर्मूर्ध्नि तस्य कालं ततो गतः ॥१२॥
अशेषतो निजं वेत्ति जन्मान्तरविचेष्टितम् । दीर्घसूत्रस्तथाऽप्यात्मसमुद्धारे स नो स्थितः ॥१३॥

अथानन्तर वीर जिनेन्द्रके प्रथम गणधर सज्जनोत्तम श्री गौतमस्वामी मनमे आये हुए भामण्डलका चरित्र कहने लगे ॥१॥ विद्याधरोंकी अत्यन्त सुन्दर स्त्रीरूपी लताओंसे उत्पन्न सुखरूपी फूलोके आसवमे आसक्त भामण्डल रूपी भ्रमर इस प्रकार विचार करता रहता था कि यदि मैं दिगम्बर मुनियोकी दीक्षा धारण करता हूँ तो यह स्त्रीरूपी कमलोका समूह निःसन्देह कमलके समान आचरण करता है अर्थात् कमलके ही समान कोमल है ॥२-३॥ जिनका चित्त मुझमे लग रहा है ऐसी ये स्त्रियाँ मेरे विरहमे अपने प्राणोंका सुखसे पालन नही कर सकेंगी अतः उनका वियोग अवश्य हो जायेगा ॥४॥ अतएव जिनका छोड़ना तथा पाना दोनों ही कठिन हैं ऐसे इन कामसम्बन्धी सुखोको पहले अच्छी तरह भोग लूँ बादमे कल्याणकारी कार्य करूँ ॥५॥ यद्यपि भोगोके द्वारा उपार्जित किया हुआ पाप अत्यन्त पुष्कल होगा तथापि उसे सुध्यान रूपी अग्निके द्वारा एक क्षणमे जला डालूँगा ॥६॥ यहाँ सेना ठहराकर विमानोसे क्रीड़ा करूँ और सब ओर शत्रुओंके नगर उजाड़ कर दूँ ॥७॥ दोनो श्रेणियोमे शत्रु रूपी गेंडा हाथियोके मान रूपी शिखरकी जो उन्नति हो रही है उसका भंग करूँ तथा उन्हे आज्ञाके द्वारा किये हुए अपने वशमे स्थापित करूँ ॥८॥ और मेरु पर्वतके मरकत आदि मणियोके निर्मल एवं मनोहर शिलातलोपर स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करूँ ॥९॥ इत्यादि वस्तुओका विचार करते हुए उस भामण्डलके सैकड़ों वर्ष एक मुहूर्तके समान व्यतीत हो गये ॥१०॥ 'यह कर चुका, यह करता हूँ और यह करूँगा' वह यही विचार करता रहता था, पर अपनी आयुका अन्तिम अवसर आ चुका है यह नही विचारता था ॥११॥

एक दिन वह महलके सातवें खण्डमे बैठा था कि उसके मस्तकपर वज्र गिरा जिससे वह मृत्युको प्राप्त हो गया ॥१२॥ यद्यपि वह अपने जन्मान्तरकी समस्त चेष्टाको जानता था

---

१. आद्य । २ श्रेष्ठ. । ३. विद्याधरी -म । ४. प्रेमखण्डं म. । ५ पद्ममिवाचरति । ६ जनकापत्यस्य भामण्डलस्य ।

तृष्णाविषादहन्तॄणां क्षणमप्यस्ति नो शमः । मूर्धोपकण्ठदत्ताङ्घ्रिर्मृत्युः कालमुदीक्षते ॥१४॥
अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिनः । हताशः कुरुते किं न जीवो विषयदासकः ॥१५॥
ज्ञात्वा जीवितमानाय्य त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् । स्वहिते वर्त्तते यो न स नश्यत्यकृतार्थकः ॥१६॥
सहस्रेणापि शास्त्राणां किं येनात्मा न शाम्यति । तृप्तमेकपदेनापि येनात्मा शममश्नुते ॥१७॥
कर्त्तुमिच्छति सद्धर्मं न [1]करोति [2]यथाप्ययम् । दिव यियासुर्विच्छिन्नपक्ष[3]काक इव श्रमम् ॥१८॥
विमुक्तो व्यवसायेन लभते चेत्समीहितम् । न लोके विरही कश्चिद्भवेद्द्रविणोऽपि वा ॥१९॥
अतिथिं द्वारागतं साधुं गुरुवाक्यं प्रतिक्रियाम् । प्रतीक्ष्य सुकृतं चाशु नावसीदति मानवः ॥२०॥

आर्यागीतिः

नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दुःखिनः प्रतिदिवसम् ।
रत्नमिव करतलस्थं भ्रश्यत्यायुः प्रमादतः प्राणभृतः ॥२१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे भामण्डलपरलोकाभिगमनं नामैकादशोत्तरशतं पर्व ॥१११॥



तथापि इतना दीर्घसूत्री था कि आत्म-कल्याणमे स्थित नही हुआ ॥१३॥ तृष्णा और विषादको नष्ट करनेवाले मनुष्योको क्षणभरके लिए भी शान्ति नही होती क्योकि उनके मस्तकके समीप पैर रखनेवाला मृत्यु सदा अवसरकी प्रतीक्षा किया करता है ॥१४॥ क्षणभरमे नष्ट हो जानेवाले इस अधम शरीरके लिए, विषयोका दास हुआ यह नीच प्राणी क्या-क्या नही करता है ? ॥१५॥ जो मनुष्य-जीवनको भगुर जान समस्त परिग्रहका त्याग कर आत्महितमे प्रवृत्ति नही करता है वह अकृतकृत्य दशामे ही नष्ट हो जाता है ॥१६॥ उन हजार शास्त्रोंसे भी क्या प्रयोजन है जिससे आत्मा शान्त नही होती और वह एक पद भी बहुत है जिससे आत्मा शान्तिको प्राप्त हो जाती है ॥१७॥ जिस प्रकार कटे पक्षका काक आकाशमे उड़ना तो चाहता है पर वैसा श्रम नही करता उसी प्रकार यह जीव सद्धर्म करना तो चाहता है पर यह जैसा चाहिए वैसा श्रम नही करता ॥१८॥ यदि उद्योगसे रहित मनुष्य इच्छानुकूल पदार्थको पाने लगें तो फिर संसारमे कोई भी विरही अथवा दरिद्र नही होना चाहिए ॥१९॥ जो मनुष्य द्वारपर आये हुए अतिथि साधुको आहार आदि दान देता है तथा गुरुओके वचन सुन तदनुकूल शीघ्र आचरण करता है वह कभी दुःखी नही होता ॥२०॥ गौतम स्वामी कहते है कि नाना प्रकारके सैकड़ो व्यापारोसे जिसका हृदय आकुल हो रहा है तथा इसीके कारण जो प्रतिदिन दुःखका अनुभव करता रहता है ऐसे प्राणीकी आयु हथेलीपर रखे रत्नके समान नष्ट हो जाती है ॥२१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें भामण्डलके परलोक-गमनका वर्णन करनेवाला एक सौ ग्यारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१११॥



१ कर्णेति म. (?) २. तमप्ययम् म. । ३ पक्ष काक इव म ।

द्वादशोत्तरशतं पर्व

अथ याति शनैः कालः पद्मचक्राङ्कराजयोः। परस्परमहास्नेहवद्धयोस्त्रिविधः[1] सुखम् ॥१॥
[2]परमैश्वर्यतानोरू राजीववनवर्त्तिनौ। यथा [3]चन्दनदत्तौ तौ मोदेते नरकुञ्जरौ ॥२॥
शुष्यन्ति सरितो यस्मिन् काले दावाग्निसंकुले। तिष्ठन्त्यभिमुखा भानोः श्रमणाः प्रतिमागताः ॥३॥
तत्र तावति रम्येषु जलयन्त्रेषु [4]सद्मसु। उद्यानेषु च निःशेषप्रियसाधनशालिषु ॥४॥
[5]चन्दनाम्बुमहामोदशीतशीकरवर्षिभिः। चामरैरुपवीज्यन्तौ तालवृन्तैश्च सत्तमैः ॥५॥
स्वच्छस्फटिकपट्टस्थौ[6] चन्दनद्रवचर्चितौ। जलार्द्रनलिनीपुष्पदलमूलौघसंस्तरौ ॥६॥
एलालवङ्गकर्पूरक्षोदैं[7]संसर्गशीतलम्। विमलं सलिलं स्वादु सेवमानौ मनोहरम् ॥७॥
विचित्रसंकथादक्षवनिताजनसेवितौ। शीतकालमिवानीतं बलाद्धारयतः शुचौ ॥८॥
योगिनः समये यत्र तरुमूलव्यवस्थिताः। क्षपयन्त्यशुभं कर्म धारानिर्धू[8]तमूर्त्तयः ॥९॥
विलसद्विद्युदुद्योते तत्र मेघान्धकारिते। बृहद्घर्घरनीरौघे कूलमुद्रुजसिन्धुके ॥१०॥
मेरुशृङ्गसमाकारवर्त्तिनौ वरवाससौ। कुङ्कुमद्रवदिग्धाङ्गावुपयुक्तामितागुरू ॥११॥
महाविलासिनीनेत्रभृङ्गौघकमलाकरौ। तिष्ठतः सुन्दरीक्रीडौ यक्षेन्द्राविव तौ सुखम् ॥१२॥

अथानन्तर पारस्परिक महास्नेहसे बँधे राम-लक्ष्मणका, उष्ण, वर्षा और शीतके भेदसे तीन प्रकारका काल धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा था ॥१॥ परम ऐश्वर्यके समूहरूपी कमलवनमे विद्यमान रहनेवाले वे दोनो पुरुषोत्तम चन्दनसे लिप्त हुएके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२॥ जिस समय नदियाँ सूख जाती है, वन दावानलसे व्याप्त हो जाते है और प्रतिमायोगको धारण करनेवाले मुनि सूर्यके सम्मुख खड़े रहते हैं उस समय राम-लक्ष्मण, जलके फव्वारोसे युक्त सुन्दर महलोंमे तथा समस्त प्रिय उपकरणोंसे सुशोभित उद्यानोमे क्रीड़ा करते थे ॥३-४॥ चन्दनमिश्रित जलके महासुगन्धित शीतलकणको बरसानेवाले चमरो तथा उत्तमोत्तम पंखोसे वहाँ उन्हें हवा की जाती थी। वहाँ वे स्फटिकके स्वच्छ पटियोंपर बैठते थे, चन्दनके द्रवसे उनके शरीर चर्चित रहते थे, जलसे भीगे कमलपुष्पोकी कलियोके समूहसे बने विस्तरोंपर शयन करते थे। इलायची, लौंग, कपूरके चूर्णके संसर्गसे शीतल, निर्मल, स्वादिष्ट और मनोहर जलका सेवन करते थे, और नाना प्रकारकी कथाओमे दक्ष स्त्रियाँ उनकी सेवा करती थी। इस प्रकार ऐसा जान पड़ता था मानो वे ग्रीष्मकालमे भी शीतकालको पकड़कर बलात् धारण कर रहे थे ॥५-८॥ जिनका शरीर जलकी धाराओसे धुल गया है ऐसे मुनिराज जिस समय वृक्षोंके मूलमे बैठकर अपने अशुभ कर्मोंका क्षय करते हैं ॥९॥ जहाँ कही कौंधती हुई बिजलीके द्वारा प्रकाश फैल जाता है तो कही मेघोके द्वारा अन्धकार फैला हुआ है, जहाँ जलके प्रवाह विशाल घर्-घर् शब्द करते हुए बहते और जहाँ किनारोको ढहाकर बहा ले जानेवाली नदियाँ बहती है, उस वर्षाकालमें वे मेरुके शिखरके समान उन्नत महलोमे विद्यमान रहते थे, उत्तम वस्त्र धारण करते थे, कुंकुम-केशरके द्रवसे उनके शरीर लिप्त रहते थे, अपरिमित अगुरुचन्दनका वे उपयोग करते थे। महाविलासिनी स्त्रियोंके नेत्ररूप भ्रमरसमूहके लिए वे कमलवनके समान सुखकारी थे और सुन्दरी स्त्रियोके साथ क्रीड़ा करते हुए यक्षेन्द्रके समान सुखसे विद्यमान रहते थे ॥१०-१२॥

१. शीतोष्णवर्षात्मकः। २. परमैश्वर्यतासानो राजीव -म.। ३. नन्दनदत्तौ म.। ४. पद्मसु म.। ५. चन्दनार्द्र -म.। ६. पद्मस्थौ म.। ७ क्षोदः संसर्ग म। ८. -मुद्गत -म.।

प्रालेयपटसंवीता धर्मध्यानस्थचेतसः। तिष्ठन्ति योगिनो यत्र निशि स्थण्डिलपृष्ठगाः ॥१३॥
तत्र काले महाचण्डशीतवाताहतद्रुमे। पद्माकरसमुत्सादे दापितोष्णकरोद्गमे ॥१४॥
प्रासादावनिकुक्षिस्थौ तिष्ठतस्तौ यथेप्सितम्। श्रीमद्युवतिवक्षोजक्रीडालम्बनवक्षसौ ॥१५॥
वीणामृदङ्गवंशादिसंभूतं मधुरस्वरम्। कुर्वाणौ मनसि स्वेच्छं परं श्रोत्ररसायनम् ॥१६॥
वाणीनिर्जितवीणाभिरनुकूलाभिरादरात्। सेव्यमानौ वरस्त्रीभिरमरीभिरिवामरौ ॥१७॥
नक्तं दिनं परिस्फीतभोगसंपत्समन्वितौ। सुखं तौ नयतः कालं सर्वपुण्यानुभावत. ॥१८॥
एवं तौ तावदासेते पुरुषौ जगदुत्कटौ। अथ श्रीशैलवीरस्य वृत्तान्तं शृणु पार्थिव ॥१९॥
सेवते परमैश्वर्यं नगरे कर्णकुण्डले। पूर्वपुण्यानुभावेन स्वर्गीवानिलनन्दनः ॥२०॥
विद्याधरमहत्त्वेन[1] सहित. परमक्रियः। स्त्रीसहस्रपरीवारः स्वेच्छयाटति मेदिनीम् ॥२१॥
वरं विमानमारूढः[2] परमर्द्धिसमन्वित.। सत्काननादिषु श्रीमाँस्तदा क्रीडति देववत् ॥२२॥
अन्यदा जगदुन्मादहेतौ कुसुमहासिनि। वसन्तसमये[3] प्राप्ते प्रियामोदनमस्वति ॥२३॥
जिनेन्द्रभक्तिसंवीतमानसः पवनात्मजः। हृष्टः संप्रस्थितो मेरुमन्तःपुरसमन्वितः ॥२४॥
नानाकुसुमरम्याणि सेवितानि द्युवासिभिः। कुलपर्वतसानूनि प्रस्थित. सोऽवतिष्ठते ॥२५॥
मत्तभृङ्गान्यपुष्टौघनादवन्ति[4] मनोहरैः। सरोभिर्दर्शनीयानि स वनानि च भूरिशः ॥२६॥
मिथुनैरुपभोग्यानि पत्रपुष्पफलैस्तथा। काननानि विचित्राणि रत्नोद्योतितपर्वतान्[5] ॥२७॥

जिस कालमें रात्रिके समय धर्मध्यानमे लीन, एवं वनके खुले चबूतरोंपर बैठे मुनिराज बर्फरूपी वस्त्रसे आवृत हो स्थित रहते हैं, जहाँ अत्यन्त शीत वायुसे वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, कमलोके वन सूख जाते हैं और जहाँ लोग सूर्योदयको अत्यन्त पसन्द करते हैं ऐसे शीतकालमे वे महलोके गर्भगृहमे इच्छानुसार रहते थे, उनके वक्षःस्थल तरुण स्त्रियोके स्तनोकी क्रीड़ाके आधार थे, वीणा, मृदग, बाँसुरी आदिसे उत्पन्न, कानोके लिए उत्तम रसायनस्वरूप मधुर स्वरको वे अपनी इच्छानुसार करते थे, जिन्होने अपनी वाणीसे वीणाको जीत लिया था ऐसी अनुकूल स्त्रियाँ बडे आदरसे उनकी सेवा करती थी और इसीलिए वे देवियोके द्वारा सेवित देवोके समान जान पड़ते थे। इस प्रकार वे पुण्यकर्मके प्रभावसे रातदिन अत्यधिक भोगसम्पदासे युक्त रहते हुए सुखसे समय व्यतीत करते थे ॥१३-१८॥

गौतमस्वामी कहते है कि इस तरह वे दोनो लोकोत्तम पुरुष सुखसे विद्यमान थे। हे राजन्! अब वीर हनूमान्‌का वृत्तान्त सुन ॥१९॥ पूर्वपुण्यके प्रभावसे हनूमान् कर्णकुण्डल नगरमे देवके समान परम ऐश्वर्यका उपभोग कर रहा था ॥२०॥ विद्याधरोके माहात्म्यसे सहित तथा उत्तमोत्तम क्रियाओसे युक्त हनूमान् हजारो स्त्रियोका परिवार लिये इच्छानुसार पृथ्वीमे भ्रमण करता था ॥२१॥ उत्तम विमानपर आरूढ तथा उत्तम विभूतिसे युक्त श्रीमान् हनूमान् उत्तम वन आदि प्रदेशोमे देवके समान क्रीड़ा करता था ॥२२॥

अथानन्तर किसी समय जगत्‌के उन्मादका कारण, फूलोसे सुशोभित एव प्रिय सुगन्धित वायुके सचारसे युक्त वसन्तऋतु आयी ॥२३॥ सो उस समय जिनेन्द्र भक्तिसे जिसका चित्त व्याप्त था ऐसा हर्षसे भरा हनूमान् अन्तःपुरके साथ मेरुपर्वतकी ओर चला ॥२४॥ वह बीचमे नाना प्रकारके फूलोसे मनोहर और देवोके द्वारा सेवित कुलाचलोके शिखरोपर ठहरता जाता था ॥२५॥ जिनमे मदोन्मत्त भ्रमर और कोयलोके समूह शब्द कर रहे थे, तथा जो मनोहर सरोवरोसे दर्शनीय थे ऐसे अनेको वन, पत्र, पुष्प और फलोके कारण जो स्त्री-पुरुषोके युगलसे सेवनीय

---

१ सहस्रेण म। २ -मारूढा. म.। ३. प्रेम-म। ४ मत्तभृङ्गान्यपुष्टौघा नादयन्ति म.। ५. पर्वताः म., ज।

सरितो विशदद्वीपा नितान्तविमलाम्भसः। वापीः प्रवरसोपानास्तटस्थोत्तुङ्गपादपाः ॥२८॥
नानाजलजकिञ्जल्ककिर्मीरसलिलानि च। सरांसि मधुरस्वानैः सेवितानि पतत्रिभिः ॥२९॥
महातरङ्गसंगोत्थफेनमालाट्टहासिनीः। महायादोगणाकीर्णा बहुचित्रा महानदीः ॥३०॥
विलसद्वनसालाभिर्युक्तान्युपवनैर्वरैः। मनोहरणदक्षाणि चित्राण्यायतनानि च ॥३१॥
[1]जिनेन्द्रवरकूटानि नानारत्नमयानि च। कल्मषक्षोददक्षाणि युक्तमानान्यनेकशः ॥३२॥
एवमादीनि वस्तूनि वीक्षमाण. शनैः शनैः। सेव्यमानश्च कान्ताभिर्यात्यसौ परमोदयः ॥३३॥
नभ शिर समारूढो विमानशिखरस्थितः। दर्शयन् याति तद्वस्तु [2]कान्तां हृष्टतनूरुहः ॥३४॥
पश्य पश्य प्रिये धामान्यतिरम्याणि मन्दरे। स्नपनानि जिनेन्द्राणाममूनि शिखरान्तिके ॥३५॥
नानारत्नशरीराणि भास्करप्रतिमानि च। शिखराणि मनोज्ञानि तुङ्गानि विपुलानि च ॥३६॥
गुहा मनोहरद्वारा गम्भीरा रत्नदीपिताः। परस्परसमाकीर्णा दीधितीरतिदूरगाः ॥३७॥
इदं महीतले रम्यं भद्रशालाह्वयं वनम्। मेखलायामिदं तच्च नन्दनं प्रथितं भुवि ॥३८॥
इदं वक्ष प्रदेशस्य कल्पद्रुमलतात्मकम्[3]। नानारत्नशिलाशोभि वनं सौमनसं स्थितम् ॥३९॥
[4]जिनागारसहस्राढ्यं त्रिदशक्रीडनोचितम्। पाण्डुकाख्यं वनं भाति शिखरे सुमनोहरम् ॥४०॥
अच्छिन्नोत्सवसन्तानमहमिन्द्रजगत्समम्। यक्षकिंनरगन्धर्वसंगीतपरिनादितम् ॥४१॥
सुरकन्यासमाकीर्णमप्सरोगणसंकुलम्। विचित्रगणसंपूर्णं दिव्यपुष्पसमन्वितम् ॥४२॥
सुमेरो. शिखरे रम्ये स्वभावसमवस्थिते। इदमालोक्यते जैनं भवनं परमाद्भुतम् ॥४३॥

थे ऐसे विचित्र वन, रत्नोसे जगमगाते हुए पर्वत, जिनमे निर्मल टापू थे तथा अत्यन्त स्वच्छ पानी भरा था ऐसी नदियाँ, जिनमे उत्तम सीढ़ियाँ लगी थी तथा जिनके तटोंपर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े थे ऐसी वापिकाएँ, नाना प्रकारके कमलोंकी केशरसे जिनका पानी चित्र-विचित्र हो रहा था तथा जो मधुर शब्द करनेवाले पक्षियोंसे सेवित थे ऐसे सरोवर, जो बड़ी-बड़ी तरंगोके साथ उठी हुई फेनपंक्तिसे मानो अट्टहास कर रही थी तथा जो बड़े-बड़े जल-जन्तुओसे व्याप्त थी ऐसी अनेक आश्चर्योंसे भरी महानदियाँ, सुशोभित वन-पंक्तियो एवं उत्तमोत्तम उपवनोंसे युक्त तथा मनको हरण करनेमे निपुण नाना प्रकारके भवन, और नाना प्रकारके रत्नोसे निर्मित, पाप नष्ट करनेमे समर्थ तथा योग्य प्रमाणसे युक्त अनेक जिनकूट इत्यादि वस्तुओंको देखता तथा स्त्रियोके द्वारा सेवित होता हुआ परम अभ्युदयका धारक हनूमान् धीरे-धीरे चला जा रहा था ॥२६–३३॥ जो आकाशमे बहुत ऊँचे चढ़कर विमानके शिखरपर स्थित था तथा जिसके रोमांच निकल रहे थे ऐसा वह हनूमान् स्त्रीके लिए तत्-तत् वस्तुएँ दिखाता हुआ जा रहा था ॥३४॥ वह कहता जाता था कि हे प्रिये ! देखो देखो, सुमेरु पर्वतपर शिखरके समीप वे कितने सुन्दर स्थान है वही जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेक हुआ करते हैं ॥३५॥ ये नाना रत्नोसे निर्मित; सूर्य-तुल्य, मनोहर, ऊँची और बड़े-बड़े शिखर देखो ॥३६॥ इन मनोहर द्वारोंसे युक्त तथा रत्नोंसे आलोकित गम्भीर गुफाओ और परस्पर एक दूसरेसे मिली, दूर-दूर तक फैलनेवाली किरणोको देखो ॥३७॥ यह पृथिवीतलपर मनोहर भद्रशाल वन है, यह मेखलापर स्थित जगत्प्रसिद्ध नन्दन वन है, यह उपरितन प्रदेशके वक्षःस्थलस्वरूप, कल्पवृक्ष और कल्पवेलोंसे तन्मय एवं नाना रत्नमयी शिलाओसे सुशोभित सौमनस वन है, और यह उसके शिखरपर हजारो जिन-मन्दिरोंसे युक्त देवोंकी क्रीड़ाके योग्य पाण्डुक नामका अत्यन्त मनोहर वन है ॥३८–४०॥ यह सुमेरुके स्वाभाविक सुरम्य शिखरपर परम आश्चर्योंसे भरा हुआ वह जिनमन्दिर दिखाई देता है कि जिसमे उत्सवोकी परम्परा कभी टूटती ही नही है, जो अहमिन्द्र लोकके समान है, यक्ष,

---

१. जिनेन्द्रनर-म. । २. समुद्धृततनूरुह' म । ३. लतान्तकम् म. । ४. जिनागारं सहस्राढ्यं ।

ज्वलज्ज्वलनसंध्याक्तमेघवृन्दसमप्रभम् । जाम्बूनदमयं भानुकूटप्रतिममुन्नतम् ॥४४॥
अशेषोत्तमरत्नौघभूषितं परमाकृति[1] । मुक्तादामसहस्राढ्यं बुद्बुदादर्शशोभितम् ॥४५॥
किङ्किणीपट्टलम्बूषप्रकीर्णकविराजितम् । प्रकारतोरणोत्तुङ्गगोपुरैः परमैर्युतम् ॥४६॥
नानावर्णचलत्केतुकाञ्चनस्तम्भभासुरम् । गम्भीरं चारुनिर्व्यूहमशक्याशेषवर्णनम् ॥४७॥
पञ्चाशद्योजनायामं षट्त्रिंशन्मानमुत्तमम् । इदं जिनगृहं कान्ते सुमेरोर्मुकुटायते ॥४८॥
इति शंसन्महादेव्यै समीपत्वमुपागतः । अवतीर्य विमानाग्राच्चक्रे हृष्टः प्रदक्षिणाम् ॥४९॥
तत्र सर्वातिशेषस्तु महैश्वर्यसमन्वितम् । नक्षत्रग्रहताराणां शशाङ्कमिव मध्यगम् ॥५०॥
केसर्यासनमूर्द्धस्थं स्फुरत्स्फारस्वतेजसम् । शुभ्राभ्रशिखरस्याग्रे शरदीव दिवाकरम् ॥५१॥
प्रतिबिम्बं जिनेन्द्रस्य सर्वलक्षणसंगतम् । सान्तःपुरो नमश्चक्रे रचिताञ्जलिमस्तकः ॥५२॥
जिनेन्द्रदर्शनोद्भूतमहासंमदसंपदाम् । विद्याधरवरस्त्रीणां धृतिरासीदलं परा ॥५३॥
उत्पन्नघनरोमाञ्चा विपुलायतलोचनाः । भक्त्या परमया युक्ताः सर्वोपकरणान्विताः ॥५४॥
महाकुलप्रसूतास्ताः स्त्रियः परमचेष्टिताः । चक्रुः पूजां जिनेन्द्राणां त्रिदशप्रमदा इव ॥५५॥
जाम्बूनदमयैः पद्मैः पद्मरागमयैस्तथा । चन्द्रकान्तमयैश्चापि स्वभावकुसुमैरिति ॥५६॥
सौरभाक्रान्तदिक्चक्रैर्गन्धैश्च परमोज्ज्वलैः । पवित्रद्रव्यसंभूतैर्धूपैश्चाकुलकोटिभिः ॥५७॥

किन्नर औ गन्धर्वोके संगीतसे शब्दायमान है, देवकन्याओसे व्याप्त है, अप्सराओके समूहसे आकीर्ण है, नाना प्रकारके गणोसे परिपूर्ण है और दिव्य पुष्पोसे सहित है ॥४१–४३॥ जो जलती हुई अग्निके समान लाल-लाल सन्ध्यासे युक्त मेघ समूहके समान प्रभासे युक्त है, स्वर्णमय है, सूर्यकूट-के समान है, उन्नत है, सब प्रकारके उत्तम रत्नोके समूहसे भूषित है, उत्तम आकृतिवाला है, हजारों मोतियोकी मालाओसे सहित है, छोटे-छोटे गोले और दर्पणोसे सुशोभित है, छोटी-छोटी घण्टियो, रेशमी वस्त्र, फन्नूस और चमरोसे अलंकृत है, उत्तमोत्तम प्राकार, तोरण, और ऊँचे गोपुरोसे युक्त है, जिसपर नाना रंगकी पताकाएँ फहरा रही हैं, जो सुवर्णमय खम्भोसे सुशोभित है, गम्भीर है, सुन्दर छज्जोंसे युक्त है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन करना अशक्य है, जो पचास योजन लम्बा है और छत्तीस योजन चौड़ा है। हे कान्ते! ऐसा यह जिन-मन्दिर सुमेरु पर्वतके मुकुटके समान जान पड़ता है ॥४४–४८॥

इस प्रकार महादेवीके लिए मन्दिरकी प्रशंसा करता हुआ हनूमान् जब मन्दिरके समीप पहुँचा तब विमानके अग्रभागसे उतरकर हर्षित होते हुए उसने सर्वप्रथम प्रदक्षिणा दी ॥४९॥ तदनन्तर अन्य सबको छोड़ उसने अन्त:पुरके साथ हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनेन्द्र भगवान्‌की उस प्रतिमाको नमस्कार किया कि जो महान् ऐश्वर्यसे सहित थी, नक्षत्र, ग्रह और ताराओंके बीचमे स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित थी, सिंहासनके अग्रभागपर स्थित थी, जिसका अपना विशाल तेज देदीप्यमान था, जो सफेद मेघके शिखरके अग्रभागपर स्थित शरत्कालीन सूर्यके समान थी, तथा सब लक्षणोसे सहित थी ॥५०–५२॥ जिनेन्द्र-दर्शनसे जिन्हे महाहर्ष रूप सम्पत्ति-की उद्भूति हुई थी ऐसी विद्याधरराजकी स्त्रियोको दर्शन कर बड़ा सन्तोष उत्पन्न हुआ ॥५३॥ तदनन्तर जिनके सघन रोमांच निकल आये थे, जिनके लम्बे नेत्र हर्षातिरेकसे और भी अधिक लम्बे दिखने लगे थे, जो उत्कृष्ट भक्तिसे युक्त थी, सब प्रकारके उपकरणोसे सहित थी, महाकुल-मे उत्पन्न थी, तथा परमचेष्टाको धारण करनेवाली थी ऐसी उन विद्याधरियोने देवागनाओके समान जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की ॥५४–५५॥ सुवर्णमय, पद्मराग मणिमय तथा चन्द्रकान्त-मणिमय कमल, तथा अन्य स्वाभाविक पुष्प, सुगन्धिसे दिग्मण्डलको व्याप्त करनेवाली परम

१. परमाकृतिम् म । २ उच्चधूमशिखैः श्री. टि. ।

भक्तिकल्पितसान्निध्यै रत्नदीपैर्महाशिखैः । चित्रवल्युपहारैश्च[1] जिनानानर्च मारुतिः ॥५८॥
ततश्चन्दनदिग्धाङ्गः कुङ्कुमस्थासकाचितः । [2]सूत्रपत्रोर्णसंवीताशेषो विगतकल्मषः ॥५९॥
वानराङ्कस्फुरज्ज्योतिश्चक्रमौलिर्महामनाः । प्रमोदपरमस्फीतनेत्रांशुनिचिताननः ॥६०॥
ध्यात्वा जिनेश्वरं स्तुत्वा स्तोत्रैरघविनाशनै । सुरासुरगुरोर्बिम्बं जिनस्य परमं मुहुः ॥६१॥
तत. सद्विभ्रमस्थाभिरप्सरोभिरभीक्षितः । विधाय [3]वल्लकीमङ्के गेयामृतमुदाहरत् ॥६२॥
जिनचन्द्रार्चनन्यस्तविकासिनयना जनाः । नियमावहितात्मानः शिवं निदधते करे ॥६३॥
न तेषां दुर्लभं किंचित् कल्याणं शुद्धचेतसाम् । ये जिनेन्द्रार्चनासक्ता जना मङ्गलदर्शनाः ॥६४॥
श्रावकान्वयसंभूतिर्भक्तिर्जिनवरे दृढा । समाधिनावसानं च पर्याप्तं जन्मनः फलम् ॥६५॥
उपवीण्येति सुचिरं भूयः स्तुत्वा समर्च्य च । विधाय वन्दनां भक्तिमादधानो नवां नवाम् ॥६६॥
अप्रयच्छन् जिनेन्द्राणां पृष्ठं स्पष्टसुचेतसाम् । अनिच्छन्निव विश्रब्धो निर्ययावर्हदालयात् ॥६७॥
ततो विमानमारुह्य स्त्रीसहस्रसमन्वितः । मेरोः प्रदक्षिणं चक्रे ज्योतिर्देव इवोत्तमः ॥६८॥
शैलराज इव प्रीत्या श्रीशैलः सुन्दरक्रियः । करोति स्म तदा मेरोरापृच्छामिव पश्चिमाम् ॥६९॥
प्रकीर्य वरपुष्पाणि सर्वेषु जिनवेश्मसु । जगाम मन्थरं व्योम्नि भरतक्षेत्रसंमुखः ॥७०॥
तत. परमरागाक्ता संध्याश्लिष्य दिवाकरम् । अस्तक्षितिभृदावासं भेजे खेदनिनीषया ॥७१॥

उज्ज्वल गन्ध जिसकी धूमशिखा बहुत ऊँची उठ रही थी ऐसा पवित्र द्रव्यसे उत्पन्न धूप, भक्तिसे समीपमे लाकर रखे हुए बड़ी-बड़ी शिखाओंवाले दीपक, और नाना प्रकारके नैवेद्यसे हनूमान्ने जिनेन्द्रदेवकी पूजा की ॥५६–५८॥ तदनन्तर जिसका शरीर चन्दनसे व्याप्त था, जो केशरके तिलकोसे युक्त था, जिसका शरीर वस्त्रसे आच्छादित था, जिसके पाप छूट गये थे, जिसका मुकुट वानर चिह्नसे चिह्नित एवं स्फुरायमान किरणोके समूहसे युक्त था और हर्षके कारण अत्यधिक विस्तृत नेत्रोकी किरणोसे जिसका मुख व्याप्त था ऐसे हनूमान्ने जिनेन्द्र भगवान्का ध्यान कर, तथा पापको नष्ट करनेवाले स्तोत्रोसे सुरासुरोके गुरु श्री जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाकी बार-बार उत्तम स्तुति की ॥५९–६१॥ तदनन्तर विलास-विभ्रमके साथ बैठी हुई अप्सराएँ जिसे देख रही थी ऐसे हनूमान्ने वीणा गोदमे रख संगीतरूपी अमृत प्रकट किया ॥६२॥ गौतम स्वामी कहते है कि जिन्होने अपने नेत्र जिनेन्द्र भगवान्की पूजामे लगा रखे है तथा जिनकी आत्मा नियम पालनमे सावधान है ऐसे मनुष्य कल्याणको सदा अपने हाथमे रखते हैं ॥६३॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की पूजामे लीन हैं तथा उनके मंगलमय दर्शन करते है ऐसे निर्मल चित्तके धारक मनुष्योके लिए कोई भी कल्याण दुर्लभ नही है ॥६४॥ श्रावकके कुलमे जन्म होना, जिनेन्द्र भगवान्मे सुदृढ भक्ति होना, और समाधिपूर्वक मरण होना, यही मनुष्य जन्मका पूर्ण फल है ॥६५॥ इस तरह चिरकाल तक वीणा बजाकर, बार-बार स्तुति और पूजा कर, वन्दना कर तथा नयी-नयी भक्ति कर आत्मज्ञ जिनेन्द्र भगवान्के लिए पीठ नही देता हुआ हनूमान् नही चाहते हुएकी तरह विश्रब्ध हो जिन-मन्दिरसे बाहर निकला ॥६६–६७॥ तदनन्तर हजारों स्त्रियोके साथ विमानपर चढ़कर उसने उत्तम ज्योतिषीदेवके समान मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा दी ॥६८॥ उस समय सुन्दर क्रियाओंको धारण करनेवाला हनूमान् एक दूसरे गिरिराजके समान प्रेमवश, मानो सुमेरुसे जानेकी अन्तिम आज्ञा ही ले रहा हो ॥६९॥ तदनन्तर सब जिनमन्दिरोपर उत्तम फूल बरसाकर भरतक्षेत्रकी ओर धीरे-धीरे आकाशमे चला ॥७०॥

अथानन्तर परमराग (अत्यधिक लालिमा पक्षमे उत्कट प्रेम) से युक्त सन्ध्या सूर्यका आलिंगन कर खेद दूर करनेकी इच्छासे ही मानो अस्ताचलके ऊपर निवासको प्राप्त हुई ॥७१॥

---

१. चित्रवल्युपहारेण-म. । २ सूत्रपत्रार्णं ख. । पटोलको वस्त्रं वा श्री टि. । ३. वीणाम् ।

कृष्णपक्षे तदा रात्रिस्तारावन्धुभिरावृता। रहिता चन्द्रनाथेन नितान्तं न विराजते ॥७२॥
अवतीर्य ततस्तेन सुरदुन्दुभिनामनि। शैलपादे परं रम्ये सैन्यमावासितं शनैः ॥७३॥
तत्र पद्मोत्पलामोदवाहिमन्थरमारुते[1]। सुखं जिनकथासक्ता यथास्वं सैनिकाः स्थिताः ॥७४॥
अथोपरि विमानस्य निषण्णः शिखरान्तिके। प्राग्भारचन्द्रशालायां कैलासाधित्यकोपमे ॥७५॥
ज्योतिष्पथात्समुत्तुङ्गात्पतत्प्रस्फुरितप्रभम्। ज्योतिर्बिम्बं मरुत्सूनुरालोकत तमोऽभवत् ॥७६॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं संसारे नास्ति तत्पदम्। यत्र न क्रीडति स्वेच्छं मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥७७॥
तडिदुल्कातरङ्गातिभङ्गुरं जन्म सर्वतः। देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥७८॥
अनन्तशो न भुक्तं यत्संसारे चेतनावता। न तदास्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनत्रये ॥७९॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्बलान्वितम्। एतावन्तं यतः कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥८०॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भ्रान्त्वा कृच्छ्रात्सहस्रशः। अवाप्यते मनुष्यत्वं कष्टं नष्टमनाप्तवत् ॥८१॥
विनश्वरसुखासक्ताः सौहित्यपरिवर्जिताः। परिणामं प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसंकटम् ॥८२॥
चलान्युत्पथवृत्तानि दुःखदानि पराणि च। इन्द्रियाणि न शाम्यन्ति विना जिनपथाश्रयात् ॥८३॥
[3]आनायेन यथा दीना बध्यन्ते मृगपक्षिणः। तथा विषयजालेन बध्यन्ते मोहिनो जनाः ॥८४॥
आशीविषसमानैर्यो रमते विषयैः समम्। परिणामे स मूढात्मा दह्यते दुःखवह्निना ॥८५॥
को ह्येकदिवसं राज्यं वर्षमन्विष्य यातनाम्। प्रार्थयेत विमूढात्मा तद्वद्विषयसौख्यभाक् ॥८६॥

वह समय कृष्ण पक्षका था, अतः ताराख्पी बन्धुओसे आवृत और चन्द्रमारूपी पतिसे रहित रात्रि अत्यधिक सुशोभित नही हो रही थी इसलिए उसने आकाशसे उतर सुरदुन्दुभि नामक परम मनोहर प्रत्यन्त पर्वतपर धीरेसे अपनी सेना ठहरा दी ॥७२-७३॥ जहाँ कमलो और नील कमलोकी सुगन्धिको धारण करनेवाली वायु धीरे-धीरे वह रही थी ऐसे उस प्रत्यन्त पर्वतपर जिनेन्द्र-भगवान्की कथामे लीन सैनिक यथायोग्य सुखसे ठहर गये ॥७४॥

अथानन्तर हनूमान् कैलास पर्वतके ऊपरी मैदानके समान विमानकी चन्द्रशाला सम्बन्धी शिखरके समीप सुखसे बैठा था कि उसने बहुत ऊँचे आकाशसे गिरते हुए तथा क्षण एकमे अन्धकाररूप हो जानेवाले देदीप्यमान कान्तिके धारक ज्योतिर्बिम्बको देखा ॥७५-७६॥ देखते ही वह विचार करने लगा कि हाय-हाय, बडे दुःखकी बात है कि इस संसारमे वह स्थान नही है जहाँ देवसमूहके बीच भी मृत्यु इच्छानुसार क्रीड़ा नही करती हो ॥७७॥ जहाँ देवोका भी जन्म सब ओरसे बिजली, उल्का और तरंगके समान अत्यन्त भंगुर है वहाँ अन्य प्राणियोकी तो कथा ही क्या है ? ॥७८॥ इस प्राणीने ससारमे अनन्त बार जिस सुख-दुःखका अनुभव नही किया है वह तीन लोकमे भी नही है ॥७९॥ अहो! यह मोहकी बड़ी प्रबल महिमा है कि यह जीव इतने समय तक दुःखसे भटकता रहा है ॥८०॥ हजारो उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियोमे कष्ट सहित भ्रमण करनेके बाद मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है सो खेद है कि वह उस प्रकार नष्ट हो गयी कि जिस प्रकार मानो प्राप्त ही न हुई हो ॥८१॥ विनाशी सुखोमे आसक्त प्राणी कभी तृप्तिको प्राप्त नही होते और उसी अतृप्त दशामे सन्तापसे परिपूर्ण अन्तिम अवस्थाको प्राप्त हो जाते है ॥८२॥ चंचल, कुमार्गमे प्रवृत्ति करनेवाली और अत्यन्त दुःखदायी इन्द्रियाँ जिन-मार्गका आश्रय लिये बिना शान्त नही होती ॥८३॥ जिस प्रकार दीन मृग और पक्षी जालसे बद्ध हो जाते है उसी प्रकार ये मोही प्राणी विषय-जालसे बद्ध होते है ॥८४॥ जो मनुष्य सर्पके समान विषयोके साथ क्रीड़ा करता है वह मूर्ख फलके समय दुःखरूपी अग्निसे जलता है ॥८५॥ जैसे कोई मनुष्य वर्षभर

१. मारुता म.। २ हनुमान्। ३. अनाय्यैन म. ज।

कदाचिद् [1]बुध्यमानोऽपि मोहतस्करवञ्चितः । न करोति जनः स्वार्थं किमतः कष्टमुत्तमम् ॥८७॥
भुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं मनुष्यभवसंचितम् । पश्चान्मुषितवद्दीनो दुःखी भवति चेतनः ॥८८॥
भुक्त्वापि [2]त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते । शेषकर्मसहायः सन् चेतनः क्वापि गच्छति[3] ॥८९॥
[4]एतदेवं प्रतीक्ष्येण त्रिजगत्पतिनोदितम् । यथा जन्तोर्निजं कर्म बान्धवः शत्रुरेव वा ॥९०॥
तदलं निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदारुणैः । विप्रयोगः सहामीभिरवश्यं येन जायते ॥९१॥
प्रियं जनमिमं त्यक्त्वा करोमि न तपो यदि । तदा सुभूमचक्रीव मरिष्याम्यवितृप्तकः ॥९२॥
श्रीमत्यो हरिणीनेत्रा योषिद्गुणसमन्विताः । अत्यन्तदुस्त्यजा मुग्धा मदाहितमनोरथा. ॥९३॥
कथमेतास्त्यजामीति संचिन्त्य विमनाः क्षणम् । अश्राणयदुपालम्भं हृदयस्य प्रवुद्धधीः ॥९४॥

अज्ञातच्छन्दः

दीर्घं कालं रन्त्वा नाके गुणयुवतीभि. [5]सुविभूतिभिः ।
मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसमं भूयः [6]प्रमदवरललितवनिताजनैः परिललित. ॥९५॥[7]

अज्ञातच्छन्दः (?)

को वा यातस्तृप्तिं जन्तुर्विविधविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधिः ।
नानाजन्मभ्रान्त श्रान्त व्रज हृदय शममपि किमाकुलितं भवेत् ॥९६॥

कष्ट भोगकर एक दिनके राज्यकी अभिलाषा करे वैसे ही विषय-सुखका उपभोग करनेवाला यह मूर्ख प्राणी, चिरकाल तक कष्ट भोगकर थोड़े समयके लिए सुखकी आकांक्षा करता है ॥८६॥ यद्यपि यह प्राणी जानता हुआ भी मोहरूपी चोरके द्वारा ठगाया जाता है तथापि कभी आत्म-कल्याण नही करता इससे अधिक कष्ट और क्या होगा ? ॥८७॥ यह प्राणी मनुष्यभवमें संचित धर्मका स्वर्गमे उपभोग कर पश्चात् लुटे हुए मनुष्यके समान दीन और दुःखी हो जाता है ॥८८॥ यह जीव देवो सम्बन्धी भोग भोगकर भी पुण्यके क्षीण होनेपर अवशिष्ट कर्मोंकी सहायतासे जहाँ कही चला जाता है ॥८९॥ पूज्यवर त्रिलोकीनाथने यही कहा है कि इस प्राणीका बन्धु अथवा शत्रु अपना कर्म ही है ॥९०॥ इसलिए जिनके साथ अवश्य ही वियोग होता है ऐसे उन निन्दित तथा अत्यन्त कठोर भोगोसे पूरा पड़े—उनकी हमे आवश्यकता नही है ॥९१॥ यदि मैं इन प्रियजनोका त्याग कर तप नही करता हूँ तो सुभूम चक्रवर्तीके समान अतृप्त दशामे मरूँगा ॥९२॥ 'जो हरिणियोके समान नेत्रोवाली हैं, स्त्रियोके गुणोसे सहित है, अत्यन्त कठिनाईसे छोड़ने योग्य हैं, भोली हैं और मुझपर जिनके मनोरथ लगे हुए है ऐसी इन श्रीमती स्त्रियोको कैसे छोड़ूँ' ऐसा विचारकर यद्यपि वह क्षणभरके लिए बेचैन हुआ तथापि वह तत्काल ही प्रबुद्ध बुद्धि हो हृदयके लिए इस प्रकार उलाहना देने लगा ॥९३–९४॥ कि हे हृदय ! जिसने दीर्घकाल तक स्वर्गमे उत्तम विभूतिकी धारक गुणवती स्त्रियोके साथ रमण किया तथा मनुष्य-लोकमे भी जो अत्यधिक हर्षसे भरी सुन्दर स्त्रियोसे लालित हुआ ऐसा कौन मनुष्य नदियोसे समुद्रके समान नाना प्रकारके विषय-सुख सम्बन्धी प्रीतिसे सन्तुष्ट हुआ है ? अर्थात् कोई नही। इसलिए हे नाना जन्मोमे भटकनेवाले श्रान्त हृदय ! शान्तिको प्राप्त हो, व्यर्थ ही आकुलित क्यो हो रहा है ? ॥९५–९६॥

---

१. वध्यमानोऽपि म । २ त्रिदशान् म । ३ गच्छसि म । ४ एतदेवं प्रतीक्षेण म. । 'पूज्यः प्रतीक्ष्य.' इत्यमर । ५ समनुभूतिभि. म. । ६. प्रमदवरवनिताजनै. म. । ७. खपुस्तके ९४–९५ तमश्लोकयो. क्रमभेदो वर्तते ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

किं न श्रुता नरकभीमविरोधरौद्रास्तीव्रासिपत्रवनसंकटदुर्गमार्गाः ।
रागोद्भवेन जनितं घनकर्मपङ्कं यन्नेच्छसि क्षपयितुं तपसा समस्तम् ॥९७॥
आसीन्निरर्थकतमो धिगतीतकालो [1]दीर्घेऽसुखार्णवजले पतितस्य निन्द्ये[2] ।
आत्मानमद्य भवपञ्जरसंनिरुद्धं[3] मोक्षामि[4] लब्धशुभमार्गमतिप्रकाशः ॥९८॥

आर्या

इति कृतनिश्चयचेताः परिदृष्टयथार्थजीवलोकविवेकः ।
रविरिव गतघनसंगस्तेजस्वी गन्तुमुद्यतोऽहं मार्गम् ॥९९॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमन्निर्वेदं नाम द्वादशोत्तरशतं पर्व ॥११२॥



हे हृदय ! क्या नरकके भयंकर विरोधसे दुःखदायी एवं तीक्ष्ण असिपत्र वनसे संकटपूर्ण दुर्गम मार्ग, तूने सुने नहीं है कि जिससे रागोत्पत्तिसे उत्पन्न समस्त सघनकर्मरूपी पंकको तू तपके द्वारा नष्ट करनेकी इच्छा नहीं कर रहा है ॥९७॥ धिक्कार है कि दीर्घ तथा निन्दनीय दुःखरूपी सागरमे डूबे हुए मेरा अतीतकाल सर्वथा निरर्थक हो गया। अब आज मुझे शुभ मार्ग और शुभ बुद्धिका प्रकाश प्राप्त हुआ है इसलिए संसाररूपी पिंजड़ेके भीतर रुके आत्माको मुक्त करता हूँ— भव-बन्धनसे छुड़ाता हूँ ॥९८॥ इस प्रकार जिसने हृदयमे दृढ निश्चय किया है तथा जीव लोकका जिसने यथार्थ विवेक देख लिया हैं ऐसा मै मेघके संसर्गसे रहित सूर्यके समान तेजस्वी होता हुआ सन्मार्गपर गमन करनेके लिए उद्यत हुआ हूँ ॥९९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे हनूमान्के वैराग्यका वर्णन करनेवाला एक सौ बारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११२॥



१. दीर्घं सुखार्णवजले म । दीर्घ मुखार्णव-ज । २ निन्द्य म । ३. विरुद्ध म. । ४. मोक्ष्यामि म. ।

त्रयोदशोत्तरशतं पर्व

अथ रात्रावतीतायां तपनीयनिभो रविः । जगदुद्योतयामास दीप्त्या साधुर्यथा गिरा ॥१॥
नक्षत्रगणमुत्सार्य बोधिता नलिनाकराः । रविणा जिननाथेन भव्यानां निचया इव ॥२॥
आपृच्छत [1]सखीन् [2]वातिर्महासंवेगसंगतः । निःस्पृहात्मा यथापूर्वं भरतोऽयन् तपोवनम् ॥३॥
ततः कृपणलोलाक्षाः [3] परमोद्वेगवाहिनः [4] । नाथं विज्ञापयन्ति स्म सचिवाः प्रेमनिर्भराः ॥४॥
अनाथान् देव नो कर्तुमस्मानर्हसि सद्गुण । प्रभो प्रसीद भक्तेषु क्रियतामनुपालनम् ॥५॥
जगाद मारुतिर्यूयं परमप्यनुवर्त्तिनः । अनर्थबान्धवा एव मम नो हितहेतवः ॥६॥
उत्तरन्तं भवाम्भोधिं तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये । हितास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थतः ॥७॥
माता पिता सुहृद्भ्राता न तदागात्सहायताम् । यदा नरकवासेषु प्राप्तं दुःखमनुत्तमम् ॥८॥
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य बोधिं च जिनशासने । प्रमादो नोचितः कर्तुं निमेषमपि धीमतः ॥९॥
[5]समुष्यापि परं प्रीतैर्भवद्भिः सह भोगवत् । अवश्यंभावुकस्तीव्रो विरहः कर्मनिर्मितः ॥१०॥
देवासुरमनुष्येन्द्राः स्वकर्मवशवर्त्तिनः । कालदावानलालीढाः के वा न प्रलयं गताः ॥११॥
पल्योपमसहस्राणि त्रिदिवेऽनेकशो मया । भुक्ता भोगा न वातृप्यं वह्निः शुष्केन्धनैरिव ॥१२॥
गतागमविधेर्दातृ मत्तोऽपि सुमहाबलम् । अपरं नाम कर्मास्ति जाता तनुर्ममाक्षमा ॥१३॥

अथानन्तर रात्रि व्यतीत होनेपर स्वर्णके समान सूर्यने दीप्तिसे जगत्को उस तरह प्रकाशमान कर दिया जिस तरह कि साधु वाणीके द्वारा प्रकाशनान करता है ॥१॥ सूर्यने नक्षत्र-समूहको हटाकर कमलोके समूहको इस तरह विकसित कर दिया जिस तरह कि जिनेन्द्रदेव भव्योके समूहको विकसित कर देता है ॥२॥ जिस प्रकार पहले तपोवनको जाते हुए भरतने अपने मित्रजनोसे पूछा था उसी प्रकार महासंवेगसे युक्त, तथा निःस्पृह चित्त हनूमान्‌ने मित्रजनोसे पूछा ॥३॥ तदनन्तर जिनके नेत्र अत्यन्त दीन तथा चंचल थे, जो परम उद्वेगको धारण कर रहे थे एवं जो प्रेमसे भरे हुए थे ऐसे मन्त्रियोने स्वामीसे प्रार्थना की कि हे देव! आप हम लोगोको अनाथ करनेके योग्य नही हैं। हे उत्तम गुणोके धारक प्रभो! भक्तोपर प्रसन्न होइए और उनका पालन कीजिए ॥४–५॥ इसके उत्तरमे हनूमान्‌ने कहा कि तुम लोग परम अनुयायी होकर भी हमारे अनर्थकारी बान्धव हो हितकारी नही ॥६॥ जो संसार-समुद्रसे पार होते हुए मनुष्यको उसीमे गिरा देते हैं वे हितकारी कैसे कहे जा सकते हैं? वे तो यथार्थमे वैरी ही हैं ॥७॥ जब मैंने नरकवासमे बहुत भारी दुःख पाया था तब माता-पिता, मित्र, भाई—कोई भी सहायताको प्राप्त नहीं हुए थे—किसीने सहायता नही की थी ॥८॥ दुर्लभ मनुष्य-पर्याय और जिन-शासनका ज्ञान प्राप्त कर बुद्धिमान् मनुष्यको निमेष मात्र भी प्रमाद करना उचित नही है ॥९॥ परम प्रीतिसे युक्त आप लोगोके साथ रहकर जिस प्रकार भोगकी प्राप्ति हुई है उसी प्रकार अब कर्म-निर्मित तीव्र विरह भी अवश्यम्भावी है ॥१०॥ अपने-अपने कर्मके अधीन रहनेवाले ऐसे कौन देवेन्द्र, असुरेन्द्र अथवा मनुष्येन्द्र हैं जो कालरूपी दावानलसे व्याप्त हो विनाशको प्राप्त न हुए हो? ॥११॥ मैंने स्वर्गमे अनेको बार हजारो पल्य तक भोग भोगे हैं फिर भी सूखे ईन्धनसे अग्निके समान तृप्त नही हुआ ॥१२॥ गमनागमनको देनेवाला

---

१. मन्त्री म । २. वातस्यापत्य पुमान् वातिः हनूमान् । ३ लोभाख्या. ख । लोभाक्षा. म. । ४ वाहिताः म. । ५. मनुष्योऽपि परं प्रीतैर्भवद्भिः सहभोगवान् व ।

देहिनो यत्र मुह्यन्ति दुर्गतं भवसंकटम् । विलङ्घ्य गन्तुमिच्छामि पदं गर्भविवर्जितम्[1] ॥१४॥
वज्रसारतनौ तस्मिन्नेवं कृतविचेष्टिते । अभूदन्तःपुरस्त्रीणां महानाक्रन्दितध्वनिः ॥१५॥
समाश्वास्य विषादार्त्तं प्रमदाजनमाकुलम् । वचोभिर्बोधने शक्तैर्नानावृत्तान्तशंसिभिः ॥१६॥
तनयांश्च समाधाय राजधर्मे यथाक्रमम् । सर्वान्नियोगकुशलः शुभावस्थितमानसः ॥१७॥
सुहृदां चक्रवालेन महता परितो वृतः । विमानभवनाद् राजा निर्ययौ वायुनन्दनः ॥१८॥
नरयानं समारुह्य रत्नकाञ्चनभासुरम् । बुद्बुदादर्शलम्बूषचित्रचामरसुन्दरम् ॥१९॥
द्युपुण्डरीकसंकाशं बहुभक्तिविराजितम् । चैत्योद्यानं यतः श्रीमान् प्रस्थित. परमोदयः ॥२०॥
विलसत्केतुमालाढ्यं तस्य यानमुदीक्ष्य तत् । ययौ हर्षविषादं च जन. सक्ताश्रुलोचनः ॥२१॥
तत्र चैत्यमहोद्याने विचित्रद्रुमसण्डिते । सारिकाचञ्चरीकान्यपुष्टकोलाहलाकुले ॥२२॥
नानाकुसुमकिञ्जल्कसुगन्धिसततायने । संयतो धर्मरत्नाख्यस्तदा तिष्ठति कीर्तिमान् ॥२३॥
धर्मरत्नमहाराशिमत्यन्तोत्तमयोगिनम् । यथा बाहुबली पूर्वं भावप्लावितमानसः ॥२४॥
नरयानात् समुत्तीर्य हनूमानाससाद तम् । भगवन्तं नभोयातं[2] चारणर्षिगणावृतम् ॥२५॥
प्रणम्य भक्तिसंपन्नः कृत्वा गुरुमहं परम् । जगाद शिरसि न्यस्य कराजीवकुड्मलम् ॥२६॥
उपेत्य भवतो दीक्षां निर्मुक्ताङ्गो महामुने । अहं विहर्तुमिच्छामि प्रसादः क्रियतामिति ॥२७॥

यह कर्म मुझसे भी अधिक महाबलवान् है । मेरा शरीर तो अब अक्षम—असमर्थ हो गया है ॥१३॥ प्राणी जिस दुर्गम जन्म संकटको पाकर मोहित हो जाते हैं—स्वरूपको भूल जाते है । मै उसे उलंघनकर गर्भातीत पदको प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१४॥

इस प्रकार वज्रमय शरीरको धारण करनेवाले हनूमान्ने जब अपनी दृढ चेष्टा दिखाई तब उसके अन्तःपुरकी स्त्रियोमे रुदनका महाशब्द उत्पन्न हो गया ॥१५॥ तदनन्तर समझानेमे समर्थ एवं नाना प्रकारके वृत्तान्तोका निरूपण करनेवाले वचनोके द्वारा विषादसे पीड़ित, व्यग्र स्त्रियोको सान्त्वना देकर तथा समस्त पुत्रोको यथाक्रमसे राजधर्ममे लगाकर व्यवस्थापटु तथा शुभ कार्यमे मनको स्थिर करनेवाले राजा हनूमान्, मित्रोके बहुत बड़े समूहसे परिवृत हो विमानरूपी भवनसे बाहर निकले ॥१६–१८॥ जो रत्न और सुवर्णसे देदीप्यमान थी, छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस तथा नाना प्रकारके चमरोसे सुन्दर थी और दिव्य-कमलके समान नाना प्रकारके बेलबूटोसे सुशोभित थी ऐसी पालकीपर सवार हो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला श्रीमान् हनूमान् जिस ओर मन्दिरका उद्यान था उसी ओर चला ॥१९–२०॥ जिसपर पताकाएँ फहरा रही थी तथा जो मालाओसे सहित थी ऐसी उसकी पालकी देखकर लोग हर्ष तथा विषाद दोनोको प्राप्त हो रहे थे और दोनो ही कारणोसे उनके नेत्रोमे आंसू छलक रहे थे ॥२१॥ जो नाना प्रकारके वृक्षोसे मण्डित था, मैना, भ्रमर तथा कोयलके कोलाहलसे व्याप्त था और जिसमें नाना फूलोकी केशरसे सुगन्धित वायु बह रही थी ऐसे मन्दिरके उस महोद्यानमे उस समय धर्मरत्न नामक यशस्वी मुनि विराजमान थे ॥२२–२३॥

जिनका मन वैराग्यकी भावनासे आप्लुत था ऐसे बाहुबली जिस प्रकार पहले धर्मरूपी रत्नोकी महाराशिस्वरूप अत्यन्त उत्तम योगी—श्री ऋषभ जिनेन्द्रके समीप गये थे उसी प्रकार वैराग्य भावनासे आप्लुत हृदय हनूमान् पालकीसे उतरकर आकाशगामी एवं चारणर्षियोंसे आवृत उन भगवान् धर्मरत्न नामक मुनिराजके समीप पहुँचा ॥२४–२५॥ पहुँचते ही उसने प्रणाम किया, बहुत बड़ी गुरुपूजा की और तदनन्तर हस्तरूपी कमल-कुड्मलोको शिरपर धारणकर कहा कि हे महामुने ! मै आपसे दीक्षा लेकर तथा शरीरसे ममता छोड़ निर्द्वन्द्व विहार करना चाहता

१ विवर्तिनम् म. । २. नभोयानं म. ।

यतिराहोत्तमं युक्तमेवमस्तु सुमानसः । जगन्निःसारमालोक्य क्रियतां स्वहितं परम् ॥२८॥
अशाश्वतेन देहेन विहर्तुं शाश्वतं पदम्[1] । परमं तव कल्याणी मतिरेषा समुद्गता ॥२९॥
इत्यनुज्ञां मुनेः प्राप्य संवेगरभसान्वितः । कृतप्रणमनस्तुष्टः पर्यङ्कासनमाश्रितः ॥३०॥
मुकुटं कुण्डले हारमवशिष्टं विभूषणम् । समुत्ससर्ज वस्त्रं च मानसं च परिग्रहम् ॥३१॥
दयितानिगडं भित्वा दग्ध्वा जालं ममत्वजम् । छित्त्वा स्नेहमयं पाशं त्यक्त्वा सौख्यं विषोपमम् ॥३२॥
वैराग्यदीपशिखया मोहध्वान्तं निरस्य च । कमप्यपकरं दृष्ट्वा शरीरमतिभङ्गुरम् ॥३३॥
स्वयं सुसुकुमाराभिर्जितपद्माभिरुत्तमम् । उत्तमाङ्गरुहो नीत्वा करशाखाभिरुत्तमः ॥३४॥
निःशेषसंगनिर्मुक्तो मुक्तिलक्ष्मीं समाश्रितः । महाव्रतधरः श्रीमाञ्छीशैलः शुशुभेतराम् ॥३५॥
निर्वेदप्रभुरागाभ्यां प्रेरितानि महात्मनाम् । शतानि सप्त साग्राणि पञ्चाशद्भिः सुचेतसाम् ॥३६॥
विद्याधरनरेन्द्राणां महासंवेगवर्त्तिनाम् । स्वपुत्रेषु पदं दत्त्वा प्रतिपन्नानि योगिताम् ॥३७॥
विद्युद्गत्यादिनामानः परमप्रीतमानसा । मुक्तसर्वकलङ्कास्ते श्रिताः श्रीशैलविभ्रमम् ॥३८॥
कृत्वा परमकारुण्यं विप्रलापं महाशुचम् । वियोगानलसंतप्ताः परं निर्वेदमागताः ॥३९॥
प्रथितां बन्धुमत्याख्यामुपगम्य महत्तराम् । प्रयुज्य विनयं भक्त्या विधाय महमुत्तमम् ॥४०॥
श्रीमत्यो भवतो भीता धीमत्यो नृपयोषितः । महद्भूषणनिर्मुक्ताः शीलभूषाः प्रवव्रजुः ॥४१॥
बभूव विभवस्तासां तदा जीर्णतृणोपमः । महामहाजनः प्रायो रतिमद्भिरतो भृशम् ॥४२॥

चाहता हूँ अतः मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥२६-२७॥ यह सुन उत्तम हृदयके धारक मुनिराजने कहा कि बहुत अच्छा, ऐसा ही हो, जगत्को निःसार देख अपना परम कल्याण करो ॥२८॥ विनश्वर शरीरसे अविनाशी पद प्राप्त करनेके लिए जो तुम्हारी कल्याणरूपिणी बुद्धि उत्पन्न हुई है यह बहुत उत्तम बात है ॥२९॥

इस प्रकार मुनिकी आज्ञा पाकर जो वैराग्यके वेगसे सहित था, जिसने प्रणाम किया था, और जो सन्तुष्ट होकर पद्मासनसे विराजमान था ऐसे हनूमान्ने मुकुट, कुण्डल, हार तथा अन्य आभूषण, वस्त्र और मानसिक परिग्रहको तत्काल छोड़ दिया ॥३०-३१॥ उसने स्त्रीरूपी बेड़ी तोड़ डाली थी, ममतासे उत्पन्न जालको जला दिया था, स्नेहरूपी पाश छेद डाली थी, सुखको विषके समान छोड़ दिया था, अत्यन्त भंगुर शरीरको अद्भुत अपकारी देख वैराग्यरूपी दीपककी शिखासे मोहरूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया था, और कमलको जीतनेवाली अपनी सुकुमार अंगुलियोंसे शिरके बाल नोच डाले थे। इस प्रकार समस्त परिग्रहसे रहित, मुक्तिरूपी लक्ष्मीके सेवक, महाव्रतधारी, और वैराग्य लक्ष्मीसे युक्त उत्तम हनूमान् अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥३२-३४॥ उस समय वैराग्य और स्वामिभक्तिसे प्रेरित, उदारात्मा, शुद्ध हृदय और महासंवेगमें वर्तमान सात सौ पचास विद्याधर राजाओंने अपने-अपने पुत्रोंके लिए राज्य देकर मुनिपद धारण किया ॥३५-३७॥ इस प्रकार जिनके चित्त अत्यन्त प्रसन्न थे, तथा जिनके सब कलंक छूट गये थे ऐसे वे विद्युद्गति आदि नामको धारण करनेवाले मुनि हनूमान्की शोभाको प्राप्त थे अर्थात् उन्हींके समान शोभायमान थे ॥३८॥

तदनन्तर जो वियोगरूपी अग्निसे सन्तप्त थी, महाशोकदायी अत्यन्त करुण विलाप कर परम निर्वेद—वैराग्यको प्राप्त हुई थी, श्रीमती थी, संसारसे भयभीत थी, धीमती थी, महाआभूषणोंसे रहित थी, और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाली थी ऐसी राजस्त्रियोंने बन्धुमती नामकी प्रसिद्ध आर्यिकाके पास जाकर तथा भक्तिपूर्वक नमस्कार और उत्तम पूजा कर दीक्षा धारण कर ली ॥३९-४१॥ उस समय उन सबके लिए वैभव जीर्णतृणके समान जान पड़ने लगा

---

१. परम् म.।

व्रतगुप्तिसमित्युच्चैः शैलः श्रीशैलपुङ्गवः । महातपोधनो धीमान् गुणशीलविभूषणः ॥४३॥

आर्याच्छन्दः

धरणीधरैः प्रहृष्टैरुपगीतो वन्दितोऽप्सरोभिश्च ।
अमलं समयविधानं सर्वज्ञोक्तं समाचर्य ॥४४॥
निर्दग्धमोहनिचयो जैनेन्द्रं प्राप्य पुष्कलं ज्ञानविधिम् ।
निर्वाणगिरावसिधच्छ्रीशैलः श्रमणसत्तमः पुरुषरविः ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते हनूमन्निर्वाणाभिधान नाम त्रयोदशोत्तरशत पर्व ॥११३॥



था सो ठीक ही है क्योंकि उत्तम पुरुष राग करनेवालोंसे अत्यन्त विरक्त रहते ही है ॥४२॥ इस प्रकार जो व्रत, गुप्ति और समितिके मानो उच्च पर्वत थे ऐसे श्री हनूमान् मुनि महातपरूपी धनके धारक, धीमान् और गुण तथा शीलरूपी आभूषणोसे सहित थे ॥४३॥ हर्षसे भरे बड़े-बड़े राजा जिनकी स्तुति करते थे, अप्सराएँ जिन्हे नमस्कार करती थी, जिन्होने मोहकी राशि भस्म कर दी थी, जो मुनियोमे उत्तम थे, तथा पुरुषोंमे सूर्यके समान थे ऐसे श्रीशैल महामुनिने सर्वज्ञ प्रतिपादित निर्मल आचारका पालन कर तथा जिनेन्द्र सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर निर्वाण गिरिसे सिद्ध पद प्राप्त किया ॥४४-४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे हनूमान्‌के निर्वाणका वर्णन करनेवाला एक सौ तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११३॥



चतुर्दशोत्तरशतं पर्व

प्रव्रज्यामष्टवीराणां ज्ञात्वा वायुसुतस्य च । रामो जहास किं भोगो भुक्तस्तैः कातरैरिति ॥१॥
सन्तं संत्यज्य ये भोगं प्रव्रजन्त्यायतेक्षणा. । नूनं ग्रहगृहीतास्ते वायुना वा वशीकृताः ॥२॥
नूनं तेषां न विद्यन्ते कुशला वैद्यवार्तिकाः[1] । यतो मनोहरान् कामान्परित्यज्य व्यवस्थिताः ॥३॥
एवं भोगमहासंगसौख्यसागरसेविनः । आसीत्तस्य जडा बुद्धिः कर्मणो वशमीयुषः ॥४॥
[2]भुज्यमानाल्पसौख्येन संसारपदमीयुषाम्[3] । प्रायो विस्मयते सौख्यं श्रुतमप्यतिसंसृति[4] ॥५॥
एवं तयोर्महाभोगमग्नयोः प्रेमबद्धयोः[5] । पद्मवैकुण्ठयोः कालो धर्मकुण्ठो विवर्त्तते ॥६॥
अथान्यदा समायातः सौधर्मेन्द्रो महाद्युतिः । ऋद्धया परमया युक्तो धैर्यगाम्भीर्यसंस्थितः ॥७॥
सेवितः सचिवै. सर्वैर्नानालंकारधारिभिः । कार्त्तस्वरमहाशैल इव गण्डमहीधरैः ॥८॥
सुरु तेजःपरिच्छन्ने निषण्णः सिंहविष्टरे । सुमेरुशिखरस्थस्य चैत्यस्य श्रियमुद्वहन् ॥९॥
चन्द्रादित्योत्तमोद्योतरत्नालंकृतविग्रहः । मनोहरेण रूपेण जुष्टो नेत्रमहोत्सवः ॥१०॥
बिभ्राणो विमलं हारं तरङ्गितमहाप्रभम्[6] । प्रवाहमिव सीतोदं श्रीमान्निषधभूधर. ॥११॥
हारकुण्डलकेयूरप्रभृत्युत्तमभूषणैः । समन्तादावृतो देवैर्नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥१२॥

अथानन्तर लक्ष्मणके आठ वीर कुमारों और हनूमान्की दीक्षाका समाचार सुन श्रीराम यह कहते हुए हँसे कि अरे ! इन लोगोने क्या भोग भोगा ? ॥१॥ जो दूरदर्शी मनुष्य, विद्यमान भोगको छोड़कर दीक्षा लेते हैं जान पड़ता है कि वे ग्रहोसे आक्रान्त है अथवा वायुके वशीभूत हैं। भावार्थ—या तो उन्हे भूत लगे हैं या वे वायुकी बीमारीसे पीड़ित है ॥२॥ जान पड़ता है कि ऐसे लोगोकी ओषधि करनेवाले कुशल वैद्य नही हैं इसीलिए तो वे मनोहर भोगोको छोड बैठते है ॥३॥ इस प्रकार भोगोके महासंगसे होनेवाले सुखरूपी सागरमे निमग्न तथा चारित्र-मोहनीय कर्मके वशीभूत श्रीरामचन्द्रकी बुद्धि जड़रूप हो गयी थी ॥४॥ भोगनेमे आये हुए अल्प सुखसे उपलक्षित संसारी प्राणियोको यदि किसीके लोकोत्तर सुखका वर्णन सुननेमे भी आता है तो प्रायः वह आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥५॥ इस प्रकार महाभोगोमे निमग्न तथा प्रेमसे बँधे हुए उन राम-लक्ष्मणका काल चारित्ररूपी धर्मसे निरपेक्ष होता हुआ व्यतीत हो रहा था ॥६॥

अथानन्तर किसी समय महाकान्तिसे युक्त, उत्कृष्ट ऋद्धिसे सहित, धैर्य और गाम्भीर्यसे उपलक्षित सौधर्मेन्द्र देवोकी सभामे आकर विराजमान हुआ ॥७॥ नाना अलंकारोको धारण करनेवाले समस्त मन्त्री उसकी सेवा कर रहे थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो अन्य छोटे पर्वतोंसे परिवृत सुमेरु महापर्वत ही हो ॥८॥ कान्तिसे आच्छादित सिंहासनपर बैठा हुआ वह सौधर्मेन्द्र सुमेरुके शिखरपर विराजमान जिनेन्द्रकी शोभाको धारण कर रहा था ॥९॥ चन्द्रमा और सूर्यके समान उत्तम प्रकाशवाले रत्नोसे उसका शरीर अलंकृत था। वह मनोहर रूपसे सहित तथा नेत्रोको आनन्द देनेवाला था ॥१०॥ जिसकी बहुत भारी कान्ति फैल रही थी ऐसे निर्मल हारको धारण करता हुआ वह ऐसा जान पड़ता था मानो सीतोदा नदीके प्रवाहको धारण करता हुआ निषध पर्वत ही हो ॥११॥ हार, कुण्डल, केयूर आदि उत्तम आभूषणोको धारण करने

१. वैद्यवातिका म. । २. कपुस्तके एष श्लोको नास्ति । ३ -मीयुषः म. । ४. ससृति' । ५ प्रेमबन्धयो. म । ६ महाप्रभ. म. ।

चन्द्रनक्षत्रसादृश्यं चारु मानुषगोचरम् । उक्तं यतोऽन्यथाकल्प[1]ज्योतिषामन्तरं महत् ॥१३॥
महाप्रभावसंपन्नो दिशो दश निजौजसा । भासयन्परमोदात्तस्तरुर्जैनेश्वरो यथा ॥१४॥
अशक्यवर्णनो भूरि संवत्सरशतैरपि । अप्यशेषैर्जनैर्जिह्वासहस्रैरपि सर्वदा ॥१५॥
लोकपालप्रधानानां सुराणां चारुचेतसाम् । यथासनं निषण्णानां पुराणमिदमभ्यधात् ॥१६॥
येनैषोऽत्यन्तदुःसाध्य. संसारः परमासुरः । निहतो ज्ञानचक्रेण महारिः सुखसूदनः ॥१७॥
अर्हन्तं तं परं भक्त्या भावपुष्पैरनन्तरम् । नाथमर्चयताशेषदोषकक्षविभावसुम् ॥१८॥
कषायोऽग्रतरङ्गाढ्यात् कामग्राहसमाकुलात् । य. संसारार्णवाद् भव्यान् समुत्तारयितुं क्षम. ॥१९॥
यस्य प्रजातमात्रस्य मन्दरे त्रिदशेश्वराः । अभिषेकं निषेवन्ते परं क्षीरोदवारिणा ॥२०॥
अर्चयन्ति च भक्त्याढ्यास्तदेकाग्रानुवर्त्तिनः । पुरुषार्थाहितस्वान्ताः परिवर्गसमन्विताः ॥२१॥
विन्ध्यकैलासवक्षोजां पारावारोर्मिमेखलाम् । यावत्तस्थौ मही त्यक्त्वा गृहीत्वा सिद्धियोषिताम् ॥२२॥
महामोहतमश्छन्नं धर्महीनमपार्थिवम् । येनेदमेत्य नाकाग्रादालोकं प्रापितं जगत् ॥२३॥
अत्यन्ताद्भुतवीर्येण येनाष्टौ कर्मशत्रव । क्षपिता· क्षणमात्रेण हरिणेवेह दन्तिनः ॥२४॥

वाले देव उस सौधर्मेन्द्रको सब ओरसे घेरे हुए थे इसलिए वह नक्षत्रोसे आवृत चन्द्रमाके समान जान पड़ता था ॥१२॥ इन्द्र तथा देवोके लिए जो चन्द्रमा और नक्षत्रोका सादृश्य कहा है वह मनुष्यकी अपेक्षा है क्योकि स्वर्गके देव और ज्योतिषी देवोमे बड़ा अन्तर है। भावार्थ—मनुष्य-लोकमे चन्द्रमा और नक्षत्र उज्ज्वल दिखते है इसलिए इन्द्र तथा देवोको उनका दृष्टान्त दिया है यथार्थमे चन्द्रमा नक्षत्ररूप ज्योतिषी देवोसे स्वर्गवासी देवोंकी ज्योति अधिक है और देवोकी ज्योतिसे इन्द्रोकी ज्योति अधिक है ॥१३॥ वह इन्द्र स्वयं महाप्रभावसे सम्पन्न था और अपने तेजसे दशों दिशाओको प्रकाशमान कर रहा था इसलिए ऐसा जान पडता था मानो जिनेन्द्र सम्बन्धी अत्यन्त ऊँचा अशोक वृक्ष ही हो ॥१४॥ गौतम स्वामी कहते है कि यदि सब लोग मिल-कर हजारो जिह्वाओके द्वारा निरन्तर उसका वर्णन करे तो सैकड़ो वर्षोमे भी वर्णन पूरा नही हो सकता ॥१५॥

तदनन्तर उस इन्द्रने, यथायोग्य आसनोपर बैठे लोकपाल आदि शुद्ध हृदयके धारक देवोके समक्ष इस पुराणका वर्णन किया ॥१६॥ पुराणका वर्णन करते हुए उसने कहा कि अहो देवो ! जिन्होने अत्यन्त दुःसाध्य, सुखको नष्ट करनेवाले तथा महाशत्रुस्वरूप इस संसाररूपी महाअसुरको ज्ञानरूपी चक्रके द्वारा नष्ट कर दिया है और जो समस्त दोषरूपी अटवीको जलानेके लिए अग्निके समान है उन परमोत्कृष्ट अर्हन्त भगवान्‌की तुम निरन्तर भक्तिपूर्वक भावरूपी फूलोसे अर्चा करो ॥१७–१८॥ कषायरूपी उन्नत तरंगोसे युक्त तथा कामरूपी मगर-मच्छोसे व्याप्त संसाररूपी सागरसे जो भव्य जीवोको पार लगानेमे समर्थ है, उत्पन्न होते ही जिनका इन्द्र लोग सुमेरु पर्वतपर क्षीरसागरके जलसे उत्कृष्ट अभिषेक करते हैं। तथा भक्तिसे युक्त, मोक्ष पुरुषार्थमे चित्तको लगानेवाले एवं अपने-अपने परिजनोसे सहित इन्द्र लोग तदेकाग्र चित्त होकर जिनकी पूजा करते है ॥१९–२१॥ विन्ध्य और कैलास पर्वत जिसके स्तन है तथा समुद्रकी लहरे जिसकी मेखला हैं ऐसी पृथिवीरूपी स्त्रीका त्याग कर तथा मुक्तिरूपी स्त्रीको लेकर जो विद्यमान है ॥२२॥ महामोहरूपी अन्धकारसे आच्छादित, धर्महीन तथा स्वामीहीन इस ससारको जिन्होने स्वर्गके अग्रभागसे आकर उत्तम प्रकाश प्राप्त कराया था ॥२३॥ और जिस प्रकार सिह हाथियोको नष्ट कर देता है उसी प्रकार अत्यन्त अद्‌भुत पराक्रमको धारण करनेवाले जिन्होने आठ कर्मरूपी शत्रुओको क्षण-भरमे नष्ट कर दिया है ॥२४॥ जिनेन्द्र भगवान्,

१ कल्प -म. ।

जिनेन्द्रो भगवानर्हन् स्वयंभूः शम्भुरूर्जितः । स्वयंप्रभो महादेवः स्थाणुः कालञ्जरः शिवः ॥२५॥
महाहिरण्यगर्भश्च देवदेवो महेश्वरः । सद्धर्मचक्रवर्ती च विभुस्तीर्थंकरः कृती ॥२६॥
संसारसूदनः सूरिर्ज्ञानचक्षुर्भवान्तकः । एवमादिर्यथार्थाख्यो गीयते यो मनीषिभिः ॥२७॥
[1]निगूढप्रकटस्वार्थैरभिधानैः सुनिर्मलैः । स्तूयते स मनुष्येन्द्रैः सुरेन्द्रैश्च सुभक्तिभिः ॥२८॥
प्रसादाद्यस्य नाथस्य कर्ममुक्ताः शरीरिणः । त्रैलोक्याग्रेऽवतिष्ठन्ते यथावत्प्रकृतिस्थिताः ॥२९॥
इत्यादि यस्य माहात्म्यं स्मृतमप्यघनाशनम् । पुराणं परमं दिव्यं संमदोद्भवकारणम् ॥३०॥
महाकल्याणमूलस्य स्वार्थकाङ्क्षणतत्पराः । तस्य देवाधिदेवस्य भक्ता भवत सन्ततम् ॥३१॥
[2]अनादिनिधने जन्तुः प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः । दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं धिक् कश्चिदपि मुह्यति ॥३२॥
चतुर्गतिमहावर्त्ते महासंसारमण्डले । पुनर्बोधिः कुतस्तेषां ये द्विषन्त्यर्हदक्षरम् ॥३३॥
कृच्छ्रान्मानुषमासाद्य यः स्याद्बोधिविवर्जितः । पुनर्भ्राम्यत्यपुण्यात्मा सः स्वयंरथचक्रवत् ॥३४॥
अहो धिङ्मानुषे लोके गतानुगतिकैर्जनैः । जिनेन्द्रो नादृतः कैश्चित्संसारारिनिषूदन. ॥३५॥
मिथ्यातपः समाचर्य. भूत्वा देवो लवर्धिकः[3] । च्युत्वा मनुष्यतां प्राप्य कष्टं द्रुह्यति जीवकः ॥३६॥
कुधर्माशयसक्तोऽसौ महामोहवशीकृतः । न जिनेन्द्रं महेन्द्राणामपीन्द्रं [4]प्रतिपद्यते ॥३७॥
विषयामिषलुब्धात्मा जन्तुर्मनुजतां गत. । मुह्यते मोहनीयेन कर्मणा कष्टमुत्तमम् ॥३८॥
अपि दुर्दैवयोगाद्यैः स्वर्गं प्राप्य कुतापस' । स्वहीनतां परिज्ञाय दह्यते चिन्तयातुरः ॥३९॥
रत्नद्वीपोपमे रम्ये तदा धिङ्मन्दबुद्धिना । मयार्हच्छासने किं नु श्रेयो न कृतमात्मनः ॥४०॥

अर्हन्त, स्वयम्भू, शम्भु, ऊर्जित, स्वयम्प्रभ, महादेव, स्थाणु, कालंजर, शिव, महाहिरण्यगर्भ, देवदेव, महेश्वर, सद्धर्म चक्रवर्ती, विभु, तीर्थंकर, कृति, संसारसूदन, सूरि, ज्ञानचक्षु और भवान्तक इत्यादि यथार्थ नामोसे विद्वज्जन जिनकी स्तुति करते है ॥२५–२७॥ उत्तम भक्तिसे युक्त नरेन्द्र और देवेन्द्र गूढ तथा अगूढ अर्थको धारण करनेवाले अत्यन्त निर्मल शब्दो द्वारा जिनकी स्तुति करते है ॥२८॥ जिनके प्रसादसे जीव कर्मरहित हो तीन लोकके अग्रभागमे स्वस्वभावमे स्थित रहते हुए विद्यमान रहते है ॥२९॥ जिनका इस प्रकारका माहात्म्य स्मृतिमे आनेपर भी पापका नाश करनेवाला है और जिनका परम दिव्य पुराण हर्षकी उत्पत्तिका कारण है ॥३०॥ हे आत्मकल्याणके इच्छुक देवजनो! उन महाकल्याणके मूल देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्के तुम सदा भक्त होओ ॥३१॥ इस अनादि-निधन संसारमे अपने कर्मोसे प्रेरित हुआ कोई विरला मनुष्य ही दुर्लभ मनुष्यपर्यायको प्राप्त करता है परन्तु धिक्कार है कि वह भी मोहमे फँस जाता है ॥३२॥ जो 'अर्हन्त' इस अक्षरसे द्वेष करते हैं उन्हे चतुर्गति-रूप बड़ी-बड़ी आवर्तोसे सहित इस संसाररूपी महासागरमे रत्नत्रयकी प्राप्ति पुनः कैसे हो सकती है? ॥३३॥ जो बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव पाकर रत्नत्रयसे वर्जित रहता है, वह पापी रथके चक्रके समान स्वयं भ्रमण करता रहता है ॥३४॥ अहो धिक्कार है कि इस मनुष्य-लोकमे कितने ही गतानुगतिक लोगोने ससार-शत्रुको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का आदर नही किया ॥३५॥ यह जीव मिथ्या तपकर अल्प ऋद्धिका धारक देव होता है और वहाँसे च्युत होकर मनुष्य पर्याय पाता है फिर भी खेद है कि द्रोह करता है ॥३६॥ महामोहके वशीभूत हुआ यह जीव, मिथ्याधर्ममे आसक्त हो बडे-बड़े इन्द्रोके इन्द्र जो जिनेन्द्र भगवान् हैं उन्हे प्राप्त नहीं होता ॥३७॥ विषयरूपी मांसमे जिसकी आत्मा लुभा रही है ऐसा यह प्राणी मनुष्य-पर्याय कर्मको पाकर मोहनीयके द्वारा मोहित हो रहा है, यह बड़े कष्टकी बात है ॥३८॥ मिथ्यातप करने-वाला प्राणी दुर्दैवके योगसे यदि स्वर्ग भी प्राप्त कर लेता है तो वहाँ अपनी हीनताका अनुभव करता हुआ चिन्तातुर हो जलता रहता है ॥३९॥ वहाँ वह सोचता है कि अहो! रत्नद्वीपके

१. निगूढ. प्रकट. म । २. अनादिनिधनो म. । ३. वर्लर्द्धिक. म. । ४. प्रतिपद्यन्ते म ।

हा धिक्कुशास्त्रनिवहैस्तैश्च वाक्यपटुभिः खलैः। पापैर्मानिभिरुन्मार्गे पातितः पतितैः कथम् ॥४१॥
एवं मानुष्यमासाद्य जैनेन्द्रमतमुत्तमम्। दुर्विज्ञेयमधन्यानां जन्तूनां दुःखभागिनाम् ॥४२॥
महर्धिमस्य देवस्य च्युतस्य स्वर्गतो भवेत्। आर्हती दुर्लभा बोधिर्देहिनोऽन्यस्य किं पुनः ॥४३॥
धन्यः सोऽनुगृहीतश्च मानुषत्वे भवोत्तमे। यः करोत्यात्मनः श्रेयो बोधिमासाद्य नैष्ठिकीम् ॥४४॥
तत्रैवात्मगतं प्राह सुरश्रेष्ठो विभावसुः। कदा नु खलु मानुष्यं प्राप्स्यामि स्थितिसंक्षये ॥४५॥
विषयारिं परित्यज्य स्थापयित्वा वशे मनः। नीत्वा कर्म प्रयास्यामि तपसा गतिमार्हतीम् ॥४६॥
तत्रैको विबुधः प्राह स्वर्गस्थस्येदृशी मतिः। अस्माकमपि सर्वेषां नृत्वं प्राप्य विमुह्यति ॥४७॥
यदि प्रत्ययसे नैतत् ब्रह्मलोकात् परिच्युतम्। मानुष्यैश्वर्यसंयुक्तं पद्माभं किं न पश्यसि ॥४८॥
अत्रोवाच महातेजाः शचीपतिरसौ स्वयम्। सर्वेषां बन्धनानां तु स्नेहबन्धो महादृढः ॥४९॥
हस्तपादाङ्गबद्धस्य मोक्षः स्यादसुधारिणः। स्नेहबन्धनबद्धस्य कुतो मुक्तिर्विधीयते ॥५०॥
योजनानां सहस्राणि निगडैः पूरितो व्रजेत्। शक्तो नाङ्गुलमप्येकं बद्धः स्नेहेन मानवः ॥५१॥
अस्य लाङ्गलिनो नित्यमनुरक्तो गदायुधः। अतृप्तो दर्शने कृत्यं जीवितेनापि वाञ्छति ॥५२॥
निमेषमपि नो यस्य विकलं हलिनो मनः। स तं लक्ष्मीधरं त्यक्तुं शक्नोति सुकृतं[1] कथम् ॥५३॥

समान सुन्दर जिन-शासनमे पहुँचकर भी मुझ मन्दबुद्धिने आत्माका हित नही किया अतः मुझे धिक्कार है ॥४०॥ हाय-हाय धिक्कार है कि मै उन मिथ्या शास्त्रोके समूह तथा वचन-रचनामे चतुर, पापी, मानी तथा स्वयं पतित दुष्ट मनुष्योके द्वारा कुमार्गमे कैसे गिरा दिया गया ? ॥४१॥ इस प्रकार मनुष्य-भव पाकर भी अधन्य तथा निरन्तर दुःख उठानेवाले मनुष्योके लिए यह उत्तम जिन-शासन दुर्ज्ञेय ही बना रहता है ॥४२॥ स्वर्गसे च्युत हुए महर्द्धिक देवके लिए भी जिनेन्द्र प्रतिपादित रत्नत्रयका पाना दुर्लभ है फिर अन्य प्राणीकी तो बात ही क्या है ? ॥४३॥ सब पर्यायोमे उत्तम मनुष्य-पर्यायमे निष्ठापूर्ण रत्नत्रय पाकर जो आत्माका कल्याण करता है वही धन्य है तथा वही अनुगृहीत–उपकृत है ॥४४॥

उसी सभामे बैठा हुआ इन्द्ररूपी सूर्य, मन-ही-मन कहता है कि यहांकी आयु पूर्ण होनेपर मै मनुष्य-पर्यायको कब प्राप्त करूँगा ? ॥४५॥ कब विषयरूपी शत्रुको छोडकर मनको अपने वश कर, तथा कर्मको नष्ट कर तपके द्वारा मै जिनेन्द्र सम्बन्धी गति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करूँगा ॥४६॥ यह सुन देवोमे-से एक देव बोला कि जबतक यह जीव स्वर्गमे रहता है तभी तक उसके ऐसा विचार होता है, जब हम सब लोग भी मनुष्य-पर्यायको पा लेते हैं तब यह सब विचार भूल जाता है ॥४७॥ यदि इस बातका विश्वास नही है तो ब्रह्मलोकसे च्युत तथा मनुष्योके-से युक्त राम—बलभद्रको जाकर क्यों नही देख लेते ? ॥४८॥

इसके उत्तरमे महातेजस्वी इन्द्रने स्वय कहा कि सब बन्धनोमे स्नेहका बन्धन अत्यन्त दृढ है ॥४९॥ जो हाथ-पैर आदि अवयवोसे बँधा है ऐसे प्राणीको मोक्ष हो सकता है परन्तु स्नेह-रूपी बन्धनसे बँधे प्राणीको मोक्ष कैसे हो सकता है ? ॥५०॥ बेड़ियोसे बँधा मनुष्य हजारो योजन भी जा सकता है परन्तु स्नेहसे बँधा मनुष्य एक अंगुल भी जानेके लिए समर्थ नही है ॥५१॥ लक्ष्मण, राममे सदा अनुरक्त रहता है वह इसके दर्शन करते-करते कभी तृप्त ही नही होता और अपने प्राण देकर भी उसका कार्य करना चाहता है ॥५२॥ पल-भरके लिए भी जिसके दूर होनेपर रामका मन बेचैन हो उठता है वह उपकारी लक्ष्मणको छोड़नेके लिए कैसे समर्थ हो सकता है ? ॥५३॥

---

१. सुष्ठु करोतीति सुकृत् तम्।

पञ्चदशोत्तरशतं पर्व

अथासनं विमुञ्चन्तं शक्रं नत्वा सुरासुराः । यथायथं ययुश्चित्रं वहन्तो भावमुत्कटम् ॥१॥
कुतूहलतया द्वौ तु विबुधौ कृतनिश्चयौ । पद्मनारायणस्नेहमीहमानौ परीक्षितुम् ॥२॥
क्रीडैकरसिकात्मानावन्योन्यप्रेमसंगतौ । पश्यावः प्रीतिमनयोरित्यागातां प्रधारणाम् ॥३॥
दिवसं विरहमित्येकमप्यस्यादर्शनं न यः । मरणे पूर्वजस्यासौ हरिः किन्नु विचेष्टते ॥४॥
शोकविह्वलितस्यास्य वीक्षमाणौ विचेष्टितम् । परिहासं क्षणं कुर्वो गच्छावः कोशलां पुरीम् ॥५॥
शोकाकुलं मुखं विष्णोर्जायते कीदृशं तु तत् । कस्मै कुप्यति याति क्व करोति किमु भाषणम् ॥६॥
कृत्वा प्रधारणामेतां रत्नचूलो दुरीहितः । नामतो मृगचूलश्च विनीतां नगरीं गतौ ॥७॥
तत्रैत्याकुरुतां[1] पद्मभवने क्रन्दितध्वनिम् । समस्तान्तःपुरस्त्रीणां दिव्यमायासमुद्भवम् ॥८॥
प्रतीहारसुहृन्मन्त्रिपुरोहितपुरोगमाः । अधोमुखा ययुर्विष्णुं जगुश्च[2] बलमृत्युताम् ॥९॥
मृतो राघव इत्येतद्वाक्यं श्रुत्वा गदायुधः । मन्दप्रभञ्जनाधूतनीलोत्पलनिभेक्षणः ॥१०॥
हा किन्त्विदं समुद्भूतमित्यर्द्धकृतजल्पनः । मनोवितानतां प्राप्तः सहसाश्रूण्यमुञ्चत[3] ॥११॥
ताडितोऽशनिनेवासौ काञ्चनस्तम्भसंश्रितः । सिंहासनगतः पुस्तकर्मन्यस्त इव स्थितः ॥१२॥
अनिमीलितनेत्रोऽसौ तथावस्थितविग्रहः । दधार जीवतो रूपं क्वापि प्रहितचेतसः ॥१३॥
वीक्ष्य निर्गतजीवं तं भ्रातृमृत्यनलाहतम्[4] । त्रिदशौ व्याकुलीभूतौ जीवितं दातुमक्षमौ ॥१४॥

अथानन्तर आसनको छोडते हुए इन्द्रको नमस्कार कर नाना प्रकारके उत्कट भावको धारण करनेवाले सुर और असुर यथायोग्य स्थानोपर गये ॥१॥ उनमे-से राम और लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षा करनेके लिए चेष्टा करनेवाले, क्रीड़ाके रसिक तथा पारस्परिक प्रेमसे सहित दो देवोने कुतूहलवश यह निश्चय किया, यह सलाह बाँधी कि चलो इन दोनोकी प्रीति देखे ॥२-३॥ जो उनके एक दिनके भी अदर्शनको सहन नही कर पाता है ऐसा नारायण अपने अग्रजके मरणका समाचार पाकर देखे क्या चेष्टा करता है ? शोकसे विह्वल नारायणकी चेष्टा देखते हुए क्षणभरके लिए परिहास करे। चलो, अयोध्यापुरी चलें और देखें कि विष्णुका शोकाकुल मुख कैसा होता है ? वह किसके प्रति क्रोध करता है और क्या कहता है ? ऐसी सलाह कर रत्नचूल और मृगचूल नामके दो दुराचारी देव अयोध्याकी ओर चले ॥४-७॥ वहाँ जाकर उन्होने रामके भवनमे दिव्य मायासे अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियोके रुदनका शब्द कराया तथा ऐसी विक्रिया की कि द्वारपाल, मित्र, मन्त्री, पुरोहित तथा आगे चलनेवाले अन्य पुरुष नीचा मुख किये लक्ष्मणके पास गये और रामकी मृत्युका समाचार कहने लगे। उन्होने कहा कि 'हे नाथ ! रामकी मृत्यु हुई है'। यह सुनते ही लक्ष्मणके नेत्र मन्द-मन्द वायुसे कम्पित नीलोत्पलके वन समान चचल हो उठे ॥८-१०॥ 'हाय यह क्या हुआ ?' वे इस शब्दका आधा उच्चारण ही कर पाये थे कि उनका मन शून्य हो गया और वे अश्रु छोड़ने लगे ॥११॥ वज्रसे ताड़ित हुएके समान वे स्वर्णके खम्भेसे टिक गये और सिंहासनपर बैठे-बैठे ही मिट्टीके पुतलेकी तरह निश्चेष्ट हो गये ॥१२॥ उनके नेत्र यद्यपि बन्द नही हुए थे तथापि उनका शरीर ज्योका त्यो निश्चेष्ट हो गया। वे उस समय उस जीवित मनुष्यका रूप धारण कर रहे थे जिसका कि चित्त कही अन्यत्र लगा हुआ है ॥१३॥ भाईकी मृत्युरूपी अग्निसे ताड़ित लक्ष्मणको निर्जीव देख दोनो देव बहुत व्याकुल हुए

---

१ तत्रत्य कुरुता म, ज । २ राममृत्युम् । ३ सहसाश्रूनमुञ्चत म । ४ मृत्यनलाहतम् म ।

नूनमस्येदृशो मृत्युर्विधिनेति कृताशयौ । विषादविस्मयापूर्णौ सौधर्ममरुची गतौ ॥१५॥
पश्चात्तापानलज्वालाकात्स्न्योपालीढमानसौ[1] । न तत्र तौ धृतिं जातु[2] संप्राप्तौ निन्दितात्मकौ ॥१६॥
अप्रेक्ष्यकारिणां पापमानसानां हतात्मनाम् । अनुष्ठितं स्वयं कर्म जायते तापकारणम् ॥१७॥
दिव्यमायाकृतं कर्म तदा ज्ञात्वा तथाविधम् । प्रसादयितुमुद्युक्ताः सौमित्रि प्रवराः स्त्रियः ॥१८॥
कयाकृतज्ञया नाथ मूढयास्यपमानितः । सौभाग्यगर्ववाहिन्या परमं दुर्विदग्धया ॥१९॥
प्रसीद मुच्यतां कोपो देव दुःखासिकापि वा । ननु यत्र जने कोपः क्रियतां तत्र[3] यन्मतम् ॥२०॥
इत्युक्त्वा काश्चिदालिङ्ग्य परमप्रेमभूमिकाः । निपेतुः पादयोर्नानाचाटुजल्पिततत्पराः ॥२१॥
काश्चिद्वीणां विधायाङ्के तद्गुणग्रामसंगतम् । जगुर्मधुरमत्यन्तं प्रसादनकृताशयाः ॥२२॥
काश्चिदाननमालोक्य कृतप्रियशतोद्यताः । समाभाषयितुं यत्नं सर्वसंदोहतोऽभवन् ॥२३॥
स्तनोपपीडमाश्लिष्य काश्चिद् विमलविभ्रमाः । कान्तस्य कान्तमाजिघ्रन् गण्डं कुण्डलमण्डितम् ॥२४॥
ईषत्पादं समुद्धृत्य काश्चिन्मधुरभाषिताः । चक्रुः शिरसि संफुल्लकमलोदरसंनिभम् ॥२५॥
काश्चिदर्भकसारङ्गलोचनाः कर्तुमुद्यताः । सोन्मादविभ्रमक्षिप्तकटाक्षोत्पलशेखरम् ॥२६॥
जम्भज्जृम्भायताः काश्चित्तदाननकृतेक्षणाः । मन्दं बभञ्जुरङ्गानि स्वनन्त्यखिलसन्धिषु ॥२७॥
एवं विचेष्टमानानां तासामुत्तमयोषिताम् । यत्नोऽनर्थकतां[4] प्राप तत्र चैतन्यवर्जिते ॥२८॥

परन्तु वे जीवन देनेमे समर्थ नहीं हो सके ॥१४॥ 'निश्चय ही इसी विधिसे मृत्यु होनी होगी' ऐसा विचारकर विषाद और आश्चर्यसे भरे हुए दोनो देव निष्प्रभ हो सौधर्म स्वर्ग चले गये ॥१५॥ पश्चात्तापरूपी अग्निकी ज्वालासे जिनका मन समस्त रूपसे व्याप्त हो रहा था तथा जिनकी आत्मा अत्यन्त निन्दित थी ऐसे वे दोनों देव स्वर्गमे कभी धैर्यको प्राप्त नही होते थे अर्थात् रात-दिन पश्चात्तापकी ज्वालामे झुलसते रहते थे ॥१६॥ सो ठीक ही है क्योकि विना विचारे काम करनेवाले नीच, पापी मनुष्योका किया कार्य उन्हे स्वयं सन्तापका कारण होता है ॥१७॥ तदनन्तर 'यह कार्य लक्ष्मणने अपनी दिव्य मायासे किया है' ऐसा जानकर उस समय उनकी उत्तमोत्तम स्त्रियाँ उन्हें प्रसन्न करनेके लिए उद्यत हुईं ॥१८॥ कोई स्त्री कहने लगी कि हे नाथ! सौभाग्यके गर्वको धारण करनेवाली किस अकृतज्ञ, मूर्ख और कुचतुर स्त्रीने आपका अपमान किया है? ॥१९॥ हे देव! प्रसन्न होइए, क्रोध छोड़िए तथा यह दुःखदायी आसन भी दूर कीजिए। यथार्थमे जिसपर आपका क्रोध हो उसका जो चाहें सो कीजिए ॥२०॥ यह कहकर परम प्रेमकी भूमि तथा नाना प्रकारके मधुर वचन कहनेमे तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ आलिंगन कर उनके चरणोमे लोट गयी ॥२१॥ प्रसन्न करनेकी भावना रखनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ गोदमें वीणा रख उनके गुण-समूहसे सम्बन्ध रखनेवाला अत्यन्त मधुर गान गाने लगी ॥२२॥ सैकड़ो प्रिय वचन कहनेमे तत्पर कितनी ही स्त्रियाँ उनका मुख देख वार्तालाप करानेके लिए सामूहिक यत्न कर रही थी ॥२३॥ उज्ज्वल शोभाको धारण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ स्तनोको पीड़ित करनेवाला आलिंगन कर पतिके कुण्डलमण्डित सुन्दर कपोलको सूँघ रही थी ॥२४॥ मधुर भाषण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ, विकसित कमलके भीतरी भागके समान सुन्दर उनके पैरको कुछ ऊपर उठाकर शिरपर रख रही थी ॥२५॥ बालमृगीके समान चंचल नेत्रोंको धारण करनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ उन्माद तथा विभ्रमके साथ छोड़े हुए कटाक्षरूपी नील कमलोका सेहरा बनानेके लिए ही मानो उद्यत थी ॥२६॥ लम्बी जमुहाई लेनेवाली कितनी ही स्त्रियाँ उनके मुखकी ओर दृष्टि डालकर धीरे-धीरे अँगड़ाई ले रही थी और अँगुलियोंकी सन्धियाँ चटका रही थी ॥२७॥ इस प्रकार चेष्टा करनेवाली उन उत्तम स्त्रियोका सब यत्न चेतनारहित

---

१. धर्मोपालीढ म.। २ जातौ म । ३ यन्मनः म.। ४ -नर्थकत म.।

तानि सप्तदश स्त्रीणां सहस्राणि हरेर्द्युधुः । मन्दमारुतनिर्धूतचित्राम्बुजवनश्रियम्[1] ॥२९॥
तस्मिंस्तथाविधे नाथे स्थिते कृच्छ्रसमागतः[2] । व्याकुले मनसि स्त्रीणां निदधे संशयः पदम् ॥३०॥
सुदुश्चिन्तं च दुर्भाष्यं भावं दुःश्रवमेव च । कृत्वा मनसि मुग्धाक्ष्यः पस्पृशुर्मोहसंगताः ॥३१॥
सुरेन्द्रवनिताचक्रसमचेष्टिततेजसाम् । तदा शोकामितप्तानां नैतासां चारुताभवत् ॥३२॥
श्रुत्वान्तश्चरवक्त्रेभ्यस्तं वृत्तान्तं तथाविधम् । ससम्भ्रमं परिप्राप्तः पद्माभः सचिवैर्वृतः ॥३३॥
अन्तःपुरं प्रविष्टश्च परमाप्तजनावृतः । ससम्भ्रमैर्जनैर्दृष्टो विक्षिप्तविरलक्रमः ॥३४॥
ततोऽपश्यदतिक्रान्तकान्तद्युतिसमुद्भवम् । वदनं धरणीन्द्रस्य प्रभातशशिपाण्डुरम् ॥३५॥
न सुश्लिष्टमिवात्यन्तं परिभ्रष्टं स्वभावतः । [3]तत्कालमग्नमूलाम्बुरुहसाम्यमुपागतम् ॥३६॥
अचिन्तयच्च किं नाम कारणं येन मे स्वयम् । आस्ते रुष्टो विषादी च किंचिद्विनतमस्तकः ॥३७॥
उपसृत्य च सस्नेहं मुहुराघ्राय मूर्द्धनि । हिमाहतनगाकारं पद्मस्तं परिषस्वजे ॥३८॥
चिह्नानि जीवमुक्तस्य पश्यन्नपि समन्ततः । अमृतं लक्ष्मणं मेने काकुत्स्थः स्नेहनिर्भरः ॥३९॥
नताङ्गयष्टिरावक्रा ग्रीवा दोःपरिघौ[4] श्लथौ । [5]प्राणनाकुञ्चनोन्मेषप्रभृतीहोज्झिता तनुः ॥४०॥

लक्ष्मणके विषयमे निरर्थकपनेको प्राप्त हो गया ॥२८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि उस समय लक्ष्मणकी सत्रह हजार स्त्रियाँ मन्द-मन्द वायुसे कम्पित नाना प्रकारके कमल वनकी शोभा धारण कर रही थी ॥२९॥

तदनन्तर जब लक्ष्मण उसी प्रकार स्थित रहे आये तब बडी कठिनाईसे प्राप्त हुए संशयने उन स्त्रियोके व्यग्र मनमे अपना पैर रखा ॥३०॥ मोहमे पड़ी हुईं वे भोली-भाली स्त्रियाँ मनमे ऐसा विचार करती हुईं उनका स्पर्श कर रही थी कि सम्भव है हम लोगोने इनके प्रति मनमे कुछ खोटा विचार किया हो, कोई न कहने योग्य शब्द कहा हो, अथवा जिसका सुनना भी दुःखदायी है, ऐसा कोई भाव किया हो ॥३१॥ इन्द्राणियोके समूहके समान चेष्टा और तेजको धारण करनेवाली वे स्त्रियाँ उस समय शोकसे ऐसी सन्तप्त हो गयी कि उनकी सब सुन्दरता समाप्त हो गयी ॥३२॥

अथानन्तर अन्तःपुरचारी प्रतिहारोके मुखसे यह समाचार सुन मन्त्रियोसे घिरे राम घबड़ाहटके साथ वहाँ आये ॥३३॥ उस समय घबड़ाये हुए लोगोने देखा कि परम प्रामाणिक जनोसे घिरे राम जल्दी-जल्दी कदम बढाते हुए अन्तःपुरमे प्रवेश कर रहे है ॥३४॥ तदनन्तर उन्होने जिसकी सुन्दर कान्ति निकल चुकी थी और जो प्रातःकालीन चन्द्रमाके समान पाण्डुर वर्ण था ऐसा लक्ष्मणका मुख देखा ॥३५॥ वह मुख पहलेके समान व्यवस्थित नही था, स्वभावसे विलकुल भ्रष्ट हो चुका था, और तत्काल उखाड़े हुए कमलकी सदृशताको प्राप्त हो रहा था ॥३६॥ वे विचार करने लगे कि ऐसा कौन-सा कारण आ पडा कि जिससे आज लक्ष्मण मुझसे रूठा तथा विषादयुक्त हो शिरको कुछ नीचा झुकाकर बैठा है ॥३७॥ रामने पास जाकर बड़े स्नेहसे बार-बार उनके मस्तक सूँघा और तुषारसे पीड़ित वृक्षके समान आकारवाले उनका बार-बार आलिंगन किया ॥३८॥ यद्यपि राम सब ओरसे मृतकके चिह्न देख रहे थे तथापि स्नेहसे परिपूर्ण होनेके कारण वे उन्हे अमृत अर्थात् जीवित ही समझ रहे थे ॥३९॥ उनकी शरीर-यष्टि झुक गयी थी, गरदन टेढी हो गयी थी, भुजारूपी अर्गल ढीले पड़ गये थे और शरीर, साँस लेना, हस्त-पादादिक अवयवोको सिकोड़ना तथा नेत्रोका टिमकार पड़ना आदि चेष्टाओसे रहित हो गया था ॥४०॥

---

१. -श्रियाम् म. । २. समागताः म. । ३. तत्कालतरु-म. । ४. वक्रग्रीवा म । ५. प्राणाना-म । प्राणाना ज. ।

ईदृशं लक्ष्मणं वीक्ष्य विमुक्तं स्वशरीरिणा । उद्वेगोरुभयाक्रान्तः प्रसिष्वेदापराजितः[1] ॥४१॥
अथासौ दीनदीनास्यो मूर्च्छमानो मुहुर्मुहुः । बाष्पाकुलेक्षणोऽपश्यदङ्गाङ्गानि समन्ततः ॥४२॥
न क्षतं नखरेखाया अपि तुल्यमिहेक्ष्यते[2] । [3]अवस्थामीदृशीं केन भवेदयमुपागतः ॥४३॥
इति ध्यायन् समुद्भूतवेपथुस्तद्विदं जनम् । आह्वाययद्विषण्णात्मा नूनं विद्वानपि स्वयम् ॥४४॥
यदा वैद्यगणैः सर्वैर्मन्त्रौषधिविशारदैः । प्रतिशिष्टः कलापारैः परीक्ष्य धरणीश्वरः ॥४५॥
तदाहताशतां प्राप्तो रामो मूर्च्छां समागतः । [4]पर्यास्ते वसुधापृष्ठे छिन्नमूलतरुर्यथा ॥४६॥
हारैश्चन्दननीरैश्च तालवृन्तानिलैर्निभैः । कृच्छ्रेण त्याजितो मोहं [5]विललाप सुविह्वलः ॥४७॥
समं शोकविषादाभ्यामसौ पीडनमाश्रितः । उत्ससर्ज यदश्रूणां प्रवाहं [6]पिहिताननम् ॥४८॥
बाष्पेण [7]पिहितं वक्त्रं रामदेवस्य लक्षितम् । विरलाम्भोदसंवीतचन्द्रमण्डलसंनिभम् ॥४९॥
अत्यन्तविह्वलीभूतं तमालोक्य तथाविधम् । विगतान्तं परिप्राप्तमन्तःपुरमहार्णवम् ॥५०॥
दुःखसागरनिर्मग्नाः शुष्यदङ्गा वरस्त्रियः । भृशं व्यानशिरे बाष्पाक्रन्दाभ्यां रोदसी समम् ॥५१॥
हा नाथ भुवनानन्द सर्वसुन्दरजीवित । प्रयच्छ दयितां वाचं क्वासि यातः किमर्थकम् ॥५२॥
अपराधादृते कस्मादस्मानेवं विमुञ्चसि । नन्वागः सत्यमप्यास्ते जने [8]तिष्ठति नो चिरम् ॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा तद्वृत्तं लवणाङ्कुशौ । विषादं परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥५४॥

इस प्रकार लक्ष्मणको अपनी आत्मासे विमुक्त देख उद्वेग तथा तीव्र भयसे आक्रान्त राम पसीनासे तर हो गये ॥४१॥ अथानन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन हो रहा था, जो बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे, और जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे, ऐसे राम सब ओरसे उनके अंगोंको देख रहे थे ॥४२॥ वे कह रहे थे कि इस शरीरमे कही नखकी खरोंच बराबर भी तो घाव नही दिखाई देता फिर यह ऐसी अवस्थाको किसके द्वारा प्राप्त कराया गया ?—इसकी यह दशा किसने कर दी ? ॥४३॥ ऐसा विचार करते-करते रामके शरीरमें कँप-कँपी छूटने लगी तथा उनकी आत्मा विषादसे भर गयी । यद्यपि वे स्वयं विद्वान् थे तथापि उन्होने शीघ्र ही इस विषयके जानकार लोगोको बुलवाया ॥४४॥ जब मन्त्र और औषधिमे निपुण, कलाके पारगामी समस्त वैद्योने परीक्षा कर उत्तर दे दिया तब निराशाको प्राप्त हुए राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये और उखड़े वृक्षके समान पृथिवीपर गिर पडे ॥४५–४६॥ जब हार, चन्दन मिश्रित जल और तालवृन्तके अनुकूल पवनके द्वारा बड़ी कठिनाईसे मूर्च्छा छुडायी गयी तब अत्यन्त विह्वल हो विलाप करने लगे ॥४७॥ चूँकि राम शोक और विषादके द्वारा साथ ही साथ पीड़ाको प्राप्त हुए थे इसीलिए वे मुखको आच्छादित करनेवाला अश्रुओका प्रवाह छोड़ रहे थे ॥४८॥ उस समय आँसुओसे आच्छादित रामका मुख विरले-विरले मेघोसे ढँके चन्द्रमण्डलके समान जान पड़ता था ॥४९॥ उस प्रकारके गम्भीर हृदय रामको अत्यन्त दुःखी देख अन्तःपुररूपी महासागर निर्मर्याद अवस्थाको प्राप्त हो गया अर्थात् उसके शोककी सीमा नही रही ॥५०॥ जो दुःखरूपी सागरमे निमग्न थीं तथा जिनके शरीर सूख गये थे ऐसी उत्तम स्त्रियोने अत्यधिक आँसू और रोनेकी ध्वनिसे पृथिवी तथा आकाशको एक साथ व्याप्त कर दिया था ॥५१॥ वे कह रही थी कि हा नाथ ! हा जगदानन्द ! हा सर्वसुन्दर जीवित ! प्रिय वचन देओ, कहाँ हो ? किस लिए चले गये हो ? ॥५२॥ इस तरह अपराधके बिना ही हम लोगोको क्यों छोड़ रहे हो ? और अपराध यदि सत्य भी हो तो भी वह मनुष्यमे दीर्घ काल तक नही रहता ॥५३॥

इसी बीचमे यह समाचार सुनकर परम विषादको प्राप्त हुए लवण और अंकुश इस प्रकार

---

१. राम. । २ -मिहेष्यते म. । ३. अवस्था कीदृशी म । ४. पर्यासो म. । ५ विललापि म. । ६. विहिताननम् म । ७ विहितं म. । ८. तिष्ठति म., ज. ।

धिगसारं मनुष्यत्वं नातोऽस्त्यन्यन्महाधमम् । मृत्युर्यच्छत्यवस्कन्दं यदज्ञातो निमेषतः ॥५५॥
यो न निर्व्यूहितं शक्यः सुरविद्याधरैरपि । नारायणोऽप्यसौ नीतः कालपाशेन [1]वश्यताम् ॥५६॥
आनाय्येन शरीरेण किमनेन धनेन च । अवधार्येति संबोधं वैदेहीजावुपेयतु ॥५७॥
पुनर्गर्भाशयाद् भीतौ नत्वा तातक्रमद्वयम् । महेन्द्रोदयमुद्यानं शिबिकावस्थितौ गतौ ॥५८॥
तत्रामृतस्वराभिख्यं शरणीकृत्य संयतम् । बभूवतुर्महाभागौ श्रमणौ लवणाङ्कुशौ ॥५९॥
गृह्णतोरनयोर्दीक्षां तदा मत्तमचेतनोः । पृथिव्यामभवद् बुद्धिर्मृत्तिकागोलकाहिता ॥६०॥
एकतः पुत्रविरहो भ्रातृमृत्युरथान्यतः । इति शोकमहावर्ते पर्यावर्तत राघवः ॥६१॥
राज्यतः पुत्रतश्चापि स्वभूनाज्जीवितादपि । तथापि [2]दयितोऽतोऽस्य परं लक्ष्मीधरः प्रियः ॥६२॥

आर्यागीतिच्छन्दः

कर्मनियोगेनैवं प्राप्तेऽवस्थामशोभनामाप्तजने ।
[3]सशोक वैराग्यं च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ताः पुरुषाः ॥६३॥
कालं प्राप्य जनानां किंचिच्च निमित्तमात्रकं परभावम् ।
सबोधरविरुदेति स्वकृतविपाकेऽन्तरङ्गहेतौ जाते ॥६४॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लवणाङ्कुशतपोऽभिधानं नाम पञ्चदशोत्तरशतं पर्व ॥११५॥



विचार करने लगे कि सारहीन इस मनुष्य पर्यायको धिक्कार हो। इससे बढ़कर दूसरा महानीच नहीं है क्योंकि मृत्यु बिना जाने ही निमेषमात्रमें इसपर आक्रमण कर देती है ॥५४–५५॥ जिसे देव और विद्याधर भी वश नहीं कर सके थे ऐसा यह नारायण भी कालके पाशसे वशीभूत अवस्थाको प्राप्त हो गया ॥५६॥ इन नश्वर शरीर और नश्वर धनसे हमें क्या आवश्यकता है? ऐसा विचारकर सीताके दोनों पुत्र प्रतिबोधको प्राप्त हो गये ॥५७॥ तदनन्तर 'पुनः गर्भवासमें न जाना पड़े' इससे भयभीत हुए दोनों वीर, पिताके चरण-युगलको नमस्कार कर पालकीमें बैठ महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें चले गये ॥५८॥ वहाँ अमृतस्वर नामक मुनिराजकी शरण प्राप्त कर दोनों बड़भागी मुनि हो गये ॥५९॥ उत्तम चित्तके धारक लवण और अंकुश जब दीक्षा ग्रहण कर रहे थे तब विशाल पृथिवीके ऊपर उनकी मिट्टीके गोलेके समान अनादरपूर्ण बुद्धि हो रही थी ॥६०॥ एक ओर पुत्रोंका विरह और दूसरी ओर भाईकी मृत्युका दुःख—इस प्रकार राम शोक-रूपी बड़ी भँवरमें घूम रहे थे ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि रामको लक्ष्मण राज्यसे, पुत्रसे, स्त्रीसे और अपने द्वारा धारण किये जीवनसे भी कहीं अधिक प्रिय थे ॥६२॥ संसारमें मनुष्य नाना प्रकारके हृदयके धारक हैं इसीलिए कर्मयोगसे आप्तजनोंके ऐसी अशोभन अवस्थाको प्राप्त होनेपर कोई तो शोकको प्राप्त होते हैं और कोई वैराग्यको प्राप्त होते हैं ॥६३॥ जब समय पाकर स्वकृत कर्मका उदयरूप अन्तरंग निमित्त मिलता है तब बाह्यमें किसी भी परपदार्थका निमित्त पाकर जीवोंके प्रतिबोधरूपी सूर्य उदित होता है उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणका मरण और लवणांकुशके तपका वर्णन करनेवाला एक सौ पन्द्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११५॥



---

१. पश्यताम् म । २. दयितातोऽस्य म । ३. स (नि.) शोक वैराग्य म. । स न शोकं वैराग्य च ब. ।

षोडशोत्तरशतं पर्व

कालधर्मं परिप्राप्ते राजन् लक्ष्मणपुङ्गवे । त्यक्तं युगप्रधानेन रामेण व्याकुलं जगत् ॥१॥
[1]स्वरूपमृदु सद्गन्धं स्वभावेन हरेर्वपुः । जीवेनापि परित्यक्तं न पद्मामस्तदात्यजत् ॥२॥
आलिङ्गति निधायाङ्के मार्ष्टि जिघ्रति [2]निड्क्षति । निषीदति समाधाय सस्पृहं भुजपञ्जरे ॥३॥
अवाप्नोति न विश्वासं क्षणमप्यस्य मोचने । बालोऽमृतफलं यद्वत् स तं मेने महाप्रियम् ॥४॥
विललाप च हा भ्रातः किमिदं युक्तमीदृशम् । यत्परित्यज्य मां गन्तुं मतिरेकाकिना कृता ॥५॥
ननु नाहं किमु ज्ञातस्तव त्वद्विरहासहः । यन्मां निक्षिप्य दुःखाग्नावकस्मादिदमीहसे ॥६॥
हा तात किमिदं क्रूरं परं व्यवसितं त्वया । यदसंवाद्य मे लोकमन्यं दत्तं प्रयाणकम् ॥७॥
प्रयच्छ सकृदप्याशु वत्स प्रतिवचोऽमृतम् । दोषाद् किं नोऽसि किं क्रुद्धो ममापि सुविनीतकः ॥८॥
कृतवानसि नो जातु मानं मयि मनोहर । अन्य एवासि किं जातो वद वा किं मया कृतम् ॥९॥
दूरादेवान्यदा दृष्ट्वा दत्त्वाभ्युत्थानमादृतः[3] । रामं सिंहासने कृत्वा महीपृष्ठं न्यसेवयः[4] ॥१०॥
अधुना मे [5]शिरस्यस्मिन्निन्दुकान्तनखावलौ । पादेऽपि लक्ष्मण न्यस्ते रुषे मृष्यति नो कथम् ॥११॥
देव त्वरितमुत्तिष्ठ मम पुत्रौ वनं गतौ । दूरं न गच्छतो यावत्तावत्तावानयामहे ॥१२॥
त्वया विरहिता एताः कृतार्तकुररीरवाः । भवद्गुणग्रहग्रस्ता विलोलन्ति महीतले ॥१३॥
भ्रष्टहारशिरोरत्नमेखलाकुण्डलादिकम् । आक्रन्दन्तं प्रियालोकं वारयस्याकुलं न किम् ॥१४॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! लक्ष्मणके मृत्युको प्राप्त होनेपर युग-प्रधान रामने इस व्याकुल संसारको छोड़ दिया ॥१॥ उस समय स्वरूपसे कोमल और स्वभाव सुगन्धित नारायणका शरीर यद्यपि निर्जीव हो गया था तथापि राम उसे छोड़ नही रहे थे ॥२॥ वे उसका अलिंगन करते थे, गोदमे रखकर उसे पोछते थे, सूँघते थे, चूमते थे और बड़ी उमंगके साथ भुजपंजरमे रखकर बैठते थे ॥३॥ इसके छोड़नेमे वे क्षणभरके लिए भी विश्वासको प्राप्त नही होते थे। जिस प्रकार बालक अमृत फलको महाप्रिय मानता है उसी प्रकार वे उस मृत शरीरको महाप्रिय मानते थे ॥४॥ कभी विलाप करने लगते कि हाय भाई! क्या तुझे यह ऐसा करना उचित था। मुझे छोडकर अकेले ही तू चल दिया ॥५॥ क्या तुझे यह विदित नही कि मै तेरे विरहको सहन नही कर सकता जिससे तू मुझे दुःखरूपी अग्निमे डालकर अकस्मात् यह करना चाहता है ॥६॥ हाय तात! तूने यह अत्यन्त क्रूर कार्य क्यों करना चाहा जिससे कि मुझसे पूछे बिना ही परलोकके लिए प्रयाण कर दिया ॥७॥ हे वत्स! एक बार तो प्रत्युत्तररूपी अमृत शीघ्र प्रदान कर। तू तो बड़ा विनयवान् था फिर दोषके बिना ही मेरे ऊपर भी कुपित क्यों हो गया है? ॥८॥ हे मनोहर! तूने मेरे ऊपर कभी मान नही किया, फिर अब क्यों अन्यरूप हो गया है? कह, मैने क्या किया है? ॥९॥ तू अन्य समय तो रामको दूरसे ही देखकर आदरपूर्वक खड़ा हो जाता था और उसे सिंहासनपर बैठाकर स्वयं पृथिवीपर नीचे बैठता था ॥१०॥ हे लक्ष्मण! इस समय चन्द्रमाके समान सुन्दर नखावलीसे युक्त तेरा पैर मेरे मस्तकपर रखा है फिर भी तू क्रोध ही करता है क्षमा क्यो नही करता? ॥११॥ हे देव! शीघ्र उठ, मेरे पुत्र वनको चले गये है सो जबतक वे दूर नही पहुँच जाते है तबतक उन्हे वापस ले आवे ॥१२॥ तुम्हारे गुण ग्रहणसे ग्रस्त ये स्त्रियाँ तुम्हारे बिना कुररीके समान करुण शब्द करती हुईं पृथिवीतलमे लोट रही हैं ॥१३॥ हार,

---

१ स्वरूप मृदु म । २. चुम्बति । ३. -माहृत' म । ४. निषेचय म । ५ सरस्यस्मिन् ।

किं करोमि क गच्छामि त्वया विरहितोऽधुना । स्थानं तन्नानुपश्यामि जायते यत्र निर्वृतिः ॥१५॥
आसेचनकमेतत्ते पश्याम्यद्यापि वक्त्रकम् । अनुरक्तात्मकं तत्किं त्यक्तुं समुचितं तव ॥१६॥
मरणव्यसने भ्रातुरपूर्वोऽयं समाह्वकम् । दग्धुं शोकानलः सक्तः किं करोमि विपुण्यकः ॥१७॥
न कृशानुर्दहत्येवं नैवं शोषयते विषम् । उपमानविनिर्मुक्तं यथा भ्रातु. परायणम् ॥१८॥
अहो लक्ष्मीधर क्रोधधैर्यं सहर सांप्रतम् । वेलातीतानगाराणां महर्षीणामियं हि सा ॥१९॥
अयं रविरपैत्यस्तं वीक्षस्वैतानि साम्प्रतम् । पद्मानि त्वत्सनिद्राक्षिसमानि सरसां जले ॥२०॥
शय्यां व्यरचयत् क्षिप्रं कृत्वा विष्णुं भुजान्तरे । व्यापारान्तरनिर्मुक्तः स्वप्तुं राम. प्रचक्रमे ॥२१॥
श्रवणे देवसद्भाव ममैकस्य निवेदय । केनासि कारणेनैतामवस्थामीदृशीमित. ॥२२॥
प्रसन्नचन्द्रकान्तं ते वक्त्रमासीन्मनोहरम् । अधुना विगतच्छायं कस्मादीदृगिदं स्थितम् ॥२३॥
मृदुप्रभञ्जनाधूतकरपल्लवसन्निभे । आस्तां निरीक्षणे कस्मादधुना ग्लानिमागते ॥२४॥
ब्रूहि ब्रूहि किमिष्टं ते सर्वं संपादयाम्यहम् । एवं न शोभसे विष्णो सव्यापारं मुखं कुरु ॥२५॥
देवी सीता स्मृता किं ते समदु खसहायिनी । परलोकं गता साध्वी विषण्णोऽसि[2] भवेत्ततः ॥२६॥
विषादं मुञ्च लक्ष्मीश विरुद्धा खेगसहतिः[3] । अवस्कन्दागता सेयं साकेतामवगाहते ॥२७॥
क्रुद्धस्यापीदृशं वक्त्रं मनोहर न जातुचित् । तवासीदधुना वत्स मुञ्च मुञ्च विचेष्टितम् ॥२८॥

चूडामणि, मेखला तथा कुण्डल आदि आभूषण नीचे गिर गये है ऐसी करुण रुदन करती हुई इन व्याकुल स्त्रियोको मना क्यो नही करते हो ? ॥१४॥ अब तेरे विना क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? वह स्थान नही देखता हूँ जहाँ पहुँचनेपर सन्तोष उत्पन्न हो सके ॥१५॥ जिसे देखते-देखते तृप्ति ही नही होती थी ऐसे तेरे इस मुखको मै अब भी देख रहा हूँ फिर अनुराग-से भरे हुए मुझे छोड़ना क्या तुझे उचित था ॥१६॥ इधर भाईपर मरणरूपी संकट पड़ा है उधर यह अपूर्व शोकाग्नि मेरे शरीरको जलानेके लिए तत्पर है, हाय मै अभागा क्या करूँ ? ॥१७॥ भाईका उपमातीत मरण शरीरको जिस प्रकार जलाता और सुखाता है उस प्रकार न अग्नि जलाती है और न विष सुखाता है ॥१८॥ अहो लक्ष्मण ! इस समय क्रोधकी आसक्तिको दूर करो। यह गृहत्यागी मुनियोके सचारका समय निकल गया ॥१९॥ देखो, यह सूर्य अस्त होने जा रहा है और तालावोके जलमे कमल तुम्हारे निद्रा निमीलित नेत्रोके समान हो रहे है ॥२०॥ यह कहकर अन्य सब कामोसे निवृत्त रामने शीघ्र ही शय्या बनायी और लक्ष्मणको छातीसे लगा सोनेका उपक्रम किया ॥२१॥ वे कहते कि हे देव ! इस समय मै अकेला हूँ। आप मेरे कानमे अपना अभिप्राय वता दो कि किस कारणसे तुम इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ? ॥२२॥ तुम्हारा मनोहर मुख तो उज्ज्वल चन्द्रमाके समान सुन्दर था पर इस समय यह ऐसा कान्तिहीन कैसे हो गया ? ॥२३॥ तुम्हारे नेत्र मन्द-मन्द वायुसे कम्पित पल्लवके समान थे फिर इस समय म्लानिको प्राप्त कैसे हो गये ? ॥२४॥ कह, कह, तुझे क्या इष्ट है ? मै सब अभी ही पूर्ण किये देता हूँ। हे विष्णो ! तू इस प्रकार शोभा नही देता, मुखको व्यापार सहित कर अर्थात् मुखसे कुछ बोल ॥२५॥ क्या तुझे सुख-दुःखमे सहायता देनेवाली सीता देवीका स्मरण हो आया है परन्तु वह साध्वी तो परलोक चली गयी है क्या इसीलिए तुम विषादयुक्त हो ॥२६॥ हे लक्ष्मीपते ! विषाद छोडो, देखो विद्याधरोका समूह विरुद्ध होकर आक्रमणके लिए आ पहुँचा है और अयोध्यामे प्रवेश कर रहा है ॥२७॥ हे मनोहर ! कभी क्रुद्ध दशामे भी तुम्हारा ऐसा मुख नही हुआ फिर अब क्यो हो रहा है ? हे वत्स ! ऐसी विरुद्ध चेष्टा अब तो छोड़ो ॥२८॥

१ वैमुख्यम्, मरणमित्यर्थ । २. विषण्णासि म. । ३. विद्याधरसमूहः ।

प्रसीदैव तवावृत्तपूर्वं पादौ नमाम्यहम् । ननु ख्यातोऽखिले लोके मम त्वमनुकूलने ॥२९॥
असमानप्रकाशस्त्वं जगद्दीपः समुन्नतः । [2]चलिनाकालवातेन प्रायो निर्वापितोऽभवत् ॥३०॥
राजराजत्वमासाद्य नीत्वा लोकं महोत्सवम् । अनाथीकृत्य तं कस्माद् भविताग्रमनं तव ॥३१॥
चक्रेण द्विषतां चक्रं जित्वा सकलमूर्जितम् । कथं नु सहसेऽद्य त्वं कालचक्रपराभवम् ॥३२॥
राजश्रिया तवाराज्यद्यदिदं सुन्दरं वपुः । तदद्यापि तथैवेदं शोभते जीवितोज्झितम् ॥३३॥
निद्रां राजेन्द्र मुञ्चस्व समनीता विभावरी । निवेदयति संध्येयं परिप्राप्तं दिवाकरम् ॥३४॥
सुप्रभातं जिनेन्द्राणां लोकालोकावलोकिनाम् । अन्येषां भव्यपद्मानां शरणं मुनिसुव्रतः ॥३५॥
प्रभातमपि जानामि ध्वान्तमेतदहं परम् । वदनं यन्नरेन्द्रस्य पश्यामि गतविभ्रमम् ॥३६॥
उत्तिष्ठ मा चिरं स्वाप्सीर्मुञ्च निद्रां विचक्षण । आश्रयाव. समास्थानं तिष्ठ सामन्तदर्शने ॥३७॥
प्राप्तो विनिद्रतामेष सशोकः कमलाकरः । [3]कस्मादभ्युत्थितस्त्वं तु निद्रितं सेवते भवान् ॥३८॥
विपरीतमिदं जातु त्वया नैवसमनुष्ठितम् । उत्तिष्ठ राजकृत्येषु भवावहितमानसः ॥३९॥
आतस्त्वयि चिरं सुप्ते जिनवेश्मसु नोचिताः । क्रियन्ते चारुसंगीता भेरीमङ्गलनिस्वनाः ॥४०॥
श्लथप्रभातकर्तव्याः करुणासक्तचेतस । उद्वेगं परमं प्राप्ता यतयोऽपि त्वयीदृशे ॥४१॥
वीणावेणुमृदङ्गादिनिस्वानपरिवर्जिता । त्वद्वियोगाकुलीभूता नगरीयं न राजते ॥४२॥

प्रसन्न होओ, देखो मैने कभी तुझे नमस्कार नही किया किन्तु आज तेरे चरणोमे नमस्कार करता हूँ। अरे! तू तो मुझे अनुकूल रखनेके लिए समस्त लोकमे प्रसिद्ध है ॥२९॥ तू अनुपम प्रकाशका धारी बहुत बडा लोकप्रदीप है सो इस असमयमे चलनेवाली प्रचण्ड वायुके द्वारा प्रायः बुझ गया है ॥३०॥

तुमने राजाधिराज पद पाकर लोकको बहुत भारी उत्सव प्राप्त कराया था अब उसे अनाथ कर तुम्हारा जाना किस प्रकार होगा? ॥३१॥ अपने चक्ररत्नके द्वारा शत्रुओके समस्त सबल दलको जीतकर अब तुम कालचक्रका पराभव क्यो सहन करते हो ॥३२॥ तुम्हारा जो सुन्दर शरीर पहले राजलक्ष्मीसे जैसा सुशोभित था वैसा ही अब निर्जीव होनेपर भी सुशोभित है ॥३३॥ हे राजेन्द्र! उठो, निद्रा छोडो, रात्रि व्यतीत हो गयी, यह सन्ध्या सूचित कर रही है कि अब सूर्यका उदय होनेवाला है ॥३४॥

लोकालोकको देखनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌का सदा सुप्रभात है तथा भगवान् मुनिसुव्रतदेव अन्य भव्य जीवरूपी कमलोके लिए शरणस्वरूप है ॥३५॥ इस प्रभातको भी मैं परम अन्धकार-स्वरूप ही जानता हूँ क्योकि मैं तुम्हारे मुखको चेष्टारहित देख रहा हूँ ॥३६॥ हे चतुर! उठ, देर तक मत सो, निद्रा छोड़, चल सभास्थलमे चले, सामन्तोको दर्शन देनेके लिए सभास्थलमे बैठ ॥३७॥

देख, यह शोकसे भरा कमलाकर विनिद्र अवस्थाको प्राप्त हो गया है—विकसित हो गया है पर तू विद्वान् होकर भी निद्राका सेवन क्यो कर रहा है? ३८॥ तूने कभी ऐसी विपरीत चेष्टा नही की अतः उठ और राजकार्योमे सावधान चित्त हो ॥३९॥ हे भाई, तेरे बहुत समय तक सोते रहनेसे जिन-मन्दिरोमे सुन्दर संगीत तथा भेरियोके मागलिक शब्द आदि उचित क्रियाएँ नही हो रही है ॥४०॥ तेरे ऐसे होनेपर जिनके प्रातःकालीन कार्य शिथिल हो गये ऐसे दयालु मुनिराज भी परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे हैं ॥४१॥ तुम्हारे वियोगसे दुःखी हुई यह नगरी वीणा, बाँसुरी तथा मृदग आदिके शब्दसे रहित होनेके कारण सुशोभित नही

---

१. तवानृत्तपर्वं म । २ चलिताकाल म. । ३ कस्मादभ्युदितत्वं तु निन्दितं म ।

आर्याच्छन्दः

पूर्वोपचितमशुद्धं नूनं मे कर्म पाकमायातम् ।
भ्रातृवियोगव्यसनं प्राप्तोऽस्मि यदीदृशं कष्टम् ॥४३॥
युद्ध इव शोकभाजश्चैतन्यसमागमानन्दम् ।
उत्तिष्ठ मानवरवे कुरु सकृदत्यन्तखिन्नस्य ॥४४॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते रामदेवविप्रलाप नाम
षोडशोत्तरशतं पर्व ॥११६॥



हो रही है ॥४२॥ जान पड़ता है कि मेरा पूर्वोपार्जित पापकर्म उदयमे आया है इसलिए मै भाईके वियोगसे दु:खपूर्ण ऐसे कष्टको प्राप्त हुआ हूँ ॥४३॥ हे मानव सूर्य ! जिस प्रकार तूने पहले युद्धमे सचेत हो मुझ शोकातुरके लिए आनन्द उत्पन्न किया था उसी प्रकार अब भी उठ और अत्यन्त खेदसे खिन्न मेरे लिए एक बार आनन्द उत्पन्न कर ॥४४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें श्रीरामदेवके विप्रलापका वर्णन करनेवाला एक सौ सोलहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११६॥



सप्तदशोत्तरशतं पर्व

ततो विदितवृत्तान्ताः सर्वे विद्याधराधिपाः । सह स्त्रीभिः समायातास्त्वरिताः कोशलां पुरीम् ॥१॥
विभीषणः समं पुत्रैश्चन्द्रोदरनृपात्मजः । समेत. परिवर्गेण सुग्रीवः शशिवर्द्धनः ॥२॥
वाष्पविप्लुतनेत्रास्ते संभ्रान्तमनसोऽविशन् । भवनं पद्मनाभस्य भरिताञ्जलयो नताः ॥३॥
विषादिनो विधिं कृत्वा पुरस्तात्ते महीतले । उपविश्य क्षणं स्थित्वा मन्दं व्यज्ञापयन्निदम् ॥४॥
देव यद्यपि दुर्मोचः शोकोऽयं परमाप्तजः । ज्ञातज्ञेयस्तथापि त्वमेनं संत्यक्तुमर्हसि ॥५॥
एवमुक्त्वा स्थितेष्वेषु वचः प्रोचे विभीषणः । परमार्थस्वभावस्य लोकतत्त्वविचक्षणः ॥६॥
अनादिनिधना राजन् स्थितिरेषा व्यवस्थिता । अधुना नेयमस्यैव प्रवृत्ता भुवनोदरे ॥७॥
जातेनावश्यमर्त्तव्यमत्र संसारपञ्जरे । प्रतिक्रियास्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि ॥८॥
आनाय्ये[1] नियत देहे शोकस्यालम्बनं मुधा । उपायैर्हि प्रवर्त्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः ॥९॥
आक्रन्दितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम् । प्रयच्छति ततः शोक न राजन् कर्त्तुमर्हसि ॥१०॥
नारीपुरुषसयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् । उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च प्राप्तसाम्यानि बुद्बुदैः ॥११॥
लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि नाकतः । [2]नष्टायोनिजदेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंक्षये ॥१२॥
गर्भक्लिष्टे रुजाकीर्णे तृणबिन्दुचलाचले । क्लेदकैकससंघाते कास्था मर्त्यशरीरके ॥१३॥
अजरामरणंमन्यः किं शोचति जनो मृतम् । मृत्युदंष्ट्रान्तरक्लिष्टमात्मानं किं न शोचति ॥१४॥

समाचार मिलनेपर समस्त विद्याधर राजा अपनी स्त्रियोके साथ शीघ्र ही अयोध्यापुरी आये ॥१॥ अपने पुत्रोके साथ विभीषण, राजा विराधित, परिजनोसे सहित सुग्रीव और चन्द्रवर्धन आदि सभी लोग आये ॥२॥ जिनके नेत्र आँसुओसे व्याप्त थे तथा मन घबड़ाये हुए थे ऐसे सब लोगोने अजलि बाँधे-बाँधे रामके भवनमे प्रवेश किया ॥३॥ विषादसे भरे हुए सब लोग योग्य शिष्टाचारकी विधि कर रामके आगे पृथिवी तलपर बैठ गये और क्षणभर चुपचाप बैठनेके बाद धीरे-धीरे यह निवेदन करने लगे कि हे देव ! यद्यपि परम इष्टजनके वियोगसे उत्पन्न हुआ यह शोक दुःखसे छूटने योग्य है तथापि आप पदार्थके ज्ञाता हैं अतः इस शोकको छोड़नेके योग्य हैं ॥४–५॥ इस प्रकार कहकर जब सब लोग चुप बैठ गये तब परमार्थ स्वभाववाले आत्माके लौकिक स्वरूपके जाननेमे निपुण विभीषण निम्नांकित वचन बोला ॥६॥ उसने कहा कि हे राजन् ! यह स्थिति अनादिनिधन है। संसारके भीतर आज इन्ही एककी यह दशा नही हुई है ॥७॥ इस संसाररूपी पिंजड़ेके भीतर जो उत्पन्न हुआ है उसे अवश्य मरना पड़ता है। नाना उपायोके द्वारा भी मृत्युका प्रतिकार नही किया जा सकता ॥८॥ जब यह शरीर निश्चित ही विनश्वर है तब इसके विषयमे शोकका आश्रय लेना व्यर्थ है। यथार्थमे बात यह है कि जो कुशलबुद्धि मनुष्य हैं वे आत्महितके उपायोंमे ही प्रवृत्ति करते है ॥९॥ हे राजन् ! परलोक गया हुआ कोई मनुष्य रोनेसे उत्तर नही देता इसलिए आप शोक करनेके योग्य नही हैं ॥१०॥ स्त्री और पुरुषके संयोगमे प्राणियोके शरीर उत्पन्न होते है और पानीके बबूलेके समान अनायास ही नष्ट हो जाते हैं ॥११॥ पुण्यक्षय होनेपर जिनका वैक्रियिक शरीर नष्ट हो गया है ऐसे लोकपाल सहित इन्द्रोको भी स्वर्गसे च्युत होना पड़ता है ॥१२॥ गर्भके क्लेशोसे युक्त, रोगोसे व्याप्त, तृणके ऊपर स्थित बूँदके समान चंचल तथा मांस और हड्डियोके समूहस्वरूप मनुष्यके तुच्छ शरीरमे क्या आदर करना है ? ॥१३॥ अपने आपको अजर-अमर मानता हुआ यह मनुष्य मृत व्यक्तिके

---

१. अनार्ये ब, अनाय्ये स., अनायो क. । २. नष्टयोनिजवेदाना म. ।

यदा निधनमस्यैव केवलस्य तदा सति । उच्चैराक्रन्दितुं युक्त न सामान्ये पराभवे ॥१५॥
यदैव हि जनो जातो मृत्युनाधिष्ठितस्तदा । तत्र साधारणे धर्मे ध्रुवे किमिति शोच्यते ॥१६॥
अभीष्टसंगमाकाङ्क्षी मुधा शुष्यति शोकवान् । शवरार्त्त इवारण्ये चमरः केशलोमतः ॥१७॥
सर्वैरेभिर्यदास्माभिरितो गम्यं वियोगतः । तदा किं क्रियते शोक प्रथमं तत्र निर्गते ॥१८॥
लोकस्य साहसं पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुरः । मृत्योर्वज्राग्रदण्डस्य सिंहस्येव कुरङ्गकः ॥१९॥
लोकनाथं विमुच्यैक कश्चिदन्यः श्रुतस्त्वया । पाताले भूतले वा यो न जातो मृत्युनार्दितः ॥२०॥
संसारमण्डलापन्नं दह्यमानं सुगन्धिना । सदा च विन्ध्यदावाभं भुवनं किं न वीक्षसे ॥२१॥
पर्यट्य भवकान्तार प्राप्य [1]कामभुजिष्यताम् । मत्तद्विपा इवायान्ति कालपाशस्य वश्यताम् ॥२२॥
धर्ममार्गं समासाद्य गतोऽपि त्रिदशालयम् । अशाश्वततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ॥२३॥
सुरमानवनाथानां चया. शतसहस्रशः । निधनं समुपानीताः कालमेघेन वह्नयः ॥२४॥
दूरमम्बरमुल्लङ्घ्य समापत्य रसातलम् । स्थानं [2]तन्न प्रपश्यामि [3]यन्न मृत्योरगोचरः[4] ॥२५॥
षष्ठकालक्षये सर्वं क्षीयते भारतं जगत् । धराधरा विशीर्यन्ते मर्त्यकाये तु का कथा ॥२६॥
वज्रर्षभवपुर्वद्धा [5]अप्यवध्याः सुरासुरैः । नन्वनित्यतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ॥२७॥

प्रति क्यो शोक करता है ? यह मृत्युकी डांढोके बीच क्लेश उठानेवाले अपने आपके प्रति शोक क्यों नही करता ? ॥१४॥ यदि इन्ही एकका मरण होता तब तो जोरसे रोना उचित था परन्तु जब यह मरण सम्बन्धी पराभव सबके लिए समानरूपसे प्राप्त होता है तब रोना उचित नही है ॥१५॥ जिस समय यह प्राणी उत्पन्न होता है उसी समय मृत्यु इसे आ घेरती है। इस तरह जब मृत्यु सबके लिए साधारण धर्म है तब शोक क्यो किया जाता है ? ॥१६॥ जिस प्रकार जंगलमे भीलके द्वारा पीड़ित चमरी मृग—बालोके लोभसे दुःख उठाता है उसी प्रकार इष्ट पदार्थोके समागमकी आकांक्षा रखनेवाला यह प्राणी शोक करता हुआ व्यर्थं ही दुःख उठाता है ॥१७॥ जब हम सभी लोगोको वियुक्त होकर यहाँसे जाना है तब सर्वप्रथम उनके चले जानेपर शोक क्यों किया जा रहा है ? ॥१८॥ अरे, इस प्राणीका साहस तो देखो जो यह सिंहके सामने मृगके समान वज्रदण्डके धारक यमके आगे निर्भय होकर बैठा है ॥१९॥ एक लक्ष्मीधर-को छोड़कर समस्त पाताल अथवा पृथिवीतल पर किसी ऐसे दूसरेका नाम आपने सुना कि जो मृत्युसे पीड़ित नही हुआ हो ॥२०॥ जिस प्रकार सुगन्धिसे उपलक्षित विन्ध्याचलका वन, दावानलसे जलता है उसी प्रकार संसारके चक्रको प्राप्त हुआ यह जगत् कालानलसे जल रहा है, यह क्या आप नही देख रहे हैं ? ॥२१॥ संसाररूपी अटवीमे घूमकर तथा कामकी आधीनता प्राप्तकर ये प्राणी मदोन्मत्त हाथियोके समान कालपाशकी आधीनताको प्राप्त करते है ॥२२॥ यह प्राणी धर्मका मार्ग प्राप्तकर यद्यपि स्वर्ग पहुँच जाता है तथापि नश्वरताके द्वारा उस तरह नीचे गिरा दिया जाता है जिस प्रकार कि नदीके द्वारा तटका वृक्ष ॥२३॥ जिस प्रकार प्रलय-कालीन मेघके द्वारा अग्नियाँ नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार नरेन्द्र और देवेन्द्रोके लाखो समूह कालरूपी मेघके द्वारा नाशको प्राप्त हो चुके है ॥२४॥ आकाशमे बहुत दूर तक उड़कर और नीचे रसातलमे बहुत दूर तक जाकर भी मै उस स्थानको नही देख सका हूँ जो मृत्युका अगोचर न हो ॥२५॥ छठवें कालकी समाप्ति होनेपर यह समस्त भारतवर्ष नष्ट हो जाता है और बड़े-बड़े पर्वत भी विशीर्ण हो जाते है तब फिर मनुष्यके शरीरकी तो कथा ही क्या है ? ॥२६॥ जो वज्रमय शरीरसे युक्त थे तथा सुर और असुर भी जिन्हे मार नही सकते थे ऐसे लोगोको भी अनित्यताने प्राप्त कर लिया है फिर केलेके भीतरी भागके समान निःसार मनुष्योकी तो बात ही

१. मदनपारवश्यम् । २. तत्र म । ३. यत्र म. । ४. 'यत्र मृत्युरगोचर.' इति शुद्धं प्रतिभाति । ५. अप्यवन्ध्या म. ।

जनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिनम् । पातालान्तर्गतं यद्वत् काद्रवेयं[1] द्विजोत्तमः[2] ॥२८॥
हा भ्रातर्दयिते पुत्रेत्येवं क्रन्दन् सुदुःखितः । कालाहिना जगद्भेको ग्रासतामुपनीयते ॥२९॥
करोम्येतत्करिष्यामि वदत्येवमनिष्टधीः । जनो विशति कालास्यं भीमं पोत इवार्णवम् ॥३०॥
जनं भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेज्जनो यदि । द्विष्टैरिष्टैश्च नौ जातु जायेत विरहस्ततः ॥३१॥
परे स्वजनमानी यः कुरुते स्नेहसम्मतिम् । विशति क्लेशवह्निं स मनुष्यकलभो ध्रुवम् ॥३२॥
स्वजनौघाः परिप्राप्ताः संसारे येऽसुधारिणाम् । सिन्धुसैकतसंघाता अपि सन्ति न तत्समाः ॥३३॥
य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा । स एव रिपुतां प्राप्तो हन्यते तु महारुषा ॥३४॥
पीतौ पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे । त्रस्ताहतस्य तस्यैव खाद्यते मांसमत्र धिक् ॥३५॥
स्वामीति पूजितः पूर्वं यः शिरोनमनादिभिः । स एव दासतां प्राप्तो हन्यते पादताडनैः ॥३६॥
विभोः पश्यत मोहस्य [3]शक्तिं येन वशीकृतः । जनोऽन्विष्यति संयोग हस्तेनेव महोरगम् ॥३७॥
प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि विष्टपे न स विद्यते । यत्र जीवः परिप्राप्तो न मृत्युं जनिमेव वा ॥३८॥
ताम्रादिकलिलं पीतं जीवेन नरकेषु यत् । [4]स्वयम्भूरमणे तावत् सलिलं न हि विद्यते ॥३९॥
वराहभवयुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृतः । मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशोऽत्यन्तदूरतः ॥४०॥
परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्द्धसंहतिः । ज्योतिषां मार्गमुल्लङ्घ्य यायात्सा यदि रुध्यते ॥४१॥

क्या है ? ॥२७॥ जिस प्रकार पातालके अन्दर छिपे हुए नागको गरुड़ खीच लेता है उसी प्रकार मातासे आलिंगित प्राणीको भी मृत्यु हर लेती है ॥२८॥ हाय भाई ! हाय प्रिये ! हाय पुत्र ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ यह अत्यन्त दुःखी संसाररूपी मेंढक, कालरूपी साँपके द्वारा अपना ग्रास बना लिया जाता है ॥२९॥ 'मै यह कर रहा हूँ और यह आगे करूँगा' इस प्रकार दुर्बुद्धि मनुष्य कहता रहता है फिर भी यमराजके भयंकर मुखमे उस तरह प्रवेश कर जाता है जिस तरह कि कोई जहाज समुद्रके भीतर ॥३०॥ यदि भवान्तरमे गये हुए मनुष्यके पीछे यहाँके लोग जाने लगें तो फिर शत्रु मित्र—किसीके भी साथ कभी वियोग ही न हो ॥३१॥ जो परको स्वजन मानकर उसके साथ स्नेह करता है वह नरकुंजर अवश्य ही दुःखरूपी अग्निमे प्रवेश करता है ॥३२॥ संसारमे प्राणियोंको जितने आत्मीयजनोंके समूह प्राप्त हुए हैं समस्त समुद्रोकी बालूके कण भी उनके बराबर नही हैं। भावार्थ—असंख्यात समुद्रोमे बालूके जितने कण हैं उनसे भी अधिक इस जीवके आत्मीयजन हो चुके है ॥३३॥ नाना प्रकारकी प्रियचेष्टाओको करनेवाला यह प्राणी, अन्य भवमें जिसका बड़े लाड़-प्यारसे लालन-पालन करता है वही दूसरे भवमे इसका शत्रु हो जाता है और तीव्र क्रोधको धारण करनेवाले उसी प्राणीके द्वारा मारा जाता है ॥३४॥ जन्मान्तरमे जिस प्राणीके स्तन पिये है, इस जन्ममे भयभीत एवं मारे हुए उसी जीवका मास खाया जाता है, ऐसे संसारको धिक्कार है ॥३५॥ 'यह हमारा स्वामी है' ऐसा मानकर जिसे पहले शिरोनमन—फिर झुकाना आदि विनयपूर्ण क्रियाओसे पूजित किया था वही इस जन्ममे दासताको प्राप्त होकर लातोसे पीटा जाता है ॥३६॥ अहो ! इस सामर्थ्यवान् मोहकी शक्ति तो देखो जिसके द्वारा वशीभूत हुआ यह प्राणी इष्टजनोके संयोगको उस तरह ढूँढ़ता फिरता है जिस तरह कि कोई हाथसे महानागको ॥३७॥ इस संसारमे तिलमात्र भी वह स्थान नही है जहाँ यह जीव मृत्यु अथवा जन्मको प्राप्त नही हुआ हो ॥३८॥ इस जीवने नरकोमे ताँबा आदिका जितना पिघला हुआ रस पिया है उतना स्वयंभूरमण समुद्रमे पानी भी नही है ॥३९॥ इस जीवने सूकरका भव धारणकर जितने विष्ठाको अपना भोजन बनाया है मै समझता हूँ कि वह हजारो विन्ध्याचलोसे भी कही बहुत अधिक अत्यन्त ऊँचा होगा ॥४०॥ इस जीवने परस्पर

---

१. सर्पम् । २. गरुडः । ३. भक्तिर्येन म. । ४. स्वयम्भूरमणो म. ।

शर्कराधरणीयातैर्दुःखं प्राप्तमनुत्तमम् । श्रुत्वा तत्कस्य रोचेत मोहेन सह मित्रता ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

यस्य कृतेऽपि [1]निमेषं नेच्छति दुःखानि विषयसुखसक्तः ।
पर्यटति च संसारे ग्रस्तो मोहग्रहेण मत्तवदात्मा ॥४३॥
एतद् दग्धशरीरं युक्तं त्यक्तुं कषायचिन्तायासम् ।
अन्यस्मादन्यतर[2] किं पुनरीदृग्विधं कलेवरमारम् ॥४४॥
इत्युक्तोऽपि विविक्तं खेचररविणा विपश्चिता रामः ।
नोज्झति लक्ष्मणमूर्त्तिं गुरोरिवाज्ञां विनीतात्मा ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लक्ष्मणवियोगविभीषणसंसारस्थितिवर्णनं नाम
सप्तदशोत्तरशतं पर्व ॥११७॥



एक दूसरेको मारकर जो मस्तकोका समूह काटा है यदि उसे एक जगह रोका जाय—एक स्थान-पर इकट्ठा किया जाय तो वह ज्योतिषी देवोके मार्गको भी उल्लघन कर आगे जा सकता है ॥४१॥ नरक-भूमिमे गये हुए जीवोने जो भारी दु.ख उठाया है उसे सुन मोहके साथ मित्रता करना किसे अच्छा लगेगा ? ॥४२॥ विषय-सुखमे आसक्त हुआ यह प्राणी जिस शरीरके पीछे पलभरके लिए भी दु.ख नही उठाना चाहता तथा मोहरूपी ग्रहसे ग्रस्त हुआ पागलके समान संसारमे भ्रमण करता रहता है, ऐसे कषाय और चिन्तासे खेद उत्पन्न करनेवाले इस शरीरको छोड देना ही उचित है क्योकि इनका यह ऐसा शरीर क्या अन्य शरीरसे भिन्न है—विलक्षण है ? ॥४३-४४॥ गौतम स्वामी कहते है कि विद्याधरोमे सूर्य स्वरूप बुद्धिमान् विभीषणने यद्यपि रामको इस तरह बहुत कुछ समझाया था तथापि उन्होने लक्ष्मणका शरीर उस तरह नही छोड़ा जिस तरह कि विनयी शिष्य गुरुकी आज्ञा नही छोड़ता है ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्रीरविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके
वियोगको लेकर विभीषणके द्वारा ससारकी स्थितिका वर्णन करनेवाला
एक सौ सत्रहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११७॥



१. निमिषं दु.खानि म. । २. -दन्यतरं पुनरीदृग् म ।

अष्टादशोत्तरशतं पर्व

सुग्रीवाद्यैस्ततो भूपैर्विज्ञप्तं देव साम्प्रतम् । चितां कुर्मो नरेन्द्रस्य देहं संस्कारमापय ॥१॥
कलुषात्मा जगादासौ मातृभिः पितृभिः समम् । चितायामाशु दह्यन्तां भवन्तः सपितामहाः ॥२॥
य. कश्चिद् विद्यते बन्धुर्युष्माकं पापचेतसाम् । भवन्त एव तेनामा व्रजन्तु निधनं द्रुतम् ॥३॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गच्छामः प्रदेशं लक्ष्मणापरम् । श्रृणुमो नेदृशं यत्र खलानां कटुकं वचः ॥४॥
एवमुक्त्वा तनुं भ्रातुर्जिघृक्षोरस्य सत्वरम् । पृष्ठस्कन्धादि राजानो ददुः संभ्रमवर्तिन. ॥५॥
अविश्वसन् स तेभ्यस्तु स्वयमादाय लक्ष्मणम् । प्रदेशमपरं यातः शिशुर्विषफलं यथा ॥६॥
जगौ वाष्पपरीताक्षो भ्रातः किं सुप्यते चिरम् । उत्तिष्ठ वर्त्तते वेला स्नानभूमिर्निषेव्यताम् ॥७॥
इत्युक्त्वा तं मृतं कृत्वा साश्रये स्नानविष्टरे । अभ्यषिञ्चन्महामोहो हेमकुम्भाम्भसा चिरम् ॥८॥
अलंकृत्य च निःशेषभूषणैर्मुकुटादिभिः । सदाज्ञोऽज्ञापयत् क्षिप्रं भुक्तिभूसत्कृतानिति ॥९॥
नानारत्नशरीराणि जाम्बूनदमयानि च । भाजनानि विधीयन्तां अन्नं चानीयतां परम् ॥१०॥
समुपाह्रियतामच्छा वाढं कादम्बरी वरा । विचित्रमुपदंशं[1] च रसबोधनकारणम् ॥११॥
एवमाज्ञां समासाद्य परिवर्गेण सादरम् । तथाविधं कृतं सर्वं नाथबुद्ध्यनुवर्त्तिना ॥१२॥
[2]लक्ष्मणस्यान्तरास्यस्य राघवः पिण्डमादधे । न त्वविक्षज्जिनेन्द्रोक्तमभव्यश्रवणे यथा ॥१३॥

अथानन्तर सुग्रीव आदि राजाओने कहा कि हे देव ! हम लोग चिता बनाते हैं सो उसपर राजा लक्ष्मीधरके शरीरको सस्कार प्राप्त कराइए ॥१॥ इसके उत्तरमे कुपित होकर रामने कहा कि चितापर माताओ, पिताओ और पितामहोके साथ आप लोग ही जले ॥२॥ अथवा पाप पूर्ण विचार रखनेवाले आप लोगोका जो भी कोई इष्ट बन्धु हो उसके साथ आप लोग ही शीघ्र मृत्युको प्राप्त हों ॥३॥ इस प्रकार अन्य सब राजाओको उत्तर देकर वे लक्ष्मणके प्रति बोले कि भाई लक्ष्मण ! उठो, उठो, चलो दूसरे स्थानपर चले । जहाँ दुष्टोके ऐसे वचन नही सुनने पड़े ॥४॥ इतना कहकर वे शीघ्र ही भाईका शरीर उठाने लगे तब घबड़ाये हुए राजाओने उन्हे पीठ तथा कन्धा आदिका सहारा दिया ॥५॥ राम, उन सबका विश्वास नही रखते थे इसलिए स्वय अकेले ही लक्ष्मणको लेकर उस तरह दूसरे स्थानपर चले गये जिस तरह कि बालक विषफलको लेकर चला जाता है ॥६॥ वहाँ वे नेत्रोमे आँसू भरकर कहे कि भाई ! इतनी देर क्यो सोते हो ? उठो, समय हो गया, स्नान-भूमिमे चलो ॥७॥ इतना कहकर उन्होने मृत लक्ष्मणको आश्रय-सहित (टिकनेके उपकरणसे सहित) स्नानकी चौकीपर बैठा दिया और स्वय महामोहसे युक्त हो सुवर्णकलशमे रखे जलसे चिरकाल उसका अभिषेक करते रहे ॥८॥ तदनन्तर मुकुट आदि समस्त आभूषणोंसे अलंकृत कर, भोजन-गृहके अधिकारियोंको शीघ्र ही आज्ञा दिलायी कि नाना रत्नमय एवं स्वर्णमय पात्र इकट्ठे कर उनमे उत्तम भोजन लाया जाय ॥९–१०॥ उत्तम एव स्वच्छ मदिरा लायी जाय तथा रससे भरे हुए नाना प्रकारके स्वादिष्ट व्यंजन उपस्थित किये जावे। इस प्रकार आज्ञा पाकर स्वामीकी इच्छानुसार काम करनेवाले सेवकोने आदरपूर्वक सब सामग्री लाकर रख दी ॥११–१२॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके मुखके भीतर भोजनका ग्रास रखा। पर वह उस तरह भीतर प्रविष्ट नही हो सका, जिस तरह कि जिनेन्द्र भगवान्‌का वचन अभव्यके कानमे प्रविष्ट

---

१. व्यञ्जनम् । २. लक्ष्मणस्य + अन्तर् + आस्यस्य इतिच्छेदः ।

ततोऽगदद् यदि क्रोधो मयि देव कृतस्त्वया । ततोऽस्यात्र किमायातममृतस्वादिनोऽन्धसः ॥१४॥
इयं श्रीधर ते नित्यं दयिता मदिरोत्तमा । इमां तावत् पिब न्यस्तां चषके विकचोत्पले ॥१५॥
इत्युक्त्वा तां मुखे न्यस्य चकार सुमहादरः । कथं विशतु सा तत्र चार्वी संक्रान्तचेतने ॥१६॥
इत्यशेषं क्रियाजातं जीवतीव स लक्ष्मणे । चकार स्नेहमूढात्मा मोघं निर्वेदवर्जितः ॥१७॥
गीतैः स चारुभिर्वेणुवीणानिस्वनसंगमैः । परासुरपि रामाज्ञां प्रापितामापच्च लक्ष्मण. ॥१८॥
चन्दनार्चितदेहं तं दोर्भ्यामुद्यम्य सस्पृहः । कृत्वाङ्के मस्तकेऽचुम्बत् पुनर्गण्डे पुन. करे ॥१९॥
अयि लक्ष्मण किन्ते स्यादिदं संजातमीदृशम् । न येन मुञ्चसे निद्रां सकृदेव निवेदय ॥२०॥
इति स्नेहग्रहाविष्टे यावद्रेष विचेष्टते । महामोहकृताश्लेषे कर्मण्युदयमागते ॥२१॥
तावद्विदितवृत्तान्ता रिपवः क्षोभमागता । परे तेजसि कालास्ते गर्जन्तो विषदा इव ॥२२॥
विरोधिताशया दूरं सामर्षा सुन्दनन्दनम् । चारुरत्नाख्यमाजग्मुरसौ कुलिशमालिनम् ॥२३॥
ऊचे च [1]मद्गुरोर्येन मीत्वा सोदरकारकौ । पातालनगरे चास्तौ राज्येऽस्थापि विराधितः ॥२४॥
वानरध्वजिनीचन्द्रं सुग्रीवं प्राप्य बान्धवम् । उदन्तोऽलम्भि कान्ताया रामेणार्त्तिमता ततः ॥२५॥
उदन्वन्तं समुल्लङ्घ्य नभोगैर्यानवाहनैः । द्वीपा विध्वंसितास्तेन लङ्कां जेतुं युयुत्सुना ॥२६॥

नहीं होता है ॥१३॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि हे देव! तुम्हारा मुझपर क्रोध है तो यहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट इस भोजनने क्या बिगाड़ा? इसे तो ग्रहण करो ॥१४॥ हे लक्ष्मीधर! तुम्हे यह उत्तम मदिरा निरन्तर प्रिय रहती थी सो खिले हुए नील कमलसे सुशोभित पान-पात्रमे रखी हुई इस मदिराको पिओ ॥१५॥ ऐसा कहकर उन्होने बड़े आदरके साथ वह मदिरा उनके मुखमे रख दी पर वह सुन्दर मदिरा निश्चेतन मुखमे कैसे प्रवेश करती ॥१६॥ इस प्रकार जिनकी आत्मा स्नेहसे मूढ थी तथा जो वैराग्यसे रहित थे ऐसे रामने जीवित दशाके समान लक्ष्मणके विषयमे व्यर्थ ही समस्त क्रियाएँ की ॥१७॥ यद्यपि लक्ष्मण निष्प्राण हो चुके थे तथापि रामने उनके आगे वीणा बाँसुरी आदिके शब्दोसे सहित सुन्दर संगीत कराया ॥१८॥ तदनन्तर जिसका शरीर चन्दनसे चर्चित था ऐसे लक्ष्मणको बड़ी इच्छाके साथ दोनो भुजाओसे उठाकर रामने अपनी गोदमे रख लिया और उनके मस्तक कपोल तथा हाथका बार-बार चुम्बन किया ॥१९॥ वे उनसे कहते कि हे लक्ष्मण, तुझे यह ऐसा हो क्या गया जिससे तू नीद नही छोड़ता, एक बार तो बता ॥२०॥ इस प्रकार महामोहसे सम्बद्ध कर्मका उदय आनेपर स्नेहरूपी पिशाचसे आक्रान्त राम जब तक यहाँ यह चेष्टा करते है तब तक वहाँ यह वृतान्त जान शत्रु उस तरह क्षोभको प्राप्त हो गये जिस तरह कि परम तेज अर्थात् सूर्यको आच्छादित करनेके लिए गरजते हुए काले मेघ ॥२१-२२॥ जिनके अभिप्रायमे बहुत दूर तक विरोध समाया हुआ था तथा जो अत्यधिक क्रोधसे सहित थे ऐसे शत्रु, शम्बूकके भाई सुन्दके पुत्र चारुरत्नके पास गये और चारुरत्न उन सबको साथ ले इन्द्रजित्के पुत्र वज्रमालीके पास गया ॥२३॥ उसे उत्तेजित करता हुआ चारुरत्न बोला कि लक्ष्मणने हमारे काका और बाबा दोनोंको मारकर पाताल-लंकाके राज्यपर विराधितको स्थापित किया ॥२४॥ तदनन्तर वानरवंशियोकी सेनाको हर्षित करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप एवं भाईके समान हितकारी सुग्रीवको पाकर विरहसे पीड़ित रामने अपनी स्त्री सीताका समाचार प्राप्त किया ॥२५॥ तत्पश्चात् लंकाको जीतनेके लिए युद्ध करनेके इच्छुक रामने विद्याधरोके साथ विमानो द्वारा समुद्रको लाँघकर अनेक द्वीप

---

१ मद्गुरौ येन नीत्वा सोदरकारकौ म. । मीत्वा = हत्वा, सोदरकारकौ मम भ्रातृजनकौ श्री. टि., मम गुरु. सुन्दस्तस्य सोदरम् ।

सिंहताक्ष्यमहाविद्ये रामलक्ष्मणयोस्तयोः । उत्पन्ने वन्दितां नीतास्ताभ्यामिन्द्रजिदादयः ॥२७॥
चक्ररत्नं समासाद्य येनाघाति दशाननः । अधुना कालचक्रेण लक्ष्मणोऽसौ निपातितः ॥२८॥
आसंस्तस्य भुजच्छायां श्रित्वा मत्ता प्लवङ्गमाः । साम्प्रतं लूनपक्षास्ते परमास्कन्द्यतां गताः ॥२९॥
अद्यास्ति द्वादशः पक्षो राघवस्येयुषः शुचम् । प्रेताङ्गं वहमानस्य व्यामोहः कोऽपरोऽस्त्वतः ॥३०॥
यद्यप्यप्रतिमल्लोऽसौ हलरत्नादिमर्दनः । तथापि लङ्घितुं शक्यः शोकपङ्कगतोऽभवत् ॥३१॥
तस्यैव बिभिमस्त्वस्य न जात्वन्यस्य कस्यचित् । यस्यानुजेन विध्वस्ता सर्वास्मद्वंशसंगतिः ॥३२॥
अथैन्द्रजिविराकर्ण्य व्यसनं स्वोरुगोत्रजम् । प्रतिद्यासितमार्गेण जज्वाल क्षुब्धमानसः ॥३३॥
आज्ञाप्य सचिवान् सर्वान् भेर्या संयति राजितान् । प्रययौ प्रति साकेतं सुन्दतोकसमन्वितः ॥३४॥
सैन्याकूपारगुप्तौ तौ सुग्रीवं प्रति कोपितौ[१] । पद्मनाभमयासिष्टां प्रकोपयितुमुद्यतौ ॥३५॥
वज्रमालिनमायातं श्रुत्वा सौन्दिसमन्वितम् । सर्वे विद्याधराधीशा रघुचन्द्रमशिश्रियन् ॥३६॥
वितानतां परिप्राप्ता क्षुब्धायोध्या समन्ततः । लवणाङ्कुशयोर्यद्वदागमे भीतिवेपिता ॥३७॥
अरातिसैन्यमभ्यर्णमालोक्य रघुभास्करः । कृत्वाङ्के लक्ष्मणं सत्वं वहमानस्तथाविधम् ॥३८॥
उपनीतं समं बाणैर्वज्रावर्त्तमहाधनुः । आलोकत स्वभावस्थं कृतान्तभ्रूलतोपमम् ॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे नाके जातो विष्टरवेपथुः । कृतान्तवक्त्रदेवस्य जटायुस्त्रिदशस्य च ॥४०॥

नष्ट किये ॥२६॥ राम-लक्ष्मणको सिंहवाहिनी एवं गरुड़वाहिनी नामक विद्याएँ प्राप्त हुईं। उनके प्रभावसे उन्होने इन्द्रजित आदिको वन्दी बनाया ॥२७॥ तथा जिस लक्ष्मणने चक्ररत्न पाकर रावणको मारा था इस समय वही लक्ष्मण कालके चक्रसे मारा गया है ॥२८॥ उसकी भुजाओकी छाया पाकर वानरवंशी उन्मत्त हो रहे थे पर इस समय वे पक्ष कट जानेसे अत्यन्त आक्रमणके योग्य अवस्थाको प्राप्त हुए है; शोकको प्राप्त हुए रामको आज बारहवाँ पक्ष है वे लक्ष्मणके मृतक शरीरको लिये फिरते हैं अतः कोई विचित्र प्रकारका मोह—पागलपन उनपर सवार है ॥२९–३०॥ यद्यपि हल-मुसल आदि शस्त्रोको धारण करनेवाले राम अपनी सानी नही रखते तथापि इस समय शोकरूपी पंकमे फँसे होनेके कारण उनपर आक्रमण करना शक्य है ॥३१॥ यदि हमलोग डरते हैं तो एक उन्हींसे डरते हैं और किसीसे नही जिनके कि छोटे भाई लक्ष्मणने हमारे वंशकी सब संगति नष्ट कर दी ॥३२॥

अथानन्तर इन्द्रजित्का पुत्र वज्रमाली अपने विशाल वंशपर उत्पन्न पूर्व संकटको सुनकर क्षुभित हो उठा और प्रसिद्ध मार्गसे प्रज्वलित होने लगा अर्थात् क्षत्रिय कुल प्रसिद्ध तेजसे दमकने लगा ॥३३॥ वह मन्त्रियोको आज्ञा दे तथा भेरीके द्वारा सब लोगोंको युद्धमे इकट्ठाकर सुन्दपुत्र चारुरत्नके साथ अयोध्याकी ओर चला ॥३४॥ जो सेनारूपी समुद्रसे सुरक्षित थे तथा सुग्रीवके प्रति जिनका क्रोध उमड़ रहा था ऐसे वे दोनों—वज्रमाली और चारुरत्न, रामको कुपित करनेके लिए उद्यत हो उनकी ओर चले ॥३५॥ चारुरत्नके साथ वज्रमालीको आया सुन सब विद्याधर राजा रामचन्द्रके पास आये ॥३६॥ उस समय अयोध्या किंकर्तव्यमूढ़ताको प्राप्त हो सब ओरसे क्षुभित हो उठी तथा जिस प्रकार लवणांकुशके आनेपर भयसे काँपने लगी थी उसी प्रकार भयसे काँपने लगी ॥३७॥ अनुपम पराक्रमको धारण करनेवाले रामने जब शत्रुसेनाको निकट देखा तब वे मृत लक्ष्मणको गोदमे रख बाणोके साथ लाये हुए उस वज्रावर्त नामक महाधनुषकी ओर देखने लगे कि जो अपने स्वभावमें स्थित था तथा यमराजकी भ्रुकुटिरूपी लताके समान कुटिल था ॥३८–३९॥

इसी समय स्वर्गमे कृतान्तवक्त्र सेनापति तथा जटायु पक्षीके जीव जो देव हुए थे उनके

१. कोपिनौ म.।

विमाने यत्र संभूतो जटायुस्त्रिदशोत्तमः । तस्मिन्नेव कृतान्तोऽपि तस्यैव विभुतां गतः ॥४१॥
कृतान्तस्त्रिदशोऽवोचद् सो गीर्वाणपते कुतः । इमं यातोऽसि संरम्भं सोऽगदद्योजितावधिः ॥४२॥
यदाहमभवं गृध्रस्तदा येनेष्टपुत्रवत् । लालितः शोकतप्तं तमेति शत्रुबलं महत् ॥४३॥
ततः कृतान्तदेवोऽपि प्रयुज्यावधिलोचनम् । अधोभूयिष्ठदुःखार्त्तो बभाषे चातिभासुरः ॥४४॥
सखे सत्यं ममाप्येष प्रभुरासीत् सुवत्सलः । प्रसादादस्य भूपृष्ठे कृतं दुर्लडितं मया ॥४५॥
भाषितश्चाहमेतेन गहनात्परमोचनम् । तदिदं जातमेतस्य तदेह्येनमितो लघु ॥४६॥
इत्युक्त्वा प्रचलन्नीलकेशकुन्तलसंहती[1] । स्फुरत्किरीटभाचक्रौ विलसन्मणिकुण्डलौ ॥४७॥
माहेन्द्रकल्पतो देवौ श्रीमन्तौ प्रति कोसलाम् । जग्मतुः परमोद्योगौ प्रतिपक्षविचक्षणौ ॥४८॥
सामानिकं कृतान्तोऽगाद् व्रज त्वं द्विषतां बलम् । विमोहय रघुश्रेष्ठं रक्षितुं[2] तु व्रजाम्यहम् ॥४९॥
ततो जटायुर्गीर्वाणः कामरूपविवर्त्तकृत् । सुधीरुदारमत्यन्तं परसैन्यममोहयत् ॥५०॥
आगच्छतामरातीनामयोध्यामीक्षितां पुरः । पुनः प्रदर्शयामास पर्वतं पृष्ठतः पुनः ॥५१॥
निरस्याराद्धीर्वास्तां शत्रुखेचरवाहिनीम् । आरेभे रोदसी व्याप्तुमयोध्याभिरनन्तरम् ॥५२॥
अयोध्यैषा विनीतेयमियं सा कोशला पुरी । अहो सर्वमिदं जातं नगरीगहनात्मकम् ॥५३॥
इति वीक्ष्य महीपृष्ठं खं चायोध्यासमाकुलम् । मानोन्नत्या वियुक्तं तद्वीक्ष्यापन्नमभूद्बलम् ॥५४॥

आसन कम्पायमान हुए ॥४०॥ जिस विमानमे जटायुका जीव उत्तम देव हुआ था उसी विमानमे कृतान्तवक्त्र भी उसीके समान वैभवका धारी देव हुआ था ॥४१॥ कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवसे कहा कि हे देवराज! आज इस क्रोधको क्यो प्राप्त हुए हो? इसके उत्तरमे अवधिज्ञानको जोड़नेवाले जटायुके जीवने कहा कि जब मै गृध्र पर्यायमे था तब जिसने प्रिय पुत्रके समान मेरा लालन-पालन किया था आज उसके सम्मुख शत्रुकी बड़ी भारी सेना आ रही है और वह स्वयं भाईके मरणसे शोक-सन्तप्त है ॥४२-४३॥ तदनन्तर कृतान्तवक्त्रके जीवने भी अवधिज्ञानरूपी लोचनका प्रयोग कर नीचे होनेवाले अत्यधिक दुःखसे दुःखी तथा क्रोधसे देदीप्यमान होते हुए कहा कि मित्र, सच है वह हमारा भी स्नेही स्वामी रहा है। इसके प्रसादसे मैने पृथिवीतलपर अनेक दुर्दान्त चेष्टाएँ की थी ॥४४-४५॥ इसने मुझसे कहा भी था कि संकटसे मुझे छुड़ाना। आज वह संकट इसे प्राप्त हुआ है इसलिए आओ शीघ्र ही इसके पास चलें ॥४६॥ इतना कहकर जिनके काले-काले केश तथा कुन्तलोका समूह हिल रहा था, जिनके मुकुटोंका कान्तिचक्र देदीप्यमान हो रहा था, जिनके मणिमय कुण्डल सुशोभित थे, जो परम उद्योगी थे तथा शत्रुका पक्ष नष्ट करनेमे निपुण थे ऐसे वे दोनो श्रीमान् देव, माहेन्द्र स्वर्गसे अयोध्याकी ओर चले ॥४७-४८॥ कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवसे कहा कि तुम तो जाकर शत्रु सेनाको मोहित करो—उसकी बुद्धि भ्रष्ट करो और मै रामकी रक्षा करनेके लिए जाता हूँ ॥४९॥ तदनन्तर इच्छानुसार रूपपरिवर्तित करनेवाले बुद्धिमान् जटायुके जीवने शत्रुकी उस बड़ी भारी सेनाको मोहयुक्त कर दिया—भ्रममे डाल दिया ॥५०॥ 'यह अयोध्या दिख रही है' ऐसा सोचकर जो शत्रु उसके समीप आ रहे थे उस देवने मायासे उनके आगे और पीछे बड़े-बड़े पर्वत दिखलाये। तदनन्तर अयोध्याके निकट खड़े होकर उसने शत्रु विद्याधरोकी समस्त सेनाका निराकरण किया और पृथिवी तथा आकाश दोनोको अयोध्या नगरियोसे अविरल व्याप्त करना शुरू किया ॥५१-५२॥ जिससे यह अयोध्या है, यह विनीता है, यह कोशलापुरी है, इस तरह वहाँकी समस्त भूमि और आकाश अयोध्या नगरियोसे तन्मय हो गयी ॥५३॥ इस प्रकार

---

१. संहरी म.। २. रक्षंत तु म., ज.।

वयमद्याधुना केन प्रकारेण स्वजीवितम् । धारयामः परा यत्र काप्येषा रामदेवता ॥५५॥
ईदृशी विक्रिया शक्तिः कुतो विद्याधरर्द्धिषु । किमिदं कृतमस्माभिरनालोचितकारिभिः ॥५६॥
विरुद्धा अपि हंसस्य[1] खद्योताः किं नु कुर्वते । यस्याभीषुसहस्राप्तं परिभ्राजत्यगं जगत् ॥५७॥
प्रपलायितुकामानामपि नः साम्प्रतं सखे । नास्ति मार्गः सुभीमेऽस्मिन्बले स्तृणाति विष्टपम् ॥५८॥
महान्न मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानवः । कदाचिदेति कल्याणं स्वकर्मपरिपाकतः ॥५९॥
बुद्बुदा इव यद्यस्मिन्नर्मभिः सैनिकोर्मिभिः । आनीताः स्म प्रविध्वंसं किं भवेदर्जितं ततः ॥६०॥
इत्यन्योन्यकृतालापसमुद्भूतपृथुवेपथु[2] । विद्याधरबलं सर्वं जातमत्यन्तविह्वलम् ॥६१॥
विक्रियाक्रीडनं कृत्वा जटायुरिति पार्थिव । पलायनपथं तेषां दक्षिणं कृपया ददौ ॥६२॥
प्रस्पन्दमानचित्तास्ते कम्पमानशरीरकाः । भृशं ते खेचरा नेशुः श्येनत्रस्ता द्विजा इव ॥६३॥
तस्मै विभीषणायाग्रे दास्यामो नु किमुत्तरम् । का वा शोभाधुनास्माकमत्यन्तोपहतात्मनाम् ॥६४॥
छायया दर्शयिष्यामः कया वक्त्रं स्वदेहिनाम् । कुतो वा धृतिरस्माकं का वा जीवितशेमुषी ॥६५॥
अवधार्येति सव्रीडस्तस्मिन्निन्द्रजिदात्मजः । प्राप्तो विरागमैश्वर्ये विभूतिं वीक्ष्य दैविकीम् ॥६६॥
समेतश्चारुरत्नेन स्निग्धकैश्च समूहिभिः । रतिवेगमुनेः पार्श्वे विकोपः श्रमणोऽभवत् ॥६७॥
दृष्ट्वानन्तरदेहांस्तान्निर्मुक्तकलुषान्नृपान् । विद्युत्प्रहरणं देव समहार्षीन्न भीषणः ॥६८॥

पृथिवी और आकाश दोनोंको अयोध्यावासे व्याप्त देखकर शत्रुओंकी वह सेना अभिमानसे रहित हो आपत्तिमें पड़ गयी ॥५४॥ सेनाके लोग परस्पर कहने लगे कि जहाँ यह राम नामका कोई अद्‌भुत देव विद्यमान है वहाँ अब हम अपने प्राण किस तरह धारण करें—जीवित कैसे रहें ? ॥५५॥ विद्याधरोंकी ऋद्धियोंमें ऐसी विक्रिया शक्ति कहाँसे आयी ? बिना विचारे काम करनेवाले हम लोगोंने यह क्या किया ? ॥५६॥ जिसकी हजार किरणोंसे व्याप्त हुआ जगत् सब ओरसे देदीप्यमान हो रहा है, बहुत-से जुगनूँ विरुद्ध होकर भी उस सूर्यका क्या कर सकते हैं ॥५७॥ जबकि यह भयंकर सेना समस्त जगत्‌में व्याप्त हो रही है तब हे सखे ! हम भागना भी चाहें तो भी भागनेके लिए मार्ग नहीं है ॥५८॥ मरनेमें कोई बड़ा लाभ नहीं है क्योंकि जीवित रहनेवाला मनुष्य कदाचित् अपने कर्मोंके उदयवश कल्याणको प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ यदि हम इन सैनिक-रूपी तरंगोंके द्वारा बबूलोंके समान नाशको भी प्राप्त हो गये तो उससे क्या मिल जायेगा ? ॥६०॥ इस प्रकार जो परस्पर वार्तालाप कर रही थी तथा जिसे अत्यधिक कँपकँपी छूट रही थी ऐसी वह विद्याधरोंकी समस्त सेना अत्यन्त विह्वल हो गयी ॥६१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन ! तदनन्तर जटायुके जीवने इस तरह विक्रिया द्वारा क्रीड़ा कर दयापूर्वक उन विद्याधर शत्रुओंको दक्षिण दिशाकी ओर भागनेका मार्ग दे दिया ॥६२॥ इस प्रकार जिनके चित्त चंचल थे तथा जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसे वे सब विद्याधर बाजसे डरे पक्षियोंके समान बड़े वेगसे भागे ॥६३॥

अब आगे विभीषणके लिए क्या उत्तर देंगे ? इस समय जिनकी आत्मा एकदम दीन हो रही है ऐसे हम लोगोंकी क्या शोभा है ? ॥६४॥ हम अपने ही लोगोंको क्या कान्ति लेकर मुख दिखावेंगे ? हम लोगोंको धैर्य कहाँ हो सकता है ? अथवा जीवित रहनेकी इच्छा ही हम लोगोंको कहाँ हो सकती है ? ॥६५॥ ऐसा निश्चय कर उनमें जो इन्द्रजित्‌का पुत्र व्रजमाली था वह लज्जासे युक्त हो गया। यतश्च वह देवोंका प्रभाव देख चुका था अतः उसे अपने ऐश्वर्यसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप वह सुन्दके पुत्र चारुरत्न तथा अन्य स्नेही जनोंके साथ, क्रोध छोड़ रतिवेग नामक मुनिके पास साधु हो गया ॥६६-६७॥ भयभीत करनेके लिए जटायुका

१. सूर्यस्य । 'हसः पद्यात्मसूर्येषु' इत्यमरः । २. वेपथु. म ।

दध्यावुद्विग्नचित्तः स कृतावधिनियोजनः । अहोऽमी [1]प्रतिबोधाढ्या. संवृत्ताः परमर्षयः ॥६९॥
दोषांस्तदास्मिन्दासित्वा[2] साधूनां विमलात्मनाम् । महादुःखं परिप्राप्तं तिर्यक्षु नरकेषु च ॥७०॥
यस्यानुबन्धमद्यापि [3]सहे शत्रोर्दुरात्मनः । येन स्तोकेन न भ्रान्तः पुनर्दीर्घं भवार्णवम् ॥७१॥
इति संचिन्त्य शान्तात्मा स्वं निवेद्य यथाविधि । प्रणम्य भक्तिसंपन्न' सुधी. साधूनमर्षयत् ॥७२॥
तथा कृत्वा च साकेतामगाद् यत्र विमोहितः । भ्रातृशोकेन काकुत्स्थः शिशुवत्परिचेष्टते ॥७३॥
आकल्पान्तरमापन्नं सिञ्चन्तं शुष्कपादपम् । पद्मनाभप्रबोधार्थं कृतान्तं वीक्ष्य सादरम् ॥७४॥
जटायुः शीरमासाद्य गोऽक्लेवरयुग्मके । बीजं शिलातले वप्तुमुद्यतः [4]प्राजनं दधत् ॥७५॥
[5]कृपीटपूरितां कुम्भीं कृतान्तस्तत्पुरोऽमथत् । जटायुश्चक्रमारोप्य सिकतां पर्यपीडयत् ॥७६॥
अन्यानि चार्थहीनानि कार्याणि त्रिदशाविमौ । चक्रतुः स ततो गत्वा पप्रच्छेति क्रमान्वितम् ॥७७॥
परेत सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् । कलेवरे[6] हलं ग्राव्णि बीजं हारयसे कुतः ॥७८॥
नीरनिर्मथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता । वालुकापीडनाद्बाल स्नेहः संजायतेऽथ किम् ॥७९॥
केवलं श्रम एवात्र फलं नाण्वपि काङ्क्षितम् । लभ्यते किमिदं व्यर्थं समारब्धं विचेष्टितम् ॥८०॥
ऊचतुस्तौ क्रमेणैतं पृच्छावश्चापि सत्यतः । जीवेन रहितामेतां तनुं वहसि किं वृथा ॥८१॥

जीव देव, विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र लेकर उन सबको दक्षिणकी ओर खदेड़ रहा था सो उन सब राजाओको नग्न तथा क्रोधरहित देख उसने अपना विद्युत्प्रहार नामक शस्त्र संकुचित कर लिया ॥६८॥ उद्विग्न चित्तका धारी वह देव अवधिज्ञानका प्रयोग कर विचार करने लगा कि अहो ! ये सब तो प्रतिबोधको प्राप्त हो परमऋषि हो गये है ॥६९॥ उस समय (राजा दण्डककी पर्यायमे) मैने निर्दोष आत्माके धारी साधुओको दोष दिया था—घानीमे पिलवाया था सो उसके फलस्वरूप तिर्यंचो और नरकोमे मैने बहुत भारी दुःख उठाया है। तथा अब भी उसी दुष्ट शत्रुका संस्कार भोग रहा हूँ परन्तु वह संस्कार इतना थोडा रह गया है कि उसके निमित्तसे पुनः दीर्घ संसारमे भ्रमण नही करना पड़ेगा ॥७०–७१॥ ऐसा विचार कर उस बुद्धिमान्‌ने शान्त हो अपने आपका परिचय दिया और भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उन मुनियोसे क्षमा मांगी ॥७२॥

तदनन्तर इतना सब कर, वह अयोध्यामे वहाँ पहुँचा जहाँ भाईके शोकसे मोहित हो राम बालकके समान चेष्टा कर रहे थे ॥७३॥ वहाँ उसने बड़े आदरसे देखा कि कृतान्तवक्त्रका जीव रामको समझानेके लिए वेष बदलकर एक सूखे वृक्षको सीच रहा है ॥७४॥ यह देख जटायुका जीव भी दो मृतक बैलोके शरीरपर हल रखकर परेना हाथमे लिये शिलातलपर बीज बोनेका उद्यम करने लगा ॥७५॥ कुछ समय बाद कृतान्तवक्त्रका जीव रामके आगे जलसे भरी मटकीको मथने लगा और जटायुका जीव घानीमे बालू डाल पेलने लगा ॥७६॥ इस प्रकार इन्हे आदि लेकर और भी दूसरे-दूसरे निरर्थक कार्य इन दोनो देवोने रामके आगे किये। तदनन्तर रामने यथाक्रमसे उनके पास जाकर पूछा कि अरे मूर्ख ! इस मृत वृक्षको क्यो सीच रहा है ? मृतक कलेवरपर हल क्यो रखे हुए है ? पत्थरपर बीज क्यो बरबाद करता है ? पानीके मथनेमे मक्खनकी प्राप्ति कैसे होगी ? और रे बालक ! बालूके पेलनेसे क्या कही तेल उत्पन्न होता है ? इन सब कार्योमे केवल परिश्रम ही हाथ रहता है इच्छित फल तो परमाणु बराबर भी नही मिलता फिर यह व्यर्थकी चेष्टा क्यो प्रारम्भ कर रखी है ॥७७–८०॥

तदनन्तर क्रमसे उन दोनो देवोने कहा कि हम भी एक यथार्थ बात आपसे पूछते है

---

१. प्रीतिबोधाढ्या म । २. दापित्वा म । ३. मोह -म. । ४. 'प्राजन तोदनं तोत्रम्' इत्यमर । ५. कुमीढ म. । ६ कलेवर म. ।

लक्ष्मणाङ्गं ततो दोर्भ्यामालिङ्ग्य वरलक्षणम् । इदं जगाद भूदेवः कलुषीभूतमानसः ॥८२॥
अरे अरे कुत्सयसे कस्मात् सौमित्रिं पुरुषोत्तमम् । अमङ्गलाभिधानस्य किं ते दोषो न विद्यते ॥८३॥
कृतान्तेन समं यावद् विवादोऽस्येति वर्तते । जटायुस्तावदायातो वहन्नरकलेवरम् ॥८४॥
तं दृष्ट्वाभिमुखं रामो बभाषे केन हेतुना । कलेवरमिदं स्कन्धे वहसि मोहसंगतः ॥८५॥
तेनोक्तमनुयुङ्क्षे मां कस्मान्न स्वं विचक्षणः । यतः प्राणनिमेषादिमुक्तं वहसि विग्रहम् ॥८६॥
वालाग्रमात्रकं दोषं परस्य क्षिप्रमीक्षसे । मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथं दोषान्न पश्यसि ॥८७॥
दृष्ट्वा भवन्तमस्माकं परमा प्रीतिरुद्गता । सदृशः सदृशेष्वेव रज्यन्तीति सुभाषितम् ॥८८॥
सर्वेषामस्मदादीनां यथेप्सितविधायिनाम् । भवान् पूर्वं पिशाचानां त्वं राजा परमेप्सितः ॥८९॥
उन्मत्तेन्द्रध्वजं धृत्वा भ्रमामः सकलां महीम् । उन्मत्तां प्रवणीकुर्मः समस्तां प्रत्यवस्थिताम् ॥९०॥
एवमुक्तमनुश्रित्य मोहे शिथिलतां गते । गुरुवाक्यमयं चान्यत स्मृत्वा [1]व्रीडामगान्नृपः ॥९१॥
मुक्तमोहघनध्वान्तः प्रतिबोधमरीचिभिः । नृपचन्द्रायणो भर्ता राजते परमं तदा ॥९२॥
घनपङ्कविनिर्मुक्तमिव शारदमम्बरम् । विमलं तस्य संजातं मानसं सत्त्वसंगतम् ॥९३॥
स्मृतैरमृतसंपन्नैर्हृतशोको गुरूदितैः । पुरेव नन्दनस्वास्थ्यं दधानः शुशुभेतराम् ॥९४॥
अवष्टम्भितधीरत्वस्तैरेव पुरुषोत्तमः । छायां प्राप यथा मेरुर्जिनाभिषववारिभिः ॥९५॥

कि आप इस जीवरहित शरीरको व्यर्थ ही क्यों धारण कर रहे हैं ? ॥८१॥ तब जिनका मन कलुषित हो रहा था ऐसे श्री रामदेवने उत्तम लक्षणोंके धारक लक्ष्मणके शरीरका भुजाओंसे आलिंगन कर कहा कि अरे-अरे ! तुम पुरुषोत्तम लक्ष्मणकी बुराई क्यों करते हो ? ऐसे अमांगलिक शब्दके कहनेमें क्या तुम्हें दोष नहीं लगता ? ॥८२-८३॥ इस प्रकार जबतक रामका कृतान्तवक्त्रके जीवके साथ उक्त विवाद चल रहा था तबतक जटायुका जीव एक मृतक मनुष्यका शरीर लिए हुए वहाँ आ पहुँचा ॥८४॥ उसे सामने खड़ा देख रामने उससे पूछा कि तू मोहयुक्त हुआ इस मृत शरीरको कन्धे पर क्यों रखे हुए है ? ॥८५॥ इसके उत्तरमें जटायुके जीवने कहा कि तुम विद्वान् होकर भी हमसे पूछते हो पर स्वयं अपने आपसे क्यों नहीं पूछते जो श्वासोच्छ्वास तथा नेत्रोंकी टिमकार आदिसे रहित शरीरको धारण कर रहे हो ॥८६॥ दूसरेके तो बालके अग्रभाग बराबर सूक्ष्म दोषको जल्दीसे देख लेते हो पर अपने मेरुके शिखर बराबर बड़े-बड़े दोषोंको भी नहीं देखते हो ? ॥८७॥ आपको देखकर हम लोगोंको बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ क्योंकि यह सूक्ति भी है कि सदृश प्राणी अपने ही सदृश प्राणीमें अनुराग करते हैं ॥८८॥ इच्छानुसार कार्य करनेवाले हम सब पिशाचोंके आप सर्वप्रथम मनोनीत राजा हैं ॥८९॥ हम उन्मत्तोंके राजाकी ध्वजा लेकर समस्त पृथिवीमें घूमते फिरते हैं और उन्मत्त तथा प्रतिकूल पड़ी समस्त पृथिवीको अपने अनुकूल करते जाते हैं ॥९०॥ इस प्रकार देवोंके वचनोंका आलम्बन पाकर रामका मोह शिथिल हो गया और वे गुरुओंके वचनोंका स्मरण कर अपनी मूर्खतापर लज्जित हो उठे ॥९१॥ उस समय जिनका मोहरूपी मेघ-समूहका आवरण दूर हो गया था ऐसे राजा रामचन्द्ररूपी चन्द्रमा प्रतिबोधरूपी किरणोंसे अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥९२॥ उस समय धैर्यगुणसे सहित रामका मन मोह-रूपी कीचड़से रहित शरद् ऋतुके आकाशके समान निर्मल हो गया था ॥९३॥ स्मरणमें आये तथा अमृतसे निर्मितकी तरह मधुर गुरुओंके वचनोंसे जिनका शोक दूर किया गया था ऐसे राम उस समय उस तरह अत्यधिक सुशोभित हुए थे जिस तरह कि पहले पुत्रोंके मिलाप-सम्बन्धी सुखको धारण करते हुए सुशोभित हुए थे ॥९४॥ उस समय उन्हीं गुरुओंके वचनोंसे जिन्होंने धैर्य धारण किया था ऐसे पुरुषोत्तम

---

१. व्रीडामगन्नृपः म. ।

[1]प्रालेयवातसम्पर्कविमुक्ताम्भोजखण्डवत् । प्रजह्लादे विशुद्धात्मा विमुक्तकलुषाशयः ॥९६॥
महान्तध्वान्तसंमूढो मानोः प्राप्त इवोदयम् । महाक्षुदर्दितो लेभे परमान्नमिवेप्सितम् ॥९७॥
तृषा परमया ग्रस्तो महासर इवागमत् । महौषधमिव प्रापदत्यन्तव्याधिपीडितः ॥९८॥
यानपात्रमिवासीदत्तर्तुकामो[2] महार्णवम् । उत्पथप्रतिपन्नः समार्गं प्राप्येव नागरः ॥९९॥
गन्तुमिच्छन्निजं देशं महासार्थमिव श्रितः[3] । निर्गन्तुं चारकादिच्छोर्भग्नेव सुदृढार्गला ॥१००॥
जिनमार्गस्मृतिं प्राप्य पद्मनामः प्रमोदवान् । अधारयत् परां कान्तिं प्रबुद्धकमलेक्षणः ॥१०१॥
मन्यमानः स्वमुत्तीर्णमन्धकूपोदरादिव । भवान्तरमिव प्राप्तो मनसीदं समादधे ॥१०२॥
अहो तृणाग्रसंसक्तजलबिन्दुचलाचलम् । मनुष्यजीवितं यद्वत्क्षणान्नाशमुपागतम् ॥१०३॥
भ्रमतात्यन्तकृच्छ्रेण चतुर्गतिभवान्तरे । नृशरीरं मया प्राप्तं कथं मूढोऽस्म्यनर्थकः ॥१०४॥
कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्थाः कस्य बान्धवाः । संसारे सुलभं[4] ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लभा ॥१०५॥
इति ज्ञात्वा प्रबुद्धं तं माया संहृत्य तौ सुरौ । चक्रतुर्देवशीमृद्धिं लोकविस्मयकारिणीम् ॥१०६॥
अपूर्वः प्रववौ वायुः सुखस्पर्शः सुसौरभः । नभो यानैर्विमानैश्च व्याप्तमत्यन्तसुन्दरैः ॥१०७॥
गीयमाने सुरस्त्रीभिर्वीणानिःस्वनसंगतम् । आत्मीयं चरितं रामः शृणोति स्म क्रमस्थितम् ॥१०८॥
एतस्मिन्नन्तरे देवः कृतान्तोऽसौ जटायुषा । रामं पप्रच्छ किं नाथ प्रेरिताः दिवसाः सुखम् ॥१०९॥

राम, जिनेन्द्र भगवान्‌के जन्माभिषेकके जलसे मेघके समान कान्तिको प्राप्त हुए थे ॥९५॥ जिनकी आत्मा विशुद्ध थी तथा अभिप्राय कलुषतासे रहित था ऐसे राम उस समय तुषारकी वायुसे रहित कमल वनके समान आह्लादसे युक्त थे ॥९६॥ उस समय उन्हे ऐसा हर्ष हो रहा था मानो महान् गाढ अन्धकारमे भूला व्यक्ति सूर्यके उदयको प्राप्त हो गया हो, अथवा तीव्र क्षुधासे पीडित व्यक्ति इच्छानुकूल उत्तम भोजनको प्राप्त हुआ हो ॥९७॥ अथवा तीव्र प्याससे ग्रस्त मनुष्य किसी महासरोवरको प्राप्त हुआ हो, अथवा अत्यधिक रोगसे पीड़ित मनुष्य महौषधिको प्राप्त हो गया हो ॥९८॥ अथवा महासागरको पार करनेके लिए इच्छुक मनुष्यको जहाज मिल गयो हो, अथवा कुमार्गमे पड़ा नागरिक सुमार्गमे आ गया हो ॥९९॥ अथवा अपने देशको जानेके लिए इच्छुक मनुष्य व्यापारियोके किसी महासंघमे आ मिला हो, अथवा कारागृहसे निकलनेके लिए इच्छुक मनुष्यका मजबूत अर्गल टूट गया हो ॥१००॥ जिन मार्गका स्मरण पाकर राम हर्षसे खिल उठे और फूले हुए कमलके समान नेत्रोको धारण करते हुए परम कान्तिको धारण करने लगे ॥१०१॥ उन्होने मनमे ऐसा विचार किया कि जैसे मै अन्धकूपके मध्यसे निकलकर बाहर आया हूँ अथवा दूसरे ही भवको प्राप्त हुआ हूँ ॥१०२॥ वे विचार करने लगे कि अहो, तृणके अग्रभागपर स्थित जलकी बूँदोके समान चचल यह मनुष्यका जीवन क्षणभरमे नष्ट हो जाता है ॥१०३॥ चतुर्गतिरूप संसारके बीच भ्रमण करते हुए मैने बड़ी कठिनाईसे मनुष्य-शरीर पाया है फिर व्यर्थ ही क्यों मूर्ख बन रहा हूँ ? ॥१०४॥ ये इष्ट स्त्रियाँ किसकी है ? ये धन, वैभव किसके है ? और ये भाई-बान्धव किसके है ? ससारमे ये सब सुलभ है परन्तु एक बोधि ही अत्यन्त दुर्लभ है ॥१०५॥

इस प्रकार श्रीरामको प्रबुद्ध जानकर उक्त दोनो देवोने अपनी माया समेट ली तथा लोगोको आश्चर्यमे डालनेवाली देवोकी विभूति प्रकट की ॥१०६॥ सुखकर स्पर्शसे सहित तथा सुगन्धिसे भरी हुई अपूर्व वायु बहने लगी और आकाश अत्यन्त सुन्दर वाहनो और विमानोसे व्याप्त हो गया ॥१०७॥ देवांगनाओ द्वारा वीणाके मधुर शब्दके साथ गाया हुआ अपना क्रमपूर्ण चरित श्रीरामने सुना ॥१०८॥ इसी बीचमे कृतान्तवक्त्रके जीवने जटायुके जीवके साथ

---

१. प्रालेयवास -म । २. तनुकामो -म. । ३. श्रिता. म. । ४. विधि-म ।

एवमुक्तो जगौ राजा पृच्छथः किं शिवं मम । तेषां सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागताः ॥११०॥
भवन्तावस्मि पृच्छामि कौ युवां सौम्यदर्शनौ । केन वा कारणेनेदं कृतमीदृग्विचेष्टितम् ॥१११॥
ततो जटायुदेवोऽगादिति जानासि भूपते । गृध्रोऽरण्ये यदाशिष्ये शममिष्यामि मुनीक्षणात् ॥११२॥
लालयिष्ये च यत्तत्र भ्रात्रा देव्या सह त्वया । सीता हृता हनिष्ये च रावणेनाभियोगकृत् ॥११३॥
यच्च कर्णजपः शोकविह्वलेन त्वया प्रभो । दापिष्यते नमस्कारः पञ्चसत्पूज्याश्रितः ॥११४॥
सोऽहं भवत्प्रसादेन समारोहं त्रिविष्टपम् । तथाविधं परित्यज्य दुःखं तिर्यग्भवोद्भवम् ॥११५॥
सुरसौख्यैर्महोदारैर्मोहितेन मया गुरो । [2]अविज्ञेन हि न ज्ञाता तवापदागतेयती ॥११६॥
अवसानेऽधुना देव त्वत्कर्मकृतचेतनः । किंचित्किल प्रतीकारं समनुष्ठातुमागतः ॥११७॥
ऊचे कृतान्तदेवोऽपि गत्वा किंचित् सुवेशताम् । सोऽहं नाथ कृतान्तास्यः सेनानीरभवं तव ॥११८॥
स्मर्तव्योऽस्मि त्वया कृच्छ्रे इति युष्मच्चोदित त्वया । विधातुं तदहं स्वामिन् भवदन्तिकमागतः ॥११९॥
विलोक्य [3]वैबुधीमृद्धिं भूतभोगचरा जनाः । परमं विस्मयं प्राप्ता बभूवुर्विमलाशयाः ॥१२०॥
रामो जगाद सेनान्यमप्रमेयं सुरेशिनाम् । उदस्तासरतौ भद्रौ प्रत्यनीकस्थितात्मनाम् ॥१२१॥
तौ युवामागतौ नाकान्मां प्रबोधयितुं सुरौ । महाप्रभावसंपन्नावत्यन्तशुद्धमानसौ ॥१२२॥
इति संभाष्य तौ रामो निष्क्रान्तः शोकसंकटात् । सरयूरोधसंवृत्या लक्ष्मणं समभीकरत् ॥१२३॥

मिलकर श्रीरामसे पूछा कि हे नाथ ! क्या ये दिन सुखसे व्यतीत हुए ? देवोके ऐसा पूछनेपर राजा रामचन्द्रने उत्तर दिया कि मेरा सुख क्या पूछते हो ? समस्त सुख तो उन्हींको प्राप्त है जो मुनि पदको प्राप्त हो चुके है ॥१०९–११०॥ मैं आपसे पूछता हूँ कि सौम्य दर्शनवाले आप दोनो कौन हैं ? और किस कारण आप लोगोने ऐसी चेष्टा की ? ॥१११॥ तदनन्तर जटायुके जीव देवने कहा कि हे राजन् ! जानते है आप, जब मैं वनमे गीध था और मुनिराजके दर्शनसे शान्तिको प्राप्त हुआ था ॥११२॥ वहाँ आपने भाई लक्ष्मण और देवी—सीताके साथ मेरा लालन-पालन किया था। सीता हरी गयी थी और उसमें मै रुकावट डालनेवाला था अत, रावणके द्वारा मारा गया था ॥११३॥ हे प्रभो ! उस समय शोकसे विह्वल होकर आपने मेरे कानमे पंच परमेष्ठियोसे सम्बन्ध रखनेवाला पंच नमस्कार मन्त्रका जाप दिलाया था ॥११४॥ मै वही जटायु, आपके प्रसादसे उस प्रकारके तिर्यंच गति सम्बन्धी दु.खका परित्याग कर स्वर्गमे उत्पन्न हुआ था ॥११५॥ हे गुरो ! देवोके अत्यन्त उदार महासुखोसे मोहित होकर मुझ अज्ञानीने नही जाना कि आपपर इतनी विपत्ति आयी है ॥११६॥ हे देव ! जब आपकी विपत्तिका अन्त आया तब आपके कर्मोदयने मुझे इस ओर ध्यान दिलाया और कुछ प्रतीकार करनेके लिए आया हूँ ॥११७॥

तदनन्तर कृतान्तवक्त्रका जीव भी कुछ अच्छा-सा वेष धारण कर बोला कि हे नाथ ! मैं आपका कृतान्तवक्त्र सेनापति था ॥११८॥ आपने कहा था कि 'कष्टके समय मेरा स्मरण रखना' सो हे स्वामिन् ! आपका वही आदेश बुद्धिगत कर आपके समीप आया हूँ ॥११९॥ उस समय देवोकी उस ऋद्धिको देख भोगी मनुष्य परम आश्चर्यको प्राप्त होते हुए निर्मलचित्त हो गये ॥१२०॥ तदनन्तर रामने कृतान्तवक्त्र सेनापति तथा देवोके अधिपति जटायुके जीवोंसे कहा कि अहो भद्र पुरुषो ! तुम दोनो विपत्तिग्रस्त जीवोका उद्धार करनेवाले हो ॥१२१॥ देखो, महाप्रभावसे सम्पन्न एव अत्यन्त शुद्ध हृदयके धारक तुम दोनो देव मुझे प्रबुद्ध करनेके लिए स्वर्गसे यहाँ आये ॥१२२॥ इस प्रकार उन दोनोसे वार्तालाप कर शोकरूपी संकटसे पार हुए रामने सरयू नदीके तटपर लक्ष्मणका दाह संस्कार किया ॥१२३॥

---

१. मदोदारै -म. । २ ज्ञानेनावधिना ज्ञात्वाऽसाताऽऽगतेदृशी म. । ३. देवसम्बन्धिनी ।

परं विबुद्धभावश्च विषादपरिवर्जितः। जगाद धर्ममर्यादापालनार्थमिदं वचः ॥१२४॥

उपजातिः

शत्रुघ्न राज्यं कुरु मर्त्यलोके तपोवनं संप्रविशाम्यहं तु।
सर्वस्पृहादूरितमानसात्मा पदं समाराधयितुं जिनानाम् ॥१२५॥
रागादहं नो खलु भोगलुब्धः मनस्तु निःसंगसमाधिराज्ये।
समाश्रयिष्यामि तदेव देव त्वया समं नास्ति गतिर्ममान्या ॥१२६॥
कामोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृत्सु संबन्धिषु बान्धवेषु।
वस्तुष्वभीष्टेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्नृरवे भवेऽस्मिन् ॥१२७॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते लक्ष्मणसस्कारकरण कल्याणमित्रदेवाभिगमाभिधान नामाष्टादशोत्तरशतं पर्व ॥११८॥



तदनन्तर वैराग्यपूर्ण हृदयके धारक विषादरहित रामने धर्म-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले निम्नांकित वचन शत्रुघ्नसे कहे ॥१२४॥ उन्होने कहा कि हे शत्रुघ्न! तुम मनुष्य लोकका राज्य करो। सब प्रकारकी इच्छाओसे जिसका मन और आत्मा दूर हो गयी है ऐसा मै मुक्ति पदकी आराधना करनेके लिए तपोवनमे प्रवेश करता हूँ ॥१२५॥ इसके उत्तरमे शत्रुघ्नने कहा कि देव! मै रागके कारण भोगोंमे लुब्ध नही हूँ। मेरा मन निर्ग्रन्थ समाधिरूपी राज्यमे लग रहा है इसलिए मै आपके साथ उसी निर्ग्रन्थ समाधिरूप राज्यको प्राप्त करूँगा। इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति नही है ॥१२६॥ हे नरसूर्य! इस संसारमे मनको हरण करनेवाले कामोपभोगोमे, मित्रोमे, सम्बन्धियोमे, भाई-बान्धवोमे, अभीष्ट वस्तुओमे तथा स्वयं अपने आपके जीवनमे किसे तृप्ति हुई है? ॥१२७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके संस्कारका वर्णन करनेवाला एक सौ अठारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११८॥



एकोनविंशोत्तरशतं पर्व

ततस्तस्य वचनं श्रुत्वा हितमत्यन्तनिश्चितम् । मनसा क्षणमालोच्य सर्वकर्तव्यदक्षिणम् ॥१॥
विलोक्यासीनमासन्नमनङ्गलवणात्मजम् । क्षितीश्वरपदं तस्मै ददौ स परमर्द्धिकम् ॥२॥
[1]अनन्तलवणः सोऽपि पितृतुल्यगुणक्रियः । प्रणताखिलसामन्तो जातः कुलधुरावहः ॥३॥
परं प्रतिष्ठितः सोऽयमनुरागप्रतापवान्[2] । [3]धरणीमङ्गलं सर्वमावच्च विजयो यथा ॥४॥
सुभूषणाय पुत्राय लङ्काराज्यं विभीषणः । सुग्रीवोऽपि निजं राज्यमङ्गदाङ्गभुवे ददौ ॥५॥
ततो दाशरथी रामः सविषान्नमिवेक्षितम् । कलत्रमिव चागस्वि[4] राज्यं भरतवज्जहौ ॥६॥
एकं निःश्रेयसस्याङ्गं देवासुरनमस्कृतम् । साधकैर्मुनिभिर्जुष्टं समसानगुणोदितम् ॥७॥
जन्ममृत्युपरित्रस्तः श्लथकर्मकलङ्कभृत् । विधिमार्गं वृणोति स्म मुनिसुव्रतदेशितम् ॥८॥
बोधिं संप्राप्य काकुत्स्थः क्लेशभावविनिर्गतः । अदीपिष्टाधिकं मेघव्रजनिःसृतभानुवत् ॥९॥
अथार्हद्दासनामानं श्रेष्ठिनं द्रष्टुमागतम् । कुशलं सर्वसंघस्य पप्रच्छेह सदःस्थितः[5] ॥१०॥
उवाच स महाराज व्यसनेन तवामुना । व्यथनं परमं प्राप्ता यतयोऽपि महीतले ॥११॥
अवबुध्य विबन्धात्मा किल व्योमचरो मुनिः । सुव्रतो भगवान् प्राप मुनिसुव्रतवंशभृत् ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुघ्नके हितकारी और दृढ़ निश्चयपूर्ण वचन सुनकर राम क्षणभरके लिए विचारमे पड़ गये । तदनन्तर मनसे विचार कर अनंगलवणके पुत्रको समीपमे बैठा देख उन्होंने उसीके लिए परम ऋद्धिसे युक्त राज्यपद प्रदान किया ॥१-२॥ जो पिताके समान गुण और क्रियाओंसे युक्त था, तथा जिसे समस्त सामन्त प्रणाम करते थे ऐसा वह अनन्तलवण भी कुलका भार उठानेवाला हुआ ॥३॥ परम प्रतिष्ठाको प्राप्त एवं उत्कट अनुराग और प्रतापको धारण करनेवाले अनन्तलवणने विजय बलभद्रके समान पृथिवीतलके समस्त मंगल प्राप्त किये ॥४॥ विभीषणने लंकाका राज्य अपने पुत्र सुभूषणके लिए दिया और सुग्रीवने भी अपना राज्य अंगदके पुत्रके लिए प्रदान किया ॥५॥

तदनन्तर जिस प्रकार पहले भरतने राज्य छोड़ दिया था उसी प्रकार रामने राज्यको विष मिले अन्नके समान अथवा अपराधी स्त्रीके समान देखकर छोड़ दिया ॥६॥ जो जन्म-मरणसे भयभीत थे तथा जो शिथिलीभूत कर्म कलंकको धारण कर रहे थे ऐसे श्रीरामने भगवान् मुनिसुव्रतनाथके द्वारा प्रदर्शित आत्म-कल्याणका एक वही मार्ग चुना जो कि मोक्षका कारण था, सुर-असुरोंके द्वारा नमस्कृत था, साधक मुनियोंके द्वारा सेवित था तथा जिसमें माध्यस्थ्य भावरूप गुणका उदय होता था ॥७-८॥ बोधिको पाकर क्लेश भावसे निकले राम, मेघ-मण्डलसे निर्गत सूर्यके समान अत्यधिक देदीप्यमान हो रहे थे ॥९॥

अथानन्तर राम सभामे विराजमान थे उसी समय अर्हद्दास नामका एक सेठ उनके दर्शन करनेके लिए आया था, सो रामने उससे समस्त मुनिसंघकी कुशल पूछी ॥१०॥ सेठने उत्तर दिया कि हे महाराज! आपके इस कष्टसे पृथिवीतलपर मुनि भी परम व्यथाको प्राप्त हुए हैं ॥११॥ उसी समय मुनिसुव्रत भगवान्‌की वंश-परम्पराको धारण करनेवाले निर्बन्ध आत्माके धारक, आकाशगामी भगवान् सुव्रत नामक मुनि रामकी दशा जान वहाँ आये ॥१२॥ मुनि आवे

१. अनंगलवण. म. । २ अनुरागं प्रतापवान् म, क । ३. धरणीमण्डले सर्वे सावयं विजयो यथा म., क. । धरणीमण्डले सर्वे स्युरर्व्वविजया यथा ज । ४ सापराधं । ५ सद.स्थितम् म. ।

इति श्रुत्वा महामोदप्रजातपुलकोद्गमः । विस्तारिलोचनः श्रीमान् संप्रतस्थेऽन्तिकं यतेः ॥१३॥
भूखेचरमहाराजैः सेव्यमानो महोदयः । विजयः[1] स्वर्णकुम्भं वा सुभक्तियुतमागमत् ॥१४॥
गुणप्रवरनिर्ग्रन्थसहस्रकृतपूजनम् । प्रणनामोपसृत्यैव शिरसा रचिताञ्जलिः ॥१५॥
दृष्ट्वा स तं महात्मानं मुक्तिकारणमुत्तमम् । जज्ञे निमग्नमात्मानममृतस्येव सागरे ॥१६॥
अविधं महिमानं च परं श्रद्धातिपूरितः । पूर्वं यथा महापद्मः सुव्रतस्येव योगिनः ॥१७॥
सर्वादरा[2]र्थितात्मानो विहायश्चरणा अपि । ध्वजतोरणवृत्तार्घसंगीतै[3]र्द्धौर्व्यधुः परम् ॥१८॥
त्रियामायामतीतायां भास्करेऽभिनिवेदिते । प्रणम्य राघवः साधून् वव्रे निर्ग्रन्थदीक्षणम् ॥१९॥
निर्धूतकल्मषस्त्यक्तरागद्वेषो यथाविधि । प्रसादात्तव योगीन्द्र विहर्तुमहमुन्मनाः ॥२०॥
अवोचत गणाधीशः परमं नृप सांप्रतम् । किमनेन समस्तेन विनाशित्वावसादिना ॥२१॥
सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम् । मनीषितं परं युक्तं जिनधर्मं वगाहितुम् ॥२२॥
एवं प्रभाषिते साधौ विरागी भववस्तुनि । दक्ष प्रदक्षिणं चक्रे [4]मुनेर्मेरौ यथा रविः ॥२३॥
समुत्पन्नमहाबोधिः महासंवेगकङ्कटः । बद्धकक्षो महाधृत्या कर्माणि क्षपणोद्यतः ॥२४॥
आशापाशं समुच्छिद्य निर्दह्य स्नेहपञ्जरम् । भित्त्वा [5]कलत्रहिञ्जीरं मोहदर्पं निहत्य च ॥२५॥

हैं यह सुन अत्यधिक हर्षके कारण जिन्हे रोमांच निकल आये थे तथा जिनके नेत्र फूल गये थे ऐसे श्रीराम मुनिके समीप गये ॥१३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिस प्रकार पहले विजय बलभद्र स्वर्णकुम्भ नामक मुनिराजके समीप गये थे उसी प्रकार भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओके द्वारा सेवित एवं महाभ्युदयके धारक राम सुभक्तिके साथ सुव्रत मुनिके पास पहुँचे। गुणोसे श्रेष्ठ हजारो निर्ग्रन्थ जिनकी पूजा कर रहे थे ऐसे मुनिके पास जाकर रामने हाथ जोड़ शिरसे नमस्कार किया ॥१४-१५॥ मुक्तिके कारणभूत उन उत्तम महात्माके दर्शन कर रामने अपने आपको ऐसा जाना मानो अमृतके सागरमे ही निमग्न हो गया होऊँ ॥१६॥ जिस प्रकार पहले महापद्म चक्रवर्तीने मुनिसुव्रत भगवान्‌की परम महिमा की थी उसी प्रकार श्रद्धासे भरे श्रीमान् रामने उन सुव्रत नामक मुनिराजकी परम महिमा की ॥१७॥ सब प्रकारके आदर करनेमे योग देनेवाले विद्याधरोने भी ध्वजातोरण, अर्घदान तथा संगीत आदिकी उत्कृष्ट व्यवस्था की थी ॥१८॥

तदनन्तर रात व्यतीत होनेपर जब सूर्योदय हो चुका तब रामने मुनियोको नमस्कार कर निर्ग्रन्थ दीक्षा देनेकी प्रार्थना की ॥१९॥ उन्होने कहा कि हे योगिराज! जिसके समस्त पाप दूर हो गये है तथा राग-द्वेषका परिहार हो चुका है ऐसा मै आपके प्रसादसे विधिपूर्वक विहार करनेके लिए उत्कण्ठित हूँ ॥२०॥ इसके उत्तरमे मुनिसंघके स्वामीने कहा कि हे राजन्! तुमने बहुत अच्छा विचार किया, विनाशसे नष्ट हो जानेवाले इस समस्त परिकरसे क्या प्रयोजन है? ॥२१॥ सनातन, निराबाध तथा उत्तम अतिशयसे युक्त सुखको देनेवाले जिनधर्ममें अवगाहन करनेकी जो तुम्हारी भावना है वह बहुत उत्तम है ॥२२॥ मुनिराजके इस प्रकार कहनेपर संसारकी वस्तुओंमे विराग रखनेवाले रामने उन्हें उस प्रकार प्रदक्षिणा दी जिस प्रकार कि सूर्य सुमेरु पर्वतकी देता है ॥२३॥ जिन्हे महाबोधि उत्पन्न हुई थी, जो महासंवेगरूपी कवचको धारण कर रहे थे और जो कमर कसकर बड़े धैर्यके साथ कर्मोका क्षय करनेके लिए उद्यत हुए थे ऐसे श्रीराम आशारूपी पाशको छोड़कर, स्नेहरूपी पिंजड़ेको जलाकर, स्त्रीरूपी सांकलको तोड़कर, मोहका घमण्ड चूर कर, और आहार, कुण्डल, मुकुट तथा वस्त्रको छोड़कर पर्यंकासनसे

---

१. विजयनामा प्रथमबलभद्रो यथा स्वर्णकुम्भमुने॰ पार्श्वं जगाम तथेति भाव.। २. सर्वदारार्थितात्मानो म.। ३ सगीताविव्यधु. परम् म, सगीताच्चिर्व्यधुः परम् ज., ख । ४ मुनि-म । ५ स्त्रीशृङ्खलाम् ।

आहारं कुण्डलं मौलिमपनीयाम्बरं तथा । परमार्थार्पितस्वान्तस्तनुलग्नमलावलिः ॥२६॥
श्वेताब्जसुकुमाराभिरङ्गुलीभिः शिरोरुहान् । निराचकार काकुत्स्थः पर्यङ्कासनमास्थितः ॥२७॥
रराज सुतरां रामस्त्यक्ताशेषपरिग्रहः । सैंहिकेयविनिर्मुक्तो[1] हंसमण्डलविभ्रमः[2] ॥२८॥
शीलव्रतानिलयीभूतो गुप्तो गुप्त्याभिरूपया । पञ्चकं समितेः प्राप्तः पञ्चसर्वव्रतं श्रितः ॥२९॥
षट्जीवकायरक्षस्थो दण्डत्रितयसूदनः । सप्तभीतिविनिर्मुक्तः षोडशार्द्धमदार्दनः ॥३०॥
श्रीवत्सभूषितोरस्को गुणभूषणमानसः । जातः सुश्रमणः पद्मो मुक्तितत्त्वविधौ दृढः ॥३१॥
अदृष्टविग्रहैर्देवैराजघ्ने सुरदुन्दुभिः । दिव्यप्रसूनवृष्टिश्च विविक्तैर्भक्तितत्परैः ॥३२॥
निष्क्रामति तदा रामे गृहिभावोरुकल्मषात् । चक्रे कल्याणमित्राभ्यां देवाभ्यां परमोत्सवः ॥३३॥
भूदेवे तत्र निष्क्रान्ते सनृपा भूवियच्चराः । चिन्तान्तरमिदं जग्मुर्विस्मयव्याप्तमानसाः ॥३४॥
विभूतिरत्नमीदृक्षं यत्र त्यक्त्वातिदुस्त्यजम् । देवैरपि कृतस्वार्थो[3] रामदेवोऽभवन्मुनिः ॥३५॥
तत्रास्माकं परित्याज्यं किमिवास्ति प्रलोभकम् । तिष्ठामः केवलं येन व्रतेच्छाविकलात्मकाः ॥३६॥
एवमादि परिध्याय कृत्वान्त परिदेवनम् । सवेगिनो निराक्रान्ता[4] वहवो गृहवन्धनात् ॥३७॥
छित्वा रागमयं पाशं निहत्य द्वेषवैरिणम् । सर्वसंगविनिर्मुक्तः शत्रुघ्नः श्रमणोऽभवत् ॥३८॥
विभीषणोऽथ सुग्रीवो नीलश्चन्द्रनखो नलः । क्रव्यो विराधिताद्याश्च निरीयुः खेचरेश्वराः ॥३९॥
विद्याभृतां परित्यज्य विद्यां प्राव्राज्यमीयुषाम् । केषांचिच्चारणी लब्धिर्भूयोजन्मामवस्तुनः ॥४०॥

विराजमान हो गये। उनका हृदय परमार्थके चिन्तनमे लग रहा था, उनके शरीरपर मलका पुज लग रहा था, और उन्होने श्वेत कमलके समान सुकुमार अंगुलियोके द्वारा शिरके वाल उखाड़कर फेंक दिये थे ॥२४–२७॥ जिनका सब परिग्रह छूट गया था ऐसे राम उस समय राहुके चंगुलसे छूटे हुए सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२८॥ जो शीलव्रतके घर थे, उत्तम गुप्तियोसे सुरक्षित थे, पंच समितियोको प्राप्त थे और पांच महाव्रतोकी सेवा करते थे ॥२९॥ छह कायके जीवोंको रक्षा करनेमे तत्पर थे, मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिरूप तीन प्रकारके दण्डको नष्ट करनेवाले थे, सप्त भयसे रहित थे, आठ प्रकारके मदको नष्ट करनेवाले थे ॥३०॥ जिनका वक्षस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे अलंकृत था, गुणरूपी आभूषणोके धारण करनेमे जिनका मन लगा था और जो मुक्तिरूपो तत्त्वके प्राप्त करनेमे सुदृढ़ थे ऐसे राम उत्तम श्रमण हो गये ॥३१॥ जिनका शरीर दिख नही रहा था ऐसे देवोने देवदुन्दुभि वजायी, तथा भक्ति प्रकट करनेमे तत्पर पवित्र भावनाके धारक देवोने दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की ॥३२॥ उस समय श्रीरामके गृहस्थावस्थारूपी महापापसे निष्क्रान्त होनेपर कल्याणकारी मित्र—कृतान्तवक्त्र और जटायुके जीवरूप देवोने महान् उत्सव किया ॥३३॥ वहाँ श्रीरामके दीक्षित होनेपर राजाओ सहित समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर आश्चर्यसे चकितचित्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि देवोने भी जिनका कल्याण किया ऐसे रामदेव जहाँ इस प्रकारकी दुस्त्यज विभूतिको छोड़कर मुनि हो गये वहाँ हम लोगोंके पास छोड़नेके योग्य प्रलोभन है ही क्या ? जिसके कारण हम व्रतकी इच्छासे रहित हैं ॥३४–३६॥ इस प्रकार विचारकर तथा हृदयमे अपनी आसक्तिपर दु:ख प्रकट कर सवेगसे भरे अनेकों लोग घरके वन्धनसे निकल भागे ॥३७॥

शत्रुघ्न भी रागरूपी पाशको छेदकर, द्वेषरूपी वैरीको नष्ट कर तथा समस्त परिग्रहसे निर्मुक्त हो श्रमण हो गया ॥३८॥ तदनन्तर विभीषण, सुग्रीव, नील, चन्द्रनख, नल, क्रव्य तथा विराधित आदि अनेक विद्याधर राजा भी वाहर निकले ॥३९॥ जिन विद्याधरोने विद्याका परि-

---

१. राहुविनिर्मुक्तः । २. सूर्यमण्डलविभ्रमः । ३. स्वार्थैः म. । ४. निर्गताः ।

एवं श्रीमति निष्क्रान्ते रामे जातानि षोडश । श्रमणानां सहस्राणि साधिकानि महीपते ॥४१॥
सप्तविंशसहस्राणि प्रधानवरयोषिताम् । श्रीमतीश्रमणीपार्श्वे बभूवु: परमार्यिकाः ॥४२॥
अथ पद्मामनिर्ग्रन्थो गुरोः प्राप्यानुमोदनम् । एकाकी विहतद्वन्द्वो विहारं प्रतिपन्नवान् ॥४३॥
गिरिगह्वरदेशेषु भीमेषु क्षुब्धचेतसाम् । क्रूरश्वापदशब्देषु रात्रौ वासमसेवत ॥४४॥
गृहीतोत्तमयोगस्य विधिसद्भावसंगिनः । तस्यामेवास्य शर्वर्यामवधिज्ञानमुद्गतम् ॥४५॥
आलोकत यथावस्थं रूपि येनाखिलं जगत् । यथा पाणितलन्यस्तं विमलं स्फटिकोपलम् ॥४६॥
ततो विदितमेतेनापरतो लक्ष्मणो यथा । विक्रियां तु मनो नास्य गतं विच्छिन्नबन्धनम् ॥४७॥
समाशतं कुमारत्वे मण्डलित्वे शतत्रयम् । चत्वारिंशच्च विजये यस्य संवत्सरा मताः ॥४८॥
एकादशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च । अब्दानां षष्टिरन्याश्च साम्राज्यं येन सेवितम् ॥४९॥
योऽसौ वर्षसहस्राणि प्राप्य द्वादश [1]भोगिताम् । ऊनानि पञ्चविंशत्या वितृप्तिरवरं गतः ॥५०॥
देवयोस्तत्र नो [2]दोषः सर्वाकारेण विद्यते । तथा हि प्राप्तकालोऽय भ्रातृमृत्युव्यपदेशतः ॥५१॥
अनेकं मम तस्यापि विविधं जन्म तद्गतम् । वसुदत्तादिकं मोहपरायत्तितचेतसः ॥५२॥
एवं सर्वमतिक्रान्तमज्ञासीत् पद्मसंयतः । धैर्यमत्युत्तमं बिभ्रद्व्रतशीलधराधरः ॥५३॥
परया लेश्यया युक्तो गम्भीरो गुणसागरः । बभूव स महाचेताः सिद्धिलक्ष्मीपरायणः ॥५४॥
युष्मानपि वदाम्यस्मिन् सर्वानिह समागतान् । रमध्वं तत्र सन्मार्गे रतो यत्र रघूत्तमः ॥५५॥

त्याग कर दीक्षा धारण की थी उनमें-से कितने ही लोगोंको पुनः चारणऋद्धि उत्पन्न हो गयी थी ॥४०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय रामके दीक्षा लेनेपर कुछ अधिक सोलह हजार साधु हुए और सत्ताईस हजार प्रमुख स्त्रियाँ श्रीमती नामक साध्वीके पास आर्यिका हुईं ॥४१-४२॥

अथानन्तर गुरुकी आज्ञा पाकर श्रीराम निर्ग्रन्थ मुनि, सुख-दुःखादिके द्वन्द्वको दूर कर एकाकी विहारको प्राप्त हुए ॥४३॥ वे रात्रिके समय पहाड़ोंकी उन गुफाओंमें निवास करते थे जो चंचल चित्त मनुष्योंके लिए भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जहाँ क्रूर हिंसक जन्तुओंके शब्द व्याप्त हो रहे थे ॥४४॥ उत्तम योगके धारक एवं योग्य विधिका पालन करनेवाले उन मुनिको उसी रातमें अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ॥४५॥ उस अवधिज्ञानके प्रभावसे वे समस्त रूपी जगत्को हथेलीपर रखे हुए निर्मल स्फटिकके समान ज्यों-का-त्यों देखने लगे ॥४६॥ उस अवधिज्ञानके द्वारा उन्होंने यह भी जान लिया कि लक्ष्मण परभवमें कहाँ गया परन्तु यतश्च उनका मन सब प्रकारके बन्धन तोड़ चुका था इसलिए विकारको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ वे सोचने लगे कि देखो, जिसके सौ वर्ष कुमार अवस्थामें, तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्थामें और चालीस वर्ष दिग्विजयमें व्यतीत हुए ॥४८॥ जिसने ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष तक साम्राज्य पदका सेवन किया ॥४९॥ और जिसने पचीस कम बारह हजार वर्ष भोगीपना प्राप्त कर व्यतीत किये वह लक्ष्मण अन्तमें भोगोंसे तृप्त न होकर नीचे गया ॥५०॥ लक्ष्मणके मरणमें उन दोनों देवोंका कोई दोष नहीं है, यथार्थमें भाईकी मृत्युके बहाने उसका वह काल ही आ पहुँचा था ॥५१॥ जिसका चित्त मोहके आधीन था ऐसे मेरे तथा उसके वसुदत्तको आदि लेकर अनेक प्रकारके नाना जन्म साथ-साथ बीत चुके हैं ॥५२॥ इस प्रकार व्रत और शीलके पर्वत तथा उत्तम धैर्यको धारण करनेवाले पद्ममुनिने समस्त बीती बात जान ली ॥५३॥ वे पद्ममुनि उत्तम लेश्यासे युक्त, गम्भीर, गुणोंके सागर, उदार हृदय एवं मुक्तिरूपी लक्ष्मीके प्राप्त करनेमें तत्पर थे ॥५४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मैं यहाँ आये हुए तुम सब लोगोंसे भी कहता हूँ कि तुम लोग उसी मार्गमें

१. योगिताम् म । २. द्वेष. म ।

जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने संगतत्पराः । जना बिभ्रति लभ्यार्थं जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ॥५६॥
जिनाक्षरमहारत्ननिधानं प्राप्य भो जनाः । कुलिङ्गसमयं सर्वं परित्यजत दुःखदम् ॥५७॥
कुग्रन्थैर्मोहितात्मानः सदम्भकलुषक्रियाः । जात्यन्धा इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यतः ॥५८॥
[1]नानोपकरणं दृष्ट्वा साधनं शक्तिवर्जिताः । निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते मुखराः परे ॥५९॥
व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यैः पुरस्कृताः । प्रखिन्नतनवो भारं वहन्ति भृतका इव ॥६०॥

आर्यागीतिः

ऋषयस्ते खलु येषां परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धिः ।
तस्मात्ते निर्ग्रन्थाः साधुगुणैरन्विता बुधैः संसेव्याः ॥६१॥
श्रुत्वा बलदेवस्य त्यक्त्वा भोगं परं विमुक्तिग्रहणम् ।
भवत भवभावशिथिला व्यसनरवेस्तापमाप्नुत न पुनर्यत्नात् ॥६२॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे रविषेणाचार्यप्रणीते बलदेवनिष्क्रमणाभिधानं नाम
एकोनविंशोत्तरशतं पर्व ॥११९॥



रमण करो जिसमे कि रघूत्तम—राममुनि रमण करते थे ॥५५॥ जिन-शासनमें शक्ति और भक्तिपूर्वक प्रवृत्त रहनेवाले मनुष्य, जिस समस्त प्रयोजनकी प्राप्ति होती है ऐसे मुक्तिपदके निकटवर्ती जन्मको प्राप्त होते हैं ॥५६॥ हे भव्य जनो ! तुम सब जिनवाणीरूपी महारत्नोके खजानेको पाकर कुलिंगियोंके दुःखदायो समस्त शास्त्रोंका परित्याग करो ॥५७॥ जिनकी आत्मा खोटे शास्त्रोसे मोहित हो रही है तथा जो कपट सहित कलुषित क्रिया करते है ऐसे मनुष्य जन्मान्धोकी तरह कल्याण मार्गको छोड़कर अन्यत्र चले जाते है ॥५८॥ कितने ही शक्तिहीन वकवादी मनुष्य नाना उपकरणोको साधन समझ 'इनके ग्रहणमे दोष नही है' ऐसा कहकर उन्हे ग्रहण करते हैं सो वे कुलिंगी हैं। मूर्ख मनुष्य उन्हे व्यर्थ ही आगे करते हैं वे खिन्न शरीर होते हुए वोझा ढोनेवालोके समान भारको धारण करते है ॥५९-६०॥ वास्तवमे ऋषि वे ही है जिनकी परिग्रहमे और उसकी याचनामे वुद्धि नही है। इसलिए उत्तम गुणोके धारक निर्मल निर्ग्रन्थ साधुओकी ही विद्वज्जनोको सेवा करनी चाहिए। गौतम स्वामी कहते हैं कि हे भव्य-जनो ! इस तरह बलदेवका चरित सुनकर तथा संसारके कारणभूत समस्त उत्तम भोगोंका त्याग कर यत्नपूर्वक संसारवर्धक भावोसे शिथिल होओ जिससे फिर कष्टरूपी सूर्यके सन्तापको प्राप्त न हो सको ॥६१-६२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें बलदेवकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला एक सौ उन्नीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥११९॥



१. नानोपकरणा म., ज.।

विंशोत्तरशतं पर्व

एवमादीन् गुणान् राजन् बलदेवस्य योगिनः । धरणोऽप्यक्षमो वक्तुं जिह्वाकोटिविकारगः ॥१॥
उपोष्य द्वादशं सोऽथ धीरो विधिसमन्वितः । नन्दस्थलीं पुरीं भेजे पारणार्थं महातपाः ॥२॥
तरुणं [1]तरणिं दीप्त्या द्वितीयमिव भूधरम् । अन्यं दाक्षायणीनाथमगम्यमिव भास्वतः ॥३॥
वीध्रस्फटिकसंशुद्धहृदयं पुरुषोत्तमम् । मूर्त्येव संगतं धर्ममनुरागं त्रिलोकगम् ॥४॥
आनन्दमिव सर्वेषां गत्वैकत्वमिव स्थितम् । महाकान्तिप्रवाहेण प्लावयन्तमिव क्षितिम् ॥५॥
धवलाम्भोजखण्डानां पूरयन्तमिवाम्बरम् । तं वीक्ष्य नगरीलोकः समस्तः क्षोभमागतः ॥६॥
अहो चित्रमहो चित्रं भो भो पश्यत पश्यत । अदृष्टपूर्वमीदृक्षमाकारं भुवनातिगम् ॥७॥
अयं कोऽपि महोक्षेति आयातीह सुसुन्दरः । प्रलम्बदोर्युगः श्रीमानपूर्वनरमन्दरः ॥८॥
अहो धैर्यमहो सत्त्वमहो रूपमहो द्युतिः । अहो कान्तिरहो शान्तिरहो मुक्तिरहो गतिः ॥९॥
कोऽयमीदृक्कुतः कस्मिन् समभ्येति मनोहरः । युगान्तरस्थिरन्यस्तशान्तदृष्टिः समाहितः ॥१०॥
उदारपुण्यमेतेन कतरन्मण्डितं कुलम् । कुर्यादनुग्रहं कस्य गृह्णानोऽन्नं सुकर्मणः ॥११॥
सुरेन्द्रसदृशं रूपं कुतोऽत्र भुवने परम् । अक्षोभ्यसत्त्वशैलोऽयं रामः पुरुषसत्तमः ॥१२॥
एतेन चेतसो दृष्टेर्जन्मनः कर्मणो मतेः । कुरुध्वं चरितार्थत्वं देहस्य चरितस्य च ॥१३॥

अथानन्तर गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस तरह योगी बलदेवके गुणोका वर्णन करनेके लिए एक करोड़ जिह्वाओंकी विक्रिया करनेवाला धरणेन्द्र भी समर्थ नहीं है ॥१॥ तदनन्तर पाँच दिनका उपवास कर धीर-वीर महातपस्वी योगी राम पारणा करनेके लिए विधिपूर्वक—ईर्यासमितिसे चार हाथ पृथिवी देखते हुए नन्दस्थली नगरीमे गये ॥२॥ वे राम अपनी दीप्तिसे ऐसे जान पड़ते थे मानो तरुण सूर्य ही हो, स्थिरतासे ऐसे लगते थे मानो दूसरा पर्वत ही हो, शान्त स्वभावके कारण ऐसे जान पड़ते थे मानो सूर्यके अगम्य दूसरा चन्द्रमा ही हो, उनका हृदय धवल स्फटिकके समान शुद्ध था, वे पुरुषोमे श्रेष्ठ थे, ऐसे जान पड़ते थे मानो मूर्तिधारी धर्म ही हो, अथवा तीन लोकके जीवोका अनुराग ही हो, अथवा सब जीवोका आनन्द एकरूपताको प्राप्त होकर स्थित हुआ हो, वे महाकान्तिके प्रवाहसे पृथिवीको तर कर रहे थे, और आकाशको सफेद कमलोके समूहसे पूर्ण कर रहे थे। ऐसे श्रीरामको देख नगरीके समस्त लोग क्षोभको प्राप्त हो गये ॥३–६॥ लोग परस्पर कहने लगे कि अहो ! आश्चर्य देखो, अहो आश्चर्य देखो जो पहले कभी देखनेमे नहीं आया ऐसा यह लोकोत्तर आकार देखो ॥७॥ यह कोई अत्यन्त सुन्दर महावृषभ यहाँ आ रहा है, अथवा जिसकी दोनो लम्बी भुजाएँ नीचे लटक रही है ऐसा यह कोई अद्भुत मनुष्यरूपी मन्दराचल है ॥८॥ अहो, इनका धैर्य धन्य है, सत्त्व-पराक्रम धन्य है, रूप धन्य है, कान्ति धन्य है, शान्ति धन्य है, मुक्ति धन्य है और गति धन्य है ॥९॥ जो एक युग प्रमाण अन्तरपर बड़ी सावधानीसे अपनी शान्त दृष्टि रखता है ऐसा यह कौन मनोहर पुरुष यहाँ कहाँसे आ रहा है ॥१०॥ उदार पुण्यको प्राप्त हुए इसके द्वारा कौन-सा कुल मण्डित हुआ है—यह किस कुलका अलकार है ? और आहार ग्रहण कर किसपर अनुग्रह करता है ? ॥११॥ इस संसारमे इन्द्रके समान ऐसा दूसरा रूप कहाँ हो सकता है ? अरे ! जिनका पराक्रमरूपी पर्वत क्षोभ रहित है ऐसे ये पुरुषोत्तम राम है ॥१२॥ आओ, आओ, इन्हे देखकर अपने चित्त,

---

[1] तरणिर्दीप्त्या म. ।

रामदर्शनसक्तानां पौराणां पृथुविस्मयः । समाकुलः समुत्तस्थौ रमणीयः परं ध्वनिः ॥१४॥
प्रविष्टे नगरीं रामे यथास्वसमयचेष्टितैः । नारीपुरुषसंघातै रथ्या मार्गाः प्रपूरिताः ॥१५॥
विचित्रभक्ष्यसंपूर्णपात्रहस्ताः समुत्सुकाः । प्रवराः प्रमदास्तस्थुर्गृहीतकरकाम्भसः ॥१६॥
दृढं परिकरं बद्ध्वा मनोज्ञजलपूरितम् । आदाय कलशं पूर्णमाजग्मुर्बहवो नराः ॥१७॥
इतः स्वामिन्नितः स्वामिन् स्थीयतामिह सन्मुने । प्रसादात्सुमनास्त्वत्र विधेहीति सद्गिरः ॥१८॥
अमाति हृदये हर्षे हृष्टदेहस्तनूरुहम् । उत्कृष्टक्ष्वेडितास्फोटसिंहनादानतीतनन् ॥१९॥
मुनीन्द्र जय वर्धस्व नन्द पुण्यमहीधर । एवं च पुनरुक्ताभिर्वाग्भिरापूरितं नभः ॥२०॥
अमत्रमानय क्षिप्रं स्थालमालोकय द्रुतम् । जाम्बूनदमयीं पात्रीमवलम्बितमाहर ॥२१॥
क्षीरमानीयतामिक्षुः संनिधीक्रियतां दधि । राजते भाजने भव्ये लघु स्थापय पायसम् ॥२२॥
शर्करां वरंग कर्करं कुरु करण्डके । कर्पूरपूरितं क्षिप्रं पूपकापटलं नय ॥२३॥
स्थाप्या कलशे सारा तस्या विधिवद्धिते । मोदकान् परमोदारान् प्रमोदाद्देहि दक्षिणे ॥२४॥
एवमादिभिरालापैराकुलैः कुलयोषिताम् । पुरुषाणां च तन्मध्ये पुरमासीत्तदात्मकम् ॥२५॥
अतिपर्याकुलो नार्थं मन्यते, नार्भका अपि । आलोक्यन्ते तदा तत्र सुमहासंभ्रमैर्जनैः ॥२६॥
वेगिभिः पुरुषैः कैश्चिदागच्छद्भिः सुसंकटे । पात्यन्ते विशिखामार्गे जना भाजनपाणयः ॥२७॥
एवमत्युन्नतस्वान्तं कृतसंभ्रान्तचेष्टितम् । उन्मत्तमिव संवृत्तं नगरं सर्वतस्ततः ॥२८॥
कोलाहलेन लोकस्य वचस्तेन च तेजसा । आलानविपुलस्तम्भान् बभञ्जुः कुञ्जरा अपि ॥२९॥

दृष्टि, जन्म, कर्म, बुद्धि, शरीर और चरितको सार्थक करो। इस प्रकार श्रीरामके दर्शनमें लगे हुए नगरवासी लोगोंका बहुत भारी आश्चर्यसे भरा सुन्दर कोलाहलपूर्ण शब्द उठ खड़ा हुआ ॥१३–१४॥

तदनन्तर नगरीमें रामके प्रवेश करते ही समयानुकूल चेष्टा करनेवाले नर-नारियोंके समूहसे नगरके लम्बे-चौड़े मार्ग भर गये ॥१५॥ नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे परिपूर्ण पात्र जिनके हाथमें थे तथा जो जलकी झारी धारण कर रही थीं ऐसी उत्सुकतासे भरी अनेक उत्तम स्त्रियाँ खड़ी हो गयीं ॥१६॥ अनेक मनुष्य पूर्ण तैयारीके साथ मनोज्ञ जलसे भरे पूर्ण कलश ले-लेकर आ पहुँचे ॥१७॥ 'हे स्वामिन्! यहाँ आइए, हे स्वामिन्! यहाँ ठहरिए, हे मुनिराज! प्रसन्नता-पूर्वक यहाँ विराजिए' इत्यादि उत्तमोत्तम शब्द चारों ओर फैल गये ॥१८॥ हृदयमें हर्षके नहीं समानेपर जिनके शरीरमें रोमांच निकल रहे थे ऐसे कितने ही लोग जोर-जोरसे अस्पष्ट सिंहनाद कर रहे थे ॥१९॥ 'हे मुनीन्द्र! जय हो, हे पुण्यके पर्वत! वृद्धिगत होओ तथा समृद्धिमान् होओ' इस प्रकारके पुनरुक्त वचनोंसे आकाश भर गया था ॥२०॥ 'शीघ्र ही बरतन लाओ, स्थालको जल्दी देखो, सुवर्णकी थाली जल्दी लाओ, दूध लाओ, गन्ना लाओ, दही पासमें रखो, चाँदीके उत्तम बरतनमें शीघ्र ही खीर रखो, शीघ्र ही खड़ी शक्कर-मिश्री लाओ, इस बरतनमें कर्पूरसे सुवासित शीतल जल भरो, शीघ्र ही पूड़ियोंका समूह लाओ, कलशमें शीघ्र ही विधिपूर्वक उत्तम शिखरिणी रखो, अरी, चतुरे! हर्षपूर्वक उत्तम बड़े-बड़े लड्डू दे' इत्यादि कुलांगनाओं और पुरुषोंके शब्दोंसे वह नगर तन्मय हो गया ॥२१–२५॥ उस समय उस नगरमें लोग इतने सम्भ्रममें पड़े हुए थे कि भारी जरूरतके कार्यको भी लोग नहीं मानते थे और न कोई बच्चोंको ही देखते थे ॥२६॥ सकरी गलियोंमें बड़े वेगसे आनेवाले कितने ही लोगोंने हाथोंमें बरतन लेकर खड़े हुए मनुष्य गिरा दिये ॥२७॥ इस प्रकार जिसमें लोगोंके हृदय अत्यन्त उन्नत थे तथा जिसमें हड़बड़ाहटके कारण विरुद्ध चेष्टाएँ की जा रही थीं ऐसा वह नगर सब ओरसे उन्मत्तके समान हो गया था ॥२८॥ लोगोंके उस भारी

तेषां कपोलपालीषु पालिता विपुलाश्चिरम् । प्लावयन्तः पयःपूरा गण्डश्रोत्रविनिर्गताः ॥३०॥
उत्कर्णनेत्रमध्यस्थतारका. कवलत्यजः । उद्ग्रीवा वाजिनस्तस्थुः कृतगम्भीरहेषिता ॥३१॥
आकुलाध्यक्षलोकेन [1]कृतानुगमना. परे । चक्रुरत्याकुलं लोकं त्रस्तास्त्रुटितबन्धनाः ॥३२॥
एवंविधो जनो यावद्भवद्दानतत्परः । परस्परमहाक्षोभपरिपूरणचञ्चल. ॥३३॥
तावच्छ्रुत्वा घनं घोरं क्षुब्धसागरसंमितम् । प्रासादान्तर्गतो राजा प्रतिनन्दीत्यनन्दितः ॥३४॥
सहसा क्षोभमापन्नः किमेतदिति सस्वरम् । हर्म्यमूर्द्धानमारुक्षत् परिच्छदसमन्वितः ॥३५॥
ततः प्रधानसाधुं त वीक्ष्य लोकविशेषकम् । कलङ्कपङ्कनिर्मुक्तशशाङ्कधवलच्छविम् ॥३६॥
आज्ञापयद् बहून् वीरान् यथैनं मुनिसत्तमम् । व्यतिपत्य द्रुतं प्रीत्या परिप्रापयतात्र मे ॥३७॥
यदाज्ञापयति स्वामीत्युक्त्वा प्रव्रजितास्ततः । राजमानवसिंहास्ते समुत्सारितजन्तवः ॥३८॥
गत्वा व्यज्ञापयन्नेवं मस्तकन्यस्तपाणयः । मुनिं मधुरवाणीकास्तत्कान्तिहृतचेतसः ॥३९॥
भगवन्नीप्सितं[2] वस्तु गृहाणेत्यस्मदीश्वरः । विज्ञापयति भक्त्या त्वां सदनं तस्य गम्यताम् ॥४०॥
अपथ्येन विवर्णेन विरसेन रसेन च । पृथग्जनप्रणीतेन किमनेन तवान्धसा ॥४१॥
एह्यागच्छ महासाधो प्रसादं कुरु याचितः । अन्नं यथेप्सितं स्वैरमुपभुङ्क्ष्व निराकुलम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा दातुमुद्युक्ता भिक्षां प्रवरयोषित. । विषण्णचेतसो राजपुरुषैरपसारिताः ॥४३॥
उपचारप्रकारेण जातं ज्ञात्वान्तरायकम् । राजपौरान्नतः साधुः सर्वतोऽभूत्पराङ्मुखः ॥४४॥

कोलाहल और तेजके कारण हाथियोने भी बांधनेके खम्भे तोड़ डाले ॥२९॥ उनकी कपोल-पालियोमे जो मदजल अधिक मात्रामे चिरकालसे सुरक्षित था वह गण्डस्थल तथा कानोके विवरों-से निकल-निकलकर पृथिवीको तर करने लगा ॥३०॥ जिनके कान खड़े थे, जिनके नेत्रोकी पुतलियां नेत्रोके मध्यमे स्थित थी, जिन्होने घास खाना छोड दिया था, और जिनकी गरदन ऊपरकी ओर उठ रही थी ऐसे घोडे गम्भीर हिनहिनाहट करते हुए भयभीत दशामे खडे थे ॥३१॥ जिन्होने भयभीत होकर बन्धन तोड़ दिये थे तथा जिनके पीछे-पीछे घबडाये हुए सईस दौड़ रहे थे ऐसे कितने ही घोडोने मनुष्योको व्याकुल कर दिया ॥३२॥ इस प्रकार जबतक दान देनेमे तत्पर मनुष्य पारस्परिक महाक्षोभसे चंचल हो रहे थे तबतक क्षुभित सागरके समान उनका घोर शब्द सुनकर महलके भीतर स्थित प्रतिनन्दी नामका राजा कुछ रुष्ट हो सहसा क्षोभको प्राप्त हुआ और 'यह क्या है' इस प्रकार शब्द करता हुआ परिकरके साथ शीघ्र ही महलकी छतपर चढ़ गया॥३३–३५॥ तदनन्तर महलकी छतसे लोगोके तिलक और कलंकरूपी पंकसे रहित चन्द्रमाके समान धवल कान्तिके धारक उन प्रधान साधुको देखकर राजाने बहुत-से वीरोको आज्ञा दी कि शीघ्र ही जाकर तथा प्रीतिपूर्वक नमस्कार कर इन उत्तम मुनिराजको यहाँ मेरे पास ले आओ ॥३६–३७॥ 'स्वामी जो आज्ञा करे' इस प्रकार कहकर राजाके प्रधान पुरुष, लोगोकी भीड़को चीरते हुए उनके पास गये ॥३८॥ और वहाँ जाकर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मधुर वाणीसे युक्त और उनकी कान्तिसे हृत चित्त होते हुए इस प्रकार निवेदन करने लगे कि ॥३९॥ हे भगवन् ! इच्छित वस्तु ग्रहण कीजिए इस प्रकार हमारे स्वामी भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हैं सो उनके घर पधारिए ॥४०॥ अन्य साधारण मनुष्योके द्वारा निर्मित अपथ्य, विवर्ण और विरस भोजनसे आपको क्या प्रयोजन है ॥४१॥ हे महासाधो ! आओ प्रसन्नता करो, और इच्छानुसार निरा-कुलतापूर्वक अभिलषित आहार ग्रहण करो ॥४२॥ ऐसा कहकर भिक्षा देनेके लिए उद्यत उत्तम स्त्रियोको राजाके सिपाहियोने दूर हटा दिया जिससे उनके चित्त विषादयुक्त हो गये ॥४३॥ इस

---

१. कृतातुरा गता. परे म. । २. -मीक्षित म ।

नगर्यास्तत्र निर्याति यतावतियतात्मनि । पूर्वस्मादपि संजातः संक्षोभः परमो जने ॥४५॥

आर्याच्छन्दः

उत्कण्ठाकुलहृदयं कृत्वा लोकं [1]समस्तमस्तसुख ।
गत्वा श्रमणोऽरण्यं गहनं नक्तं समाचचार प्रतिमाम् ॥४६॥
दृष्ट्वा तथाविधं तं पुरुषरविं चारुचेष्टितं नयनहरम् ।
जाते पुनर्वियोगे तिर्यञ्चोऽप्युत्तमामधृतिमाजग्मुः ॥४७॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पुरसंक्षोभाभिधानं नाम विंशोत्तरशतं पर्व ॥१२०॥



तरह उपचारकी विधिसे उत्पन्न हुआ अन्तराय जानकर मुनिराज, राजा तथा नगरवासी दोनोंके अन्नसे विमुख हो गये ॥४४॥ तदनन्तर अत्यन्त यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करनेवाले मुनिराज जब नगरीसे वापस लौट गये तब लोगोंमें पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक क्षोभ हो गया ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने इन्द्रिय सम्बन्धी सुखका त्याग कर दिया था ऐसे मुनिराज समस्त मनुष्योंको उत्कण्ठासे व्याकुल हृदय कर सघन वनमें चले गये और वहाँ उन्होंने रात्रि-भरके लिए प्रतिमा योग धारण कर लिया अर्थात् सारी रात कायोत्सर्गसे खड़े रहे ॥४६॥ सुन्दर चेष्टाओंके धारक नेत्रोंको हरण करनेवाले तथा पुरुषोंमें सूर्य समान उन वैसे मुनिराजको देखनेके बाद जब पुनः वियोग होता था तब तिर्यंच भी अत्यधिक अधीरताको प्राप्त हो जाते थे ॥४७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा प्रणीत पद्मपुराणमें नगरके क्षोभका वर्णन करनेवाला एक सौ बीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२०॥



---

१. समस्तमुत्सर्ग' ब. ।

एकविंशोत्तरशतं पर्व

अथ द्वादशमादाय द्वितीयं मुनिपुङ्गवः । सहिष्णुरितरागम्यं चकार समवग्रहम् ॥१॥
अस्मिन् मृगकुलाकीर्णे वने या मम जायते । भिक्षा तामेव गृह्णामि सन्निवेशं विशामि न ॥२॥
इति तत्र समारूढे मुनौ घोरमुपग्रहम्[1] । दुष्टाश्वेन हृतो राजा प्रतिनन्दी प्रसूतिना ॥३॥
अन्विष्यन्ती जनौघेभ्यो हृतिमार्गं समाकुला । स्थूरीपृष्ठसमारूढा महिषी प्रभवाह्वया ॥४॥
किं भवेदिति भूयिष्ठ चिन्तयन्ती त्वरावती । प्रातिष्ठतानुमार्गेण भटचक्रसमन्विता ॥५॥
ह्रियमाणस्य भूपस्य सरः सवृत्तमन्तरे । तत्र पङ्के ययुर्मग्नः कलत्र इव गेहिकाः ॥६॥
ततः प्राप्ता वरारोहा वीक्ष्य पद्मादिमत्सरः । किंचित्स्मिताननावोचत्साध्वेवाश्वो[2] नृपाव्यधात् ॥७॥
अपाहरिष्यथ नो चेद्दृक्ष्यत ततः कुतः । सरो नन्दनपुष्पाढ्यमभिकाङ्क्षितदर्शनम् ॥८॥
सफलोद्यानयात्राथो याता यत्सुमनोहरम् । वनान्तरमिदं दृष्टमासेचनकदर्शनम् ॥९॥
इति नर्मपरं कृत्वा जल्पितं प्रियसंगता । सखीजनावृता तस्थौ सरसस्तस्य [3]रोधसि ॥१०॥
प्रक्रीड्य विमले तोये विधाय कुसुमोच्चयम् । परस्परमलंकृत्य दम्पती भोजने स्थितौ ॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे साधुरुपवासविधिं गतः । तयोः सन्निधिमासीदत् क्रियामार्गविशारदः ॥१२॥
तं समीक्ष्य समुद्भूतप्रमदः पुलकान्वितः । अभ्युत्तस्थौ सपत्नीको राजा परमसंभ्रमः ॥१३॥

अथानन्तर कष्ट सहन करनेवाले, मुनिश्रेष्ठ श्रीरामने पाँच दिनका दूसरा उपवास लेकर यह अवग्रह किया कि मृग समूहसे भरे हुए इस वनमे मुझे जो भिक्षा प्राप्त होगी उसे ही मै ग्रहण करूँगा—भिक्षाके लिए नगरमे प्रवेश नही करूँगा ॥१-२॥ इस प्रकार कठिन अवग्रह लेकर जब मुनिराज वनमे विराजमान थे तब एक प्रतिनन्दी नामका राजा दुष्ट घोड़ेके द्वारा हरा गया ॥३॥ तदनन्तर उसकी प्रभवा नामकी रानी शोकातुर हो मनुष्योके समूहसे हरणका मार्ग खोजती हुई घोडेपर चढ़कर निकली । अनेक योधाओका समूह उसके साथ था । 'क्या होगा ? कैसे राजाका पता चलेगा ?' इस प्रकार अत्यधिक चिन्ता करती हुई वह बड़े वेगसे उसी मार्गसे निकली ॥४-५॥ हरे जानेवाले राजाके बीचमे एक तालाब पड़ा सो वह दुष्ट अश्व उस तालाबकी कीचड़मे उस तरह फँस गया जिस तरह कि गृहस्थ स्त्रीमे फँस रहता है ॥६॥ तदनन्तर सुन्दरी रानी, वहाँ पहुँचकर और कमल आदिसे युक्त सरोवरको देखकर कुछ मुसकराती हुई बोली कि राजन् ! घोड़ाने अच्छा ही किया ॥७॥ यदि आप इस घोडेके द्वारा नही हरे जाते तो नन्दन वन जैसे पुष्पोसे सहित यह सुन्दर सरोवर कहाँ पाते ? इसके उत्तरमे राजाने कहा कि हाँ यह उद्यान-यात्रा आज सफल हुई जब कि जिसके देखनेसे तृप्ति नही होती ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनके मध्य तुम आ पहुँची ॥८-९॥ इस प्रकार हास्यपूर्ण वार्ताकर पतिके साथ मिली रानी, सखियोसे आवृत हो उसी सरोवरके किनारे ठहर गयी ॥१०॥

तदनन्तर निर्मल जलमे क्रीड़ा कर, फूल तोड़कर तथा परस्पर एक दूसरेको अलंकृत कर जब दोनो दम्पति भोजन करनेके लिए बैठे तब इसी बीचमे उपवासकी समाप्तिको प्राप्त एवं साधुकी क्रियामे निपुण मुनिराज राम, उनके समीप आये ॥११-१२॥ उन्हे देख जिसे हर्ष उत्पन्न हुआ था, तथा रोमांच उठ आये थे ऐसा राजा रानीके साथ घबड़ा कर उठकर खड़ा

---

१ मुपग्रहे म., ज. । २ साध्वेवाश्वो नृपाविधत् म. । साध्विवाश्वो नृपाविधत् ज । ३. रोधिता म. ।

प्रणम्य स्थीयतामत्र भगवन्निति शब्दवान् । संशोध्य भूतलं चक्रे कमलादिभिरर्चितम् ॥१४॥
सुगन्धिजलसंपूर्णं पात्रमुद्धृत्य भामिनी । देवी वारि ददौ राजा पादावक्षालयन्मुनेः ॥१५॥
शुचिश्चामोदसर्वाङ्गस्ततो राजा सहादरः । क्षैरेयादिकमाहारं सद्गन्धरसदर्शनम् ॥१६॥
हेमपात्रगतं कृत्वा श्रद्धया परयान्वितः । श्राद्धः स पर्यवेविष्ट पात्रे परममुत्तमे ॥१७॥
ततोऽन्नं दीयमानं तद्वृद्धिमेत्यभिभाजनम् । सुदानकारणादार्द्रमनोरथगुणोपमम् ॥१८॥
तुष्ट्यादिभिर्गुणैर्युक्तं ज्ञात्वा दातारमुत्तमम् । प्रहृष्टमनसो देवा विहायस्यभ्यनन्दयन् ॥१९॥
अनुकूलो ववौ वायुः पञ्चवर्णां सुसौरभाम् । पुष्पवृष्टिममुञ्चन्त त्रिदशाः प्रमदान्विताः ॥२०॥
चित्रश्रोत्रहरो जज्ञे पुष्करे[1] दुन्दुभिस्वनः । अप्सरोगणसंगीतप्रवरध्वनिसंगतः ॥२१॥
तुष्टाः कन्दर्पिणो देवाः कृतानेकविधस्वनाः । चकार बहुलं व्योम्नि ननृतुश्च रसाकुलम् ॥२२॥
अहो दानमहो दानमहो पात्रमहो विधिः । अहो देयमहो दाता साधु साधु परं कृतम् ॥२३॥
वर्द्धस्व जय नन्देति प्रभृतिः परमाकुलः । विहायोमण्डपव्यापी निःस्वनस्त्रिदशोऽभवत् ॥२४॥
नानारत्नसुवर्णादिद्रव्यवृष्टिविधात्मिका । पपात वसुधारा च द्योतयन्ती दिशो दश ॥२५॥
पूजामवाप्य देवेभ्यो मुनेर्देशव्रतानि च । विशुद्धदर्शनो राजा पृथिव्यामाप गौरवम् ॥२६॥

उपजातिः

एवं सुदानं विनियोज्य पात्रे भक्तिप्रणम्रो नृपतिः सजानिः[2] ।
वहन्नितान्तं परमं प्रमोदं मनुष्यजन्माप्तफलं विवेद ॥२७॥

हो गया ॥१३॥ उसने प्रणाम कर कहा कि हे भगवन् ! खडे रहिए, तदनन्तर पृथ्वीतलको शुद्ध कर उसे कमल आदिसे पूजित किया ॥१४॥ रानीने सुगन्धित जलसे भरा पात्र उठाकर जल दिया और राजाने मुनिके पैर धोये ॥१५॥ तदनन्तर जिसका समस्त शरीर हर्षसे युक्त था ऐसे उज्ज्वल राजाने बडे आदरके साथ उत्तम गन्ध रस और रूपसे युक्त खीर आदिक आहार सुवर्ण पात्रमे रखा और उसके बाद उत्कृष्ट श्रद्धासे सहित हो वह उत्तम आहार उत्तम पात्र अर्थात् मुनिराजको समर्पित किया ॥१६–१७॥ तदनन्तर जिस प्रकार दयालु मनुष्यका दान देनेका मनोरथ बढ़ता जाता है उसी प्रकार मुनिके लिए दिया जानेवाला अन्न उत्तम दानके कारण वर्तनमे वृद्धिको प्राप्त हो गया था। भावार्थ—श्रीराम मुनि अक्षीण ऋद्धिके धारक थे इसलिए उन्हे जो अन्न दिया गया था वह अपने वर्तनमे अक्षीण हो गया था ॥१८॥ दाताको श्रद्धा तुष्टि भक्ति आदि गुणोसे युक्त उत्तम दाता जानकर देवोने प्रसन्नचित्त हो आकाशमे उसका अभिनन्दन किया अर्थात् पंचाश्चर्य किये ॥१९॥ अनुकूल—शीतल मन्द सुगन्धित वायु चली, देवोने हर्षित हो पाँच वर्णकी सुगन्धित पुष्पवृष्टि की, आकाशमे कानोको हरनेवाला नाना प्रकारका दुन्दुभि नाद हुआ, अप्सराओके संगीतकी उत्तम ध्वनि उस दुन्दुभिनादके साथ मिली हुई थी, सन्तोषसे युक्त कन्दर्प जातिके देवोने अनेक प्रकारके शब्द किये तथा आकाशमे नानारसपूर्ण अनेक प्रकारका नृत्य किया ॥२०–२२॥ अहो दान, अहो पात्र, अहो विधि, अहो देय, अहो दाता तथा धन्य-धन्य आदि शब्द आकाशमे किये गये ॥२३॥ बढ़ते रहो, जय हो, तथा समृद्धिमान् होओ आदि देवोके विशाल शब्द आकाशरूपी मण्डपमे व्याप्त हो गये ॥२४॥ इनके सिवाय नाना प्रकारके रत्न तथा सुवर्णादि उत्तम द्रव्योसे युक्त धनकी वृष्टि दशों दिशाओ-को प्रकाशित करती हुई पड़ी ॥२५॥ विशुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक राजा प्रतिनन्दी देवोसे पूजा तथा मुनिसे देशव्रत प्राप्तकर पृथिवीमे गौरवको प्राप्त हुआ ॥२६॥ इस प्रकार भक्तिसे नम्रीभूत भार्यासहित राजाने सुपात्रके लिए दान देकर अत्यधिक हर्षका अनुभव किया

---

१ आकाशे। २ जायासहित।

उपेन्द्रवज्रा

रामोऽपि कृत्वा समयोदितार्थं विविक्तशय्यासनमध्यवर्ती ।
तपोऽतिदीप्तो विजहार युक्तं मह्यां रविः प्राप्त इव द्वितीयः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीपद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते दानप्रसङ्गाभिधानं नामैकविंशोत्तरशत पर्व ॥१२१॥



और मनुष्य जन्मको सफल माना ॥२७॥ इधर श्रीरामने भी आगममे कहे अनुसार प्रवृत्ति कर, एकान्त स्थानमे शयनासन किया तथा तपसे अत्यन्त देदीप्यमान हो पृथिवीपर उस तरह योग्य विहार किया कि जिस तरह मानो दूसरा सूर्य ही पृथिवीपर आ पहुँचा हो ॥२८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे श्रीरामके आहार दानका वर्णन करनेवाला एक सौ इक्कीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२१॥



द्वाविंशत्युत्तरशतं पर्व

भगवान् बलदेवोऽसौ प्रशान्तरतिमत्सरः । अत्युन्नतं तपश्चक्रे सामान्यजनदुःसहम् ॥१॥
[1]अष्टमाद्युपवासस्थः [2]समध्यस्थे विरोचने । पर्युपास्यत गोपाद्यैररण्ये गोचरं भ्रमन् ॥२॥
व्रतगुप्तिसमित्याद्यसमयज्ञो जितेन्द्रियः । साधुवात्सल्यसंपन्नः स्वाध्यायनिरतः सुकृत् ॥३॥
लब्धानेकमहालब्धिरपि निर्विक्रियः परः । परीषहभटं मोहं पराजेतुं समुद्यतः ॥४॥
तपोऽनुभावतः शान्तैर्व्याघ्रैः सिंहैश्च वीक्षितः । विस्तारिलोचनोद्ग्रीवैर्मृगाणां च कदम्बकैः ॥५॥
निःश्रेयसगतस्वान्तः स्पृहासक्तिविवर्जितः । प्रयत्नपरमं मार्गं विजहार वनान्तरे ॥६॥
शिलातलस्थितो जातु पर्यङ्कासनसंस्थितः । ध्यानान्तरं विवेशासौ भानुर्मेघान्तरं यथा ॥७॥
मनोज्ञे क्वचिदुद्देशे प्रलम्बितमहाभुजः । अस्थान्मन्दरनिष्कम्पचित्तः प्रतिमया प्रभुः ॥८॥
युगान्तवीक्षणः श्रीमान् प्रशान्तो विहरन् क्वचित् । वनस्पतिनिवासाभिः सुरस्त्रीभिरपूज्यत ॥९॥
एवं निरुपमात्मासौ तपश्चक्रे तथाविधम् । कालेऽस्मिन् दुःषमे शक्यं ध्यातुमप्यपरैर्नयत् ॥१०॥
ततोऽसौ विहरन् साधुः प्राप्तः[3] कोटिशिलां क्रमात् । नमस्कृत्योद्धृता पूर्वं भुजाभ्यां लक्ष्मणेन या ॥११॥
महात्मा तां समारुह्य प्रच्छिन्नस्नेहबन्धनः । तस्थौ प्रतिमया रात्रौ कर्मक्षपणकोविदः ॥१२॥

अथानन्तर जिनके राग-द्वेष शान्त हो चुके थे ऐसे श्रीभगवान् बलदेवने सामान्य मनुष्योंके लिए अशक्य अत्यन्त कठिन तप किया ॥१॥ जब सूर्य आकाशके मध्यमे चमकता था तब तेला आदिका उपवास धारण करनेवाले राम वनमे आहारार्थ भ्रमण करते थे और गोपाल आदि उनकी उपासना करते थे ॥२॥ वे व्रत गुप्ति समिति आदिके प्ररूपक शास्त्रोंके जाननेवाले थे, जितेन्द्रिय थे, साधुओंके साथ स्नेह करनेवाले थे, स्वाध्यायमें तत्पर थे, अनेक उत्तम कार्योके विधायक थे, अनेक महाऋद्धियाँ प्राप्त होनेपर भी निर्विकार थे, अत्यन्त श्रेष्ठ थे, परीषह रूपी योद्धा तथा मोहको जीतनेके लिए उद्यत रहते थे, तपके प्रभावसे व्याघ्र और सिंह शान्त होकर उनकी ओर देखते थे, जिनके नेत्र हर्षसे विस्तृत थे तथा जिन्होने अपनी गरदन ऊपरकी ओर उठा ली थी ऐसे मृगोके झुण्ड बड़े प्रेमसे उन्हे देखते थे, उनका चित्त मोक्षमे लग रहा था, तथा जो इच्छा और आसक्तिसे रहित थे। इस प्रकार उत्तम गुणोंको धारण करनेवाले भगवान् राम वनके मध्य बड़े प्रयत्नसे—ईर्यासमिति पूर्वक मार्गमे विहार करते थे ॥३–६॥ कभी शिलातल पर खड़े होकर अथवा पर्यंकासनसे विराजमान होकर उस तरह ध्यानके भीतर प्रवेश करते थे जिस तरह कि सूर्य मेघोके भीतर प्रवेश करता है ॥७॥ वे प्रभु कभी किसी सुन्दर स्थानमें दोनो भुजाएँ नीचे लटकाकर मेरुके समान निष्कम्पचित्त हो प्रतिमायोगसे विराजमान होते थे ॥८॥ कही अत्यन्त शान्त एवं वैराग्य रूपी लक्ष्मीसे युक्त राम जूड़ा प्रमाण भूमिको देखते हुए विहार करते थे और वनस्पतियो पर निवास करनेवाली देवांगनाएँ उनकी पूजा करती थी ॥९॥ इस प्रकार अनुपम आत्माके धारक महामुनि रामने जो उस प्रकार कठिन तप किया था, इस दुःषम नामक पंचम कालमे अन्य मनुष्य उसका ध्यान नही कर सकते हैं ॥१०॥ तदनन्तर विहार करते हुए राम क्रम-क्रमसे उस कोटिशिलापर पहुँचे जिसे पहले लक्ष्मणने नमस्कार कर भुजाओसे उठाया था ॥११॥ जिन्होने स्नेहका बन्धन तोड़ दिया था तथा जो कर्मोका क्षय करनेके लिए उद्यत थे ऐसे महात्मा श्रीराम उस शिलापर आरूढ़ हो रात्रिके समय प्रतिमायोगसे विराजमान हुए ॥१२॥

---

१. अष्टम्याद्युप-म । २. स्वमध्यस्थे म. । ३. प्राप्त -म. ।

अथासावच्युतेन्द्रेण [1]प्रयुक्तावधिचक्षुषा । उदारस्नेहयुक्तेन सीतापूर्वेण वीक्षितः ॥१३॥
आत्मनो भवसंवर्त्तं संस्मृत्य च यथाक्रमम् । जिनशासनमार्गस्य प्रभवं च महोत्तमम् ॥१४॥
दध्यौ सोऽयं नराधीशो रामो भुवनभूषणः । योऽभवन्मानुषे लोके स्त्रीभूतायाः पतिर्मम ॥१५॥
पश्य कर्मविचित्रत्वान्मानसस्य विचेष्टितम् । अन्यथाकाङ्क्षितं पूर्वमन्यथा काङ्क्ष्यतेऽधुना ॥१६॥
कर्मणः पश्यताधानं ही शुभाशुभयोः पृथक् । विचित्रं जन्म लोकस्य यत्साक्षादिदमीक्ष्यते ॥१७॥
जगतो विस्मयकरौ सीरिचक्रायुधाविमौ । जातावूर्द्ध्वाधरस्थानभाजावुचितकर्मतः ॥१८॥
एकः प्रक्षीणसंसारो ज्येष्ठश्चरमदेहधृक् । द्वितीयः पूर्णसंसारो निरये दुःखितोऽभवत् ॥१९॥
विषयैरवितृप्तात्मा लक्ष्मणो दिव्यमानुषैः । अधोलोकमनुप्राप्तः कृतपापोऽभिमानतः ॥२०॥
राजीवलोचनः श्रीमानेषोऽसौ लाङ्गलायुधः । विप्रयोगेन सौमित्रेरुपेतः शरणं जिने ॥२१॥
बहिः शत्रून् पराजित्य हलरत्नेन सुन्दरः । इन्द्रियाण्यधुना जेतुमुद्यतो ध्यानशक्तितः ॥२२॥
तदस्य क्षपकश्रेणिमारूढस्य करोमि यत् । इह येन वयस्यो मे ध्यानभ्रष्टोऽभिजायते ॥२३॥
ततोऽनेन सह प्रीत्या महामैत्रीसमुत्थया । मेरुं नन्दीश्वरं वापि सुखं यास्यामि शोभया ॥२४॥
विमानशिखरारूढौ विभूत्या परयान्वितौ । अन्योन्यं वेदयिष्यावो दुःखानि च सुखानि च ॥२५॥
[2]सौमित्रिमधरप्राप्तमानेतुं प्रतिबुद्धताम् । सह तेनागमिष्यामि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥२६॥
इदमन्यच्च संचिन्त्य सीतादेवः स्वयंप्रभः । सौधर्मकल्पमन्येन समागादारुणाच्युतात् ॥२७॥

अथानन्तर जिसने अवधिज्ञानरूपी नेत्रका प्रयोग किया था तथा जो अत्यधिक स्नेहसे युक्त था ऐसे सीताके पूर्व जीव अच्युत स्वर्गके प्रतीन्द्रने उन्हे देखा ॥१३॥ उसी समय उसने अपने पूर्व भव तथा जिनशासनके महोत्तम माहात्म्यको क्रमसे स्मरण किया ॥१४॥ स्मरण करते ही उसे ध्यान आ गया कि ये संसारके आभूषण स्वरूप वे राजाराम हैं जो मनुष्य लोकमे जब मैं सीता थी तब मेरे पति थे ॥१५॥ वह प्रतीन्द्र विचार करने लगा कि अहो कर्मोकी विचित्रतासे होनेवाली मनकी विविध चेष्टाको देखो जो पहले अन्य प्रकारकी इच्छा थी और अब अन्य प्रकारकी इच्छा हो रही है ॥१६॥ अहो ! कार्योकी शुभ-अशुभ कर्मोमे जो पृथक्-पृथक् प्रवृत्ति है उसे देखो। लोगोका जन्म विचित्र है जो कि यह साक्षात् ही दिखाई देता है ॥१७॥ ये बलभद्र और नारायण जगत्को आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले थे पर अपने-अपने योग्य कर्मोंके प्रभावसे ऊर्ध्व तथा अधःस्थान प्राप्त करनेवाले हुए अर्थात् एक लोकके ऊर्ध्व भागमे विराजमान होगे और एक अधोलोकमें उत्पन्न हुआ ॥१८॥ इनमे एक बड़ा तो क्षीण संसारी तथा चरम शरीरी है और दूसरा छोटा—लक्ष्मण, पूर्ण संसारी नरकमे दुःखी हो रहा है ॥१९॥ दिव्य तथा मनुष्य सम्बन्धी भोगोसे जिसकी आत्मा तृप्त नही हुई ऐसा लक्ष्मण पापकर अभिमानके कारण नरकमे दुःखी हो रहा है ॥२०॥ यह कमललोचन श्रीमान् बलभद्र, लक्ष्मणके वियोगसे जिनेन्द्र भगवान्की शरणमे आया है ॥२१॥ यह सुन्दर, पहले हलरत्नसे बाह्य शत्रुओंको पराजित कर अब ध्यानकी शक्तिसे इन्द्रियोको जीतनेके लिए उद्यत हुआ है ॥२२॥ इस समय यह क्षपक श्रेणीमे आरूढ है इसलिए मैं ऐसा काम करता हूँ कि जिससे यह मेरा मित्र ध्यानसे भ्रष्ट हो जाय ॥२३॥ [और मोक्ष न जाकर स्वर्गमे ही उत्पन्न हो] तब महामित्रतासे उत्पन्न प्रीतिके कारण इसके साथ सुखपूर्वक मेरुपर्वत और नन्दीश्वर द्वीपको जाऊँगा उस समयकी शोभा ही निराली होगी। विमानके शिखरपर आरूढ़ तथा परम विभूतिके सहित हम दोनों एक दूसरेके लिए अपने दुःख और सुख बतलावेगे ॥२४–२५॥ फिर अधोलोकमे पहुँचे हुए लक्ष्मणको प्रतिबुद्धता प्राप्त करानेके लिए शुभकार्यके करनेवाले उन्ही रामके साथ जाऊँगा ॥२६॥ यह तथा इसी प्रकारका अन्य

---

१ प्रत्युक्ता-म.। २. सौमित्रिमथ सम्प्राप्त-म.।

तत्रावततरति स्फीतं तन्मह्यां नन्दनायते । वनं यत्र स्थितः साधुर्ध्यानयोगेन राघवः ॥२८॥
बहुपुष्परजोवाही ववौ वायुः सुखावहः । कोलाहलरवो रम्यः पक्षिणां सर्वतोऽभवत् ॥२९॥
प्रबलं चञ्चरीकाणां चञ्चलं वकुले कुलम् । प्रघुष्टं [1]परपुष्टानां पुष्टं जुष्टं कदम्बकैः ॥३०॥
[2]रुरुवुः सारिकाश्चारुगानास्वरविशारदाः । चिक्रीडुर्विशदस्वाना शुकाः संप्राप्तकिंशुकाः ॥३१॥
मञ्जर्यः सहकाराणां विरेजुर्भ्रमरान्विताः । [3]तोरका इव संजाता[4] नूतनाश्चित्तजन्मनः ॥३२॥
कुसुमैः कर्णिकाराणामरण्यं पिञ्जरीकृतम् । पीतपिष्टातकेनेव कर्तुं क्रीडनमुद्यतम् ॥३३॥
अनपेक्षितगण्डूषमदिरानेकदोहदः । ववृषे [5]वकुलः प्रावृट् नवोम्भवकुलैरिव ॥३४॥
जानकीवेषमास्थाय कामरूपः सुरोत्तमः । समीपं रामदेवस्य मन्थरं गन्तुमुद्यतः ॥३५॥
मनोऽभिरमणे तस्मिन् वने जनविवर्जिते । विचित्रपादपव्याप्ते सर्वर्तुकुसुमाकुले ॥३६॥
सीता किल महाभागा पर्यटन्ती सुखं वनम् । अकस्मादग्रतः साधोः सुन्दरी समदृश्यत ॥३७॥
अवोचत च दृष्टोऽसि कथंचिदपि राघव । भ्रमन्त्या विष्टपं सर्वं मया पुण्येन भूरिणा ॥३८॥
वियोगोर्मिसमाकीर्णे स्नेहमन्दाकिनीह्रदे । प्राप्तां सुवदनां नाथ मां सन्धारय साम्प्रतम् ॥३९॥
विचेष्टितैः प्रशिष्टोक्तैर्ज्ञात्वा मुनिमकम्पनम् । मोहपापार्जितस्वान्ता पुरःपार्श्वानुवर्तिनी ॥४०॥
मनोभवज्वरग्रस्ता वेपमानशरीरिका । स्फुरदारुणतुङ्गौष्ठी जगादैव मनोरमा ॥४१॥
अहं देवासमीक्ष्यैव तदा पण्डितमानिनी । दीक्षिता त्वां परित्यज्य विहरामि तपस्विनी ॥४२॥

विचारकर सीताका जीव स्वयंप्रभ देव, अन्य देवोंके साथ आरणाच्युत कल्पसे उतरकर सौधर्म कल्पमें आया ॥२७॥ तदनन्तर सौधर्म कल्पसे चलकर वह पृथिवीके उस विस्तृत वनमें उतरा जो कि नन्दन वनके समान जान पड़ता था और जहाँ महामुनि रामचन्द्र ध्यान लगाकर विराजमान थे ॥२८॥ उस वनमें अनेक फूलोंकी परागको धारण करनेवाली सुखदायक वायु बह रही थी और सब ओर पक्षियोंका मनोहर कल-कल शब्द हो रहा था ॥२९॥ बकुल वृक्षके ऊपर भ्रमरोंका सबल समूह चंचल हो रहा था तथा कोकिलाओंके समूह जोरदार मधुर शब्द कर रहे थे ॥३०॥ नाना प्रकारके सुन्दर शब्द प्रकट करनेमें निपुण मैनाएँ मनोहर शब्द कर रही थीं और पलाश वृक्षोंपर बैठे शुक स्पष्ट शब्दोंका उच्चारण करते हुए क्रीड़ा कर रहे थे ॥३१॥ भ्रमरोंसे सहित आमोंकी मंजरियाँ कामदेवके नूतन तीक्ष्ण बाणोंके समान जान पड़ती थीं ॥३२॥ कनेरके फूलोंसे पीला-पीला दिखनेवाला वन ऐसा जान पड़ता था मानो पीले रंगके चूर्णसे क्रीड़ा करनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३३॥ मदिराके गण्डूषरूपी दोहदकी उपेक्षा करनेवाला बकुल वृक्ष ऐसा बरस रहा था जैसा कि वर्षाकाल मेघोंके समूहसे बरसता है ॥३४॥

अथानन्तर इच्छानुसार रूप बदलनेवाला वह स्वयंप्रभ प्रतीन्द्र जानकीका वेष रख मद-माती चालसे रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३५॥ वह वन मनको हरण करनेवाला, एकान्त, नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त एवं सब ऋतुओंके फूलोंसे व्याप्त था ॥३६॥ तदनन्तर सुखपूर्वक वनमें घूमती हुई सीता महादेवी, अकस्मात् उक्त साधुके आगे प्रकट हुई ॥३७॥ वह बोली कि हे राम ! समस्त जगत्में घूमती हुई मैंने बहुत भारी पुण्यसे जिस किसी तरह आपको देख पाया है ॥३८॥ हे नाथ ! वियोगरूपी तरंगोंसे व्याप्त स्नेहरूपी गंगाकी धारमें पड़ी हुई मुझ सुवदनाको आप इस समय सहारा दीजिए—डूबनेसे बचाइए ॥३९॥ जब उसने नाना प्रकारकी चेष्टाओं और मधुर वचनोंसे मुनिको अकम्प समझ लिया तब मोहरूपी पापसे जिसका चित्त बना था, जो कभी मुनिके आगे खड़ी होती थी और कभी दोनों बगलोंमें जा सकती थी, जो काम-ज्वरसे ग्रस्त थी, जिसका शरीर काँप रहा था और जिसका लाल-लाल ऊँचा ओठ फड़क रहा था ऐसी मनोहारिणी सीता उनसे बोली कि हे देव, अपने आपको पण्डित माननेवाली

१ कोकिलानाम् । २. रुरुदुः म. । ३. बाणा इव । ४ तीक्ष्णा । ५ बकुलै म. ।

तद्विद्याधरकन्याभिरतस्त्वास्मि हृता सती । अवोचे संविपश्चिद्भिरिदं विविधदर्शनैः ॥४३॥
अलं प्रव्रज्यया तावद् [1]वयस्येवं विरुद्धया । इयमत्यन्तवृद्धानां पूज्यते ननु नैष्ठिकी ॥४४॥
यौवनोढ्या तनुः क्वेयं क्व चेदं दुष्करं व्रतम् । [3]शशलक्ष्मणदीधित्या भिद्यते किं महीधरः ॥४५॥
गच्छामस्त्वां पुरस्कृत्य वयं सर्वाः समाहिताः । बलदेवं वरिष्यामस्तव देवि समाश्रयात् ॥४६॥
अस्माकमपि सर्वासां त्वमग्रमहिषी भव । क्रीडामः सह रामेण जम्बूद्वीपतले सुखम् ॥४७॥
अत्रान्तरे समं प्राप्ता नानालङ्कारभूषिताः । भूयःसहस्रसंख्यानाः कन्या दिव्यश्रियान्विताः ॥४८॥
राजहंसवधूलीला मनोज्ञगतिविभ्रमाः । सीतेन्द्रविक्रियाजन्या जग्मुः पद्मजनीपताम् ॥४९॥
वदन्त्यो मधुरं काश्चित्परपुष्टस्वनादपि । विरेजिरेतरां कन्याः साक्षाल्लक्ष्म्य इव स्थिताः ॥५०॥
मनःप्रह्लादनकरं परं श्रोत्ररसायनम् । दिव्यं गेयामृतं चक्रुर्वंशवीणास्वनानुगम् ॥५१॥
भ्रमराञ्चितकेश्यस्ताः क्षणांशुत्वक्तेजसः । सुकुमारास्तलोदर्यः पीनोन्नतपयोधराः ॥५२॥
चारुश्रृङ्गारहासिन्यो नानावर्णसुवाससः । विचित्रविभ्रमालापाः कान्तिपूरितपुष्कराः ॥५३॥
समन्ताच्चक्रिरे मोहं सर्वतोऽवस्थिता मुनेः । श्रीबाहुबलिनः पूर्वं यथा त्रिदशकन्यकाः ॥५४॥
आकृष्य बकुलं काचिच्छायासी[4] चिन्वती क्वचित् । उद्वेजितालिचक्रेण श्रमणं शरणं स्थिता ॥५५॥
काश्चित्किल [5]विवादेन कृतपक्षपरिग्रहाः । पप्रच्छुर्निर्णयं देव किंनामाय वनस्पतिः ॥५६॥

मैं उस समय बिना विचारे ही आपको छोड़कर दीक्षिता हो गयी और तपस्विनी बनकर इधर-उधर विहार करने लगी ॥४०-४२॥ तदनन्तर विद्याधरोंकी उत्तम कन्याएँ मुझे हरकर ले गयी। वहाँ उन विदुषी कन्याओंने नाना उदाहरण देते हुए मुझसे कहा कि ऐसी अवस्थामें यह विरुद्ध दीक्षा धारण करना व्यर्थ है क्योंकि यथार्थमें यह दीक्षा अत्यन्त वृद्धा स्त्रियोंके लिए ही शोभा देती है ॥४३-४४॥ कहाँ तो यह यौवनपूर्ण शरीर और कहाँ यह कठिन व्रत? क्या चन्द्रमाकी किरणसे पर्वत भेदा जा सकता है? ॥४५॥ हम सब तुम्हें आगे कर चलती हैं और हे देवि! तुम्हारे आश्रयसे बलदेवको वरेंगी—उन्हें अपना भर्ता बनावेंगी ॥४६॥ हम सभी कन्याओंके बीच तुम प्रधान रानी होओ। इस तरह रामके साथ हम सब जम्बूद्वीपमें सुखसे क्रीड़ा करेंगी ॥४७॥ इसी बीचमें नाना अलंकारोंसे भूषित तथा दिव्य लक्ष्मीसे युक्त हजारों कन्याएँ वहाँ आ पहुँची ॥४८॥ राजहंसीके समान जिनकी सुन्दर चाल थी ऐसी सीतेन्द्रकी विक्रियासे उत्पन्न हुई वे सब कन्याएँ रामके समीप गयी ॥४९॥ कोयलसे भी अधिक मधुर बोलनेवाली कितनी ही कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थी मानो साक्षात् लक्ष्मी ही स्थित हो ॥५०॥ कितनी ही कन्याएँ मनको आह्लादित करनेवाले, कानोंके लिए उत्तम रसायन स्वरूप तथा बाँसुरी और वीणाके शब्दसे अनुगत दिव्य संगीतरूपी अमृतको प्रकट कर रही थी। जिनके केश भ्रमरोंके समान काले थे, जिनकी कान्ति बिजलीके समान थी, जो अत्यन्त सुकुमार और कृशोदरी थी, स्थूल और उन्नत स्तनोंको धारण करनेवाली थी, सुन्दर श्रृंगार पूर्ण हास्य करनेवाली थी, रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुई थी, नाना प्रकारके हाव-भाव तथा आलाप करनेवाली थी और कान्तिसे जिन्होंने आकाशको भर दिया था ऐसी वे सब कन्याएँ मुनिके चारों ओर स्थित हो उस तरह मोह उत्पन्न कर रही थी, जिस तरह कि पहले बाहुबलीके आसपास खड़ी देव कन्याएँ ॥५१-५४॥ कोई एक कन्या छायाकी खोज करती हुई बकुल वृक्षके नीचे पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने उस वृक्षको खींच दिया जिससे उसपर बैठे भ्रमरोंके समूह उड़कर उस कन्याकी ओर झपटे और उनसे भयभीत हो वह कन्या मुनिकी शरणमें जा खड़ी हुई ॥५५॥ कितनी ही कन्याएँ किसी

१ वयस्येव म., ज. । २ न तु म. । ३ वल्लिर्दमणंदीधित्वो म., शशलक्ष्मणदीधित्वो ज., क., ख. । ४. छायासी । ५ विपादेन म., ज. ।

दूरस्थमाधवीपुष्पग्रहणच्छद्मना परा । स्रंसमानांशुका बाहुमूलं क्षणमदर्शयत् ॥५७॥
आबध्य मण्डलीमन्याश्चलिताकरपल्लवाः । सहस्रतालसंगीता रासकं दातुमुद्यताः ॥५८॥
नितम्बफलके काचिदम्भःस्वच्छारुणांशुके । चण्डातकं नभोनीलं चकार किल लज्जया ॥५९॥
एवंविधक्रियाजालैरितरस्वान्तहारिभिः । अक्षोभ्यत न पद्माभः पवनैरिव मन्दरः ॥६०॥
ऋजुदृष्टिर्विशुद्धात्मा परीषहगणाशनिः । प्रविष्टो [1]धवलध्यानप्रथमं सुप्रभो यथा ॥६१॥
तस्य सत्त्वपदन्यस्तं चित्तमत्यन्तनिर्मलम् । समेतमिन्द्रियैरासीदात्मनः प्रवणं परम् ॥६२॥
कुर्वन्तु वाञ्छितं [2]बाह्या क्रियाजालमनेकधा । प्रच्यवन्ते न तु स्वार्थात्परमार्थविचक्षणाः ॥६३॥
यदा सर्वप्रयत्नेन ध्यानप्रत्यूहलालसः । चेष्टां चकार सीतेन्द्रः सुरमायाविकल्पिताम् ॥६४॥
अत्रान्तरे मुनिः पूर्वमत्यन्तशुचिरागमत् । अनादिकर्मसंघातं विधुर्दग्धुं समुद्यतः ॥६५॥
कर्मणः प्रकृतीः षष्टिं निपृद्य दृढनिश्चयः । क्षपकश्रेणिमारूढदुत्तरां पुरुषोत्तमः ॥६६॥
माघशुद्धस्य पक्षस्य द्वादश्यां निशि पश्चिमे । यामे केवलमुत्पन्नं ज्ञानं तस्य महात्मनः ॥६७॥
[3]सर्वद्रीचिसमुद्भूते तस्य केवलचक्षुषि । लोकालोकद्वयं जातं गोष्पदप्रतिमं प्रभोः ॥६८॥
ततः सिंहासनाकम्पप्रयुक्तावधिचक्षुषः । सप्रणामं सुराधीशाः प्रचेलुः संभ्रमान्विताः ॥६९॥
आजग्मुश्च महाभूत्या महासंघातवर्तिनः । विधातुमुद्यताः श्राद्धाः केवलोत्पत्तिपूजनम् ॥७०॥

वृक्षके नामको लेकर विवाद करती हुई अपना पक्ष लेकर मुनिराजसे निर्णय पूछने लगीं कि देव ! इस वृक्षका क्या नाम है ? ॥५६॥ जिसका वस्त्र खिसक रहा था ऐसी किसी कन्याने ऊँचाईपर स्थित माधवी लताका फूल तोड़नेके छलसे अपना बाहुमूल दिखाया ॥५७॥ जिनके हस्तरूपी पल्लव हिल रहे थे तथा जो हजारों प्रकारके तालोंसे युक्त संगीत कर रही थी ऐसी कितनी ही कन्याएँ मण्डली बाँधकर रासक क्रीड़ा करनेके लिए उद्यत थी ॥५८॥ किसी कन्याने जलके समान स्वच्छ लाल वस्त्रसे सुशोभित अपने नितम्बतट पर लज्जाके कारण आकाशके समान नील वर्णका लँहगा पहन रखा था ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अन्य मनुष्योके चित्तको हरण करनेवाली इस प्रकारकी क्रियाओके समूहसे राम उस तरह क्षोभको प्राप्त नही हुए जिस प्रकार कि वायुसे मेरुपर्वत क्षोभको प्राप्त नही होता है ॥६०॥ उनकी दृष्टि अत्यन्त सरल थी, आत्मा अत्यन्त शुद्ध थी और वे स्वयं परीषहोंके समूहको नष्ट करनेके लिए वज्र स्वरूप थे, इस तरह वे सुप्रभके समान शुक्ल ध्यानके प्रथम पायेमें प्रविष्ट हुए ॥६१॥ उनका हृदय सत्त्व गुणसे सहित अत्यन्त निर्मल था, तथा इन्द्रियोंके समूहके साथ आत्माके ही चिन्तनमे लग रहा था ॥६२॥ बाह्य मनुष्य इच्छानुसार अनेक प्रकारकी क्रियाएँ करें परन्तु परमार्थके विद्वान् मनुष्य आत्म-कल्याणसे च्युत नही होते ॥६३॥ ध्यानमे विघ्न डालनेकी लालसासे युक्त सीतेन्द्र, जिस समय सर्व प्रकारके प्रयत्नके साथ देवमायासे निर्मित चेष्टा कर रहा था उस समय अत्यन्त पवित्र मुनि-राज अनादि कर्म समूहको जलानेके लिए उद्यत थे ॥६४–६५॥ दृढ़ निश्चयके धारक पुरुषोत्तम, कर्मोकी साठ प्रकृतियाँ नष्ट कर उत्तरवर्ती क्षपक श्रेणीपर आरूढ हुए ॥६६॥ माघ शुक्ल द्वादशीके दिन रात्रिके पिछले पहरमे उन महात्माको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥६७॥ सर्वदर्शी केवलज्ञान रूपी नेत्रके उत्पन्न होनेपर उन प्रभुके लिए लोक-अलोक दोनो ही गोष्पदके समान तुच्छ हो गये ॥६८॥

तदनन्तर सिंहासनके कम्पित होनेसे जिन्होने अवधिज्ञानरूपी नेत्रका प्रयोग किया था ऐसे सब इन्द्र सम्भ्रमके साथ प्रणाम करते हुए चले ॥६९॥ तदनन्तर जो देवोके महा-समूहके बीच वर्तमान थे, श्रद्धासे युक्त थे और केवलज्ञानकी उत्पत्तिकी पूजा करनेके लिए

१. धवलं ध्यानप्रथमं म । २ बाह्यक्रिया । ३. सर्वद्रव्य-म. ।

दृष्ट्वा रामं समासीनं घातिकर्मविनाशनम् । प्रणेमुर्भक्तिसंपन्नाश्चारणर्षिसुरासुराः ॥७१॥
तस्य जातात्मरूपस्य वन्द्यस्य भुवनेश्वरैः । जातं समवसरणं समग्रं परमेष्ठिनः ॥७२॥
ततः स्वयंप्रभाभिख्यः सीतेन्द्रः केवलार्चनम् । कृत्वा प्रदक्षिणीकृत्य मुनिमक्षमयन्मुहुः ॥७३॥
क्षमस्व भगवन् दोषं कृतं दुर्बुद्धिना मया । प्रसीद कर्मणामन्तं यच्छ मह्यमपि द्रुतम् ॥७४॥

आर्यागीतिः

एवमनन्तश्रीद्युति-कान्तियुतो नूनमनार्तमूर्तिर्भगवान् ।
कैवल्यसुखसमृद्धिं बलदेवोऽवाप्तवाञ्जिनोत्तमभक्त्या ॥७५॥
पूजामहिमानमरं कृत्वा स्तुत्वा प्रणम्य भक्त्या परया ।
प्रविहरति श्रमणरवौ जग्मुर्देवा यथाक्रमं प्रमदयुताः ॥७६॥

इत्यार्षे पद्मपुराणे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मस्य केवलोत्पत्त्यभिधान नाम
द्वाविंशत्युत्तरशतं पर्व ॥१२२॥



बड़े वैभवके साथ वहाँ आ पहुँचे ॥७०॥ घतिया कर्मोका नाश करनेवाले सिंहासनासीन रामके दर्शन कर चारणऋद्धिधारी मुनिराज तथा समस्त सुर और असुरोने उन्हे प्रणाम किया ॥७१॥ जिन्हे आत्मरूपकी प्राप्ति हुई थी, तथा जो संसारके समस्त इन्द्रोके द्वारा वन्दनीय थे ऐसे परमेष्ठी पदको प्राप्त श्रीरामके सम्पूर्ण समवसरणकी रचना हुई ॥७२॥ तदनन्तर स्वयम्प्रभ नामक सीतेन्द्रने केवलज्ञानकी पूजा कर मुनिराजको प्रदक्षिणा दी और बार-बार क्षमा करायी ॥७३॥ उसने कहा कि हे भगवन् ! मुझ दुर्बुद्धिके द्वारा किया हुआ दोष क्षमा कीजिए, प्रसन्न होइए और मेरे लिए भी शीघ्र ही कर्मोका अन्त प्रदान कीजिए अर्थात् मेरे कर्मोका क्षय कीजिए ॥७४॥

गौतम स्वामी कहते है कि इस प्रकार लक्ष्मी, द्युति और कान्तिसे सहित तथा प्रसन्न मुद्राके धारक भगवान् बलदेवने श्री जिनेन्द्रदेवकी उत्तम भक्तिसे केवलज्ञान तथा अनन्त सुखरूपी समृद्धिको प्राप्त किया ॥७५॥ मुनियोमे सूर्यके समान तेजस्वी श्रीराम मुनि जब विहार करनेको उद्यत हुए तब हर्षसे भरे देव शीघ्र ही भक्तिपूर्वक पूजाकी महिमा, स्तुति तथा प्रणाम कर यथाक्रमसे अपने-अपने स्थानोपर चले गये ॥७६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य द्वारा रचित पद्मपुराणमे श्रीराममुनिको केवलज्ञान उत्पन्न होनेका वर्णन करनेवाला एक सौ बाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२२॥



त्रयोविंशोत्तरशतं पर्व

अथ संस्मृत्य सीतेन्द्रो लक्ष्मीधरगुणार्णवम् । प्रतिबोधयितुं वाञ्छन् प्रतस्थे [1]वालुकाप्रभाम् ॥१॥
मानुषोत्तरमुल्लङ्घ्य गिरिं मर्त्यसुदुर्गमम् । रत्नप्रभामतिक्रम्य [2]शर्करां चापि मेदिनीम् ॥२॥
प्राप्तो ददर्श बीभत्सां कृच्छ्रातिशयदुःसहाम् । पापकर्मसमुद्भूतामवस्थां नरकाश्रिताम् ॥३॥
असुरत्वं गतो योऽसौ शम्बूको लक्ष्मणा हतः । व्याधदारकवत् सोऽत्र हिंसाक्रीडनमाश्रितः ॥४॥
आतृणेद् कांश्चिदुद्बाध्य कांश्चिद्भृत्यैरघातयत् । नारकानावृतान् कांश्चित्परस्परमयूयुधत् ॥५॥
केचिद् [3]बध्वाग्निकुण्डेषु क्षिप्यन्ते विकृतस्वराः । शाल्मलीषु नियुज्यन्ते केचिन प्रत्यङ्गकण्टकम् ॥६॥
ताड्यन्तेऽयोमयैः केचिन्मुसलैरभितः स्थितैः । स्वमांसरुधिरं केचित्खाद्यन्ते निर्दयैः सुरैः ॥७॥
गाढप्रहारनिर्भिन्नाः कृतभूतललोठनाः । श्वमार्जारहरिव्याघ्रैर्भक्ष्यन्ते पक्षिभिस्तथा ॥८॥
केचिच्छूलेषु भिद्यन्ते ताड्यन्ते घनमुद्गरैः । कुम्भ्यामन्ये निधीयन्ते ताम्रादिकलिलाम्भसि ॥९॥
क्रकचपत्रैर्विदार्यन्ते बद्ध्वा दारुषु निश्चलाः । केचित्कैश्चिच्च पाय्यन्ते ताम्रादिकलिलं बलात् ॥१०॥
केचिद्यन्त्रेषु पीड्यन्ते हन्यन्ते सायकैः परे । दन्ताक्षिरसनादीनां प्राप्नुवन्त्युद्धृतिं परे ॥११॥
एवमादीनि दुःखानि विलोक्य नरकाश्रिताम् । उत्पन्नपुरुकारुण्यः सोऽभूदमरपुङ्गवः ॥१२॥

अथानन्तर सीतेन्द्र, लक्ष्मणके गुणरूपी सागरका स्मरण कर उसे सम्बोधनेकी इच्छा करता हुआ वालुकाप्रभाकी ओर चला ॥१॥ मनुष्योके लिए अत्यन्त दुर्गम मानुषोत्तर पर्वतको लांघकर तथा क्रमसे नीचे रत्नप्रभा और शर्कराप्रभाकी भूमिको भी उल्लंघन कर वह तीसरी वालुकाप्रभा भूमिमें पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने नारकियोंकी अत्यन्त घृणित कष्टकी अधिकतासे दुःसह एवं पाप कर्मसे उत्पन्न अवस्था देखी ॥२-३॥ लक्ष्मणके द्वारा मारा गया जो शम्बूक असुरकुमार हुआ था वह शिकारीके पुत्रके समान इस भूमिमे हिंसापूर्ण क्रीड़ा कर रहा था ॥४॥ वह कितने ही नारकियोंको ऊपर बाँधकर स्वयं मारता था, कितनो ही को सेवकोसे मरवाता था और घिरे हुए कितने ही नारकियोको परस्पर लड़ाता था ॥५॥ विरूप शब्द करनेवाले कितने ही नारकी बाँधकर अग्निकुण्डोमे फेंके जाते थे, और कितने ही जिनके अंग-अंगमे काँटा लग रहे थे ऐसे सेमरके वृक्षोपर चढ़ाये-उतारे जाते थे ॥६॥ कितने ही सब ओर खड़े हुए नारकियोके द्वारा लोह-निर्मित मूसलोसे कूटे जाते थे और कितने ही को निर्दय देवोके द्वारा अपना मांस तथा रुधिर खिलाया जाता था ॥७॥ गाढ़ प्रहारसे खण्डित हो पृथिवीतलपर लोटनेवाले नारकी कुत्ते, बिलाव, सिंह, व्याघ्र तथा अनेक पक्षियोके द्वारा खाये जा रहे थे ॥८॥ कितने ही शूलीपर चढाकर भेदे जाते थे, कितने ही घनों और मुद्गरोसे पीटे जाते थे, कितने ही ताँबा आदिके खरसरूपी जलसे भरी कुम्भियोमे डाले जाते थे ॥९॥ लकड़ियाँ बाँध देनेसे निश्चल खड़े हुए कितने नारकी करोंतोसे विदारे जाते थे, और कितने ही नारकियोंको जबरदस्ती ताम्र आदि धातुओंका पिघला द्रव पिलाया जाता था ॥१०॥ कितने ही कोल्हुओमे पेले जाते थे, कितने ही बाणोंसे छेदे जाते थे, और कितने ही दाँत, नेत्र तथा जिह्वाके उपाड़नेका दुःख प्राप्त कर रहे थे ॥११॥ इस प्रकार नारकियोके दुःख देखकर सीतेन्द्रको बहुत भारी दया उत्पन्न हुई ॥१२॥

१ शर्कराप्रभा म., ज । २ वालुका म , ज., ख । ३. बद्धाग्निकुण्डेषु म ।

अग्निकुण्डाद् विनिर्यातमथालोकत लक्ष्मणम् । बहुधा नारकैरन्यैरर्द्यमानं समन्ततः ॥१३॥
सीदन्तं विकृतग्राहे भीमे वैतरणीजले । छिद्यमानं च कनकैरसिपत्रवनान्तरे ॥१४॥
वधाय चोद्यतं तस्य बाधमानं भयानकम् । क्रुद्धं बृहद्गदापाणिं हन्यमानं तथा परैः ॥१५॥
[1]प्रचोद्यमानं घोराक्षं[2] स्रवद्देहं बृहन्मुखम् । तेन देवकुमारेण शम्बूकेन दशाननम् ॥१६॥
अत्रान्तरे महातेजाः सीतेन्द्रः संनिधिं गतः । तर्जयन् तत्र तीव्रं तं गणं भवनवासिनाम् ॥१७॥
अरे ! रे ! पाप शम्बूक प्रारब्धं किमिदं त्वया । कथमद्यापि ते नास्ति शमो निर्घृणचेतसः ॥१८॥
मुञ्च क्रूराणि कर्माणि भव स्वस्थः सुराधम । किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ॥१९॥
श्रुत्वेदं नारकं दुःखं जन्तोर्भयमुदीर्यते । प्रत्यक्षं किं पुनः कृत्वा त्रासस्तव न जायते ॥२०॥
शम्बूके प्रशमं प्राप्ते ततोऽसौ विबुधेश्वरः । प्रबोधयितुमुद्युक्तो यावत्तावदमी द्रुतम् ॥२१॥
अतिदारुणकर्माणश्चला दुर्ग्रहचेतसः । देवप्रभाभिभूताश्च नारकाः परिदुद्रुवुः ॥२२॥
रुरुदुश्चापरे दीना धाराश्रुगलिताननाः । धावन्तः पतिताः केचिद्गर्तेषु विषमेष्वलम् ॥२३॥
मा मा नश्यत संत्रस्ता निवर्तध्वं सुदुःखिताः । न भेतव्यं न भेतव्यं नारका भवत स्थिताः ॥२४॥
एवमुक्ताः सुरेन्द्रेण समाश्वासनचेतसा । प्राविक्षन्नन्धतमसं वेपमानाः समन्ततः ॥२५॥
मन्यमानास्ततो भूयः शक्रेणैपद्भयोज्झिताः । इत्युक्तास्ते ततः कृच्छ्रादवधानमुपागताः ॥२६॥

तदनन्तर उसने अग्निकुण्डसे निकले और अन्य अनेक नारकियोके द्वारा सब ओरसे घेरकर नाना तरहसे दुःखी किये जानेवाले लक्ष्मणको देखा ॥१३॥ वही उसने देखा कि लक्ष्मण विक्रियाकृत मगर-मच्छोसे व्याप्त वैतरणीके भयंकर जलमे छटपटा रहा है और असिपत्र वनमे शस्त्राकार पत्रोसे छेदा जा रहा है ॥१४॥ उसने यह भी देखा कि लक्ष्मणको मारनेके लिए बाधा पहुँचाने वाला एक भयंकर नारकी कुपित हो हाथमे बड़ी भारी गदा लेकर उद्यत हो रहा हे तथा उसे दूसरे नारकी मार रहे है ॥१५॥ सीतेन्द्रने वही उस रावणको देखा कि जिसके नेत्र अत्यन्त भयंकर थे, जिसके शरीरसे मल-मूत्र झड़ रहे थे, जिसका मुख बहुत बड़ा था और शम्बूकका जीव असुरकुमार देव जिसे लक्ष्मणके विरुद्ध प्रेरणा दे रहा था ॥१६॥

तदनन्तर इसी बीचमे महातेजस्वी सीतेन्द्र, भवनवासियोके उस दुष्ट समूहको डाँटे दिखाता हुआ पासमे पहुँचा ॥१७॥ उसने कहा कि अरे ! रे ! पापी शम्बूक ! तूने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है ? तुझ निर्दयचित्तको क्या अब भी शान्ति नही है ? ॥१८॥ हे अधमदेव ! क्रूर कार्य छोड़, मध्यस्थ हो, अत्यन्त अनर्थके कारणभूत इस अभिमानसे क्या प्रयोजन सिद्ध होना है ? ॥१९॥ नरकके इस दुःखको सुनकर ही प्राणीको भय उत्पन्न हो जाता है, फिर तुझे प्रत्यक्ष देखकर भी भय क्यो नही उत्पन्न होता है ? ॥२०॥ तदनन्तर शम्बूकके शान्त हो जानेपर ज्योंही सीतेन्द्र सम्बोधनेके लिए तैयार हुआ त्योंही अत्यन्त क्रूर काम करनेवाले, चंचल एवं दुर्ग्रह चित्तके धारक वे नारकी देवकी प्रभासे तिरस्कृत हो शीघ्र ही इधर-उधर भाग गये ॥२१-२२॥ कितने ही दीन-हीन नारकी, धाराबद्ध पड़ते हुए आँसुओसे मुखको गीला करते हुए रोने लगे, कितने ही दौडते-ही-दौडते अत्यन्त विषम गर्तोमे गिर गये ॥२३॥ तब सान्त्वना देते हुए सीतेन्द्रने कहा कि 'अहो नारकियो ! भागो मत, भयभीत मत होओ, तुम लोग बहुत दुःखी हो, लौटकर आओ, भय मत करो, भय मत करो, खड़े रहो' इस प्रकार कहनेपर भी वे भयसे काँपते हुए गाढ अन्धकारमे प्रविष्ट हो गये ॥२४-२५॥ तदनन्तर यही बात जब सीतेन्द्रने फिरसे कही तब कही उनका कुछ-कुछ भय कम हुआ और बड़ी कठिनाईसे

---

१. प्रबोध्यमान ख., व. । २. घोराक्षस्रवद्देह म. ।

महामोहहृतात्मानः कथं नरकसंभवाः । एनयावस्थया युक्ता न जानीथात्मनो हितम् ॥२७॥
अदृष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विनः । रौद्रध्यानपराः प्राप्ता नरकस्थं प्रतिद्विषः ॥२८॥
भोगाधिकारसंसक्तास्तीव्रक्रोधादिरञ्जिताः । विकर्मनिरता नित्यं संप्राप्ता दु:खमीदृशम् ॥२९॥
रमणीये विमानाग्रे ततो वीक्ष्य सुरोत्तमम् । सौमित्रिरावणौ पूर्वमप्राष्टां को भवानिति ॥३०॥
स तयोः सकलं वृत्तं पद्मामस्य तथात्मनः । कर्मान्वितमभापिष्ट विचित्रमिति सम्भवम् ॥३१॥
तत. श्रुत्वा स्ववृत्तान्तं प्रतिबोधमुपागतौ । उपशान्तात्मकौ दीनमेवं शुशुचतुस्तकौ ॥३२॥
धृतिः किं न कृता धर्मे तदा मानुपजन्मनि । अवस्थामिमकां येन प्राप्ताः स्मः पापकर्मभिः ॥३३॥
हा ! हा ! किं कृतमस्माभिरात्मदु.खपरं परम् । अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्स्वार्थादपि हीयते ॥३४॥
त्वमेव धन्यो देवेन्द्र यस्त्यक्त्वा विषयस्पृहाम् । जिनवाक्यामृतं पीत्वा सम्प्राप्तोऽस्यमरेशताम् ॥३५॥
ततोऽसौ पुरुकारुण्यो मा भैष्टेति बहुस्वनम् । एतैत नरकान्नाकं नये युष्मानितीरयन् ॥३६॥
ततः परिकरं बध्वा ग्रहीतुं स्वयमुद्यतः । दुर्ग्रहास्तु विलीयन्ते तेऽग्निना नवनीतवत् ॥३७॥
सर्वोपायैरपीन्द्रेण ग्रहीतुं स्पष्टमेव च । न शक्यास्ते यथा भावाश्छायया दर्पणे स्थिताः ॥३८॥
ततस्तेऽत्यन्तदुःखार्त्ता जगदुर्देवयानिनः । पुराकृतानि कर्माणि तानि भोग्यान्यसंशयम् ॥३९॥

वे चित्तकी स्थिरताको प्राप्त हुए ॥२६॥ शान्त वातावरण होनेपर सीतेन्द्रने कहा कि महामोह-से जिनकी आत्मा हरी गयी है ऐसे हे नारकियो ! तुम लोग इस दशासे युक्त होकर भी आत्माका हित नही जानते हो ? ॥२७॥ जिन्होने लोकका अन्त नही देखा है, जो हिंसा, झूठ और परधनके हरणमे तत्पर हैं, रौद्रध्यानी हैं तथा नरकमे स्थित रहनेवालेके प्रति जिनको द्वेष-बुद्धि है ऐसे लोग ही नरकमे आते है ॥२८॥ जो भोगोके अधिकारमे संलग्न है, तीव्र क्रोधादि कषायोंसे अनुरंजित हैं और निरन्तर विरुद्ध कार्य करनेमे तत्पर रहते है ऐसे लोग ही इस प्रकारके दुःखको प्राप्त होते है ॥२९॥

अथानन्तर सुन्दर विमानके अग्रभागपर स्थित सुरेन्द्रको देखकर लक्ष्मण और रावणके जीवने सबसे पहले पूछा कि आप कौन हैं ? ॥३०॥ तब सुरेन्द्रने उनके लिए श्रीरामका तथा अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और साथ ही यह भी कहा कि कर्मानुसार यह सब विचित्र कार्य सम्भव हो जाते हैं ॥३१॥ तदनन्तर अपना वृत्तान्त सुनकर जो प्रतिबोधको प्राप्त हुए थे तथा जिनकी आत्मा शान्त हो गयी थी ऐसे वे दोनो दीनतापूर्वक इस प्रकार शोक करने लगे ॥३२॥ कि अहो ! हम लोगोने उस समय मनुष्य जन्ममे धर्ममे रुचि क्यो नही की ? जिससे पापकर्मोके कारण इस अवस्थाको प्राप्त हुए है ॥३३॥ हाय हाय, आत्माको दुःख देनेवाला यह क्या विकट कार्य हम लोगोने कर डाला ? अहो ! यह सब मोहकी महिमा है कि जिसके कारण जीव आत्महितसे भ्रष्ट हो जाता है ॥३४॥ हे देवेन्द्र ! तुम्ही धन्य हो, जो विषयोकी इच्छा छोड़ तथा जिनवाणीरूपी अमृतका पान कर देवोकी ईशताको प्राप्त हुए हो ॥३५॥

तदनन्तर अत्यधिक करुणाको धारण करनेवाले देवेन्द्रने कई वार कहा कि 'डरो मत, डरो मत, आओ, आओ, मैं तुम लोगोको नरकसे निकालकर स्वर्ग लिये चलता हूँ' ॥३६॥ तत्पश्चात् वह सुरेन्द्र कमर कसकर उन्हे स्वयं ले जानेके लिए उद्यत हुआ परन्तु वे पकड़नेमे न आये । जिस प्रकार अग्निमे तपानेसे नवनीत पिघलकर रह जाता है उसी प्रकार वे नारकी भी पिघलकर वही रह गये ॥३७॥ इन्द्रने उन्हे उठानेके लिए सभी प्रयत्न किये पर वे उठाये नही जा सके । जिस प्रकार दर्पणमे प्रतिबिम्बित पदार्थ ग्रहणमे नही आते उसी प्रकार वे भी ग्रहणमे नही आ सके ॥३८॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखी होते हुए उन नारकियोने कहा कि हे देव ! हम लोगोके जो पूर्वोपार्जित कर्म है, वे निःसन्देह भोगनेके योग्य हैं ॥३९॥

विषयामिषलुब्धानां प्राप्तानां नरकासुखम्[1] । स्वकृतप्राप्तिवश्यानां किं करिष्यन्ति देवताः ॥४०॥
एतत्स्वोपचितं कर्म भोक्तव्य यन्नियोगत । तदस्माकं न शक्नोषि दुःखान्मोचयितुं सुर ॥४१॥
परित्रायस्व सीतेन्द्र नरकं येन हेतुना । प्राप्स्यामो न पुनर्ब्रूहि त्वमस्माकं दयापरः ॥४२॥
देवो जगाद परमं शाश्वत शिवमुत्तमम् । रहस्यमिव मूढाना प्रख्यातं भुवनत्रये ॥४३॥
कर्मप्रमथनं शुद्धं पवित्रं परमार्थदम् । अप्राप्तपूर्वमाप्तं वा दुर्गृहीतं प्रमादिनाम् ॥४४॥
दुर्विज्ञेयमभव्यानां बृहद्भवभयानकम् । कल्याणं दुर्लभ सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूर्जितम् ॥४५॥
यदीच्छतात्मनः श्रेयस्तत एवं गतेऽपि हि । सम्यक्त्वं प्रतिपद्यस्व काले बोधिप्रद शुभम् ॥४६॥
इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति न भूतं न भविष्यति । इह सेत्स्यन्ति सिद्ध्यन्ति सिषिधुश्च महर्षयः ॥४७॥
अर्हद्भिर्गदिता भावा भगवद्भिर्महोत्तमैः । तथैवेति दृढं भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते[2] ॥४८॥
नयन्नित्यादिभिर्वाक्यैः सम्यक्त्वं नरके स्थितम् । सुरेन्द्र शोचितुं लग्नस्तथाप्युत्तमभोगभाक् ॥४९॥
तद्धवं कान्तिलावण्यशरीरमतिसुन्दरम् । निर्दग्ध कर्मणा पश्य नवोद्यानमिवाग्निना ॥५०॥
अचित्रीयत यां दृष्ट्वा भुवनं सकलं तदा । द्युतिः सा क्व गतोदात्ता चारुक्रीडितसंयुता ॥५१॥
कर्मभूमौ सुखाख्यस्य यस्य क्षुद्रस्य कारणे । ईदृग्दु.खार्णवे मग्ना भवन्तो दुरितक्रियाः ॥५२॥
इत्युक्तैः प्रतिपन्नं तैः सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । अनादिभवसंक्लिष्टैर्यन्न प्राप्तं कदाचन ॥५३॥

जो विषयरूपी आमिषके लोभी होकर नरकके दु.खको प्राप्त हुए है तथा जो अपने द्वारा किये हुए कर्मोंके पराधीन है उनका देव लोग क्या कर सकते है ? ॥४०॥ यतश्च अपने द्वारा किया हुआ कर्म नियमसे भोगना पड़ता है इसलिए हे देव ! तुम हम लोगोको दुःखसे छुड़ानेमे समर्थ नही हो ॥४१॥ हे सीतेन्द्र ! हमारी रक्षा करो, अब हम जिस कारण फिर नरकको प्राप्त न हो कृपा कर वह बात तुम हमे बताओ ॥४२॥

तदनन्तर देवने कहा कि जो उत्कृष्ट है, नित्य है, आनन्दरूप है, उत्तम है, मूढ मनुष्योके लिए मानो रहस्यपूर्ण है, जगत्त्रयमे प्रसिद्ध है, कर्मोंको नष्ट करनेवाला है, शुद्ध है, पवित्र है, परमार्थ-को देनेवाला है, जो पहले कभी प्राप्त नही हुआ है और यदि प्राप्त हुआ भी है तो प्रमादी मनुष्य जिसकी सुरक्षा नही रख सके है, जो अभव्य जीवोके लिए अज्ञेय है और दीर्घ संसारको भय उत्पन्न करनेवाला है, ऐसा सबल एवं दुर्लभ सम्यग्दर्शन ही आत्माका सबसे बडा कल्याण है ॥४३–४५॥ यदि आप लोग अपना भला चाहते है तो इस दशामे स्थित होनेपर भी सम्यक्त्वको प्राप्त करो । यह सम्यक्त्व समयपर बोधिको प्रदान करनेवाला एवं शुभरूप है ॥४६॥ इससे बढकर दूसरा कल्याण न है, न था, न होगा । इसके रहते ही महर्षि सिद्ध होगे, अभी हो रहे है और पहले भी हुए थे ॥४७॥ महा उत्तम अरहन्त जिनेन्द्र भगवान्‌ने जीवादि पदार्थोंका जैसा निरूपण किया है वह वैसा ही है । इस प्रकार भक्तिपूर्वक दृढ श्रद्धान होना सो सम्यग्दर्शन है ॥४८॥ इत्यादि वचनोके द्वारा नरकमे स्थित उन लोगोको यद्यपि सीतेन्द्रने सम्यग्दर्शन प्राप्त करा दिया था तथापि उत्तम भोगोका अनुभव करनेवाला वह सीतेन्द्र उनके प्रति शोक करनेमे लीन था ॥४९॥ उसकी आँखोमे उनका पूर्वभव झूल गया और उसे ऐसा लगने लगा कि देखो, जिस प्रकार अग्निके द्वारा नवीन उद्यान जल जाता है उसी प्रकार इनका कान्ति और लावण्यपूर्ण सुन्दर शरीर कर्मके द्वारा जल गया है ॥५०॥ जिसे देख उस समय सारा संसार आश्चर्यमे पड़ जाता था । इनकी वह उदात्त तथा सुन्दर क्रीडाओसे युक्त कान्ति कहाँ गयी ? ॥५१॥ वह उनसे कहने लगा कि देखो कर्मभूमिके उस क्षुद्र सुखके कारण आप लोग पाप कर इस दु.खके सागरमे निमग्न हुए है ॥५२॥ इस प्रकार सीतेन्द्रके कहनेपर अनादि भवोमे क्लेश उठानेवाले उन लोगोंने वह उत्तम

---

१. नरकायुषम् म । २. -मिष्यत. ब., ज., क । -मिष्यत ख. ।

एतस्मिन्नन्तरे दुःखमनुभूय निकाचितम् । उद्गत्य प्राप्य मानुष्यमुपेमः शरणं जिनम् ॥५४॥
अहोऽतिपरमं देव त्वयास्मभ्यं हितं कृतम् । यत्सम्यग्दर्शने रम्ये समेत्य विनियोजिताः ॥५५॥
हे सीतेन्द्र महाभाग ! गच्छ गच्छारणाच्युतम् । शुद्धधर्मफलं स्फीतमनुभूय शिवं व्रज ॥५६॥
एवमुक्तः सुरेन्द्रोऽसौ शोकहेतुविवर्जितः । तथापि परमर्द्धिश्च स शोचन्नान्तरात्मना ॥५७॥
दत्त्वा तेषां समाधानं पुनर्बोधिप्रदं शुभम् । महासुकृतभाग्धीरः समारोहन्निजास्पदम् ॥५८॥
शङ्कितात्मा च संवृत्तश्चतुःशरणतत्परः । बहुशश्च करोति स्म पद्ममेरुप्रदक्षिणम् ॥५९॥
तद्वीक्ष्य नारकं दुःखं स्मृत्वा च विबुधोत्तमः । वेपितात्मा विमानेऽपि ध्वनिमालब्ध तं सुधीः ॥६०॥
प्रकम्पमानहृदयः श्रीमच्चन्द्रनिभाननः । उद्युक्तो भरतक्षेत्रे भूयोऽवतरितु सुधीः ॥६१॥
संपतद्भिर्विमानौघैः समीरसमवर्त्तिभिः । तुरङ्गमहरिक्षीवमतङ्गजघटाकुलैः ॥६२॥
नानावर्णाम्बरधरैर्हरिस्रङ्मुकुटोज्ज्वलैः । विचित्रवाहनारूढैर्ध्वजच्छत्रातिशोभितैः ॥६३॥
शतघ्नीशक्तिचक्रासिधनुःकुन्तगदाधरैः । व्रजद्भिः सर्वतः कान्तैरमरैः साप्सरोगणैः ॥६४॥
मृदङ्गदुन्दुभिस्वानैर्वेणुवीणास्वनान्वितैः । जयनन्दरवोन्मिश्रैरापूर्यत तदा नभः ॥६५॥
जगाम शरणं पद्मं सीतेन्द्रः परमोदयः । कृताञ्जलिपुटो भक्त्या प्रणनाम पुनः पुनः ॥६६॥
एवं च स्तवनं कर्त्तुमारेभे विनयान्वितः । संसारतारणोपायप्रतिपत्तिदृढाशयः ॥६७॥

सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया जो कि उन्हे पहले कभी प्राप्त नही हुआ था ॥५३॥ उन्होने कहा कि इस बीचमे जिसका छूटना अशक्य है ऐसे इस दुःखको भोगकर जब यहाँसे निकलेंगे तब मनुष्य भव धारण कर श्री जिनेन्द्र देवकी शरण रहेगे ॥५४॥ अहो देव! तुमने हम सबका बडा हित किया जो यहाँ आकर उत्तम सम्यग्दर्शनमे लगाया है ॥५५॥ हे महाभाग! सीतेन्द्र! जाओ जाओ अपने आरणाच्युत कल्पको जाओ और शुद्ध धर्मका विशाल फल भोगकर मोक्षको प्राप्त होओ ॥५६॥ इस प्रकार उन सबके कहनेपर यद्यपि वह सीतेन्द्र शोकके कारणोसे रहित हो गया था तथापि परम ऋद्धिको धारण करनेवाला वह मन ही मन शोक करता जाता था ॥५७॥ तदनन्तर महान् पुण्यको धारण करनेवाला वह धीर-वीर सुरेन्द्र, उन सबके लिए बोधिदायक शुभ उपदेश देकर अपने स्थानपर आरूढ़ हो गया ॥५८॥

नरकसे निकलकर जिसकी आत्मा अत्यन्त भयभीत हो रही थी ऐसा वह सीतेन्द्र मन ही मन अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म इन चारकी शरणको प्राप्त हुआ और अनेको बार उसने मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणाएँ दी ॥५९॥ नरकगतिके उस दुःखको देखकर, स्मरण कर, तथा वहाँके शब्दका ध्यान कर वह सुरेन्द्र विमानमे भी काँप उठता था ॥६०॥ जिसका हृदय काँप रहा था तथा जिसका मुख शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान था, ऐसा वह बुद्धिमान् सुरेन्द्र फिरसे भरत क्षेत्रमे उतरनेके लिए उद्यत हुआ ॥६१॥ उस समय वायुके समान वेगशाली घोड़े, सिह तथा मदोन्मत्त हाथियोके समूहसे युक्त, चलते हुए विमानोसे और नाना रंगके वस्त्रोको धारण करनेवाले, वानर तथा माला आदिके चिह्नोसे युक्त मुकुटोसे उज्ज्वल, नाना प्रकारके वाहनोपर आरूढ, पताका तथा छत्र आदिसे शोभित शतघ्नी, शक्ति, चक्र, असि, धनुष, कुन्त और गदाको धारण करनेवाले, सव ओर गमन करते हुए, अप्सराओके समूहसे सहित सुन्दर देवोसे और बाँसुरी तथा वीणाके शब्दोसे सहित तथा जय-जयकार, नन्द, वर्धस्व आदि शब्दोसे मिश्रित मृदंग और दुन्दुभिके नादसे आकाश भर गया था ॥६२–६५॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला सीतेन्द्र श्रीराम केवलीकी शरणमे गया। वहाँ जाकर उसने हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम किया ॥६६॥ तदनन्तर ससार-सागरसे पार होनेके उपाय जाननेके लिए जिसका अभिप्राय दृढ़ था ऐसे उस विनयी सीतेन्द्रने श्रीराम

ध्यानमारुतयुक्तेन तपःसंधुक्षितात्मना । त्वया जन्माटवी दग्धा दीप्तेन ज्ञानवह्निना ॥६८॥
शुद्धलेश्यात्रिशूलेन मोहनीयरिपुर्हतः । [1]दृढवैराग्यवज्रेण चूर्णितं स्नेहपञ्जरम् ॥६९॥
संशये वर्तमानस्य [2]भवारण्यविवर्तिनः । शरणं [3]भव मे नाथ मुनीन्द्र भवसूदन ॥७०॥
लब्धलब्धव्य ! सर्वज्ञ ! कृतकृत्य ! जगद्गुरो । परित्रायस्व पद्माभ मामत्याकुलमानसम् ॥७१॥
मुनिसुव्रतनाथस्य सम्यगासेव्य शासनम् । संसारसागरस्य त्वं गतोऽन्तं तपसोरुणा ॥७२॥
राम युक्त किमिदं ते यदत्यन्तं विहाय माम् । एकेन गम्यते तुङ्गममलं पदमच्युतम् ॥७३॥
ततो मुनिरुवाचेदं मुञ्च रागं सुराधिप । मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम् ॥७४॥
अवलम्ब्य शिलां कण्ठे दोर्भ्यां तर्तुं न शक्यते । नदी तद्वन्न रागाढ्यैस्तरितुं संसृतिः क्षमा ॥७५॥
ज्ञानशीलगुणासंगैस्तीर्यते भवसागरः । ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्त्तिना ॥७६॥
आदिमध्यावसानेषु वेदितव्यमिदं बुधैः । सर्वेषां [4]यन्महातेजाः केवली ग्रसते गुणान् ॥७७॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि यच्चान्यत्कारणं नृप । सीतादेवो यदप्राक्षीद् बभाषे यच्च केवली ॥७८॥
क्वैते नाथ समस्तज्ञ भव्या दशरथादयः । लवणाङ्कुशयोः का वा दृष्टा नाथ त्वया गतिः ॥७९॥
सोऽवोचदानते कल्पे देवो दशरथोऽभवत् । केकया केकयी[5] चैव सुप्रजाश्चापराजिता ॥८०॥

केवलीकी इस तरह स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥६७॥ वह कहने लगा कि हे भगवन् ! आपने ध्यानरूपी वायुसे युक्त तथा तपके द्वारा की हुई देदीप्यमान ज्ञानरूपी अग्निसे संसाररूपी अटवीको दग्ध कर दिया है ॥६८॥ आपने शुद्ध लेश्यारूपी त्रिशूलके द्वारा मोहनीय कर्मरूपी शत्रुका घात किया है, और दृढ वैराग्यरूपी वज्रके द्वारा स्नेहरूपी पिंजड़ा चूर-चूर कर दिया है ॥६९॥ हे नाथ ! मै ससाररूपी अटवीके बीच पड़ा जीवन-मरणके संशयमे झूल रहा हूँ अतः हे मुनीन्द्र ! हे भवसूदन ! मेरे लिए शरण होइए ॥७०॥ हे राम ! आप प्राप्त करने योग्य सब पदार्थ प्राप्त कर चुके है, सब पदार्थोके ज्ञाता है, कृतकृत्य है, और जगत्के गुरु है अतः मेरी रक्षा कीजिए, मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है ॥७१॥ श्री मुनिसुव्रतनाथके शासनकी अच्छी तरह सेवा कर आप विशाल तपके द्वारा संसार-सागरके अन्तको प्राप्त हुए है ॥७२॥ हे राम ! क्या यह तुम्हे उचित है जो तुम मुझे बिलकुल छोड़ अकेले ही उन्नत निर्मल और अविनाशी पदको जा रहे हो ॥७३॥

तदनन्तर मुनिराजने कहा कि हे सुरेन्द्र ! राग छोड़ो क्योकि वैराग्यमे आरूढ मनुष्यकी मुक्ति होती है और रागी मनुष्यका संसारमे डूबना होता है ॥७४॥ जिस प्रकार कण्ठमे शिला बाँधकर भुजाओंसे नदी नही तैरी जा सकती उसी प्रकार रागसे युक्त जीवोके द्वारा संसार नही तिरा जा सकता ॥७५॥ जिसका चित्त निरन्तर ज्ञानमे लीन रहता है तथा जो गुरुजनोके कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है ऐसा मनुष्य ही ज्ञानशील आदि गुणोकी आसक्तिसे संसार-सागरको तैर सकता है ॥७६॥

गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! विद्वानोको यह समझ लेना चाहिए कि महाप्रतापी केवली आदि, मध्य और अवसानमे अर्थात् प्रत्येक समय सब पदार्थोके गुणोको ग्रस्त करते है—जानते है ॥७७॥ हे राजन् ! अब इसके आगे सीतेन्द्रने जो पूछा और केवलीने जो उत्तर दिया वह सब कहूँगा ॥७८॥

सीतेन्द्रने केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! ये दशरथ आदि भव्य जीव कहाँ है ? तथा लवण और अकुशकी आपने कौन-सी गति देखी है ? अर्थात् ये कहाँ उत्पन्न होगे ? ॥७९॥ तब केवलीने कहा कि राजा दशरथ आनत स्वर्गमे देव हुए है। इनके सिवाय सुमित्रा, कैकयी,

---

१ दृढं वैराग्य म । २ भवाख्य म । ३ भवने म. । ४. यान्महातेजा म. । ५ कैकसी म. ।

जनकः कनकश्चैव सम्यग्दर्शनतत्परा.[1] । एते स्वशक्तियोगेन कर्मणा तुल्यभूतय. ॥८१॥
ज्ञानदर्शनतुल्यौ द्वौ श्रमणौ लवणाङ्कुशौ । विरजस्कौ महाभागौ यास्यतः पदमक्षयम् ॥८२॥
इत्युक्ते हर्षतोऽत्यन्तममरेन्द्रो महाद्युतिः । संस्मृत्य भ्रातरं स्नेहादपृच्छत्तस्य चेष्टितम् ॥८३॥
भ्राता तवापि इत्युक्ते सीतेन्द्रो दुःखितोऽभवत् । कृताञ्जलिपुटोऽपृच्छज्जातः क्वेति मुनीश्वर ॥८४॥
पद्मनाभस्ततोऽवोचदच्युतेन्द्र मनं शृणु । चेष्टितेन गतो येन यत्पदं तव सोदरः ॥८५॥
अयोध्यायां कुलपतिर्बहुकोटिधनेश्वरः । मकरीदयिता कामभोगी वज्राङ्कसंज्ञकः ॥८६॥
अतिक्रान्तो बहुसुतैः पार्थिवोपमविभ्रमः । श्रुत्वा निर्वासितां सीतामिति चिन्तासमाश्रितः ॥८७॥
सात्यन्तसुकुमाराङ्गा गुणैर्दिव्यैरलङ्कृता । क्वान्नु प्राप्ता वनेऽवस्थामिति दुःखी ततोऽभवत् ॥८८॥
स्थितार्द्रहृदयश्चासौ वैराग्यं परमाश्रितः । द्युतिनाममुनेः पार्श्वे निष्क्रान्तो द्विष्टसंसृतिः ॥८९॥
अशोकतिलकाभिख्यौ विनीतौ तस्य पुत्रकौ । निमित्तज्ञं द्युतिं प्रष्टुं पितरं जातुचिद्गतौ ॥९०॥
तत्रैव च तमालोक्य स्नेहाद् वैराग्यतोऽपि च । द्युतिमूले प्रनिष्क्रान्तावशोकतिलकावपि ॥९१॥
द्युतिः परं तपः कृत्वा प्राप्य सक्षयमायुषः । दत्त्वा स्वानुजनोत्कण्ठामूर्ध्वग्रैवेयकं गतः ॥९२॥
यथागुरुसमादिष्टं पिता-पुत्रौ त्रयस्तु ते । ताम्रचूडपुरं प्राप्तौ प्रस्थितौ वन्दितुं जिनम् ॥९३॥
पञ्चाशद्योजनं तत्र सिकतार्णवमीयुषाम् । अप्राप्तानां च तावन्त घनकालः समागतः ॥९४॥

सुप्रजा (सुप्रभा) और अपराजिता (कौशल्या), जनक तथा कनक ये सभी सम्यग्दृष्टि अपने-अपने सामर्थ्यके अनुसार बँधे हुए कर्मसे उसी आनत स्वर्गमे तुल्य विभूतिके धारक देव है ॥८०-८१॥ ज्ञान और दर्शनकी अपेक्षा समानता रखनेवाले लवण और अकुश नामक दोनो महाभाग मुनि कर्मरूपी धूलिसे रहित हो अविनाशी पद प्राप्त करेगे ॥८२॥ केवलीके इस प्रकार कहनेपर सीतेन्द्र हर्षसे अत्यधिक सन्तुष्ट हुआ। तदनन्तर उसने स्नेहवश भाई—भामण्डलका स्मरण कर उसकी चेष्टा पूछी ॥८३॥ इसके उत्तरमे तुम्हारा भाई भी, इतना कहते ही सीतेन्द्र कुछ दुःखी हुआ। तदनन्तर उसने हाथ जोड़कर पूछा कि हे मुनिराज, वह कहाँ उत्पन्न हुआ है ? ॥८४॥ तदनन्तर पद्मनाभ (राम) ने कहा कि हे अच्युतेन्द्र ! तुम्हारा भाई जिस चेष्टासे जहाँ उत्पन्न हुआ है उसे कहता हूँ सो सुन ॥८५॥ अयोध्या नगरीमे अपने कुलका स्वामी अनेक करोड़का धनी, तथा मकरी नामक प्रियाके साथ कामभोग करनेवाला एक 'वज्रांक' नामका सेठ था ॥८६॥ उसके अनेक पुत्र थे तथा वह राजाके समान वैभवको धारण करनेवाला था। सीताको निर्वासित सुन वह इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ कि 'अत्यन्त सुकुमारांगी तथा दिव्य गुणोसे अलंकृत सीता वनमे किस अवस्थाको प्राप्त हुई होगी' ? इस चिन्तासे वह अत्यन्त दुःखी हुआ ॥८७-८८॥ तदनन्तर जिसके पास दयालु हृदय विद्यमान था, और जिसे संसारसे द्वेष उत्पन्न हो रहा था ऐसा वह वज्रांक सेठ परम वैराग्यको प्राप्त हो द्युति नामक मुनिराजके पास दीक्षित हो गया। इसकी दीक्षाका हाल घरके लोगोको विदित नही था ॥८९॥ उसके अशोक और तिलक नामके दो विनयवान् पुत्र थे, सो वे किसी समय निमित्तज्ञानी द्युति मुनिराजके पास अपने पिताका हाल पूछनेके लिए गये ॥९०॥ यही पिताको देखकर स्नेह अथवा वैराग्यके कारण अशोक तथा तिलक भी उन्ही द्युति मुनिराजके पादमूलमे दीक्षित हो गये ॥९१॥ द्युति मुनिराज परम तपश्चरण कर तथा आयुका क्षय प्राप्त कर शिष्यजनोको उत्कण्ठा प्रदान करते हुए ऊर्ध्व ग्रैवेयकमे अहमिन्द्र हुए ॥९२॥ यहाँ पिता और दोनो पुत्र मिलकर तीनो मुनि, गुरुके कहे अनुसार प्रवृत्ति करते हुए जिनेन्द्र भगवान्की वन्दना करनेके लिए ताम्रचूडपुरकी ओर चले ॥९३॥ बीचमे पचास योजन प्रमाण वालूका समुद्र (रेगिस्तान) मिलता था सो वे इच्छित स्थान तक नही पहुँच पाये, बीचमे ही वर्षा-

[1] तत्पर म ।

तत्रैकं दुर्लभं प्राप्य [1]पात्रदानोदयोपमम् । बहुशाखोपशाखाढ्यमनोकहमिमे स्थिताः ॥९५॥
ततो जनकपुत्रेण व्रजता कोशलां पुरीम् । दृष्टास्ते मानसे चास्य जातमेतत्सुकर्मणः ॥९६॥
इमे समयरक्षार्थमिहारण्ये विजने वने । प्राणसाधारणोचारं कर्त्तारः क्व नु साधवः ॥९७॥
इति संचिन्त्य चात्यन्तनिकटं परमं पुरम् । कृतं [2]सविषयं तेन सद्विद्योदारशक्तिना ॥९८॥
स्थाने स्थाने च घोषाद्यसंनिवेशानदर्शयत् । स्वभावार्पितरूपश्च प्राणमद् विनयी मुनीन् ॥९९॥
काले देशे च भावेन [3]सतो गोचरमागतान् । [4]पर्युपास्त यथान्यायं संमदी परिवर्गवान् ॥१००॥
पुनश्चानुदकेऽरण्ये पर्युपासिष्ट संयतान् । अन्यांश्च भुवि संक्लिष्टान् साधूनक्लिष्टसंयमान् ॥१०१॥
[5]पुण्यसागरवाणिज्यसेवका [6]मुक्तिभावने । दृष्टान्तत्वेन वक्तव्यास्तस्य धर्मानुरागिणः ॥१०२॥
अन्यदोद्यानयातोऽसौ [7] यथासुखमवस्थितः । शयने श्रीमान्मालिन्या पविना कालमाहतः ॥१०३॥
ततः साधुप्रदानोत्थपुण्यतो मेरुदक्षिणे । कुरौ जातस्त्रिपल्यायुर्दिव्यलक्षणभूषितः ॥१०४॥
पात्रदानफलं तत्र महाविपुलतां गतम् । समं सुन्दरमालिन्या भुङ्क्तेऽसौ परमद्युतिः ॥१०५॥
पात्रभूतान्नदानाच्च शक्त्याढ्यास्तर्पयन्ति ये । ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥१०६॥
स्वर्गे भोगं प्रभुञ्जन्ति भोगभूमेश्च्युता नराः । तत्रस्थानां स्वभावोऽयं दानैर्भोगस्य संपदः ॥१०७॥

काल आ गया ॥९४॥ उस रेगिस्तानमे जिसका मिलना अत्यन्त कठिन था तथा जो पात्रदानसे प्राप्त होनेवाले अभ्युदयके समान जान पडता था एवं जो अनेक शाखाओं और उपशाखाओसे युक्त था ऐसे एक वृक्षको पाकर उसके आश्रय उक्त तीनो मुनिराज ठहर गये ॥९५॥

तदनन्तर अयोध्यापुरीको जाते समय जनकके पुत्र भामण्डलने वे तीनों मुनिराज देखे । देखते ही इस पुण्यात्माके मनमे यह विचार आया कि ये मुनि, आचारकी रक्षाके निमित्त इस निर्जन वनमे ठहर गये हैं परन्तु प्राण धारणके लिए आहार कहाँ करेगे ? ॥९६–९७॥ ऐसा विचारकर सद्विद्याकी उत्तम शक्तिसे युक्त भामण्डलने बिलकुल पासमे एक अत्यन्त सुन्दर नगर बसाया जो सब प्रकारकी सामग्रीसे सहित था, स्थान-स्थानपर उसने घोष—अहीर आदिके रहनेके ठिकाने दिखलाये । तदनन्तर अपने स्वाभाविक रूपमे स्थित हो उसने विनयपूर्वक मुनियोके लिए नमस्कार किया ॥९८–९९॥ वह अपने परिजनोके साथ वही रहने लगा तथा योग्य देशकालमे दृष्टिगोचर हुए सत्पुरुषोंको भावपूर्वक न्यायके साथ हर्षसहित भोजन कराने लगा ॥१००॥ इस निर्जन वनमे जो मुनिराज थे उन्हे तथा पृथिवीपर उत्कृष्ट संयमको धारण करनेवाले जो अन्य विपत्तिग्रस्त साधु थे उन सबको वह आहार आदि देकर सन्तुष्ट करने लगा ॥१०१॥ मुक्तिकी भावना रख पुण्यरूपी सागरमे वाणिज्य करनेवाले मनुष्योंके जो सेवक है धर्मानुरागी भामण्डलको उन्हीका दृष्टान्त देना चाहिए । अर्थात् मुनि तो पुण्यरूपी सागरमे वाणिज्य करनेवाले है और भामण्डल उनके सेवकके समान हैं ॥१०२॥ किसी एक दिन भामण्डल उद्यानमे गया था वहाँ अपनी मालिनी नामक स्त्रीके साथ वह शय्यापर सुखसे पड़ा था कि अचानक वज्रपात होनेसे उसकी मृत्यु हो गयी ॥१०३॥ तदनन्तर मुनि-दानसे उत्पन्न पुण्यके प्रभावसे वह मेरु पर्वतके दक्षिणमे विद्यमान देवकुरुमे तीन पल्यकी आयुवाला दिव्य लक्षणोसे भूषित उत्तम आर्य हुआ ॥१०४॥ इस तरह उत्तम दीप्तिको धारण करनेवाला वह आर्य, अपनी सुन्दर मालिनी स्त्रीके साथ उस देवकुरुमे महाविस्तारको प्राप्त हुए पात्रदानके फलका उपभोग कर रहा है ॥१०५॥ जो शक्तिसम्पन्न मनुष्य, पात्रोके लिए अन्न देकर सन्तुष्ट करते है वे भोगभूमि पाकर परम पदको प्राप्त होते हैं ॥१०६॥ भोगभूमिसे च्युत हुए मनुष्य स्वर्गमे भोग भोगते है क्योकि वहाँके मनुष्योका

---

१ प्रान्तदीनोच्चयोपमम् म । प्रान्तदीनोचयोपमम् (?) ज , क । २ सविषसम्पन्न (?) म । ३ सता गोचरमागता म । सता गोचरमागत ज । ४ भोजयामास, श्री टि. । ५. ततो नगरवाणिज्य ज पुण्यसागर-ख । ६ शक्तिभावना क. । ७ प्राप्तोऽसौ म. ।

दानतो [1]सातप्राप्तिश्च स्वर्गमोक्षैककारणम् । इति श्रुत्वा पुनः पृष्टो रावणो वालुकां गतः ॥१०८॥
तथा नारायणो ज्ञातो लक्ष्मणोऽधोगतिं गतः । उत्थाय दुरितस्यान्ते नाथ कोऽनुभविष्यति ॥१०९॥
प्रपत्स्यते गतिं कां वा दशाननचरः [2]प्रभो । को नु वाहं भविष्यामीत्येवमिच्छामि वेदितुम् ॥११०॥
इति स्वयंप्रभे[3] प्रश्नं कृत्वा विदितचेतसि । सर्वज्ञो वचनं प्राह भविष्यद्भवसंभवम् ॥१११॥
भविष्यतः स्वकर्माभ्युदयौ रावणलक्ष्मणौ । तृतीयनरकादेत्य अनुपूर्वाच्च मन्दरात् ॥११२॥
शृणु सीतेन्द्र निर्जित्य दुःखं नरकसंभवम् । नगर्यां विजयावत्यां मनुष्यत्वेन चाप्स्यते ॥११३॥
गृहिण्यां रोहिणीनाम्न्यां सुनन्दस्य कुटुम्बिनः । सम्यग्दृष्टेः प्रियौ पुत्रौ क्रमेणैतौ भविष्यतः ॥११४॥
अर्हद्दासर्षिदासाख्यौ वेदितव्यौ च सद्गुणैः । अत्यन्तमहचेतस्कौ श्लाघनीयक्रियापरौ ॥११५॥
[4]गृहस्थविधिनाभ्यर्च्य देवदेवं जिनेश्वरम् । अणुव्रतधरौ काले सुग्रीवाणौ भविष्यतः ॥११६॥
पञ्चेन्द्रियसुखं तत्र चिरं प्राप्य मनोहरम् । च्युत्वा भूयश्च तत्रैव जनिष्येते महाकुले ॥११७॥
सद्दानेन हरिक्षेत्रं प्राप्य च त्रिदिवं गतौ । प्रच्युतौ पुरि तत्रैव नृपपुत्रौ भविष्यतः ॥११८॥
[5]तातः कुमारकीर्त्याख्यो लक्ष्मीस्तु जननी तयोः । वीरौ कुमारकावेतौ जयकान्तजयप्रभौ ॥११९॥
ततः परं तपः कृत्वा लान्तवं कल्पमाश्रितौ । विबुधोत्तमतां गत्वा मोक्ष्येते तद्भवं सुखम् ॥१२०॥
त्वमत्र भरतक्षेत्रे च्युतः संनारणाच्युतात् । सर्वरत्नपतिः श्रीमान् चक्रवर्ती भविष्यसि ॥१२१॥
तौ च स्वर्गच्युतौ देवौ पुण्यनिस्यन्दतेजसा । इन्द्राम्भोदरथाभिख्यौ तव पुत्रौ भविष्यतः ॥१२२॥

यह स्वभाव ही है। यथार्थमें दानसे भोगकी सम्पदाएँ प्राप्त होती है ॥१०७॥ दानसे सुखकी प्राप्ति होती है और दान स्वर्ग तथा मोक्षका प्रधान कारण है। इस प्रकार भामण्डलके दानका माहात्म्य सुनकर सीतेन्द्रने वालुकाप्रभा पृथिवीमे पड़े हुए रावण और उसी अधोभूमिमे पड़े लक्ष्मणके विषयमे पूछा कि हे नाथ! यह लक्ष्मण पापका अन्त होनेपर नरकसे निकलकर क्या होगा?, हे प्रभो! वह रावणका जीव कौन गतिको प्राप्त होगा और मैं स्वयं इसके बाद क्या होऊँगा? यह सब मै जानना चाहता हूँ ॥१०८–११०॥ इस प्रकार प्रश्न कर जब स्वयम्प्रभ नामका सीतेन्द्र उत्तर जाननेके लिए उद्यत चित्त हो गया तब सर्वज्ञ देवने उनके आगामी भवोंकी उत्पत्ति-से सम्बन्ध रखनेवाले वचन कहे ॥१११॥

उन्होने कहा कि हे सीतेन्द्र! सुन, स्वकृत कर्मके अभ्युदयसे सहित रावण और लक्ष्मण, नरक सम्बन्धी दुःख भोगकर तथा तीसरे नरकसे निकलकर मेरुपर्वतसे पूर्वकी ओर विजयावती नामक नगरीमे सुनन्द नामक सम्यग्दृष्टि गृहस्थकी रोहिणी नामक स्त्रीके क्रमशः अर्हद्दास और ऋषिदास नामके पुत्र होगे। ये पुत्र सद्गुणोसे प्रसिद्ध, अत्यधिक उत्सवपूर्ण चित्तके धारक और प्रशंसनीय क्रियाओके करनेमे तत्पर होगे ॥११२–११५॥ वहाँ गृहस्थकी विधिसे देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्की पूजा कर अणुव्रतके धारी होंगे और अन्तमे मरकर उत्तम देव होंगे ॥११६॥ वहाँ चिरकाल तक पंचेन्द्रियोके मनोहर सुख प्राप्त कर वहाँसे च्युत हो उसी महाकुलमे पुनः उत्पन्न होगे ॥११७॥ फिर पात्रदानके प्रभावसे हरिक्षेत्र प्राप्त कर स्वर्ग जावेगे। तदनन्तर वहाँसे च्युत हो उसी नगरमे राजपुत्र होगे ॥११८॥ वहाँ इनके पिताका नाम कुमारकीर्ति और माताका नाम लक्ष्मी होगा तथा स्वयं ये दोनों कुमार जयकान्त और जयप्रभ नामके धारक होगे ॥११९॥ तदनन्तर तप करके लान्तव स्वर्ग जावेगे। वहाँ उत्तम देवपद प्राप्त कर तत्सम्बन्धी सुखका उपभोग करेंगे ॥१२०॥ हे सीतेन्द्र! तू आरणाच्युत कल्पसे च्युत हो इस भरतक्षेत्रके रत्नस्थलपुर नामक नगरमे सब रत्नोंका स्वामी चक्ररथ नामका श्रीमान् चक्रवर्ती होगा ॥१२१॥ रावण और लक्ष्मणके जीव जो लान्तव स्वर्गमे देव हुए थे वे वहाँसे च्युत हो पुण्य रसके प्रभावसे तुम्हारे क्रमशः इन्द्ररथ

---

१. भोग-म.। २. चरोपमम् म। ३. सोऽयं प्रभो. म। ४. एष श्लोक. म. पुस्तके नास्ति। ५. ततः कुमारकीर्त्याख्यौ म.।

आसीत् प्रतिरिपुर्योऽसौ दशवक्त्रो महाबलः। येनेमे भारते वास्ये त्रयः खण्डा वशीकृताः ॥१२३॥
न कामयेत्परस्य स्त्रीमकामामिति निश्चयः। अपि जीवितमत्याक्षीत्सत्यमनुपालयन् ॥१२४॥
सोऽयमिन्द्ररथाभिख्यो भूत्वा धर्मपरायण.। प्राप्य श्रेष्ठान् भवान् कांश्चित्तिर्यङ्नरकवर्जितान् ॥१२५॥
स मानुष्यं समासाद्य दुर्लभं सर्वदेहिनाम्। तीर्थंकृत्कर्मसंघातमर्जयिष्यति पुण्यवान् ॥१२६॥
ततोऽनुक्रमतः पूजामवाप्य भुवनत्रयात्। मोहादिशत्रुसंघातं निहत्यार्हंतमाप्स्यति ॥१२७॥
रत्नस्थलपुरे कृत्वा राज्यं [1]चक्ररथस्त्वसौ। वैजयन्तेऽहमिन्द्रत्वमवाप्स्यति तपोबलात् ॥१२८॥
सत्त्वं तस्य जिनेन्द्रस्य प्रच्युतः स्वर्गलोकतः। आद्यो गणधरः श्रीमानृद्धिप्राप्तो भविष्यति ॥१२९॥
ततः परमनिर्वाणं यास्यसीत्यमरेश्वरः। श्रुत्वा ययौ परां तुष्टिं भावितेनान्तरात्मना ॥१३०॥
अयं तु लाक्ष्मणो भावः सर्वज्ञेन निवेदितः। अम्भोदरथनामासौ भूत्वा चक्रधरात्मजः ॥१३१॥
चारून् कांश्चिद्भवान् भ्रान्त्वा धर्मसंगतचेष्टितः। विदेहे पुष्करद्वीपे शतपत्राह्वये पुरे ॥१३२॥
लक्ष्मणः स्वोचिते काले प्राप्य जन्माभिषेचनम्। चक्रपाणित्वमर्हत्त्वं लब्ध्वा निर्वाणमेष्यति ॥१३३॥
सपूर्णैः सप्तभिश्चाब्दैरहमप्यपुनर्भवः। गमिष्यामि गता यत्र साधवो भरतादयः ॥१३४॥
भविष्यद्भववृत्तान्तमवगम्य सुरोत्तमः। अपेतसंशय. श्रीमान्महाभावनयान्वित· ॥१३५॥
परिणूय नमस्कृत्य पद्मनाभं पुनः पुनः। तस्मिन्नुद्यति चैत्यानि वन्दितुं विहर्तिं श्रितः ॥१३६॥
जिननिर्वाणधामानि परं भक्त. समर्चयन्। तथा नन्दीश्वरद्वीपे जिनेन्द्रार्चामहर्द्धिकः ॥१३७॥

और मेघरथ नामक पुत्र होगे ॥१२२॥ जो पहले दशानन नामका तेरा महाबलवान् शत्रु था, जिसने भरतक्षेत्रके तीन खण्ड वश कर लिये थे, और जिसके यह निश्चय था कि जो परस्त्री मुझे नही चाहेगी उसे मै नही चाहूँगा। निश्चय ही नही, जिसने जीवन भले ही छोड़ दिया था पर इस सत्यव्रतको नही छोड़ा था किन्तु उसका अच्छी तरह पालन किया था। वह रावणका जीव धर्मपरायण इन्द्ररथ होकर तिर्यंच और नरकको छोड़ अनेक उत्तम भव पा मनुष्य होकर सर्व प्राणियोके लिए दुर्लभ तीर्थंकर नाम कर्मका बन्ध करेगा। तदनन्तर वह पुण्यात्मा अनुक्रमसे तीनों लोकोके जीवोसे पूजा प्राप्त कर मोहादि शत्रुओके समूहको नष्ट कर अर्हन्त पद प्राप्त करेगा ॥१२३-१२७॥ और तेरा जीव जो चक्ररथ नामका चक्रधर हुआ था वह रत्नस्थलपुरमे राज्य कर अन्तमे तपोबलसे वैजयन्त विमानमे अहमिन्द्र पदको प्राप्त होगा ॥१२८॥ वही तू स्वर्गलोकसे च्युत हो उक्त तीर्थंकरका ऋद्धिधारी श्रीमान् प्रथम गणधर होगा ॥१२९॥ और उसके बाद परम निर्वाणको प्राप्त होगा। इस प्रकार सुनकर सीताका जीव सुरेन्द्र, भावपूर्ण अन्तरात्मासे परम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥१३०॥ सर्वज्ञ देवने लक्ष्मणके जीवका जो निरूपण किया था, वह मेघरथ नामका चक्रवर्तीका पुत्र होकर धर्मपूर्ण आचरण करता हुआ कितने ही उत्तम भवोमे भ्रमण कर पुष्करद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रके शतपत्र नामा नगरमे अपने योग्य समयमे जन्माभिषेक प्राप्त कर तीर्थंकर और चक्रवर्ती पदको प्राप्त हो निर्वाण प्राप्त करेगा ॥१३१-१३३॥ और मै भी सात वर्ष पूर्ण होते ही पुनर्जन्मसे रहित हो वहाँ जाऊँगा जहाँ भरत आदि मुनिराज गये हैं ॥१३४॥

इस प्रकार आगामी भवोका वृत्तान्त जानकर जिसका सब सशय दूर हो गया था, तथा जो महाभावनासे सहित था ऐसा सुरेन्द्र, सीतेन्द्र, श्री पद्मनाभ केवलीकी बार-बार स्तुति कर तथा नमस्कार कर उनके अभ्युदययुक्त रहते हुए चैत्यालयोकी वन्दना करनेके लिए चला गया ॥१३५-१३६॥ वह अत्यन्त भक्त हो तीर्थंकरोके निर्वाण-क्षेत्रोकी पूजा करता, नन्दीश्वर द्वीपमे जिन-प्रतिमाओकी अर्चा करता, देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान्को निरन्तर मनमे धारण करता, स्वयं

---

१. चक्रधरस्त्वसौ ज.।

देवदेवं जिनं विभ्रन्मानसेऽसावनारतम् । केवलित्वमिव प्राप्तः परमं शर्म धारयन् ॥१३८॥
लूपितं कलुषं कर्म मन्यमानः सुसंमदः । सुवृत्तः स्वर्गमारोहत् सुरसंघसमावृतः ॥१३९॥
स्वर्गं तेन तदा याता[1] भ्रातृस्नेहात् पुरातनात् । भामण्डलचरो दृष्टः कुरौ संभाषितः[2] प्रियम् ॥१४०॥
तत्रारणाच्युते कल्पे सर्वकामगुणप्रदे । अमरीणां सहस्राणि रमयन्नीश्वरः स्थितः ॥१४१॥
दश सप्त च वर्षाणां सहस्राणि वलायुषः । चापानि षोडशोत्सेधः सानुजस्य प्रकीर्तितः ॥१४२॥
ईदृक्षमवधार्येदमन्तरं पुण्यपापयोः । पापं दूरं परित्यज्य वरं पुण्यमुपार्जितम् ॥१४३॥

आर्यागीतिः

पश्यत बलेन विभुना जिनेन्द्रवरशासने धृतिं प्राप्तेन ।
जन्मजरामरणमहारिपवो बलिनः पराजिताः पद्मेन ॥१४४॥
स हि जन्मजरामरणव्युच्छेदान्नित्यपरमकैवल्यसुखम् ।
अतिशयदुर्लभमनघं संप्राप्तो जिनवरप्रसादादतुलम् ॥१४५॥
मुनिदेवासुरवृषभैः स्तुतमहितनमस्कृतो निषूदितदोषः ।
प्रमदशतैरुपगीतो विद्याधरपुष्पवृष्टिभिर्दुर्लक्ष्यः ॥१४६॥
आराध्य जैनसमयं परमविधानेन पञ्चविंशत्यब्दान् ।
प्राप त्रिभुवनशिखरं[3] सिद्धपदं सर्वजीवनिकायललामम् ॥१४७॥
व्यपगतभवहेतुं तं योगधरं शुद्धभावहृदयधरं वीरम् ।
अनगारवरं भक्त्या प्रणमत रामं मनोऽभिरामं शिरसा ॥१४८॥

केवली पदको प्राप्त हुएके समान परम सुखका अनुभव करता, पाप कर्मको भस्मीभूत मानता, हर्षित तथा सदाचारसे युक्त होता और देवोके समूहसे आवृत होता हुआ स्वर्गलोक चला गया ॥१३७–१३९॥ उस समय उसने स्वर्ग जाते-जाते भाईके पुरातन स्नेहके कारण देवकुरुमे भामण्डलके जीवको देखा और उसके साथ प्रिय वार्तालाप किया ॥१४०॥ वह सीतेन्द्र सर्व-मनोरथोको पूर्ण करनेवाले उस आरणाच्युत कल्पमे हजारो देवियोके साथ रमण करता हुआ रहता था ॥१४१॥ रामकी आयु सत्रह हजार वर्षकी तथा उनके और लक्ष्मणके शरीरकी ऊँचाई सोलह धनुषकी थी ॥१४२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस तरह पुण्य और पापका अन्तर जान-कर पापको दूरसे ही छोड़कर पुण्यका ही संचय करना उत्तम है ॥१४३॥

गौतम स्वामी कहते है कि हे राजन् ! देखो, जिनेन्द्र देवके उत्तम शासनमे धैर्यको प्राप्त हुए बलभद्र पदके धारी विभु रामचन्द्रने जन्म-जरा-मरणरूपी महाबलवान् शत्रु पराजित कर दिये ॥१४४॥ वे रामचन्द्र, श्री जिनेन्द्रदेवके प्रसादसे जन्म-जरा-मरणका व्युच्छेद कर अत्यन्त दुर्लभ, निर्दोष, अनुपम, नित्य और उत्कृष्ट कैवल्य सुखको प्राप्त हुए ॥१४५॥ मुनीन्द्र और असुरेन्द्रोके द्वारा जो स्तुत, महित तथा नमस्कृत है, जिन्होने दोषोको नष्ट कर दिया है, जो सैकड़ो प्रकारके हर्षसे उपगीत हैं तथा विद्याधरोकी पुष्प-वृष्टियोंकी अधिकतासे जिनका देखना भी कठिन है ऐसे श्रीराम महामुनि, पचीस वर्ष तक उत्कृष्ट विधिसे जैनाचारकी आराधना कर समस्त जीव समूहके आभरणभूत, तथा सिद्ध परमेष्ठियोके निवास क्षेत्र स्वरूप तीन लोकके शिखरको प्राप्त हुए ॥१४६–१४७॥ हे भव्य जनो ! जिनके संसारके कारण—मिथ्या दर्शनादिभाव नष्ट हो चुके थे, जो उत्तम योगके धारक थे, शुद्ध भाव और शुद्ध हृदयके धारक थे, कर्मरूपी शत्रुओके जीतनेमे वीर थे, मनको आनन्द देनेवाले थे और मुनियोमे श्रेष्ठ थे उन भगवान् रामको शिरसे

---

१. यातं म., यात्रा ज. । २. संभाषितप्रियम् म. । ३ सिद्धिपदम् म. ।

विजिततरुणार्कतेजसमधरीकृतपूर्णचन्द्रमण्डलं कान्तम् ।
सर्वोपमानभावव्यतिगमरूपातिरूढमूर्जितचरितम् ॥१४९॥
पूर्वस्नेहेन तथा सीतादेवाधिपेन धर्मस्थतया ।
परमहितं परमर्द्धिप्राप्तं पद्मं यतिप्रधानं नमत ॥१५०॥
योऽसौ बलदेवानामष्टमसंख्यो नितान्तशुद्धशरीरः ।
श्रीमाननन्तबलभृन्नियमशतसहस्रभूषितो गतविकृतिः ॥१५१॥
तमनेकशीलगुणशतसहस्रधरमतिशुद्धकीर्त्तिमुदारम् ।
ज्ञानप्रदीपममलं प्रणमत रामं त्रिलोकनिर्गतयशसम् ॥१५२॥
निर्दग्धकर्मपटलं गम्भीरगुणार्णवं विमुक्तक्षोभम् ।
मन्दरमिव निष्कम्पं प्रणमत रामं यथोक्तचरितश्रमणम् ॥१५३॥
विनिहत्य कषायरिपून् येन त्यक्तान्यशेषतो द्वन्द्वानि ।
त्रिभुवनपरमेश्वरतां यश्च प्राप्तो जिनेन्द्रशासनसक्तः ॥१५४॥
निर्धूतकलुषरजसं सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्रमयम् ।
तं प्रणमत भवमथनं श्रमणवरं सर्वदुःखसंक्षयसक्तम् ॥१५५॥
चेष्टितमनघ चरितं करणं चारित्रमित्यमी यच्छब्दाः ।
पर्याया रामायणमित्युक्तं तेन चेष्टित रामस्य ॥१५६॥
बलदेवस्य सुचरितं दिव्य यो भावितेन मनसा नित्यम् ।
विस्मयहर्षाविष्टस्वान्त' प्रतिदिनमपेतशङ्कितकरणः ॥१५७॥
वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्वृद्धिमीयते पुण्यं च ।
आकृष्टखड्गहस्तो रिपुरपि न करोति वैरमुपशममेति ॥१५८॥

प्रणाम करो ॥१४८॥ जिन्होने तरुण सूर्यके तेजको जीत लिया था, जिन्होने पूर्ण चन्द्रमाके मण्डलको नीचा कर दिया था, जो अत्यन्त सुदृढ था, पूर्व स्नेहके वश अथवा धर्ममे स्थित होनेके कारण सीताके जीव प्रतीन्द्रने जिनकी अत्यधिक पूजा की थी, तथा जो परम ऋद्धिको प्राप्त थे ऐसे मुनिप्रधान श्रीरामचन्द्रको नमस्कार करो ॥१४९–१५०॥ जो बलदेवोमे आठवें बलदेव थे, जिनका शरीर अत्यन्त शुद्ध था, जो श्रीमान् थे, अनन्त बलके धारक थे, हजारों नियमोंसे भूषित थे और जिनके सब विकार नष्ट हो गये थे ॥१५१॥ जो अनेक शील तथा लाखो उत्तरगुणोके धारक थे, जिनकी कीर्ति अत्यन्त शुद्ध थी, जो उदार थे, ज्ञानरूपी प्रदीपसे सहित थे, निर्मल थे और जिनका उज्ज्वल यश तीन लोकमे फैला हुआ था उन श्रीरामको प्रणाम करो ॥१५२॥ जिन्होने कर्मपटलको जला दिया था, जो गम्भीर गुणोके सागर थे, जिनका क्षोभ छूट गया था, जो मन्दरगिरिके समान अकम्प थे तथा जो मुनियोका यथोक्त चारित्र पालन करते थे उन श्रीरामको नमस्कार करो ॥१५३॥ जिन्होने कषायरूपी शत्रुओको नष्ट कर सुख-दुःखादि समस्त द्वन्द्वोका त्याग कर दिया था, जो तीन लोककी परमेश्वरताको प्राप्त थे, जो जिनेन्द्र देवके शासनमे लीन थे, जिन्होने पापरूपी रज उड़ा दी थी, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे तन्मय है, ससारको नष्ट करनेवाले हैं, तथा समस्त दुःखोंका क्षय करनेमे तत्पर हैं ऐसे मुनिवर श्रीरामको प्रणाम करो ॥१५४–१५५॥

चेष्टित, अनघ, चरित, करण और चारित्र ये सभी शब्द यतश्च पर्यायवाचक शब्द है अतः रामकी जो चेष्टा है वही रामायण कही गयी है ॥१५६॥ जिसका हृदय आश्चर्य और हर्षसे आक्रान्त है तथा जिसके अन्त करणसे सब शंकाएँ निकल चुकी है ऐसा जो मनुष्य प्रतिदिन भावपूर्ण मनसे बलदेवके चरित्रको बाँचता अथवा सुनता है उसकी आयु वृद्धिको प्राप्त होती है,

किं चान्यद्धर्मार्थी लभते धर्मं यशः परं यशसोऽर्थी ।
राज्यभ्रष्टो राज्यं प्राप्नोति न संशयोऽत्र कश्चित्कृत्यः ॥१५९॥
इष्टसमायोगार्थी लभते तं क्षिप्रतो धनं धनार्थी ।
जायार्थी वरपत्नीं पुत्रार्थी गोत्रनन्दनं प्रवरपुत्रम् ॥१६०॥
अक्लिष्टकर्मविधिना लाभार्थी लाभमुत्तमं सुखजननम् ।
कुशली विदेशगमने स्वदेशगमनेऽथवाऽपि सिद्धसमीहः ॥१६१॥
व्याधिरुपैति प्रशमं ग्रामनगरवासिनः सुरास्तुष्यन्ति ।
नक्षत्रैः सह कुटिला अपि भान्वाद्या ग्रहा भवन्ति प्रीताः ॥१६२॥
दुश्चिन्तितानि दुर्भावितानि दुष्कृतशतानि यान्ति प्रलयम् ।
यत् किंचिदपरमशिवं तत्सर्वं क्षयमुपैति पद्मकथाभिः ॥१६३॥
यद्वा निहितं हृदये साधु तदाप्नोति रामकीर्तनासक्तः ।
इष्टं करोति भक्तिः सुदृढा सर्वज्ञभावगोचरनिरता ॥१६४॥
भवशतसहस्रसंचितमघं हि दुरितं तृणेढि जिनवरभक्त्या ।
व्यसनार्णवमुत्तीर्य प्राप्नोत्यर्हत्पदं सुभावः क्षिप्रम् ॥१६५॥

शार्दूलविक्रीडितम्

एवन् तत्सुसमाहितं सुनिपुणं दिव्यं पवित्राक्षरं
नानाजन्मसहस्रसंचितघनक्लेशौघनिर्णाशनम् ।
आख्यानैर्विविधैश्चितं सुपुरुषव्यापारसंकीर्तनं
भव्याम्भोजपरप्रहर्षजननं संकीर्तितं भक्तितः ॥१६६॥

पुण्य बढ़ता है, तथा तलवार खींचकर हाथमें धारण करनेवाला भी शत्रु उसके साथ वैर नहीं करता है, अपितु शान्तिको प्राप्त हो जाता है ॥१५७–१५८॥ इसके सिवाय इसके बाँचने अथवा सुननेसे धर्मका अभिलाषी मनुष्य धर्मको पाता है, यशका अभिलाषी परमयशको पाता है, और राज्यसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य पुनः राज्यको प्राप्त करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिए ॥१५९॥ इष्ट संयोगका अभिलाषी मनुष्य शीघ्र ही इष्टजनके संयोगको पाता है, धनका अर्थी धन पाता है। स्त्रीका इच्छुक उत्तम स्त्री पाता है और पुत्रका अर्थी गोत्रको आनन्दित करनेवाला उत्तम पुत्र पाता है ॥१६०॥ लाभका इच्छुक सरलतासे सुख देनेवाला उत्तम लाभ प्राप्त करता है, विदेश जानेवाला कुशल रहता है और स्वदेशमें रहनेवालेके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥१६१॥ उसकी बीमारी शान्त हो जाती है, ग्राम तथा नगरवासी देव सन्तुष्ट रहते हैं, तथा नक्षत्रोंके साथ-साथ सूर्य आदि कुटिल ग्रह भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥१६२॥ रामकी कथाओंसे दुश्चिन्तित, तथा दुर्भावित सैकड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा इनके सिवाय जो कुछ अन्य अमंगल हैं वे सब क्षयको प्राप्त हो जाते हैं ॥१६३॥ अथवा हृदयमें जो कुछ उत्तम बात है राम-कथाके कीर्तनमें लीन मनुष्य उसे अवश्य पाता है, सो ठीक ही है क्योंकि सर्वज्ञदेव सम्बन्धी सुदृढ़ भक्ति इष्टपूर्ति करती ही है ॥१६४॥ उत्तम भावको धारण करनेवाला मनुष्य, जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे लाखों भावोंमें संचित पाप कर्मको नष्ट कर देता है, तथा दुःखरूपी सागरको पार कर शीघ्र ही अर्हन्त पदको प्राप्त करता है ॥१६५॥

ग्रन्थकर्ता श्री रविषेणाचार्य कहते हैं कि बड़ी सावधानीसे जिसका समाधान बैठाया गया है, जो दिव्य है, पवित्र अक्षरोंसे सम्पन्न है, नाना प्रकारके हजारों जन्मोंमें संचित अत्यधिक क्लेशोंके समूहको नष्ट करनेवाला है, विविध प्रकारके आख्यानों—अवान्तर कथाओंसे व्याप्त है, सत्पुरुषोंकी चेष्टाओंका वर्णन करनेवाला है, और भव्य जीवरूपी कमलोंके परम हर्षको करने

निर्दिष्टं सकलैर्नतेन भुवनैः श्रीवर्द्धमानेन यत्
तत्त्वं वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च ।
शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुनेः
श्रेयःसाधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम् ॥१६७॥

ज्ञाताशेषकृतान्तसन्मुनिमनःसोपानपर्वावली
पारम्पर्यसमाश्रितं सुवचनं सारार्थमत्यद्भुतम् ।
आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनि-
स्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदःशिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥१६८॥

सम्यग्दर्शनशुद्धिकारणगुरुश्रेयस्करं पुष्कलं
विस्पष्टं परमं पुराणममलं श्रीमत्प्रबोधिप्रदम् ।
रामस्याद्भुतविक्रमस्य सुकृतो माहात्म्यसंकीर्तनं
श्रोतव्यं सततं विचक्षणजनैरात्मोपकारार्थिभिः ॥१६९॥

उत्पलमालभारिणी

हलचक्रभृतोर्द्विषोऽनयोश्च प्रथितं वृत्तमिदं समस्तलोके ।
कुशलं कलुषं च तत्र बुद्ध्या शिवमात्मीकुरुतेऽशिवं विहाय ॥१७०॥
अपि नाम शिवं गुणानुबन्धि व्यसनस्फातिकरं शिवेतरम् ।
तद्विषयस्पृहया तदेति मैत्रीमशिवं तेन न शान्तये कदाचित् ॥१७१॥

वाला है ऐसा यह पद्मचरित मैंने भक्तिवश ही निरूपित किया है ॥१६६॥ श्री पद्ममुनिका जो चरित मूलमें सब संसारसे नमस्कृत श्रीवर्धमान स्वामीके द्वारा कहा गया, फिर इन्द्रभूति गणधर-के द्वारा सुधर्मा और जम्बू स्वामीके लिए कहा गया तथा उनके बाद उनके शिष्योंके शिष्य श्री उत्तरवाग्मी अर्थात् श्रेष्ठवक्ता श्री कीर्तिधर मुनिके द्वारा प्रकट हुआ तथा जो कल्याण और साधुसमाधिकी वृद्धि करनेवाला है, ऐसा यह पद्मचरित सर्वोत्तम मंगलस्वरूप है ॥१६७॥ यह पद्मचरित, समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता उत्तम मुनियोंके मनकी सोपान परम्पराके समान नाना पर्वोंकी परम्परासे युक्त है, सुभाषितोंसे भरपूर है, सारपूर्ण है तथा अत्यन्त आश्चर्यकारी है। इन्द्र गुरुके शिष्य श्री दिवाकर यति थे, उनके शिष्य अर्हद्यति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और उनका शिष्य मैं रविषेण हूँ ॥१६८॥ जो सम्यग्दर्शनकी शुद्धताके कारणोंसे श्रेष्ठ है, कल्याणकारी है, विस्तृत है, अत्यन्त स्पष्ट है, उत्कृष्ट है, निर्मल है, श्रीसम्पन्न है, रत्नत्रयरूप बोधिका दायक है, तथा अद्भुत पराक्रमी पुण्यस्वरूप श्री रामके माहात्म्यका उत्तम कीर्तन करने-वाला है ऐसा यह पुराण आत्मोपकारके इच्छुक विद्वज्जनोंके द्वारा निरन्तर श्रवण करनेके योग्य है ॥१६९॥

बलभद्र नारायण और इनके शत्रु रावणका यह चरित्र समस्त संसारमें प्रसिद्ध है। इसमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके चरित्रोंका वर्णन है। इनमें बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धि द्वारा विचार कर सच्चे अंशको ग्रहण करते हैं और बुरे अंशको छोड़ देते हैं ॥१७०॥ जो अच्छा चरित्र है वह गुणोंको बढ़ानेवाला है और जो बुरा चरित्र है वह कष्टोंकी वृद्धि करनेवाला है, इनमें-से जिस मनुष्यको जिस विषयकी इच्छा हो वह उसीके साथ मित्रताको करता है अर्थात् गुणोंको चाहने-वाला अच्छे चरित्रसे मित्रता बढ़ाता है और कष्ट चाहनेवाला बुरे चरित्रसे मित्रता करता है।

यदि तावदसौ नभश्चरेन्द्रो व्यसनं प्राप पराङ्गनाहिताशः ।
निधनं गतवाननङ्गरोगः[1] किमुतान्यो रतिरङ्गनासुभावः (?) ॥१७२॥
सततं सुखसेवितोऽप्यसौयद् दशवक्त्रो वरकामिनीसहस्रैः ।
अवितृप्तमतिर्विनाशमागादितरस्तृप्तिमुपेष्यतीति मोहः ॥१७३॥
स्वकलत्रसुखं हितं रहित्वा परकान्ताभिरतिं करोति पापः ।
व्यसनार्णवमत्युदारमेष प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्पः ॥१७४॥
व्रजत त्वरिता जना भवन्तो बलदेवप्रमुखाः पदं गता यत्र ।
जिनशासनभक्तिरागरक्ताः सुदृढं प्राप्य यथाबलं सुवृत्तम् ॥१७५॥
सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसंपदां निधानम् ।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुगतिस्थं समुपैत्ययं स्वभावः ॥१७६॥
कुकृतं प्रथमं सुदीर्घरोषः परपीडाभिरतिर्वचश्च रूक्षम् ।
सुकृतं विनयः श्रुतं च शीलं सदयं वाक्यममत्सरः शमश्च ॥१७७॥
न हि कश्चिदहो ददाति किंचिद्द्रविणारोग्यसुखादिकं जनानाम् ।
अपि नाम यदा सुरा ददन्ते बहवः किंतु विदुःखितास्तदेते ॥१७८॥
बहुधा गदितेन [2]किं न्वनेन पदमेकं सुबुधा निबुध्य यत्नात् ।
बहुभेदविपाककर्मसूक्तं तदुपायाप्तिविधौ सदा रमध्वम् ॥१७९॥

अनुष्टुप्

उपायाः परमार्थस्य कथितास्तत्त्वतो बुधाः ।
सेव्यन्तां शक्तितो येन निष्क्रामत भवार्णवात् ॥१८०॥

इससे इतना सिद्ध है कि बुरा चरित्र कभी शान्तिके लिए नही होता ॥१७१॥ जब कि परस्त्रीकी आशा रखनेवाला विद्याधरोका राजा—रावण कष्टको प्राप्त होता हुआ अन्तमे मरणको प्राप्त हुआ तब साक्षात् रति-क्रीड़ा करनेवाले अन्य कामरोगीकी तो कथा ही क्या है ? ॥१७२॥ हजारों उत्तमोत्तम स्त्रियाँ जिसकी निरन्तर सेवा करती थी ऐसा रावण भी जब अतृप्तबुद्धि होता हुआ मरणको प्राप्त हुआ तब अन्य मनुष्य तृप्तिको प्राप्त होगा यह कहना मोह ही है ॥१७३॥ अपनी स्त्रीके हितकारी सुखको छोड़कर जो पापी पर-स्त्रियोमे प्रेम करता है वह सूखी लकड़ीके समान दुःखरूपी बड़े सागरमे नियमसे प्रवेश करता है ॥१७४॥ अहो भव्य जनो ! तुम लोग जिन-शासनकी भक्तिरूपी रंगमे रँगकर तथा शक्तिके अनुसार सुदृढ चारित्रको ग्रहण कर शीघ्र ही उस स्थानको जाओ जहाँ कि बलदेव आदि महापुरुष गये है ॥१७५॥ पुण्यके फलसे यह जीव उच्च पद तथा उत्तम सम्पत्तियोंका भण्डार प्राप्त करता है ओर पापके फलसे कुगति सम्बन्धी दुःख पाता है यह स्वभाव है ॥१७६॥ अत्यधिक क्रोध करना, परपीड़ामे प्रीति रखना, और रूक्ष वचन बोलना यह प्रथम कुकृत अर्थात् पाप है और विनय, श्रुत, शील, दया सहित वचन, अमात्सर्य और क्षमा ये सब सुकृत अर्थात् पुण्य हैं ॥१७७॥ अहो ! मनुष्योके लिए धन, आरोग्य तथा सुखादिक कोई नही देता है। यदि यह कहा जाये कि देव देते है तो वे स्वयं अधिक सख्यामे दुःखी क्यो है ? ॥१७८॥ बहुत कहनेसे क्या ? हे विद्वज्जनो ! यत्नपूर्वक एक प्रमुख आत्मपदका तथा नाना प्रकारके विपाकसे परिपूर्ण कर्मोके स्वरसको अच्छी तरह जानकर सदा उसीकी प्राप्तिके उपायोमे रमण करो ॥१७९॥ हे विद्वज्जनो ! हमने इस ग्रन्थमे परमार्थकी प्राप्तिके उपाय कहे हैं सो उन्हे शक्तिपूर्वक काममे लाओ जिससे संसाररूपी सागरसे पार हो

१ -नङ्गरागः म. । २. किं त्वनेन म. ।

उत्पलमालभारिणी

इति जीवविशुद्धिदानदक्षं परितः शास्त्रमिदं नितान्तरम्यम् ।
सकले भुवने रविप्रकाशं स्थितमुद्योतितसर्ववस्तुसिद्धम् ॥१८१॥
द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्द्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे[1] श्चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ॥१८२॥

अनुष्टुप्

कुर्वन्त्वथात्र सांनिध्य सर्वाः समयदेवताः । कुर्वाणाः सकलं लोकं जिनभक्तिपरायणम् ॥१८३॥
[2]कुर्वन्तु [3]वचनै रक्षां समये सर्ववस्तुषु । सर्वादरसमायुक्ता भव्या लोकसुवत्सलाः ॥१८४॥
व्यञ्जनान्त स्वरान्तं वा किंचिन्नामेह कीर्तितम् । अर्थस्य वाचकः शब्द शब्दो वाक्यमिति स्थितम्॥१८५॥
लक्षणालंकृती वाच्यं प्रमाण छन्द आगमः । सर्वं चामलचित्तेन ज्ञेयमत्र [4]मुखागतम् ॥१८६॥
इदमष्टादश प्रोक्तं सहस्राणि प्रमाणतः । शास्त्रमानुष्टुपश्लोकैस्त्रयोविंशतिसंगतम् ॥१८७॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते श्रीपद्मपुराणे बलदेवसिद्धिगमनाभिधानं नाम
त्रयोविंशोत्तरशत पर्व ॥१२३॥

॥ समाप्तोऽय ग्रन्थ ॥



सको ॥१८०॥ इस प्रकार यह शास्त्र जीवोके लिए विशुद्धि प्रदान करनेमे समर्थ, सब ओरसे अत्यन्त रमणीय, और समस्त विश्वमे सूर्यके प्रकाशके समान सब वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाला है ॥१८१॥ जिनसूर्य श्री वर्धमान जिनेन्द्रके मोक्ष जानेके बाद एक हजार दो सौ तीन वर्ष छह माह बीत जानेपर श्री पद्ममुनिका यह चरित्र लिखा गया है ॥१८२॥ मेरी इच्छा है कि समस्त श्रुत-देवता जिन शासन देव, निखिल विश्वको जिन-भक्तिमे तत्पर करते हुए यहाँ अपना सान्निध्य प्रदान करें ॥१८३॥ वे सब प्रकारके आदरसे युक्त, लोकस्नेही भव्य देव समस्त वस्तुओके विषयमे अर्थात् सब पदार्थोके निरूपणके समय अपने वचनोसे आगमकी रक्षा करे ॥१८४॥ इस ग्रन्थमे व्यजनान्त अथवा स्वरान्त जो कुछ भी कहा गया है वही अर्थका वाचक शब्द है, और शब्दोका समूह ही वाक्य है, यह निश्चित है ॥१८५॥ लक्षण, अलकार, अभिधेय, लक्ष्य और व्यंग्यके भेदसे तीन प्रकारका वाच्य, प्रमाण, छन्द तथा आगम इन सबका यहाँ अवसरके अनुसार वर्णन हुआ है सो शुद्ध हृदयसे उन्हे जानना चाहिए ॥१८६॥ यह पद्मचरित ग्रन्थ अनुष्टुप् श्लोकोकी अपेक्षा अठारह हजार तेईस श्लोक प्रमाण कहा गया है ॥१८७॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें बलदेवकी सिद्धि-प्राप्तिका वर्णन करनेवाला एक सौ तेईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१२३॥



१ सिद्धे चरित म । २. कुर्वंते म । ३. वचने म । ४ सुखागतम् क., सुसगतम् ख ।

टीकाकर्तृप्रशस्तिः

दशार्णासरितस्तीरे पारग्रामो विराजते । यत्र लीलाधरो जैनो न्यवात्सीच्छ्रावकव्रतः ॥१॥
पुत्रास्तस्य त्रयोऽभूवन् जैनधर्मपरायणाः । गल्लीलालो ततो नन्द-लालः सद्धर्मभूषितः ॥२॥
प्यारेलालस्ततो ज्ञेयो वात्सल्यामृतसागरः । गल्लीलालस्य भार्यासीज्जानकी जानकीसमा ॥३॥
तयो पुत्रास्त्रयो जाताः सौहार्दार्णवसंनिभा. । [1]आलम्वेन्दुरभूदाद्यो लटोरेलालनामकः ॥४॥
मध्यमः सूनुरन्त्यश्च पन्नालालाभिधो बुध । ताते दिवंगते माता सूनूनादाय सागरम् ॥५॥
समागता सनाभेर्हि साहाय्यं समवाप्य सा । आलम्वेन्दुस्ततो यातः स्वल्पायुर्यममन्दिरम् ॥६॥
माता विपत्तिमायाता सार्धं पुत्रद्वयेन सा । वर्णिना पूज्यपादेन पन्नालालः प्रवेशितः ॥७॥
सागरस्थं महाविद्यालयं प्रज्ञाविभूषितः । माता द्वितीयपुत्रेण गृहभारं बभार सा ॥८॥
विद्यालये पठन् पन्नालालो विनयभूषितः । अचिरेणैव कालेन विद्वानासीद् गुरुप्रियः ॥९॥
लोकनाथस्ततश्छेदीलालः पण्डितमण्डनः । कपिलेश्वरो मुकुन्दश्च वाबूरामः कुशाग्रधीः ॥१०॥
एषां पादप्रसादेन शब्दविद्यामहोदधिः । काव्यविद्यामहासिन्धुस्तेनोत्तीर्णः सुखेन हि ॥११॥
सम्यक्त्वालंकृतस्वान्तो दयापीयूषसागरः । दयाचन्द्रो महाप्राज्ञो धर्मन्यायमहाबुधः ॥१२॥
धर्मन्यायगुरुस्तस्य बभूवाह्लाददायकः । धर्मे न्याये च साहित्ये 'शास्त्री' पदविभूषितः ॥१३॥
साहित्याचार्यपदवीं लब्धवानचिरं ततः । विद्यालये स्वकीये च वर्णिना सूक्ष्मदर्शिना ॥१४॥
कारितोऽध्यापकस्तस्मिन्नध्यापनपटुः प्रियः । सुखं बिभर्ति भारं स्वं मध्यमेन सनाभिना ॥१५॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रूर-कृतान्तेन स्वमालयम् । आनीतो मध्यमस्तस्य सनाभि सहजप्रियः ॥१६॥
तेन दुःखातिभारेण स्वान्ते कष्टं भरन्नसौ । चिन्तयन् कर्मवैचित्र्यं चकारात्मकृतिं तथा ॥१७॥
ग्रन्थाः सुरचितास्तेन रचनापटुबुद्धिना । केचित् संपादिताः केचिदनुवादेन भूषिताः ॥१८॥
सूरिणा रविषेणेन रचितं सुरभाषया । चरितं पद्मनामस्य लोकत्रयमणीयते ॥१९॥
माहात्म्यं तस्य किं ब्रूमः स्वरुच्याधीयतां स्वयम् । अध्येतुर्हृदयं शीघ्रं महानन्देन पूर्यते ॥२०॥
सम्यक्त्वं जायते नूनं तत्स्वाध्यायपटोः सदा । टीका विरचिता तस्य पन्नालालेन तेन हि ॥२१॥
टीकानिर्माणवेलायामानन्दोऽलम्भि तेन यः । कथ्यते स कया वाचा हृदयालयमध्यग ॥२२॥
आषाढासितसप्तम्यां रविवारदिने तथा । यामिन्याः पश्चिमे यामे टीका पूर्णा बभूव सा ॥२३॥
भूतवसुभूतयुग्म(२४८४)-वर्षे वीराब्दसंज्ञिते पूर्णा । टीका बुधजनचेतः कुमुदकलापप्रहर्षिणी सेयम् ॥२४॥
पुराणाब्धिरगम्योऽयमर्थवीचिविभूषित. । सर्वथा शरणं मन्ये रविषेणं महाकविम् ॥२५॥
जिनागमस्य मिथ्यार्थो माभून्मे करयुग्मतः । इति चिन्ताभरं चित्ते संवहामि निरन्तरम् ॥२६॥
तथाप्येतद् विजानामि गम्भीरः शास्त्रसागरः । क्षुद्रोऽहमल्पविज्ञानो गृहभारकदर्थितः ॥२७॥
पदे पदे त्रुटिं कुर्यां ततो हे बुधबान्धवा । क्षमध्वं मां, न मे चित्तं जिनवाक्यविदूषकम् ॥२८॥

ग्रन्थोऽयं समाप्त



---

१ आत्मचन्द्रः ।

श्लोकानुक्रमणिका

[आ]

[इ]

[छ]

[ज]

[ध]

[फ]

[ब]

[ह]

